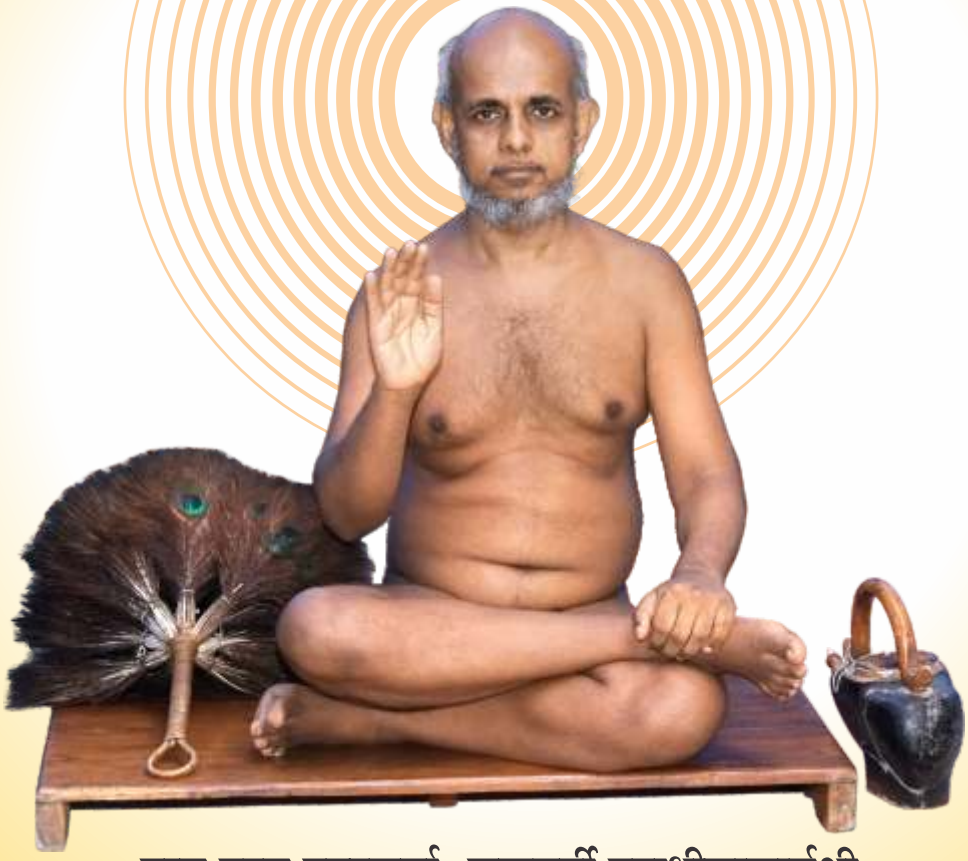

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

सर्वार्थसिद्धिवृत्ति

(तृतीय खण्ड)

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री पूज्यपाद जी महाराज

सम्पादन–अनुवाद
जगरूप सहाय

प्रकाशक
महेशचन्द्र जैन
एटा (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

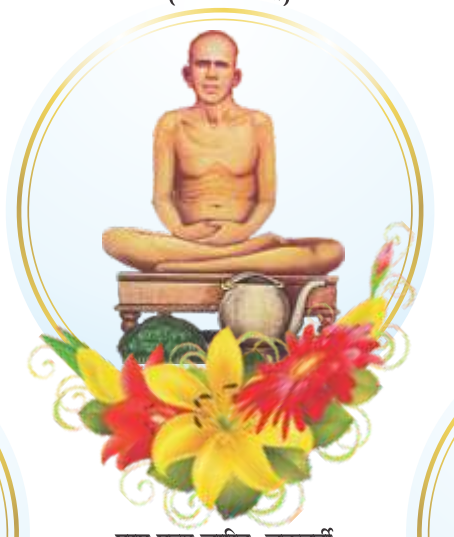

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी विरचिता

॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित शब्दशः हिंदी अनुवाद समेत

तृतीय खंड-छठे अध्याय से दशवां अध्याय तक, मूल्य ६)

समस्त ग्रन्थकी पृष्ठ संख्या १६०० से अधिक, श्लोक संख्या पूर्णग्रन्थकी लगभग ५०००० (पचास सहस्र)

अनुवादक और सम्पादक—जगरूप सहाय—एल एल० बी० वकील हाईकोर्ट

भूतपूर्व मुंसिफ (यू.पी.), डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एन्ड सबोर्डीनेट जज (सी.पी.)

प्रकाशक—महेशचन्द्र जैन, द्वारा जगरूप सहाय वकील, श्री उमास्वामी आफिस, मैनगंज एटा (संयुक्त प्रान्त)

प्रथम बार] मिती माघ कृष्णा १५ वीर संवत् २४५५ (विक्रम संवत् १९८५) समस्त ग्रन्थ का मूल्य २५)

* सर्वाधिकार सुरक्षित है *

केवल यह डायग्रिल पेन श्रीकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, अवागढ़, में छपा।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथाजीवपदार्थो व्याख्यात इदानीं तदनन्तरोद्देशभागास्रवपदार्थो व्याख्येय इति । ततस्तत्प्रसिध्यर्थमिदमुच्यते—

॥ कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥

कायादयः शब्दा व्याख्यातार्थाः । कर्म क्रिया इत्यनर्थान्तरम् ॥ कायवाङ्मनसां कर्म कायवाङ्मनःकर्म, योग इत्याख्यायते ॥ आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो

अथ*षष्ठः[1] अध्यायः[1]
= छठवां अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है

अथ*अजीव-पदार्थः[1]व्याख्यातः[4]इदानीम्*
=प्रश्न(=अथ) अजीवपदार्थ(पांचवा अध्यायमें) वर्णन किया गया । अब=(इदानीं)

तद्-अनन्तर-उद्देश-भाक्[1]आस्रव-पदार्थः[1]व्याख्येयः[1]इति*
=उस(अजीव)के अत्यन्तसमीप निर्देश वा कथन कियागया आस्रवपदार्थ कहना चाहिये

ततः*तद्-प्रसिद्धि-अर्थम्[1]।इदम्[1]।।उच्यते T
=तहां उस(आस्रवपदार्थ)की व्याख्याके लिये यह (प्रथम सूत्रमें) कहाजाता है कि

(१)सूत्रम्—कायवाङ्मनः कर्म योगः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—काय-वाङ्-मनःकर्म[1]।।योगः[1]।
=काय वचन मनकी क्रिया, अथवा कायिक, वाचिक, मानसिक क्रिया है सो योग है
अर्थात् काय वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना सो योग है

वृत्त्यनुवादः—काय-आदयः[3]शब्दाः[3]
=काय, वाक्, मन (ये) शब्द हैं

व्याख्यात-अर्थाः[3];कर्म[1]।।क्रिया[1]।।इति*
=जिनके अर्थ (पूर्वमें) कहेगये (देखो अध्याय ५ सूत्र१९) कर्म और क्रिया (शब्द)

अनर्थान्तरम्[1]।।
=पर्यायवाचक वा समानार्थक हैं अर्थात् इस सूत्रमें कर्मशब्दका अर्थ क्रिया है

काय-वाङ्मनसाम्[3]।।कर्म[1]।।कायवाङ्मनःकर्म[1]।।,
=कायवचन मनकी क्रिया सो काय-वाङ्मनः कर्म हुआ

योगः[1]इति*आख्यायते T ॥ आत्मप्रदेश-परिस्पंदः[1]
=(वह)योग ऐसा प्रसिद्ध है वा वर्णित है। आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना वा कांपना

---

(१) यह सूत्र दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। (२) काययोग = कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलने रूप होना । वचनयोग = वचनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंदमान होना । मनोयोग = मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलना (सो मनोयोग है)॥

योगः । स निमित्तभेदात्त्रिधा भिद्यते॥ काययोगो वाग्योगो मनोयोग इति॥ तद्यथा—वीर्यान्तराय-क्षयोपशमसद्भावे सति औदारिकादिसप्तविधकायवर्गणान्यतमालंबनापेक्षया आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः काययोगः । शरीरनामकर्मोदयापादितवाग्वर्गणालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्यक्षराद्यावरणक्षयोपश-मापादिताभ्यन्तरवाग्लब्धिसान्निध्ये वाक्परिणामाभिमुखस्यात्मनःप्रदेशपरिस्पन्दोवाग्योगः। अभ्यन्तर-वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मकमनोलब्धिसन्निधानेबाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने च सति

योगः१। । सः१निमित्त-भेदात्१त्रिधा*भिद्यतेT	=(सो) योग है ॥ वह (योग) कारणकी विशेषतासे तीन प्रकार भेद कियागयाहै
काययोगः१।वाग्योगः१।मनोयोगः१इति*तद्यथा*	=काययोग, वचनयोग, मनोयोग इस प्रकार हैं जैसे
वीर्यान्तराय-क्षयोपशम-सद्भावे१सति१।औदारिकादि-सप्त-	=(आत्माके) वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपशमकी विद्यमानता होनेपर औदारिकादि =सात(औदारिक,औदारिकमिश्र,वैक्रियिक,वैक्रियिकमिश्र,आहारक,आहारकमिश्र,कार्मण)
विध-कायवर्गणा-अन्यतम-आलम्बन-अपेक्षया१।आत्म-प्रदेश-परिस्पन्दः१। काययोगः१।	=प्रकारकी कायवर्गणाओंमेंसे किसीएक(=अन्यतम)(कायवर्गणाके)अवलंबनकी =अपेक्षासे वा सम्बन्धकरि आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना वा चलनेरूपहोना =सो काययोग है भावार्थ कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलने रूपहोना ॥
शरीरनामकर्म-उदय-आपादित-वाग्वर्गणा-आलम्बने१सति१।वीर्यान्तराय-मति-अक्षरादि-आवरण-क्षयोपशम-आपादित-अभ्यन्तर-वाक्-लब्धि-सान्निध्ये१।।वाक्-परिणाम-अभिमुखस्य१। आत्मनः१प्रदेश-परिस्पन्दः१।वाग्योगः१।	=शरीरनामा नामकर्मके उदयकरि उत्पन्न हुई (=आपादित) वचनवर्गणाके =अवलम्बन होनेपर(और)वीर्यान्तरायका अरमतिज्ञानावरणका तथा श्रुतअक्षरादि =ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशमकरि प्राप्त हुई (=आपादित) अन्तरंग वचनके =बोलनेकेकी शक्तिकी निकटता होते वचनरूप परिणमनके सन्मुख =आत्माके प्रदेशोंका हलन चलन सो वचनयोगहै भावार्थ-वचनके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंका सकंप होना सो वाग्योग है
अभ्यन्तर-वीर्यान्तराय-नोइन्द्रिय-आवरण-क्षयोपशम-आत्मक-मनोलब्धि-सन्निधाने१।। बाह्यनिमित्त-मनोवर्गणा-आलंबने१।च*सति१।	=अभ्यन्तर वीर्यान्तराय कर्मके और नोइन्द्रियावरण (नामक ज्ञानावर्णकर्म) के =क्षयोपशमरूप मनोलब्धिके सामीप्य वा निकट होनेपर =और (=च) बाह्यकारण मनोवर्गणाके अवलंबन होने पर (=सति)

मनः परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः ॥ क्षयेऽपि त्रिविधवर्गणापेक्षः सयोगकेवलिन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योगो वेदितव्यः ॥

आह अभ्युपगत आहितत्रैविध्यक्रियो योग इति ॥ प्रकृत इदानीं निर्दिश्यतां किंलक्षण आस्रव इत्युच्यते । योऽयं योगशब्दाभिधेयः संसारिणः पुरुषस्य—

॥ स आस्रवः ॥ २ ॥

मनः परिणाम-अभिमुख-स्य-आत्मन-प्रदेश-परिस्पन्दः-मनोयोगः।
=मनो परिणाम के सन्मुख आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना मनोयोगहै भावार्थ-मनकेनिमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलना मनोयोग है

क्षये-अपि-सयोगकेवलिनः।
=(पूर्वोक्त वीर्यान्तराय तथा ज्ञानावरणकर्मोंके) क्षय होने पर भी सयोग केवली के

त्रिविध-वर्गणा-अपेक्षः।
=तीन प्रकार (मन वचन काय) की वर्गणाओंके संबन्धसे (अर्थात् निमित्तसे)

आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः-योगः-वेदितव्यः। । आह T
=आत्माके प्रदेशोंका हलनचलनरूप योग जानना चाहिये ॥ प्रश्न करता है कि

अभ्युपगतः-आहित-त्रैविध्यक्रियः-योगः-इति-प्रकृतः=तीन प्रकार (=काय-मन-वचन)की क्रियारूप स्थापित योग जाने गये (=अभ्युपगतः)

इदानीम्-निर्दिश्यताम् T किंलक्षणः-आस्रवः-इति-उच्यते=अब विषयप्राप्त आस्रव क्या वस्तु है वा आस्रव किसलक्षण सहितहै ऐसे कहाजाताहै कि

संसारिणः-पुरुषस्य-यः-अयम्-योगशब्द-अभिधेयः। =संसारी जीवकें जो यह योगशब्द करि कथन किया गया (=अभिधेय) है

(१)स (२)आस्रवः॥२॥ = सः-आस्रवः-भवति॥२॥

=सो आस्रव है अर्थात् पूर्वोक्त कायिक वाचिक तथा मानसिक क्रिया ही आस्रव है वा पूर्वोक्त योग ही आस्रव है भावार्थ वह योग ही कर्मों के आगमनका द्वाररूप आस्रव है । जिस प्रकार सरोवरमें जलआनेके द्वार (मोरियां) जल आनेके लिये कारण होते हैं वैसे ही आत्माके भी मनोवचनकायरूप योगोंके द्वारा शुभ अशुभ कर्म आते हैं सो उन कर्मोंके आनेमें योग कारण है इसलिये कारणमें कार्यकी संभावना करके योगकोही यहां पर आस्रव कहा है ॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनोंआम्नायोंमें एकसा है(२)"सःआस्रवः"का शब्दशः अर्थ "वह आगमन है" अर्थात् वह (योग)आगमन(कर्मका)है ॥

यथा सरस्सलिलावाहिद्वारं तदाऽस्रवकारणत्वात् आस्रव इत्याख्यायते तथा योगप्रणालिकया आत्मनः कर्म आस्रवतीति योगआस्रव इति व्यपदेशमर्हति॥ आह कर्म द्विविधं पुण्यं पापं चेति। तस्य किमविशेषेण योग आस्रवणहेतुराहोस्विदस्ति कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

यथा*सरस्-सलिल-आ-वाहि-द्वारम्[1]॥	=जैसे सरोवर (=सरस्) के पानीके चारों ओरसे (=आ) बहने वा पहुंचनेका द्वार होता है
तत्-आस्रव-कारणत्वात्[2]॥ आस्रवः[1] इति*	=वह (द्वार) (जलके) आवनेको निमित्त होनेसे आस्रव ऐसा
आख्यायतेT तथा*योग-प्रणालिकया[2]॥	=कहा जाता है। तैसे (काय-वचन-मनो) योगरूपी नाली वा द्वारकरि
आत्मनः[5] कर्म[2]॥ आस्रवतिT इति*योगः[1] आस्रवः[1]	=आत्माके कर्म आता है ऐसे योग आस्रव
इति*व्यपदेशम्[2] अर्हतिT	=इस (उपचार करके) नामको पाता है। (यहां कारणमें कार्यका उपचार है)।
आहT कर्म[1]॥ द्विविधम्[2]॥ पुण्यम्[1]॥ पापम्[2]॥ च*इति	=(शिष्य) प्रश्न करता है कि कर्म पुन्य और (=च) पाप दो प्रकार है
तस्य[6]॥ किम्[1]॥ अविशेषेण[3] योगः[1] आस्रवणहेतुः[1]	=तिस (कर्म) के आवनेका कारण क्या योग सामान्य है
आहोस्वित्*अस्तिT कश्चित्*प्रतिविशेषः[1] इति*	=अथवा कुछ और विशेष है ऐसें (प्रश्न होने पर)
अत्र*उच्यते।	=यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रं—शुभः[1] पुण्यस्याशुभः पापस्य॥ =शुभः (योगः) पुण्यस्य (आस्रवः) भवति अशुभः (योगः) पापस्य (आस्रवः) भवति

सूत्रार्थः-शुभः[1] योगः[1] पुण्यस्य[6]॥ आस्रवः[1]	=शुभ योग पुन्य का आस्रव है
अशुभः[1] योगः[1] पापस्य[6] आस्रवः[1]	=अशुभयोग पापका आस्रव है अर्थात् शुभयोग पुन्यके आस्रवका कारण होता है और अशुभयोग पापके आस्रवका कारण होता है॥ यहां पर भी कारणमें कार्यकी संभावना करके शुभयोगको पुन्यरूप आस्रव कहा है और अशुभयोगको पापरूप आस्रव कहा है यद्यपि शुभयोग और अशुभयोग पुन्य और पाप आस्रवोंके यथासंख्य कारण हैं। भावार्थ-शुभयोग

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में यह सूत्र दो सूत्रों में विभाजित इस प्रकार है। शुभः पुण्यस्य ॥ ३ ॥ अशुभः पापस्य ॥ ४ ॥

कः शुभयोगः को वा अशुभः ? प्राणातिपातादत्तादानमैथुनादिरशुभः काययोगः । अनृतभाषण-परुषासभ्यवचनादिरशुभोवाग्योगः । वधचिन्तनेर्ष्यासूयादिरशुभो मनोयोगः॥ततो विपरीतःशुभः ॥ कथं योगस्य शुभाशुभत्वं ॥ शुभपरिणाम—

वृत्त्यनुवादः—कः[१]शुभयोगः[१]कः[१]वा*अशुभः[१] ? प्राण-अतिपात-[२]अदत्त-आदान-

मैथुन-आदिः[१]अशुभः[१]काययोगः[१]अनृतभाषण-परुष-असभ्य-वचनादिः[१]अशुभः[१]वाग्योगः[१] वधचिन्तन-ईर्ष्या-असूया-आदिः[१]अशुभः[१]मनोयोगः[१]ततः* विपरीतः[१] शुभः[१]।

कथम्*योगस्य[१]शुभ-अशुभत्वम्[१]॥। शुभ-परिणाम-

से पुन्य आस्रव(का आगमन)होताहै और अशुभ योगसे पाप आस्रव(का आगमन)होताहै

=शुभयोग क्या है अशुभ (चोर) क्या है

=प्राणों का घात (=अतिपात) अदत्तका वा अदानका ग्रहण (=आदान) अर्थात् जो वस्तु नहीं दी गई उसका लेना भावार्थ चोरी करना

=रतिसेवन (=मैथुन) आदिक अशुभ काययोग है । झूठ बोलना

=कठोर (=परुष) अयोग्य वा बुरे (=असभ्य) वचनादिक अशुभ वचनयोग है

=परके घातका चिंतवन, जलन(=ईर्ष्या)गुणोंमें दोषारोपण वा नदेखसकनेका भाव(=असूया)

=आदिक अशुभ मनोयोग है तिन (अशुभ काययोग)अशुभ वचनयोग, अशुभमनोयोग)से

=विरुद्ध शुभ (काय-वचन-मनोयोग) है । अर्थात् तहां अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्यादिक शुभकाययोग हैं-सत्यवचन, हितमित भाषणादि शुभवचनयोग हैं और अरहंतआदिमें भक्ति, स्तवनविषैं रुचि, शास्त्रआदिविषैं विनय आदिक प्रवृतियें ये शुभ मनोयोग हैं॥

=(प्रश्न) योग के कैसे शुभ अशुभपना है । शुभ परिणामकरि

(१) अदत्तादान, इस वाक्यके पदच्छेद अदत्त-आदान, और अदत्ता-आदान दोनों हो सक्ते हैं । अदत्ता (स्त्रीलिंग) न विवाही गई स्त्री, व दीहुई वस्तु (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १४) इस लिहाज़से अर्थमें अदत्ताआदान, पदच्छेदयुक्त है । अदत्तका अर्थ अदान, दिया नहीं पसाई और अदत्ताका अर्थ कुमारी, अविवाहिता भी लिखा है इस अवस्था में अदत्त-आदान ऐसा पदच्छेद है ॥ यहां कन्याके अर्थमें नहीं आया है अतः 'अदत्त-आदान' पदच्छेद किया है ।

निर्वृत्तो योगः शुभः ॥ अशुभपरिणामनिर्वृत्तश्चाशुभः ॥ न पुनः शुभाशुभकर्मकारणत्वेन ॥ यद्येवमुच्यते शुभयोग एव न स्यात् । शुभयोगस्यापि ज्ञानावरणादिबन्धहेतुत्वाभ्युपगमात् ॥ पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् । तत्सद्वेद्यादि ॥

निर्वृत्तः[१] योगः[१] शुभः[१] च*अशुभपरिणाम-निर्वृत्तः[१] अशुभः[१] न* पुनः* शुभ-अशुभ-कर्म-कारणत्वेन[३] । यदि * एवम् * उच्यते T	=निष्पन्न वा पूरा किया हुआ योग (सो) शुभ है ॥ बहुरि(च)अशुभ परिणामकरि =निष्पन्न योग (सो) अशुभ (योग) है । बहुरि शुभ-अशुभ कर्मके =निमत्तपनासे (शुभ अशुभ योग) नहीं है । यदि ऐसा कहा जाय अर्थात् शुभ-अशुभ कर्मके निमित्तपनासे शुभ अशुभ योग क्रमसे होते हैं तौ
शुभयोगः[१] एव* न* स्यात् T शुभ-योगस्य[६] अपि*ज्ञानावरणादि-बन्ध-हेतुत्व-अभ्युपगमात्[५]	=शुभयोगही विद्यमान न हों (=स्यात् न) क्योंकि शुभयोगके =भी ज्ञानावरणादि (पापरूप कर्म)का बंधका कारणपना माना है अर्थात् शुभ योगसे भी ज्ञानवरणादि पापरूप कर्मोंका बन्ध होता है तातें (यदि शुभ-अशुभ कर्मोंके कारणपनासे शुभ अशुभ योग यथासंख्य मानें तो) पापका कारण शुभ-अशुभ योग नहीं ठहरैं
(१)पुनाति[१] आत्मानम्[२] । २)पूयते[१] अनेन[३] । वा* इति*पुण्यम्[१] ॥ तद्[१] ॥ (३)तत्[१] ॥) ४)सद्वेद्य-आदि[१] ॥	=(जो) आत्माको पवित्र करता है अथवा जिसकरि (आत्मा)पवित्र कियाजाता है =ऐसा पुन्य है सो साता वेदनीय आदिक (कर्म) है

(१) "पू" क्यादि नवमा गणका धातु है, पू धातु और इकीस इसी गणके और धातुओंके अन्तस्वर का ह्रस्व होजाता है सार्वधातुक(काल) प्रत्ययोंमें 'ष्वाद्दीर्घं ह्रस्वः' ॥ ७ अध्याय ३ पाद ८० सूत्र अष्टाध्यायी और क्यादि गणका विकरण 'ना' धातु प्रत्यय मि-सि-ति इत्यादिके पूर्व जोड़ा जाता है इसलिये पू+ना+ति=पुनाति । (२) पूयते यह 'पू' धातुका कर्मणि प्रयोग है 'ते' आत्मने पदका प्रत्यय 'य'को धातुमें जोड़देनेके पश्चात् जोड़ा जाता है । (३) 'तद्' दकारान्त नपुंसकलिंग सर्वनाम है अर्थ 'वह' ऐसा है, इसका प्रथमा एक वचन नपुंसकलिंग तद् वा तत् दोनों प्रकारसे बनता है इसलिये तद् और तद् (पदच्छेदके पश्चात्) दोनोंही ठीक हैं । (४) वह शब्द अर्थात् 'सद्वेद्य' नपुंसकलिंग है । आठवां अध्याय (तत्त्वार्थसूत्र)का आठवां सूत्र "सदसद्वेद्ये" है जहां दो वचन प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें है । इस प्रथमावृत्ति सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ ४०४ में 'सद्वेद्यम् ' इति ऐसा वाक्य आया है ॥

पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम् । असद्वेद्यादि ॥

आह किमयमास्रवः सर्वसंसारिणां समानफलारम्भहेतुराहोस्वित्कश्चिदस्ति विशेष इत्यत्रोच्यते—

॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

पाति[T]रक्षति[T]आत्मानं[२]शुभात्[५]

=आत्माको शुभसे (दूर) रखता है वा आत्माको शुभसे रक्षा करता है (रक्षति=पाति) अर्थात् जो आत्मा को शुभ रूप नहीं होने देता है

इति*पापम्[१]॥॥असद्वेद्य-आदि[१]॥॥ । आह[T]किम्*

=ऐसा पाप है वह असाता वेदनीय आदि है । (वह) प्रश्न करताहै क्या

अयम्[१]आस्रवः[१]सर्व-संसारिणाम्[६]समान-

=यह आस्रव समस्त संसारी (जीव) निकें तुल्य

फल-आरंभ-हेतुः[१]आहोस्वित्*कश्चित्*

=फलके आरम्भका कारण है कि (=आहोस्वित्=अथवा) कुछ

अस्ति। विशेषः[१]इति*अत्र*उच्यते[T]

=विशेष है यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाताहै कि

(२)सूत्रम्–सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

= सकषायाकषाययोः (आत्मनोः[६]) साम्परायिकेर्यापथयोः (कर्मणोः[६]॥॥आस्रवौ यथासंख्यं भवतः)

सूत्रार्थः–सकषाय-अकषाययोः[६] आत्मनोः[६]

=कषायसहित और कषायरहित जीवोंके

साम्परायिक-ईर्यापथयोः[६]कर्मणोः[६]॥॥आस्रवौ[१]

=साम्परायिक तथा ईर्यापथ कर्मोंके आस्रव

यथासंख्यम्*भवतः[T]

=यथासंख्य वा अनुक्रमसे अर्थात् पहिलेको पहिला दूसरेको दूसराहोतेहैंअर्थात्

(१) आहोस्वित् (अव्यय)=विकल्प, सन्देह, प्रश्न, जाननेकी इच्छा (पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६५) आहोस्वित दो अव्ययों (आहो) और (स्वित) से मिलकर बनता है । ।आहो=प्रश्न-सन्देह-विकल्प (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६५) स्वित्=स्वित्प्रश्ने च वितर्के च, अमरकोश नानार्थवर्गः २३, श्लोक २४३ । स्वित=प्रश्न (पद्मचन्द्रकोश पृ०४४४) अर्थात् भिन्न भिन्न आहो और स्वित् का वही अर्थ है जो आहोस्वित्का मिलकर होता है ॥

(२) श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकसा है । कहीं कहीं ईर्यापथयोः पाठ है कहीं कहीं "ईर्य्यापथयोः" पाठ है । दोनों पाठ ठीक हैं क्योंकि अचोरहाभ्यांङ्ङेर्वा अष्टाध्यायी ८ । ४ । ४६ सूत्रसे (जिसका विवरण पहले करचुके हैं) य को द्वित्व करदिया गयाहै ॥

स्वामिभेदादास्रवभेदः । स्वामिनौ द्वौ ॥ सकषायोऽकषायश्चेति ॥ कषायः क्रोधादिः । कषाय इव कषायः । क उपमार्थः ? यथा कषायो नैयग्रोधादिः श्लेषहेतुस्तथा क्रोधादिरप्यात्मनः कर्मश्लेषहेतुत्वात् कषाय इव

कषाय सहित जीवकें संसारके कारण रूप कर्मका आस्रव होता है। और कषाय रहित जीवकें स्थिति रहित (=ईर्यापथ)कर्मका आस्रव होता है भावार्थ सकषाय जीवकें तौ ऐसी स्थिति और अनुभाग पड़ते हैं जिन करि जीव दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण करतेहैं। बहुरि अकषायीजीवं(=उपशांतकषायी ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, क्षीणकषायी बारहवां गुणस्थानवर्ती, और सयोग केवली तेरहवां गुणस्थानवर्ती, निकें कर्मोंकी स्थिति और अनुभाग नहीं पड़ते हैं। एक समय मात्र आस्रव आवे हैं । सो (स्थिति विना वा स्थिति रहित) तिसही समय झड़जाता है अथवा निर्जरहोजाता है।

स्वामि-भेदात्[५]।आस्रव-भेदः[१]।स्वामिनौ[१]।द्वौ[१]।
=स्वामीके भेदसे आस्रवविषैं भेद हैं [सूत्रमें] स्वामी दो हैं अर्थात् आस्रवके स्वामी दो हैं

सकषायः[१]।अकषायः[१]।च*इति*
=कषाय सहित और (=च) कषाय रहित (जीव) हैं ॥
अथवा सकषायी (जीव) और अकषायी (जीव) हैं ॥

कषायः[१]।क्रोध-आदिः[१]।कषायः[१]।इव*कषायः[१]।
=कषाय क्रोध आदि (=मान-माया-लोभ) हैं। कषाय सरीखे वा सदृश है सो कषाय है

कः[१]।उपमा-अर्थः[१]।यथा*कषायः[१]।
=समानताके लिये क्या वस्तु(लीगई है जैसे कषैले वा कषायले रसवाले
अर्थात् लालपीले मिले हुये रंग देनेवाले

नैयग्रोध-आदिः[१]।
=न्यग्रोध फल (=नैयग्रोध) (बड़ीकाफल-वटफल-वरगदफल)

श्लेष-हेतुः[१]।तथा*क्रोध-आदिः[१]।अपि*आत्मनः[६]।
=वस्त्रादिकविषैं रंगलगनेका निमित्त है तैसे क्रोधादि भी, आत्माकें

कर्म-श्लेष-हेतुत्वात्[५]।।कषायः[१]।इव*
=कर्म रूप रंग लगनेका हेतुहोनेसे कषाय सरीखे अथवा कषाय समान हैं ॥

कषाय इत्युच्यते ॥ सह कषायेण वर्तत इति सकषायः । न विद्यते कषायो यस्येत्यकषायः । सकषायश्चाकषायश्च सकषायाकषायौ तयोः सकषायाकषाययोः ॥ सम्परायः संसारः तत्प्रयोजनं कर्म साम्परायिकम् । ईरणमीर्यायोगो गतिरित्यर्थः ।

कषायः १।१। इति * उच्यते 1; सह कषायेण ३।१। =सो कषाय है इस प्रकार कहा जाता है। कषाय करि सहित
वर्ततेIइतिसकषायःन*विद्यते (१) कषाय:१।१।यस्य६।इति* =वर्तता है ऐसा सकषायी है। नहीं है विद्यमान कषाय जिसके ऐसा
अकषायः १।१। सकषायः १।१। च * =अकषायी है। बहुरि (=च) कषाय करि सहित है
अकषाय:१।२।च*सकषाय-अकषाययौ१।२। =और (=च) कषायकरि रहित है (ये दोनों) सकषायाकषायौ (द्वन्द्व समास में) हैं
तयोः ६।२। स- कषाय- अकषाययोः ६।२। =तिन(सकषाय-अकषायों)काहैसो सकषाय-अकषाययोः(ऐसावाक्य तत्पुरुषमेंबनता)है।
सम्परायिः१।१। संसारः१।१। तत्-प्रयोजनम् १।१।। =सम्पराय है सो संसार है। उस (संसार) का प्रयोजनवाला
कर्म १।१।। साम्परायिकम् १।१।। =कर्म साम्परायिक है अर्थात् संसारहै प्रयोजन जिस कर्मका सो साम्परायिक कर्म है॥
(२) ईरणम् १।१।। गतिः १।१। ईर्यायोगः १।१ इति * अर्थः १।१। =ईरणम् है सो गति का गमनहै (वे) योगोंका गमन है (=ईर्या) ऐसा तात्पर्य है।

---

(१) विद्-यहांपर दिवादि चौथेगणका धातुआत्मनेपदी अकर्मक 'होना' अर्थमें है। अतः 'य' अ विकरण जोड़कर 'ते' आत्मनेपदी वर्तमानकालका प्रत्यय लगाकर विद्+य+ते=विद्यते बनाया। (२) ईरणमीर्यायोगो गतिरित्यर्थः (=ईरणम्-ईर्यायोगः गतिः इति अर्थः) ॥ इस वाक्य का ऊपर जो हमने अनुवाद दिया है उससे प्रगट है कि इस वाक्य के पाठ में कुछ गड़बड़ है। सर्वार्थसिद्धि मुद्रितकी दोनों आवृत्तियों में उपर्युक्त एकसा पाठ है। हस्तलिखित दो प्रतियोंके पृष्ठ १८६ और ७२ पर क्रमसे "ईरणमीर्यादियोगो गतिरित्यर्थः" ऐसापाठ है तीसरी हस्तलिखित एकप्राचीन प्रतिके पृष्ठ ६पर "ईरणमीर्यायोगो गतिरित्यर्थः यह पाठ है "ईरणमीर्या योगगतिरित्यर्थः"(=ईरणम् ईर्या योगगतिः) इन दोनों पाठोंके मिलानेसे ज्ञात होताहै कि 'योग'शब्दमें अथमा विभक्ति लगाकर 'गति' शब्दसे पृथक् करदिया है। इसको तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें "ईरणमीर्या योगगतिः" ऐसे छठवीं वार्तिकके रूपमें दिया है जिसका संस्कृतअर्थ "ईरेर्त्यर्थाद्भावेण्यः। ईरणमीर्या योगगतिरिति यावत्। ऐसा दिया है (इस तत्त्वार्थराजवार्तिक के पाठ को हम ने मुद्रित और कई प्रतियें हस्तलिखितसे मिलाकर लिखा है ऐसा ही पाठ सर्व पुस्तकों में है) इसका हिंदी अनुवाद निम्नलिखित प्रकार है।

गति-अर्थात्*ईरेः५।१। भावे७।१।ण्यः१।१। =गमन अर्थवाली (=गत्यर्थात्)ईरि(धातु)से परे भाव(अर्थ)मेंण्य:(प्रत्ययकरि)
ईर्या ईरणम् योगगतिः इति*यावत् * =ईर्या (शब्द) बनता है। ईर्या-ईरणम् है सो योगों की गति वा योगोंका गमन ऐसे इतना अर्थ हुआ।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ १४४ के छठवें श्लोक में 'ईर्यायोगगतिः' वाक्य है 'ईर्या योगगति सैवं यथा यस्य तदुच्यते कर्मेर्यापथमस्यान्तु शुष्क कुट्ये ऽश्मवच्चिरम् ॥ ६ ॥ =ईर्या योगगतिः सा एवम् यथा यस्य तद् उच्यते। कर्म ईर्यापथम् अन्यात् तु शुष्क कुट्ये अश्मवत् चिरम् ॥ ६ ॥

ईर्या१।१॥योगगतिः१।१॥ =योगों की हलन चलन रूप क्रिया अर्थात् आत्माके प्रदेशोंका कंपन स्पंद वा स्पंदन सो ईर्या है।
सा१।१॥एवम् * यथा * यस्य६। तद्उच्यतेT =सो(=सा)ही(=एवम्)अर्थात् सोयोगोंकाकंपनवास्पंदनजिस(चेतन वाअचेतनके)जैसाहैवैसाकहाजाताहै

तद्द्वारकं कर्म ईर्यापथम् । साम्परायिकं च ईर्यापथं च साम्परायिकेर्यापथे । तयोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ यथासंख्यमभिसम्बन्धः । सकषायस्यात्मनो मिथ्यादृष्ट्यादेः साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवो भवति ॥ अकषायस्य उपशान्तकषायादेः ईर्यापथस्य कर्मण आस्रवो भवति ।

तत्-द्वारकम् १।।। कर्म १।।। ईर्या-पथम् १।।।
=तिस (योग की गति) द्वारा आने वाला (=द्वारकं) कर्म है सो ईर्या पथ है

साम्परायिकम्१।।।च*ईर्यापथम्१।।। च*साम्परायिकेर्यापथे१।।।
=बहुरि(=च) साम्परायिक और ईर्यापथहैसोसाम्परायिकेर्यापथे(द्वंद्वसमासमें) है

तयोः६।साम्परायिक-ईर्यापथयोः६।
=तिसका(संबंधकेअर्थमेंषष्ठीविभक्तिद्विवचनमें)साम्परायिकेर्यापथयोःऐसावाक्यहुआ

यथासंख्यम्* अभिसम्बन्धः १।
=(साम्परायिक-ईर्यापथका)यथासंख्य(=पहिलेको पहिला दूसरेकोदूसरा)संबंध है

सकषायस्य ६। आत्मनः ६। [ष] मिथ्यादृष्टि-आदेः६।
=कषायसहितआत्माकेमिथ्यादृष्टिआदिकप्रथमगुणस्थानसेदशमगुणस्थानतकनिके

साम्परायिकस्य६।।। कर्मणः६।।।आस्रवः १। भवति T
=संसारके कारणरूप कर्मका आस्रव होता है

अकषायस्य ६। उपशान्त-कषाय-आदेः६।
=कषाय रहित (आत्मा) के उपशान्त कषाय आदिकके

ईर्यापथस्य६।।। कर्मणः ६।।। आस्रवः १। भवति T
=ईर्यापथ वा स्थिति रहित कर्मका आस्रव होताहै भावार्थ ऐसाहै कि सकषाय जीवके तो ऐसी स्थिति और अनुभाग पड़ते हैं जिनकरि जीव

भावार्थ-उक्त ईर्यापथ आस्रव उपशांतकषायी क्षीणकषायी सयोगकेवली मुनियोंके होताहै सो जिसप्रकारका वह ईर्यापथआस्रवहै वैसाही उसकानाम है।

तु * कर्म-ईर्या-पथम् १।।।अस्याः ६॥
=और (=तु) इस (ईर्या) का जो कर्म (अर्थात् ईर्याका परिणाम वा फलकि आयेहुये कर्मों की स्थिति और अनुभाग विना तत्काल ही झडजाती है सो ईर्या पथ है (कैसा है ईर्यापथ)

शुष्क-कुड्ये ७।।। चिरम्* अशमवत् *
=सूखी भीत में सचीव पत्थर के सदृश अर्थात् सूखी भितिमें चिरकाल तक भिन्न ही रहना है भवार्थ जैसे सूखी भीत में पत्थर भिन्न ही चिरकाल तक रहताहै तैसे ईर्यापथ आस्रवमेंभिन्नकर्मों की स्थिति नहीं होतीहै जितनी कर्मों की वर्गणा आती हैं वे उसी समय झड़ जाती हैं

एक बात विशेष यह है कि जिन महाशयोंने सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और तत्वार्थ राजवार्तिक मिलाकर अध्ययन कियाहोगाउनकोज्ञात होगाकि उक्त ग्रंथके रचयिता ने पूज्यपाद स्वामी जो अकलंकदेव भट्ट से बहुत पहिले प्रसिद्ध हुए हैं सर्वार्थ सिद्धि की वृत्ति को वार्तिक रूप में तथा वृत्तिरूप में शब्दशः अनेक स्थानों में ग्रहण किया है। अतः स्पष्ट है कि "योगो" विभक्तिरूप में न होकर " ईरणमीर्या योगगति रित्यर्थ " ऐसा पाठ श्रेष्ठ है।

(१) दोनों वार की छपी हुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंमें मिथ्या दृष्टेःसाम्परायिकस्य पाठहै, परन्तु तीनहस्तलिखितप्रतियोंमें मिथ्यादृष्ट्यादेःसाम्परायिक ऐसा पाठ है। तत्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित २४८ में मिथ्या दृष्ट्यादीनां सूक्ष्म साम्परायांतानां' ऐसा पाठ है। हमने मिथ्या दृष्ट्यादेः साम्परायिकस्य पाठ लियाहै क्योंकि मिथ्या दृष्टि गुणस्थान से सूक्ष्म साम्पराय दशवें गुणस्थानतक कषाय का अस्तित्व है।

आदावुद्दिष्टस्यास्रवस्य भेदप्रतिपादनार्थमाह—

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाःपंचचतुःपंचपंचविंशतिसङ्ख्याःपूर्वस्य भेदाः।५

दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण करते हैं बहुरि अकषायी जीव (उपशांत कषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, क्षीणकषायी बारहवां गुणस्थानवर्ती, सयोग केवली तेरहवां गुणस्थानवर्ती निके कर्मोंकी स्थिति और अनुभाग नहीं पड़ते है जिस समय आस्रव आते हैं सो स्थिति बिन वा स्थितिरहित तिसही समय झड़ जाते हैं वा निर्जर होजाते हैं ॥

आदौ[1] उद्दिष्टस्य[2] आस्रवस्य[3] भेद-प्रतिपादन-अर्थम्[4]॥ आह[5]

=प्रथममें वा पहिले उपदेश किया हुआ (साम्परायिक) आस्रवके भेद
=कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंच, चतुः, पंच, पंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

= इन्द्रिय-कषाय-अव्रत-क्रियाः पञ्च-चतुर्-पंच-पंचविंशतिसंख्याःपूर्वस्य साम्परायिकास्रवस्य यथा-संख्यम् भेदाः (भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायकी "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका" (सिद्धसेनसूरि रचित) जिसमें बाईस सहस्रसेभी अधिक श्लोक हैं इस सूत्रका यही पाठ है जो हमारे यहां है परन्तु उनकेयहांके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें" "अव्रतकषायेन्द्रियक्रियाः पंचचतुःपञ्च,पञ्चविंशतिसंख्या.पूर्वस्य भेदाः" ऐसा पाठ है। सब पाठोंका अर्थ एक है ॥

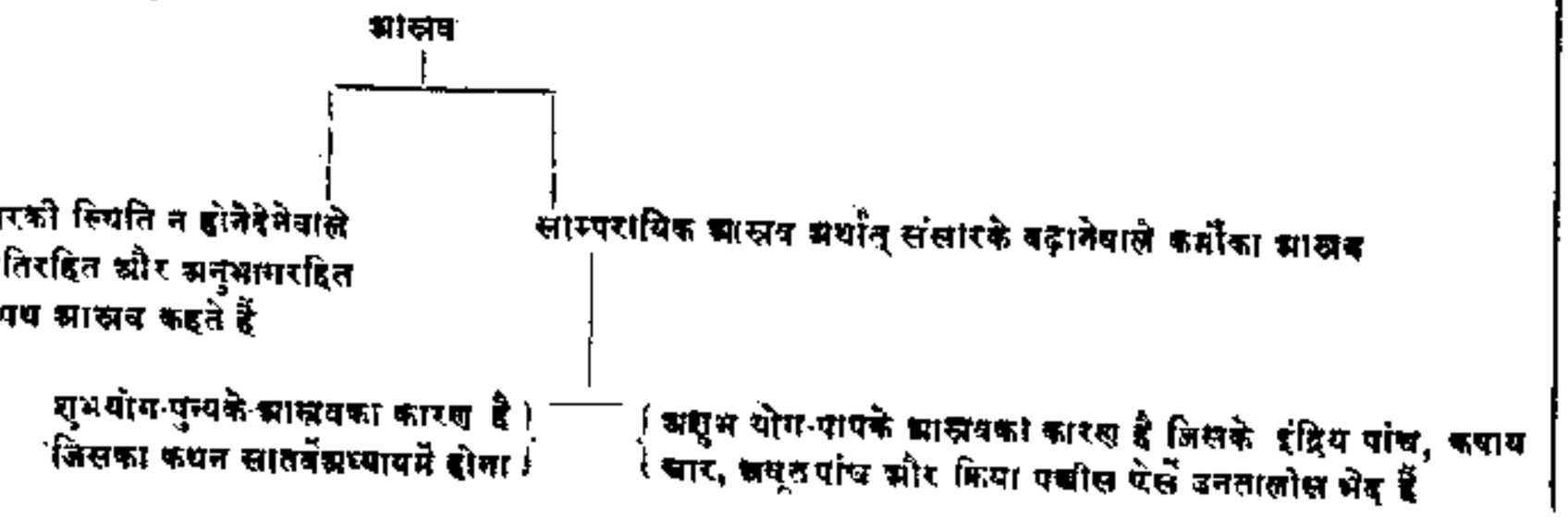

अत्र इन्द्रियादीनां पंचादिभिर्यथासंख्यमभिसंबन्धो वेदितव्यः ॥ इन्द्रियाणि पंच । चत्वारः कषायाः । पंचाव्रतानि ।
पंचविंशतिक्रिया इति ॥ तत्र पंचेन्द्रियाणि स्पर्शनादीन्युक्तानि ॥ चत्वारः कषायाः क्रोधादयः ॥

सूत्रार्थः—इन्द्रिय-कषाय-अव्रत-क्रिया:$\frac{1}{3}$॥ पञ्च-चतुर्-पंच-पंचविंशति-संख्या:$\frac{1}{3}$॥ पूर्वस्य$\frac{1}{6}$॥ साम्परायिक-आस्रवस्य$\frac{1}{6}$॥ यथासंख्यम्*भेदा:$\frac{1}{3}$॥ भवन्तिT

=इन्द्रिय, कषाय, अव्रत, क्रिया, पांच-चार-
=पांच-पचीस संख्यारूप अथवा गणनावाले पहिले
=साम्परायिक आस्रवके यथासंख्य अर्थात् पहिलेको पहिला, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा, भेद होते हैं

भावार्थ इन्द्रिय (स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुस्-श्रोत्र) पांच; कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) चार; अव्रत (हिंसा-अनृत वा मिथ्याभाषण, स्तेय वा चोरी-अब्रह्म-परिग्रह) पांच; क्रिया (सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-प्रयोग-समादान-ईर्यापथ; प्रादोषिकी, कायिकी, आधिकरणिकी, पारितापिकी, प्राणातिपातिकी; दर्शन स्पर्शन-प्रात्ययिकी-समन्तानुपातन-अनाभोग; स्वहस्त-निसर्ग-विदारण-आज्ञाव्यापादिकी, अनाकांक्ष; प्रारंभ-पारिग्राहिकी-माया-मिथ्यादर्शन-अप्रत्याख्यान;)पचीस ये उनतालीससाम्परायिकआस्रवकेभेदहैं ।

वृत्त्यनुवादः—अत्र*इन्द्रिय-आदीनाम्$\frac{3}{3}$। पंचादिभि:$\frac{3}{3}$। यथासंख्यम्*
अभिसम्बन्ध:$\frac{1}{3}$। वेदितव्य:$\frac{1}{4}$; इन्द्रियाणि$\frac{1}{3}$॥। पंच$\frac{1}{3}$॥।
चत्वार:$\frac{1}{3}$। कषाया:$\frac{1}{3}$।
पंचअव्रतानि$\frac{1}{3}$॥।
पंचविंशति-क्रिया:$\frac{1}{3}$॥ इति* । तत्र*पंचइन्द्रयाणि$\frac{1}{3}$॥।
स्पर्श-आदीनि$\frac{1}{3}$॥।उक्तानि$\frac{1}{3}$॥।;चत्वार:कषाया:क्रोधआदय:$\frac{1}{3}$।

=यहां (इस सूत्रमें)इन्द्रियादिकोंके पांच आदि (संख्याओं)से
=यथासंख्य अर्थात् पहिलेकोपहिला,दूसरेकोदूसरा,तीसरेकोतीसरा,चोथेकोचौथा
=सम्बन्ध जानने चाहिये । इन्द्रिय (स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्र) पांच हैं
=चार (क्रोध-मान वा अहंकार-माया वा कपट, लोभ) कषाय हैं
=पांच(हिंसा-मिथ्याभाषण-चोरी-मैथन परिग्रह अव्रत हैं)
=पचीस(सम्यक्त्व-मिथ्यात्व इत्यादि) क्रिया हैं । तहां पांच इन्द्रिय
=स्पर्शादिक(अध्याय २ सूत्र १९में)वर्णन कीगई हैं । चारकषायक्रोधादिक हैं ॥

पंचावृतानि प्राणव्यपरोपणादीनि वक्ष्यन्ते ॥ पंचविंशतिक्रिया उच्यन्ते– चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया । अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया ॥ गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया । सँयतस्य सतः अविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया । ईर्यापथनिमित्तेर्यापथक्रिया । ता एताःपंच क्रियाः ॥ क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया । प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः

पंच-अव्रतानि[१]॥प्राणव्यपरोपण-आदीनि[२]॥वक्ष्यन्ते[३]।
पंचविंशतिक्रिया[४]॥ उच्यन्ते—चैत्य-गुरु-प्रवचन-
पूजादि-लक्षणा[५]॥ सम्यक्त्ववर्धिनी[६]॥ क्रिया[७]॥
सम्यक्त्वक्रिया[८]॥; अन्यदेवता-
स्तवन-आदिरूपा[९]॥ मिथ्यात्वहेतुका[१०]॥(१)कर्मप्रवृत्तिः[११]॥
मिथ्यात्वक्रिया[१२]॥;गमन-आगमनादि-प्रवर्तनं[१३]॥ कायादिभिः[१४]
प्रयोगक्रिया[१५]॥;संयतस्य[१६] सतः[१७]।
अविरतिम्[१८] प्रति*अभिमुख्यम्[१९]॥ समादानक्रिया[२०]॥;
ईर्यापथनिमित्त-
ईर्यापथक्रिया[२१]॥; ता[२२]॥एताः[२३]॥पंच[२४]॥ क्रियाः[२५]॥ ॥
क्रोध-आवेशात्[२६]
प्रादोषिकी[२७]॥ क्रिया[२८]॥; प्रदुष्टस्य[२९]सतः[३०]
अभ्युद्यमः[३१]

=पांच अव्रत हिंसा(=प्राणव्यपरोपण)आदिक(सातवां अध्यायके प्रथम सूत्रमें कहेंगे
=पच्चीस क्रियायें(नीचे)कही जाती हैं। देव(=चैत्य)गुरु शास्त्र वा आगमकी
पूजादि लक्षण सम्यग्दर्शनके बढानेवाली क्रिया
=सो सम्यक्त्व क्रिया है। (२) अन्य देवता वा कुदेव (कुगुरु कुश्रुत)का
=स्तवनादिरूपमिथ्यात्वके कारणवाली क्रिया(=कर्म)में अभिरुचि वा लगन(=प्रवृत्ति)
=सो मिथ्यात्व क्रिया है। (३) कायादिकोंसे गमनागमनादिरूप प्रवर्तना
=सो प्रयोग क्रिया है (४) संयमी पुरुषका (=सतः[१७])
=असंयमके सन्मुखपना वा सन्मुख होना सो समादान क्रिया है ॥
=(५) गमनकर्मके निमित्तक क्रिया अर्थात् गमन करनेके लिये जो क्रिया
=सो ईर्यापथ क्रिया है। ते इतनी पांच क्रिया हैं ॥
=(६)क्रोधके वशसे(जो क्रिया)अर्थात् परको दोष लगावनेकी प्रवृत्ति दुष्टस्वभावता
=सो प्रादोषिकी क्रिया है। (७) दुष्ट भावका (=सतः) अर्थात् दुष्टताका
=उद्यम करना (जैसे चोरी इत्यादिका)

(१) 'मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्ति मिथ्यात्वक्रिया' यह पाठ द्वितीय संस्करण सर्वार्थसिद्धि तथा एक प्रतिहस्तलिखितके पृष्ठ ५६ पर है यही पाठ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें है ॥ प्रथमावृत्तिकी सर्वार्थसिद्धि तथा दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्ति मिथ्यात्वक्रिया' ऐसा पाठ है। दोनों पाठोंका भावार्थ एकसा है,जयचन्दरायजीने 'मिथ्यात्वकी कारण प्रवृत्ति' सो मिथ्यात्व क्रियाहै ऐसाअर्थ कियाहै हमने पिछलापाठ ग्रहणकरके'मिथ्यात्व के-कारणवाली क्रिया (=कर्म) में अभिरुचि वा लगन (=प्रवृत्ति) ऐसा अनुवाद किया है ॥

कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकीक्रिया। सत्त्वदुःखोत्पत्तितन्त्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिन्द्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। ता एताः पञ्चक्रियाः॥ रागार्द्रीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्पृष्टव्यसञ्चेतनानुबन्धः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपुरुषपशुसम्पातिदेशेऽन्तर्मलोत्सर्गकरणं [१] समन्तानुपातक्रिया।

कायिकी[१]॥ क्रिया[१]॥ हिंसा-उपकरण-आदानात्[५] आधिकरणिकीक्रिया[१] सत्त्व-दुःख-उत्पत्ति-तन्त्रत्वात्[५]॥ पारितापिकी क्रिया[१]॥ । आयुः-इन्द्रिय-बल-प्राणानाम्[६] वियोगकरणात्[५]॥ प्राणातिपातिकी[१]॥ क्रिया[१]॥ ता[१]॥ एता[१]॥ पंचक्रियाः[१]॥ ॥ राग-आर्द्रीकृत्वात्[५]॥ प्रमादिनः[१]॥ रमणीय-रूप[२] आलोकन अभिप्रायः[१] दर्शनक्रिया[१]॥ ॥ प्रमाद-वशात्[५]॥ स्पृष्टव्य-संचेतन-अनुबन्धः[१] स्पर्शनक्रिया[१]॥ अपूर्व-अधिकरण-उत्पादनात्[५]॥ प्रात्ययिकी[१]॥ क्रिया[१]॥ । स्त्री-पुरुष-पशु-सम्पाति-देशे[७] अन्तर्मल-उत्सर्गकरणम्[१]॥ समन्तानुपातक्रिया[१]॥

=सो कायिकी क्रिया है। (८) हिंसाके प्रधान साधन, उपकरण जैसे शस्त्रादिक, का =ग्रहण करनेसे जो हो सो आधिकरणिकी क्रिया है। (९) आत्माको दुःखके उत्पत्तिके =कारणपनासे जो होसो पारितापिकी क्रिया है। (१०) आयु-इन्द्रिय-बल =प्राणोंका वा उच्छास निःश्वासका वियोग करनेसे होसो प्राणातिपातिकी क्रिया है =ते येती पांचक्रिया हैं। (११) प्रमादी (पुरुष) के राग भाव से आद्रित होकर =रमणीकरूपके देखनेका (=आलोकन) अभिप्राय दर्शन क्रिया है। =(१२) प्रमादके वशसे स्पर्शनयोग्य वस्तुमें रागपरिणामसे (=सञ्चेतन) =प्रवृत्ति वा प्रवर्तना (=अनुबन्धः=सम्बन्धः) सो स्पर्शन क्रिया है =(१३) (विषयके) नवीन (=अपूर्व) आधार वा कारण उपजावनेसे (जो होसो) =प्रात्ययिकी क्रिया है (प्रत्ययक्रिया है॥ =(१४) नारी-नर-पशुके प्रवर्तने (अर्थात् सोवने बैठने चलने फिरने) में =भीतरीमल अर्थात् पाखाना-मूत्र नाकमैलइत्यादिका फैंकना सो समन्तानुपातक्रिया है।

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके प्रथम संस्करणमें 'समन्तापातन क्रिया' पाठहै द्वितीयावृत्तिमें, एकप्रति हस्तलिखितमें, पं० जयचन्दजीकृतावचनिकामें और क्षुल्लकगणी सूरि कृत टीकामें 'समान्तनुपातनक्रिया' ऐसा पाठ है॥ "समन्तानुपातक्रिया" श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें हमारेयहांकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें, पं० पन्नालाल बाकलीवालकीटीकामें, तत्त्वार्थराजवार्तिकमें पं० जयचन्दजी विरचिता वचनिका मुद्रितमें, पं० सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिकामें और अन्य अन्य प्रतियोंमें ऐसा पाठ है॥ 'सा समन्तानुपातिकी' ऐसापाठ तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिकमें है इसलिये हमने समन्तानुपात क्रिया यह पाठ लियाहै॥ (२) रूपालोकनाभिप्रायो—स्मरण रहे कि इस वाक्य का पदच्छेद 'रूप-आलोकन-अभिप्राय' होगा नकि 'रूप-अलोकन-अभिप्राय' क्योंकि आलोकन वा आलोचन का अर्थ देखना है (वैद्यकोश पृष्ठ २०६ देखो) और 'अलोकन' का अर्थ अदर्शन और न देखनेके हैं (वैद्यकोश पृष्ठ ७० देखो) यहांपर 'रूपालोकनाभिप्रायः' वाक्यका अर्थ 'रूपके देखनेका अभिप्राय' ऐसाहै।

अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। ता एताः पंचक्रियाः ॥ यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तक्रिया । पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया । पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया । यथोक्तामाज्ञामावश्यकादि चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथाप्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया । शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षक्रिया। ता एताः पंचक्रियाः॥ छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन वा क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारम्भक्रिया

अप्रमृष्ट-अदृष्ट-भूमौ[३]॥ काय-आदि-निक्षेपः[५]।

=बिनासोधीहुईवा झाड़ीहुई(=अप्रमृष्ट)और)बिनादेखीहुई(=अदृष्ट)पृथिवीमें कायआदिकानिक्षेपण अर्थात् बैठना,सोवना,लेटना, इत्यादि करना[३]

अनाभोगक्रिया[१]॥, ताः[३]॥ एताः[३]॥ पंचक्रियाः[३]॥

=सो अनाभोग क्रिया है। ते एती पांच क्रिया हैं।

याम्[३]॥ परेण[३] निर्वर्त्याम्[३]॥ क्रियां[३]॥ स्वयम्*करोतिTसा[१]॥ स्वहस्तक्रिया[१]॥ । पाप-आदानादि-प्रवृत्ति-विशेष-अभ्यनुज्ञानम्[१]॥॥ निसर्गक्रिया[१]॥ । पर-आचरित-स-अवद्यादि-प्रकाशनम्[१]॥॥ विदारणक्रिया[१]॥ । चारित्र-मोहउदयात्[३] यथा*उक्ताम्[३]॥ आज्ञाम्[३]॥ आवश्यकादि-कर्तुम्[१]॥॥ अशक्नुवतः[५] अन्यथा*प्ररूपणात्[५]॥॥ आज्ञाव्यापादिकी[१]॥ क्रिया[१]॥ । शाठ्य-आलस्याभ्याम्[३] प्रवचन-उपदिष्ट-विधि-कर्तव्यता-अनादरः[१] अनाकांक्षक्रिया[१]॥ । ताः[३]॥ एताः[३]॥ पंचक्रियाः[१]॥ ॥ छेदन-भेदन-विशनादि-क्रिया-परत्वम्[१]॥॥ अन्येन[३] वा क्रियमाणे[७] प्रहर्षः[१] प्रारम्भक्रिया[१]॥ ।

=(१६) जो दुसरेकरि करने योग्य क्रियाको आप करता है सो =स्वहस्त क्रिया है। (१७) पापके ग्रहणादिक प्रवृत्तिके विशेषको =भला जानना सो निसर्ग क्रिया है। (१८)अन्यका आचरण कियाहुआ =पापसहित कार्यादिकका प्रगट करना सो विदारण क्रिया है ॥ =(१९) चारित्रमोहके उदयसे (परमागममें) ज्योंकी त्यों कहीहुई आज्ञाके =आवश्यकआदिके करनेको(=कर्तुम्)असमर्थहोनेवालाभिन्न प्रकारवर्णनकरनेसे =आज्ञाव्यापादिकीक्रियाहै।(२०)कपट(=शाठ्य)मूर्खता(=शाठ्य)तथाआलस्यसे =शास्त्रोक्त विधान अथवा रीतिकी कर्तव्यतामें अनादर (करना) =सो अनाकांक्ष क्रिया है। ते येती पांच क्रिया हैं ॥

छेदन भेदन मारण आदिक क्रियामें तत्परपणा अथवा अन्यकरि =कियेहुयेमें आनन्द (मानना) सो प्रारम्भ क्रिया है।

---

(१) तीन इकलालिखित प्रतियोंका पाठ "छेदनभेदनविसर्जनादि क्रिया परत्वं अन्येनवारम्भे क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारम्भ क्रिया" ऐसा पाठ है तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'विसर्जनादिकं' स्थानमें 'वर्जनादि' शब्द है।

परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया । ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचनं मायाक्रिया। अन्यंमिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा साधु करोषीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया । संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया।ताएताःपञ्चक्रियाः॥ (समुदिताः पञ्चविंशतिक्रियाः) एतानीन्द्रियादीनि कार्यकारणभेदाद्भेदमापद्यमानानि साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवद्वाराणि भवन्ति

परिग्रह-अविनाश-अर्थाः पारिग्राहिकीः क्रियाः। ।
ज्ञान-दर्शन-आदिषुः निकृतिः॥ वञ्चनम्॥
मायाक्रियाः॥ । अन्यम्ः मिथ्यादर्शन-
क्रिया-करण-कारण-आविष्टम्॥ प्रशंसादिभिः
दृढयतिT यथा*साधुः करोषिTइति*साः
मिथ्यादर्शनक्रिया ः॥ । संयमघाति-कर्म-
उदयवशात्ः अनिवृत्तिः॥

=(२२) परिग्रहकी रक्षाके लिये (प्रवर्तना) सो पारिग्राहिकी क्रिया है ।
=(२३) ज्ञान-दर्शन-आदिकमें कपटसे (=निकृति) और ठगई अर्थात् कपटसे प्रवर्तना
=सो माया क्रिया है । (२४) अन्यको अर्थात् किसीको मिथ्यात्वके
=कार्य करने, कराने में लीन हो (=आविष्टं), बड़ाई आदि करि
=दृढ़ करता है जैसे तू भला (=साधु) करता है सो (=सा)
=मिथ्या दर्शन क्रिया है । (२५) संयमके घात करनेवाले कर्मके
=उदयके वशसे निवृत्तिरूप नहीं होना अर्थात् संयमरूप नहीं प्रवर्तना वा
अत्यागरूप प्रवर्तना

अप्रत्याख्यानक्रियाः । ताः एताः पञ्चक्रियाः ॥ =सो अप्रत्याख्यान क्रिया है । ते येती पांच क्रिया हैं ॥
(समुदिताः पञ्चविंशतिक्रियाः) एतानि ।
इन्द्रिय-आदीनि कार्य-कारण-भेदात्ः भेदम्।
आपद्यमानानि साम्परायिकस्यः कर्मणः॥ आस्रव-
द्वाराणि॥ भवन्तिT

=(पूर्वोक्त सर्वसमुचित पचीस क्रियायें हुईं) । ये
=इन्द्रिय-कषाय-अव्रत-क्रिया (=आदीनि)कार्य कारणके भेदसे भेदरूप
=प्राप्त होकर (=आपद्यमान) साम्परायिक कर्मके आस्रवके
=द्वार होते हैं अर्थात् यहां इन्द्रिय-कषाय-अव्रत तो कारण हैं बहुरि क्रिया हैं वे
उन (इन्द्रिय-कषाय-अव्रत) के निमित्तसे होती हैं इसलिये कार्य हैं । ये दोनों
संसारके कारणरूप (=साम्परायिक) कर्मके आस्रवके उपाय हैं ॥

अत्राह योगत्रयस्य सर्वात्मकार्यत्वात्सर्वेषां संसारिणां साधारणस्य ततो बन्धफलानुभवनम्प्रत्यविशेष इत्यत्रोच्यते। नैतदेवम्। यस्मात् सत्यपि प्रत्यात्मसम्भवे तेषां जीवपरिणामेभ्यः अनन्तविकल्पेभ्यो विशेषोऽभ्यनुज्ञायते। कथमिति चेदुच्यते—

॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अत्र *आह T योगत्रयस्य ३। सर्व-आत्म - कार्यत्वात् ५॥ सर्वेषाम् ६। संसारिणाम् ६। साधारणस्य ६। ततः* बन्धफल-अनुभवनम् २। प्रतिअविशेषः १। इति * अत्र* उच्यते T। न * एतद् १॥ एवम् *। यस्मात्* सति ७। अपि* सति- आत्मसंभवे ७। तेषाम् ६। जीवपरिणामेभ्यः ५। अनन्त-विकल्पेभ्यः ५। विशेषः १। अभ्यनुज्ञायते T कथं इतिचेत् उच्यते T

=यहाँ प्रश्न करता है कि (मन वचन-काय) तीन योगसे सर्व आत्मा के =कार्यपनासे समस्त संसारी जीवोंके समान रूप है, तिससे =बन्धका फल भोगनेको समान अथवा तुल्य (=अविशेष) है।
=(उत्तरमें) यहां कहा जाता है कि इस प्रकार यह नहीं है
=इसलिये (मन-वचन-काय के योग) प्रत्येक जीवके (साधारण) =सम्भव होने पर भी (=सत्यपि) तिन (जीवों) के जीवपरिणामके =अनन्त भेद होनेसे विशेष जाना जाता है। प्रश्न (=चेत्) ऐसा कैसे है अर्थात्-जीवकेपरिणामके भेदके निमित्तसे बन्धका फलके भोगने में क्या विशेषता है ऐसा प्रश्न होने पर =(अग्रिम सूत्र में) कहाजाता है कि

सूत्रम्—तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

=तीव्रभाव—मन्दभाव-ज्ञातभाव-अज्ञातभाव-अधिकरण-वीर्यविशेषेभ्यः तद्-विशेषःभवति ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—तीव्र भाव- =तीव्र भाव (=उत्कट परिणाम, उग्रपरिणाम, वृद्धिरूप परिणाम)
मंदभाव- =मन्दभाव (=शिथिल परिणाम, अनुत्कट परिणाम)
ज्ञातभाव- =ज्ञातभाव (=ज्ञानपूर्वक परिणाम, वा ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति)
अज्ञातभाव- =अज्ञातभाव(=अज्ञानपूर्वक परिणाम, वा अज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति)
अधिकरण- =अधिकरण (=आधार आसरा अर्थात् जिसके आश्रय पुरुषका प्रयोजन हो)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थ में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें भावाधिकरणवीर्य के स्थानमें भावबीर्याधिकरण,, है। शेष पाठ और अर्थ एक है।

बाह्याभ्यन्तरहेतूदीरणवशादुद्रिक्त परिणामस्तीव्रः । तद्विपरीतो मन्दः । अयं प्राणी हन्तव्य इति ज्ञात्वा प्रवृत्तिर्ज्ञातमित्युच्यते । मदात्प्रमादाद्वाऽनवबुध्य प्रवृत्तिरज्ञातम् । अधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्था इत्यधिकरणं द्रव्यमित्यर्थः ।

वीर्य-विशेषेभ्यः ।
तद्-विशेषः ।

=और वीर्य (=सामर्थ्य, बल) [इन छह] के विशेषसे वा भेदसे
=पूर्वोक्त (=तद् अर्थात् साम्परायिक आस्रवके उनतालीस भेदों) में विशेष (अर्थात् न्यूनाधिक तारतम्य) है ।(जैसे कि लघु-लघुतर तथा लघुतम ऐसे ही तीव्र-तीव्रतर तथा तीव्रतम हिंसादि) भावार्थ जीव के जैसे ● उग्र परिणाम की, शिथिल परिणामकी; ज्ञानपूर्वक परिणामकी, अज्ञानपूर्वक परिणामकी, आधारकी और वीर्य (इन छहों) की न्यूनता और अधिकता होती है वैसे वैसे ही साम्परायिक आस्रवके पूर्वोक्त उनतालीस भेदों में विशेष । होती है ॥

वृत्त्यनुवादः—बाह्य-अभ्यन्तरहेतु-उदीरण-वशात् ।
उद्रिक्तः । परिणामः । तीव्रः ।

=बाह्य अन्तरंग कारणकी उदीरणा [फैंक, बढ़ाउ] के वशसे
=उग्र वा उत्कट परिणाम सो तीव्रभाव है अर्थात् बाह्य अभ्यन्तर कारणोंसे बढ़ेहुए क्रोधादिक कषायोंकरि तीव्रता वा उग्रतारूप परिणाम सो तीव्र भाव है ।

तद्-विपरीतः । मन्दः ।

=उस [तीव्रभाव] से विरुद्ध [परिणाम] सो मन्दभाव है अर्थात् क्रोधादिक कषायों की शिथिलता से जो परिणाम हो सो मंदभाव है ।

अयम् । प्राणी । हन्तव्यः । इति ● ज्ञात्वा ÷ प्रवृत्तिः ।
ज्ञातम् ।।इति ● उच्यते । । मदात् ।

=यह जीव हत्या जाय ऐसा जानकर प्रवर्तना सो
=ज्ञात [भाव] ऐसा कहा जाता है मादक वस्तु [के वश में होने] से [=मदात्] वा अहंकार से [=मदात]

प्रमादात् । अनवबुध्यः ÷ प्रवृत्तिः । अज्ञातम् ।।।
अधिक्रियन्ते । अस्मिन् । अर्थाः ।
इति●अधिकरणम्।।। द्रव्यम् ।।। इति ● अर्थः ।

=[वा] असावधानतासे [=प्रमादात्] विना जानकर प्रवर्तना सो अज्ञात[भाव] है
=आधार किये गये हैं वा आश्रय किये गये हैं जिसमें प्रयोजन
=ऐसा अधिकरण है द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है ।

द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो वीर्यम्। भावशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते—तीव्रभावः, मन्दभाव इत्यादिः। एतेभ्यस्तस्यास्रवस्य विशेषो भवति कारणभेदाद्धि कार्यभेद इति॥ अत्राह अधिकरणमित्युक्तं, तत्स्वरूपमनिर्ज्ञातमतस्तदुच्यतामिति। तत्र भेदप्रतिपादनद्वारेणाधिकरणस्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह—

॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

द्रव्यस्य॥स्वशक्तिविशेषः॥वीर्यम्॥॥;भावशब्दः॥
प्रत्येकम्॥परिसमाप्यते।
तीव्रभावः॥मन्दभावः॥इत्यादिः॥
एतेभ्यः॥
तस्य॥आस्रवस्य॥विशेषः॥भवति।

=द्रव्यके निजशक्तिका विशेष सो वीर्य है; (इस सूत्रमें) भावशब्द
=पृथक् पृथक् (तीव्र-मन्द-ज्ञात-अज्ञात) को लगाया जाता है॥
=(तब) तीव्रभाव-मंदभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव होते हैं।
=इन(तीव्रभाव-मंदभाव-ज्ञातभाव-अज्ञातभाव-अधिकरणतथावीर्यकेविशेष)करि
तिस (साम्परायिक) आस्रवके भेद होजाता है। अर्थात् इन सबके अन्तरसे
साम्परायिक आस्रवका अन्तर है, ये सब जहां जैसे जैसे होते हैं तहां तैसा
=तैसा न्यूनाधिकतालिये हुये साम्परायिक आस्रव भी होता है।

कारण-भेदात्॥हि॰कार्यभेदः॥इति॰॥अत्र॰आह।
अधिकरणम्॥॥इति॰उक्तम्॥॥तत्स्वरूपम्॥॥ अनिर्ज्ञातम्॥॥
अतः॰ तत्॥॥उच्यताम् । इति॰। तत्र॰
भेद-प्रतिपादन-द्वारेण॥॥अधिकरण-स्वरूप-
निर्ज्ञान-अर्थम्॥॥ आह।

=कारणके भेदसे ही कार्य भेद होता है। यहां (शिष्य) पूछता है कि
=अधिकरण कहा गया, उस (अधिकरण) का स्वरूप नहीं बताया गया है
=इसलिये (=अतः) वह (स्वरूप) कहा जाना चाहिये॥ तहां (उसअधिकरणके)
=भेदके प्रतिपादन द्वाराकरि अधिकरणके स्वरूपके
=निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) सूत्रम्—अधिकरणं जीवाऽजीवाः

सूत्रार्थः—

=(आस्रवस्य) अधिकरणं जीव-अजीवाः भवन्ति
= आस्रवका आधार या अधिकरण जीव द्रव्यें और
= अजीव द्रव्यें (दोनों) हैं अर्थात् जीव द्रव्यें और अजीव द्रव्यें दोनोंके आधार आश्रय वा आसरेसे आस्रव होता है अकेले जीवके आश्रयसे आस्रव नहीं होता है। तथा अकेले पुद्गलके आश्रयसे भी आस्रव नहीं होता है जैसे पुरुष विना स्त्रीके गर्भ नहीं रहसकता है और स्त्री विना पुरुष भी गर्भ नहीं रख सकता है।

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है॥

उक्तलक्षणा जीवाऽजीवाः ॥ यद्युक्तलक्षणाः पुनर्वचनं किमर्थम् । अधिकरणविशेषज्ञापनार्थं पुनर्वचनम् ॥ (१) जीवाऽजीवा अधिकरणं इत्ययं विशेषो ज्ञापयितव्य इत्यर्थः ॥ कः पुनरसौ ? हिंसाद्युपकरणभाव इति ॥ स्यादेतन्मूलपदार्थयोर्द्वित्वाज्जीवाजीवा इति द्विर्वचनं न्यायप्राप्तमिति ॥ तन्न—पर्यायाणामधिकरणत्वात् येन केनचित्पर्यायेण विशिष्टं द्रव्यमधिकरणम् । न सामान्यमिति बहुवचनं कृतम् ॥ जीवाऽजीवाः अधिकरणं कस्य ? आस्रवस्येत्यर्थवशादभिसम्बन्धो भवति ॥ तत्र जीवाधिकरणभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्रव्यानुवादः—उक्तलक्षणाः जीवा अजीवाः ॥
यदि उक्त-लक्षणाः पुनर् वचनम् किम् अर्थम् ॥ अधिकरण-विशेष-ज्ञापन-अर्थम् पुनर्वचनम् ॥
जीव-अजीव-अधिकरणम् ॥ इति अयम् विशेषः ज्ञापयितव्यः इति अर्थः । कः पुनर् असौ
हिंसा-आदि-उपकरणभावः इति स्यात् एतद् ॥
मूल-पदार्थयोः द्वि त्वात् ॥ जीव-अजीवाः इति द्विर्वचनम् ॥ न्याय-प्राप्तम् ॥ इति ॥ तत् ॥ न
पर्यायाणाम् अधिकरणत्वात् ॥ येन केनचित्
पर्यायेण विशिष्टम् ॥ द्रव्यम् ॥ अधिकरणम् ॥
न सामान्यम् ॥ इति बहुवचनम् ॥ कृतम् ॥
जीवाऽजीवाः अधिकरणम् ॥ कस्य आस्रवस्य
इति अर्थ-वशात् अभिसम्बन्धः भवति ॥
तत्र-जीव-अधिकरण-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह

=अथ कहेगये हैं लक्षण जिनके ऐसे जीव अजीव हैं ॥
=(प्रश्न) जो (जीव-अजीव के) लक्षण कहे गये हैं, फिर कथन किस लिये है ॥
=(उत्तर) अधिकरणका विशेष जतावनेके लिये पुनि कथन है ॥
=जीव-अजीव-अधिकरण है इस प्रकार यह भेद
=बताये जाने योग्य है ऐसा अभिप्राय है। बहुरि वह (असौ) क्या(अधिकरण)है
=हिंसा आदिका उपकरणपना है। यदि यह है अर्थात् यदि जीव अजीवअधिकरण है तो
=जीवअजीव मूल वस्तुओंके द्वितासे अर्थात् जीव अजीव दो वस्तुओंके होने से
=(इस सूत्रमें बहुवचनके स्थानमें) द्वि वचन युक्तियुक्त(न्याय)प्राप्त है(उत्तर) सो नहीं है ॥
=पर्यायोंके अधिकरणपना है अर्थात् जीव अजीवके पर्याय अधिकरण हैं ॥ जिसतिस
=पर्यायकरि युक्त वा भेदवाला अधिकरण (वा) द्रव्य है ।
=कि अभेदरूप है । ऐसे (इस सूत्रमें जीवाऽजीवाः) बहुवचन किया है ॥
=(प्रश्न) जीव-अजीव-अधिकरण वा आधार किसका है (उत्तर) आस्रवका है
=इस प्रकार अभिप्रायके वशसे सम्बन्ध होता है ।
=तहां जीव अधिकरणके भेद जतावनेके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्र में)कहतेहैंकि

(१) "जीवाऽजीवाधिकरणं इत्ययं" प्रथमावृत्तिका पाठ है ॥ द्वितीय संस्करणका पाठ "जीवाऽजीवाधिकरणं इत्यय" ऐसा है। दो हस्तलिखित प्रतियों का भी यही पाठ है परन्तु 'अधिकरण इत्ययं' वाक्यके स्थानमें संधि करके 'अधिकरणमित्ययं' करदिया है ॥ एक तीसरी हस्तलिखित प्रतिमें 'जीवाजीवा अधिकरण मित्यर्थं' पाठ है । अर्थात् 'इत्ययं' के स्थान में 'इत्यर्थं' पाठ है इन सब पाठों का एकसा अर्थ है । हमने द्वितीय संस्करणका पाठ लिया है ॥

आद्यंसंरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः =आद्यं (जीव-अधिकरणं) संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ-योग-कृत-कारित-अनुमत-कषाय-विशेषैः त्रिः-त्रिः-त्रिः-चतुः च एकशः भेदाः भवन्ति ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः-आद्यम् $\frac{1}{1}$॥ जीव-अधिकरणम् $\frac{1}{1}$॥ संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ-विशेषैः $\frac{3}{3}$ त्रिः * एकशः*योग-विशेषैः $\frac{3}{3}$ त्रिः * एकशः * कृत-कारित-अनुमत-विशेषैः $\frac{3}{3}$ त्रिः * एकशः * क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय-विशेषैः $\frac{4}{4}$ चतुर् * च * भेदाः $\frac{1}{1}$ भवन्ति ।

=प्रथम (= आदौभवः = आद्यः) जीव-अधिकरण, संरम्भ-
=समारम्भ-आरम्भके विशेषवा भेदकरि तीन और
=(संरम्भ-समारम्भ आरंभ) एक एकके काय-वचन-मनोयोगके भेदकरि तीन तीन
=(पूर्वोक्त नौमेंसे) एक एकके कृत-कारित अनुमोदना के
=विशेषकरि तीन तीन (उपर्युक्त सत्ताईसमेंसे) एक एक के
=क्रोधमान माया लोभ कषाय के विशेषकरि
=चार चार (ये सब मिलाकर एक सौ आठ) भेद भी (=च) होते हैं अर्थात् अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ; अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ; प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ; संज्वलन क्रोध मान माया लोभ से पूर्वोक्त प्रत्येक सत्ताईस भेदोंको गुणने से ४३२ भेद होते हैं। और यदि अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन भेदोंको न लेकर पूर्वोक्त प्रत्येक सत्ताईस भेदोंको केवल क्रोध-मान-माया-लोभ कषायके सामान्य भेदों से गुरगनेसे जीवाधिकरण के १०८ भेद भी होते हैं (इस सूत्र में 'च' शब्दका यही तात्पर्य है) भावार्थ संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ इन तीनों को मन वचन कायरूप तीनों योगोंसे गुणने से ९ तथा कृत-कारित अनुमोदना इनतीनोंसे गुणनेसे २७ और क्रोध-मान-माया-लोभ-इन चार कषायोंसे गुणनेसे १०८ भेद होते हैं और यदि २७ भेदोंमेंसे प्रत्येक को कषायके १६ भेदों से गुणिये तो ४३२ भेद जीवाधिकरणके होते हैं।

(१) श्वेताम्बर आम्नाय के तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा हमारे यहां एकसा पाठ है ॥ ४३२ भेदों के लिये देखो पृष्ठ २५ से ३४ तक ।

(२) त्रि का अर्थ तीन है परन्तु त्रिः अथवा त्रिस् का अर्थ है तीन बार यह अव्यय है, क्रिया विशेषण अव्यय है जो अव्ययोंका एक विभाग वा भेद है अतः त्रिः त्रिः त्रिः चतुस्=तीन गुणित तीन गुणित तीन गुणित चार=१०८का जोड़ हुआ ॥

प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादवतः प्रयत्नावेशः संरम्भः । साधनसमभ्यासीकरणं समारम्भः । प्रक्रम आरम्भः । योगशब्दो व्याख्यातार्थः । कृतवचनं स्वातन्त्र्यप्रतिपत्त्यर्थम् । कारिताभिधानं परप्रयोगापेक्षम् । अनुमतशब्दः प्रयोजकस्य मानसपरिणामप्रदर्शनार्थः । अभिहितलक्षणाः कषायाः क्रोधादयः । विशिष्यतेऽर्थोऽर्थान्तरादिति विशेषः। स प्रत्येकमभिसम्बध्यते—संरम्भविशेषः समारम्भविशेष इत्यादि ॥ आद्यं जीवाधिकरणं एतैर्विशेषैर्भिद्यत इति वाक्यशेषः

वृत्त्यनुवादः—प्राणविपरोपण-आदिषु प्रमादवतः
प्रयत्न-आवेशः संरम्भः;साधन-
समभ्यासीकरणम् समारम्भः;
प्रक्रमः आरम्भः
योगशब्दः व्याख्यात-अर्थः;कृतवचनम्
स्वातन्त्र्य-प्रतिपत्ति-अर्थम्;कारित-
अभिधानम् पर-प्रयोग-अपेक्षम्; अनुमतशब्दः
प्रयोजकस्य मानस-परिणाम-प्रदर्शन-अर्थः;
अभिहित-लक्षणाः कषायाः क्रोध-आदयः ॥
अर्थः अर्थ-अन्तरात् विशिष्यते इति विशेषः

सः प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते संरम्भविशेषः
समारम्भविशेषः इत्यादि

आद्यम् जीव-अधिकरणम् एतैः विशेषैः भिद्यते
इति वाक्यशेषः ॥

=हिंसादिक विषैं प्रमादी जीवका
=उद्यमरूप परिणाम अथवा उद्यमरूप भाव सो संरम्भ है। (हिंसादिकके)उपायमें
=अभ्यास करना वा सामिग्री मिलावना सो समारम्भ है ॥
=(हिंसादिकमें) प्रवृत्ति वा प्रवर्तन करना वा लगना सो आरम्भ है।
=योग वह शब्द है जिसका अर्थ (पूर्वमें) कह चुके हैं । कृतशब्द
=स्वयं प्रवर्तनकेलिये वा अन्यकी प्रवृत्तिकेलियेजो अर्थात्स्वयंकरैसो कृत है।कारित
=नाम (=अभिधान)दूसरेके सम्बन्धमें कराया जाय सो है ॥ अनुमत शब्द
=करने वाले को मनोभाव करि भला जाननेके अर्थमें है।
=(पहिले) कह चुके हैं लक्षण जिनके ऐसे कषाय क्रोध-मान-माया-लोभ हैं
=एक अर्थ (=अर्थः) अन्य अर्थसे जिस कारे भिन्न किया जाय ऐसा विशेष है
अर्थात् एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे जो भेद जतलावें वह विशेषशब्दका अर्थहै॥
=वह (विशेषशब्द) प्रत्येकको लगाया जाता है (जैसे) संरम्भ विशेष,
=समारम्भ विशेष, आरम्भ विशेष, योग विशेष, कृतविशेष,
कारितविशेष, अनुमत विशेष, कषाय विशेष ऐसे हैं ।
=प्रथम जीव-अधिकरण इतने विशेषणों करि भेदरूप किया गया है ॥
=ऐसा (भिद्यतेशब्द) वाक्य शेष है अर्थात् इस सूत्रमें'विशेषैः'शब्द के पश्चात्
भिद्यते शब्द और जोड़ लेना चाहिये वा और समझ लेना चाहिये ।

ये क्रिया विशेषण जो बारम्बार के अर्थ में आते हैं, द्वि, त्रि, चतुर्में 'स्' और शेष संख्याओंमें कृत्वस् जोड़ने से बनते हैं। संख्याओंका अन्तिम स् गिरा दिया जाता है ॥ जैसे सकृत्=एकबार द्विस् (=द्विः दोबार, त्रिस् (त्रिः) तीनबार, चतुर्+स्=चतुर्+स् (दो वा दो से अन्त में अधिक व्यञ्जन हों तो केवल एक ही रहता है)=चतुर्=चतुः=चार बार। पंचकृत्व=पांचबार. षट्कृत्व=छहबार, सप्तन्+कृत्व=सप्तकृत्व=सातबार इत्यादि ॥

एते चत्वारः सुजन्तास्त्र्यादिशब्दा यथाक्रममभिसम्बन्ध्यन्ते—संरम्भसमारम्भारम्भास्त्रयः । योगास्त्रयः । कृत-कारितानुमतास्त्रयः । कषायाश्चत्वार इति ॥ एतेषां गणनाभ्यावृत्तिः सुचा द्योत्यते ॥ एकश इति वीप्सानिर्देशः । एकैकं त्र्यादीन् भेदान् नयेदित्यर्थः ॥

एते [1] चत्वारः [1] त्र्यादिशब्दाः [1] सुच-अन्ताः [1] यथ क्रमम्*

=ये चार त्रिः, त्रिः-त्रिः चतुः-(आदि) शब्द सुच् (=स्) प्रत्यान्त हैं अर्थात्
=(वे) अनुक्रमसे (संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ; काययोग-वचनयोग-मनो योग, कृत-कारित-अनुमत; क्रोधकषाय, मानकषाय; मायाकषाय; लोभी कषाय के साथ)

अभिसम्बन्ध्यन्ते I

=लगाये जाते हैं अर्थात् संरम्भ-समारम्भ आरम्भ के साथ प्रथम त्रिस् लगाया जाता है, योग, के साथ दूसरा त्रिस्, कृत-कारित-अनुमत के साथ तीसरा त्रिस् और कषाय के साथ चतुर् लगाया जाता है ॥ देखो टिप्पणी(२) पृष्ठ २१ ॥

संरम्भ-समारम्भ-आरम्भाः [1] त्रयः [1];
योगाः [1] त्रयः [1];
कृत-कारित-अनुमताः [1] त्रयः [1]; कषायाः [1]
चत्वारः [1] इति * एतेषाम् [6]

=(इस प्रकार) संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ तीन हुये । (योग तीन हुए । काय-वचन मनो)
=कृत कारित-अनुमोदना तीन हुए । (क्रोध मान, माया-लोभ) कषाय
=चार हुए । इन (संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ, योग, कृत-कारित-अनुमत, और क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभ कषायकी)

गणना-अभ्यावृत्ति [1] सुचा [1] द्योत्यते T

=गिनतीकी (=गणना) दुहराना (=अभ्यावृत्ति) सुच् (=स्) प्रत्यय करि प्रगट की गई है (अर्थात्)

एकशः * इति * वीप्सा-निर्देशः [1]

=(इस सूत्रमें) एकशः (शब्द) बारबार कहने (=वीप्सा) अर्थमें (=निर्देशः) है।

एकैकम् [1] त्रि-आदीन [2] भेदान् [2] नयेत । इति * अर्थः [1]

=एक एकप्रति तीन आदिक भेदोंको प्राप्तकरना ऐसा अभिप्राय वा तात्पर्य है॥

तद्यथा-क्रोधकृतकायसंरम्भः । मानकृतकायसंरम्भः । मायाकृतकायसंरम्भः । लोभकृतकायसंरम्भः । क्रोधकारितकायसंरम्भः । मानकारितकायसंरम्भः । मायाकारितकायसंरम्भः । लोभकारितकायसंरम्भः । क्रोधानुमतकायसंरम्भः । मानानुमतकायसंरम्भः । मायानुमतकायसंरम्भः । लोभानुमतकायसंरम्भश्चेति द्वादशधा कायसंरम्भः ॥ एवं वाग्योगे मनोयोगे च द्वादशधा संरम्भः । त एते पिण्डिताः षट्त्रिंशत्, तथा समारम्भा अपि षट्त्रिंशत् ।

तद्यथा * क्रोधकृतकायसंरम्भः १, मानकृतकायसंरम्भः १, मायाकृतकायसंरम्भः १, लोभकृतकायसंरम्भः १ क्रोधकारितकायसंरम्भः १ मानकारितकायसंरम्भः १, मायाकारितकायसंरम्भः १, लोभकारितकायसंरम्भः १, क्रोधअनुमतकायसंरम्भः १, मानअनुमतकायसंरम्भः १, मायाअनुमतकायसंरम्भः १ च लोभअनुमतकायसंरम्भः १ इति * द्वादशधा * कायसंरम्भः १ एवम् * वाग्योगे १ मनोयोगे १ च * द्वादशधा * संरम्भः १

=जैसे (१) क्रोधकृतकायसंरम्भ., मानकृतकायसंरम्भ, =मायाकृतकायसंरम्भ, लोभकृतकायसंरम्भ, =क्रोधकारितकायसंरम्भ, मानकारितकायसंरम्भ, =मायाकारितकायसंरम्भः, लोभकारितकायसंरम्भ, =क्रोधअनुमतकायसंरम्भः, मानअनुमतकायसंरम्भः =मायाअनुमतकायसंरम्भः, और (=च) लोभअनुमतकायसंरम्भ ॥ =इस प्रकार (=इति) बारह प्रकार कायसंरम्भ है । इसप्रकार वचन योगमें =और (=च) मनो योग विषै बारह बारह प्रकार संरम्भ है अर्थात्

(१) क्रोधकृतवचन संरम्भ(२)मानकृतवचनसंरम्भ(३) मायाकृतवचनसंरम्भ (४) लोभकृतवचनसंरम्भ
(५) क्रोधकारितवचनसंरम्भ (६) मानकारितवचनसंरम्भ (७) मायाकारितवचनसरम्भ (८) लोभकारितवचनसंरम्भ
(९) क्रोधअनुमतवचनसंरम्भ (१०) मानअनुमतवचनसंरम्भ (११) मायाअनुमतवचनसंरम्भ (१२) लोभअनुमतवचनसंरम्भ
(१३) क्रोधकृतमनःसंरम्भ (१४) मानकृतमनसंरम्भ (१५) मायाकृतमनस्संरम्भ(१६) लोभकृतमनस्संरम्भः
(१७) क्रोधकारितमनस्संरम्भ (१८) मानकारितमनस्संरम्भ(१९) मायाकारितमनस्संरम्भ (२०) लोभकारितमनःसंरम्भ
(२१) क्रोधअनुमतमनःसंरम्भ (२२) मानअनुमतमनःसंरम्भ (२३) मायाअनुमतमनःसंरम्भ (२४) लोभअनुमतमनःसंरम्भ

ते १ एते १ पिण्डिताः १ षट्त्रिंशत् १ ॥
तथा समारम्भाः ? अपि षट्त्रिंशत् १ ॥

=ते इतने समुच्चित छत्तीस हैं ।
=और समारम्भ भी छत्तीस हैं अर्थात

आरम्भा अपि षट्त्रिंशत् ।

(१) क्रोधकृतकायसमारम्भ (२) मानकृतकायसमारम्भ (३) मायाकृतकायसमारम्भ (४) लोभकृतकायसमारम्भ
(५) क्रोधकारितकायसमारम्भ (६) मानकारितकायसमारम्भ (७) मायाकारितकायसमारम्भ (८) लोभकारितकायसमारम्भ
(९) क्रोधअनुमतकायसमारम्भ (१०) मानअनुमतकायसमारम्भ (११) मायाअनुमतकायसमारम्भ (१२) लोभअनुमतकायसमारम्भ
(१३) क्रोधकृतवचनसमारम्भ (१४) मानकृतवचनसमारम्भ (१५) मायाकृतवचनसमारम्भ (१६) लोभकृतवचनसमारम्भ
(१७) क्रोधकारितवचनसमारम्भ (१८) मानकारितवचनसमारम्भ (१९) मायाकारितवचनसमारम्भ (२०) लोभकारितवचनसमारम्भ
(२१) क्रोधअनुमतवचनसमारम्भ (२२) मानअनुमतवचनसमारम्भ (२३) मायाअनुमतवचनसमारम्भ (२४) लोभअनुमतवचनसमारम्भ
(२५) क्रोधकृतमनःसमारम्भ (२६) मानकृतमनःसमारम्भ (२७) मायाकृतमनःसमारम्भ (२८) लोभकृतमनःसमारम्भ
(२९) क्रोधकारितमनःसमारम्भ (३०) मानकारितमनःसमारम्भ (३१) मायाकारितमनःसमारम्भ (३२) लोभकारितमनःसमारम्भ
(३३) क्रोधअनुमतमनःसमारम्भ (३४) मानअनुमतमनःसमारम्भ (३५) मायाअनुमतमनःसमारम्भ (३६) लोभअनुमतमनःसमारम्भ

आरम्भाः॥अपि॥षट्त्रिंशत्॥

=आरम्भ भी छत्तीस हैं अर्थात्

(१) क्रोधकृतकायआरम्भ (२) मानकृतकायआरम्भ (३) मायाकृतकायआरम्भ (४) लोभकृतकायआरम्भ
(५) क्रोधकारितकायआरम्भ (६) मानकारितकायआरम्भ (७) मायाकारितकायआरम्भ (८) लोभकारितकायआरम्भ
(९) क्रोधअनुमतकायआरम्भ (१०) मानअनुमतकायआरम्भ (११) मायाअनुमतकायआरम्भ (१२) लोभअनुमतकायआरम्भ
(१३) क्रोधकृतवचनआरम्भ (१४) मानकृतवचनआरम्भ (१५) मायाकृतवचनआरम्भ (१६) लोभकृतवचनआरम्भ
(१७) क्रोधकारितवचनआरम्भ (१८) मानकारितवचनआरम्भ (१९) मायाकारितवचनआरम्भ (२०) लोभकारितवचनआरम्भ
(२१) क्रोधअनुमतवचनआरम्भ (२२) मानअनुमतवचनआरम्भ (२३) मायाअनुमतवचनआरम्भ (२४) लोभअनुमतवचनआरम्भ
(२५) क्रोधकृतमनआरम्भ (२६) मानकृतमनआरम्भ (२७) मायाकृतमनआरम्भ (२८) लोभकृतमनआरम्भ
(२९) क्रोधकारितमनआरम्भ (३०) मानकारितमनआरम्भ (३१) मायाकारितमनआरम्भ (३२) लोभकारितमनआरम्भ
(३३) क्रोधअनुमतमनआरम्भ (३४) मानअनुमतमनआरम्भ (३५) मायाअनुमतमनआरम्भ (३६) लोभअनुमतमनआरम्भ

एते सपिण्डिता जीवाधिकरणास्रवभेदा अष्टोत्तरशतसंख्याः सम्भवन्ति ॥ चशब्दोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानसञ्ज्वलनकषायभेदकृतान्तर्भेदसमुच्चयार्थः ॥

एते[1] सपिण्डिताः[2] जीवाधिकरण-आस्रवभेदाः[3] =इतने जीवाधिकरण आस्रवके भेद समुच्चित होकर

अष्टोत्तर (१) शतसंख्याः[4] सम्भवन्ति[T] च-शब्दः[5] =एक सौ आठ गणनामें हो जाते हैं (इस सूत्रमें) च शब्द

अनन्ताऽनुबन्धी– =अनंतानुबंधी (क्रोध-मान-माया-लोभ) अर्थात् जिससे अनंत संसारका कारण मिथ्यात्वभाव होता है

अप्रत्याख्यान– =अप्रत्याख्यान (क्रोध मान-माया-लोभ) अर्थात् जिसके उदयसे एकदेश त्यागरूप श्रावकके व्रत भी किंचि-मात्र न कर सकें (अ=ईषत्, किंचित्)

प्रत्याख्यान– =प्रत्याख्यान (क्रोध, मान, माया, लोभ) अर्थात् जिसके उदयसे समस्त महाव्रत रूप त्याग नहीं हो सक्ते अथवा सकल संयम का ग्रहण न करसके

संज्वलन– =संज्वलन (क्रोध, मान, माया, लोभ) अर्थात् जिसके उदय से संयमी तो रहै परंतु शुद्ध स्वभावमें वा शुद्धोपयोगरूपमें लीन न हो सके

कषाय-भेदकृत-अन्तर्भेद-समुच्चय-अर्थः[6] =कषाय सम्बन्धके अन्तरंग भेदोंके संग्रहके लिये हैं अर्थात् पूर्वोक्त संरम्भ-समारम्भ और आरम्भ के १०८ भेदों को अनतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन कषायोंसे गुणा करनेसे जीवाधिकरणके चार सौ बत्तीस ४३२ भेद इस प्रकार हो जाते हैं कि

कायसंरम्भके ४८ भेद ॥

(१) अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतकायसंरम्भ	(२) अप्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसंरम्भ	(३) प्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसंरम्भ
(४) सँज्वलनक्रोधकृतकायसंरम्भ	(५) अनन्तानुबन्धीमानकृतकायसंरम्भ	(६) अप्रत्याख्यानमानकृतकायसंरम्भ

(१) सामायिककी जापमाला में एक सौ आठ (१०८) दाने होते हैं, सो उपर्युक्त एकसौ आठ (१०८) आरम्भ जनित पापके आस्रवोंको दूर करने के लिये अथवा इन एक सौ आठ आरम्भों को छोड़कर जाप करने के लिये बैठनेके अभिप्राय से होते हैं ॥

(७) प्रत्याख्यानमानकृतकायसंरम्भ (८) संज्वलनमानकृतकायसंरम्भ (९) अनन्तानुबन्धीमायाकृतकायसंरम्भ
(१०) अप्रत्याख्यानमायाकृतकायसंरम्भ (११) प्रत्याख्यानमायाकृतकायसंरम्भ (१२) संज्वलनमायाकृतकायसंरम्भ
(१३) अनन्तानुबन्धीलोभकृतकायसंरम्भ (१४) अप्रत्याख्यानलोभकृतकायसंरम्भ (१५) प्रत्याख्यानलोभकृतकायसंरम्भ
(१६) संज्वलनलोभकृतकायसंरम्भ (१७) अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितकायसंरम्भ (१८) अप्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसंरम्भ
(१९) प्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसंरम्भ (२०) संज्वलनक्रोधकारितकायसंरम्भ (२१) अनन्तानुबन्धीमानकारितकायसंरम्भ
(२२) अप्रत्याख्यानमानकारितकायसंरम्भ (२३) प्रत्याख्यानमानकारितकायसंरम्भ (२४) संज्वलनमानकारितकायसंरम्भ
(२५) अनन्तानुबन्धीमायाकारितकायसंरम्भ (२६) अप्रत्याख्यानमायाकारितकायसंरम्भ (२७) प्रत्याख्यानमायाकारितकायसंरम्भ
(२८) संज्वलनमायाकारितकायसंरम्भ (२९) अनन्तानुबन्धीलोभकारितकायसंरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारितकायसंरम्भ
(३१) प्रत्याख्यानलोभकारितकायसंरम्भ (३३) संज्वलनलोभकारितकायसंरम्भ (३३) अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतकायसंरम्भ
(३४) अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसंरम्भ (३५) प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसंरम्भ (३६) संज्वलनक्रोधअनुमतकायसंरम्भ
(३७) अनन्तानुबन्धीमानअनुमतकायसंरम्भ (६८) अप्रत्याख्यानमानअनुमतकायसंरम्भ (३९) प्रत्याख्यानमानअनुमतकायसंरम्भ
(४०) संज्वलनमानअनुमतकायसंरम्भ (४१) अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतकायसंरम्भ (४२) अप्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसंरम्भ
(४३) प्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसंरम्भ (४४) संज्वलनमायाअनुमतकायसंरम्भ (४५) अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतकायसंरम्भ
(४६) अप्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसंरम्भ (४७) प्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसंरम्भ (४८) संज्वलनलोभअनुमतकायसंरम्भ

वचनसंरम्भके अड़तालीस ॥४८॥भेद

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतवचनसंरम्भ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसंरम्भ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसंरम्भ
[४] संज्वलनक्रोधकृतवचनसंरंभ [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतवचनसंरम्भ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतवचनसंरम्भ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतवचनसंरंभ [८] संज्वलनमानकृतवचनसंरम्भ [९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतवचनसंरम्भ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतवचनसंरम्भ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतवचनसंरम्भ [१२] संज्वलनमायाकृतवचनसंरम्भ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतवचनसंरम्भ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतवचनसंरम्भ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतवचनसंरम्भ

[१६] संज्वलनलोभकृतवचनसंरम्भ [१७] अनन्तानुबंधीक्रोधकारितवचनसंरम्भ [१८] अप्रत्याख्यान क्रोधकारितवचनसंरम्भ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसंरम्भ [२०] संज्वलनक्रोधकारितवचनसंरम्भ [२१] अनन्तानुबंधीमानकारितवचनसंरम्भ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितवचनसंरम्भ [२३] प्रत्याख्यानमानकारितवचनसंरम्भ [२४] संज्वलनमानकारितवचनसंरम्भ
[२५] अनन्तानुबंधीमायाकारितवचनसंरम्भ [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितवचनसंरम्भ [२७] प्रत्याख्यानमायाकारितवचनसंरंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितवचनसंरम्भ [२९] अनन्तानुबंधीलोभकारितवचनसंरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारितवचनसंरम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितवचनसंरम्भ [३२] संज्वलनलोभकारितवचनसंरम्भ [३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतवचनसंरंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसंरंभ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसंरंभ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतवचनसंरंभ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतवचनसंरंभ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसंरंभ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसंरंभ
[४०] संज्वलनमानअनुमतवचनसंरंभ [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतवचनसंरंभ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसंरंभ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसंरंभ [४४] संज्वलनमायाअनुमतवचनसंरंभ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतवचनसंरंभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसंरंभ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसंरंभ [४८] संज्वलनलोभअनुमतवचनसंरंभ

मनसंरम्भके अड़तालीस (४८) भेद

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतमनसंरंभ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसंरंभ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसंरंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतमनसंरंभ [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतमनसंरंभ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतमनसंरंभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतमनसंरंभ [८] संज्वलनमानकृतमनसंरंभ [९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतमनसंरंभ
[१०] अप्रत्यख्यानमायाकृतमनसंरंभ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतमनसंरंभ [१२] संज्वलनमायाकृतमनसरंभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतमनसंरंभ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतमनसंरंभ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतमनसंरंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतमनसंरंभ [१७] अनन्तानुबंधीक्रोधकारितमनसंरंभ [१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसंरम्भ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसंरंभ [२०] संज्वलनक्रोधकारितमनसंरंभ [२१] अनन्तानुबन्धीमानकारितमनसंरंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितमनसंरंभ [२३] प्रत्याख्यानमानकारितमनसंरंभ (२४) संज्वलनमानकारितमनसंरंभ

[२५] अनंतानुबंधीमायाकारितमनसंरंभ [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितमनसंरंभ [२७] प्रत्याख्यानमायाकारितमनसंरंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितमनसंरंभ [२९] अनन्तानुबंधीलोभकारितमनसंरंभ [३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितमनसंरंभ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितमनसंरम्भ [३२] संज्वलनलोभकारितमनसंरंभ [३३] अनन्तानुबंधीक्रोधअनुमतमनसरंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसंरंभ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसंरंभ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतमनसंरंभ
[३७] अनन्तानुबंधीमानअनुमतमनसरंभ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतमनसंरंभ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतमनसंरंभ
[४०] संज्वलनमानअनुमतमनसंरंभ [४१] अनन्तानुबंधीमायाअनुमतमनसंरंभ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसंरंभ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसंरंभ [४४] संज्वलनमायाअनुमतमनसंरंभ [४५] अनन्तानुबंधीलोभअनुमतमनसंरंभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतमनसंरंभ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतमनसंरंभ [४८] संज्वलनलोभअनुमतमनसंरंभ

(ऐसे तीनों स्थानों के ४८, ४८, ४८, अडतालीस, अडतालीस, अडतालीस संरम्भ के १४४ भेद भये)

॥ कायसमारम्भके ४८ भेद ॥

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतकायसमारंभ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसमारंभ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसमारंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतकायसमारंभ [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतकायसमारंभ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतकायसमारंभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतकायसमारंभ [८] संज्वलन मानकृतकायसमारंभ [९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतकायसमारंभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतकायसमारंभ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतकायसमारंभ [१२] संज्वलनमायाकृतकायसमारंभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतकायसमारंभ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतकायसमारंभ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतकायसमारंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतकायसमारंभ [१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितकायसमारंभ [१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसमारंभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसमारंभ [२०] संज्वलनक्रोधकारितकायसमारंभ [२१] अनन्तानुबंधीमानकारितकायसमारंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितकायसमारंभ [२३] प्रत्याख्यानमानकारितकायसमारंभ [२४] संज्वलनमानकारितकायसमारंभ
[२५] अनन्तानुबंधीमायाकारितकायसमारंभ [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितकायसमारंभ [२७] प्रत्याख्यानमायाकारितकायसमारंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितकायसमारंभ [२९] अनंतानुबंधीलोभकारितकायसमारंभ [३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितकायसमारंभ

[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितकायसमारम्भ [३२] संज्वलनलोभकारितकायसमारम्भ [३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतकायसमारम्भ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसमारम्भ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसमारम्भ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतकायसमारम्भ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतकायसमारम्भ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतकायसमारम्भ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतकायसमारम्भ
[४०] संज्वलनमानअनुमतकायसमारम्भ [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतकायसमारम्भ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसमारंभ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसमारंभ [४४] संज्वलनमायाअनुमतकायसमारंभ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतकायसमारंभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसमारंभ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसमारंभ [४८] संज्वलनलोभअनुमतकायसमारंभ

॥ वचन समारम्भ के अडतालीस (४८) भेद ॥

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतवचनसमारंभ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसमारंभ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसमारंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतवचनसमारंभ [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतवचनसमारंभ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतवचनसमारंभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतवचनसमारंभ [८] संज्वलनमानकृतवचनसमारंभ [९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतवचनसमारंभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतवचनसमारंभ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतवचनसमारंभ [१२] संज्वलनमायाकृतवचनसमारंभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतवचनसमारंभ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतवचनसमारंभ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतवचनसमारंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतवचनसमारंभ [१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितवचनसमारंभ [१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसमारंभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसमारंभ [२०] संज्वलनक्रोधकारितवचनसमारंभ [२१] अनन्तानुबन्धीमानकारितवचनसमारंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितवचनसमारंभ [२३] प्रत्याख्यानमानकारितवचनसमारंभ [२४] संज्वलनमानकारितवचनसमारम्भ
[२५] अनन्तानुबन्धीमायाकारितवचनसमारम्भ [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितवचनसमारम्भ [२७] प्रत्याख्यानमायाकारितवचनसमारम्भ
[२८] संज्वलनमायाकारितवचनसमारम्भ [२९] अनन्तानुबन्धीलोभकारितवचनसमारम्भ [३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितवचनसमारम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितवचनसमारम्भ [३२] संज्वलनलोभकारितवचनसमारम्भ [३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतवचनसमारंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ

[३७] अनन्तानुबंधीमानअनुमतवचनसमारंभ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसमारंभ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसमारंभ
[४०] संज्वलनमानअनुमतवचनसमारंभ [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतवचनसमारंभ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसमारंभ
[४३] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसमारंभ [४४] संज्वलनमायाअनुमतवचनसमारंभ [४५] अनन्तानुबंधीलोभअनुमतवचनसमारंभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसमारंभ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसमारंभ [४८] संज्वलनलोभअनुमतवचनसमारंभ

॥ मनसमारम्भके ४८ भेद ॥

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतमनसमारंभ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसमारंभ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसमारंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतमनसमारंभ [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतमनसमारंभ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतमनसमारंभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतमनसमारंभ [८] संज्वलनमानकृतमनसमारंभ [९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतमनसमारंभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतमनसमारंभ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतमनसमारंभ [१२] संज्वलनमायाकृतमनसमारंभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतमनसमारंभ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतमनसमारंभ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतमनसमारंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतमनसमारंभ [१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितमनसमारंभ [१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसमारंभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसमारंभ [२०] संज्वलनक्रोधकारितमनसमारंभ [२१] अनन्तानुबंधीमानकारितमनसमारंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितमनसमारंभ [२३] प्रत्याख्यानमानकारितमनसमारंभ [२४] संज्वलनमानकारितमनसमारंभ
[२५] अनन्तानुबंधीमायाकारितमनसमारंभ [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितमनसमारंभ [२७] प्रत्याख्यानमायाकारितमनसमारंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितमनसमारंभ [२९] अनंतानुबंधीलोभकारितमनसमारंभ [३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितमनसमारंभ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितमतमनसमारंभ [३२] संज्वलनलोभकारितमनसमारंभ [३३] अनन्तानुबंधीक्रोधअनुमतमनसमारंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसमारंभ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसमारंभ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतमनसमारंभ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतमनसमारंभ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतमनसमारंभ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतमनसमारम्भ
[४०] संज्वलनमानअनुमतमनसमारंभ [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतमनसमारंभ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसमारम्भ

[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसमारम्भ [४४] संज्वलनमायाअनुमतमनसमारम्भ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतमनसमारम्भ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतमनसमारम्भ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतमनसमारम्भ [४८] संज्वलनलोभअनुमतमनसमारम्भ

॥ काय आरम्भ के अडतालीस (४८) भेद ॥

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतकायआरंभ
[२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतकायआरंभ
[३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतकायआरंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतकायआरंभ
[५] अनन्तानुबन्धीमानकृतकायआरंभ
[६] अप्रत्याख्यानमानकृतकायआरंभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतकायआरंभ
[८] संज्वलनमानकृतकायआरंभ
[९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतकायआरंभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतकायआरंभ
[११] प्रत्याख्यानमायाकृतकायआरंभ
[१२] संज्वलनमायाकृतकायआरंभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतकायआरंभ
[१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतकायआरंभ
[१५] प्रत्याख्यानलोभकृतकायआरंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतकायआरंभ
[१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितकायआरंभ
[१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितकायआरंभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितकायआरंभ
[२०] संज्वलनक्रोधकारितकायआरंभ
[२१] अनन्तानुबन्धीमानकारितकायआरंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितकायआरंभ
[२३] प्रत्याख्यानमानकारितकायआरंभ
[२४] संज्वलनमानकारितकायआरम्भ
[२५] अनन्तानुबन्धीमायाकारितकायआरम्भ
[२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितकायआरम्भ
[२७] प्रत्याख्यानमायाकारितकायआरम्भ
[२८] संज्वलनमायाकारितकायआरम्भ
[२९] अनन्तानुबन्धीलोभकारितकायआरम्भ
[३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितकायआरम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितकायआरम्भ
[३२] संज्वलनलोभकारितकायआरम्भ
[३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतकायआरंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायआरंभ
[३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायआरंभ
[३६] संज्वलनक्रोधअनुमतकायआरंभ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतकायआरंभ
[३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतकायआरंभ
[३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतकायआरंभ
[४०] संज्वलनमानअनुमतकायआरम्भ
[४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतकायआरम्भ
[४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतकायआरंभ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतकायआरम्भ
[४४] संज्वलमायाअनुमतकायआरम्भ
[४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतकायआरम्भ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतकायआरम्भ
[४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतकायआरम्भ
[४८] संज्वलनलोभअनुमतकायआरम्भ

वचन आरम्भके अड़तालीस ४८ भेद

(१) अनन्तानुबन्धी क्रोधकृत वचनआरम्भ (२) अप्रत्याख्यान क्रोधकृत वचनआरम्भ (३) प्रत्याख्यान क्रोधकृत वचनआरम्भ (४) संज्वलन क्रोधकृत वचनआरम्भ (५) अनन्तानुबन्धी मानकृत वचनआरम्भ (६) अप्रत्याख्यान मानकृत वचनआरम्भ (७) प्रत्याख्यान मानकृत वचनआरम्भ (८) संज्वलन मानकृत वचनआरम्भ (९) अनन्तानुबन्धी मायाकृत वचनआरम्भ (१०) अप्रत्याख्यान मायाकृत वचनआरम्भ (११) प्रत्याख्यान मायाकृत वचनआरम्भ (१२) संज्वलन मायाकृत वचनआरम्भ (१३) अनन्तानुबन्धी लोभकृत वचनआरम्भ (१४) अप्रत्याख्यान लोभकृत वचनआरम्भ (१५) प्रत्याख्यान लोभकृत वचनआरम्भ (१६) संज्वलन लोभकृत वचनआरम्भ (१७) अनन्तानुबन्धी क्रोधकारित वचनआरम्भ (१८) अप्रत्याख्यान क्रोधकारित वचनआरम्भ (१९) प्रत्याख्यान क्रोधकारित वचनआरम्भ (२०) संज्वलन क्रोधकारित वचनआरम्भ (२१) अनन्तानुबन्धीमानकारित वचनआरम्भ (२२) अप्रत्याख्यान मानकारित वचनआरम्भ (२३) प्रत्याख्यान मानकारित वचनआरम्भ (२४) संज्वलन मानकारित वचनआरम्भ (२५) अनन्तानुबन्धीमायाकारित वचनआरम्भ (२६) अप्रत्याख्यान मानकारित वचनआरम्भ (२७) प्रत्याख्यान मायाकारित वचनआरम्भ (२८) संज्वलन मायाकारित वचनआरम्भ (२९) अनन्तानुबन्धी लोभकारित वचनआरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारित वचनआरम्भ (३१) प्रत्याख्यान लोभकारित वचनआरम्भ (३२) संज्वलन लोभकारित वचनआरम्भ (३३) अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतवचनआरम्भ (३४) अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमत वचनआरम्भ (३५) प्रत्याख्यान क्रोधअनुमत वचनआरम्भ (३६) संज्वलन क्रोधअनुमत वचनआरम्भ (३७) अनन्तानुबन्धीमानअनुमत वचनआरम्भ (३८) अप्रत्याख्यान मानअनुमत वचनआरम्भ (३९) प्रत्याख्यानमान अनुमत वचनआरम्भ (४०) संज्वलन मानअनुमत वचनआरम्भ (४१) अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतवचनआरम्भ (४२) अप्रत्याख्यान मायाअनुमत वचनआरम्भ [४३] प्रत्याख्यान मायाअनुमत वचनआरम्भ [४४] संज्वलन मायाअनुमत वचनआरम्भ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमत वचनआरम्भ [४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनआरम्भ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमत वचनआरम्भ [४८] संज्वलन लोभअनुमत वचनआरम्भ

मन आरम्भके अड़तालीस ४८ भेद

परस्याजीवस्याधिकरणस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह

(१) अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतमनआरम्भ (२) अप्रत्याख्यानक्रोधकृतमनआरम्भ (३) प्रत्याख्यानक्रोधकृतमनआरम्भ
(४) संज्वलनक्रोधकृतमनआरम्भ (५) अनन्तानुबन्धीमानकृतमनआरम्भ (६) अप्रत्याख्यानमानकृतमनआरम्भ
(७) प्रत्याख्यानमानकृतमनआरम्भ (८) संज्वलनमानकृतमनआरम्भ (९) अनन्तानुबन्धीमायाकृतमनआरम्भ
(१०) अप्रत्याख्यानमायाकृतमनआरम्भ (११) प्रत्याख्यानमायाकृतमनआरम्भ (१२) संज्वलनमायाकृतमनआरम्भ
(१३) अनन्तानुबन्धीलोभकृतमनआरम्भ (१४) अप्रत्याख्यानलोभकृतमनआरम्भ (१५) प्रत्याख्यानलोभकृतमनआरम्भ
(१६) संज्वलनलोभकृतमनआरम्भ (१७) अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितमनआरम्भ (१८) अप्रत्याख्यानक्रोधकारितमनआरम्भ
(१९) प्रत्याख्यानक्रोधकारितमनआरम्भ (२०) संज्वलनक्रोधकारितमनआरम्भ (२१) अनन्तानुबन्धीमानकारितमनआरम्भ
(२२) अप्रत्याख्यानमानकारितमनआरम्भ (२३) प्रत्याख्यानमानकारितमनआरम्भ (२४) संज्वलनमानकारितमनआरम्भ
(२५) अनन्तानुबन्धीमायाकारितमनआरम्भ (२६) अप्रत्याख्यानमायाकारितमनआरम्भ (२७) प्रत्याख्यानमायाकारितमनआरम्भ
(२८) संज्वलनमायाकारितमनआरम्भ (२९) अनन्तानुबन्धीलोभकारितमनआरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारितमनआरम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितमनआरम्भ [३२] संज्वलनलोभकारितमनआरम्भ [३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतमनआरम्भ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनआरम्भ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनआरम्भ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतमनआरम्भ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतमनआरम्भ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतमनआरम्भ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतमनआरम्भ
[४०] संज्वलनमानअनुमतमनआरम्भ [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतमनआरम्भ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतमनआरम्भ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतमनआरम्भ [४४] संज्वलनमायाअनुमतमनआरम्भ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतमनआरम्भ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतमनआरम्भ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतमनआरम्भ [४८] संज्वलनलोभअनुमतमनआरम्भ

ऐसे कायसंरम्भके ४८, वचन संरम्भके ४८ मनसंरम्भके ४८ भेद देखो क्रमसे पृष्ठ २६, २७, २८ और कायसमारम्भ के ४८ भेद पृष्ठ २९, वचन समारम्भके ४८ भेद पृष्ठ ३०, मनःसमारम्भ के ४८ भेद पृष्ठ ३१ कायआरम्भ के ४८ भेद पृष्ठ ३२, वचन आरम्भके ४८ भेद पृष्ठ ३३, और मनःआरम्भ के ४८ भेद पृष्ठ ३४, सर्व मिलकर ४३२ भेद जीव अधिकरणके हुये ॥

परस्य ६।१॥ अजीवस्य ६।१॥ अधिकरणस्य ६।१॥ भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ५।१॥ आह=दूसरे अजीव अधिकरणके भेद जाननेके लिये कहते हैंकि-

॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

निर्वर्त्यत इति निर्वर्तना निष्पादना । निक्षिप्यत इति निक्षेपः स्थापना ।

सूत्रम्—निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

=निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गाः द्वि-चतुर्-द्वि-त्रिभेदाः परम् (अधिकरणम् भवन्ति)

सूत्रार्थः-निर्वर्तना-निक्षेप— =निर्वर्तना (रचना वा उत्पन्न करना) निक्षेप (=रखना,धरना, स्थापनकरना)

संयोग-निसर्गाः [1] =संयोग (=जोड़ना, मिलावना) निसर्ग (=प्रवर्तना) (यथासंख्य)

द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः[2] परम् [3]॥अधिकरणं [3]॥भवन्ति=दो-चार-दो-तीन-भेदरूप (=भेदवाला) अन्य अजीवाधिकरण है अर्थात् अजीवअधिकरणके निर्वर्तना अधिकरण, निक्षेप अधिकरण, संयोग अधिकरण और निसर्ग अधिकरण ये चार भेद हैं इन चार भेदोंमेंसे निर्वर्त्तना अधिकरण के दो, निक्षेप अधिकरणके चार संयोग अधिकरणके दो तथा निसर्ग अधिकरणके तीन भेद होते हैं (इनका विस्तार वृत्तिके अनुवादमें कियागया है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस नवमां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

निर्वर्त्यते T इति* निर्वर्तना [1]॥ निष्पादना [1]॥ =उत्पन्न किया जाता है ऐसा निर्वर्तना अर्थात् सम्पादना (=निष्पादना) है

निक्षिप्यते T इति*निक्षेपः[1]॥ स्थापना [1]॥ =रक्खा जाता है अथवा धराजाता है ऐसा धरना वा स्थापना है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसाहै,अर्थात् हमारे यहां सर्वत्रऔर सभाष्य०में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें एकहै॥

(२) द्वौ च चत्वारश्च द्वौ च त्रयश्च, द्विचतुर्द्वित्रयः, ते भेदाः एषां ते द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः इति द्वन्द्वगर्भोऽन्यपदार्थः प्रत्येतव्यः

=यहां प्रथम तो द्वन्द्वसमास होता है उसका अर्थ इस प्रकार है कि दो और चार और दो और तीन जे हैं ते द्विचतुर्द्वित्रयः कहिये; बहुरि बहुव्रीहि-समास करि भेद शब्दके साथ इनका संम्बन्ध कियाजाय तो तहां ऐसा अर्थ होता है कि 'के हैं भेद जिनके ते द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः' कहे जाते हैं। ऐसे द्वन्द्वसमास है गर्भ विषै जाके ऐसा अन्यपदार्थ वृत्तिनामा बहुव्रीहिसमास अर्थात् द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समास जानने योग्य है ॥

संयुज्यते इति संयोगः मिश्रीकृतम् निसृज्यत इति निसर्गःप्रवर्तनम् ॥ एते द्वयादिभिर्यथाक्रममभिसम्बध्यन्ते-निर्वर्तना द्विभेदा । निक्षेपश्चतुर्भेदः। संयोगो द्विभेदः । निसर्गस्त्रिभेद इति ॥ त एते भेदा अजीवाधिकरणस्य वेदितव्याः ॥ परवचनमनर्थकम्, पूर्वसूत्रे आद्यमिति वचनादिदमवशिष्टार्थं भवतीति ॥ नानर्थकम्। अन्यार्थःपरशब्दः। संरम्भादिभ्योऽन्यानि निर्वर्तनादीनि। इतरथा हि निर्वर्तनादीनामात्मपरिणामसद्भावात्

संयुज्यते T इति*संयोगः[१] (१) मिश्रीकृतम् [१]॥	=मिलाया जाता है ऐसे संयोग है अर्थात् मिश्रीकृत है।
निसृज्यते T इति*निसर्गः[१] प्रवर्तनम् [१]॥; एते [१]	=प्रवर्ताया जाता है ऐसा निसर्ग अर्थात् प्रवर्तन है। ये
द्वि-आदिभिः[३] यथाक्रमम्*अभिसम्बध्यन्ते T	=दो आदिक (संख्याओं) करि अनुक्रमसे सम्बन्धकिये जाते हैं (तब)
निर्वर्तना[१]॥ द्वि-भेदा [१]॥; निक्षेपः[१] चतुर्भेदः[१] ।	=निर्वतना दो भेद रूप है। निक्षेप चार भेदवाला है।
संयोगः[१] द्वि-भेदः [१] निसर्गः[१] त्रि-भेदः[१] इति* ।	=संयोग दो भेदरूप है। निसर्ग तीन भेदरूप है।
ते[१] एते भेदाः[३] अजीवाधिकरणस्य[६] वेदितव्याः[३],	=वे इतने भेद अजीवाधिकरणके जानना चाहिये।
पर-वचनम् [१]॥ अनर्थकम् [१]॥	=(प्रश्न) (इस सूत्रमें) पर शब्द निष्प्रयोजन है (क्योंकि)
पूर्व-सूत्रे[७]॥ आद्यम् [१]॥ इति*वचनात् [५]॥	=(इस सूत्रसे) पहिले (आठवां) सूत्रमें 'आद्यम्' ऐसा शब्द (लाने) से
इदम् [१]॥ अवशिष्ट-अर्थम् [१]॥ भवति T इति* ॥	=यह सूत्र शेष बचेहुये (अजीवाधिकरण) के लिये होता है।
न*अनर्थकम् [१]॥; अन्य-अर्थः[१] पर-शब्दः[१] ।	=उत्तर (पर शब्द) निष्प्रयोजन नहीं है। (इस सूत्रमें) 'पर' शब्द अन्य अर्थके लिये है
संरम्भ-आदिभ्यः [५] अन्यानि [१]॥	=संरम्भादिक (जीवाधिकरणके भेदों) से भिन्न
निर्वर्तनादीनि [१]॥	=निर्वतना आदिक (अजीवाधिकरणके भेद) हैं।
इतरथा*हि*	=क्योंकि (=हि) अन्यथा (अर्थात् इस नवमां सूत्र में 'परम्' शब्द न लाते तो)
निर्वर्तना-आदीनाम् [६] आत्म-परिणाम-सद्भावात्[५]	=निर्वतना आदिक जीवके परिणाम होने (के कारण) से

(१) 'बहुधा' पुस्तकोंमें 'मिश्रीकृतम्' पाठ है इस लिये हमने 'मिश्रीकृतम्' पाठ लिया है ॥ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'मिश्रीकृतः' पाठ भी आया है वह भी शुद्ध है क्योंकि मिश्रीकृत शब्द त्रिलिंगी है।

जीवाधिकरणविकल्पा एवेति विज्ञायन्ते ॥ निर्वर्तनाधिकरणं द्विविधम्, मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरण-मुत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणञ्चेति ॥ तत्र मूलगुणनिर्वर्तनं पञ्चविधम् । शरीरवाङ्मनःप्राणापानाश्च। उत्तरगुणनिर्वर्तनंकाष्ठपुस्तचित्रकर्मादि ॥ निक्षेपश्चतुर्विधः । अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरणं दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरणं

जीवाधिकरण-विकल्पाः[1] एव*इति* विज्ञायन्ते I ॥ =जीवाधिकरणके भेद ही निश्चय किये जाते (और अजीवाधिकरणके भेदोंका निश्चय न होता) ॥ 'इति' यहां पर वाक्यके पूर्णार्थ है ।

(१)निर्वर्तना-अधिकरणम्[1]॥।द्वि-विधम्[1]॥।,मूलगुणनिर्वर्तना-अधिकरणम्[1]॥।उत्तरगुण-निर्वर्तना-अधिकरणं[1]॥।च*इति*॥ =निर्वर्तना अधिकरण दो प्रकार है । मूलगुण निर्वर्तना-अधिकरण और (=च) उत्तरगुण निर्वर्तनाधिकरण ॥

तत्र* मूलगुणनिर्वर्तनम्[1]॥। पञ्चविधम् [1]॥। ; =तहां मूलगुण निर्वर्तना पांच प्रकार है (अर्थात्)

शरीर-वाङ्-मनः-प्राण-अपानाः[1] च* =(पाँच प्रकारके) शरीर-वचन-मन-उच्छ्वास(=प्राण)और निःश्वास (=अपान)हैं

उत्तरगुणनिर्वर्तनम्[1]॥। काष्ठ-पुस्त- =उत्तरगुणनिर्वर्तना काठ मट्टी पत्थर कपड़े (=पुस्त)

चित्र-कर्मादि [1]॥।; निक्षेपः[1] =चित्रकर्म इत्यादिक (का उपजावना वा रचना) है । निक्षेप (अधिकरण)

चतुर्विधः[1], अप्रत्यवेक्षित-निक्षेप-अधिकरणम् [1]॥। =चार प्रकार है । अप्रत्यवेक्षित निक्षेप अधिकरण अर्थात् विना देखे (=अप्रत्यवेक्षित) (किसी वस्तुको) निक्षेप करना वा स्थापन करना.

दुः प्रमृष्ट-निक्षेप-अधिकरणम् [1]॥। =दुः प्रमृष्ट निक्षेप अधिकरण अथवा दुः प्रमार्जित निक्षेप अधिकरण अर्थात् उत्तमतासे माजे विना वा स्वच्छ किये विना कहीं कुछ रख देना

---

(१) इस निर्वर्तना के देहतः प्रयुक्त निर्वर्तना अधिकरण [=शरीरसे कुचेष्टा उत्पन्न करना] और उपकरण निर्वर्तना अधिकरण [=हिंसाके उपकरण शस्त्रादिक की रचना करना] इस प्रकार भी दो भेद हैं ॥ (२) अप्रत्यवेक्षित = अ-प्रति-अव-ईक्षत, अ निषेध अर्थमें है, ईक्ष् देखना (भ्वादिगण आत्मनेपदी सकर्मक, सेट है) इस [ईक्ष] का भूत कृदंत ईक्षित है क्योंकि ईक्ष् धातु सेट् है । अर्थात् इ जोड़नेके पश्चात् त भूत कृदंत का चिन्ह लगाया जाताहै इसलिये ईक्ष्+इ=ईक्षित जोड़नेसे ईक्षित बना अर्थ देखा हुआ अ-लगाने से विना देखेहुये अव का अर्थ नीचे का है । इसलिये समस्त का अर्थ विना देखे हुये किसी वस्तु को नीचे स्थापन करना वा रखना होता है ॥

सहसानिक्षेपाधिकरणमनाभोगनिक्षेपाधिकरणं चेति ॥ संयोगो द्विविधः । भक्तपानसंयोगाधिकरणं चेति ॥ निसर्गस्त्रिविधः । कायनिसर्गाधिकरणं वाङ्निसर्गाधिकरणं

(१)सहसानिक्षेप–अधिकरणम्[१]॥ =सहसानिक्षेप अधिकरण अर्थात् अकस्मात् उतावलीपनसे अथवा शीघ्रतासे कहीं कुछ रख देना।

अनाभोगनिक्षेप—अधिकरणम्[१]॥ च* इति*॥ =और (=च) अनाभोग निक्षेपअधिकरण अर्थात् विनाशुद्धकिये हुये वा विना स्वच्छ किये हुये, तथा विना देखे हुये स्थानमें शरीर आदिकका रख देना॥

संयोगः[१]द्विविधः[१]भक्तपान-संयोग-अधिकरणम्[१]॥ =संयोग (अधिकरण) दो प्रकार है, भक्तपान संयोग अधिकरण वा भक्तपान (=अन्नपान) संयोजना अधिकरण अर्थात् पान भोजन को अन्य पान भोजनमें मिलावना वा परस्पर मिलावना, संक्षेपतः भोजन पानका मिलावना

उपकरण–संयोग-अधिकरणम्[१]॥ च*इति* =और (=च) उपकरण संयोग अधिकरण अर्थात् (भोजनसे भिन्न) अन्यसामिग्री वस्त्राभूषण आदि जिन वस्तुओंसे कार्य किया चाहै तिन उपकरणोंका संयोग करना अथवा मिलावना॥

निसर्गः[१]त्रिविधः[१]कायनिसर्ग–अधिकरणम्[१]॥ =निसर्ग (अधिकरण) तीन प्रकार(२) है कायनिसर्ग अधिकरण, कायका प्रवर्तन अथवा कायका प्रवर्तना अर्थात् शरीरको हिलाना चलाना

(३)वाङ्निसर्गअधिकरणम्[१]॥ =वाग् निसर्ग अधिकरण, वचनका प्रवर्तन करना, वचनका प्रवर्ताना

---

(१) अप्रमृष्टादृष्टभूमौकायादिनिक्षेपोऽनाभोगः॥
अप्रमृष्ट–अदृष्टम्–भूमौ काय–आदि–निक्षेपः अनाभोगः =विना स्वक्षकिये तथा विना देखी भूमिमें कायआदिका स्थापन वा निक्षेपन सो अनाभोगहै (२) यहां भावार्थ ऐसा जानना कि जीव अजीव द्रव्य हैं तिनके आश्रयकरि (=आधारकरि) कर्मोंका आगमन (=आस्रव) होताहै सो इन दोनों अधिकरणोंके भावोंके ये सब विशेष भेदकहेगयेहैं॥ (३) (क) अधिकरण (न०) अधि+कृ+ल्युट्। आधार। आसरा। आश्रय (जैसे न्यायाधिकरण) (ख) व्याकरण शास्त्रमें प्रसिद्धकर्ता और कर्मद्वारा क्रियाका आश्रय अधिकरणनाम कारक (अर्थात् सप्तमी विभक्ति) जैसे "गेहे स्थाल्यामन्नं पचति" =घरमें थालीमें (वह) अन्न पकाताहै इत्यादि उदाहरणमें घर कर्ता द्वारा, और थाली कर्मद्वारा परम्परासे पकानारूप क्रियाका आश्रयहै। आधारोऽधिकरणम् (अष्टाध्यायी १–४–४५ वां सूत्र)=क्रियाका जो आधार वह कारक अधिकरण संज्ञकहो। (ग) प्रभुता (घ) न्यायालय (ङ) अभियोग अभिमान (च) पूर्वोत्तरमीमांसाशास्त्रमें न्यायसमूह विषय, संशय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त, निर्णय स्वरूप पांच अंगोंके बोधन करनेहारा वाक्य समुदाय॥

मनोनिसर्गाधिकरणञ्चेति ॥ उक्तः सामान्येन कर्मास्रवभेदः ॥ इदानीं कर्मविशेषास्रवभेदो वक्तव्यः । तस्मिन् वक्तव्ये आद्ययोर्ज्ञानदर्शनावरणयोरास्रवभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयो ॥ १० ॥

मनोनिसर्ग-अधिकरणम् १॥ च * इति * उक्तः १ सामान्येन ३॥ कर्म-आस्रव-भेदः १; इदानीं * कर्म-विशेष-आस्रव-भेदः १ वक्तव्यः १ तस्मिन् १ वक्तव्ये १ आद्ययोः ३॥ ज्ञान-दर्शन-आवरणयोः ३॥ आस्रव-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थ १॥ आह

=और मनोनिसर्ग अधिकरण अर्थात् मनको प्रवर्ताना, वा मनका प्रवर्तन करना
=सामान्यकरि कर्म आस्रवका भेद कहागया। अब
=कर्मोंके विशेषकरि आस्रवके भेद कहना चाहिये।
=तिस [कर्मोंके विशेषकरि आस्रवके भेदों] के कथनमें, आदिके [दो] ज्ञानावरण
=दर्शनावरण आस्रवके भेद जाननेके लिये [अग्रिमसूत्रमें] कहते हैं कि

सूत्रम्(१)—तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

=तत्-प्रदोष-निह्नव-मात्सर्य-अन्तराय-आसादन-उपघाताः ज्ञान-दर्शन-आवरणयोः आस्रव-हेतवः भवन्ति ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—तत्-
=उस [ज्ञान दर्शन]के [विषय अथवा सम्बन्ध में] अर्थात् ज्ञान दर्शन अथवा ज्ञान दर्शनके साधनोंके तथा ज्ञान दर्शनके धारकोंके प्रति

प्रदोष—
=प्रदोष अर्थात् मोक्षके कारण तत्त्वज्ञानके कथन करने पर किसी पुरुष की प्रशंसा न की जाय और अंतरंगमें दुष्टताका परिणाम हो,

निह्नव-
=निह्नव अर्थात् ज्ञानादिका छिपावना, जानते हुये भी यह कहना कि यह मैं नहीं जानता

मात्सर्य-
=मात्सर्य अर्थात् डाह वा देने योग्य ज्ञान को न देना,

अन्तराय-
=अन्तराय अर्थात् ज्ञानका व्यवच्छेद करना वा ज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्न डालना,

आसादन-
=आसादन अर्थात् मन और वचनसे परके द्वारा प्रकाश करने योग्य ज्ञानका रोक देना,

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दिगम्बर आम्नायमें तथा श्वेताम्बर समाजके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें एक है

तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहरतः अन्तःपैशून्यपरिणामः प्रदोषः । कुतश्चित्कारणान्नास्ति न वेद्मीत्यादि ज्ञानस्य व्यपलपनं निह्नवः । कुतश्चित्कारणाद्भावितमपि विज्ञानं दानार्हमपि यतो न दीयते तन्मात्सर्यम् । ज्ञानव्यवच्छेदकरणमन्तरायः ।

उपघाताः ३ ।	=उपघात अर्थात् प्रशस्त ज्ञानमें दोष लगाना वा सराहने योग्य ज्ञानको दूषण लगावना;
ज्ञान–आवरण–	=(यदि ज्ञानके विषयमें हो तो) ज्ञानावरण कर्मके
दर्शन–आवरणयोः ५ ॥	=(और यदि दर्शनके विषय में होतो) दर्शनावरण कर्मोंके
भवन्ति T आस्रव हेतवः ३ ।	=आस्रवके कारण होते हैं ।
वृत्त्यनुवाद-तत्त्वज्ञानस्य६ ।। मोक्षसाधनस्य६ ॥	=मोक्षका कारण अथवा उपाय तत्त्वज्ञानके
कीर्तने७ कृते७ कस्यचित्*अनभिव्याहरतः७ ।	=प्रशंसा (कीर्तने) करने पर (=कृते) किसी पुरुषके विना कुछ कहे
अन्तः पैशून्य–	=अन्तरंगमें दुष्टता (=पैशून्य) का
परिणामः १ प्रदोषः १, कुतश्चित्*कारणात् ५ ॥	=परिणाम वा भाव सो प्रदोष है । किसी कारण(जैसे दूसरेका भय वा अपने प्रयोजनवश)से
न* अस्ति T न*वेद्मि T	= ऐसा नहीं है (=न अस्ति) मैं नहीं जानता हूं (=न वेद्मि)
इत्यादि १ ॥ ज्ञानस्य ६ ॥ व्यपलपनं १ ॥ निह्नवः १ ।	=इत्यादिक ज्ञान का छिपाना सो निह्नव है ।
विज्ञानं १ ॥ भावितम् १ ॥ अपि*	=शास्त्रादिकका ज्ञान (=विज्ञानं) प्राप्त भी हो (=भवितम् अपि)
दान–अर्हम् १ ॥ अपि*	=देने वा सिखाने योग्य भी हो (=दान–अर्हम्–अपि)
कुतश्चित्* कारणात् ३ ॥	=किसी कारणसे (जैसे अमुक पुरुष सीखकर मेरी बराबरी करेगा)
यतः * न* दीयते T तत् १ ॥ मात्सर्यम् १ ॥	=जिससे न दियाजाता है अथवा न सिखायाजाता है वह (परिणाम) मात्सर्य है ।
ज्ञान–व्यवच्छेदकरणं १ ॥ अन्तरायः १ ।	=ज्ञानका व्यवच्छेद करना अथवा ज्ञानमें विघ्न डालना अन्तराय है अर्थात् कोई ज्ञानका

कायेन वाचा च परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादनम्। प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः। आसादनमेवेति चेत्सतो ज्ञानस्य विनयप्रदानादिगुणकीर्तनाननुष्ठानमासादनम्। उपघातस्तु ज्ञानमज्ञानमेवेति ज्ञाननाशाभिप्राय इत्यनयोरयं भेदः॥ तच्छब्देन ज्ञानदर्शनयोःप्रतिनिर्देशःक्रियते। कथं पुनरप्रकृतयोरनिर्दिष्टयोस्तच्छब्देन परामर्शः कर्तुं शक्यः? प्रश्नापेक्षया॥ ज्ञानदर्शनावरणयोः क आस्रव इति प्रश्ने कृते तदपेक्षया

अभ्यास करताहो उसमें विघ्नकरदेना पुस्तक,पाठक,पाठशालाकेस्थानका विच्छेद करना अथवा जिसकार्य से ज्ञानका (=विद्याका) प्रचार होने वाला हो उस कार्यका विरोध करना वा बिगाड़ देना सो अन्तराय है

कायेन वाचा च *पर-प्रकाश्य-ज्ञानस्य॥ =कायसे और(=च) वचनसे अन्यके द्वारा प्रकाश कियेजानेयोग्य ज्ञानका
वर्जनम्॥ आसादनम्॥; =रोक देना (कि अभी इस विषयको मत कहो इत्यादिभाव)सो आसादन है।
प्रशस्तज्ञान-दूषणम्॥ उपघातः॥। =प्रशंसनीय ज्ञानको दूषण लगाना उपघात है।
आसादनम्॥ एव* इति* चेत्* =(दूषण लगावना)आसादन ही हुआ ऐसा संदेह है वा प्रश्न है
सतोः॥ ज्ञानस्य॥ विनय-प्रदानादि-गुण-कीर्तन- =(उत्तर) विद्यमानज्ञानका विनय, सिखावना आदिक गुण वर्णन (=गुणकीर्तन)
अन्-अनुष्ठानम्॥ आसादनं॥ तु ज्ञानं-अज्ञानं॥ एव *इति*=न करना (=अन्-अनुष्ठानम्)आसादन है परन्तु(=तु-यह कि)ज्ञान अज्ञान ही है
अर्थात् ज्ञानको कहैकि यह झूढाज्ञानहै (=अज्ञान)वा कहैकिज्ञानहीनहीं (=अज्ञान) है
ज्ञान-नाश-अभिप्रायः॥ उपघातः॥ इति* =(तथा) ज्ञानके नाशका अभिप्राय सो उपघात है इस प्रकार
अनयोः॥ अयम्॥ भेदः॥; तत्-शब्देन॥ =दोनों (आसादन तथा उपघात) में यह भेदहै। (इस सूत्रमें) तत् शब्दकरि
ज्ञान-दर्शनयोः॥ प्रतिनिर्देशः॥ क्रियते ।। =ज्ञान दर्शन (दोनों) का ग्रहण (=प्रतिनिर्देश) किया जाता है।
कथं *पुनः*अप्रकृतयोः॥ अनिर्दिष्टयोः॥ तत्-शब्देन॥ =(प्रश्न) बहुरि कैसे प्रकरण रहित और बिना कहे हुये(ज्ञानदर्शन)का तत् शब्दकरि
परामर्शः॥ कर्तुं शक्यः॥ प्रश्न-अपेक्षया॥; =उपदेश (=परामर्श) वा कथन (=परामर्श) करनेको समर्थ हो अर्थात् प्रकरण रहितका कथन कैसे किया जा सक्ता है (उत्तर) प्रश्नकी अपेक्षासे (कथन कियाहै)
ज्ञान-दर्शन-आवरणयोः॥ कः॥ आस्रवः॥; =ज्ञान दर्शनावरण कर्मोंके क्या आस्रव है।
इति *प्रश्ने॥ कृते॥ तद्-अपेक्षया॥ =इस प्रकार (शिष्यके) प्रश्न करनेपर(=कृते) उस (प्रश्न) की अपेक्षासे

तच्छब्दो ज्ञानदर्शने प्रतिनिर्दिशति ॥एतेन ज्ञानदर्शनवत्सु तत्साधनेषु च प्रदोषादयो योज्याःतन्निमित्तत्वात्॥न एते ज्ञानदर्शनावरणयोरास्रवहेतवः॥एककारणसाध्यस्य कार्यस्यानेकस्य दर्शनात् तुल्येऽपि प्रदोषादौ ज्ञानदर्शनावरणास्रवसिद्धिः ॥ अथवा-विषयभेदादास्रवभेदः॥ ज्ञानविषयाः प्रदोषादयो ज्ञानावरणस्य । दर्शनविषयाः प्रदोषादयो दर्शनावरणस्येति ॥

यथाऽनयोः कर्मप्रकृत्योरास्रवभेदास्तथा—

तद्-शब्दः[1] ज्ञान दर्शने[2]॥प्रतिनिर्दिशति ।	=(इस सूत्र में) तद् शब्द ज्ञान दर्शनको ग्रहण करता है
एतेन[3] ज्ञानदर्शनवत्सु [2]	=इस [तद् शब्द] करि ज्ञान दर्शन वाले[में]
तत्-साधनेषु [3]॥ च*	=तथा[=च] तिस [ज्ञानदर्शन] के कारणों [जैसे गुरु-पुस्तक-यतीश्वर इत्यादिकनि] में
प्रदोष-आदयः [1] योज्याः[1]	=प्रदोष-निह्नव-मात्सर्य-अन्तराय-आसादन-उपघात-लगाना चाहिये
तद्-निमित्तत्वात् [5]॥;	=क्योंकि (गुरु-पुस्तक-यतीश्वरादिक) उस [ज्ञान-दर्शन] के [=तद्] निमित्त हैं
ते[1] एते[1] ज्ञान-दर्शन-आवरणयोः[6]॥	=वे इतने (प्रदोषादिक) ज्ञान दर्शनावरण कर्मके
आस्रव-हेतवः[1]; एककारण-साध्यस्य[6]॥	=आस्रवके कारण हैं । एक कारणसे साध्य
कार्यस्य[6]॥अनेकस्य[6]॥दर्शनात्[5]॥	=अनेक कार्य दृष्टि गोचर होने से [ज्ञान विषें तथा दर्शन विषैं]
तुल्येऽपि*प्रदोष-आदौ[7]ज्ञान-दर्शन-आवरण-आस्रव-सिद्धिः[1]॥	=प्रदोषादिक समान होने पर भी ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मका =आस्रव (रूपकार्य) सिद्ध होता है अर्थात् प्रदोषादिक ज्ञान विषैं होय तैसे ही दर्शनमें होय ऐसे समानहैं तौभी दोनों कर्मका आस्रवरूप कार्य न्यारा न्यारा करतेहैं
अथवा*विषयभेदात्[5]आस्रवभेदः[1]ज्ञान-विषयाः[1]	=अथवा विषयके भेदसे आस्रव में भेद है । ज्ञान सम्बन्धी
प्रदोष-आदयः[1] ज्ञान-आवरणस्य[6]॥दर्शनविषयाः[1]	=प्रदोषादिक ज्ञानावरण कर्मके आस्रवके कारण हैं । दर्शन संबंधी
प्रदोष-आदयः[1] दर्शन-आवरणस्य[6]॥ इति*	=प्रदोषादिक दर्शनावरण कर्मके आस्रवके कारण हैं ।
यथा-अनयोः[6]॥कर्म-प्रकृत्योः[6]॥आस्रव-भेदाः[1] तथा*	=जैसे इन दोनों(ज्ञानावरण-दर्शनावरण) कर्मों की प्रकृतोंके आस्रवके भेद हैं =तैसे(दुःख-शोक इत्यादिक अग्रिमसूत्र में असातावेदनीय कर्म के आस्रव के भेद हैं।)

॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरो-भयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

पीडालक्षणः परिणामो दुःखम्। अनुग्राहकसम्बन्धविच्छेदे वैकल्यविशेषः शोकः। परिवादादिनिमित्तात्

सूत्रम्—[1]दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

=दुःख-शोक-ताप-आक्रन्दन-वध-परिदेवनानि-आत्म-पर-उभय-स्थानि-असद्वेद्यस्य-आस्रव-हेतवः-भवन्ति

सूत्रार्थः—दुःखम्-आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम् =दुःख अपने करै, अन्यके करै, तथा दोनोंके (एक साथ) उत्पन्न करै
शोकः आत्मस्थम् परस्थम्-उभयस्थम्— =शोक अपने करै, अन्य के करै, तथा दोनों के (एक साथ) उत्पन्न करै
तापः आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्— =ताप अपने करै, अन्य के करै, तथा दोनों के (एक साथ) उत्पन्न करै
आक्रन्दनम् आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्— =तीव्र पश्चाताप वा रुदन अपनेकरै, अन्यके करै,तथा दोनोंके(एक साथ)उत्पन्न करै
वधः आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम् =वध अपने करै, अन्यके करै, तथा दोनोंके एक साथ उत्पन्न करै
परिदेवनम्-आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम् =दया उत्पन्न करने वाला विलाप स्वयं करै, अन्य को करावै, तथा दोनोंको (एक साथ) उत्पन्न करावै,
असद्वेद्यस्य ६।१।। आस्रवहेतवः १।३। भवन्ति T =ये असाता वेदनीय कर्मके आस्रवके कारण होते हैं। संक्षेपतः इस प्रकार है कि दुःख, शोक, ताप,आक्रन्दन, वध, परिदेवन ये अपने करै अन्य के करै तथा दोनोंके एकसाथ उत्पन्नकरै तो इनसे असाता वेदनीय कर्मका आस्रवहोताहै

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस ग्यारहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दी अनुवाद

पीडालक्षणः १।१ परिणामः १।१ दुःखम् १।१।।; =पीडारूप परिणाम सो दुःख है।
अनुग्राहक-सम्बन्ध-विच्छेदे ७।१ वैकल्य— =उपकारी वा इष्टवस्तुके सम्बन्धके वियोग होने पर (परिणाममें) विकलता का
विशेषः १।१ शोकः १।१; परिवाद-आदि-निमित्तात् ५।१ =विशेष सो शोक है। अपवाद अथवा कलंकादिक के कारण से

(१) इस सूत्र का पाठ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायों के ग्रन्थों में एक सा है।

आविलान्तःकरणस्य तीव्रानुशयस्तापः। परितापजाताश्रुपातप्रचुरविप्रलापादिभिर्व्यक्तक्रन्दनमाक्रन्दनम्। आयुरिन्द्रियबलप्राणवियोगकरणं वधः। संक्लेशपरिणामावलम्बनं गुणस्मरणानुकीर्तनपूर्वकं स्वपरानुग्रहाभिलाषविषयमनुकम्पाप्रचुरं रोदनं परिदेवनम्॥ ननु च- शोकादीनां दुःखविशेषत्वात् दुःखग्रणमेवास्तु। सत्यमेवम्। तथापि कतिपयविशेषप्रतिपादनेन दुःखजात्यन्तरविधानं क्रियते। यथा गौरित्युक्ते अनिर्ज्ञाते विशेषे तत्प्रतिपादनार्थं खण्डमुण्डकृष्णशुक्लाद्युपादानं।

आविल-अन्तः करणस्य॥ तीव्र-अनुशयः॥ तापः॥;
परिताप-जात-अश्रुपात-प्रचुर-विप्रलाप-आदिभिः॥
व्यक्त-क्रन्दनम्॥ आक्रन्दनम्॥;आयुस्-इन्द्रिय-बल-
प्राण-वियोग-करणम्॥ वधः॥; संक्लेश-परिणाम-
अवलम्बनम्॥ गुणस्मरण-अनुकीर्तनपूर्वकम्॥ स्व-पर-
अनुग्रह-अभिलाष-विषयम्॥
अनुकम्पा-प्रचुरम्॥ रोदनम्॥ परिदेवनम्॥;

ननु *च*-शोक-आदीनाम्॥ दुःख-
विशेषत्वात्॥ दुःख-
ग्रहणम्॥ एव*अस्तु। सत्यम्॥ एवम्*तथा*अपि*कतिपय-
विशेष-प्रतिपादनेन॥ दुःख-जाति-अन्तर-विधानम्॥ क्रियते।

यथा*गौः॥ इति* उक्ते॥ अनिर्ज्ञाते॥ विशेषे॥ तत्-
प्रतिपादन-अर्थम्॥ खण्ड-
मुण्ड-कृष्ण-शुक्ल-आदि-उपादानम्॥

=अन्तरंगकी कलुषता वा गदलापनसे बहुत पश्चाताप सो ताप है।
=संतापसे उत्पन्न अश्रुपात सहित बहुत (=प्रचुर) विलाप आदिक करि
=प्रगट वा व्यक्त रूप रोदन सो आक्रन्दनहै।आयु,इन्द्रिय(पांच)(मन-वचनकाय)बल
=और प्राणका वियोग करना सो वध है। संक्लेश परिणामका
=आलम्बनकरि गुणोंका स्मरण तथा प्रशंसा पूर्वक अपने तथा अन्यके
=उपकार करने (=अनुग्रह) तथा करावने (=अनुग्रह) की वांछा सहित
=करुणा उत्पन्न करने वाला बहुरुदन सो परिदेवन है।
संक्षेपतः-ऐसा रोदन कि जिससे प्रत्येक पुरुषको दया आजाय सो परिदेवनहै।
=प्रश्नः--शोक--ताप- आक्रन्दन--वध--परिदेवन--दुःख के
=विशेष वा प्रभेद होने (के कारण)से (इससूत्रमें) केवल (=एव) दुःख शब्दका
=ग्रहण होता। (उत्तर) ऐसा (=एवम्) सत्य है। तौ भी कितनेक (=कतिपय)
=विशेषोंका कथन करनेसे दुःख जाति के भेदोंका (=अन्तर) निर्णयकियाहै।
अर्थात् कितने ही विशेष कहने से दुःख जातिका ज्ञान कराया गया है।
=जैसे गऊ ऐसा कहनेमें विशेष नजानने पर उस (विशेष) के
=जनावने वा कहनेके लिये खांडी अर्थात् वह गऊ जिसका कोई अवयव टूटा हो
=मूंदी अर्थात् मंजी गऊ, काली गऊ धौली वा श्वेत गऊ आदिक का ग्रहण

क्रियते, तथा दुःखविषयास्रवासंख्येयलोकभेदसम्भवात् दुःखमित्युक्ते विशेषानिज्ञानात्कतिपयविशेषनिर्देशेन तद्विशेषप्रतिपत्तिः क्रियते ॥ तान्येतानि दुःखादीनि कोधावेशादात्मस्थानि भवन्ति परस्थान्युभयस्थानि च ॥ एतानि सर्वाण्यसद्वेद्यास्रवकारणानि वेदतव्यानि ॥ अत्र चोद्यते-यदि दुःखादीन्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानि, किमर्थमार्हतैः केशलुञ्चनानशनातपस्थानादीनि दुःखनिमित्तान्यास्थीयन्ते परेषु च प्रतिपाद्यन्ते ? इति ॥

क्रियते I तथा*दुःख-विषय-आस्रव-असंख्येय-लोक-भेद-सम्भवात्[१] दुःखम्[१]॥ इति*उक्ते [१]॥ विशेष-अनिर्ज्ञानात् [५]॥ कतिपय-विशेष-निर्देशेन[१] तद्-विशेष-प्रतिपत्तिः[१]॥ क्रियते T (१)तानि[३]॥ एतानि[३] 'दुःखादीनि[३]॥ क्रोध-आवेशात्[५] आत्मस्थानि[३]॥ भवन्ति T परस्थानि [३]॥ उभयस्थानि [३]॥ च* ॥ एतानि[३]॥ सर्वाणि[३]॥ असद्वेद्य-आस्रव-कारणानि[३]॥ वेदितव्यानि[३]॥ अत्र*चोद्यते T यदि*दुःखादीनि[३]॥ आत्मपरउभय—स्थानि [३]॥ असद्वेद्य-आस्रव—निमित्तानि[३]॥, किम्[१]॥ अर्थम्[१]॥ आर्हतैः[३] केश-लुञ्चन-अनशन-आतपस्थान-आदीनि[३]॥ दुःखनिमित्तानि[३]॥ आस्थीयन्ते T परेषु[७] च* प्रतिपाद्यन्ते T इति* ॥

=किया जाता है। तैसे दुःख सम्बन्धी आस्रवके असंख्यात लोक प्रमाण
=भेद सम्भवहोनेसे दुःख ऐसा कहनेमें
=विशेष न जानने (केहेतु) से कितनेई भेद (=विशेष) निर्देश करि
=उस (दुःख) के भेदोंका (=विशेष) ज्ञान (=प्रतिपत्ति) कियागया है।
=ये दुःखादिक क्रोध (परिणाम) के आवेशसे (ये दुःखादिक)
=आत्मसंस्थ अर्थात् अपनेमें स्थितिहोते हैंअन्यमेंसंस्थ अर्थात् दूसरेमें स्थितिहोते हैं
=और (=च) दोनों (अपने तथा पर) में संस्थ होते हैं ।
=ये (दुःख-शोक-ताप-आक्रंदन-वध-परिदेवन) समस्त
=असातावेदनीयकर्मके आस्रवके हेतु जानना योग्य है ॥
=यहां तर्ककी जातीहै कि यदि दुःखादिक अपनेमें परमें तथादोनों(आपतथापर)में
=स्थितिशील होकर असाता वेदनीयकर्मके आस्रवके
=कारण हैं तो किसलिये अर्हन्तमतको माननेवालोंके द्वारा केशोंका लोंच
=अनशन(तप)आताप योगका धारण आदिक दुःख के कारण (अपने में)
=किये जाते हैं और (=च) दूसरो में उपदेश दिये जाते हैं ? इति ॥

---

(१)"कान्येतानि दुःखादीनि ? सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके प्रथम संस्करणके पृष्ठ ३२५ में यह पाठहै परन्तु उसकी द्वितियावृत्तिमें तथा अन्य हस्त लिखित चार प्रतियोंमें 'तान्येतानि दुःखादीनि' पाठ है तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २५६ पर 'तानि दुःखादीनि'; तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५१ पर तान्या (मपरोमयस्थानि क्रोधाद्यावेशवशाद्भवन्ति) पाठ है ॥ पं० जयचन्दरजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४६६ पर अनुवाद इस प्रकार है कि ते ऐसे दुःखादिक (क्रोधादिक परिणामनितै आप विषै भी होय है) उपर्युक्त से स्पष्ट है कि प्रथमाप्रति में तानि के स्थान में कानि ? अशुद्ध है

नैष दोषः-अन्तरङ्गक्रोधाद्यावेशपूर्वकाणि दुःखादीन्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानीति विशेष्योक्तत्वात् ॥ यथा कस्यचिद्भिषजः परमकरुणाशयस्य निःशल्यस्य संयतस्योपरिगण्डं पाटयतो दुःखहेतुत्वे सत्यपि न पापबन्धो बाह्यनिमित्तमात्रादेवभवति । एवं संसारविषयमहादुःखादुद्विग्नस्य भिक्षोस्तन्निवृत्त्युपायं प्रति समाहितमनस्कस्य शास्त्रविहिते कर्मणि प्रवर्तमानस्य

न*एषः१दोषः२अन्तरङ्ग-क्रोधादि-आवेश-पूर्वकाणि३॥दुःखादीनि १॥असद्वेद्य-आस्रव-निमित्तानि३॥इति*विशेष्य-उक्तत्वात् ४॥

= (उत्तर) यह दूषण नहीं है। आभ्यन्तर क्रोधादिक परिणामोंके
= आवेश पूर्वक दुःखादिके असाता वेदनीयकर्मकेआस्रवकेनिमित्त हैं
= इस प्रकार विशेष कथन होने से(पूर्वोक्त दुःखादिक अपनेमें परमें तथा आप पर दोनोंमें करने कराने पर असाता वेदनीय कर्मके आस्रवके निमित्त हैं)। भावार्थ केशलोंच करनेमें, अनशनतप करनेमें तथा आताप योग इत्यादिक धारणकरनेमें आत्माके अन्तरंग क्रोधादिके वशसे दुःखादिक नहीं होते हैं इसलिये ये दुःखादिक असातावेदनीय कर्मके आस्रवके हेतु नहीं है परन्तु पूर्वोक्त केशलुञ्चन आदिको छोड़कर अन्य दुःखादिक होनेके कारण आत्माके क्रोधादिक परिणाममें ग्रसित होनेसे असातावेदनीय कर्मोंके आस्रवके कारण होते हैं इन दोनों में यही अन्तर वा भेद है।

यथा*कस्यचित्*भिषजः१परमकरुणा-आशयस्य१निःशल्यस्य१संयतस्य१उपरि-गण्डम् १पाटयतः१दुःखहेतुत्वे१॥सति१॥अपि*बाह्य-निमित्तमात्रात्१॥एव*न*पापबन्धः१भवति१;एवम्*संसारविषय-महादुःखात्१॥उद्विग्नस्य१भिक्षोः१तत्-निवृत्ति-उपायम्१प्रति* समाहितमनस्कस्य१शास्त्रविहितेषु१॥कर्मणि १॥प्रवर्तमानस्य१

= जैसे किसी परमदयावान् अभिप्रायधारक और शल्य रहित वैद्यके
= संयमी पुरुषके फोड़ेको काटनेवाले वा छेदनेवालेके वा चीरनेवालेके
=(संयमीपुरुषके)दुःखका कारण होने पर भी केवल बाह्य निमित्तसे ही
=पाप बन्ध नहीं होता है। इसीप्रकार संसारसम्बन्धी महादुःख से
=घबराया हुआ मुनिके उस(संसारविषय महादुःख)के अभावकरनेके
=उपाय प्रति लगा हुआहै मन जिसका,शास्त्रोक्त विधान(अनशनादिक)
=क्रियाविषै(=कर्मणि) प्रवर्तावने वालेके (वा स्वयंप्रवर्तनेवालेके)

(१*भिषज्की उपमामें वर्तमानस्य शब्दी समभिरूढ प्रवर्तावने वालेके अर्थमें है जैसाकि वर्तनाका अर्थ अ०५ सूत्र२२ में है। उपलक्षणसे प्रवर्तनेवाला भी है।

संक्लेशपरिणामाभावात् दुःखनिमित्तत्वे सत्यपि न पापबन्धः ॥ उक्तञ्च—न दुःखं न सुखं यद्वद्धेतुर्दृष्टश्चिकित्सिते ॥ चिकित्सायां तु युक्तस्य स्यात् दुःखमथवा सुखम् ॥१॥ न दुःखं न सुखं तद्वद्धेतुर्मोक्षस्य साधने ॥ मोक्षोपाये तु युक्तस्य स्यात् दुःखमथवा सुखम् ॥ २ ॥ उक्ता असद्वेद्यास्रवहेतवः सद्वेद्यस्य पुनः क इत्यत्रोच्यते—

संक्लेश-परिणाम-अभावात्[हेतु]दुःखनिमित्तत्वे[सति]अपि*=संक्लेश परिणामके अभावसे [बाह्यमें] दुःखके निमित्तपना होनेपर भी
न* पापबन्धः[हेतु]
=पाप बन्ध नहीं होता है । अर्थात् जैसे कोई वैद्य दयाके अभिप्रायसे किसी रोगी का गूमड़ा वा अन्य फोड़ा चीरता है यद्यपि गूमड़ा चीरनेसे उस रोगीको दुःख पहुँचता है और बाह्यमें उस दुःखका कारण पूर्वोक्त वैद्य है तो भी अन्तरंग अभिप्राय वैद्यका उसको निरोग करने का है इसलिये उस वैद्यके पापबन्ध नहीं होता है तैसे ही संसारके विषयरूप महादुःखोंमें पड़राये हुये और उस दुःखको निवारणके लिये उद्यमी मुनिको शास्त्रोक्त विधानसे अनशन-केशलुञ्चन-कायक्लेश क्रिया विषैं प्रवर्तावने वाला है यद्यपि वह पूर्वोक्त मुनिको बाह्यमें दुःख का कारण है तोभी पापबन्ध नहीं होता है क्योंकि प्रवर्तावनेवालेके संक्लेश परिणाम नहीं हैं।

उक्तम्[हेतु] च*–न* दुःखं[हेतु]न* सुखम्[हेतु] यद्वत्* =कहा भी गया है कि जैसे (=यद्वत्) न दुःख न सुख
हेतुः[हेतु] दृष्टः[हेतु] चिकित्सते[हेतु];
=रोगके उपाय कियेजाने में वा रोगके प्रतिकारमें [=चिकित्सते]हेतु देखे जाते हैं
चिकित्सायां[हेतु]तु*युक्तस्य[हेतु]स्यात् दुःखं[हेतु]। अथवासुखं[हेतु]=चिकित्सामेंतो(=तु)रोगीको(=युक्तस्य)दुःखहोवासुखहो(रोगकीचिकित्सानोहोगीहीं)
न*दुःखं[हेतु]न*सुखं[हेतु]तद्वत्*हेतुः[हेतु]मोक्षस्य[हेतु]साधने[हेतु]; =तैसे (=तद्वत्) (संसारसे छूटनेके लिये) मोक्षके साधनेमें दुःख सुख (दोनों भी)
कारण नहीं है और
मोक्ष-उपाये[हेतु]तु*युक्तस्य[हेतु]स्यात्T दुःखं[हेतु]अथवासुखम्[हेतु]=मोक्षके उपाय में तौ योगी के (=युक्तस्य)दुःख हो वा सुख (करना ही पड़ेगा)
भावार्थ जैसे वैद्यका अभिप्राय रोगीको निरोग करनेकाहै रोगकी चिकित्सा करनेमें उस रोगीको दुःख हो अथवा सुख तैसे संसार दुःख मेटि मोक्ष प्राप्त करने का अभिप्राय वालों कें सुख हो अथवा दुःख मोक्ष के लिये उपाय करना ही पड़ेगा

उक्ताः[हेतु] असत्-वेद्य-आस्रव-हेतवः[हेतु]
=आसाता वेदनीय कर्मके आस्रवके कारण कहेगये
सद्वेद्यस्य[हेतु]पुनः*कः[हेतु] इति* अत्र*उच्यते T
=फिर साता वेदनीयके (आस्रवके हेतु)कौन हैं ऐसा प्रश्न(होनेपर) कहा जाताहै कि

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगःक्षान्तिःशौचमितिसद्वेद्यस्य

=(१) भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादि योगः क्षान्तिः शौचमिति(सद्वेद्यस्यासूव हेतवःभवन्ति)

सूत्रार्थः—भूत-वृति-अनुकम्पादान-(भूतेषु वृतिषु च अनुकम्पा-दान) =प्राणियोंमें,व्रतके धारकोंमें दया वा कृपादृष्टि, दानदेना

सरागसंयमादियोगः (=सरागसंयमादीनाम् योगः) =सरागसंयमियों आदिकका अनिन्द्यआचरण (=योग)

आदीनाम्योगः= [क संयमासंयमयोग[ख]अकाम निर्जरायोग[ग]बालतपयोग =संयमासंयमका, अकामनिर्जराका,बालतपका अनिंद्य आचरण अर्थात् दुष्टकर्मोंको नष्टकरनेमें रागसहित संयमीका अनिंद्य आचरण वा रागसहित संयम पालनेवालेका निर्दोषआचरण सो सराग संयमी है और

(क) एक देश त्याग करनेका ले तथा विषयोंमें बिना प्रयोजन ही त्याग करनेवाले ऐसे संयमासंयमीका निर्दोष आचरण

(ख) अपनेअभिप्रायसे त्याग नहीं करके पराधीनतासे भोगोपभोगका निरोधकरनेवाले अकाम निर्जरावालेका अनिंद्य आचरण

(ग) तत्त्वों के यथार्थ स्वरूपसे अनभिज्ञ मिथ्या दृष्टिके तपका (प्रत्यक्षमें) दोषरहित आचरण

क्षांतिः $\frac{1}{2}$। शोचम् $\frac{1}{2}$॥ इति* =क्षमा, लोभकात्याग (=शौच) और ऐसे अन्य भाव,क्रियायें (जैसे पूजन,मुनियोंकी वैयावृत्त्य,विनय,योगोंकी सरलता आदि

सद्वेद्यस्य$\frac{1}{2}$॥ आस्रव-हेतवः $\frac{1}{3}$। भवन्ति =साता वेदनीय (कर्म) के आस्रवके, कारण हैं

अर्थात् इनसे साता वेदनीय कर्मका आस्रव होता है

---

(१) दिगम्बर सम्प्रदायकी बहुतसी प्रतियोंमें " भूतव्रत्यनुकम्पादानसराग संयमादियोगः क्षान्तिशौच मिति सद्वद्यस्य " ॥ १२ ॥ पाठ है अर्थात् " भूतव्रत्यनुकम्पाके स्थानमें" भूतवृत्यनुकम्पा है 'क्षान्तिशौचम्' समासरूपमें हैं परन्तु हमारी समाजमें अर्थ भेद नहीं है तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रितमें 'भूतव्रत्यनुकंपादान सराग संयमादि योगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्य पाठ है॥ भूतव्रत्यनुकम्पा और ' भूतव्रत्यनुकम्पा ' का एक ही अर्थ है क्योंकि 'अचोरहाभ्याम् द्वे वा' (८-४-४६ सूत्रसे) र् ह् से पहिले कोई स्वर हो और पश्चात् में हके अतिरिक्त कोई व्यंजन हो तो वह व्यंजन विकल्पकर के दुहरा होजाता है जैसे व्रति + अनुकम्पा = व्रत्यनुकम्पा अथवा व्रत्यनुकम्पा दोनों ही रूप ठीक हैं ।

(१) श्वेताम्बर संप्रदायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'में यह सूत्र''भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१३॥ इस प्रकार पाया जाता है॥ उक्त आम्नायकी'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका' में'कम्पा'के स्थान में'कंपा'है शेष पाठ एक है॥ अर्थ ऐसा है कि

तासु तासु गतिषु कर्मोदयवशाद्भवन्तीति भूतानि प्राणिन इत्यर्थः। व्रतान्यहिंसादीनि वक्ष्यन्ते, तद्वन्तो व्रतिनः॥ ते द्विविधाः। अगारम्प्रतिनिवृत्तौत्सुक्याः संयताः, गृहिणश्च संयतासंयताः। अनुग्रहार्द्रीकृतचेतसःपरपीडामात्मस्थामिव कुर्वतोऽनुकम्पनमनुकम्पा।भूतेषु व्रतिषु चानुकम्पा भूतव्रत्यनुकम्पा।परानुग्रहबुद्ध्यास्वस्यातिसर्जनंदानम्। संसारकारणनिवृत्तिम्प्रत्यागूर्णोऽक्षीणाशयः

वृत्त्यनुवाद-तासु॥तासु॥गतिषु॥कर्म-उदय- =तिनतिन गतियोंमें अर्थात् नरकादि गतियोंमें कर्मके उदयके
वशात्॥भवन्ति I इति*भूतानि॥प्राणिनः॥इति* =वशसे होते हैं (=वर्तते हैं) ऐसे जीव वा प्राणी हैं इस प्रकार
अर्थः॥;व्रतानि॥। अहिंसा-आदीनि॥। वक्ष्यन्ते I; =अर्थ हुआ। अहिंसादिक व्रत कहेजायंगे [अध्याय ७ सूत्र १]
तद्वन्तः॥व्रतिनः॥;ते॥ द्विविधाः॥; =तिन [व्रतों] को धारण करने वाले सो व्रती हैं। ते (व्रती) दो प्रकार हैं
अगारम्॥। प्रति*निवृत्त-औत्सुक्याः॥ संयताः॥ =घरकेलिये वा घरकी ओरसेदूरहोगईहैउत्कन्ठा इच्छावा लालसा जिनकी वेसंयमीवा मुनिहैं
गृहिणः॥ च*संयतासंयताः॥; =और (=च) गृहस्थ वा अणुव्रतधारी हैं वे संयमासंयमी वा श्रावक हैं
अनुग्रह-आर्द्रीकृत-चेतसः॥परपीडाम्॥। =उपकार विषै भीगरहा है चित्त जिनका अन्यकी पीड़ाको
आत्मस्थाम्॥।इव* कुर्वतः॥ अनुकम्पनम्॥। =अपने हुई के तुल्य माननेवालेके करुणा भाव हो
अनुकम्पा॥।भूतेषु॥ व्रतिषु॥ च*अनुकम्पा॥। =सो अनुकम्पा है। प्राणियों विषै और[=च]व्रतिनविषै करुणाभाव दया वा कृपादृष्टि
भूत-व्रतिन्-अनुकम्पा॥।पर-अनुग्रह-बुद्ध्या॥। =सो भूत व्रत्यनुकम्पा है। पर के उपकार (=परानुग्रह) की बुद्धि करि
स्वस्य॥। अतिसर्जनम्॥। दानम्॥।; =धन(आदिक)का(=स्वस्य) देना(=अतिसर्जन)सो दान है अर्थात् परके भला करने की बुद्धि से अपना धन और औषधि,विद्या,अभय आदिक प्रदान करना सो दान है
संसार-कारण-निवृत्तिम्॥। प्रति*आगूर्णः॥। =संसार के कारण(द्रव्यकर्म भावकर्म)के अभाव करनेके लिये(=निवृत्तिम्प्रति)उद्यमी और
अक्षीण-आशयः॥ =राग भाव का नष्ट नहीं होना

भूत-व्रति-अनुकम्पा दानं सरागसंयम- =प्राणियों और व्रतियों पर दया पालना [=दान] और सराग संयम
आदि योगः क्षांतिः शौचम्॥ =संयमासंयम अकामनिर्जरा, बालतप, और योग, क्षांति, शौच
इति सद्वेद्यस्य [आस्रव हेतवः भवन्ति] =ये [सब] साता वेदनीयके आस्रवके कारण हैं
श्वेताम्बर आम्नायमें यहां दानको साता वेदनीयके आस्रवका हेतु नहीं माना योगका एक पृथक् कारण उक्त आस्रवका माना है।

सराग इत्युच्यते। प्राण्यिन्द्रियेष्वशुभप्रवृत्तेर्विरतिः संयमः। सरागस्य संयमः सरागो वा संयमः सरागसंयमः। आदिशब्देन संयमासंयमाकामनिर्जराबालतपोऽनुरोधः। योगः समाधिः सम्यक्प्रणिधानमित्यर्थः॥ भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादीनां योगः भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः। क्रोधादिनिवृत्तिः क्षान्तिः। लोभप्रकाराणामुपरमः शौचम्॥ इतिशब्दः प्रकारार्थः। के पुनस्ते प्रकाराः?। अर्हत्पूजाकरणपरताबालवृद्धतपस्विवैयावृत्त्यादयः॥

सरागः[1]इति*उच्यते T। प्राणिन्-इन्द्रियेषु[2]॥ अशुभ-प्रवृत्तेः[3]। विरतिः[4]। संयमः[5]; सरागस्य[6] संयमः[7] वा*सरागः[8] संयमः[9] सरागसंयमः। आदि-शब्देन[10] संयमासंयम-अकामनिर्जरा-बालतपस्-अनुरोधः[11]; सम्यक्-प्रणिधानम्[12]॥ योगः[13] समाधिः[14] इति-अर्थः[15]॥

=सो सराग इस प्रकार कहा गया है। प्राणी तथा इन्द्रियनिविषैं अशुभ
=वृत्तिका त्याग (=विरतिः) सो संयम है। (पूर्वोक्त) सरागीका संयम
=अथवा रागसहितसंयम सो सरागसंयमहै (इस बारहवां सूत्रमें) आदिवचनकरि
=संयमासंयम-अकामनिर्जरा-और बालतपका ग्रहण होता है
=भले प्रकार चित्तका बांधनाहै सो योग (वा) समाधिहै ऐसा तात्पर्य्य है अर्थात् चित्तको हेयरूप पदार्थोंसे हटाकर ज्ञेयरूप पदार्थोंमें लगावना सो योग वा समाधिहै॥

भूत-व्रतिन्-अनुकम्पा-दान-सरागसंयमादीनाम्[1]। योगः[2] भूत-व्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः[3]।

=भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सरागसंयमादिकनिका अनिन्द्य आचरण (=योग)
=सो भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग (ऐसा समासरूप वाक्य) हुआ।

क्रोधादि-निवृत्तिः[1]॥ क्षान्तिः[2]॥; लोभ-प्रकाराणाम्[3]। उपरमः[4]

=क्रोधादिकका अभाव सो क्षान्ति वा क्षमा है। लोभ के
=भेदोंकात्याग अर्थात् प्रकार प्रकारके लोभोंका त्याग वा छोड़ना (जैसे जीवनेका लोभ, निरोगरहनेकालोभ, इन्द्रीवनेरहनेकालोभ, उपकरणवनेरहनेकालोभइत्यादिहै)सो

शौचम्[1]॥। इतिशब्दः[2] प्रकार-अर्थः[3]

=शौचहै (इस सूत्रमें) इति शब्द प्रकार अर्थमें है अर्थात् पूर्वोक्त अनुकम्पा दान, योग, क्षान्ति, शौच के अतिरिक्त और भी ऐसी क्रियायें हैं जो साता वेदनीय कर्मके आस्रव के कारण हैं।

के[1] पुनः*ते[2] प्रकाराः[3]। अर्हत्-पूजाकरण-परता-बाल-वृद्ध-तपस्विन्-वैयावृत्ति-आदयः[4]॥

=बहुरि ते प्रकार वा भेद क्या हैं। अरहंतकी पूजा करने विषैं तत्परता
=बाल-वृद्ध तपास्वियों वा मुनियों की वैयावृत्ति (=टहल)
=आदिक (सातावेदनीय कर्मके आस्रव के कारण) हैं

भूतग्रहणात् सिद्धे व्रतिग्रहणं तद्विषयानुकम्पाप्राधान्येख्यापनार्थम्॥ त एते सद्वेद्यस्यास्रवा ज्ञेयाः॥ अथतदनन्तरोद्देशभाजोमोहस्यास्रवहेतौवक्तव्ये तद्भेदस्यदर्शनमोहस्यास्रवहेतुप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते

॥(१) केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

निरावरणज्ञानाः केवलिनः ।

भूत-ग्रहणात्[1]॥सिद्धेः[2]॥व्रतिन्-ग्रहणम्[3]॥तद्-विषय=(इस सूत्रमें)भूतशब्दके लानेसे व्रतियोंका ग्रहण सिद्ध है। (उत्तर) उन(व्रतिनि) में

अनुकम्पा-प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम्[4]॥; =दयादृष्टि का प्रधानपना जतावनेके लिये(व्रतिन् शब्द का सूत्रमें ग्रहण किया गया)है अर्थात् संपूर्ण प्राणीमात्र के ऊपर दया वा कृपा दृष्टि सामान्यपनेसे तथा अगारी अथवा अनगारी व्रतियोंपर विशेषतासे अनुकम्पा करना चाहिये॥

ते[1]एते[2]सद्वेद्यस्य[3]॥आस्रवाः[4] ज्ञेयाः[5]अथ*तद्- =ते इतने सातावेदनीय[कर्म] केआस्रवजाननेचाहिये(=ज्ञेयाः)अब उस(वेदनीय कर्म)के

अनन्तर-उद्देशभाजः[6] मोहस्य[7] आस्रव-हेतौ[8] =लगताही वा निकट कहागया मोहनीयकर्मके आस्रवके कारणके

वक्तव्ये[9] तद्-भेदस्य[1] दर्शनमोहस्य[2] आस्रवहेतु- =कथनमें उस (मोहनीयकर्म) का भेद दर्शनमोहनीयके आस्रवके कारणोंके

प्रदर्शन-अर्थम्[3]॥ इदम्[4]॥ उच्यते T =दिखावनेके लिये यह (उत्तर सूत्र में) कहा जाता है कि

केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥

=केवलिनःअवर्णवादः,श्रुतस्य अवर्णवादः,सङ्घस्य अवर्णवादः,धर्मस्य अवर्णवादः,देवस्य अवर्णवादः,दर्शनमोहस्य-आस्रवहेतवःभवन्ति॥

सूत्रार्थः—केवलिनः[1]अवर्णवादः[2],श्रुतस्य [3]॥ =अर्हत् भगवानके अनछते वा अविद्यमान दोषका आरोपन, शास्त्रके

अवर्णवादः [1], सङ्घस्य[2] =अविद्यमान दूषण का संस्थापन, (चार प्रकार के मुनियोंके) समूह के

अवर्णवादः[1],धर्मस्य [2] =न होते हुये दोष को प्रकट करना, [पञ्चमहाव्रत साधनीभूत] धर्मकी

अवर्णवादः[1], देवस्य[2] अवर्णवादः[3] =निंदाकरना(भवन वासीआदि चतुर्विध)देवके अविद्यमान दोषोंका आरोपण (येसब)

दर्शनमोहस्य [1] आस्रव-हेतवः[2] भवन्ति T =दर्शन मोहनीय कर्मके आस्रवके कारण होते हैं

वृत्त्यनुवादः-निरावरणज्ञानाः[1] केवलिनः[2] =निरावरणज्ञान वाले केवली भगवान हैं अर्थात् समस्त ज्ञानावरण कर्मका अत्यन्त क्षयसे अतीन्द्रिय(क्रम रहित)त्रिकालवर्ती व्यवधान(=रोक)रहित ज्ञान संयुक्त केवली हैं

(१) इस सूत्रका पाठ और प्र ं दोनों दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या चौदहवीं है॥

तदुपनिष्टं बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतं ग्रन्थरचनं श्रुतं भवति। रत्नत्रयापेतः श्रमण-गणः संघः। अहिंसालक्षणस्तदागमदेशितो धर्मः। देवाश्चतुर्णिकाया उक्ताः। गुणवत्सु महत्सु असद्भू-तदोषोद्भावनमवर्णवादः॥ एतेष्ववर्णवादो दर्शनमोहस्यास्रवहेतुः। कवलाभ्यवहारजीविनः केवलिन इत्येवमादिवचनं केवलिनामवर्णवादः। मांसभक्षणाद्यभिधानं श्रुतावर्णवादः।

तद्—उपदिष्टम्[१]॥ बुद्धि—अतिशय—ऋद्धि—	=उस (केवली भगवान्) का उपदेश्या हुआ, बुद्धि के अतिशय ऋद्धिकरि
युक्त-गणधर-अनुस्मृतम्[१]॥ ग्रन्थरचनम्[१]॥	=संयुक्त गणधरसे अनुस्मरण कियाहुआ ग्रन्थरचनारूप
श्रुतम्[१]॥ भवति T।	=श्रुत अथवा शास्त्र है (=भवति)
रत्नत्रय—उपेतः[१] श्रमणगणः[१] [1] संघः[१]।	=(सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र)रत्नत्रयसहित(चारप्रकारके) मुनियोंकासमूहसोसंघहै।
अहिंसालक्षणः[१] तद्—आगम—	=उस (सर्वज्ञ) के आगमके अहिंसा लक्षण संयुक्त
देशितः[१] धर्मः[१]; देवाः[३] चतुर्णिकायाः[३]	=आज्ञानुसार हो (=देशितः) सोधर्म है। देवताचार समूह वा संघ संयुक्त
उक्ताः[३]; गुणवत्सु[२] महत्सु[२]	=वर्णित हो चुके हैं (अध्याय ४ सूत्र १ देखो)। गुणवान और महंत (पुरुष) निमें
असद्भूत-दोष-उद्भावनम्[१]॥ अवर्णवादः[१] ॥	=अनछता वा बिनाहोते वा अविद्यमान दूषणका आरोपन सो अवर्णवाद है
एतेषु[३] अवर्णवादः[१]	=इन(केवलीभगवान्-शास्त्र-मुनियोंका संघ-धर्म-देव) में अवर्णवाद है
दर्शनमोहस्य[६] आस्रवहेतुः[१]। कवल—अभ्यवहार—	=सो दर्शनमोहनीयकर्मके आस्रवका कारण है। ग्रास(=कवल) केभोजनसे(=अभ्यवहार)
जीविनः[६] केवलिनः[१] इत्येवम्*आदि[१]॥ वचनम्[१]॥	=जीनेवाले केवली (भगवान्) हैं इत्यादिक कथन
केवलिनाम्[६] अवर्णवादः[१]; मांस—भक्षण-	=केवलियों का निंदाप्रवाद है। (शास्त्रविषें] मांस भक्षण वा मांसखाने
आदि-अभिधानम्[१]॥ श्रुत—अवर्णवादः[१]	=आदिक का कथन सो शास्त्रका निन्दाप्रवाद है अर्थात् श्रुत(कें)ऐसा दोष लगाना कि शास्त्र विषें मांस भक्षण मधुभक्षण, मदिरापान और कामातुर कें मैथुन सेवन और वेदनासे पीड़ित के रात्रि भोजन इत्यादिक निर्दोष कहाहै इसप्रकार श्रुतमें अविद्यमान दूषण लगाना सो श्रुत अवर्णवाद है।

१) "तहां संघ कहतां रत्नत्रयकरि सहित च्यारि प्रकारके मुनिकं संघ कह्याहै। तहां मुनि कहिये अवधि,मनःपर्ययज्ञानी,ऋषि कहिये ऋद्धि जिनको फुरी होय, यति कहिये इन्द्रियके जीतन हारे, अनगार कहिये सामान्य साधु संत ऐ च्यार भेद हैं" पं० जयचन्द्रजी कृता वचनिका पृष्ट ५०४, ५०५

शूद्रत्वाशुचित्वाद्याविर्भावना सङ्घावर्णवादः । जिनोपदिष्टो धर्मो निर्गुणस्तदुपसेविनो ये ते चासुराभविष्यन्तीत्येवमभिधानं धर्मावर्णवादः । सुरामांसोपसेवाद्याघोषणंदेवावर्णवादः ॥ द्वितीयस्य मोहस्यास्रवभेदप्रतिपादनार्थमाह—

॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

शूद्रत्व–अशुचित्व–आदि–आविर्भावनाः॥ (१) संघ–अवर्णवादः॥ ।

=(चार प्रकार के महा मुनियोंके प्रति) शूद्रपना, अपवित्रपना, आदिक प्रगट करना =सो संघका अवर्ण वाद वा निंदा प्रवाद है अर्थात् मुनियोंको शूद्रकहना अपवित्र कहना निर्लज्जकहना इनको यहां ही इतना दुख भोगना होताहै तो पर लोक में कैसे सुखको प्राप्त हो सक्ते हैंसो मुनियोंके संघको अविद्यमान दूषणका लगानाहै

जिन–उपदिष्टः॥ धर्मः॥ निर्गुणः॥ च* तद्–उपसेविनः॥ ये॥ ते॥ असुराः॥ भविष्यन्ति T इति* एवम्* अभिधानम्॥॥ धर्मअवर्णवादः॥ ।

=अर्हत् भगवानसे कथित धर्म गुण रहित है । और (=च) उस (धर्म) के -सेवन करनेवाले जो हैं ते असुर होंगे । =इस प्रकार कहना सो धर्म का निंदाप्रवाद है ।

सुरा–मांस–(२)उपसेव–आदिआघोषणम्॥॥देवअवर्णवादः॥ द्वितीयस्य॥मोहस्य॥आस्रवभेद–अतिपादन–अर्थम्॥॥आह T

=मदिरा(सुरा) माँसके उपसेवन आदिका प्रसिद्ध करना सो देवोंका अवर्णवाद है =दूसरा चारित्र मोहनीय कर्मके(=मोहस्य)आस्रवके भेद कहनेकेलिये कहतेहैं कि

कषायोदयात्तीव्र(३)परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

=कषाय–उदयात्–तीव्र–परिणामः चारित्रमोहस्य (आस्रव हेतुः भवति)

सूत्रार्थः–कषायाणाम्॥ उदयात्॥ तीव्र–परिणामः॥ चारित्र–मोहस्य॥ आस्रवस्य॥ हेतुः॥ भवति T

-कषायोंके उद्रत वा उद्रेक होनेसे उत्कट वा उग्र भावका होना सो =चारित्र मोहनीय कर्मके आस्रवका कारण है

(१) "मुनि कहिये अवधि मनःपर्ययज्ञानी, ऋषि कहिये ऋद्धि जिनको फुरीहोय यति कहिये इन्द्रियके जीतनहारे अनगार कहिये सामान्य साधु ऐसे च्यारभेद हैं " सर्वार्थ सिद्धिवचनिका पृष्ठ मुद्रित ५०४(२)उपसेव और उपसेवनका यहां एक 'भोगना' अर्थ है । सेव और सेवनका एक अर्थ है (देखो वैद्य कोश पृष्ठ ७६६)(३)तीव्र परिणामके स्थानमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें"तीव्रात्म परिणाम है" अर्थात् सूत्र ऐसा है कि कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य । १५ ॥ परन्तु इससे सूत्रके अर्थमें भेद नहीं होजाता है ॥

कषाया उक्ताः । उदयो विपाकः । कषायाणामुदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्यास्रवो वेदितव्यः ॥ तत्र स्वपरकषायोत्पादनं तपस्विजनचारित्रदूषणं संक्लिष्टलिङ्गव्रतधारणादिः कषायवेदनीयस्यास्रवः ॥ सद्धर्मोपहसनदीनातिहासबहुविप्रलापोपहासशीलतादिर्हास्यवेदनीयस्य । विचित्रक्रीडनपरतावृतशीलारुच्यादिः रतिवेदनीयस्य । परारतिप्रादुर्भावना रतिविनाशनपापशीलसंसर्गादिः अरतिवेदनीयस्य । स्वशोकोत्पादनापरशोकप्लुताभिनन्दनादिः शोकवेदनीयस्य ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौदहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दी अनुवाद

कषायाः[१]उक्ताः[३]; उदयः[१] विपाकः[१]; =कषाय कहे जा चुके हैं (अध्याय ६ सूत्र ५) उदय है सो विपाक वा अनुभव है।
कषायाणाम्[६] उदयात्[५] तीव्रपरिणामः[१] चरित्रमोहस्य[६]=कषायोंके उदयसे तीव्र भावका होना चारित्र मोहनीयकर्मका
आस्रवः[१]वेदितव्यः[१]॥ तत्र*स्व-पर-कषाय-उत्पादनम्[१]॥=आगमन जानना चाहिये। तहां आपके तथा परके कषाय उपजावना
तपस्विजन[१]–वृत्तदूषणम्[१] ॥ =तपस्वीजनोंके चारित्रको दोष लगाना
संक्लिष्ट-लिङ्गव्रत-धारण–आदिः[१] कषायवेदनीयस्य[६]=संक्लेश परिणामको उपजाने वाला भेष व्रत धारण आदि कषाय वेदनीय कर्मका
आस्रवः[१] ॥ सद्धर्म–उपहसन– =आस्रव है भावार्थ इनसे कषाय वेदनीय कर्मका आस्रव होताहै-सत्य धर्म की हास्य(करना)
दीन[२]अतिहास–बहु-विप्रलाप- =दीनोंकी प्रशंसारूप(अति)हास्य वा व्याज स्तुति करना, बहुत वृथा प्रलाप (बकना)
उपहासशीलता-आदिः[१] हास्यवेदनीयस्य[६]॥ =हास्य स्वभाव रखना आदिक हास्यवेदनीय कर्मका आस्रव का कारण है
विचित्र–क्रीडन–परता–व्र॰-शील–अरुचि–आदिः[१] =अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने में तत्परपना व्रतशीलमें अरुचि (परिणाम) आदिक
रतिवेदनीयस्य[६]॥(आस्रवः)[१];परअरति-प्रादुर्भावना[१]॥ =रति वेदनीय कर्म का आस्रव है। परकेअरति उपजावना
रति-विनाशन–पापशील–संसर्गादिः[१] =परकी रतिका विनाशन–पापका स्वभाव (शील) पापका संसर्ग आदिक
अरतिवेदनीयस्य[६]॥;स्वशोक–उत्पादना-परशोकप्लुता- =अरति वेदनीय कर्मका(आस्रव)है। अपनेशोक उपजावना-परशोकमें गहरा(=प्लुत)
अभिनन्दन–आदिः[१] शोकवेदनीयस्य[६] ॥। =हर्ष (अभिनन्दन) आदिक शोक वेदनीय (कर्म) का आस्रव का कारण है।

[१] गुरु का आदर–दया, शौच, सत्य, इन्द्रियों का रोकना हितकारी बातों का चलाना, इस प्रकार के चारित्र को वृत्तकहते हैं (पद्मचन्द्र कोशपृष्ठ३६४) 'वृत्तं पद्ये चरित्रे त्रिष्वतीते दृढनिस्तले" अमर कोश वर्ग २३ श्लोक ७में चारित्रके अर्थमें भी वृत्त शब्द आया है इसलिये चारित्र ऐसा अनुवादकिया है

स्वभयपरिणामःपरभयोत्पादनादिर्भयवेदनीयस्य। कुशलक्रियाचारजुगुप्सादिर्जुगप्सावेदनीयस्य। अलीकाभिधायितातिसन्धानपरत्वं पररन्ध्रापेक्षित्वप्रवृद्धरागादिः स्त्रीवेदनीयस्य। स्तोकक्रोधानुत्सुकत्वस्वदारसन्तोषादिःपुंवेदनीयस्य। प्रचुरकषायगुह्येन्द्रियव्यपरोपणपराङ्गनास्कन्दादिर्नपुंसकवेदनीयस्य ॥ निर्दिष्टो मोहनीयस्यास्रवभेदः। इदानीं तदनन्तर

स्वभय-परिणामः। पर-भय-उत्पादन-आदिः। भय-वेदनीयस्य। कुशलक्रिया-आचार-जुगुप्सादिः। जुगुप्सावेदनीयस्य। अलीक- अभिधायिता-अतिसंधान-परत्वम्। पर-रन्ध्र-अपेक्षित्व-प्रवृद्ध-रागादिः। स्त्री-वेदनीयस्य। स्तोक-क्रोध-अनुत्सुकत्व-स्वदारसंतोष-आदिः। पुंवेदनीयस्य। प्रचुर-कषाय-गुह्य-इन्द्रिय-व्यपरोपण-पराङ्गनास्कन्दादिः। नपुंसकवेदनीयस्य। मोहनीयस्य। निर्दिष्टः। आस्रव-भेदः। इदानीम्*तद्-अनन्तर

=अपना(=स्व) भयरूप भाव रखना-परको भय उपजावना आदिक
= भयवेदनीय[कर्मका] [आस्रवका हेतु]है। अलीकक्रिया आचार विषैं ग्लानि आदिक
=जुगुप्सावेदनीय[कर्म]का आस्रवका कारण है। झूठ बोलनेका
=स्वभाव[=अभिधायिता]मायाचार [=अतिसंधान] में तत्पर रहना
=परके छिद्र अर्थात् दूषण विषैं आकांक्षा, अति बढ़ते रागादिक
=स्त्रीवेदनीय[कर्म]का[आस्रवका निमित्त] है। अल्प [स्तोक] क्रोध
=[इष्ट पदार्थोंमें] आशक्तता का अभाव अथवा अरुचिपना [=अनुत्सुकत्व]
=अपनी स्त्रीमें संतोष आदिक पुरुष वेदनीय[कर्म]का [आस्रवका कारण] है
=कषायकी प्रबलता अथवा प्रबल कषाय, छिपाने योग्य इन्द्रिय अर्थात् भग लिङ्गादिका
=छेदना-काटना,पर स्त्रीगमन आदिक नपुंसकवेदनीय[कर्म]का आस्रवका निमित्त है
=मोहनीयकर्मकाअर्थात्दर्शनमोहनीयकर्मका१३वां चारित्रमोहनीयकर्मका१४ वाँ सूत्रमें
=आस्रवकाभेद वर्णन किया गया [=निर्दिष्टः] अब उस मोहनीय कर्मके लगताई

[१] स्कन्द=[पु०] उछल करजाना और स्कन्दन [न०]जाना के अर्थ में है, [देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४३५] ये दोनों शब्द स्कद् [अकर्मक आत्मने-पदी भ्वादि प्रथम गणकी) धातु से बने है। स्कद् धातु का अर्थ उछल कर जाना है [पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४३५ [२] परांगनायस्कन्दन=परअङ्गना-अयस्कन्दन तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २६२ में है॥ इस लिये पर-अङ्गना-स्कन्द का अनुवाद पर स्त्री-गमन (=स्कन्द] किया है॥

निर्दिष्टस्यायुषः आस्रवहेतौ वक्तव्ये आद्यस्य नियतकाल परिपाकस्यायुषः कारणप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—

॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

आरम्भःप्राणिपीडाहेतुव्यापारःममेदंबुद्धिलक्षणःपरिग्रहःआरम्भाश्चपरिग्रहाश्चआरम्भपरिग्रहाः।

निर्दिष्टस्य[६]॥ आयुषः[६]॥[1] आस्रवहेतौ[७].[2] वक्तव्ये[७] आद्यस्य[६]॥ नियत--काल-परिपाकस्य[६]॥ आयुषः[६]॥ कारण-प्रदर्शन-अर्थम्[१]॥ इदम्[१]॥ उच्यते ।

=वर्णित (=निर्दिष्टः) आयुकर्मके आस्रवके कारण कहनेमें
=आदिकी नियत कालमें समाप्तिहोनेवाली(नारकीजीवनिकी)आयुके (आस्रव)का
=हेतु दिखानेके लिये यह (अग्रिम सूत्र) कहा गया है कि

सूत्रम्—

॥ बह्वारम्भपरिग्रह[3]त्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

=बहवः आरम्भपरिग्रहाः यस्य सःतस्य भावःनारकस्य आयुषः आस्रवःभवति ॥
=बहवःआरम्भाःबहवःपरिग्रहाःच यस्य सःतस्य भावःनारकस्य आयुषः भवति ।
=अधिक आरम्भ, उद्योग, उपक्रम वा उद्यम और(=च)बहुत परिग्रह वा ममत्वभावहै

सूत्रार्थः—बहवः[१]॥ आरम्भाः[३]॥ बहवः[३]॥ परिग्रहाः[३]॥ च*
यस्य[६]॥ सः[१]॥ तस्य[६]॥ भावः नारकस्य[६]॥ आयुषः[६]॥ आस्रवः[१] भवति=जिसकेबहउसकाभावबापरिणाम,सोनरककी आयुकाआस्रव(काकारण)होता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पन्द्रहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दी अनुवाद

प्राणि(२)-पीडाहेतु-व्यापारः[१] आरम्भः[१]
मम[१]॥ इदम्[१]॥ बुद्धिलक्षणः[१]॥ परिग्रहः।

=प्राणियोंको वेदना वा दुःखका कारण और व्यापार सो आरम्भ है ।
=मेरा यहहै ऐसी समझ वा ज्ञान(=बुद्धि)है लक्षण जिसका सो परिग्रहहै अर्थात् यह वस्तु मेरीहैंमैइसका स्वामीहूं ऐसा आपा परका संकल्पका अभिमान सो परिग्रहहै

आरम्भाः[३]॥ च*परिग्रहाः[३]॥ च*आरम्भपरिग्रहाः [१]।

=बहुरि आरम्भ और परिग्रहैं हैं सो आरम्भपरिग्रहा(ऐसा वाक्य समासमें हुआ)

(१) "आस्रवहेतौ वक्तव्ये आद्यस्य नियतकालपरिपाकस्यायुषः" यह वाक्य सर्वार्थसिद्धिकी मुद्रित प्रथमावृत्तिमें और हस्तलिखित प्रतियों में भी पाया जाता है परन्तु मुद्रित सर्वार्थसिद्धिके द्वितीय संस्करण में यह वाक्य नहीं है, ज्ञात होता है कि छपने से रह गया है ॥ (२) वक्तव्यका अर्थ कथन (कहना) पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३३१ में है, यहां कहना अर्थ में है ॥ (३) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः, ऐसा सूत्र है अर्थात् चकार अधिक है परन्तु अर्थ वही है जो ऊपर लिखा है (४) समास के कारण प्राणिन् शब्द का न् गिर गया है।

बहव आरम्भपरिग्रहा यस्य स बह्वारम्भपरिग्रहः। तस्य भावः बह्वारम्भपरिग्रहत्वम्॥ हिंसादिक्रूर-कर्माजस्रप्रवर्तनपरस्वहरणविषयातिगृद्धिकृष्णलेश्याभिजातरौद्रध्यानमरणकालतादिलक्षणो नारक-स्यायुष आस्रवो भवति। आह उक्तो नारकस्यायुष आस्रवः।तैर्यग्योनस्येदानीं वक्तव्य इत्यत्रोच्यते-

॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

बहवः[१] आरम्भपरिग्रहाः[२] यस्य[३]सः[१] [४]बह्वारम्भपरिग्रहः[४]; = बहुत हैं आरम्भ परिग्रह जिसके सो बहु आरम्भ परिग्रह है।
तस्य[४] भावः[५] बह्वारम्भ-परिग्रहत्वम्[५], = तिस(बहुत आरम्भ और परिग्रह)का भाव वा होना सो बहुआरम्भ परिग्रहता
हिंसादि-क्रूर-कर्म-अजस्र-प्रवर्तन-पर-स्व-हरण- = हिंसादिक निर्दय कर्मोंमें निरन्तर [=अजस्र]प्रवर्तना,पराये धन[=स्व]का हरना
विषय-अतिगृद्धि-कृष्णलेश्या-अभिजात-रौद्रध्यान- = विषयोंमें अतिलोलुपता[=अतिगृद्धि]कृष्णलेश्या करि उत्पन्नभयोजो रौद्रध्यान
मरणकालता-आदि-लक्षणः[३]नारकस्य[६]॥आयुषः[६]॥आस्रवः[१] =तिस सहितमृत्युकाहोना-आदि चिन्ह वा लक्षण(से)नारकीकीआयुका[=आस्रव]
भवति[१],आह[१],नारकस्य[६]॥आयुषः[६]॥आस्रवः[१]उक्तः[१]; =होताहै(शिष्य)प्रश्नकरता है कि नारकीकी आयुका तो आस्रव कहा गया
तैर्यग्योनस्य[६]॥इदानीम्*वक्तव्यः[१]इति*अत्र*उच्यते[१], =अब तिर्यञ्चयोनिका(आस्रव)कहना चाहिये,ऐसे यहां(अगलासूत्र)कहा जाता है कि

सूत्रम्— मायातैर्यग्योनस्य ॥१६॥ = मायातैर्यग्योनस्य(आयुषः आस्रवः भवति) ॥१६॥

[१] एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञसमासे हलि, अष्टाध्यायी ॥६।१।१३२॥ एतद्-तदोःसुलोपः अकोः अनञसमासे हलि।
(क) ककार से रहित [=अकोः] जो एतत् और तत् [=एतत्-तदोः] शब्दका सकार तिसका लोप हो [=सु-लोपः] हल् परे रहते[=हलि]परन्तु
(ख) नञ समासमें [=नञसमासे] नहीं[=अ] जैसे एषस्+विष्णुका एष विष्णु और सस+शम्भुका स शम्भु होगया इसी प्रकार पूर्वोक्त सस्+
बह्वारम्भ परिग्रहका स बह्वारम्भ परिग्रह होगया। यस्यसः बह्वारम्भ परिगृह...पाठ अशुद्ध है क्योंकि तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २६३ मुद्रितमें इसी सूत्र
की व्याख्यामें "बह्वारम्भाः परिगृह यस्य स बह्वारम्भ परिग्रहः है॥ हस्तलिखित प्रतियोंमें भी"स बह्वारम्भ परिगृहः" ऐसा पाठ है॥ एषकस्+रुद्र=
ऐषकः रुद्रः यहां एतत् ककार सहित है इससे सकार का लोप नहीं हुआ। अ+सस्+शिवः=असःशिवः यहां सकार का लोप नहीं हुआ क्योंकि
नकार रूप समास है [२] हल परे क्यों कहा क्योंकि व्यञ्जन पश्चात् न होगा स्वर होगा तो सकार का लोप न होगा जैसे एषस्+अत्र=एषः
अत्र ३] श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनोंआम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है,सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इसकी सत्रहवीं संख्या है॥

चारित्रमोहकर्मविशेषस्योदयादाविर्भूत आत्मनः कुटिलभावो माया निकृतिः तैर्यग्योनस्यायुष आस्रवो वेदितव्यः । तत्प्रपञ्चो मिथ्यात्वोपेतधर्मदेशना निःशीलता सन्धानप्रियता नीलकपोतलेश्यार्तध्यानमरणकालतादिः॥

आह व्याख्यातस्तैर्यग्योनस्यायुष आस्रवः । इदानीं मानुषस्यायुषः को हेतुरित्यत्रोच्यते –

सूत्रार्थः-माया[१]तैर्यग्-योनस्य[६]आयुषः[६]आस्रवः[१] =कपट, छल वा निकृति तिर्यंच योनिके आयुके आस्रवका[कारण]है अर्थात् मनमें अन्य बात विचारना वचनसे अन्यही कथन करना, शरीरसे अन्य ही प्रवृत्ति करना ऐसे आचारको मायाचार कहते हैं वह तिर्यंच, योनिके आयुके आस्रव [=द्रव्य कर्मके आगमन]का कारण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सोलहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दी अनुवाद

चारित्र-मोहकर्म-विशेषस्य[६]उदयात्[५] आविर्भूतः[१] =चारित्र मोहनीय कर्मके विशेषके उदयसे प्रगट हुआ
आत्मनः[६]कुटिल-भावः[१]माया[१]निकृतिः[१] =आत्माका कपटरूप परिणाम सो माया अथवा निकृति है ।
तैर्यग्योनस्य[६]आयुषः[६]आस्रवः[१] वेदितव्यः[१]; =[सो] तिर्यंच योनिके आयुका आस्रव जानना चाहिये ।
तत् प्रपञ्चः[१] मिथ्यात्व-उपेत-धर्म-देशना[१]निःशीलता[१] सन्धानप्रियता[१] =उस (तिर्यंच योनिके आस्रवके कारण)का विस्तार, मिथ्यात्व सहित धर्मका =उपदेश [देना], शीलरहितपना, ठगनेमेंप्रीतिरूप परिणाम अर्थात् परके ठगनेमें स्नेह
नील-कपोतलेश्या-आर्तध्यान-मरणकालता-आदिः[१]; =नील लेश्या तथा कपोतलेश्या [के परिणाम]आर्तध्यानकरि मरण कालत्व आदि [तिर्यंच योनिके आयुके आस्रवके कारण] हैं
आह।[१]तैर्यग्योनस्य[६]आयुषः[६]आस्रवः[१]व्याख्यातः[१]; =[शिष्य]प्रश्नकरता है कि तिर्यंचयोनिके आयुके आस्रव [तो] कहे गये
इदानीं*मानुषस्य[६]आयुषः[६]कः[१]हेतुः[१]इति*अत्र* उच्यते; =अब, मनुष्य आयुके[आस्रव]का क्या कारणहै ऐसे(प्रश्नपर)यहां कहाजाता हैकि

(१) तिरः अञ्चति इति तिर्यङ् लिखा जाता है ऐसा तिर्यङ् वा वक्रगामी है। तिर्यग् योनौभवःतैर्यग्योनम्-अण् = तिर्यंच योनिमें भया सो तैर्यग्योनि है।

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य=अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य(आयुषः)आस्रव भवति ॥१७॥

=अल्प-आरम्भः अल्पपरिग्रहः च यस्य सः तस्य भावः मानुषस्य आयुषः आस्रव हेतुः भवति ॥१७॥

सूत्रार्थः-अल्प-आरम्भः[१]अल्प-परिग्रहः[१]च[१] =थोड़ा आरम्भ और (=च) थोड़ी परिग्रह वा तृष्णा

यस्य[१]सः[१]तस्य[१]भावः[१]मानुषस्य[१]आयुषः[१] =जिसके है सो (=सः) उसका (=तस्य) जो भाव(=भावः) (वह) मनुष्यकी आयुके आस्रव-हेतुः[१] भवति ॥१७॥ =आस्रवका कारण होता है ॥१७॥

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इसी सूत्रमें दिगम्बर सम्प्रदायका अठारहवां सूत्र भी सम्मिलित है आर्जव शब्द अधिक है जैसा निम्न लेखसे प्रगट होताहै

(श्वेताम्बर सम्प्रदायका सूत्र)	(दिगम्बर सम्प्रदायकके सूत्र)
अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभाव मार्दवार्जवं च मानुषस्य ॥१८ सूत्र॥	अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७ सूत्र॥ स्वभाव मार्दवंच ॥१८ सूत्र
अनुवादः-अल्पारम्भ तथा अल्पपरिग्रह अर्थात् अल्प कार्योंका आरम्भ परिग्रह जैसेकि जितनेमें अपना कार्य चल जाय उतने ही कार्योंका आरम्भ करना तथा जितनेमें अपना प्रयोजन होजाय उतना ही संचय वा परिग्रह करना तथा स्वभावकी कोमलता (=मार्दव) और सरलता (=आर्जव,ये मानुष आयुषके आस्रवके हेतु हैं ॥१८॥	थोड़ी आरम्भता थोड़ी परिग्रहता-स्वभावसे कोमलता भी (=च) मनुष्यकी आयुके आस्रवके कारण हैं

दोनों सम्प्रदायका अर्थ भी एकसा है केवल आर्जव शब्दका अर्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अधिक है दिगम्बर सम्प्रदायमें १७-१८ दो सूत्र दिये गये हैं ॥ "ताका यह प्रयोजन है, जो आगे देव आयुका आस्रव कहेंगे सो स्वभाव मार्दव देवायुका भी आस्रव है ऐसा जणाया" /जयचन्दजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५०६,५१०) इसी तात्पर्यके भिन्न भिन्न वाक्य हमने सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक,तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक, श्रुतसागरी टीकासे लेकर उनको अनुवाद सहित पृष्ठ ६२में दिये हैं उनको स्थान अभावसे यहां नहीं लिखा है उन्हीं वाक्योंसे स्पष्ट है कि सत्रहवां सूत्र अठारहवां सूत्रसे इस लिये भिन्न रचा गया है कि 'सरागसंयमादि'बीसवां सूत्रमें देवआयु कहेंगे ॥ उसके आस्रवका कारण 'स्वभाव मार्दव'भी है॥ हमने पृष्ठ६४, ६५में इस बातको सिद्ध किया है कि 'अल्पारम्भपरिग्रहत्वं''निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्'सूत्रके असमान नरक, तिर्यंच,देव आयुके आस्रवके कारण नहीं है और उक्त भिन्न भिन्न वाक्य जिनको हमने पृष्ठ ६२में उद्धृत किया है इस बातके ज्ञापक हैं कि'अल्पारंभपरिग्रहत्वं'देव आयुके आस्रवका कारण होताती सत्रहवें सूत्र से १८वासूत्रका'पृथग्विधान'क्यों होता ॥ इसका परिणाम यह हुआकि १८वां सूत्रमें चकारसे यह नहींनिकलताकि 'अल्पारंभपरिग्रहत्व''सचचारोंआयु के आस्रव के कारण हैं ॥

नारकायुरास्रवो व्याख्यातः। तद्विपरीतो मानुषस्यायुष इति संक्षेपः॥तद्व्यासः-विनीतस्वभाव-प्रकृतिभद्रताप्रगुणव्यवहारतातनुकषायत्वमरणकालासंक्लेशतादिः ॥

किमेतावानेव मानुषस्यायुष आस्रव इत्यत्रोच्यते—

स्वभावमार्दवञ्च ॥१८॥

नारक-आयुस्-आस्रवः१।व्याख्यातः१;
तद्-विपरीतः१ मानुषस्य१॥आयुषः६॥
इति*संक्षेपः१;तद्-व्यासः१—
विनीत-स्वभाव-प्रकृतिभद्रता-
प्रगुण-व्यवहारता-
तनुकषायत्व-मरणकाल-असंक्लेशता-
आदिः१;किम्*एतावान्१एव*मानुषस्य१॥आयुषः६॥
आस्रवः१इति*अत्र*उच्यते T

=नारकीकी आयुके आस्रव[का कारण] कहा जा चुका है।
=उस नारकीकी आयुके आस्रवके कारणके प्रतिकूल मनुष्यकीआयुकेआस्रवकाकारणहै
=ऐसा संक्षेप है। उस(मनुष्यआयुके आस्रवके कारण)का विस्तार—
=विनययुक्त परिणाम वा विनयवान् स्वभाव,प्रकृतिकरि भद्र परिणामका होना।
=सीधे स्वभावसेव्यवहार वा उद्यमपना अर्थात् मनवचनकायकीसरलतासेव्यवहारकरना
=थोड़ी कषायका होना, मृत्यु समयमें क्लेश रहित परिणामका होना—
=आदिक(मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण)है, क्या इतना ही मनुष्यकी आयुका आस्रव है ? ऐसे यहां(अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

स्वभावमार्दवञ्च(१)॥१८॥ =स्वभावमार्दवम् च अथवा स्वभाव मार्दवं च ॥१८॥

=स्वभाव मार्दवम् च(मानुषस्य आयुषः आस्रवः देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके प्रथमावृत्तिके ३३१ पृष्ठपंक्ति१२)
=स्वभावेन मार्दवम् च (मानुषस्य आयुषः आस्रवः भवति)

स्वभावेन३।मार्दवम्१॥ च*
मानुषस्य१॥आयुषः६॥आस्रवः१भवति T

=(उपदेशकी अपेक्षासे रहित) प्रकृति वा स्वभाव करि कोमलता भी (=च)
=मनुष्यकी आयुका आस्रव(का कारण)है अर्थात् अल्पआरम्भ और अल्पपरिग्रहता मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण है ही(सूत्र १७)परन्तु विना सीखी हुई स्वभावसे कोमलता भी मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण है।

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस सूत्रको 'अल्पारम्भपरिग्रहत्वं' इस सूत्रमें गर्भित कर दिया है जिसका अर्थ और वर्णन १७वां सूत्रमें कहा गया है।
(२)यथार्थमें स्वभावेन मार्दवम् च ऐसा तीनपदका सूत्र है,समासमें स्वभाव मार्दवम् होगया।इसका अ निम्नलिखितनियमसेहोगया॥देखोपृष्ठ६१क्रीटिप्पणी।

मृदोर्भावो[1] मार्दवम् । स्वभावेन मार्दवं स्वभावमार्दवम्। उपदेशानपेक्षमित्यर्थः॥ एतदपि मानुषस्यायुषः आस्रवः ॥ पृथग्योगकरणं किमर्थं ?

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस अठारहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दीअनुवाद

मृदोः[६।१] भावः[१।१] मार्दवम्[१।१]॥; =मृदु(नरम वा कोमल)काभाव अर्थात् कोमलता वा कोमलपन सो मार्दव है

स्वभावेन[३।१] मार्दवम्[१।१] स्वभाव-मार्दवम्[१।१]॥; =(अन्य कारणकी अपेक्षा रहित) प्रकृतिकरि वा स्वभावकरि,कोमलपना सो स्वभावमार्दव है

उपदेश-अनपेक्षम्[१।१] इति*अर्थः[१।१] ॥ =उपदेश अथवा सिखावनेकी अपेक्षारहित है ऐसातात्पर्य(इस सूत्रमें स्वभाव शब्दसे)है।

एतद्[१।१] अपि*मानुषस्य[६।१] आयुषः[६।१] आस्रवः[१।१]; =प्रश्न यह(स्वभावकरि कोमलता)भी(=अपि=च)मनुष्यकी आयुका आस्रव(का कारण)है।तो

पृथक्-योग-करणम्[१।१] किम्*अर्थम्[१।१]॥ ? =न्यारा नियम(=योग) अर्थात् भिन्न सूत्रका करना (=करण) किस लिये है ?

अर्थात् भिन्न सूत्रके करनेका क्या प्रयोजन है प्रश्नका भावार्थ यह है कि इस १८वां सूत्रको १७वां सूत्रसे क्यों न्यारा रचा है १७वाँ सूत्र में मिलाकर इस प्रकार निर्देश कर देते "अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवं मानुषस्य"तो इस अवस्थामें चशब्द भी न लायाजाता।

म् पदान्त हो वा म् किसी प्रत्ययके अन्तमें हो और इस म्के पश्चात् कोई व्यञ्जन आवै तो म् विकल्प करि अनुस्वारमें पलट जाता है,यदि इस म्के पश्चात् श्-ष्-स्-र्-ह् आवै तो म् अवश्यही अनुस्वारमें पलट जावेगा॥ यदि हम इस म्को अनुस्वारमें न पलटै तो उसका अनुनासिक(ङ्-ञ्-ण्-न्-म्)में परिवर्तन हो जावेगा जिसका व्यञ्जन इस म्के पश्चात् आवै॥ और यदि इस म्के पश्चात् य्-व्-ल्-हों तो म् अनुनासिक य्- व्- ल् में क्रमानुसार पलट जावेगा॥ इसलिये स्वभावमार्दवम्का म्अनुस्वारमें ,परिवर्तन होनेसे स्वभाव मार्दवं हो गया, यदि अनुस्वारमें नहीं पलटते हैं तो क्योंकि म्के पीछे व है इसलिये अमें पलट गया और 'तत्र स्वभाव मार्दवञ्च' ऐसा सूत्र होगया॥

(१) भाव—(क)होना (ख)अवस्था (ग)विद्यमान,सत्ता(घ)सत्य,सत्यता (ङ)मन सम्बन्धी विकार(च)प्रेम-अनुराग (छ)सम्मति (ज)अभिप्राय(झ)ध्यान (ञ) तात्पर्य, [ट] आत्मा [ठ]वस्तु-पदार्थ[ड]प्राणी-जन्तु [ढ]चेष्टा [ण]विलास-क्रीडा-काम चेष्टा [त]गर्भस्थान, गर्भाशय (थ)जन्म (द)संसार-विश्व (ध) अपौरुषेयशक्ति [न] उपदेश-बोधन-शिक्षा-शिक्षण [प] स्वभाव [फ] इच्छा [ब] घटना [भ] विद्वान् अर्थात् भावयति [चिन्तयति] पदार्थान् नाटकमें नाना पदार्थ चिन्तक [कई प्रकारके पदोंके अर्थोंके सोचने हारा] पण्डित [म] व्याकरणमें भावधात्वर्थ क्रियाके लिये एक शब्द ॥ (देखो वैदयसंस्कृतआंगलकोश पृष्ठ ५२४,५२५ ।) जिसमें इस भाव शब्दके सत्ताइस अर्थ दिये हैं और बहुतसे इसके समास पद दिये हैं॥

उत्तरार्थम् । देवायुष आस्रवोऽपि यथा स्यात् ॥ किमेतदेव द्वितीयं मानुषस्यास्रवोऽनेत्युच्यते-

उत्तर अर्थम्[१]॥; =उत्तर अग्रिम(देवायुके आस्रव)के लिये १७वां [सूत्रसे पृथक् १८वां सूत्ररचा]है

देव-आयुषः[६]॥आस्रवः[१]अपि*यथा*स्यात्[T]=जैसे देव आयुका आस्रवभी[स्वाभाविक कोमलतासे]होता है अर्थात् १८वां सूत्र १७वांसूत्रसे इस कारण अलग रचा हैकि स्वभाव मार्दवं मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है(जैसा कि १८वां-सूत्रमें है)और देव आयुके आस्रवका कारण है जैसाकि बीसवां सत्र सराग संयमादिककी विस्तार रूप वृत्ति जो तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इसी सूत्र पर दी है उसमें निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है वह वाक्य यह है(पृष्ठ मुद्रित राजवार्तिक २६४)"निःशीलव्रताः सानुकम्पहृदयाः जलराजितुल्य रोषाः भोगभूमिसमुत्पन्नाश्च व्यन्तरादिषु जन्म प्रतिपद्यते" ॥ शीलव्रत रहित, कोमलता सहित हृदय वाले जलकी रेखाके समान क्रोध सहित और भोग भूमि में उपजे जीव अर्थात् भोग भूमियां व्यन्तरादिकमें जन्म लेते हैं वा उत्पादन करते हैं ॥ सर्व चारौ आयुके आस्रवका कारण स्वभाव मार्दव नहीं है संक्षेपतः मनुष्य आयु और देव आयुके आस्रवका कारण स्वभाव मार्दव है तिर्यञ्च आयु और नरककी आयुके आस्रवका कारण स्वभाव मार्दव नहीं है यहां पहले सूत्र तैं न्यारा सूत्र किया, ताका यह प्रयोजन है आगे देव आयुका आस्रव कहेंगे सो स्वभाव मार्दव देव आयुका भी आस्रव है ऐसा जणाया॥"पं० जयचन्दजी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५०९,५१० और इसी तात्पर्यका वाक्य'तेन दैवस्यायुषोयमास्रवःप्रतिपाद यिष्यते'=तिस १७वां सूत्रसे १८वां सूत्रको भिन्न रचने)करि यह देवका आस्रव प्रतिपादन किया गया है तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४५४ पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके(पृष्ठ ३३१ प्रथमा वृत्ति)के सदृश दिया है॥"स्वभाव मार्दवं सराग" संयमादिक च देवायुरास्रवो भवतीति" 'पृथग्योगविधानम्"(श्रुतसागरी टीकासे उद्धृत)=स्वाभाविक कोमलता और(=च)सरागसयमादिक (सूत्र २०)देव आयुके आस्रवका कारण होता है ऐसे १७वां सूत्र की १८वां सूत्रसे भिन्न रचनाकी है ॥

किम्*एतद्[१]॥एव*द्वितीयम्[१]॥मानुषस्य[६]=क्या यह(=एतद्)ही(=एव)दूसरा मनुष्य आयुकी आस्रवः[१]; =आस्रवका कारण है

{(१)दूसरेके दुःखका न सहारनेसेहृदयका पिघलजानासोमार्दव या कोमलतावानरमपनहै।

न*इति*उच्यते[T] =(उत्तर)नहीं और भी मनुष्यके आयुकाआस्रवका कारण हैइस लिये ऐसा(सूत्र)कहा गया है॥

निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥

चशब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः।

(१) निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्॥ निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषां॥ निःशीलवृतत्वं च सर्वेषाम्॥
निःशीलवृतत्वं च सर्वेषां॥ निश्शीलवृतत्वञ्च सर्वेषाम्॥ निःशीलवृतत्वञ्च सर्वेषां ॥

निश्शीलव्रतत्वम् च सर्वेषाम् =निःशीलत्वंनिर्व्रतत्वम् च सर्वेषाम्

=च निःशीलव्रतत्वं-निर्व्रतत्वम् सर्वेषां(चतुर्णाम्नारक-तैर्यग्योन-मानुष-देवानां आयुषां आस्रवहेतवः)भवन्ति ।

सूत्रार्थः-च*निःशीलत्वम्[1]"निर्व्रतत्वम्[1]॥ =और शीलरहितपना(देखो अध्याय ७ सूत्र २१)व्रतरहितपना(देखो अध्याय ७ सूत्र १)

सर्वेषाम् चतुर्णाम्[1]नारक–तैर्यग्योन–मानुष–देवनाम्[1]=सब चारों नरककी तिर्यंचकी मनुष्यकी देवकी

आयुषाम्[1]॥आस्रव–हेतवः[1] भवन्तिI; =आयुके आस्रवके कारण होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस उन्नीसवांसूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दी अनुवाद

(२) च–शब्दः[1] अधिकृत–समुच्चय–अर्थः[1] =(१९वां सूत्रमें)चशब्द,अधिकार किये गयेके वा प्रकरण किये गयेके संचयके लियेहै अर्थात् मनुष्य आयुके आस्रवके कारणका विषय अथवा प्रकरण सत्रहवां सूत्रसे आरम्भ किया है और अठारहवां सूत्रमें भी उसी आयुके आस्रवके विषयको कहा है उस आरब्ध प्रकरण वा विषयके संचयके लिये इस सूत्रमें चशब्द लाये हैं॥ इस सूत्रमें समुदाय,वा समुच्चयका चिन्ह "और" है जैसाकि अनुवादसे प्रगट है ।

(१) ये छह प्रकारके पाठ भिन्न भिन्न प्रतियोंमें मिलते हैं सब शुद्ध हैं अर्थात् ऊपरके तीन पाठ जिनके अन्तमें मूके स्थानमें अनुस्वार है वे पाठ भी कातन्त्ररूपमाला व्याकरणसे शुद्ध हैं(अध्याय १ पृष्ठ ६) । विसर्गके पश्चात् श् ष् अथवा स् हो तो विसर्गके स्थानमें विसर्गही रहने दो अथवा यथा संख्य उसविसर्गको शषस से पलटदो जैसे निःशील वा निश्शील वृक्षःपण्डे = वृक्षष्पण्डे–चंद्रमः सु वा चन्द्रमस्सु(२)"इहां सूत्रमें चशब्दहै सो पहले अल्पारंभ परिग्रहपणा कह्या ताका मनुष्यकेआयुका समुच्चयके अर्थि है यह अर्थ इस सूत्रके नीचे पं०जयचन्द्रजी कृता वचनिकामें"चशब्दोऽधिकृत-समुच्चयार्थः"सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके इस वाक्यका किया है सो हमारे अर्थ से मिलता है ।

अल्पारम्भपरिग्रहत्वञ्च निःशीलव्रतत्वञ्च ॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वम्[1]॥च*(=अल्पारम्भत्वम् अल्पपरिग्रहत्वम् च) =अल्पआरम्भता थोड़ीपरिग्रहता भी (=च)

निःशीलव्रतत्वम्[1]॥च *(=निःशीलत्वम् निर्व्रतत्वम् च) =(सात) शीलसे रहितपन (पाँच) व्रतोंसे रहितपन भी [=च] (मनुष्य आयुके आस्रव) हैं।इस प्रकार(क)अल्पारम्भता अल्पपरिग्रहता सूत्र १७ [ख]स्वाभाविक कोमलता (सूत्र १८) और (ग) निःशीलव्रतपना–अव्रतपना सूत्र १९ ये मनुष्य आयुके आस्रवके कारण हैं ॥ (निःशीलव्रतपना नरक-तिर्यंच-देवायुके आस्रवका भी कारण है)

(१) इस वाक्यका अर्थ भाष्यकार और टीकाकारोंने दो प्रकारसे किया है। दोनों अर्थोके सम्बन्धमें विवेचन करनेके पहिले यहां उचित जान पड़ता है कि कुछ आरम्भिक शब्द लिखे जावें भिन्न भिन्न आयुके आस्रवका प्रकरण इस अध्यायके सूत्र पंद्रहवेंसे सूत्र इक्कीस तक है। अल्पारम्भ परिग्रहता (सूत्र १७) स्वाभाविक कोमलता (सूत्र १८) मनुष्य आयुके आस्रवके दो कारण निर्देश कर अठारहवा सूत्रके अन्तमें प्रश्न किया गया हैकि 'क्या दोय ही मनुष्य आयुके आस्रवके कारण हैं कि और भी हैं, इसपर उत्तर हैकि 'और (=च) निःशीलव्रतपना सर्व आयुके आस्रवका कारण है' अर्थात् शीलरहितपना व्रतरहितपना मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है और अवशेष तीन नारकी, तिर्यंच, और देव आयुके आस्रव के भी कारण हैं,इस प्रकार मनुष्य आयुके आस्रवके कारण [क] अल्प आरम्भपरिग्रहता [ख] स्वाभाविक कोमलता [ग] शीलरहितपना व्रतरहितपना ये तीन हुये; पूज्यपाद स्वामीने ' चशब्दोऽधिकृत समुच्चयार्थः। अल्पारम्भ परिग्रहत्वञ्च निःशीलव्रतत्वञ्च'' ये दो वाक्य उन्नीसवां सूत्रके नीचे दिये हैं॥ श्री श्रुत-सागरसूरि जिनका अस्तित्व विक्रम सम्वत् १५५० में माना जाता है अपनी श्रुतसागरी टीकामें उक्त दोनों वाक्योंका तात्पर्य निम्नशब्दोंमें दिया है ''चकारादल्पारम्भपरिग्रहत्वं च सर्वेषां नारकतैर्यग्मनुष्यदेवानां आयुष आस्रवो भवति''

च चकारात् अल्प-आरम्भ-परिग्रहत्वम् सर्वेषाम् =और (=च) (उन्नीसवां सूत्रमें) चकारसे (=च से) अल्पारम्भ परिग्रहता समस्त नारक-तैर्यग्-मनुष्य-देवानाम् आयुषः आस्रवः भवति =नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवोंकी आयुका आस्रव (का कारण) होता है ॥

जनता इस बातसे अपरचित नहीं हैं कि पं० सदासुखजी ने तत्त्वार्थ सूत्र टीका जिसकी श्लोक संख्या लगभग २००० है विक्रम सँवत् १९१० में समाप्त की और दूसरी बड़ा टीका जिसका नाम 'अर्थ प्रकाशिका है सम्वत् १९१२में समाप्त की उनने तत्त्वार्थ सूत्र टीकामें पूज्यपाद स्वामीके पूर्वोक्त दोनों संस्कृत वाक्योंका तात्पर्य यह लिखा हैकि ''चशब्द तै अल्पारम्भी अल्पपरिग्रहीपणा शीलव्रतरहितपणा ये समस्त (ग्यारूं) आयुके आस्रवके कारण हैं'' संभव हैकि पं० सदासुखजीने श्रुतसागरी टीकाके आधार पर ऐसा अर्थ लिखा हो॥ अर्थ प्रकाशिकामें''शीलरहितपणा अर व्रतरहितपणा समस्त ग्यारूंही आयुका आस्रव होय है'' पश्चात् व्रतशील रहितके देव आयुका आस्रव कैसे होय, इस प्रश्नका समाधानका किया है और चकार तथा पूज्यपाद स्वामीके दूसरे वाक्यके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है॥ इन्हींका अनुकरण, श्रीयुत जुग मंदिर लाल जैनीने तत्त्वार्थ सूत्र पर आंगलभाषाके अनुवादमें किया है, श्री श्रुतसागर सूरि और प० सदासुखजी और जैनीजी प्रति बहुत विनय और प्रतिष्ठा हृदयमें धारण करते हुये निवेदन करता हूं कि उनके अर्थ और तात्पर्यसे मैं निम्नलिखित हेतुओं से सम्मत नहीं हूं ॥

(अ) च शब्दोधिकृतसमुच्चयार्थः ॥१॥ अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्यायुः निःशीलव्रतत्वंचेत्यधिकृतसमुच्चयार्थश्च शब्दः क्रियते॥(तत्त्वार्थ राजवार्तिक-)

च शब्दः अधिकृत-समुच्चय-अर्थः अल्प-आरम्भ-परिग्रहत्वम् मानुषस्य-आयुः निःशीलव्रतत्वम च इति अधिकृत-समुच्चयः-अर्थः च शब्दः क्रियते ॥

= (उन्नीसवां सूत्रमेंचशब्द प्रकरणमेंलाये हुये(मनुष्यआयुके आस्रवके कारण)केसंचयकेलियेहै = "अल्पआरंभपरिग्रहपणौं मनुष्य आयुके आस्रव है। अर निःशीलव्रतपणौं = भी मानुष आयुका आस्रव है ऐसे अधिकार प्राप्तका समुच्चयके अर्थि चशब्द करिये है" श्रीयुत पण्डित पन्नालाल दूनीजी अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिकसे उद्धृत॥

अल्पारंभ— परिग्रहत्वम्मानुषस्य-आयषःनिःशीलव्रतत्वम्चशतिअधिकृत समुच्चय-अर्थः चशब्दः क्रियते ।

= "पहले अल्पारंभपरिग्रहपना कहा सो मनुष्य आयुका आस्रव है बहुरि अल्पारंभ- = परिग्रहपना भी अर निःशीलव्रतपना भी मनुष्य आयुके आस्रव है ॥ऐसे (?) = समुच्चयकेअर्थसूत्रमेंचशब्दकानिर्देशहै॥"पं०पन्नालाल न्यायदिवाकरअनुवादितराजवार्तिकसे

चशब्दोधिकृतसमुच्चयार्थः/ = चशब्दःअधिकृतसमुच्चय-अर्थः = (उन्नीसवां सूत्रमें, चकार प्रकरणमें लाये हुये(मनुष्यके आयुकेआस्रव)के समुदायके लियेहै श्लोकवार्तिकसे उद्धृत इसके अतिरिक्त श्लोकवार्तिकमें अन्य विशेष कथन नहीं है

(आ)चशब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः = चशब्दःअधिकृत समुच्चयअर्थः = "इही सूत्रमें चशब्द है सो पहले अल्पारम्भपरिग्रहपणा कह्या ताका मनुष्य के आयुका समुच्चयके अर्थि है" पं० जयचन्दजीकी वचनिकासे उद्धृत।

"अल्पारम्भपरिग्रहत्वञ्च निःशीलव्रतत्वञ्च" ॥

= "तातैं अल्पारम्भपरिग्रहपणा भी अरु निःशीलव्रतपणा भी मनुष्यआयुके आस्रव हैं,ऐसे जानना"पं० जयचन्दजी कृता वचनिकासे उद्धृत॥

इससे यह न समझना चाहियेकि निःशीलव्रतपना शेष नरक तिर्यंच देव आयुके आस्रवके कारण नहीं हैं, अठारहवां सूत्रके अन्तका कि अल्पारम्भपरिग्रहपणा और स्वाभाविक कोमलता दो ही कारण मनुष्य आयुके आस्रवके हैं कि अन्य भी कोई कारण हैं उसके उत्तरमें कि तीसरा कारण मनुष्यकी आयुके आस्रवका निःशीलव्रतपना भी है ऐसा निर्देश है क्योंकि उपर्युक्त उन्नीसवां सूत्रका अर्थ पं० जयचन्दरायजीने इस प्रकार लिखा है कि "शील कहिये उत्तरगुण, व्रत कहिये मूलगुण तिनकरि रहितपणा है, सो सर्व आयु कहिये चयारौंही आयुका आस्रव होय है॥"

(इ) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १४६,१५० तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पृष्ठ ५२० इस बातके ज्ञापक हैं कि अल्पारम्भपरिग्रहता और निःशीलव्रतता मनुष्य आयुके आस्रवके कारणहैं न कि अल्पारम्भपरिग्रहताऔर निःशीलव्रतपना चारोंआयुके आस्रवके कारणहैं

(ई) तर्क और हृदय इस बातको कदापि स्वीकार नहीं करते कि अल्पारम्भपरिग्रहता और निःशीलव्रतता चारों आयुके आस्रवके कारण हैं क्योंकियदि हम सभीके स्पष्ट शब्दोंके विरुद्ध उक्त बातको मानलेंतो इस अवस्थामें सत्रहवां सूत्र अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य व्यर्थ हुआ जाता है क्योंकि जब अल्पआरम्भता और थोड़ी परिग्रहता चारों गतिके आस्रवका कारण हैं तो फिर वह केवल मनुष्य आयुके आस्रवका कारण कैसे हो सकते हैं॥

(उ) "एतदपि मानुषस्यायुष आस्रवः पृथग्योगकरणं किमर्थम् ?। उत्तरार्थम् देवायुष आस्रवोऽपि यथास्यात् ॥" सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथमावृत्ति पृष्ठ ३३२[प्रश्न]यह[स्वाभाविक कोमलता]मनुष्य आयुके आस्रवको भी कारण है तो भिन्न नियम [=योग] अर्थात् सूत्र किसलिये किया ॥ [उत्तर] अग्रिम[सूत्र अर्थात् २०वां]के लिये जैसे[=यथा]देव आयुका आस्रव भी [स्वाभाविक कोमलतासे] होता है। तत्त्वार्थराजवार्तिक, मुद्रित पृष्ठ २६४में बीसवां सूत्रकी वृत्तिमें निम्न वाक्य आया है 'निःशीलव्रताः सानुकम्पहृदयाः जलराजितुल्यरोषाः भोगभूमि समुत्पन्नाश्चव्यन्तरादिषु जन्म प्रतिपद्यंते = शीलव्रतरहित कोमलता सहित हृदय वाले,जलकी रेखाके समान क्रोधसहित और भोगभूमिमें उपजेते जीव अर्थात् भोगभूमियां व्यन्तरादिकमें जन्मलेतेहैं वा उत्पादनकरतेहैं॥यदि अल्पारम्भपरिग्रहता चारो आयुके आस्रवका कारण होता तो देवआयुके आस्रवकाभी कारण हुआ,"फिर स्वभाव मार्दवत्वञ्च"सू भाइसी अल्पारम्भपरिग्रहत्वम्में अन्तर्गतहोना चाहियेसोनहींकिया,क्योंकि१७वांसूत्रदेवायुकेआस्रवकाकारणनहींहैअतः१८वांसूत्रभिन्न है।

शीलानि च व्रतानि च शीलव्रतानि वक्ष्यन्ते । निष्क्रान्तः शीलव्रतेभ्यो निःशीलव्रतः । तस्य भावो निःशीलव्रतत्वम्॥ सर्वेषां ग्रहणं सकलायुरास्रवप्रतिपत्त्यर्थम्॥ किं देवायुषोऽपि भवति?। सत्यम्, भवति भोगभूमिजापेक्षया॥ अथ चतुर्थस्यायुषः क आस्रव इत्यत्रोच्यते–

शीलानि॥च*व्रतानि॥च*शीलव्रतानि॥	=बहुरि(सात)शील और(पांच)व्रत(मिलकर)शीलव्रतानि(वाक्य हुआ)
वक्ष्यन्ते*;T निष्क्रान्तः॥शीलव्रतेभ्यः॥	=उनको हम कहेंगे (अध्याय ७ सूत्र २१)शीलव्रत (दोनों) से रहित
निःशीलव्रतः॥;तस्य॥भावः॥निःशीलव्रतत्वम्॥॥	=सो निःशीलव्रत है, तिस(निःशीलव्रत)का भाव वा होना सो निःशीलव्रतपना है॥
सर्वेषाम्॥ग्रहणम्॥"सकल-आयुस्-आस्रव----	=सर्वेषाम्(सबोंका)ग्रहण(इस सूत्रमें)सर्व आयुके आस्रवका(कारणके)
प्रतिपत्ति-अर्थम्॥॥किं*देव-आयुषः॥॥अपि*भवतिT	=जतावनेके लिये है सो देव आयुके आस्रवका भी (कारण)होता है
सत्यम्॥॥भवति।भोगभूमिज-अपेक्षया॥ ॥	=सत्य है(परन्तु)भोगभूमिके उपजे जीवोंकी विवक्षासे है भावार्थ भोगभूमियोंके शीलव्रत नहीं है तो भी मंदकषायके प्रभावसे देव आयुका आस्रव होता है
अथ*चतुर्थस्य॥॥आयुषः॥॥कः आस्रवः॥इति अत्र उच्यते	=अबचौथा देव आयुका आस्रव है क्या ऐसे(अग्रिम सूत्र)इस स्थानमें कहा जाता है कि

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें जो श्वेताम्बर सम्प्रदायकी संस्कृत टीका है उसमें इस सूत्रके पाठमें भेद नहीं है परन्तु अर्थमें केवल देव आयुके आस्रवको छोड़कर शेष तीन आयुके आस्रवका कारणनिःशीलव्रतपनेको[संभतः]इस हेतुसेमानाहैकिबहारम्भपरिग्रहत्वंसेस्वभावमार्दवंच तकके सूत्रोंमें केवल तीन आयुका कथन है और 'सर्वेषाम्'का अर्थ यह लिया है कि सकल आयुके [जिनका ऊपर वर्णन कर चुके हैं] आस्रवका कारण निःशीलव्रतपना है ॥ इस सूत्रका भाष्य ऐसा किया है कि "निःशीलव्रतत्वंच सर्वेषांनारकतैर्यग्योनमानुषाणामायुषामास्रवो भवति यथोक्तानि च । "शील तथा व्रतोंसे रहित होना अर्थात् शील तथा व्रतोंका जो अभाव है वह नारक, तैर्यग्योन, तथा मानुष. इन सब आयुषोंके आस्रवका हेतु है । और जो जिस आयुषके आस्रवके कारण कह आये हैं वे भी हैं । जैसे अधिक आरम्भ परिग्रह नरककी, मायातिर्यग्योनिकी और अल्पारम्भ परिग्रह तथा स्वभाव मृदुता आदि मनुष्यकी आयुके आस्रवके हेतु हैं(सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अध्याय ६ सूत्र १६,१७ पृष्ठ १४९ कोर १,० दिगम्बर सम्प्रदायमें केवल भोगभूमियों को जिनके निःशीलव्रतत्व है उनको देव आयके आस्रवका कारण माना है अन्यको नहीं, श्वेताम्बर आम्नायकी श्री सिद्धसेनसूरि कृता भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका हस्तलिखित के पृष्ठ ५२० पर जिसमें बाइस सहस्रसे भी श्लोक अधिक हैं उसमें भी उन्नीसवां सूत्रमें 'सर्वेषाम्' शब्दसे केवल तीन नरक,तिर्यंच, मनुष्य आयुके आस्रव लिये हैं जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यसे प्रगट है "निःशीलत्वं निर्व्रतत्वं च सर्वेषां नारक तैर्यग्योनमानुषाणां यदायुस्तस्यास्रवोभवति" = निःशीलत्वम् निर्व्रतत्वम् च सर्वेषाम् नारक-तैर्यग्योन-मानुष्याणाम् यत्-आयुस-तस्य आस्रवः भवति

निःशीलत्वम् निर्व्रतत्वम् च सर्वेषाम् नारक-तैर्यग्योन-मनुष्याणाम्	=शीलपनेसेरहित और व्रतपनासे रहित अर्थात्सात शील पांच व्रतोंसे रहित सब नरक. तिर्यंच, मनुष्यकी ।
यत् आयुस् तस्य आस्रवः भवति	=जो (=यत्) आयु है तिसका (=तस्य) आस्रव [का कारण] होता है ॥

निम्नलिखित लेखसे दोनों सम्प्रदाय वालोंके समस्त सूत्र बह्वारम्भसे निःशीलव्रतत्व पर्यंतका भेद, अर्थ भेद, संख्या इत्यादि सर्व ज्ञात होजावेंगे।

दि० स० बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः = अधिक आरम्भता (और) बहुत परिग्रहता वा ममत्व नारकीकी आयुका आस्रवका कारण है ॥१५॥

श्वे० स० बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः = "अधिक आरम्भ अधिक परिग्रह नरककी आयु के आस्रवका कारण होताहै॥१६"सभाष्य०च अधिकहै

दि० स० माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥ = कपट, छल वा निकृति तिर्यंच योनिके आयुके आस्रवका कारण है ॥ १६ ॥

श्वे० स० माया तैर्यग्योनस्य ॥ १७ ॥ = "माया(कपट चारिता)तैर्यग्योनकी आयुके आस्रवकाकारण होतीहै॥१७॥सभाष्य०पृष्ठ१४६। एकपाठ है

दि० स० अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ = थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह वा तृष्णा मनुष्यकी आयुके आस्रव का कारण है ॥ १७ ॥

स्वभावमार्दवञ्च(स्वभावमार्दवंच॥१८॥ = स्वाभाविक कोमलता भी (=च) मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है अर्थात् अल्पारम्भ अल्पपरिग्रहता तो मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण है ही (सूत्र १७)
विना सिखाई हुई स्वभावसे कोमलता भी मनुष्यके आयुका आस्रव का कारण होती है और बीसवां सूत्रके भाष्यके अनुसार देव आयुके आस्रवका भी कारण है इसीलिये यह सूत्र १७वां सूत्रसे निकरवागयाहै

सूचना
१७, १८वां सूत्रके स्थानमें श्वे०स०में १८वां सूत्र है और 'आर्जव'शब्द अधिक है अर्थात् स्वाभाविक सरलताभी मनुष्य आयुके आस्रवका हेतु है॥

श्वे० स० अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवा-र्जवं मानुषस्य ॥ १८ ॥ } अल्पारम्भ तथा अल्पपरिग्रह, अर्थात् अल्प कार्य्योंका आरम्भ और परिग्रह जैसेकि जितनेमें अपना कार्य चलजाय उतनेहीकार्य्योंका आरम्भ करना. तथा जितनेमें अपना प्रयोजन होजाय उतनाही संचय वा परिग्रह करना, तथा स्वभावकी कोमलता व सरलता ये सब मानुष आयुके आस्रवके हेतु हैं ॥ १८ ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम् सूत्र पृष्ठ१४६

दि० स० निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥ = और (=च) शीलव्रतरहितपन सब (नरक तिर्यंच मनुष्य-देव) आयु के आस्रवका हेतु है ॥ १९ ॥

श्वे० स० निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥ = "शील और व्रतसे रहित होना, सब प्रकारकी आयु वालोंके आस्रवका हेतु है ॥ १९ ॥ सभाष्य० "विशेष व्याख्या-शील तथा व्रतोंसे रहित होना अर्थात् शील तथा व्रतोंका जो प्रभाव है वह नारक, तैर्यग्योन, तथा मानुष, इन सब आयुषोंके आस्रवका हेतु है ॥ और जो जिस आयुषके आस्रवके कारण कह आये हैं वे भी हैं (=यथोक्तानि च)। जैसे-अधिक आरम्भ परिग्रह नरककी,माया तिर्यग्योनिकी और अल्पारम्भ परिग्रह तथा स्वभाव मृदुता आदि मनुष्यकी आयुके आस्रव के हेतु हैं (अ० ६ सूत्र १६-१७-१८) ॥१९॥ सभाष्य० पृष्ठ १४६, १५०

१९वां सूत्रकी संख्या और पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है हमने 'सर्वेषाम्'से नरक-तिर्यंच मनुष्य-देव-आयुके आस्रव लिये हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायने वे सब आस्रव लिये हैं जो १९वां सूत्रसे पहिले कहे हैं, अर्थात् देव आस्रवको छोड़ दिया है।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥

सरागसंयमः संयमासंयमश्च व्याख्यातौ । अकामनिर्जरा-अकामश्चारकनिरोधबन्धनबध्येषु क्षुत्तृष्णानिरोधब्रह्मचर्यभूशय्यामलधारणपरितापादिः । अकामेन निर्जरा अकामनिर्जरा।

सरागसंयमसंयमासंचमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥

(१)सरागसंयम-संयमासंयम-अकामनिर्जरा-बालतपांसि $\frac{5}{3}$॥ दैवस्य $\frac{5}{6}$ (आयुषः$\frac{5}{6}$॥ आस्रव-हेतवः भवन्ति)

(२)सरागसंयम- =कर्मनाश करनेमें राग तथा व्रतादिक शुभ आचरणमें राग सहित संयमभाव;

(३) संयमासंयम =त्रसहिंसाका त्यागरूप संयम और स्थावर हिंसाका त्याग नहीं सो असंयम इस प्रकार संयमरूप और असंयमरूप दोनों प्रकारके परिणाम सो संयमासंयम है

अकाम-निर्जरा- =अपनी इच्छा न रहते भी पराधीनताकी अपेक्षासे दुष्ट कुकर्मादि कार्य न करना तथा भोजन विषयादिक सेवन न करसकना सो अकाम निर्जरा है

बालतपांसि$\frac{3}{3}$॥ दैवस्य$\frac{5}{6}$ आयुषः$\frac{5}{6}$॥ आस्रव-हेतवः$\frac{5}{6}$ भवन्ति =आत्मज्ञानरहित तप, अज्ञान तप, मूढ़तासे तप-तीनों देवकी आयुके आस्रवके कारण हैं

सूत्रार्थ :-सरागसंयमः$\frac{5}{6}$ संयमासंयमः$\frac{5}{6}$ च व्याख्यातौ$\frac{5}{3}$; =सरागसंयम तथा(=च) संयमासंयम वर्णन कियेगये (अध्याय ६ सूत्र १२)

अकामः$\frac{5}{6}$ च* =बहुरि (=च) इच्छा बिना अर्थात् अपनी इच्छा न रहते भी

अरक-निरोध- = बन्दीगृह (=अरक) में रोक अर्थात् बंदीगृहके भुगतनेमें

बन्धन-बध्येषु$\frac{3}{3}$॥ क्षुत्-तृष्णा-निरोध- =बन्धनसे बांधे जानेमें, क्षुधा तृषाका भुगतना

ब्रह्मचर्य-भूशय्या- =स्त्री संगमसे रहित अर्थात् स्त्री न मिलनेके निमित्तसे ब्रह्मचर्य, भूमिशयन

मलधारण-परितापादिः$\frac{5}{6}$। =(शरीर विषै)मलधारण करना, दुःखपरिताप आदिक सहना

अकाम-निर्जरा$\frac{5}{6}$॥; अकामेन$\frac{3}{6}$ निर्जरा$\frac{5}{6}$ अकामनिर्जरा$\frac{5}{6}$॥; =सोअकामनिर्जरा है-परिणामोंको नहीं बिगड़कर जोदुख सहना सो अकाम निर्जरा है।

(१) इस सूत्रका दोनोंआम्नायोंमेंपाठ और अर्थएकसाहै।सरागसँयम-सँयमासँयम औरसरागसंयम संयमासंयम चारों वाक्य ठीक हैं संयम=सम्+यम देखो अध्याय६पृष्ठ६१) (२)सरागसंयम-यह महाव्रती मुनिके होता है। (३) संयमासंयम (=देशव्रत=अणुव्रत) यह अणुव्रती अर्थात् श्रावकके होता है॥ (४) बालतप=मूढ़तप-तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपसे अनभिज्ञ मिथ्यादृष्टिकी बाल और उसके तपको बाल तप वा अज्ञान तप कहते हैं (देखो सभाष्य १५०)

बालतपो मिथ्यादर्शनोपेतमनुपायकायक्लेशप्रचुरं निकृतिबहुलव्रतधारणम् ॥ तान्येतानि दैवस्यायुष आस्रवहेतवो वेदितव्याः ॥ किमेतावानेव दैवस्यायुष आस्रवो ? नेत्याह-

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

किम् ? दैवस्यायुष आस्रव इत्यनुवर्तते ॥

मिथ्यादर्शन-उपेतम्[1]॥ अनुपाय-कायक्लेश-प्रचुरम्[2]॥ निकृति-बहुल-व्रतधारणम्[3]॥ बालतपः[4]

= मिथ्यात्वकरि सहित(=उपेतम्=युक्त)बिना उपाय जिसमें बहुत कायक्लेश हो = कपटसे अनेक संख्या वाले(अर्थात् अनेक प्रकारके) व्रतधारना सो बालतप है अर्थात् तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञतासे अनेक प्रकारके काय क्लेश सहना और व्रत करना सो बालतप है

तानि[1]॥ एतानि[2]॥ दैवस्य[3] आयुषः[4]॥ आस्रवहेतवः[5] वेदितव्याः[1], किम्*एतावान्[2] एव*दैवस्य[3]॥ आयुषः[4]॥ आस्रवः[5] ? न*इति*आह T

= ते इतने देवकी आयुके आस्रवके कारण = जानना चाहिये । क्या इतनाही देवकी = आयुके आस्रव (का कारण) है ?, (उत्तर)नहीं, इस प्रकार कहते हैं कि

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥ = **सम्यक्त्वम् च(दैवस्य आयुषः आस्रव हेतुः भवति)**

सूत्रार्थः-सम्यक्त्वं[1]॥ च*दैवस्य[2] आयुषः[3]॥ आस्रवहेतुः[4] भवति =सम्यग्दर्शन भी (=च) देवकी आयुकेआस्रवका कारण होता है परन्तु पृथक् विधानसे अर्थात् २०वां सूत्रमें सम्यक्त्वको न मिलाकर भिन्न सूत्ररचनेसे कल्पवासी देवोंकी आयुके आस्रवकाकारण (सम्यक्त्व) है

किम्[1]॥ दैवस्य[2]॥ आयुषः[3]॥ आस्रवः[4] इति*अनुवर्तते T =क्या है ? देवकी आयुका आस्रव ऐसा(वाक्य)(सम्यक्त्वं च सूत्रमें) अनुवर्तता है अर्थात् 'सम्यक्त्वं च' सूत्रमें देवकी आयुका आस्रव होता है इतना वाक्यशेष है अथवा इतना वाक्य न्यून है सो मिलाकर पढ़ना चाहिये तब सूत्रार्थ इस प्रकार होगा कि सम्यग्दर्शन भी देवकी आयुका आस्रव का कारण होता है ॥

अविशेषाभिधानेऽपि सौधर्मादिविशेषगतिः । कुतः ?पृथक्करणात् स्यादेवं,पूर्वसूत्रे उक्त आस्रवविधिरविशेषेण प्रसक्तः,तेन सरागसंयमसँयमासँयमावपि भवनवास्याद्यायुष आस्रवौ प्राप्नुतः॥ नैष दोषः- सम्यक्त्वाभावे तद्व्यपदेशाभावात्तदुभयमप्यत्रान्तर्भवति ॥ आयुषोऽनन्तरमुद्दिष्टस्य नाम्न आस्रवविधौ वक्तव्ये, तत्राऽशुभनाम्न आस्रवप्रतिपत्त्यर्थमाह—

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥

अविशेष-अभिधाने३'।।अपि*सौधर्म-आदि-विशेषगतिः३।।;कुतः ? पृथक्करणात्३'।।
यदि*एवम्*,
पूर्वसूत्रे३'।।उक्तः३।आस्रवविधिः३।अविशेषेण३'प्रसक्तः३।,
तेन३',सरागसंयम-संयमासंयमौ३।।अपि*
भवनवासिन्-आदि-आयुषः३'।।आस्रवौ३' प्राप्नुतः I ॥
न*एष३'।दोषःसम्यक्त्व-अभावे३'तद्व्यपदेश-अभावात्३'।।
तद्-उभयम्३'।।अपि*अत्र*अन्तर्भवति I ॥
आयुषः३'।।अनन्तरम्३'।।उद्दिष्टस्य३'।।नाम्न३'।।
आस्रवविधौ३' वक्तव्ये३',तत्र*अशुभ-नाम्नः३'।।
प्रतिपत्ति-अर्थम्३'।। आह I

=(इस सूत्रमें देवकी जातिका) विशेष कथन न करने पर भी सौधर्मआदिक
=मुख्यका(=विशेष)ज्ञान होताहै(प्रश्न)क्योंकर(उत्तर)पृथक्विधानसे भिन्न सूत्र रचनेसे
=(पुनः प्रश्नः) जो ऐसा है अर्थात् २०वां सूत्रमें सम्यक्त्वको न मिलाकर भिन्न २१वां सूत्र रचनेसे कल्पवासी देवोंकी आयुका आस्रवका कारण है ।
=तो पहिले (२०वां) सूत्रमें वर्णित आस्रव रीति विशेष रहित प्राप्त हुई ।
=तिस (विशेष रहित आस्रव विधि)करि सरागसंयम, संयमासंयम (दोनों) भी
=भवनवासी(देव)आदिकी आयुके आस्रवोंको पाते हैं वा ग्रहण करते हैं
=उत्तर)यह दोष नहीं है क्योंकि सम्यक् दर्शनके न होनेपर उन(सरागसंयम-संयमासंयमके नामका अभाव होता है अर्थात् सम्यक्त्व न होवे तो सराग संयम और संयमासंयम नाम को ही नहीं प्राप्त कर सकते
=वह(सरागसंयम--संयमासंयम)दोनों भी यहां इस सूत्रमें गर्भित हैं
=आयुके अत्यन्त समीप वर्णित् वा कथित नाम (कर्म) की
=आस्रव विधिके वर्णनमें तहां अशुभ नामकर्म आस्रवके
=कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥

=योग वक्रता विसंवादनं च अशुभस्य नाम्नः (कर्मणः आस्रव हेतुः भवति)

योगस्त्रिप्रकारो व्याख्यातः । तस्य वक्रता कौटिल्यम् । विसंवादनमन्यथाप्रवर्तनम्॥ ननु च नार्थभेदः । योगवक्रतैवान्यथाप्रवर्तनम्॥ सत्यमेवमेतत्-स्वगता योगवक्रतेत्युच्यते। परगतं

सूत्रार्थः-योग–वक्रता॥विसंवादनम्॥ च॥ = (मन-वचन-कायके)योगोंकीकुटिलतावाअसरलताअन्यथाप्रवर्तनकराना वा प्रवर्तावना

अशुभस्य॥नाम्नः॥कर्मणः॥आस्रव–हेतुः॥ = अशुभ नाम कर्मके आस्रवका कारण होता है अर्थात् मनमें कुछऔर विचारना, वचनसे कुछऔर कहना, और कायसे कुछ अन्य ही क्रिया करना(=योग वक्रता) तथा अन्यको धर्म मार्गसे छुड़ाय उन्मार्गमें प्रवृत्त कराना अथवा दूसरेको सुमार्गसे कुमार्गमें प्रवर्तावना (=विसंवादन) अशुभ नाम कर्मके आस्रवके कारण हैं और(=च)मिथ्या दर्शन, चुगुली खाना,चलायमान चित्तपना,हीनाधिक मान तथा तखरीसे तोल देना लेना, परकी निन्दा करना अपनी प्रशंसा करनी इत्यादिक हैं (देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका अन्तका भाग)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बाइसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दशःहिन्दी अनुवाद

योगः॥त्रिप्रकारः॥व्याख्यातः॥;तस्य॥ = योग तीन प्रकार कहेगये (देखो अध्याय ६ सूत्र १) तिस(तीन प्रकारके योग)का

वक्रता॥कौटिल्यम्॥॥; अन्यथा*प्रवर्तनम्॥॥ = टेढ़ापन सो कुटिलता है अन्यथा प्रवर्तन वा अन्यथा काममें जोड़ना अथवा अन्य को अन्य प्रकार से काममें लगावना अथवा अन्यथा प्रयोजना

विसंवादनम्॥॥;ननु*च*न–अर्थभेदः॥ । = सो विसंवादन है । वहुरितर्क (वक्रता और विसंवादनमें) अर्थ भेद न हुआ

योग–वक्रता॥॥एव*अन्यथा*प्रवर्तनम्॥॥; = क्योंकि योगोंकी वक्रता ही अन्यथा प्रवर्तन है

सत्यम्॥॥एवम्*एतद्॥॥ = (उत्तर)सत्य ही यह है|

स्व-गता॥योग-वक्रता॥इति*उच्यते ।।परगतम्॥॥ = (परन्तु)आपकी अपेक्षा योग वक्रता है ऐसा कहा गया है। अन्यकी अपेक्षा

विसंवादनं, सम्यगभ्युदयनिःश्रेयसार्थासु क्रियासु प्रवर्तमानमन्यं तद्विपरीतकायवाङ्मनोभिर्विसंवादयति मैवं कार्षीरेवं कुर्विति ॥ एतदुभयमशुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्॥ चशब्देन मिथ्यादर्शनपैशुन्यास्थिरचित्ततातूटमान तुलाकरणपरनिन्दाऽऽत्मप्रशंसादिःसमुच्चीयते ॥

(१) विसंवादनम्[1]॥, सम्यक्-अभ्युदय-निःश्रेयस-अर्थासु[2]॥क्रियासु[3]॥प्रवर्तमानम्[4]॥अन्यम्[5]॥ तद्-विपरीत-काय-वाग्-मनोभिः[6]॥ विसंवादयति[7] मा*एवम्*[8] कार्षीः[9] एवम्[10] कुरु[11] इति; एतद्[12]॥ उभयम्[13]॥अशुभ-नामकर्म आस्रव-कारणम्[14]॥ वेदितव्यम्[15]॥;च*शब्देन[16]॥मिथ्यादर्शन-पैशुन्य-अस्थिर-चित्तता-[17]कूटमान-तुलाकरण परनिंदा-आत्मप्रशंसा-आदिः[18] समुच्चीयते ।

=विसंवादन है। भली(=सम्यक्) कल्यानकरनहारी(=अभ्युदय) स्वर्गमोक्षके(=निःश्रेयस) =उपायकी (=अर्थासु) क्रियायोंमें अन्य प्रवर्तता हो तो =उस(भली कल्यानकरनहारी-स्वर्ग-मोक्षके उपायकी क्रियायों)के प्रतिकूल मनवचनकायकरि =अन्यथा प्रवर्ताबै, झूठी प्रयोजना करै, न करो ऐसेकर, (वक्रता विसंवादमें) ऐसा (भेद) है॥ =यह दोनों (योगवक्रता तथा विसंवादन) अशुभ नामकर्मके आस्रवका कारण =जानना चाहिये॥(इस सूत्रमें) चशब्दकरि मिथ्या दर्शन, किसीकी झूठी बुराईकरना =चलायमान चित्तपना, कपट रूप (=कूट) माप वा प्रमाण (=मान) मायारूप (=कूट) =तखड़ी काममें लाना अर्थात् दूसरेको हीन नाप देना, घाटि तौल देना, अपने लिये, अन्य मित्रादिकोंके लिये अधिक माप लेना बढ़ती तौल कर लेना ॥

परनिंदा-आत्मप्रशंसा-आदिः[19] समुच्चीयते । =परकी निन्दा करना अपनी प्रशंसा करना, आदि समुच्चय किये जाते हैं वा और मिलाये जाते हैं

[1] विसंवादनका अर्थ अन्यथा प्रवर्तन है, देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ३३४ पंक्ति २-३] अन्यथाका अर्थ झूठ है [पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २९] प्रवर्तनका अर्थ प्रवर्तावना अथवा प्रयोजनाका है इसलिये विसंवादयति-झूठी प्रयोजना करता है (२) कृ अनिट् धातु अर्थात् वहधातु है जो क्रियाके प्रत्ययके प्रथम इ ग्रहण नहीं करता, इसकी कृदि संज्ञा होकर कार् हुआ और सीस् मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद लुङ् वा अद्यतनीवृत्तिका प्रत्यय है जो धातुके पश्चात् लगाया जाता है इस लिये कार्+सीस् हुआ र् के पश्चात् वा लगतेही स्का ष् होकर षीस् बन गया कार्+षीस् रूप हुआ=कार्षीः, अजोड़ो परन्तु अद्यतनी वृत्ति वा लुङ् के साथ जब निषेध वाचक मा लगाया जाता है तब वह आज्ञा सूचक का अर्थ देता है और अट का अ गिर जाता है इस लिये माकार्षीः का अर्थ हुआ मत कर वा न कर ॥(३) कृ आठवां तनादि गणका धातु है क्रियाके प्रत्ययके पहिले उ विकरण लगाया जाता है कृ का कुर् डित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले हो जाता है, इसलिये कुर्+उ=कुरु और आज्ञासूचक मध्यम पुरुष एक वचन का हि गिर जाता है तब आठवां गणमें कुरु+हि से कुरु बन जाता है ॥(४) कूटमानतुलाकरण=कूटमानकरण कूट तुलाकरण अर्थात् कूट शब्द दोनों पर लागू है

अथ शुभनामकर्मणः क आस्रव इत्यत्रोच्यते—

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

कायवाङ्मनसामृजुत्वमविसंवादनं च तद्विपरीतम्। चशब्देन समुच्चितस्य च विपरीतं ग्राह्यम्। धार्मिकदर्शनसद्भावोपनयनसंसरणभीरुताप्रमादवर्जनादि। तदेतच्छुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्।

अथ*शुभ-नामकर्मणः[६]॥[१]कः[१]आस्रवः[६]इतिअत्रउच्यते=अब शुभ नामकर्मका क्या आस्रव है ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता है कि

तद्विपरीतम् शुभस्य॥ २३॥

=तद्विपरीतं शुभस्य(नाम्नः कर्मणः आस्रव हेतुः भवति)

तद्-विपरीतम्[६]॥शुभस्य[६]॥नाम्नः[६]॥कर्मणः[६]॥ आस्रव-हेतुः[१] भवति T

=उस(योग वक्रता विसंवादनं च)के प्रतिकूल वा उलटा, शुभ नामकर्मके =आस्रवका कारण होता है अर्थात्मन-वचन कायके योगोंकी सरलता वा आर्जवता यथार्थ प्रवर्तन कराना।अविसंवादनं,विसंवादका अभाव।और(=च)धार्मिक दर्शन-सद्भावउपनयन संसरणभीरुता-प्रमादि वर्जनादि(देखो वृत्ति २-३ वाक्य)शुभनाम कर्मके आस्रवका कारणहै

काय-वाग्-मनसाम्[६]॥ऋजुत्वम्[१]॥अविसंवादनम्[१]॥च*=काय वचन-मनकी सरलता वा आर्जवता, विसंवादनका अभाव और (=च)

तद्-विपरीतम्[१]॥; =धार्मिकदर्शन-आदिक(=च)पूर्व कथितसे(=तद्)वा"योगवक्रता विसंवादनं च"केप्रतिकूलहै

चशब्देन[३] =(बाइसवाँ सूत्रका प्रतिकूल लेनेसे इस सूत्रमें चकारभी होगा सो) चकारकरि

समुच्चितस्य[६]॥ च *विपरीतम्[१]॥ ग्राह्यम्[१]॥; =समुच्चित किये गयेके उलटे वा[प्रतिकूल भाव]भी[=च]लिये गये हैं, ग्रहण किये गये हैं अर्थात् २२वाँ सूत्रमें चकारकरि मिथ्यादर्शन-शून्य इत्यादिक लिये थे [देखो वृत्तिकी ६ पंक्ति] यहां पर बाइसवाँ सूत्रको उलटनेसे 'ऋजुयोगोऽविसंवादनं च' वा 'प्रयोगताऽविसंवादनं च' प्राप्त हुए, इस प्राप्त हुए सूत्रके चकारसे धार्मिक दर्शन-सद्भावादिक लिये गये हैं जो बाइसवां सूत्रके चकारसे प्राप्त हुये भावोंसे विरुद्ध हैं॥

धार्मिकदर्शन-सद्भावउपनयन-संसरणभीरुता-प्रमादवर्जन आदि[१]॥;तद्[१]॥एतद्[१]॥ =धर्मात्मा वा धर्मशील [पुरुषों]का दर्शन, साधुभावोंको धरना =संसारसे भयभीत प्रमादका त्याग आदिक है सो [=तद्] यह [=एतद्]

शुभनामकर्म-आस्रवकारणम्[१]॥वेदितव्यम्[१]॥ =शुभ नाम कर्मके आस्रवका कारण जानना चाहिये

आह किमेतावानेव शुभनाम्न आस्रवविधिरुतकश्चिदस्ति प्रतिविशेषः ? इत्यत्रोच्यते यदिदं तीर्थकरनामकर्मानन्तानुपमप्रभावमचिन्त्यविभूतिविशेषकारणं त्रैलोक्यविजयकरं तस्यास्रव-विधिविशेषोऽस्तीति ॥ यद्येवमुच्यतां के तस्यास्रवाः ? इत्यत इदमारभ्यते—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥

आह T किम्*एतावान्[1]एवशुभनाम्नः[6]।' आस्रवविधिः[1] = क्या इतना ही शुभ नाम (कर्म) के आस्रवका क्रम (=विधि) है,
उत*कश्चित्[1]अस्ति T प्रतिविशेषः[1]इति*अत्र*उच्यते T = अथवा (=उत)कोई और प्रतिविशेष है इस प्रकार इस स्थानमें कहाजाता है कि
यत्[1]॥इदम्[1]॥ तीर्थकरनामकर्म[1]॥अनन्त-अनुपम- = जो(=यद्)यह(=इदम्) तीर्थंकर नामा नामकर्म है सो अनन्त, उपमा रहित
प्रभावम्[1]॥' अचिन्त्य-विभूति-विशेष-कारणम्[1]॥' = तेज और सामर्थ्य वाला(=प्रभाव)हैवह अचिन्त्य ऐश्वर्य्य वा विभव विशेषका कारण है
अर्थात् वह विभव जो इन्द्रियजनित विचारमें नहीं आसक्ता है ॥
त्रैलोक्य-विजयकरम्[1]॥' तस्य[6]॥आस्रव— = तीन लोकविषैं विजय करने वालाहै तिस (तीर्थंकर नामा नाम कर्म)केआस्रवका
विधि-विशेषः[1]अस्ति T इति*यदि*एवम्*उच्यताम् T = विधि विशेष है। यदि इस प्रकार है तो कहा जाना चाहिये कि
के[1] तस्य[6]॥' आस्रवाः[1] = कौन तिस (तीर्थंकर नामा नाम कर्म)के आस्रवके कारण हैं
इति*अतः*इदम्[1]॥' आरभ्यते T = इसलिये यह (अग्रिम सूत्र)आरम्भ वा प्रारम्भ किया जाता है

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी

पदच्छेदः—(१) दर्शन-विशुद्धिः[१], विनयसम्पन्नता[२], (२) शीलव्रतेषु[३] अनतिचारः [४], अभीक्ष्ण-ज्ञान-उपयोगः [५], (अभीक्ष्ण) संवेगः[६],(३) शक्तितः*त्यागः[७], शक्तितः*तपसः[८],(४)साधुसमाधिः[९], वैयावृत्यकरणम्[१०],(५) अर्हद्भक्तिः[११](अर्हद्भक्तिः) आचार्यभक्तिः[१२] बहुश्रुतभक्तिः [१३], प्रवचनभक्तिः[१४], (६) आवश्यक-अपरिहाणिः[१५], मार्गप्रभावना[१६],(७) प्रवचनवत्सलत्वम्[१७] इति* (८) तीर्थकरत्वस्यम्[१८] [नामकर्मणः[१९] आस्रव-कारणानि [२०] भवन्ति] ॥

सूत्रार्थः—(१) दर्शनविशुद्धिः[१] =पच्चीस दोष रहित और आठ गुण वा अंग सहित निर्मल उज्वल वा अतीचार रहित सम्यक्त्व,

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकामें और दिगम्बर समाजकी प्रतियोंमें "दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता" सूत्रके इतने भागका एक पाठ और एकसा अर्थ है ॥ (२) "शीलव्रतेष्वनतिचारो" इस वाक्यमें और सातवां अध्यायके तेईसवां सूत्रमें अतिचार पाठ है, कहीं कहीं अतीचार पाठ है दोनों शब्द ठीक हैं, "अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ" इस वाक्यका सर्व दिगम्बर सम्प्रदायकी प्रतियोंमें एकसा पाठ है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें 'अभीक्ष्णं ज्ञानोपयोग संवेगौ" पाठ है ॥ अभीक्ष्णम् को अव्यय माना है और समास नहीं किया है ॥ (३) "शक्तितस्त्यागतपसी" इतने भागका समस्त प्रतियोंमें एकसा पाठ है (४)"साधुसमाधिः वैयावृत्यकरणम्" ऐसा दिगम्बर सम्प्रदायका पाठ है, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें 'संघ' शब्द अधिक है और साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणम् का समास करके इस प्रकार पाठ है कि 'संघसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणम्" अर्थ भी भाषामें यह किया है कि "संघ(=चातुर्वर्ण्यम् तथा साधुओंकी समाधि और वैयावृत्यकरण अर्थात् संघकी समाधि (=सनाधान) और साधुओंका वैयावृत्यकरण अर्थात् शरीर-वाक् तथा मनोयोगसे सेवा टहल करनी दिगम्बर सम्प्रदायमें इस प्रकार भाषार्थ है कि मुनियोंके विघ्न और कष्टको दूर करके उनके संयमकी रक्षा करना (=साधुसमाधि) और रोगी साधु मुनि गणोंकी सेवा टहल)करना (वैयावृत्यकरणम्) (५) "अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिः"इस वाक्यका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायमें एकसा है ॥ (६)"आवश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना"ऐसा पाठ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें है और इस सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें, मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक और मुद्रित तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें है परन्तु "आवश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावना" ऐसा पाठ अर्थ प्रकाशिका सदासुखदासजी तत्त्वार्थसूत्र लघुटीकामें, जयचन्द्रायकी हस्तलिखित और मुद्रित वचनिकाओंमें, निर्णयसागरयंत्रमुद्रित नित्यपाठसंग्रह और सनातन जैनग्रन्थमालामें है, इसका कारण यह है कि पूर्वोक्तने आवश्यक-अपरिहाणिः और मार्गप्रभावनाको भिन्न भिन्न वाक्य रक्खे हैं और उत्तरोक्तने दोनों वाक्योंको मिलाकर समास कर दिया है इसलिये विसर्ग अथवा रुका लोप होकर एक वाक्य होगया है, अर्थ समस्तका एकसा है ॥ (७) "प्रवचनवत्सलत्वमिति"यह भाग सब प्रतियोंमें एकसा है अर्थके सम्बन्धमें आगे लिखा है देखो पृष्ठ ८७ (८) "तीर्थकरत्वस्य" इस भागका पाठ दिगम्बर सम्प्रदायकी प्रतियोंमें एकसा हैपरन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "तीर्थकृत्त्वस्य" पाठ है अर्थमें कुछ भेद नहीं है ॥ इसी प्रकार आठवां अध्यायके "गतिजातिशरीराङ्गो.....तीर्थकरत्वंच इसमूत्रमें भी "तीर्थकरत्वंच" के स्थानमें पूर्वोक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'तीर्थकृत्त्वंच' पाठ है ॥

(१) शंका कांक्षादि आठ दोष, आठमद, षट अनायतन और तीन मूढता ये पच्चीस दोष इस प्रकार हैं कि (क) शंका=सर्वज्ञ अर्हंत

वीतरागके द्वारा वर्णित तत्त्वोंके स्वरूपमें सन्देह करना (ख) कांक्षा=इस लोक परलोक सम्बन्धी भोगोंमें तथा मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान-आचरण तप आदिकोंमें वांछा (ग) विचिकित्सा=शरीरादिकको देखि ग्लानता, साधुओंको जो स्नान न करें-दांत न मलें-केशलोंच करें इत्यादिकोंमें तथा उनके अन्य गुणोंमें और धर्मात्माओंके गुणोंमें ग्लानि करना (घ) मूढ़तादोष=कुमार्गमें वा मिथ्यामतमें और मिथ्यातियोंमें मनकर सम्मत होना, कायकर सराहना करना, वचनकर प्रशंसा करना (ङ) अनुपगूहन=अनुपबृंहण=पवित्र मार्ग अर्थात् जिन मार्गकी निन्दा दूर न करना सहन करना (च) अस्थितिकरण=कोई धर्मसे, सम्यग्दर्शनसे तथा चारित्रसे डिगजाय तो उसको धर्मादिकमें दृढ़ न करना (छ) अवात्सल्य=धर्ममें, धर्मात्माओंमें तथा धर्मके कारणोंमें प्रीति वा अनुराग न रखना (ज) अप्रभावना=अपने चारित्रसे अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेसे जैन धर्मके महत्व वा बड़प्पनको प्रगट न करना ॥ (आठ मद) (झ) ज्ञान अथवा विद्याका मद (ञ) पूजा, प्रतिष्ठा वा अधिकारका मद ("पूजा पूज्यपनाका मद ऐश्वर्यका मद" सदासुखदासजी कृतटीका रत्नकांडश्रावकाचार मुद्रित पृष्ठ २४) (ट) कुलका गर्व करना (पिताके वंशको कुल कहते हैं) सदासुखदासजी कृता रत्नकाण्डश्रावकाचारकी वचनिका पृष्ठ ३४) (ठ) जातिका मद वा जातिका गर्व करना (माता की पक्ष जाति है) सदासुखदासजी कृता रत्नकाण्डश्रावकाचारकी वचनिका पृष्ठ ३४) (ड) बल अथवा शक्तिका मद (ढ) ऋद्धिका मद, धनका मद, सम्पत्तिका मद, अथवा सम्पदाका मद, इसको धर्मविलासके ४६वां कवित्तमें लाभका मद माना है, और अर्थ प्रकाशिकामें इसी सूत्रके नीचे हस्तकी कलाका मद करना माना है (ण) तपका मद, व्रताचरणका गर्व करना (त) वपु अथवा शरीरके रूपादिकका मद कहा भी है

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं । बलं ऋद्धिं तपः वपुः ॥ अष्टौवाश्रित्य मानित्वं स्मयं आहु गतस्मयाः ॥

भावार्थ—ज्ञानम् पूजाम् कुलम् जातिम् =विद्या, पूज्यपना-प्रतिष्ठा-ऐश्वर्य-अधिकार, कुलका पिताका वश, जाति(माताकी पक्षसे जातिहै)
बलम् ऋद्धिम् तपः वपुः =बल-शक्ति-सामर्थ्य, ऋद्धि-धन-सम्पत्ति-सम्पदा, तप, वपु अथवा शरीरके रूपादिक,
अष्टौ आश्रित्य मानित्वम् स्मयम् आहुःगतस्मयाः =आठोंके आश्रय करि गर्वपनाको, अहंकार वर्जित (आचार्य) मद कहते हैं (=स्मयम् आहुः।

षट् अनायतन= वह वस्तुयें जिनमें धर्म न हो, धर्मसे रहित हों—

(थ) कुदेव अर्थात् रागी द्वेषी मोही हो और देवपना करि रहित सो है (द) कुधर्म जो इष्ट स्थानमें धरने वाला न हो जैसे हिंसादिकोंमें तथा पशुओंके होम रूप यज्ञमें धर्म मान लेता हो (ध) कुगुरु अर्थात् जो विषय कषायके आधीन प्रवर्तने वाला हो परिग्रहधारी आरम्भधारी हो, सच्चे ज्ञान ध्यान और तपकरि वर्जित सो है (न) (प) (फ) और इन कुदेव-कुधर्म-कुगुरुके सेवने वाले इस प्रकार ये छह अनायतन हैं, इन छहो (कुदेव-कुधर्म-कुगुरु-और इन तीनोंके सेवने वाले में धर्म नहीं तिससे इनको अनायतन कहते है ब) लोक मूढ़ता अर्थात् धर्म समझ कर गंगा यमुनादि नदियोंमें तथा समुद्रमें स्नान करना बालुका और पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना अग्निमें जलना, जैसे पतिके पीछे सती होना सो है ॥ (भ) देव मूढता अर्थात् आशावान् होता हुआ वरकी इच्छा करके राग द्वेष रूपी मैलसे मलीन ऐसे क्षेत्रपाल पद्मावती इत्यादि देवी देवताओंकी

विनयसम्पन्नता ॥ =विनयकी युक्तता–विनयकी परिपूर्णता अर्थात् चार प्रकारकी विनय जैसे ज्ञानकी विनय करना, दर्शनकी विनयकरना,चारित्रकी विनयकरना,उपचारकी विनय करना(देखो अध्याय ९ सूत्र २३वां)

शीलव्रतेषु ॥ अनतिचार: ॥ =शील और व्रतोंमें निर्दोष पालन अर्थात् शील तथा व्रतोंको दोष रहित पालन करना

अभीक्ष्णज्ञानोपयोग: ॥ =निरन्तर (=अभीक्ष्णम्=सदा) तत्त्वाभ्यास करते रहना

(१) अभीक्ष्णसंवेग: ॥ =संसारके दु:खोंसे निरन्तर(=अभीक्ष्ण)भयभीत रहना,संसारसे नित्य वैराग्य और धर्मसे सदा अनुराग–

जो उपासना कीजाती है सो देव मूढ़ताहै॥(म)पाखण्ड मूढ़ता-गुरु मूढ़ता अर्थात् परिग्रह आरम्भ और हिंसा सहित संसारके चक्रमें रहनेवाले पाखण्डी साधु तपस्वियोंका आदर, सन्मान,भक्ति,पूजा करना सो गुरु मूढ़ता वा पाखंड मूढ़ता है(ये तीन मूढ़ताऐं रत्नकरण्डश्रावकाचारके २२–२३–२४वें श्लोकोंका शब्दशः अनुवाद है ॥ आठ गुण(य) निःशङ्कित अंग अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशीके द्वारा वर्णित वस्तु स्वरूपमें सन्देह रहित अचल श्रद्धान वा प्रतीत ॥ (र) निःकांक्षित गुण अर्थात् इसलोक परलोक सम्बन्धी सांसारिक सुखकी भोगोंकी कांक्षा नहीं करना (ल) निर्विचिकित्सा अंग धर्मात्माओंके शरीरमें तथा गुणोंमें ग्लानि न करना प्रीति करना ॥ (व) अमूढ़दृष्टिअंग अर्थात् कुमार्गमें वा मिथ्यामतमें और मिथ्या तियोंमें मनकर सम्मत न होना कायकरि सराहना नहीं वचनकरि प्रशंसा नहीं करनी (श) उपगूहन वा उपबृंहण अंग अर्थात् पवित्र मार्ग–जिन मार्गकी निन्दाको दूर करना,सहन नहीं करना (ष) स्थितिकरण गुण अर्थात् कोई धर्मसे सम्यक् दर्शनसे तथा सम्यक्चारित्रसे डिगता हो तो उसको उसमें दृढ़ कर देना, (स) वात्सल्य अंग अर्थात् धर्ममें, धर्मात्माओंमें तथा धर्मके कारणोंमें प्रीति, अनुराग अथवा भक्ति रखना, (ह)प्रभावना गुण अर्थात् अपने चारित्रसे अपने कार्योंसे तथा अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करनेसे जैनधर्मके महत्व बढ़प्पनकोप्रगटकरनावृद्धि करना (१) "अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ" ऐसा पाठ श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें है "अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ" ऐसा दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें पाठ है अर्थात् श्वेताम्बर सम्प्रदायवालोंने अभीक्ष्णम् अव्ययको (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३८ और अमरकोष–अव्यय वर्ग श्लोक १) 'ज्ञानोपयोग संवेगौ" से भिन्न रक्खा है, दिगम्बर सम्प्रदायने अभीक्ष्ण को और ज्ञानोपयोग-संवेगौ का समास कर दिया है, 'अभीक्ष्णम्'का अर्थ निरन्तर-सदा-नित्य-बारम्बार–पुनः पुनर्-असकृत्—मुहुस् शश्वत् है। अब तर्कना इस बात पर है कि अभीक्ष्णम् शब्दका सम्बन्ध, केवल ज्ञानोपयोगके साथ है कि संवेगके साथ भी है अर्थात् पदच्छेद करनेमें अभीक्ष्णम् ज्ञानोपयोगसंवेग है, अथवा अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग और अभीक्ष्ण संवेग है जैसा कि मैंने ऊपर (पदच्छेद) किया है क्योंकि इसमें टीकाकारोंका भिन्न २ मत है॥ प्रथम वह लिखते हैं जहां अभीक्ष्ण केवल ज्ञानोपयोगके साथ है ॥ "अभीक्ष्णज्ञानोपयोग ॥ ४ ॥ संवेग ॥ ५ ॥" सदासुखदासजी अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ३७८में अर्थ करनेमें निरन्तर (अभीक्ष्ण) केवल ज्ञानोपयोगके साथ लाये हैं-संवेगके साथ नहीं लाये हैं ॥ "अर्थ बहुरि निर्दोष ग्रन्थनिकूं पढ़ना पढ़ावना, उपदेश करना श्रुत ज्ञानके अर्थमें निरन्तर उपयोग रखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥"

बहुरि शरीर संबंधी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादि जनित अर मनसंबंधी दुःख अर इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारकेदुःखनितैं भयभीत होइ परम वीतरागता का चिंतवन सो संवेग भावना है ॥ ५ ॥" सदासुखदासजीकृता अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ३८६से । ()सदासुखदासजी कृत तत्वार्थसूत्र लघु टीकामें पदच्छेद करनेमें अभीक्ष्ण शब्दको छोड़ दिया है परन्तुअर्थमें अभीक्ष्ण शब्दका समानअर्थ-वाचक शब्द ज्ञानोपयोग और संवेग दोनों के साथ है जैसे "ज्ञानोपयोग १ संवेग १" "ज्ञानकी भावना पढ़ना पढ़ावना उपदेश करना इत्यादि जिनोपदेश श्रुतज्ञानके अर्थमें निरंतर उपयोग रखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ संसारके दुःखनीतै नित्य भयभीत रहना सो संवेग है ॥५॥" पृष्ठ ३७८ अर्थप्रकाशिकाके पदच्छेद संख्याचारऔरपांच से प्रगट है कि पदच्छेद सदासुखजीका अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग ऐसा है (ग)"मति आदि ज्ञानके भेद प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणरूप अज्ञानका अभाव जिनका फल तथा हेयका त्याग उपादेयका ग्रहण तथा उपेक्षा कहिये वीतरागता जिनका फल ऐसे ज्ञानकी भावना विषैं निरंतर उपयोग राखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ संसार विषैं शरीर संबंधी मन संबंधी अनेक भेद लिये अति कष्ट लिये दुःख है, बहुरि प्यारेका वियोग अनिष्ट संयोग चाही वस्तुका अलाभ इत्यादि सहित है ऐसे संसार तैं भय करना सो संवेग है ॥ ५ ॥" सर्वार्थसिद्धि वचनिका पं० जयचन्दजी कृता मुद्रितका पृष्ठ ५२६-५२० हस्तलिखितमें भी यही है ॥ निम्नलिखित आचार्यों के संस्कृत वाक्योंसे तथा अन्य नीचे दिये हुये कारणोंसे प्रगट है कि अभीक्ष्ण शब्द ज्ञानोपयोग और संवेग दोनोंके साथ लाना चाहिये ॥

(क) "अभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगः संवेगश्च" = अभीक्ष्णं अर्थात् सदा ज्ञानोपयोग तथा संवेग (समाप्तयतत्त्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ ३५०) ॥

(ख) "जीवादिपदार्थ स्वतत्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्यं युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः । संसार दुःखाद्भित्यभीरुता संवेगः ॥"सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृष्ठ ३३६

"जीवादि पदार्थस्वतत्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्यम्	=जीवादिक (छह) पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप है विषय जिसका ऐसे निरन्तर सम्यग्ज्ञानमें
युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः	=सम्पन्नता (=युक्तता वा उपयोगता) सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगहै। सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ३३६
संसार-दुःखात् नित्य भीरुता संवेगः	="संसारके दुःखसे निरन्तर(=नित्य=अभीक्ष्ण)भयभीतता वा भयभीत रहना सो संवेग है ॥

(ग) "ज्ञान भावनायां नित्ययुक्तता ज्ञानोपयोगः ॥४॥=संसारदुःखाभित्यभीरुता संवेगः ॥५॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक ६,५ वार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५६६

ज्ञान-भावनायाम् नित्य-युक्तता ज्ञानोपयोगः॥४॥	=ज्ञानकी भावना विषैं निरन्तर उपयोग राखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है(पं० न्यायदि०से) अर्थात् ज्ञानके ध्यान, चिन्तवन वा वासनामें निरन्तर चित्तका लगाव वा सम्पन्नता सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है "ज्ञानकी भावनाके विषै नित्ययुक्तता जो है सो ज्ञानोपयोग है" (ताकी=ज्ञानकी) पं० पन्नालाल दूनी, अनुवादित तत्वार्थ राजवार्तिकसे उद्धृत
संसार दुःखात् निःभयीभूतता संवेगः ॥५॥	="संसार दुःख रूप महाकष्ट तातैं निरन्तर भय करना सो संवेग है",(पं० पन्ना०न्या०दि्वा०अनु०) "संसार दुःखरूप महाकष्ट तातैं निरन्तर भीरुताजोहैसो संवेग है" पं०पन्ना०दूनीजीअनु०राज०से)

(घ) संज्ञान भावनायां तु या नित्यमुपयुक्तता । ज्ञानोपयोग एवासौ तदाभीक्ष्णं प्रसिद्धितः ॥६॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५५६से उद्धृत ॥
संसाराद्भीरुता भीक्ष्णं संवेगः सद्भियां मतः । नंतु मिथ्यादृशां तेषां संसारस्या प्रसिद्धितः ॥७॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५६से उद्धृत ॥

संज्ञान-भावनायाम् तु या नित्यं उपयुक्तता ।	=और (=तु)सम्यग्ज्ञानकी भावना विषैं जो नित्य चित्तका लगाव है ।
ज्ञानोपयोग एव असौ तदा-अभीक्ष्ण प्रसिद्धितः	=सो (=असौ)ही(=एव)तो(=तदा)निरन्तर ज्ञानोपयोग प्रचारित वा प्रसिद्धित है ॥
संसरात् भीरुता अभीक्ष्णम् संवेगः सद्भियाम् मतः	=संसारसे नित्य (=अभीक्ष्ण) भयभीतता(सो) संवेग है (ऐसी) बुद्धिमानोंमें सम्मति है
न तु मिथ्यादृशाम् तेषाम् संसरस्य अप्रसिद्धितः ॥	नकि मिथ्यादृष्टियोंके (संसारसेभयहै) जिनके संसारकी प्रसिद्धि नहीं है ॥

(१)शक्तितः* त्यागः=यथाशक्ति, शक्तिके अनुकूल वा जितनीसामर्थ्य होउतना, उपकारके लिये अपने धनका देना, वाअर्पणसोशक्तिभर त्याग है
(१)शक्तितः* तपः=जितनी सामर्थ्य हो उतनी आगमके अनुकूल कायक्लेशका करना अथवा कायक्लेशका सहन सो शक्तिभर तप है।
(२)साधु-समाधिः=मुनीस्वरादिकोंके किसीकारणसे व्रतशील-तप-संयममें विघ्नआनेपरउसकोदूरकरकेउनके व्रत-शील-तप-संयमकीरक्षा करना

यहां पर यहकहा जा सकता है कि संवेग शब्दका अर्थ ही नित्य भयभीत रहनेका है यथार्थमें यह बात नहीं है क्योंकि पद्मनन्द्र कांश पृष्ठ ३६८में और अन्य कईसंस्कृत और भाषा कोशोंमें संवेगका अर्थ 'डर' का है॥"अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगः"कापदच्छेद वैसा हीहै जैसा"शक्तितस्त्यागतपसीवाक्यका (१) (क)शक्तितस्त्यागतपसी=यथाशक्तितस्त्याग तपश्च (समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रपृष्ठ १५१से) =यथा शक्तितः त्यागः यथा शक्तितः तपः च (ख) तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमानं त्याग इत्युच्यते=अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधिकायक्लेशस्तपः ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३३६से उद्धत ॥ तद्-शक्तितः यथाविधि प्रयुज्यमानम् त्याग इति उच्यते=शक्तिभर विधिके अनुकूल अपनी वस्तुका देना अर्पण करना यह(=तद्)त्याग कहागया है अनिगूहित-वीर्यस्यमार्गअविरोधिन्-कायक्लेशःतपः=शक्तिकोनछिपाकर (जिनेन्द्रके)मार्गसेअविरोधीअनशनादिकायक्लेशकासहनसोतपहै॥गुह=छिपाना (ग) "परप्रीतिकरणातिसर्जनं त्यागः ॥ ६ ॥" =तत्त्वार्थ राजवार्तिक६॥"यथा शक्तिमार्गाविरोधिकायक्लेशानुष्ठानं तप इति निश्चीयते"राज०वा०से पर-प्रीति-करण-अतिसर्जनम् त्यागः ॥६॥ =अन्यमें प्रीति करते हुये (अर्थात् अपनेसे भिन्नके उपकार के लिये) अर्पण वा देना सो त्याग है "परकी प्रीतिका कारण ऐसी वस्तुका देना सोत्यागहै(पन्नालाल न्यायदिवाकरकेअनुवादसे उद्धृत) यथा-शक्ति-मार्ग-अविरोधिन्-कायक्लेश-अनुष्ठानम्=शक्तिभर कायक्लेश जैसे अनशानादि भगवान्के मार्गके अनुकूल करना तपःइति निश्चीयते =सो तप है ऐसा निश्चय कियागया है ॥

(घ) शक्तितस्त्याग उद्गीतः प्रीत्या स्वस्यातिसर्जनं ।·····॥ अनिगूहितवीर्यस्य सम्यग्मार्गाविरोधितः कायक्लेशः समाख्यातं विशुद्धं शक्तितस्तपः॥६॥ शक्तितः त्यागः उद्गीतः प्रीत्या स्वस्य-अतिसर्जनम् ।=प्रीतिसे धनका(=स्वस्य)शक्तिभर अर्पण वा देना(=अतिसर्जन)सोशक्तिभर त्यागकहागयाहै अनिगूहित-वीर्यस्य सम्यग्मार्ग-अविरोधितः । =शक्तिको न छिपाकर भलेमार्गसे अविरोधरूप अर्थात् जिनेन्द्र कथित विधिके अनुकूल कायक्लेशः समाख्यातम् विशुद्धं शक्तितः तपः ॥६॥=कायक्लेश (जैसे अनशनादि) का सहना सो शक्तिभर तप दोष रहित कहा गया है ॥ शक्तितस्त्यागतपसी प्रथमा विभक्ति द्वि वचन नपुंसकलिंगमें है, ऊपरके प्रमाणोंसे सिद्ध है कि शक्तितः त्याग तथा शक्तितः तपः इसके पदच्छेद हैं,इसी प्रकार 'अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ"भीप्रथमाविभक्तिद्विवचनपुंलिंगमेंहै,अभीक्ष्णज्ञानोपयोगःऔरअभीक्ष्णसंवेगःइसकेपदच्छेदहैंजैसाकिप्रथमलिखागयाहै॥

(२) "संघ साधुसमाधि वैयावृत्यकरणम्" श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ऐसा पाठ है अर्थात् संघ शब्द अधिक है और साधुसमाधिः वैयावृत्यकरणमका समास कर दिया है इससे विसर्ग वारकालोप होगया है अथवा समाधिमें प्रथमा विभक्तिके चिन्हकी आवश्यकता नहीं रही और अर्थ करनेमें संघ का सम्बन्ध समाधिसे रक्खा है साधुका सम्बन्ध वैयावृत्यकरणसे न्यारा न्यारा रक्खा है अर्थात् इस प्रकार अर्थ किया है कि संघ तथा साधुओं की समाधि और वैयावृत्यकरण अर्थात् संघकी समाधि (समाधान) और साधुओंका वैयावृत्यकरण अर्थात् शरीर, वाक् तथा मनोयोगसे सेवा टहल करनी ॥ दिगम्बर सम्प्रदायमें पूज्यपाद स्वामी कृता सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक, पं० जयचन्दजी कृत सर्वार्थ-सिद्धि वचनिका-अर्थ प्रकाशिका, इन किसी संस्कृत अथवा भाषाके ग्रन्थोंमें संघ शब्द नहीं आया और न कहीं अर्थमें चार प्रकारके संघको प्रगटकिया (१) उपदेश देकर तथा शरीरकी टहल करके आहारादिक दान करके तो वैयावृत्य होती है परन्तु उनके व्रत-शील-तप संयमादिकमें विघ्नके कारणों को दूर करना सो साधु समाधि है अर्थ प्रकाशिका (मुद्रित पृष्ठ ३८७से उद्धृत)

वैयावृत्यकरणम् ॥ = रोगी–दुःखित साधुजनोंकी सेवा–टहल–शुश्रूषादिक करना,
अर्हद्भक्तिः ॥ = अरहंतवीतराग, भगवान विषैं भावोंकी विशुद्धता सहित प्रीति,
आचार्यभक्तिः ॥ = संघमें दिक्षा शिक्षा देने वाले आचार्योंमें भावोंकी विशुद्धता सहित अनुराग
बहुश्रुतभक्तिः ॥ = उपाध्यायोंमें वा सर्व शास्त्र सम्पन्नोंमें भावोंकी विशुद्धता युक्त स्नेह वा प्रेम
प्रवचनभक्तिः ॥ = अर्हतपरमर्षियोंके वचनोंमें अर्थात् उनके भाषित शास्त्रोंमें भावोंकी परिणामोंकी विशुद्धता निर्मलताकरि स्नेह
आवश्यक- = आवश्यकीय क्रियाओं(सामायिक-स्तव-वंदना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान–कायोत्सर्गनि) में
अपरिहाणिः ॥ = त्यागका अभाव अथवा हानि नहीं करना अर्थात् सामायिक–स्तोत्र (स्तुति–स्तव) प्रशंसा, तीर्थंकरोंके पवित्र गुणोंका कीर्तनकरना वन्दना, नमस्कार(प्रणाम),प्रतिक्रमण,स्मरण करके अतीतकालके लगे हुये दोषोंसे निवर्तना वा हटना–प्रत्याख्यान आगामी दोषोंका त्याग(निरादर तिरस्कार निषेध), कायोत्सर्ग कालकी मर्यादाकरि शरीर विषैं ममत्व छोड़ना (=उत्सर्ग),
मार्गप्रभावना ॥ = (ज्ञानके प्रकाशसे तपस्या करके जिन पूजा करके अन्य सम्यग् आचरणोंसे) जिन धर्मका (=मार्ग) उद्योत करना महत्व वा बड़प्पन प्रगट करना
(१) प्रवचनवत्सलत्वम् ॥ = उत्कृष्ट(=प्र)वचनके धारकोंमेंअनुरागता(वत्सलत्वम्)अर्थात् साधर्मीजनोंमें अनुराग(प्रीति,स्नेह,प्रेम)रखना
इति*तीर्थकरत्वस्य ॥ नामकर्म- = इस प्रकार तीर्थकरपना वा (अरहंतपना) नामकर्मके
आस्रव–कारणानि ॥ भवन्ति । = आस्रवके कारण होते हैं

१ उत्कृष्ट वाक्यमें अनुरागता ऐसा'प्रवचनवत्सलत्वम्'का शब्दार्थ है । प्र = उत्कृष्ट वा प्रसिद्ध,वचन = वाक्यअर्हत् केवली भगवान्का ही हो सकता है इसलिये अर्हन्केवली भगवान्के वाक्यमें वत्सलत्व स्नेहता सो प्रवचन वत्सलत्व है अर्थात् सर्वज्ञ-वीतराग–हितोपदेशक अरहंत भगवान्से भाषित साङ्गो पाङ्ग श्रुतमें प्रेमता सो प्रवचन वत्सलता है ॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिक (मुद्रित पृष्ठ ५६७)में "यः सधर्मणि स्नेहःसएव प्रवचन स्नेह इति"यह वाक्य है=जो साधर्मीमें प्रीति है सोही प्रवचन अनुराग वा वात्सल्य ऐसा है इसलिये साधर्मी जीवमें वा अरहंत भगवानके वचनके अनुकूल चलने वालेमें अनुरागता सो प्रवचन वत्सलता ऐसा अर्थ हुआ ॥ यही अर्थ (साधर्मी जीवमें अनुरागता) पं० जयचन्दजीकी वचनिकामें-सदासुखदासजी कृता अर्थ प्रकाशिकामें है परन्तु विद्यानन्दजीने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक (मुद्रितका देखो पृष्ठ ४५६ श्लोक १६) वत्सलत्वं पुनर्यत्से धेनुवत्संप्रकीर्तितं । जैने प्रवचने सम्यक् छद्धानज्ञानवत्स्वपि = बछुरि बछरेमें गायकी जैसी अनुरागता बंधी हुई है,जिनेन्द्रभाषित वचनमें सम्यक् श्रद्धान वाले ज्ञानियोंमें भी वही होना चाहिये, यदि साधर्मी जीवोंमें अनुरागता ऐसा अर्थ न लेवें केवल शब्दार्थ (प्रवचनमें प्रीति) ऐसा अर्थ प्रवचन वत्सलत्वका लेवें तो १३वीं भावना प्रवचन भक्ति और प्रवचन वत्सलतामें अर्थ भेद न होगा,१३वीं प्रवचनमें प्रीति १६वीं प्रवचनमें स्नेह एक ही भावना हो जावेगी॥

जिनेनभगवताऽर्हत्परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थलक्षणेमोक्षवर्त्मनि रुचिर्दर्शनविशुद्धिःप्रागुक्तलक्षणा। तस्याऽष्टावङ्गानिश्शङ्कितत्वं,निष्काङ्क्षितताविचिकित्साविरहता,अमूढदृष्टिता,उपबृंहणं,स्थितीकरणं

वृत्त्यनुवादः-जिनेन[३] भगवता[३] =(इस सूत्रकी वृत्तिका शब्दशः अनुवाद) जिन भगवान्

अर्हत्-परमेष्ठिना[३] उपदिष्टे[७]॥ =अरहंत परमेष्ठीसे भाषित अथवा उपदेश किया हुआ

निर्ग्रन्थ-लक्षणे[७] मोक्ष-वर्त्मनि[७]॥ =निर्ग्रन्थ अर्थात् निर्दोष निष्काम यथार्थ लक्षणसंयुक्त मोक्षमार्गमें (=वर्त्मनि=वर्तमनि)

(१)रुचिः[१]॥[१]दर्शन-विशुद्धिः[१]॥ =अनुराग सो उज्ज्वल-निर्मल प्रशस्त वा अतिचार रहित दर्शन है

प्राक्-उक्त-लक्षणा[१]॥ तस्याः[६]॥ =जिसका लक्षण (प्रथम अध्याय सूत्र २ में) कहा गया है, तिस (दर्शन विशुद्धि) के

(२) अष्टौ[३]॥ अङ्गानि[३]॥ निश्शङ्कितत्वं[१]॥ =आठ गुण वा अंग हैं। निःशंकित अंग वा गुण अर्थात् वस्तुका स्वरूप यही है इसी प्रकारही है और नहीं है और अन्य प्रकार भी नहीं है ऐसे जैन मार्गमें खड्गके पानीकेसमान निश्चल श्रद्धान(=रुचि)

निःकाङ्क्षिता[१]॥ =निःकांक्षित अंग अर्थात् कर्मका है परवशपना जिसमें अन्तकरि सहित दुःखोंकरके मिला हुआ है उदय जिसका तथा जो पापका बीज भूत है ऐसे सांसारिक सुखमें अनित्यरूप श्रद्धा रखना भावार्थ सांसारिक सुखकी वांच्छा नहीं करना सो निःकाङ्क्षितअंग कहा गया है(१२वां श्लोकका अनुवाद)

विचिकित्साविरहता[१]॥ =निर्विचिकित्सितअंग अर्थात् रूपसे अपवित्र रत्नत्रयसे पवित्र ऐसे धर्मात्माओंके शरीरमें (ग्लानि रहित) गुणोंमें प्रीति करना जो है सो निर्विचिकित्सितअंग मानागया है (१३वांश्लोक०)

अमूढदृष्टिता[१]॥ =अमूढदृष्टि अंग अर्थात् दुःखोंका मार्ग ऐसे कुमार्ग वा मिथ्यामतमें और कुमार्गमें स्थिति ऐसेमिथ्यातियोंमें मनकर सम्मत न होना, कायकर सराहना नहीं करना, वचनकर प्रशंसा नहीं करना सो अमूढदृष्टिनामा अंग कहा जाता है (१४वां श्लोकका अनुवाद)

उपबृंहणम्[१]॥ =उपगूहन अंग अर्थात् जो अपने आपही पवित्र ऐसे जैनमार्गकी अज्ञानी तथा असमर्थजनोंके आश्रयसे उत्पन्न हुई निंदाको जो दूर करते हैं उसको उपगूहन अंग कहते हैं(१५वांश्लोकका अनुवाद)

स्थितीकरणम्[१]॥ =स्थितीकरणअंग अर्थात् सम्यग्दर्शनसे अथवा सम्यक् चारित्रसे भी डिगते हुये वा भ्रष्ट होते हुये

(१) 'रुचि' शब्दका अर्थ पं० सदासुखदासजीने रत्नकरण्डश्रावकाचारका ११वांश्लोकके अर्थमें श्रधान किया है और पद्मचन्द्रकोषके पृष्ठ ३२३में 'रुचि'का अर्थ अनुराग है मेरी समझमें यह शब्दका दुहरा अर्थ (कि वस्तुके यथार्थ स्वरूप में अनुराग और श्रद्धान दोनों हों सो निःशङ्कित अंग है) देता है श्रधा-श्रधान-प्रतीति-विश्वास-निश्चय-प्रत्यय-एकार्थ वाचक हैं॥ (२) इन आठ अंगोंके भावार्थ इन पृष्ठोंमें अक्षर प्रति अक्षर श्री समन्तभद्राचार्य विरचित रत्नकरण्ड श्रावकाचारके श्लोक ११ से १८ तकका अनुवाद लिख दिया गयाहै॥

वात्सल्यं, प्रभावनं चेति॥ सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधनेषु च गुर्वादिषु स्वयोग्यवृत्त्या सत्कार आदरो विनयस्तेन सम्पन्नता विनयसम्पन्नता॥ अहिंसादिषु व्रतेषु तत्प्रतिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतिचारः ॥ जीवादिपदार्थस्वतत्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्यं युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः ॥ संसारदुःखान्नित्यभीरुता संवेगः ॥

पुरुषोंको धर्मसे है प्रेम जिनको ऐसे पुरुषोंके द्वारा जो फिर उसीमें स्थिर करदेना है सो विद्वानोंकेद्वारा स्थितीकरण अंग कहाजाता है (१६वां श्लोकका अनुवाद)

वात्सल्यम् ॥ =वात्सल्य अंग अर्थात् अपने सहधर्मी भाइयोंके प्रति (धर्मात्मा जैनी भाइयोंके प्रति) समीचीन भावोंकर सहित छल कपट रहित यथायोग्य आदर सत्कार करना सो वात्सल्य नामा अंग कहा जाता है (१७वां श्लोकका अनुवाद)

प्रभावनम् ॥ च* इति* ॥ =और (=च) प्रभावना अंग इस प्रकार है अर्थात् अज्ञानरूपी अंधकारके विस्तारको जिस प्रकार बनें उस प्रकार दूर करके जिन मार्गका समस्त मतावलम्बियोंमें प्रभाव (महिमा-बड़प्पन) प्रगट कर देना सो प्रभावना नामा अंगहै(१८वांश्लोकका अनुवाद)

सम्यग्ज्ञान-आदिषु॥ मोक्षसाधनेषु॥ तत्- =सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र मोक्षके उपायोंमें तथा (=च) उन

साधनेषु च* गुरु-आदिषु स्वयोग्य- =(सम्यग्ज्ञानादिक)के धारकोंमें अथवा धारणकरनेवाले गुरुआदिकोंमें अपने योग्य

वृत्त्या* सत्कारः आदरः विनयः तेन =प्रवृत्तिकरि सत्कार- आदर- विनय तिसकरि

सम्पन्नता॥ विनयसम्पन्नता॥ ॥ =युक्तता (=परिपूर्णता-साहित्यता-संगता) सो विनयसम्पन्नता है

अहिंसादिषु॥ व्रतेषु॥ च*तत्प्रतिपालन-अर्थेषु ॥=अहिंसादिक व्रतोंमें तथा (=च) तिनके रक्षक

क्रोधवर्जन-आदिषु॥ शीलेषु॥ निरवद्या॥ वृत्तिः॥=क्रोधवर्जनादिक शीलोंमें अतीचार (दोष) रहित प्रवर्तना वा प्रवृत्ति सो

शीलव्रतेष्वनतिचारः॥ जीवादि-पदार्थ-स्व-तत्त्व -=शीलव्रतेष्वनतिचार है। जीवादिक (छह)पदार्थोंका निजनिज (=स्व)स्वरूप (तत्त्व)

विषये॥ सम्यग्ज्ञाने॥ नित्यम्॥ युक्तता॥ =है विषय जिसका ऐसे सम्यग्ज्ञानमें निरन्तर वा सदा(=नित्यं)सम्पन्नता(=युक्तता)

अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगः॥; संसार-दुःखात्॥ =सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। संसारके दुःखसे-

नित्य-भीरुता॥ संवेगः॥ ॥ =सदा भयभीतता वा डरते रहना सो संवेग है,अर्थात् अभीक्ष्ण संवेगहैभावार्थ ऐसा है कि

त्यागो दानं, तत्त्रिविधमाहारदानमभयदानं ज्ञानदानं चेति । तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमानं त्याग इत्युच्यते ॥ अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधिकायक्लेशस्तपः ॥ यथा भाण्डागारे दहने समुत्थिते तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहूपकारत्वात्तथाऽनेकव्रतशीलसमृद्धस्य मुनेरतपसः कुतश्चित्प्रत्यूहे समुपस्थिते तत्सन्धारणं समाधिः ॥

शरीर संबंधी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादि जनित दुःख मन संबंधी दुःख इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वांछितका अलाभ, इत्यादि संसारके दुःखोंसे नित्य भयभीत होकर परम वीतरागता का चिन्तवन सो अभीक्ष्ण संवेग भावनाहै

त्यागः १ दानम् १॥, =(उपकारके लिये किसी वस्तुका)छोड़ना-अर्पण-वितरण-अतिसर्जन-सो दान है

तत्-त्रिविधम्१॥ आहारदानम्१॥ अभयदानम्१॥ =वह (दान वा अतिसर्ग) तीन प्रकार आहारदान-अभयदान-

ज्ञानदानं१॥च इति१ तत्१॥ शक्तितः*यथाविधि*प्रयुज्यमानं=और(=च)ज्ञानदान है। जो यथा सामर्थ्य(=शक्तितः)रीतिके अनुसार अतिसर्जन है

त्यागः१॥ इति*उच्यते १॥ अनिगूहित-वीर्यस्य१॥=सो त्याग है ऐसा कहा गया है। शक्तिको न छिपाने वालेके (=अनिगूहित)

मार्ग-अविरोधिन्-कायक्लेशः १॥ तपः १॥; =(जिनेन्द्रके) मार्गसे अविरोधी कायक्लेश सो तप है अर्थात् अपनी सामर्थ्यभर अर्हत्-भगवान्सेभाषित रीतिके अनुकूलअनशनादिक करकेकायक्लेशका सहनसोशक्तितःतपहै

यथा*(२)भाण्ड-आगारे२॥दहने२॥ =जैसे वस्तुग्रहके (अर्थात् उस कोठारके जिसमें बहुप्रकारकी वस्तुयें भरी हुई हैं) अग्नि

समुत्थिते२॥ तत्-प्रशमनम्१॥ =लगजाने पर (=समुत्थिते) उस (भंडारमें लगीहुई आग) का बुझाना शान्ति करना

अनुष्ठीयते १ (३)बहु-उपकारत्वात्२॥ =विधि पूर्वक किया जाता है(=अनुष्ठीयते)क्योंकि(उसके बुझानेमें)बहुत उपकार है

तथा*अनेक व्रत-शील-समृद्धस्य१॥मुनेः१॥ =तैसे अनेक व्रतशीलरूप सम्पदायुक्त मुनिके

तपसः१॥कुतश्चित्*प्रत्यूहे२॥ समुत्थिते२॥ =तपके किसी कारणसे विघ्न (=प्रत्यूह) आजाने पर

तत्-सन्धारणम्१॥ समाधिः१॥ । =उस (विघ्न)का दूर करना (बड़ा उपकार वा सहायता) है सो (साधु) समाधि है भावार्थ

---

(१) अ. नि अव्ययों और गुह=छिपाना धातुसे 'अनिगूहित बना है' (२ आगार(न०)गृह-घर। पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ५३ आगार [न०]भवन अमरकोश-पुरवर्ग अगार वैद्यकोश पृष्ठ ४, पृष्ठ ६४ आगार=गेह, आलय अतः भाण्डागारे वाक्यके भाण्ड अगारे और भाण्ड आगारे दोनों पदच्छेद होसकते हैं (३)इस वाक्यका पाठ सर्वार्थसिद्धि की मुद्रित और हस्तलिखित प्रतियोंमें एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिककी सब प्रकारकी प्रतियों तथा श्रुतसागरीटीकामें

गुणवत्दुःखोपनिपातेनिरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्यम्॥ अर्हदाचार्यबहुश्रुतेषु प्रवचनेषु च

जैसे किसी घरमें जिसमें अनेक प्रकारकी वस्तुएँ भरी हों आग लगजाय तौ उसके बुझानेमें बहुत उपकार होता है तैसे नाना प्रकारके व्रत-तप-शील-संयम को धारण कियेहुए मुनिकें किसी कारणसे उनके व्रत तप-शील संयम इत्यादिक में विघ्न आजाय तौ उसके दूर करनेमें उपकार होता है ऐसी सहायता साधुसमाधि (भावना) है

गुणवत्-दुःख-उपनिपाते॥ निरवद्येन॥ विधिना॥ = गुणवन्तोंके दुःख आजाने पर निर्दोष वा पापवर्जित विधानकरि अथवा रीतिकरि

तत्-अपहरणम्॥ वैयावृत्यम्॥ = उस (दुःख) को दूरकरना सो वैयावृत्य है अर्थात् रोगी दुःखित साधुजनों की सेवा टहल शुश्रूषादिक करना सो वैयावृत्य है

अर्हत्-आचार्य-बहुश्रुतेषु॥ = अरहंत (वीतराग भगवान्) आचार्य-उपाध्याय अथवा सर्वशास्त्रज्ञानसम्पन्नोंमें

प्रवचनेषु॥ च॥ = तथा(च)उत्कृष्ट-प्रशस्त वचनोंमें अर्हत् परमर्षियोंके वचनोंमें अर्थात् जिन भाषित शास्त्रोंमें

लगभग सर्वार्थसिद्धिकासा पाठ है संस्कृतमें किसी आचार्य ने'उपकारत्वात्'शब्दका अर्थखोलकर नहींलिखा हैकि भंडार जिसमें अनेक वस्तुयें भरीहुईहैं उपकारी हैवा उपकार करनेवाला हैकि अग्निका बुझाना वैसाही उपकारी हैजैसाकि उपकारीसाधुओंके व्रत-तप-शील-संयमकी विघ्नताका हटाना। जयचंदजी कृता वचनिका मुद्रित और हस्तलिखितका अर्थ यह है कि "अनेक व्रत शीलकरि सहित जो मुनि ताकें कोई कारणतैं विघ्न आया तांकूं दूरि करनो जातै यामैं बहुत उपकारहै॥ जैसे काहूकै अनेक वस्तुनिकरि भरा भंडार विषै अग्नि लागी होय ताका बुझावना तैसे यह साधु समाधि है" ॥ प० सदासुखदासजीने उपकारके संबंधमें कुछ नहीं लिखा है। उनके शिष्य पं० पन्नालाल दूनी अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिकमें निम्न अर्थ है"जैसे भांडारगारके विषै उत्पन्न भया अग्निनैं होतां संतां वाका उपशमनको अनुष्ठान करियेहै। क्योंकि भंडारकैं बहु उपकारी पणौं है यातैं। तैसैं अनेक व्रत शील रूप है समृद्धि जाके ऐसा मुनि समूहकै तथा तपकैं कोऊ विघ्न उत्पन्न होत संतै वा मुनि समूह को तथा तपको परिपालन जो है सो समाधि है ऐसैं व्याख्यान करिये है"। पं० पन्नालालजीन्याय दिवाकर, दूनीजीका अनुकरण करते हुये निम्न प्रकार अनुवाद करतेहैं।"जैसै काहूकै अनेक वस्तुनिकरि भरया भंडारविषै अग्नि लागी होय ताकै बुझावने अर्थि जैसैं तैसैं कियाकर बुझावै। अनुष्ठान करै जातै अनेक वस्तुनिकरि जो भरया जो भंडार ताकैं बहु उपकारी पणांहै॥ तैसैं अनेक व्रत शीलनिकरि समृद्धिहै जाकैं ऐसैं मुनि समूह कैं तथा तप कैं कोई कारण तैं विघ्न उत्पन्न भये संतै ताका निर्दोष विधान कर दूर करना मुनि समूहका तथा तपका निर्दोष विधान कर परिपालन करना सो समाधि है" ॥ हमने पं० जयचन्दजीके अनुकूल अनुवाद किया है जैसे भंडारकी वस्तुओं को अग्निसे बचानेका कार्य उपकारी है तैसे ही मुनि के जप,तप व्रत,शील,संयम इत्यादिका विघ्नसे बचाना उपकारी और लाभदायकहै यह अनुवाद हृदय में अधिक घुसताहै॥ इसपर पाठक विचार करलें।

भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः ॥षण्णामावश्यकक्रियाणां यथाकालं प्रवर्तनमावश्यकापरिहाणिः ॥ ज्ञानतपोजिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना ॥ वत्से धेनुवत्सधर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वम् ॥ तान्येतानि षोडशकारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि च तीर्थकरनामकर्मास्रवकारणानि प्रत्येतव्यानि ॥

भावविशुद्धियुक्तः। अनुरागः। भक्तिः॥ =भावोंकी विशुद्धता सहित अनुराग वा प्रीति सो भक्ति है भावार्थ अरहंतोमें भावोंकी विशुद्धता संयुक्त प्रीति सो अर्हद्भक्ति है, आचार्योंमें भावोंकी विशुद्धता सहित अनुराग सो आचार्यभक्ति है, उपाध्याय वा सर्व शास्त्रज्ञान सम्पन्नोंमें स्नेह सो बहुश्रुतभक्ति है, जिन भाषित शास्त्रोंमें प्रेम वा रुचि सो प्रवचन भक्ति है ॥

(१) षण्णाम्॥ =छह(सामायिक,स्तव-स्तवन वा वंदना,नमस्कार-प्रणाम,प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान,कायोत्सर्ग]

आवश्यक-क्रियाणाम्॥ यथाकालम्* =आवश्यक क्रियाओंका अपनी अपनी क्रिया के समय पर (अर्थात् ठीक २ समय पर)

प्रवर्तनम्॥ आवश्यक-अपरिहाणिः॥; ज्ञान- =प्रवृत्ति करना सो आवश्यकापरिहाणि है -ज्ञान

तपस्-जिनपूजा-विधिना॥ =तपस्या वा तपश्चरण से (और) जिन पूजनके विधानसे वा करनेसे (=विधिना)

धर्मप्रकाशनम्॥ =जिन धर्मका उद्योत करना-जिन धर्मकी महिमाको प्रगट करना

मार्गप्रभावना॥; =जैन धर्मके महत्वका प्रख्यापन सो मार्ग प्रभावना है अर्थात् ज्ञानके प्रकाश से-घोर तपश्चरण करनेसे जिन पूजा वा प्रतिष्ठा करके तथा अन्य अन्य प्रशस्त तथा सर्वोत्तम् आचारण द्वारा जिन धर्म का बड़प्पन वा महिमा प्रगटकरना सो मार्ग प्रभावना है

वत्से॥ धेनुवत्*सधर्मणि॥स्नेहः॥ =बछरा में (=वत्से) गायके जैसा (प्रेम) हो साधर्मी जीवोंमें वैसी ही प्रीति-अनुराग

प्रवचनवत्सलत्वम्॥ । =सो प्रवचन वत्सलताहै भावार्थ जैसे गाय अपने बछड़े विषैं अकृतिम प्रेम रखती तैसेही सधर्मीजनोंको देखकरि स्वाभाविक स्नेहसे चित्तका भीगजाना सो प्रवचन वत्सलताहै ॥

तानि॥ एतानि॥ षोडशकारणानि॥ सम्यग्भाव्यमानानि॥ =वे इतने सोलह कारण भले प्रकार भाये हुए (भावना किये गये)

व्यस्तानि॥ समस्तानि॥ च* =पृथक् पृथक् अर्थात् सोलह भावनाओंमेंसे एक, दो तीन आदि और सब हों वो

तीर्थकर-नामकर्म-आस्रवकारणानि॥ प्रत्येतव्यानि॥; =तीर्थकर नाम कर्मके आस्रवके कारण प्रतीति करना चाहिये वा मानना चाहिये

(१) षण् यह शब्द बहुवचन में आताहै और तीनों लिंगों में इसका एकसा रूप है यहां पर क्रिया शब्दसे सम्बन्धहै इसलिये स्त्रीलिंग मानलियाहै॥

इदानीं नामास्रवाभिधानानन्तरं गोत्रास्रवे वक्तव्ये सति नीचैर्गोत्रस्यास्रवविधानार्थमिदमाह—

परात्मनिन्दाप्रशंसेसदसद्गुणोच्छा(१)दनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्या२५

इदानीं*नाम-आस्रव-अभिधान-निरन्तरम्।।गोत्र-आस्रवे२।=अब नाम आस्रवके कथनके (=अभिधान) लगताई गोत्र आस्रवके
वक्तव्ये३।सति।नीचैः*गोत्रस्य।आस्रव-विधान-अर्थम्।। इदम् ।।। आह T =कथन(=वक्तव्ये)के (प्रसंग) होनेपर नीच गोत्रके आस्रवके आरम्भ (=विधान)के =लिये यह (अग्रिम सूत्र आचार्य) कहते हैं कि

परात्मनिन्दाप्रशंसेसदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥

=परात्मनिन्दाप्रशंसे।सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने।च नीचैः*गोत्रस्य।आस्रवकारणानि।।भवन्ति

सूत्रार्थः.पर--आत्म-निन्दा।प्रशंसा।। =दूसरेकी तथा अपनी(यथासंख्य वा अनुक्रमसे) बुराई और बड़ाई

च* (२) सत्— =और (=च) विद्यमान(=सत्)अच्छे(=सत्)उत्तम(=सत्)पूज्य (=सत्),सच्चे =सत्)

असत्— =और अविद्यमान (=असत्) बुरे (=असत्) अधम-निंद्य (=असत्) अपूज्य (=असत्) झूठे (=असत्)

(१)उच्छादन-अधिकतर मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकोंमें यही पाठ है जो ऊपर लिखा गयाहै.परन्तुमुद्रित तत्त्वार्थ राजवार्तिक तथा मुद्रित तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिकमें उच्छादनके स्थानमें च्छादन है अर्थात् 'सदसद्गुणच्छादनोद्भावने" ऐसा पाठ है और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उच्छादन,च्छादनके स्थानमें आच्छादन है इसलिये सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने"ऐसा पाठहै अर्थ भेद नहीं हैक्योंकि उच्छादन-च्छादन-आच्छादन तीनोंका अर्थ अप्रगटता अव्यक्तता. गोपन-संवरण-छिपाना वा-अप्रकाशन है ॥ (२) सत् शब्दके पाँच अर्थ हैं "सत्ये-साधौ-विद्यमाने-प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत्" ॥ अमर-कोश नानार्थ (२३वाँ) वर्ग श्लोक ८३ और पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४०२=सांच-अच्छा भला-सुता-उत्तम-पूज्य-ऐसे ही असत् शब्दके भी पांच अर्थ इनसे प्रतिकूल हैं अर्थात् झूठ-बुरा. अनछता-अधम-निन्द्य-अपूज्य- यहां पांचौ ही अर्थ लागू हो सकते हैं ॥ सत्=उत्तम और असत्=निन्द्य समाप्य-तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५२। सत्=सत्य और असत्=झूठ(सदासुखदासजी तत्त्वार्थसूत्रटीका पत्र३२ सत्-छते और असत्=अनछते-सत्=सांच असत् झूठ देखो अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ३६१ तथा जयचन्दजी वचनिका पृष्ठ ५२२ और ५२३ ॥

तथ्यस्य वा अतथ्यस्य वा दोषस्योद्भावनं प्रति इच्छा निन्दा । गुणोद्भावनाभिप्रायः प्रशंसा। यथासंख्यमभिसम्बन्धः परनिन्दा आत्मप्रशंसेति॥ प्रतिबन्धकहेतुसन्निधाने सति अनुद्भूतवृत्तिता अनाविर्भाव उच्छादनम् । प्रतिबन्धकाभावे प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम् ॥

गुण-उच्छादन-उद्भावने[1]॥ =गुणका (क्रमसे अथवा यथाक्रम) आच्छादन अथवा प्रकाशन

नीचैः*गोत्रस्य[2] आस्रव-कारणानि[3]॥ भवन्ति T =नीच कुलके(उत्पत्तिके)आस्रवके हेतु होते हैं, अर्थात् दूसरेकी बुराई करना अपनी बड़ाई करना दूसरेके अच्छे-उत्तम-विद्यमान पूज्य वा सच्चे गुणोंको ढांकना और अपने बुरे-अधम निंद्य-अविद्यमान-अपूज्य वा झूठे गुणोंका प्रकाश करना सो नीच कुलके (उत्पत्ति होनेके) आस्रवके कारण हैं ॥

वृत्त्यनुवादः-तथ्यस्य[1] वा*अतथ्यस्य[1] वा*दोषस्य[1] =सत्य अथवा झूठ (मिथ्या) दूषणके

उद्भावनम्[1]॥ प्रति* इच्छा[1]॥ निन्दा[1]; गुण— =प्रगट करनेके लिये(=प्रति)अभिलाषा,कामना,सो निंदा है। (सच वा झूठ)गुणके

(१)उद्भावन-अभिप्रायः[1] प्रशंसा[1]॥; =प्रगट करनेके लिये मनोरथ वा अभिप्राय सो प्रशंसा है ।

यथासंख्यम्[1]॥ =(इन पूर्वोक्त निन्दा और प्रशंसाका पर और आत्मके साथ,क्रमानुसार, क्रमसे

अभिसम्बन्धः[1] परनिन्दा[1]॥ आत्मप्रशंसा[1]॥ इति॥ =संयोगहै। परनिन्दाआत्मप्रशंसाऐसेहै भावार्थअन्यकी बुराई अपनी बड़ाईकरना ॥

प्रतिबन्धक-हेतु-सन्निधाने[2] सति[2]॥(२)अनुद्भूतवृत्तिता[1]॥ =रोकनेवाले कारणके निकट होनेपर (=सति) अप्रगट स्थितिका होना

अनाविर्भावः[1] उच्छादनम्[1]॥; =अप्रगट अवस्थाका होना सो उच्छादन-आच्छादन वा संवरण है

प्रतिबन्धक-अभावे[2] प्रकाशवृत्तिता[1]॥ उद्भावनम्[1]॥ ॥=रोकनेवाले हेतुके अभावमें,विद्यमान न होने पर प्रगट अवस्थाका होना सोउद्भावन है

(१) "तदेवं परात्मनो निन्दाप्रशंसे सदसद्गुणयोरुच्छादनोद्भावने नीचैर्गोत्रस्यास्रव इति वाक्यार्थः प्रत्येयः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमुद्रित पृष्ठ ४५६
तद्-एवम् पर-निंदा-आत्मनः-प्रशंसा सद्गुण-उच्छादन=योही(=तद्-एवम्) अन्यकी बुराई अपनी बड़ाई (अन्यके) विद्यमान गुणोंका ढांकना
असद्-गुण-उद्भावन,नीचैःगोत्रस्य-आस्रवः इति वाक्यार्थःप्रत्येयः=(अपने)अनहोते गुणोंका प्रकाशन नीचगोत्रकाआस्रवका(कारण)हैऐसावाक्यार्थ जानो
उद्भावन=आविर्भाव-आविष्कार-प्रकाशन-प्रगट करना-प्रसिद्ध करना-व्यक्त करना एकार्थ वाची हैं ॥

(२) "प्रतिबंधक भावेन प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम्" सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्ति जिससे अनुवाद किया गया है उसमें यह पाठहै ,द्वितीय मुद्रित संस्करणमें "प्रतिबन्धकाभावेन प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम्" पाठ है अर्थात् द्वितीयावृत्तिमें 'बन्धक'के स्थानमें 'बन्धका' है ॥ प्रथमावृत्तिके शुद्धाशुद्धविवरणमें कोई भूल भी इस संबंधमें प्रगट नहीं कीगई है अतः छपनेमें भूल नहीं है । सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पृष्ठ ६५, ७७, १३६ पर अनुक्रमसे

अत्रापि च यथाक्रममभिसम्बन्धः-सद्गुणोच्छादनमसद्गुणोद्भावनमिति ॥ तान्येतानि नीचैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि ॥ अथोच्चैर्गोत्रस्य क आस्रवविधिरत्रोच्यते—

अत्र*अपि*च*यथाक्रमम्*अभिसम्बन्धः। =और (=च) यहां भी (=अपि) यथासंख्य (उच्छादन और उद्भावनका) सम्बन्ध है
सत्-गुण-उच्छादनम्॥ =(अर्थात्) परके सच्चे-उत्तम-विद्यमान-पूज्य-भले अच्छे गुणोंका संवरण वा ढांकना और
असत्-गुण-उद्भावनम्॥ इति*तानि॥एतानि॥ =अपने झूठ अप्रशस्त अविद्यमान-अपूज्य-बुरे गुणोंका प्रकाश करना ये इतने
नीचैर्गोत्रस्य॥आस्रवकारणानि॥ वेदितव्यानि॥ अथ=नीचकुलके आस्रवके कारण जानना चाहिये। अब
उच्चैः*गोत्रस्य॥कः॥आस्रवविधिः॥इति अत्र उच्यते =ऊंच कुलकी क्या आस्रवकी रीति है ऐसे (प्रश्नपर) यहाँ (अगलासूत्र) कहाजाता है कि

"प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तिता उद्भावन" पाठ है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६७ पर वार्तिक चार, हस्तलिखित दोप्रतियोंके पृष्ठ ४०,६=पैकीक्रमसे "प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तितोद्भावन" ॥४॥ पाठ है इस वार्तिकका भाष्य "प्रतिबंधकस्य हेतोरभावे प्रकाशितवृत्तिताउद्भावनमिति व्यपदेशमर्हति" है "प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तितोद्भावन" यह पाठ, एक हस्तलिखित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिककी प्रतिके पृष्ठ३७९पर है और यही पाठ मुद्रितप्रतिके पृष्ठ४५६ पर है ॥ अब प्रश्न यह है कि इनमेंसे कौनसा पाठ लेना चाहिये उपर्युक्तसे प्रगट है कि सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंका, तीन राजवार्तिक कीप्रतियोंकाऔर दो श्लोकवार्तिककी प्रतियोंका पाठ मिलता है, हमने बहुमत लेखानुकूल और निम्न हेतुओंसे "प्रतिबन्धकाभावे प्रकाशितवृत्तितोद्भावनं=प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तिता उद्भावनम्" पाठ लिया है ।

(क) प्रतिबंधक-अभावे प्रकाशित-वृत्तिता-उद्भावनम्= "रोकनेवाला कारणका अभाव होय, तब प्रगटहोना उद्भावन है" जयचन्द्रजीवचनिकापृष्ठ४२३॥ हस्तलिखित वचनिकाके पृष्ठ २२१पर यही पाठ है, उद्भावनके स्थानमें उद्भाव है, अर्थ एकही रहता है ॥

"प्रतिबंधक हेतुका अभावतैं होतां संता प्रकाशित प्रवृत्तिता जो है सो उद्भावन है" पन्नालाल दूनीसे उद्धृत

"प्रतिबंधक कहिये वस्तुके रोकने वाला कारणका अभाव होतैं संतैं प्रवृत्तिका प्रकाशितपना सो उद्भावन है (प० पन्ना न्याय०अनु० राज०उद्धृत)

प्रतिबंधकस्यहेतोः अभावे प्रकाशित-वृत्तिताउद्भावनम्=रोकने वाले कारणकी अविद्यमानतामें प्रगटप्रवृत्तिका होना सो उद्भावन है

इति व्यपदेशम् अर्हति =ऐसा उपदेश विशेषरूपसे योग्य है॥ (राजवार्तिककी चौथी वार्तिकके भाष्यका यहअनुवाद है॥

बहुमतानुकूल हमने भी तृतीया विभक्ति 'प्रतिबंधकाभावेन' न लेकर सप्तमी विभक्ति 'प्रतिबंधकाभावे' लेकर अर्थ किया है ॥अब हमको यह देखना है कि 'प्रतिबंधकाभावेन' का क्या अर्थ होता है=रोकनेवाले कारण द्वारा अथवा रोकनेवाले हेतुके होनेकरि (भावेन;') प्रगट अवस्थाका होना वा अविर्भाव सो उद्भावन है यह अर्थ प्रथम तात्पर्यके प्रतिकूल है, हां इसी पाठके 'न' को हम 'भावे' से भिन्न करदें तो, भावे सप्तमी एक वचनमें होकर न अव्यय निषेध अर्थमें होजावेगा और तात्पर्य भी ठीक निकल आवेगा ॥ द्वितीयावृत्ति सर्वार्थसिद्धिका पाठ तृतीया विभक्तिमें यही अर्थ देताहै क्योंकि वहां 'प्रतिबन्धकभाव' के स्थानमें 'प्रतिबन्धक-अभावेन' है ॥ इसका यह फल हुआ कि प्रथमावृत्तिका पाठ तृतीया विभक्तिमें अशुद्ध है द्वितीया वृत्तिका पाठ तृतीया विभक्तिमें ठीक है क्योंकि द्वितीयावृत्तिमें 'प्रतिबन्धकभावेन' के स्थानमें 'प्रतिबन्धकाभावेन' है। हमने बहुमतानुकूल पाठ लिया है॥

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

तदित्यनेन प्रत्यासत्तेर्नीचैर्गोत्रस्यास्रवः प्रतिनिर्दिश्यते ॥ अनेन प्रकारेण वृत्तिर्विपर्ययः ॥ तस्यविपर्ययस्तद्विपर्ययः । कः पुनरसौ विपर्ययः ? । आत्मनिन्दा,

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

=तद्–विपर्ययः[१] नीचै*वृत्ति–अनुत्सेकौ[२] च*उत्तरस्य[३](गोत्रस्य[४] आस्रव–कारणानि[५]॥ भवन्ति)

सूत्रार्थः–तद्–विपर्ययः[१]

=उस (नीच गोत्रके आस्रव)के विरुद्धप्रवृत्ति अर्थात् अपनी बुराई[१]दूसरेकी बड़ाई

अपने विद्यमान-साधु–उत्तम–पूज्य-सच्चे गुणको ढकना अन्यके अविद्यमान-बुरे-अधम,निंद्य-अपूज्य-झूठे गुणको ढांकना और उत्तमगुण धारकोंमें विनयकरि

नीचैस्*वृत्ति–अनुत्सेकौ[१] च* =नम्रताका वर्ताव, अनभिमानता वा मदरहितपना है (वे)

उत्तरस्य[२] गोत्रस्य[३] आस्रव–कारणानि[४]॥ भवन्ति T =ऊंच (=उत्तर) गोत्रके आस्रवके कारण होते हैं

तद्–इति*अनेन[१] प्रत्यासत्तेः[२] नीचैस्*गोत्रस्य[३] =(इस २६वाँ सूत्रमें) तद् इस(शब्द)करि अतिनिकट होनेसे नीच गोत्रका

आस्रवः[४] प्रतिनिर्दिश्यते T । अनेन[१] प्रकारेण[२] =आस्रव लियागया है अन्यथा प्रवृत्ति वा उलटे प्रकारसे

वृत्तिः[३]।विपर्ययः[४]; तस्य[१] विपर्ययः[२] तद्विपर्ययः[३]। =प्रवृत्तिहै सो विपर्ययहै। तिस(नीचगोत्र)केआस्रवके प्रतिकूल उलटा सो तद्विपर्यय है

कः[१] पुनः* (१) असौ[१] विपर्ययः[२];आत्मनिंदा[३]। =बहुरि वह(=असौ)क्या विपरीत वा प्रतिकूल वा व्यतिक्रम है। अपनी बुराई

श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र ५२६, ५३० पर और दिगम्बर आम्नायकी सर्वार्थ-सिद्धि मुद्रित पृष्ठ ३३८पर,तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें, तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६७में, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५६ पर और अन्य पुस्तकोंमें भी 'तद्विपर्ययो:"पाठ है । उक्तग्रन्थोंके भाष्योंमें भी श्री आचार्य 'विपर्ययः' शब्द लाये हैं परन्तु अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ३६२ पर और जयचन्दजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५२३ पर 'तद्विपर्ययो' के स्थानमें 'तद्विपर्ययौ' वाक्य है अर्थात् एक पाठ एक वचनमें है दूसरा दो वचनमेंहै अर्थभेद नहीं हैजैसा कि निम्नसे प्रगट है ॥ उसके (=तद् विपरीत, प्रतिकूल अथवा विरुद्ध अर्थात उस कथनका उलटा जो पच्चीसवां सूत्रमें कहा है भावार्थ आत्मनिंदा पर प्रशंसा आत्मसद्गुण-आच्छादन पर-असद्-गुणउद्भावन ॥ यदि 'तद्-विपर्ययौ" पाठले तब भी यही तात्पर्य निकलेगा जैसे उन दोनों परात्मनिन्दा प्रशंसे तथा परात्मसदसद्गुणोच्छादनोद्भावने भावार्थ दूसरेकी निंदा अपनी प्रशंसा और दूसरेके वर्तमान गुणों को ढकना

परप्रशंसा, सद्गुणोद्भावनमसद्गुणोच्छादनं च ॥ गुणोत्कृष्टेषु विनयेनावनतिर्नीचैर्वृत्तिः । विज्ञानादिभिरुत्कृष्टस्यापि सतस्तत्कृतमदविरहोऽनहङ्कारताऽनुत्सेकः । तान्येतान्युत्तरस्योच्चैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि भवन्ति ॥ अथ गोत्रानन्तरमुद्दिष्टस्यान्तरायस्य क आस्रव इत्युच्यते—

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

पर-प्रशंसा[1]॥; च* सद्-गुण-उद्भावनम्[2]॥* असद्-गुण-उच्छादनम्[3]॥; गुण-उत्कृष्टेषु[4]॥विनयेन[5] अवनतिः[6]॥ नीचै*र्वृत्तिः[7]॥; विज्ञानादिभिः[8]॥उत्कृष्टस्य[9]॥ अपि*सतः[10]॥ तद्-कृत-मदविरहः[11]॥अनहङ्कारता[12]॥ अनुत्सेकः[13]॥; तानि[14]॥एतानि[15]॥उत्तरस्य[16]॥ उच्चैः*गोत्रस्य[17]॥आस्रव-कारणानि[18]॥भवन्ति[19]॥ अथ*गोत्र-अनन्तरम्[20]॥उद्दिष्टस्य[21]॥अन्तरायस्य[22]॥ कः[23]॥आस्रवः[24]॥ इति* उच्यते ॥—

=दूसरेकी बड़ाई और [=च] विद्यमान,अच्छे, उत्तम,पूज्य वा सच्चे गुणका
=प्रगटपना अनछते, बुरे अप्रशस्त, निन्द्य अधम,अपूज्य, वा झूठे गुणका
=संवरण-गोपन-अप्रगटता है,संक्षेपतःसद् गुणका प्रगट करना असद् गुणका ढकना है।
=प्रशस्त वा उत्तमगुणवालोंमें विनयकरि नम्रता वा झुकना
=नीचैर्वृत्ति है । विशेष ज्ञानादिकरि उत्तम वा श्रेष्ठ
=पुरुषके भी(=अपि)उन[विज्ञानादिक]करि कियेहुये गर्वसे रहित वा वर्जित अनभिमानताहै
=सो अनुत्सेक है । ते इतने अच्छे वा ऊंच [=उत्तर]
=[अर्थात्] बड़े [=उच्चैः]कुलके आस्रवके कारण वा निमित्त होते हैं
=अब गोत्रके अनन्तर वा निकट वर्णित अन्तराय [कर्म] का
=क्या आस्रव [का कारण] है, इस प्रकार [प्रश्न होने पर अगला सूत्र]कहा जाता है कि

विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७॥ =विघ्नकरणम्[1]॥अन्तरायस्य[2] आस्रवस्यकारण(भवति) ॥

विघ्नकरणम्[1]॥ अन्तरायस्य[2]आस्रवस्य[3]कारणम्[4]॥ भवति ॥

=रोक वा बाधाकरना अन्तराय (कर्म) के आस्रवका कारण
=होता है अर्थात् दानदेनेमें विघ्नकरनेसे दानान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके लाभमें रोक डालनेसे लाभान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके बल वीर्यका व्याघात करनेसे वीर्यान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके भोगके कारणोंमें बाधा डालनेसे भोगान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके उपभोग के कारणोंमें अटकाव डालनेसे उपभोगान्तराय कर्मका आस्रव होता है ॥

दानादीन्युक्तानि दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चेत्यत्र ॥ तेषां विहननं विघ्नः। विघ्नस्य करणं विघ्नकरणमन्तरायस्यास्रवविधिर्वेदितव्यः ॥ अत्र चोद्यते-तत्प्रदोषनिह्नवादयो ज्ञानदर्शनावरणादीनां प्रतिनियता आस्रवहेतवो वर्णिताः; किं ते प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्रवहेतव एव, उताविशेषेणेति। यदि प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्रवहेतव एव, आगमविरोधः प्रसज्यते। आगमेहि

वृत्त्यनुवादः-दान-आदीनि[1]॥युक्तानि[1]॥दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि [1]॥ च* इति* अत्र। तेषाम् [6]॥ विहननम्[1]॥विघ्नः[1];विघ्नस्य [6]करणम्[1]॥ विघ्नकरणम्[1]॥अन्तरायस्य[6]आस्रव-विधिः[1]वेदितव्यः[1]; अत्र* (१) चोद्यते T तत्प्रदोष-निह्नव-आदयः[1] ज्ञानदर्शन-आवरण-आदीनाम् [6]। प्रतिनियताः [1] आस्रव-हेतवः[1] वर्णिताः[1]; किम्*ते[1]। प्रतिनियत-ज्ञानावरण-आदि-आस्रव-हेतवः[1]। एव*,उत* अविशेषेण [3]। इति*। यदि* प्रतिनियत-ज्ञानावरण-आदि-आस्रवहेतवः[1]एव*, आगम-विरोधः[1](२) प्रसज्यते T आगमे [7]। हि*

=दान-आदिक(पूर्वमें)कहे जाचुके हैं[अर्थात्]उपकारके लिये किसी वस्तुका अर्पण,प्राप्ति, =और जो एकबार सेवनेमें आवे-जो बारम्बार भोगनेमें आवे शक्ति[वा पराक्रम]ऐसे हैं =यहां [इस स्थानमें] तिन [दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य] का =व्याघात, हनना, वा बिगाड़ सो विघ्न है। विघ्न वा बाधाका करना =सो विघ्नकरण अन्तराय [कर्म] के आस्रवकी रीति जानना चाहिये, =यहां तर्ककी जाती है,तत्प्रदोष निह्नव आदिक[इसअध्यायके १०सूत्रसे २७तकदेखो] =ज्ञानावरण-दर्शनावरणादिक [आठकर्मों] के नियमित =आस्रवके कारण वर्णन किये गये हैं। क्या वे निश्चित वा विधित [=प्रतिनियत] =ज्ञानावरणादिक कर्मोंके आस्रवके कारणही हैं अथवा (=उत) =अविशेषकरि हैं अर्थात् सर्वभावोंसे समस्तकर्मोंका आस्रव होता है जो [ते प्रदोषादिक इस अध्यायके १० से २७ सूत्रोंमें कथित भाव तक] =नियमित ज्ञानावरणादिक [कर्मों] के आस्रवके कारण ही हैं =तो शास्त्रके विरोध प्रसंग आता है क्योंकि [=हि] शास्त्रमें

(१)चुदु-चुरादि दशगणका उभय (आत्मने और परस्मै)पदी सकर्मक सेट् धातु है, प्रेरणा करना प्रश्न करना अर्थमें आताहै,कर्मणि प्रयोगमें गुणसंज्ञा होकर चोदु हो जाता है, य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय जोड़कर चोद्य बना पीछे ते प्रथम पुरुष एक वचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी द्योतक क्रियाका चिन्ह लगा कर चोद्य+ते=चोद्यते बना=तर्ककी जाती है॥ (२) सञ्ज् भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपदी अकर्मक धातु है, कर्मणि प्रयोग और कर्तरि प्रयोग दोनों में इसका अनुनासिक गिर जाता है,सज्ज में य कर्मणि प्रधानका और प्र उपसर्ग जोड़नेसे प्रसज्य बना, ते अन्य पुरुष एक वचन आत्मनेपदी वर्तमान क्रिया का द्योतक चिन्ह लगाने से प्रसज्यते बना=प्रसंग आता है ऐसा अर्थ है॥

सप्तकर्माणि आयुर्वर्ज्यानि प्रतिक्षणं युगपदास्रवन्तीत्युक्तम् । तद्विरोधः स्यात् ॥ अथाविशेषेणास्रवहेतोर्विशेषनिर्देशो न युक्त इति ॥ अत्रोच्यते—यद्यपि तत्प्रदोषादिभिर्ज्ञानावरणादीनां सर्वासांकर्मप्रकृतीनां प्रदेशबन्धनियमो नास्ति । तथाप्यनुभागनियमहेतुत्वेन तत्प्रदोषनिह्नवादयो विभज्यन्ते ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तकर्माणि॥आयुःवर्ज्यानि॥प्रतिक्षणं॥युगपद्* =आयु (कर्म) रहित शेष सात कर्मोंका बारबार (=प्रतिक्षण) समय समय प्रति, एकसाथ
आस्रवन्ति I इति*उक्तम्॥;तद्-विरोधः॥स्यात्।अथ-=आस्रव होते हैं इस प्रकार कथनहै(=उक्तम्)उस(शास्त्र के कथन)काविरोध होगा अब

अविशेषेण॥ आस्रव-हेतोः ॥ (यदि तत्प्रदोष आदि१०सूत्रसे२७सूत्र तकमें गर्भितभाव ज्ञान-दर्शनावरण आठकर्मोंके)
=विशेषता रहित आस्रवके कारण होवें तो (अर्थात् सर्व कर्मोंका आस्रव प्रदोष
निह्नव–आदिक सर्व प्रकारके भावोंसे सामान्यपनेसे होवे तो)

विशेष-निर्देशः ॥ =विशेष कथन (जो सूत्र १०से२७तक कि अमुक भावोंसे अमुक प्रकारका आस्रवहोताहै)
न* युक्तः ॥ इति* ॥ =अयुक्त होगा-संक्षेपतः प्रश्न यह है कि १० से २७ सूत्र तक अमुक अमुक भावोंको
अमुक अमुक आस्रवके कारण कहे हैं शास्त्रमें आयुकर्मके अतिरिक्त सर्वभाव सव-
प्रकारके आस्रव के कारण होते हैं यह विरोध–कैसा ?

अत्रउच्यते–यद्यपितत्प्रदोषादिभिःज्ञानावरणादीनां॥ =यहां(उत्तरमें)कहा जाता है कि जो(=यद्यपि=यदपि)प्रदोषादिककरि ज्ञानावरणादिक
सर्वासां॥कर्मप्रकृतीनां॥प्रदेश-बन्ध-नियमः॥न*अस्ति=सर्व कर्म प्रकृतियोंका प्रदेश बंधका नियम नहीं है
तथापि*अनुभाग-नियम-हेतुत्वेन॥तत्प्रदोष-निह्नव- =तौभी विपाक वा अनुभवके नियमके निमित्तपनाकरि तत्प्रदोष निह्नव
आदयः॥ विभज्यन्ते I =आदिक भेदरूप कियेगये हैं अर्थात् प्रदोष निह्नव आदि भावोंसे जिनका कथन
१०से२७ सूत्र तकहै जो कर्म आते हैं वे अनुभाग प्रति नियम जताते हैं जैसे किसी
पुरुषका भाव दानदेनेमें अन्तराय करने वाला हो तो उससमयमें जो कर्मका आस्रव हुआ सो सात कर्मों को
बंधगया परन्तु दानान्तराय कर्ममें तौ रस प्रचुर पड़ा और अन्य प्रकृतियोंमें रस मंद पड़ा

इति*सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायाम्॥ = इस प्रकार सर्वार्थसिद्धि नामा (वृत्ति) में
तत्त्वार्थ-वृत्तौ॥ षष्ठः॥ अध्यायः॥ = तत्त्वार्थके विवरणमें छठा अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

आस्रवपदार्थो व्याख्यातस्तत्प्रारम्भकाले एवोक्त ''शुभः पुण्यस्येति'' तत्सामान्येनोक्तम् । तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थं कः पुनः शुभ इत्युक्ते इदमुच्यते—

॥ हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

अथ॑सप्तमः $^{१}_{१}$ अध्यायः $^{१}_{१}$ =(मोक्ष शास्त्र वा तत्त्वार्थ सूत्रका) सातवां अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है

आस्रव-पदार्थः $^{१}_{१}$ व्याख्यातः $^{१}_{१}$ तद्-आरम्भकाले $^{१}_{१}$ =आस्रव तत्त्व वर्णन किया गया, उस (आस्रव पदार्थ) के आरम्भ समयमें

एव॑उक्तम् $^{१}_{१}$ शुभः $^{१}_{१}$ पुण्यस्य $^{६}_{१}$ इति॑ =ही (=एव) कहागया (=उक्तं) कि शुभ (योग) पुण्य (कर्म) का आस्रव है ॥ ऐसा

तत्-सामान्येन $^{३}_{१}$ उक्तम् $^{१}_{१}$ =वह (=तत्=शुभः पुण्यस्य) अविशेषकरि कहागया था

तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् $^{१}_{१}$ कः $^{१}_{१}$ पुनः शुभः $^{१}_{१}$ =उस (अर्थात् शुभयोगपुण्य कर्मका आस्रव) के विशेष जाननेके लिये "फिर शुभ क्या है ?"

इति॑उक्ते $^{१}_{१}$ इदम्॑ उच्यते T =इस प्रकार कहने पर अर्थात् प्रश्न करने पर यह (सूत्र) कहा जाता है कि

[१]हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिव्र[२]तम् ॥१॥

=हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेभ्यः $^{५}_{३}$ विरतिः $^{१}_{१}$ व्रतम् $^{१}_{१}$ ॥ १ ॥

हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म°- =हिंसासे, असत्य झूठ वा मिथ्या (भाषण) से, चोरी (करने) से, मैथुनसे वा स्त्री प्रसंगसे

परिग्रहेभ्यः $^{५}_{३}$ विरतिः $^{१}_{१}$ व्रतम् $^{१}_{१}$ =पदार्थ संचय और ममता वा ममत्व परिणाम से (बुद्धि पूर्वक) विरक्तता वा निवृत्ति सो व्रत है

(१) उक्त [स्त्रि०क्त्+क] । कथित । कहागया और 'भावे क'कथन, कहना (म०) पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६६) (२) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा पाठ है अर्थमें भी कुछ भेद नहीं है ॥ अव्रह्म और अब्रह्म दोनों ठीक हैं ॥ इस सूत्रका विशेष रूपसे विभाग करने पर पांच भाग इस प्रकार हो जाते हैं कि (क) हिंसा याः विरतिः व्रतम् =हिंसासे विरक्तता अथवा विरक होना वा परिहार सो अहिंसा व्रत है अनृतात् विरतिः व्रतम् झूठ वा मिथ्या भाषणसे उपरम वा निवृत्ति सो सत्य भाषण व्रत है, स्तेयात् विरतिः व्रतम्=चोरी से अकरण, वा हटना सो अस्तेय व्रत है (ग) अब्रह्मणः विरतिः व्रतम्=मैथुन वा स्त्री संसर्गसे उपरम सो ब्रह्मचर्य्य व्रतहै (ङ) परिग्रहात् विरतिः व्रतम्=पदार्थ संचय और ममत्व भावसे उपरम वा शान्त होना सो परिग्रहत्याग नामा व्रत है ॥ अकरण (न करना), उपरम, निवृत्ति, निवटना ये समानार्थक वाची शब्द है ॥

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसेत्येवमादिभिः सूत्रैर्हिंसादयो निर्देक्ष्यन्ते। तेभ्यो विरमणं विरतिर्व्रतमित्युच्यते ॥ व्रतमभिसन्धिकृतो नियमः ॥ इदं कर्तव्यमिदं न कर्तव्यमिति वा ॥ ननु च हिंसादयः परिणामविशेषा अध्रुवाः कथं तेषामपादानत्वमुच्यते ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित प्रथम सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

प्रमत्तयोगात् $\frac{५}{१}$'
प्राण–व्यपरोपणम् $\frac{१}{१}$'' हिंसा $\frac{१}{१}$
इत्येवम् ❀ आदिभिः $\frac{३}{३}$''' सूत्रैः $\frac{३}{३}$''' हिंसा–
आदयः $\frac{१}{३}$'
निर्देक्ष्यन्ते T; तेभ्यः $\frac{५}{३}$'
विरमणम् $\frac{१}{१}$'' विरतिः $\frac{१}{१}$'' व्रतम् $\frac{१}{१}$'' इति ❀ उच्यते T।
व्रतम् $\frac{१}{१}$'' अभिसन्धिकृतः $\frac{१}{१}$' नियमः $\frac{१}{१}$'; इदम् $\frac{१}{१}$''
कर्तव्यम् $\frac{१}{१}$'' इदम् $\frac{१}{१}$''न कर्तव्यम् $\frac{१}{१}$'' इति वा❀ननु च❀
हिंसा $\frac{१}{१}$'' आदयः $\frac{१}{३}$'परिणाम–विशेषाः $\frac{१}{३}$' अध्रुवाः $\frac{१}{३}$'
कथम् ❀ तेषाम् $\frac{६}{३}$' अपादानत्वम् $\frac{१}{१}$''
उच्यते T

=प्रमादके सम्बन्धसे अथवा प्रमादी के मन वचन और काय से
=भाव प्राण तथा द्रव्य प्राण का वियोग करना सो हिंसा है।
=इत्यादि सूत्रों करि हिंसा [देखो इस अध्यायका सूत्र १३]
=अनृत[सूत्र १४में] स्तेय [सूत्र १५में] अब्रह्म [सूत्र १६में] परिग्रह [सूत्र १७में]
=कहे जायंगे अथवा निरूपण किये जायंगे तिन [हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रह]से
=विरक्तता [अर्थात्] निवृत्ति [= विरति] सो व्रत ऐसा वर्णित है
=व्रत है सो [बुद्धि पूर्वक] अभिप्राय वा परिणाम करि किया हुआ नियम है। यह
=करनेयोग्य है अथवा यह करनेयोग्य नहीं है ऐसा (व्रत) है पुन [=च] प्रश्न–
=हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रह-भाव विशेष हैं चलायमान वा अस्थिर हैं
=कैसे तिन [हिंसादिक अध्रुव परिणाम विशेषनिकें] अपादानपना वा ध्रुवपना
=[इस सूत्र में] कहा गया है अर्थात् जिस निश्चल अवधि वा सीमासे हटनाहो
–विभाग हो उस निश्चल अवधि को अपादान [कारक=हेतु=निमित्त]

कहते हैं [व्याकरणमें] जहां अपादान कारक सीमा है वहां पंचमी विभक्ति का उपयोग होता है पंचमी विभक्तिका चिन्ह हिन्दीमें से अथवा तें है और संस्कृतमें आत् [एक वचन] भ्याम् [दो वचन] भ्यः [बहु वचन] चिन्ह है जैसे ग्रामात् आयाति गांवसे आता है तात्पर्य हटता है यहां पर गांव जिसको से प्रत्यय जोड़ा गया है ध्रुव अथवा स्थिर रहता है और अमुक पुरुष हटता है इसी प्रकार हिंसा–अनृत–स्तेय-अब्रह्म–परिग्रह से हटना सो व्रत है यहांपर हिंसादिक (पूर्वोक्त गांवके सदृश) ध्रुव रहने चाहिये परन्तु ये हिंसादिक चलायमान भाव हैं

बुद्ध्यापाये ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेः॥ यथा धर्माद्विरमतीत्यत्र य एष मनुष्यः सम्भिन्नबुद्धिः स पश्यति दुष्करो धर्मः फलं चास्य

अध्रुव हैं इसलिये ज्ञात है कि इन अस्थिर वा चलायमान परिणामों को कैसे ध्रुवपना वा अपादानपना मानकर पंचमी विभक्ति बहु वचन (भ्यःअर्थात् से) करि प्रगट किया है ॥

बुद्धि–अपायध्रुवत्व* विवक्षा$^{1|1}$ उपपत्तेः$^{1|1}$ ॥

यथा* धर्मात्$^{5|1}$ विरमति । इति* अत्र*यः$^{1|1}$ एषः$^{1|1}$ मनुष्यः$^{1|1}$

(१)संभिन्न–बुद्धिः$^{1|1}$

सः$^{1|1}$ पश्यति T

(२) दुष्करः$^{1|1}$ धर्मः$^{1|1}$ फलम्$^{1|1|1}$ च * अस्य$^{6|1}$

=(उत्तर) धी वा बुद्धिके विभागमें (=अपाये) वा हटनेमें (=अपाये) (=हिंसादिकके) स्थिरता वा निश्चलपना विवक्षाकरि सिद्ध है, बने है

=जैसे धर्मसे हटता है यहां जो यह पुरुष (अर्थात् परीक्षावान् मनुष्य)

=विकसित बुद्धियुक्त अर्थात् भली प्रकार खिली हुई है बुद्धि जिसकी

=सो विचारता है अथवा सोचता है कि

=धर्म कठिन वा दुःसाध्यहै अर्थात् दुःखसे कियाजाताहै और (=च) इस (धर्म)का फल

जैनेन्द्रव्याकरणमें अपादानका लक्षण ऐसा कहा है—" ध्रुवमपादानम् " (देखो जैनेन्द्र व्याकरण १-२-१२४) धी अथवा बुद्धिके हटनेमें (=अपाये) वा नाशहोने पर (=अपाये) जो निश्चल—स्थिर रहे सो अपादान है जैसे धर्माद्विरमति = धर्मात् विरमति =धर्मसे हटता है (ख) पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी = (पाणिनीयमें) अपादानका लक्षण, "ध्रुवमपाये ऽपादानम्" १-४-२४सूत्रमें है जिस निश्चल अवधिसे (=ध्रुव) विभाग हो—हटना हो (=अपाय) वह (अवधिभूत) अपादान है (ग) अपादाने पञ्चमी २-२-२८ ॥ अपादान कारकमें पञ्चमी विभक्ति हो ॥ पञ्चमी विभक्तिका चिन्ह हिंदीमें से अथवा तें है और संस्कृतमें उन शब्दोंके पञ्चमी विभक्तिके चिन्ह जिनके अन्तमें अ हो आत् (एक वचनका चिन्ह) भ्याम् (दो वचनका चिन्ह) और भ्यः (बहु वचन का चिन्ह) हैं ॥ अपादान वा ध्रुवके दृष्टान्त देते हैं जैसे ग्रामात् आयाति = गांवसे आता है यहां निश्चल अवधि जो ग्राम है जिससे आनेवालेका विभाग वा हटना है और धावतो ऽश्वात् पतति = धावतः अश्वात् पतति = दौड़ते घोड़ेसे गिरता है यहां भी घोड़ेकी पीठ ध्रुव अवधि है (घ) पूर्वोक्त पाणिनीय सूत्रके अनुसार, जुगुप्सा – विराम और प्रमाद अर्थवाले धातुओंमें अपादानत्व नहीं घटता है इस हेतु से यह प्रश्न " हिंसादयः परिणाम विशेषा अध्रुवाःकथं तेषामपादानत्वमुच्यते" कियागया है ॥ पाणिनिमुनि के " ध्रुवमपाये ऽपादानम्" को पूरा करनेके लिये कात्यायन जी की वार्तिक इस प्रकार है "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" –जुगुप्सा–विराम–प्रमाद–अर्थवाले धातुओंके प्रयोगमें कारक अपादान संज्ञक हो यह उपसंख्यान करना चाहिये जैसे' पापाज्जुगुप्सते–धर्माद्विरमति धर्मात् प्रमाद्यति ' यहां अपायमें ध्रुवार्थ नहीं घटनेसे अपादान संज्ञा नहीं प्राप्त थी ॥ पापसे घिन करता है– धर्म से हटता है–धर्म से असावधान है, यही कारण है कि कात्यायनमुनि ने वार्तिक निर्देश किया है, टिप्पणी (क) तथा (घ) से प्रगट है कि जैनेन्द्र व्याकरण में " ध्रुवमपादानम्" से और कात्यायन मुनिकीजुगुप्सा विराम इत्यादिक पाणिनी कृत १-४-२४ सूत्रपर वार्तिक से हिंसा अनृत-स्तेय अब्रह्म परिग्रह में अपादानपना बनता है (१) बुद्धिः स्त्रीलिंग है परन्तु समास होनेसे पुंलिंग होगयाहै = विकसित है बुद्धि जिसकी इस अर्थमें है (२) दुष्करका अर्थ

श्रद्धामात्रगम्यमिति स्वबुद्ध्या सम्प्राप्य निवर्तते ॥ एवमिहापि य एष मनुष्यः प्रेक्षा-पूर्वकारी स पश्यति–य एते हिंसादयः परिणामास्ते पापहेतवः पापकर्मणि प्रवर्तमानानिहैव राजानो दण्डयन्ति परत्र च दुःखमाप्नुवन्तीति–स्वबुद्ध्या सम्प्राप्य निवर्तते ॥ ततो बुद्ध्या ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेरपादानत्वं युक्तम् ॥ विरतिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते–

श्रद्धामात्रगम्यम् १।१।११ इति❀ (१) स्वबुद्ध्या ३।१।११	=विश्वासमात्र से जाना जाता है अर्थात् प्रत्यक्षनहीं है ऐसे अपनीबुद्धिद्वारा
सम्प्राप्य÷निवर्तते T एवम्❀ इह❀ अपि❀ यः १।१।१ एषः १।१।१	=ग्रहणकरि (धर्मसे) हटता है ऐसे यहां (इससूत्र में) भी जो यह
मनुष्यः १।१।१ प्रेक्षापूर्वकारी १।१।१ सः १।१।१ पश्यति T ये १।३।१ एते १।३।१	=मनुष्य परीक्षावान् है सो विचारता है कि ये इतने
हिंसा-आदयः १।३।१ परिणामाः १।३।१ ते १।३।१ पापहेतवः १।३।१	=हिंसादिक भाव हैं ते पापके कारण हैं,
पाप–कर्मणि ७।१।११ प्रवर्तमानान् २।३।१ इह❀एव❀राजानः १।३।१	=पाप क्रियामें (=पापकर्मणि) प्रवर्तनेवाळोंको यहां ही राजा लोग
दण्डयन्ति T परत्र❀ च❀ दुःखम् २।१।११ आप्नुवन्ति T	=दंड देते हैं और (=च) परलोकमें (=परत्र) दुःखको प्राप्त होते हैं
इति❀स्वबुद्ध्या ३।१।११ सम्प्राप्य ÷ निवर्तते T	=ऐसे अपनी बुद्धि से ग्रहणकरि (हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म-परिग्रह से) हटजाता है
ततः❀ बुद्ध्या ५।१।१ ध्रुवत्व❀ विवक्षा–उपपत्तेः ५।१।१	=तिस कारणसे (=ततः)बुद्धिसे स्थिरपना की विवक्षा बननेसे
अपादानत्वम् १।१।११ युक्तम् १।१।११	=(हिंसा-अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रहकें) अपादानपना ठीक है अर्थात् हिंसा अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रह ये पदार्थ तो ध्रुवही हैं इनका ज्ञान (बुद्धि में) रहता ही है त्याग–ग्रहण बुद्धि में होता है तिसकी अपेक्षा से (हिंसादिक के) अपादानपना वा ध्रुवपना युक्त अथवा उचित है
विरतिशब्दः १।१।१ प्रत्येकम् २।१।११ परिसमाप्यते T	=[सूत्रमें]विरति शब्द [हिंसा-अनृत-स्तेय अब्रह्म परिग्रह] पृथक् को जोड़ा जाता है

दुस्साध्य है और पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १२१ में दुःखेन क्रीर्य्यते = (दुष्कर) दुःखसे कियाजाता है ऐसा अर्थ है ॥ (३) सम्प्राप्य (जहां जहां) है सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त हैं ॥ (४) प्रेक्षापूर्वकारिन् शब्दका पृथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें प्रेक्षापूर्वकारी (शशिन् शब्दसे शशीके तुल्य) है ॥

हिंसाया विरतिः, अनृताद्विरतिरित्येवमादि॥ तत्र-अहिंसाव्रतमादौ क्रियते प्रधानत्वात्। सत्यादीनि हि तत्परिपालनार्थानि सस्यस्य वृतिपरिक्षेपवत्॥ सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं, तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पञ्चविधमिहोच्यते॥ ननु च-अस्य व्रतस्यास्रवहेतुत्वमनुपपन्नं संवरहेतुष्वन्तर्भावात्। संवरहेतवो वक्ष्यन्ते गुप्तिसमित्यादयः। तत्र दशविधे धर्मे संयमे वा व्रतानामन्तर्भाव इति।

हिंसायाः $\frac{५}{१}$ विरतिः $\frac{१}{१}$ अनृतात् $\frac{५}{१}$ विरतिः $\frac{१}{१}$ इत्येवम् आदि $\frac{१}{१}$ ॥ = (तब) हिंसासे विरक्तता असत्य (भाषण) से निवृत्ति ऐसेही = चोरीसे उपरम(= स्तेयात् $\frac{५}{१}$ विरतिः $\frac{१}{१}$), स्त्री प्रसंगसे हटना(अब्रह्मणः $\frac{५}{१}$ विरतिः $\frac{१}{१}$), पदार्थ संचय अथवा ममतासे उपरम वा त्याग [परिग्रहात् $\frac{५}{१}$ विरतिः $\frac{१}{१}$] होता है

तत्र-अहिंसा व्रतम् $\frac{१}{१}$ आदौ $\frac{१}{१}$ क्रियते I प्रधानत्वात् $\frac{५}{१}$; = तहां—अहिंसा व्रत (इस सूत्रके) आरम्भमें मुख्य होनेसे रक्खागया है

सत्य-आदीनि $\frac{१}{३}$ हि ❀ तत्परिपालन—अर्थानि $\frac{१}{३}$ = सत्यादिक ही उस (अहिंसा व्रत) के रक्षाके लिये

सस्यस्य $\frac{६}{१}$ वृति—परिक्षेपवत् ❀ ॥ = खेतके धान्य (=सस्य) का [=स्य] वाड़ि वा वेड़ा[=वृत्ति] के समान है

सर्व-सावद्य-निवृत्ति-लक्षण-सामायिक-अपेक्षया $\frac{३}{१}$ = समस्त सावद्य योगसे विरक्तताहै लक्षण जिसकाऐसा सामायिक[चारित्र]की अपेक्षासे

एकम् $\frac{१}{१}$ व्रतम् $\frac{१}{१}$, तद्-एव ❀ छेदोपस्थापन-अपेक्षया $\frac{३}{१}$ = एक व्रत है, वह [सामायिक]ही छेदोपस्थापनकी अपेक्षासे

पञ्चविधम् $\frac{१}{१}$ इह ❀ उच्यते T ॥ = पांच प्रकार यहां [=इस मोक्ष शास्त्रमें]कहा गया है[अध्याय ९ सूत्र १८ देखो)।

ननु ❀ च ❀ अस्य $\frac{६}{१}$ व्रतस्य $\frac{६}{१}$ आस्रव-हेतुत्वम् $\frac{१}{१}$ = पुन प्रश्न वा तर्क—इस [पूर्वोक्त हिंसादिकसे विरक्ततारूप] व्रतके आस्रवका कारणपना

अनुपपन्नम् $\frac{१}{१}$ संवर हेतुषु $\frac{७}{३}$ अन्तर्भावात् $\frac{५}{१}$ = (संवरके कारणोंमें व्रतके गर्भित होनेसे अयुक्त है अर्थात् व्रतोंको जब संवरका कारण नवमें अध्याय के सूत्र २ में गर्भित करदिया तब उन व्रतोंको यहां (इस सूत्र में) आस्रवका कारण कहना ठीक वा उचित नहीं है

संवर—हेतवः $\frac{१}{३}$ गुप्ति-समिति-आद्यः $\frac{१}{३}$ वक्ष्यन्ते I = संवरके कारण गुप्ति (अध्याय ९ सूत्र ४) समिति (अध्याय ९ सूत्र ५) आदिक = (अध्याय ९ सूत्र ६, ९,१८ में) कहे जावेंगे

तत्र दशविधे $\frac{७}{३}$ धर्मे $\frac{७}{३}$ संयमे $\frac{७}{३}$ वा व्रतानाम् $\frac{६}{३}$ अन्तर्भावः $\frac{१}{१}$ इति=तहां (संवरके प्रकरणमें) दश प्रकारके धर्ममें अथवा संयममें व्रतोंका गर्भितपनाहै

नैष दोषः—तत्र संवरो निवृत्तिलक्षणो वक्ष्यते । प्रवृत्तिश्चात्र दृश्यते हिंसानृतादत्ता-दानादि परित्यागे अहिंसा सत्यवचन दत्तादानादिक्रियाप्रतीतेः, गुप्त्यादिसंवरपरिकर्मत्वाच्च ॥ व्रतेषु हि कृतपरिकर्मा साधुः सुखेन संवरं करोतीति ततः पृथक्त्वेनोपदेशः क्रियते ।

नञ् एषः दोषः—तत्र संवरः निवृत्ति-लक्षणः वक्ष्यते ; अतः च प्रवृत्तिः दृश्यते, हिंसा-अनृत-अदत्तादान-आदि-परित्यागे अहिंसा-सत्यवचन-दत्तादान-आदि क्रिया प्रतीतेः

गुप्ति-आदि-संवर-परिकर्मत्वात् च ; व्रतेषु हि कृतपरिकर्मा साधुः सुखेन संवरं करोति इति

ततः पृथक्त्वेन उपदेशः क्रियते ।

अर्थात् उत्तमक्षमामें अहिंसा, उत्तम सत्यमें सत्य वचन, उत्तम शौच [= निर्लोभ] में अचौर्य, उत्तम ब्रह्मचर्यमें ब्रह्मचर्य और उत्तम आकिंचन्य में [निर्ममत्व में] परिग्रह त्याग गर्भित होता है।

= यह दूषण नहीं है वहां [संवरके अधिकारमें] संवर [कर्मोंका] निवृत्ति स्वरूप
= कहा जायगा वा निरूपण किया जायगा और यहां [आस्रव प्रकरण में] प्रवृत्ति
= दिखाई गई है क्योंकि हिंसा-मिथ्या भाषण-चोरी वा चोरी आदिक के छोडने पर
= अहिंसा-सत्य बोलना-दीहुई वस्तु को ग्रहण आदिक क्रिया की प्रतीति अथवा प्रसिद्धि
होती है अर्थात् पांच पापों के दूर होने पर पांच व्रतों का आविर्भाव वा व्यक्तता वा
प्रगट पना होता है सो व्रत शुभ कर्मोंके आगमनका कारण है इन व्रतोंसे भी अव्रतोंके सदृश
कर्मोंकी प्रवृत्ति वा प्रवाह होता है कर्मों की निवृत्ति नहीं होती है इसीलिये उत्तर में कहते
हैंकि आस्रव प्रकरणमें व्रतों का निर्देश कर्मोंकी प्रवृत्ति दिखाने के लिये किया है ;

= और [= च] क्योंकि गुप्त्यादिक स्वरूप संवरके परिवार हैं
= व्रतों में ही पूर्ण [= कृत] लगा हुआ [= परिकर्म] वा प्रवृत्ति होने वाला साधु सुखसे
= संवरको करता है अर्थात् गुप्ति-समिति-धर्म- अनुप्रेक्षा-परीषहजय और
चारित्र ये छह संवर के कारण हैं इन में जहां जहां व्रत हैं वे कर्मों के आगमनके
रोकनेके लिये अथवा कर्मों की निवृत्ति के लिये हैं ।
= तिसगे (व्रतों को) न्यारापनाकरि (आस्रवके प्रकरणमें कर्मोंकी प्रवृत्तिमें
और संवरके प्रकरणमें कर्मोंकी निवृत्तिमें) कथन किया गया है इस प्रश्न

और उत्तरका संक्षेपतः तात्पर्य यह है कि जब संवरके प्रकरण धर्म वा संयममें व्रत गर्भित कर

ननु च-षष्ठमणुव्रतमस्ति रात्रिभोजनविरमणं तदिहोपसंख्यातव्यम् । न । भावनान्तर्भावात् । अहिंसाव्रतभावना हि वक्ष्यन्ते । तत्र आलोकितपानभोजनभावना कार्येति ॥ तस्य पञ्चतयस्य व्रतस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

दिये तो व्रत आस्रवके अधिकारमें क्यों कहे (उत्तर) आस्रवमें व्रत कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये हैं, आस्रवमें अव्रतोंसे अशुभ कर्मका आगमन होता है और व्रतों से शुभ कर्मोंकी प्रवृत्ति वा आगमन होता है परन्तु संवर प्रकरण में जहां गणना की गई है वहां कर्मकी निवृत्ति (कर्मके आस्रवके रोकने) के लिये है।

ननु च* षष्ठम्[1111] अणुव्रतम्[1111] अस्ति[1] रात्रि-भोजन-विरमणम्[111] तद्[111] इह* उपसंख्यातव्यम्[111] न ।

=पुनि प्रश्न छठवां अणुव्रत है रात्रिमें अहारका =त्याग (=विरमणम्) वह यहां गिनाजाना चाहिये। =(रात्रि भोजन यहां गणनामें) नहीं (गिना जाना चाहिये)।

भावनासु[3111] अन्तर्-भावात्[41]

=क्यों कि (रात्रि भोजन त्याग) भावना विषैं गर्भित है ।

अहिंसा व्रत भावना[111] हि* वक्ष्यन्ते[1]

=अहिंसा व्रतकी भावना(= बार बार चिंतवन)ही कही जायेगी(देखो अध्याय ७सूत्र ४)

तत्र*आलोकितपान-भोजन-भावना[111] कार्या[111] इति*

= तहां (इस अध्याय के सूत्र ४ में) देख सोध आहार भावना करना चाहिये

तस्य[611]पंचतयस्य[611]व्रतस्य[611]भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम्[111]आह=तिस पांच की संख्या वाले व्रतके भेद जनावनेके लिये कहते हैं कि—

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

= देशसर्वतः *अणुमहती[3111] ॥२॥

देशतः *अणु[111]

=देशतः * (हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेभ्यः) अणु-व्रतम्[111]

सर्वतः*महत्[111]

=सर्वतः* (हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेभ्यः विरतिः) महत्-व्रतम्[111]

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर तथा दिगम्बर संप्रदायोंमें एकसा पाठ और एकसा अर्थ है (२) अणु, और महत् व्रत शब्दसे संम्बन्ध रखनेके हेतुसे यहां नपुंसक लिंग एक वचन है और प्रथमा विभक्ति है (३) इस सूत्रमें दो स्थानों पर प्रथम सूत्र संपूर्णकी अनुवृत्ति है जैसा कि इस पृष्ठकी पंक्ति १६ और १७ से प्रगट है कि (क) देशतः हिंसायाः विरतिः अणुव्रतम् = एक देश हिंसासे विरक्त होना सो अहिंसा अणुव्रत है ॥ख॥ देशतः अनृतात् विरतिः अणुव्रतम् = अंशरूपमें मिथ्या भाषण से विरक्त होना सो सत्य अणुव्रत है ॥ ग॥ देशतः स्तेयात् विरतिः अणुव्रतम्

देशः एकदेशः । सर्वः सकलः । देशश्च सर्वश्च देशसर्वौ ताभ्यां देशसर्वतः । विरतिरित्यनुवर्तते । अणु च महच्चाणुमहती । व्रताभिसम्बन्धान्नपुंसकलिङ्गनिर्देशः

सूत्रार्थः—देशतः * हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रहेभ्यः $\frac{५}{३}$ विरतिः $\frac{१}{१}$ अणुव्रतम् $\frac{१}{१}$
=अंश रूप से वा अल्प रूप से हिंसासे, असत्य भाषणसे, चोरीसे, मैथुनसे,
=पदार्थ संचय अथवा ममतासे विरक्त होना अणुव्रत है

सर्वतः * हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रहेभ्यः विरतिः $\frac{१}{१}$ महत्–व्रतम् $\frac{१}{१}$
=सर्वथा वा सर्व प्रकार वा सब विधि हिंसासे, मिथ्या भाषणसे, चोरीसे, स्त्री प्रसंगसे,
=वस्तु संचय अथवा ममत्वसे त्याग होना महाव्रत है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दशः हिन्दीअनुवाद

देशः $\frac{१}{१}$ एकदेशः $\frac{१}{१}$ । सर्वः $\frac{१}{१}$ सकलः $\frac{१}{१}$;
=अंश (देश) एक अंश (से तात्पर्य) है सर्व समस्त है

देशः $\frac{१}{१}$ च* सर्वः $\frac{१}{१}$ च* देशसर्वौ $\frac{१}{२}$
=बहुरि देश और सर्व सो देशसर्वौ (ऐसा द्वन्द्व समास) हुआ

ताभ्याम् $\frac{५}{२}$ देशसर्वतः*
=तिन (देश तथा सर्व दो मिल्ने) से देश सर्वतः (वाक्य) हुआ
अर्थात् थोड़े रूप से और सर्वथा सब प्रकार से अथवा अंश-विभाग-अल्परूप से और समस्त विधि से

विरतिः $\frac{१}{१}$ इति* अनुवर्तते[1] अणु $\frac{१}{१}$
=विरति (=विरक्तता शब्द प्रथम सूत्रसे) अनुवर्तता है वा आता है

च* महत् $\frac{१}{१}$ च
=बहुरि अणु तथा महत्

अणुमहती $\frac{१}{२}$
=अणुमहती (नपुंसकलिंगी दो वचनान्त वाक्य) हुआ

व्रत–अभिसम्बन्धात् $\frac{५}{१}$
=(प्रथम सूत्रसे) व्रत [शब्द] का सम्बन्ध [इस अणु–महत् के साथ] होनेसे

नपुंसकलिंग-निर्देशः $\frac{१}{१}$
=नपुंसकलिंगमें [अणु–महत्का] कथन वा उपदेश है

= अल्परूपमें चोरीसे उपरम सो अचौर्यअणुव्रत है (घ) देशतः अब्रह्मणः विरतिः अणुव्रतम् =पर स्त्री प्रसंगसे सर्वथा विरक्त होना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है (ङ) देशतः परिग्रहात् विरतिः अणुव्रतम् =एक देश वस्तु संचय और ममतासे दूरहोनः सो परिग्रह त्याग अणुव्रत है (च) सर्वतः हिंसायाः विरतिः महाव्रतम् =सर्वथा हिंसा से विरक्त हो ना सो अहिंसा महाव्रत है (छ) सर्वतः अनृतात् विरतिः महाव्रतम् = सर्व प्रकारसे झूठसे उपरम सो सत्य महाव्रत है (ज) सर्वतः स्तेयात् विरतिः महाव्रतम् = सर्वप्रकारसे चोरीसे उपरम सो अचौर्य महाव्रत है (झ) सर्वतः अब्रह्मणः विरतिः महाव्रतम् = सर्वप्रकारसे मैथुनसे विरक्त होना सो ब्रह्मचर्य महाव्रत है (ञ) सर्वतः परिग्रहात् विरतिः महाव्रतम् = सर्वप्रकारकी परिग्रहको छोड़ना सो परिग्रहत्याग महाव्रत है।

यथासंख्यमभिसम्बध्यते । देशतो विरतिरणुव्रतं सर्वतोविरतिर्महाव्रतमिति द्विधा भिद्यते प्रत्येकं व्रतम् ॥ एतानि व्रतानि भावितानि वरौषधवद्यत्नवते दुःखनिवृत्तिनिमित्तानि भवन्ति॥ किमर्थं कथं वा भावनं तेषामित्यत्रोच्यते—

यथासंख्यम् १।१।१ अभिसम्बध्यते T =[देशतः, सर्वतः के साथ अणु और महत् का] क्रमसे संबन्ध कियागया है अर्थात् देशतः के साथ 'अणु' शब्द को लगाना चाहिये और 'सर्वतः' के साथ 'महत्' शब्द का सम्बन्ध करना चाहिये

देशतः * विरतिः १।१।१ अणुव्रतम् १।१।१
सर्वतः * विरतिः १।१।१ महाव्रतम् १।१।१
इति * द्विधा * भिद्यते T प्रत्येकम् १।१।१ व्रतम् १।१।१, =(हिंसादिक पापोंसे) एक देश अथवा अल्परूप विरक्तता अणुव्रत है
=(और इन्हीं हिंसादिकसे) सर्वथा, सर्वविधिसे विरक्तता महाव्रत है
=ऐसे दो प्रकार पृथक् पृथक् [=प्रत्येकं] व्रत भेदरूप कियेगये हैं [=भिद्यते] अर्थात् हिंसासे एक देश विरति, हिंसासे सर्वतः विरति, अनृतसे एकदेश विरति, अनृतसे सर्वतः विरति, स्तेयसे अंश रूपसे विरति, स्तेयसे सर्वथा विरति, अब्रह्मसे, अल्परूपसे विरति, अब्रह्मसे सर्व प्रकारसे विरति, परिग्रहसे थोड़े रूपसे विरति, परिग्रहसे सब विधिसे विरति, ऐसे अहिंसाव्रतके, अहिंसाअणुव्रत, और अहिंसा महाव्रत दो भेद हुए, सत्यव्रत के सत्य भाषण अणुव्रत तथा सत्य महाव्रत दोभेद हुए, अचौर्यव्रतके अचौर्य अणुव्रत, बहुरि अचौर्यमहाव्रत दोभेद हुए, ब्रह्मचर्यव्रतके ब्रह्मचर्य अणुव्रतऔर ब्रह्मचर्यमहाव्रत दोभेद हुए, परिग्रहत्यागव्रत के परिग्रह प्रमाण अणुव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत दो भेद हुये।

एतानि १।३।१ व्रतानि १।३।१ भावितानि १।३।१
वर-औषधवत् * यत्नवते ४।१ दुःख-निवृत्ति-
निमित्तानि १।३।१ भवन्ति। किम् १।१।१ अर्थम् १।१।१ कथं * वा =ये [पांच] व्रत भावना रूप किये गये अर्थात् बारम्बार चिन्तवन और अभ्यास कियेगये
=श्रेष्ठ, औषधके समान, जतन वाले के लिये दुःख को दूर करनेके
=कारण होते हैं, किसलिये अथवा [=वा] कैसे [कौनप्रकार]
भावनम् १।१।१ तेषाम् ६।३।१ इति * अत्र * उच्यते T =तिन (पांच पूर्वोक्तव्रतों)की भावना है ऐसे (प्रश्न होने पर)यहां (अग्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंचपंच ॥३॥

तेषां व्रतानां स्थिरीकरणायैकैकस्य व्रतस्य पंचपंच भावना वेदितव्याः ॥

यद्येवमाद्यस्याहिंसाव्रतस्य भावनाः का इत्यत्रोच्यते—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥४॥

(१)तत्स्थैर्यार्थं भावना पंचपंच ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—तत्-स्थैर्य-अर्थम्[1/1/1] =उन अथवा पूर्वोक्त (व्रतों) की स्थिरता वा दृढ़ताके लिये(निमित्त)

भावनाः[1/1/1] पंच पंच[1/1/1] ॥३॥ =[एक एकव्रतकी]पांचपांच भावनायें हैं अर्थात् [बारम्बार चिंतवन और कर्तव्य करना]है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इसतृतीय सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदीअनुवाद

तेषाम्[6/3/1] व्रतानाम्[6/3/1] स्थिरीकरणाय[4/1/1] एक-एकस्य[6/1/1] =तिन व्रतोंके स्थिरकरनेके लिये प्रत्येक वा पृथक् पृथक्

व्रतस्य[6/1/1] पंचपंच भावनाः[1/3/1] वेदितव्याः[1/3/1] -व्रतकी पांच पांच भावना जानना चाहिये

यदि❀एवम्❀ =जो इस प्रकार है अर्थात् एक एक व्रत के स्थिर करने के लिये पांच पांच भावना हैं तो

आद्यस्य[6/1/1] अहिंसाव्रतस्य[6/1/1] भावनाः[1/3/1] काः[1/3/1] =प्रथम के अहिंसा व्रत की भावनायें क्याहैं

इति❀अत्र❀उच्यते T =इस प्रकार (प्रश्न होने पर) यहां (अगला सूत्र) कहाजाताहै कि

(३)वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच(२) ॥४॥

=वाङ्मनः गुप्ति-ईर्या-आदाननिक्षेपणसमिति-आलोकितपानभोजनानि[1/3/1] अहिंसा व्रतस्य[6/1/1] पंचभावनाः[1/3/1] (भवन्ति) ॥

(१) श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में इस सूत्रका एकसा पाठ और एकसा अर्थ है. तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २७१ में इस सूत्रका संस्कृतमें इस प्रकार अर्थ किया है "तस्य पंच विधस्य व्रतस्यस्थैर्यार्थं एकैकस्य पंच पंच भावना वेदितव्याः॥ तस्य पंचविधस्य व्रतस्य स्थैर्यार्थं एक-एकस्य पंच पंच भावनाः वेदितव्याः = तिस पांच प्रकार के व्रतके स्थिर रखनेके लिये एक एक व्रतकी पांच पांच भावना जानना चाहिये॥

(२) स्थिरताके लिये-स्थिरभावके निमित्त स्थिर करने के हेतु-स्थिर रखनेके कारण-दृढ़ताके अर्थ ये सब एकार्थवाची वाक्य हैं।

(३) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यह सूत्ररूपमें नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है इसके स्थानमें सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र - मुद्रित पृष्ठ १५४

(अर्थकी सुगमताके निमित्त इस सूत्र को इस प्रकार लिखते हैं कि—)
वाग्गुप्तिर्मनोगुप्तिरीर्यासमितिरादाननिक्षेपणसमितिरालोकितपानभोजनम्
(अहिंसा व्रतस्य) पंच (भावनाः) भवन्ति ॥

सूत्रार्थः—वाग्गुप्तिः $\frac{१}{१}$ = वचनगुप्ति अर्थात् वचनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना
मनोगुप्तिः $\frac{१}{१}$ = मनो गुप्ति अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना
ईर्यासमितिः $\frac{१}{१}$ = ईर्यासमिति अर्थात् चार हाथ पर्यन्त पृथिवीको देखकर यत्नाचार पूर्वक चलना
आदाननिक्षेपणसमितिः $\frac{१}{१}$ = आदाननिक्षेपणसमिति अर्थात् भूमिको जीव रहित देखकर यत्नाचार पूर्वक वस्तुको उठाना वा रखना वा डालना
आलोकितपानभोजनम् $\frac{१}{१}$ = आलोकित पान भोजन अर्थात् आहार पानादिक में अन्तरंगकी ज्ञानदृष्टिसे वा नेत्रदृष्टिसे देख शोध कर भोजन पान करना
अहिंसाव्रतस्य $\frac{६}{१}$ पञ्च $\frac{१}{५}$ भावनाः (१) $\frac{१}{५}$ भवन्ति । - अहिंसा व्रतकी (ये) पांच भावना होती हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस चतुर्थ सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

वाग्गुप्तिः $\frac{१}{१}$ = वचनगुप्ति अर्थात् वचनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना
मनोगुप्तिः $\frac{१}{१}$ = मनोगुप्ति अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना

में निम्नलिखित भाष्य है "अहिंसायास्तावदीर्यासमिति मनोगुप्तिरेषणासमितिरादाननिक्षेपणसमितिरालोकितपानभोजनमिति ॥" अहिंसायाः तावत् ईर्यासमितिः मनोगुप्तिः एषणासमिति आदाननिक्षेपणसमितिः आलोकितपानभोजनम् - प्रथम = तावत्) अहिंसा (व्रत) की ईर्या समिति, मनोगुप्ति, एषणासमिति आदाननिक्षेपण समिति, आलोकितपानभोजन (ये पांच भावना) होती हैं । इन पर विचार करनेसे जान पड़ता है कि वचन गुप्तिके स्थानमें एषणा समिति है शेष चारों मिलती हैं ।

(१) भावना (स्त्री०) 'भाव +युट' होना-युच् । चिंता, सोचना वासना, विमर्श अर्थ में इस शब्द को सूत्र में लाये हैं ॥ वैद्यकमें औषध के संस्कार विशेष को भी 'भावना' (स्त्री०) कहते हैं वह अर्थ यहां नहीं लिया गया है, और पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २७३ में इसको नपुंसकलिंगी मानकर (भू + णिच् + ल्युट् 'केलेका गाभी एक फल' यह अर्थ लिखा है इस अर्थ से भी यहां संबंध नहीं है । परन्तु भावन (त्रि० (भवानी स्त्री०) के वैद्य कोश पृष्ठ ४२५ में अठारह अर्थ दिये हैं उन में से बारह अर्थ ऐसे हैं जिन में भावन और भावना के वे ही अर्थ हैं जैसे सोचना इत्यादि ॥

ईर्यासमितिः । आदाननिक्षेपणसमितिः । आलोकितपानभोजनमित्येताः पञ्चाहिंसाव्रतस्य भावनाः ॥ अथ द्वितीयस्य व्रतस्य का इत्यत्रोच्यते—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥ ५ ॥

ईर्यासमितिः $\frac{1}{6}$
=ईर्या समिति अर्थात् चार हाथ पर्यन्त पृथ्वीको देखकर यत्नपूर्वक चलना

आदाननिक्षेपणसमितिः $\frac{1}{6}$
=आदाननिक्षेपण समिति अर्थात् भूमिको जीव रहित देखकर यत्नाचार पूर्वक वस्तु को उठाना वा रखना वा डालना

आलोकितपानभोजनम् $\frac{1}{6}$ इति *
=आलोकितपानभोजन ऐसे अर्थात् आहारपानादिक में अन्तरंगकी ज्ञानदृष्टिसे वा नेत्र दृष्टिसे देख शोधकर भोजनपान करना ऐसे

एता $\frac{1}{3}$ पंच–अहिंसाव्रतस्य $\frac{6}{6}$ भावनाः $\frac{1}{3}$
=ये पांच अहिंसाव्रतकी भावना हैं

अथ* द्वितीयस्य $\frac{6}{6}$ (२)व्रतस्य $\frac{6}{6}$ का $\frac{1}{3}$ इति–अत्र–उच्यते
=अब दूसरे(सत्य)व्रतकी कौनसी भावना हैं ऐसे (प्रश्न पर) यहांकहाजाताहै कि

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥

=क्रोध–लोभ–भीरुत्व–हास्यप्रत्याख्यानानि $\frac{1}{3}$ अनुवीचिभाषणम् $\frac{1}{6}$ च पंचभावनाः $\frac{1}{3}$ सत्यव्रतस्य $\frac{6}{6}$ भवन्ति ।

क्रोध–लोभ–भीरुत्व–हास्यप्रत्याख्यानानि $\frac{1}{3}$
=क्रोधका, लालचका, भयका, हंसीका त्याग वा तिरस्कार

अनुवीचिभाषणम् $\frac{1}{6}$ च पंच $\frac{1}{3}$ भावनाः $\frac{1}{3}$ सत्यव्रतस्य $\frac{6}{6}$ ज्ञेयाः $\frac{1}{3}$
=और (च) आगम वा शास्त्रके अनुकूल बोलना ये पांच भावना सत्यव्रत की
=जानना चाहिये अर्थात् क्रोधका त्याग, लालचका अभाव, भयका अभाव, हंसी का तिरस्कार और पाप रहित सूत्रके अनुसार वचन बोलना सो सत्यव्रत की पांच भावनायें जानना

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्ररूपमें नहीं है वरन् (तीसरे सूत्रके) भाष्यरूपमें ऐसे है कि –
"सत्य वचनस्यानुवीचिभाषणं क्रोधप्रत्याख्यानं लोभप्रत्याख्यानमभीरुत्वं हास्यप्रत्याख्यानमिति" – सत्य वचनकी (पांचभावनायें) अनुवीचिभाषणम् (अनिन्द्य भाषणम्), क्रोधका त्याग, लालचका अभाव, अभयपना, हंसी का छूटाव है "न्यनुवीचि", ऐसा पाठ राजवार्तिकमें अर्थप्रकाशिकामें, सदासुखजीकी तत्त्वार्थ सूत्रभाषामें, पं० पन्नालाल कृत भाषा इत्यादिकों में है।"न्यनुवीची" ऐसा पाठ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें जयचंदजी कृतवचनिकामें, नित्यपाठसंग्रह इत्यादिकमें है ॥ अनुवीचि और अनुवीची दोनों शब्द ठीक हैं क्योंकि पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६२ में वीची और वीचि विचिर्तानों शब्द एक ही अर्थ में हैं ॥.३ वृतशब्द 'नियमे व्रतमस्त्रियां' पुल्लिंग. नपुंसकलिंग दोनोंहैं (अमरकोशब्रह्मवर्गश्लोक ३८)॥

क्रोधप्रत्याख्यानम् । लोभप्रत्याख्यानम् । भीरुत्वप्रत्याख्यानम् । हास्यप्रत्याख्यानम् । अनुवीचिभाषणं चेत्येताः पञ्चभावनाः सत्यव्रतस्य ज्ञेयाः ॥ अनुवीचिभाषणं निरवद्यानुभाषणमित्यर्थः ॥ इदानीं तृतीयस्य व्रतस्य का भावना इत्यत्राह—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पंच॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस पंचम सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

क्रोध–प्रत्याख्यानम् $\frac{१}{१}$ लोभप्रत्याख्यानम् $\frac{१}{१}$ = क्रोधका त्याग, लालचका छोड़ना

भीरुत्वप्रत्याख्यानम् $\frac{१}{१}$ हास्यप्रत्याख्यानम् $\frac{१}{१}$ = भयका अभाव, हंसीका त्याग वा तिरस्कार

अनुवीचिभाषणम् $\frac{१}{१}$ च* = और (=च) तत्त्वानुकूल आभाषण (श्लोकवार्तिकसे यहअर्थ लियागयाहै)

इति*एताः$\frac{१}{३}$ पञ्चभावनाः$\frac{१}{३}$ सत्यव्रतस्य$\frac{६}{१}$ ज्ञेयाः $\frac{१}{३}$ ॥ = ऐसे ये पांच भावना सत्य व्रतकी जानना चाहिये

(१)अनुवीचिभाषणं $\frac{१}{१}$ निरवद्य–अनुभाषणम्$\frac{१}{१}$ इति*अर्थः$\frac{१}{१}$ = अनुवीचिभाषणसो पापरहित(आगमके)अनुकूल(=अनु)बोलनाऐसे अर्थमें है

इदानीं* तृतीयस्य $\frac{६}{१}$ व्रतस्य $\frac{६}{१}$ काः$\frac{१}{३}$ भावनाः $\frac{१}{३}$ = अब तीसरे (अचौर्य) व्रतकी क्या भावना है

इति*अत्र*आह T = इस प्रकार (प्रश्न होने पर) यहां (अगला सूत्र) कहा जाता है कि—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्य(२)शुद्धिसधर्माविसवादाः पञ्च(३) ॥ ६ ॥ अर्थात्

(१)अनु=अनुसार–अनुकूल अनुसरण–वीचा-वीचि वा विचि (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५०,३६२) = तरंग,लहर वा किरणकेहैं यहाँपर अनिंद्य (समाध्य–तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ१५४ देखो) निरवद्य–निष्पाप पापरहित [संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ३४४]और तत्त्व(तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ २७१ देखो) के हैं इस लिये अनुवीचि भाषणका अर्थ अनिन्द्य भाषण (समाध्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५४ में) निरवद्य वा निष्पाप अथवा पापरहित अनुभाषण (संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ३४४ में) तत्त्व के अनुसार आभाषण वा तत्त्वानुकूलआभाषण (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४५८देखो में किया है॥ अनुवीचिभाषण = अनुलोमभाषण विचार्यभाषण (राजवार्तिक पृष्ठ २७१में ऐसा अर्थ है) अनुवीचिभाषण = निष्पाप सूत्र, आगम वा शास्त्र के अनुकूल वचन बोलना भावार्थ जिनागम के अनुकूल वचन बोलना; अनुवीचि–इस समस्त को एक शब्द मान कर समाध्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें कई स्थानोंमें इसका अर्थ अनिन्द्य लिखा है (२) पुस्तकोंमें 'भैक्ष' भैक्ष्य दोनों शब्द आयेहैं दोनों ठीकहैं यहाँ दोनों एकही अर्थमें हैं॥ (३) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यहसूत्र नहींहै येपांच भावना इस अध्यायके तीसरे सूत्रके अचौर्य व्रतकी हैं ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें पांच

=शून्यागार–आवास + विमोचितागार–आवास + पर–उपरोध–अकरण + भैक्ष्य-शुद्धि + सधर्म–अविसंवादाः $\frac{१}{३}$ पंच $\frac{१}{३}$

(भावनाः $\frac{१}{३}$ अस्तेय–व्रतस्य $\frac{६}{६}$ भवन्ति)

सूत्रार्थः—(१ शून्य–आगार–आवास =सूने [रीते–खाली] घर (स्थान) में रहना, वसना

विमोचित–आगार–आवास– =[किसी के] छोड़े हुए घर वा स्थानमें रहना [=आवास]

पर–उपरोध–अकरण– =अन्य का वर्जन वा रुकावट नहीं करना अर्थात् कोई किसी स्थानमें आवे तो उसको नहीं रोकना और यदि आप किसी स्थानमें जाय और अन्य वहांपर होतो उसको हटानानहीं और वास करनेके लिये उसका निषेध नहीं करना और आप वास करनेको किसी स्थानमें जाय और अन्यकोई निषेधकरे तो उसके निषेधको वर्जन नहींकरे (तात्पर्य वहां न ठहरे)

भैक्ष–शुद्धि + =भिक्षाकी पवित्रता(=शुद्धि) निर्दोषता (=शुद्धि) अर्थात् शास्त्रविहित भिक्षाविधिमें न्यूनाधिक नहींकरना वा आचारांगशास्त्रके अनुकूल पवित्र,निर्दोषभिक्षाका ग्रहणकरना

सधर्म–अविसंवादाः $\frac{१}{३}$ पञ्च $\frac{१}{३}$ भावनाः $\frac{१}{३}$ =साधर्मी भाइयोंमें उलटी बातचीत और झगड़ा नहींकरना ये पांच भावना

अस्तेय—व्रतस्य $\frac{६}{६}$ भवन्ति T =अचौर्य्यव्रत की होती हैं

भावना इस अस्तेय व्रतकी कही हैं वे इनभावनाओं से नहीं मिलतीहैं वे इसप्रकारहैं कि—"अस्तेयस्यानुवीच्यवग्रहयाचनमभीक्ष्णावग्रहयाचनमेतावदित्यवग्रहावधारणसमानधार्मिकेभ्योऽवग्रहयाचनमनुज्ञापितपानभोजनमिति"

अस्तेयस्य—अनुवीच्यवग्रहयाचनम् =अचौर्य्यव्रतकी(भावना)(क) अनिंद्य (पदार्थ) का ग्रहण (=अवग्रह) तथा याचन,

अभीक्ष्ण—अवग्रह–याचनम्, एतावदित्यवग्रह– =(ख) निरन्तर ग्रहण तथा याचन (ग) इतनाही ऐसे (पदार्थ के) ग्रहणका

अवधारणं =निश्चय करना अर्थात् इतनाही हमारेलिये प्राप्त होगा ऐसे विचारपूर्वक पदार्थका ग्रहण

समानधार्मिकेभ्योऽवग्रहयाचनम् =(घ) समान धर्मियों से ग्रहण तथा याचन

अनुज्ञापितपानभोजनम् इति =अनुज्ञापित (आज्ञादिये हुए पदार्थों का) पान तथा भोजन ऐसे हैं

(१) अगार और आगार दोनों शब्द ठीक हैं (प्रथमके लिये देखोअमरकोश वर्ग १८ श्लोक ५ दूसरे के लिये देखो पद्मचंदकोश पृष्ठ ५३) ॥

शून्यागारेषु गिरिगुहातरुकोटरादिष्वावासः । परकीयेषु च विमोचितेष्वावासः । परोपरोधाकरणम् । आचारशास्त्रमार्गेण भैक्षशुद्धिः । ममेदं तवेदमिति सधर्मभिरविसंवादः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस छटवें सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

शून्य–आगारेषु[७]'''तरुगिरिगुहा–कोटरादिषु[७]'आवासः[१]', – रीते वा खाली घरोंमें पहाड़की गुफा वृक्षकी कुटियामें बसना

परकीयेषु[७] च*विमोचितेषु[७]''' आवासः[१]' =और (च) पर सम्बन्धी छोड़े हुए (स्थानों) में बसना

परेषाम्[६]' उपरोध–अकरणम्[१]''' –दूसरोंकी रुकावट वा वर्जन नहींकरना अर्थात् कोई किसी स्थानमें आवे तो उसको नहीं रोकना और यदि आप किसी स्थानमें जाय और अन्य कोई जन वहांपर होतो उसको हटाना नहीं । वास करनेके लिये उसको निषेध नहींकरना और आप वास करनेको किसी स्थानमें जाय और अन्य निषेधकरे तो उसके निषेधका वर्जन नहींकरना (तात्पर्य वहां न ठहरे)

आचार-शास्त्र–मार्गेण[३] भैक्ष्य-शुद्धिः[१]''' =आचारांग शास्त्रके द्वारा भिक्षाकी शुद्धता (शुद्धि) और पवित्रतारखना अर्थात् शास्त्रविहित भिक्षाकी विधिमें न्यूनाधिक नहींकरना वा आचारांग शास्त्रके अकूनुल पवित्र भिक्षा ग्रहण करना

मम[६]' इदम्[१]''' तव[६]' इदम्[१]''' इति*सधर्मभिः[३]' =मेरा यह तेरा यह इसप्रकार साधर्मी भाइयोंसे (शिष्य–पुस्तक–उपकरण–स्थान और अन्य वस्तुओं के सम्बध में

अविसंवादः[१]' =झगड़ा नहींकरना, वादविवाद नहींकरना, उलटी बातचीत नहीं करना

(१) विमोचितेषु–विमोचितेषु आगारेषु,क्योंकि आगारेषु नपुंसक लिंग में है इसलिये परकीयेषु और विमोचितेषु को नपुंसक लिंग में रक्खा है

(१)अविसंवाद = विप्रलम्भ–झगड़ा (देखो विप्रलम्भ शब्दको पद्मचन्द्रकोश के पृष्ठ ३५५ में, वहां विसंवाद का अर्थ झगड़ा लिखाहै इस लिये अविसंवाद का अनुवाद झगड़ा नहीं करना लिखा है ॥ विसंवाद = किसी पदार्थ के विषयमें उलटा कहना पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३५१) इसलिये उलटी बातचीत नहींकरना ऐसा अनुवाद अविसंवाद का किया है ॥

इत्येताः पञ्चादत्तादानविरमणव्रतस्य भावनाः ॥ अथेदानीं ब्रह्मचर्यव्रतस्य भवाना वक्तव्या इत्यत्राह

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरता-नुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥७॥

इति*एताः$^{१}_{३}$ पञ्च–अदत्ता–आदान–विरमण–व्रतस्य$^{६}_{१}$ भावनाः$^{१}_{३}$; अथ–इदानीं ब्रह्मचर्य्य–व्रतस्य$^{६}_{१}$ भावनाः$^{१}_{३}$ वक्तव्याः $^{१}_{३}$ इति*अत्र*आह ।

=ऐसेइतनी पांच विनादियेहुए(पदार्थ)के ग्रहण न करनेरूप[= विरमण]व्रतकी =भावना हैं अर्थात् ये पांच भावनायें अचौर्य्यव्रतकी हैं । निरन्तर अब =ब्रह्मचर्य्यव्रत की भावना कहने योग्यहैं ऐसे यहां (अग्रिमसूत्र) कहाजाताहै कि

(१)स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः(२) पंच ब्रह्मचर्य्यव्रतस्य भवन्ति ।

=स्त्रीराग—कथाश्रवणत्यागः–तन्मनोहरांग निरीक्षणत्यागः–पूर्वरतानुस्मरणत्यागः–वृष्येष्टरसत्यागः–स्वशरीर संस्कारत्यागः पंच (भावनाः)

सूत्रार्थः—स्त्रीराग–कथा–श्रवण–त्यागः$^{१}_{१}$ तद्मनोहर–अंग–निरीक्षण–त्यागः$^{१}_{१}$

=(१)स्त्रियों में रागउत्पन्न करने वाली कथाको सुननेका त्याग– (२ उन (स्त्रियों) के मनोहर अंगों को [रागसहित] देखनेका त्याग

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें यहसूत्र नहींहै उनके यहाँ पांचभावना जो इस अध्यायके तीसरे सूत्रकी हैं, ऐसे हैं कि "ब्रह्मचर्यस्य स्त्रीपशुषण्डकसंसक्तशयनासनवर्जनं रागसंयुक्तस्त्रीकथावर्जनं स्त्रीणां मनोहरेन्द्रियालोकनवर्जनं पूर्वरतानुस्मरणवर्जनं प्रणीतरसभोजनवर्जनमिति"

ब्रह्मचर्य्यस्य—स्त्री पशु–षण्डक–संसक्त– =ब्रह्मचर्य्यकी (स्थिरताके लिये भावना)(क)स्त्री पशु नपुंसक (षण्डक)के सम्बन्ध वाले,(=संसक्त)
शयनआसन वर्जनं; राग–संयुक्त–स्त्रीकथा–वर्जनं =शय्या [=शयन] आसन–वर्जनं [ख] रागयुक्त स्त्रियोंकी कथा का वर्जन वा निषेध,
स्त्रीणाम् मनोहर–इन्द्रिय—आलोकन वर्जनम् =(ग) स्त्रियोंकी सुन्दर इन्द्रियोंके दर्शनका निषेध–
पूर्व–रत–अनुस्मरण–वर्जनम् =(घ)पूर्वकालकी मैथुन(=रत)वा रमण(=रत)वा स्त्रीप्रसंग(=रत)की स्मृतिका त्याग वाछोड़ना,
प्रणीत रस—भोजन—वर्जनम् इति =(ङ)अतिपुष्टकारक वा कामोत्पादक रसवाले[=प्रणीतरस]भोजनका निषेध वा अभाव ऐसे हैं॥

इन पांच भावनाओं का ऊपरके सातवां सूत्र की भावनाओं से मिलान करने से प्रगट है कि स्वशरीर संस्कार त्यागके स्थानमें "स्त्रीपशुषण्डक-संसक्त शयनासन वर्जन" है शेषचार भावनायें तात्पर्यमें मिलती हैं ॥२॥ त्यागाः अधिकतम पुस्तकोंमें जैसे राजवार्तिक और तत्त्वार्थ श्लोक-वार्तिक इत्यादिकमें यही शब्द आयाहै परन्तु किसी किसी (जैसे ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थ सूत्रमें) परित्यागाः आया है ॥ अशुद्ध तो नहीं है परंतु अधिकहै क्योंकि राज वार्तिक पृष्ठ ५७२ में पूर्वरता-नुस्मरण परित्यागः लायेहैं: सूत्र का है कि अक्षर अल्पसे अल्पहो अर्थ बहुत और सारभूतहो ।

त्यागशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । स्त्रीरागकथाश्रवणत्यागः । तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्यागः । पूर्वरतानुस्मरणत्यागः । वृष्येष्टरसत्यागः । स्वशरीरसंस्कारत्यागश्चेति चतुर्थव्रतस्य भावनाः पञ्चविंशतेः ॥ अथ पञ्चमव्रतस्य भावनाः का इत्यत्रोच्यते—

॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

पूर्व–रत–अनुस्मरण–त्यागः $\frac{१}{ग}$ =[ग] पूर्वकालमें (किया हुआ) मैथुन वा स्त्री प्रसंग [=रत] का स्मरणकरनेका निषेध,
वृष्य–इष्ट–रस–त्यागः $\frac{१}{घ}$ =[घ] पुष्टकारक वा कामोद्दीप करने वाले[=वृष्य]इन्द्रियोंको लालसाउत्पन्नकरनेवाले रसोंकावर्जन
स्व–शरीर–संस्कार–त्यागः $\frac{१}{ङ}$ =[ङ] अपने शरीर को शृंगार युक्त करने का परित्याग
पंच$\frac{१}{३}$ भावनाः$\frac{१}{३}$ ब्रह्मचर्यव्रतस्य $\frac{६}{५}$ भवन्ति ।=ये पांच भावना ब्रह्मचर्य व्रत की हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस आठवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

त्यागशब्दः $\frac{१}{क}$ प्रत्येकं $\frac{३}{ख}$ परिसमाप्यते । =त्याग शब्द पृथक् पृथक् [भावना] को लगाया जाता है [ऊपर देखो]
स्त्री–राग–कथा–श्रवण–त्यागः $\frac{१}{क}$; तद्–मनोहर–अंग–निरीक्षण–त्यागः $\frac{१}{ख}$; पूर्व–रत–अनुस्मरण–त्यागः $\frac{१}{ग}$, वृष्य–इष्ट–रस–त्यागः $\frac{१}{घ}$, च स्व शरीरसंस्कार–त्यागः $\frac{१}{ङ}$ इति चतुर्थ–व्रतस्य $\frac{६}{५}$ भावनाः $\frac{१}{३}$ पञ्च $\frac{१}{३}$ विंशतेः $\frac{१}{३}$ अथ * पञ्चम–व्रतस्य $\frac{६}{५}$ भावनाः $\frac{१}{३}$ काः $\frac{१}{३}$ इति उच्यते । =स्त्री राग सहित कथा को सुनने का त्याग। उन [स्त्रियों] के मनोहर अंगों को [राग सहित] देखने का त्याग, पूर्व समय में [किया हुआ] मैथुन वा स्त्री प्रसंगके स्मृतिका त्याग, पुष्ट कारक और इन्द्रियों को लालसा उत्पन्न करने वाले रसोंका त्याग, और अपने शरीरको शृंगार युक्त करनेका त्याग, इस प्रकार चौथे [ब्रह्मचर्य] व्रतकी भावनायें पांच विशेष रूप से जानने योग्य हैं [=विंशतेः]। अब पांचवां [परिग्रह त्याग] व्रतकी भावनायें क्याहैं ऐसे [प्रश्न होनेपर]यहां कहाजाता है कि

॥ (१) मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥ ८ ॥

मनोज्ञ–अमनोज्ञ–इन्द्रिय–विषय–रोग–द्वेष–वर्जनानि $\frac{१}{३}$ पञ्च $\frac{१}{३}$ [भावनाः $\frac{१}{३}$] =इष्ट अनिष्ट [पांच] इन्द्रियों के [पांच प्रकारके] विषयोंमें [यथा संख्य वा अनुक्रम से] लोलुपता वा प्रीति और द्वेषका त्यागसो पांच भावनायें

(१)श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम पृष्ठ १५४ मेंयहसूत्र नहींहै वरन् तीसरे सूत्र पर परिग्रह त्याग व्रतकी पांच भावनायें ऐसे है कि—

पंचानामिन्द्रियाणां स्पर्शनादीनामिष्टानिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु स्पर्शादिषु रागद्वेषवर्जनानि पंच आकिंचन्यस्य व्रतस्य भावनाः प्रत्येतव्याः ॥

अपरिग्रह—व्रतस्य[६।१।] भवन्ति [।]

=आकिञ्चन अथवा परिग्रहत्याग व्रतकी हैं अर्थात् आकिञ्चन्य व्रतकी स्थिरताके लिये स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्र इन पांच इन्द्रियोंके इष्ट वा अभिलाषित स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द–रूप विषयोंके प्राप्त होनेपर लोलुप्ता का परित्याग और इन्हीं इन्द्रियोंके अनिष्ट स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द–रूप विषयोंके प्राप्तहोने पर द्वेष वा विरोधका निषेध वा त्यागकरना सो पांचभावनायें हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इसआठवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदीअनुवाद

पञ्चानाम्[६।३।] इन्द्रियाणाम्[६।३।] स्पर्शन-आदीनाम्[६।३।] इष्ट-अनिष्टेषु[७।३।] स्पर्शआदिषु[७।३।] विषयेषु[७।३।] उपनिपतितेषु[७।३।] राग-द्वेष-वर्जनानि[१।३।] पञ्च[१।३।] आकिञ्चन्यस्य[६।१।] व्रतस्य[६।१।] भावनाः[१।३।] वेदितव्याः[१।३।]

=पांचइन्द्रियस्पर्शन-रसन(जीभ),घ्राण(=नाक),चक्षु (आंख)श्रोत्र(कान)के =मनोज्ञ और अमनोज्ञ–स्पर्श–रस–गंध–वर्ण–शब्द–रूप विषयोंके =सम्बन्धहोनेपर वा प्राप्तहोनेपर(=उपनिपतितेषु)(क्रमसे) प्रीतिऔर विरोधका =परित्याग वा अभावहोना (वे) परिग्रहत्याग व्रतकी पांच भावनायें जाननाचाहिये अर्थात् स्पर्शनइन्द्रियके अभिलाषित विषयोंके प्राप्तहोनेपरउनमें राग न करना और इन्द्रियके अनिष्ट विषयोंके आनेपर उनमेंविरोधनकरना

आकिञ्चनस्य पञ्चानामिन्द्रियार्थानां स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दानां मनोज्ञानां प्राप्तौ गार्द्ध्यवर्जनममनोज्ञानां प्राप्तौ द्वेषवर्जनमिति ॥

आकिञ्चनस्य पञ्चानाम् इन्द्रियअर्थानाम्	=आकिंचन (व्रत) की पांच भावनायें अर्थात् इन्द्रियों के विषय (=अर्थ)
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दानां मनोज्ञानां प्राप्तौ	=स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्दों के इष्ट प्राप्त होने पर
गार्द्ध्य-वर्जनम् अमनोज्ञानाम्	=लोलुता वा लुब्धता का त्याग वा अभावऔर अनिष्ट वा अनभिलषित(स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण शब्दोंके)
प्राप्तौ द्वेषवर्जनम् इति	=आनेपर विरोध का न होना इसप्रकार है

किंचान्यद्यथाऽमीषां व्रतानां दृढिमार्थं भावनाः प्रतीयन्ते तद्विपश्चिद्भिरिति भावनोपदेशः, तथा तदर्थं तद्विरोधिष्वपीत्याह—

हिंसादिष्वहामुत्रापायावद्यदर्शनम्॥ ९॥

(ख) रसना इन्द्रियके इष्टविषयोंके सम्बन्ध होनेपर उनमें प्रीति न करना और इसी इन्द्रियके अमनाज्ञेविषयों के मिलनेपर उनमें द्वेष न करना (ग) (घ्राण) नाक इन्द्रियोंके मनोज्ञविषयोंके प्राप्तहोनेपर उनमें स्नेह न करना और इसी इन्द्रिय के अनभिलषित विषयोंके आनेपर उनमें विरोध न करना [घ] नेत्र इन्द्रियके अभिलषित विषयोंके मिलनेपर उनमें प्रेम न करना वा इसी इन्द्रियके अनिष्ट विषयोंमें अप्रीति वा द्वेष न करना [ङ] ऐसेही कान इन्द्रियके मनोज्ञविषयोंके मिलनेपर उनमें राग न करना और इसी इन्द्रिय के अनभिलषित विषयोंके आनेपर वा मेटा होनेपर उनमें अप्रेम न करना सो पृथक् पृथक् पांच भावना परिग्रहत्याग व्रतकी हैं यहां भावार्थ ऐसाजानना कि संसारमें परिग्रह हैं ते इन्द्रियोंके विषयों के सेवने वा भोगनेके और कषायोंके पुष्टकरनेके निमित्तहैं जिससे विषय कषायके गुणतथा दोष वारम्वार विचारनेसे परिग्रहत्याग व्रतकी स्थिरता रहती है

किंच*(१) अन्यत्[1] यथा*अमीषाम्[6] (२) = कुछ (=किंच) और (=अन्यत्) है जैसे इन (=अमीषाम्)
व्रतानाम्[6] दृढ़िम्-अर्थम्[4] = (अहिंसा-सत्य-अचौर्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह) व्रतोंके स्थैर्य वा स्थिरता के लिये
भावनाः[1] = (प्रत्येक व्रतकी पूर्वोक्त पांच पांच) भावनायें
प्रतीयन्ते[1] तद्—विपश्चिद्भिः[3] (३) इति* = उन(व्रतोंके) ज्ञानवानोंद्वारा अथवा जाननेवालों द्वारा निश्चयकीगई है (=प्रतीयंते)
तथा-तद्विरोधिषु[7] अपि*तद्अर्थेषु[7] = तैसे तिन (व्रतों) के विरोधी [पांच पापोंविषैभी उन [व्रतोंके] [स्थैर्य के] लिये
भावना-उपदेशः[1] इति*आह[1] = भावनाका उपदेश इसप्रकार [अग्रिम सूत्रमें] कहते हैं कि

हिंसा दिष्विहामुत्रा पायावद्यदर्शनम् ॥९॥

[१] किंच अव्ययहै अर्थ समुच्चय कुछ और है परन्तु किञ्चित् अव्यय का अर्थ अधूरा या छोटे काहै (देखोपद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १०८)(२) अमीषाम् षष्ठी बहुवचन नपुंसकलिंग अदस् [=यह] शब्द का है [३] विपश्चित् [पुल्लिंग] विपश्चष्टे चेतति = बहुत समझता है पण्डित ज्ञानवान्-ऋषि ऊहर के

(१) हिंसा-आदिषु-इह-अमुत्र-अपाय-अवद्य-दर्शनम् ॥ ९ ॥

= हिंसा-आदिषु[३]-इह-अपाय दर्शनम् $\frac{१}{१}^{१११}$ अमुत्र-अवद्य दर्शनम् $\frac{१}{१}^{१११}$ इति*भावयितव्यम् $\frac{१}{१}^{१११}$

(क) हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेषु-इह-अपायदर्शनम् इति भावयितव्यम्

(ख) हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेषु-अमुत्र-अवद्य दर्शनम् इति भावयितव्यम्

सूत्रार्थः-हिंसा-आदिषु[३]
इह*अपाय-दर्शनम् $\frac{१}{१}^{१११}$
अमुत्र*
अवद्य-दर्शनम् $\frac{१}{१}^{१११}$
इति*भावयितव्यम् $\frac{१}{१}^{१११}$

=हिंसा-मिथ्याभाषण-चोरी-मैथुन-पदार्थसंचय और ममता (करने) में
=इसलोकमें वियोग-नाश दुःख-आपत्ति-भयकी (=अपाय) उपलब्धि (=दर्शन) होती है
=[तथा इन्हीं हिंसादिकके करनेमें] परलोकमें-दूसरेजन्म में-मृत्यु के पश्चात् वा अनन्तर
=निन्दा.पापकी प्राप्ति [=दर्शन] [पापसे निंद्यगति वा दुर्गति की प्राप्ति] होती है
=[उन पांचव्रतोंकी स्थिरताके लिये] इसप्रकार बारम्बार विचार वा चिंतवन किये जानेयोग्य है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस नवमासूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

अनुवाद में कृतियों द्वारा ज्ञानधाराओंद्वारा के स्थान में लासकते हैं [देखो पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५४]

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें" इस सूत्रके दो पद हैं और अमुत्र शब्द तथा अपाय शब्द के मध्यमें एक चकार है हम उसको नीचे लिखे भी देतेहैं इसके अतिरिक्त शेष पाठ एकसाहै" हिंसादिष्विहामुत्रचापायावद्य दर्शनम्" इस चकारकी अधिकता से दोनों सम्प्रदाय में इस सूत्र के अर्थ करनेमें भिन्नता प्रगट की है श्वेताम्बरसम्प्रदाय के अनुकूल अर्थ इस प्रकार है कि—

"हिंसादिषु पञ्चसु आस्रवेषु इह अमुत्र च = हिंसादिक पांचोंके आस्रवमें इसलोकमें तथा [=च] परलोक में
अपायदर्शनम् अवद्यदर्शनम् च भावयेत्=अपायदर्शन तथा [=च] अवद्य दर्शनको बार बार चिंतवनकरै [सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५५

यह चकार जो इस संस्कृत भाष्यमें अमुत्र और अपाय शब्दोंके मध्यमें आयाहै वही च शब्द है और उसीका 'तथा' ऐसा भाषानुवाद कियाहै जो इस सूत्रके अमुत्र और अपाय शब्दके बीचमें आयाहै ॥ पं० ठाकुरप्रसादजी का भाषानुवाद अक्षर प्रति अक्षर लिखते हैं—"हिंसा तथा मिथ्या भाषणादि पांचोंके आस्रवोंमें इसलोकमें तथा मृत्युके पश्चात् परलोकमें अपाय दर्शन तथा अवद्य दर्शन की भावना करै अर्थात् हिंसादिक विषै इस लोकमें तथा परलोकमें श्रेयः प्रणाश तथा निन्दायुक्तकी दृष्टि रक्खै कि ये जीवके श्रेष्ठ कार्योंके नाशक तथा निन्द्य के जनक हैं मेरा और इनका अर्थ एकसे तात्पर्य को प्रगट करता है दिगम्बर सम्प्रदायमें अर्थ ऐसा है कि—हिंसादिकमें इस लोकमें अपाय दर्शन को चिंतवन करै और परलोकमें अवद्यके उपलब्धिको भावनाकरै इसलिये इससूत्रको मैंने ऊपर [क] और [ख] संख्याओंसे विभाग करदियाहै ॥

अभ्युदयनिःश्रेयसार्थानां क्रियाणां विनाशकप्रयोगोऽपायः(१) । अवद्यं गर्ह्यम् । अपायश्चावद्यं चापायावद्ये तयोर्दर्शनमपायावद्यदर्शनं (२) भावयितव्यम् ॥ क्व? इहामुत्र च । केषु? हिंसादिषु ॥ कथमिति चेदुच्यते—हिंसायां तावत्, हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततानुबद्धवैरश्च इह च वधबन्धपरिक्लेशादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिम् । गर्हितश्च भवतीति

अभ्युदय-निःश्रेयस-अर्थानाम् ६।३।१११	=सम्पदा वा समृद्धि (=अभ्युदय) और मोक्षके [=निःश्रेयस] लिये
क्रियाणाम् ६।३।१११	क्रियाओंके
विनाशक-प्रयोगः १।१	=नाश करने वाला उपाय (=प्रयोग) सो
अपायः १।१,	अपायहै।
अवद्यम् १।१११	अवद्य है सोनिंद्य वानिंदनीय है
गर्ह्यम् १।१११	;
अपायः १।१ च अवद्यम् १।१११ च अपायावद्ये १।१११	=बहुरि अपाय और अवद्य (दोनों मिलकर) अपायावद्ये (द्विवचनान्त वाक्य हुआ)
तयोः ६।३।१११	=तिन दोनों [अपाय तथा अवद्य] को
दर्शनम् १।१११	उपलब्धि वा प्राप्ति होना
अपाय-अवद्य-दर्शनम् १।१११	=सो अपाय अवद्य दर्शन है ऐसा विचार वा चिन्तवन
भावयितव्यम् १।१११	किया जाना योग्य है
क्व? इह अमुत्र च; केषु? ७।३ ? ।	=कहां,?यहां वा इस लोकमें और[च=]वहां वादूसरेजन्ममें, कौनविषै
हिंसा-आदिषु ७।३ ॥	=हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म—परिग्रह [इन पाँच अव्रतों] में
कथम् इति चेत् उच्यते-हिंसायां १।१	=कैसो(उपलब्धि वा प्राप्ति)इस प्रकार प्रश्न होने पर कहा जाता है कि प्राणव्यपरोपणमें
तावत् हिंस्रः १।१ हि नित्य-उद्वेजनीयः १।१	=तौ (=तावत्) हिंसक ही सदाउद्वेगरूपरहताहै अर्थात् चित्तमेंव्याकुल रहता है
सतत-अनुबद्धवैरः १।१ च इह च	=और (=च) निरन्तर [=सतत] वैरानुबद्धहोताहै और (=च) इस लोकमें (=इह)
वध-बन्ध-परिक्लेशादीन् २।३ प्रतिलभते ।	=मारण-बन्धन-अर्थात् शत्रुता बधती रहती है बहुत [=परि] दुःखादिकको प्राप्त होता है
प्रेत्य च अशुभां २।१ गतिम् २।१, गर्हितः १।१ च भवति । इति	=तथा [=च] अन्य जन्ममें बुरी गति को(प्राप्त होता है)और(=च)निंदित होता है। ऐसे

(१) अपायशब्दका अर्थ पद्मचंद्रकोश पृष्ठ २३ में 'वियोग-नाश-दुःख-आपत्ति' कियाहै-राजवार्तिक तथा श्लोक वार्तिक में इसका अर्थ 'भय' भी किया है "अथवा येह लौकिकादि समनिर्धभयं अपाय इति कथ्यते"(राजवार्तिक पृष्ठ २७२,"भयं वा" श्लोकवार्तिक पृष्ठ मुद्रित(५६०)॥इन दोनों वार्तिकों के अनुकूल जयचंद्रजी वचनिका में तथा अर्थ प्रकाशिकामें इसका भय अर्थ किया है इसलिये अनुवाद में पांचों शब्द लाये गये हैं ॥

(२) दर्शन = उपलब्धि—प्राप्ति (पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ७८,१८३) अतः अनुवाद में प्राप्ति लाये हैं ॥ अवद्य = निंदा – पाप (देखो पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ४४)

हिंसायां व्युपरमः श्रेयान्॥ तथा अनृतवादी अश्रद्धेयो भवति इहैवच जिव्हाछेदादीन् प्रतिलभते । मिथ्याख्यानदुःखितेभ्यश्च बद्धवैरेभ्यो बहूनि व्यसनान्यवाप्नोति प्रेत्यचाशुभां गतिं, गर्हितश्च भवतीति अनृतवचनात् व्युपरमः श्रेयान् ॥ तथा स्तेनः परद्रव्यापहरणासक्तः सर्वस्योद्वेजनीयो भवति इहैव चाभिघातबधबन्धहस्तपादकर्णनासोत्तरौष्ठच्छेदन भेदनसर्वस्वहरणादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं,गर्हितश्च भवतीति स्तेयात् व्युपरतिः श्रेयसी ॥ तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्भ्रान्तचित्तो वनगज इव

हिंसायाम्[२]''व्युपरमः[१]' श्रेयान्[१]; तथा *
अनृतवादी[१]' अश्रद्धेयः[१]' भवति T इह*एव* च*
जिह्वा–छेदादीन्[२]' प्रतिलभते T मिथ्या–आख्यान–
दुःखितेभ्यः[३]'च❀बद्धवैरभ्यः[३]' बहूनि[३]''' व्यसनानि[३]'''अवाप्नोति
प्रेत्य❀च❀अशुभां[२]''[१]गतिम्[२]'',गर्हितः[१]'च❀भवति T
इति*अनृत, वचनात्[५]''' व्युपरमः[१]' श्रेयान्[१]' तथा❀ स्तेनः
पर-द्रव्य–अपहरण–आसक्तः[१]' सर्वस्य[६]'
उद्वेजनीयः[१]' भवति T इह* एव* च*
अभिघात–वध–बन्ध–हस्त–पाद–कर्ण–नासा–उत्तरओष्ठ–छेदन-
भेदन–सर्वस्वहरणादीन्[३]' प्रतिलभते T
प्रेत्य❀च❀ अशुभांगतिम्[२]'' गर्हितः[१]'च* भवतिT
इति❀स्तेयात्[५]''' व्युपरतिः[१]'' श्रेयसी[१]'' तथा अब्रह्मचारी[१]'
मद–विभ्रम–उद्भ्रान्त–चित्तः[१]''
वनगजः[१]' इव❀

= हिंसामें परित्याग श्रेष्ठ वा कल्याण दायक है तैसेही (=तथा)
= असत्यवादी श्रद्धा वा विश्वासके योग्य नहीं होताहै। और(=च) इसलोकमेंही
= जीभ वा रसनाके छेदन आदिकको प्राप्त होता है (बहुरि) मिथ्या कथनसे
= दुःखित हुए (लोगों) से बहुवैर से अनेक दुःखों को प्राप्त होता है
= बहुरि [=च] अन्य बुरी गति को प्राप्त होता है और (च) निंदित होता है
= इस प्रकार मिथ्याभाषणसे विरक्त होना उत्तम है तैसे ही चोर जो
= अन्य की द्रव्य लेने में लागू वा अनुरक्त रहता है सबके (द्रव्यके विरह से)
= दुःख उपजाने वाला वा (सबके) भय उपजावने वाला होता है और यहांही
= चोट निहनन बन्धन हाथ पग कान नाक ऊपरके होठका छेदन
= भेदन सर्वधनके (सर्व–स्व) हरण आदिक को प्राप्त होता है और [=च]
= मृत्यु के पश्चात [अन्य जन्म में] दुर्गतिको जावे है और निंदित होताहै
= ऐसे चोरी से निवृति कल्याण कारी है उसी प्रकार कुशील पुरुष
= मत्तता (=मद) की चेष्टा कर (=विभ्रम) व्याकुल चित्त संयुक्त
वनके हाथीके समान

वासितावञ्चितो विवशो बधबन्धनपरिक्लेशाननुभवति ।

(१)वासिता–वञ्चितः[१]विवशः[२],बधबन्धन–परिक्लेशान्[३]अनुभवति।

=[कपटको]हथिनी द्वारा ठगाया गया वा भूलमें डालागया वा परवशहुआ, मारण बन्धन =अति(=परि)दुःखोंको सहनकरताहै अर्थात् जैसे हाथी पकड़नेवाले वनमें जाकर गढ़ा,खोदकर उसको जीर्ण और सड़ी सड़ी सोट पत्ते लकड़ियों इत्यादिकसे पाट देतेहैं उस गढ़हा पटेहुए के ऊपर कल्पित निर्जीव हथिनी रख देते हैं मदनमत्त वा मदकरि व्याकुलित वनगज(बनी का हाथी) उस हथनीको देखकर उससे भोग करने वा विषय सेवने की लोलुपतामें फसकर उसके पास जाता है गढ़हापै पद रखते ही गढ़ेमें गिर जाता है परवश होकर बहुत मारण-ताड़न बन्धन इत्यादिक दुःखोंको सहन करता है तैसे ही पर स्त्री गामी मनुष्य भी जो मदकर व्याकुल है और जो पर स्त्रियों के विभ्रम-कटाक्ष विलास टेढी भ्रकुटियों से मोह को प्राप्त होता है अर्थात् उनसे ठगाया जाता है उनके प्रेम रूपी बन्धन में फंस कर नाना प्रकार के दुःखों को क्लेशों को उठाता है ।

(१)तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्भ्रान्त चित्तो वनगज इव वासितावञ्चितो विवशो बधबन्धनपरिक्लेशाननुभवति (सर्वार्थसिद्धिवृत्तिसेउद्धृत)। तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्ग्रथितचित्तः वनगज इव वनितावञ्चितो विवशो बधबन्ध परिक्लेशादान् अनुभवति ।(तत्त्वार्थराजवार्तिकसेउद्धृत)

इन दोनों पाठोंके मिलान करनेसे ज्ञातहै कि तत्त्वार्थराजवार्तिकमें वासितावञ्चितोके स्थानमें वनितावञ्चितोहै । अनुवाद करते समय राजवार्तिक के आधार पर हमने यह लिखा था कि वासिता शब्द वनिता शब्द के स्थान में अशुद्ध छपगया है क्योंकि वासितावञ्चितका अर्थ होगा जो सुगन्धित करि ठगायागया है कुछ तात्पर्य नहीं निकलता है जब उक्त टिप्पणी हमने अपने एक काशी के जैन विद्वान मित्रको दिखाई तो उन्होंने परंतु इस से'शब्दोंकोकुछ के प्रथम जोड़कर हमारी टिप्पणीको स्वीकार कर लिया और इसके समर्थनमें" अर स्त्रीनिकरि ठिग्या हुवा वनका हस्ती की ज्यों वध बंध परि क्लेशादिकनिकू भोगे है " अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ४०४ वाक्यका प्रमाण दे दिया । इस समय चार प्रतियें सर्वार्थसिद्धि-वृत्तिकी जो इन्द्रप्रस्थके मन्दिरों से प्राप्त हुई हैं हमारे पास हैं । छपने को देनेके प्रथम हमारे विचार में आया कि अन्य प्रतियोंसे भी इस पाठ को मिलालें, मिलान करने का परिणाम यह हुआ कि दो मुद्रित प्रतियों का पाठ और चार हस्तलिखित प्रतियों का पाठ मिल गया तब निश्चय होगया कि सर्वार्थसिद्धिवृत्ति में जो वासिता' शब्द आया है वह ठीक है, कई कोशोंमें जैसे पद्मचंद्रकोश इत्यादि देखे गये परन्तु उनमें वासिता' शब्द नहीं मिला, फिर वैजयन्त संस्कृत आङ्गलकोश देखा तो उसके पृष्ठ ६५६ में 'वासिता' (=वाशिता) के (क) हथिनी और [ख] स्त्री, वनिता दोअर्थ निकले जिनका समर्थन अमरकोशके नानार्थ तेईसवां वर्गके पचहत्तरवां श्लोक के तृतीयपाद 'वासिता स्त्री करिण्योश्च' (वासिता यह एक नाम स्त्री और (=च) हथिनी का है होताहै अब प्रश्न यह है कि यहां पर 'वासिता' का अर्थ 'वनिता वा स्त्रीलें अथवा हथिनी लें, क्योंकि वाक्य में 'वनगज' कहा है इसलिये 'वासिता' का अर्थ हथिनी संगतप्रद है इसका समर्थन पं० जयचन्दरायजी की वचनिका और श्रुतसागरी सूरिकी टीका के निम्न यथासंख्य वाक्यों से होता है "तैसें ही अब्रह्मचारी मदविभ्रमकरि उद्भ्रान्त है चित्त जाका सो कपटकी हथनीके अर्थ भ्रमतें खाडा में पड्या जो हस्ती तिसकी ज्यों परवश हुवा वध बंधन अति क्लेश आदिक भोगवे है ॥ सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५३८,५३९

अब्रह्मचारी पुमान् मदोन्मत्तो भवति, विभ्रमोपेत उद्भ्रान्तमनः यूथनाथ इव करिणी विवंचितः परवशः सन् वधबंध परिक्लेशान् प्राप्नोति" इसलिये "हमने वासिता-वंचितःउपर्युक्त वाक्यका अनुवाद इसप्रकार कियाहै कि कपटरूप वा कपटकी हथनी द्वारा ठगायागया, छलागया, मूलमें पड़गया

मोहाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानभिज्ञो न किञ्चित्कुशलमाचरति परांगनालिङ्गनसङ्गकृतरतिश्चेहैव वैरानुबन्धिनो लिङ्गच्छेदनवधबन्धसर्वस्वहरणादीनपायान् प्राप्नोति । प्रेत्यचाशुभां गतिमश्नुते, गर्हितश्च भवति,अतो विरतिरात्महिता ॥ तथा परिग्रहवान् शकुनिरिव गृहीतमांसखन्डोऽन्येषां तदर्थिनां पतत्रिणामिहैव तस्कारादीनामभिभवनीयो भवति।

मोह-अभिभूतत्वात् $\frac{५}{१}$ च *कार्य-अकार्य-अनभिज्ञः $\frac{१}{१}$

=और (=च) मोह पीड़ित वा ग्रस्त होनेसे कर्तव्य तथा अकर्तव्य का =ज्ञान रहित (=अनभिज्ञ) अर्थात् क्या हमको करना चाहिये और क्या हमको नहीं करना चाहिये इस प्रकारके विवेकसे शून्य

न❀किञ्चित्❀ कुशलम् $\frac{१}{१}$ आचरति ।च ❀परांगना-आलिंगन-संगकृत-रतिः $\frac{१}{१}$ इह❀एव❀ वैर-अनुबन्धिनः $\frac{५}{१}$ लिंगछेदन-वध-बन्ध-सर्वस्व-हरण- आदीन् $\frac{२}{३}$ अपायान् $\frac{२}{३}$ प्राप्नोति । प्रेत्य*च*अशुभां $\frac{२}{१}$ गतिम् $\frac{२}{१}$ अश्नुते । गर्हितः $\frac{१}{१}$च*भवति । अतः❀विरतिः $\frac{१}{१}$ आत्महिता $\frac{१}{१}$,तथापरिग्रहवान् $\frac{१}{१}$ इह❀एव * तस्कर-आदीनाम् $\frac{६}{३}$ अभिभवनीयः $\frac{१}{१}$ भवति । शकुनिः $\frac{१}{१}$ इव❀गृहीतमांसखण्डः $\frac{१}{१}$ अन्येषाम् $\frac{६}{३}$ तद्-अर्थिनाम् $\frac{६}{३}$ पतत्रिणाम् $\frac{६}{३}$

=कुछ भी कुशल रूप कार्य नहीं आचरता है और पर स्त्री(=परांगना)के =सेवनविषै वा संग विषै प्रीति करने वाला इस लोकमें ही =वैरके बन्धानसे लिंगछेदन-मारणबन्धन समस्त धन [स्व] की =छूटि किये जाने आदिक कष्ट वा दुःख वा आपत्तियों को प्राप्त होता है =और [=च] परलोकमें दुर्गति को प्राप्त होता है और निंदित होता है =इस लिये [अब्रह्म से] निवृत्ति अपना हित है । वैसे ही [तथा] परिग्रहधारी =इस लोक में ही चोर आदिकके ग्रापणीय वा लूटने योग्य वा पराजय के योग्य =होता है जैसे (=इव) मांसके खंड को लिये हुए पक्षी दूसरे =उस (मांस खंड) के इच्छा करने वाले पक्षियों के (लूटने योग्य होताहै] अर्थात् जैसे मांसके पिन्डयुक्त पक्षीको और पक्षी देखकर चोंच पंजों से दुःख देकर उस मांस खंडको लेलेते हैं तैसेही परिग्रह धारकोंको चोर ठग लुटेरे अन्य दुष्ट जन धनके ग्राहक क्लेश पहुंचाते हैंऔर धन को लेलेतेहै ॥

तदर्जनरक्षणप्रयत्नकृताश्च दोषान् बहूनवाप्नोति नचास्य तृप्तिर्भवति इन्धनैरिवाग्नेः लोभाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति प्रेत्य चाशुभां गतिमास्कन्दते । लुब्धोऽयमिति गर्हितश्च भवतीति तद्विरमणं श्रेयः ॥ एवं हिंसादिष्वपायावद्यदर्शनं भावनीयम् ॥ हिंसादिषु भावनान्तरप्रतिपादनार्थमाह — दुःखमेव वा ॥१०॥

तद्-अर्जन-रक्षण-प्रयत्न-कृतान्[२१] च* = उस (परिग्रह) के उपार्जन-रक्षण-जतन वा प्रयास करनेके
दोषान्[२१] बहून्[२१] अवाप्नोति[च*] अस्य[६] = अनेक दोषोंको (परिग्रहधारी) प्राप्त होता है तथा (च) इस [परिग्रह] का
तृप्तिः[१] न* भवति इन्धनैः[३] इव* अग्नेः[६] = अग्निको ईंधन के डालनेके समान संतोष नहीं होता है अर्थात् जैसे अग्निमें जितना जितना ईंधन डालते जाओ उतनीही उतनी वह बढती जाती है उसी प्रकार जितना जितना परिग्रह अधिक होता जाता है उतनाही उतना उस परिग्रहकी वांछा बढती जातीहै

लोभ-अभिभूतत्वात्[५] च* कार्य- = और (=च) लालचसे ग्रसित वा पीडित होनें (के कारण) से [परिग्रहधारी] कर्तव्य
अकार्य-अनपेक्षः[१] भवति[प्रेत्य*च*अशुभाम्[२] = अकर्तव्यके विवेकके अवलोकनसे शून्य (=अनपेक्ष) हो जाता है और मृत्यु के अनन्तर
गतिम्[२] आस्कन्दते[], लुब्धः[१] अयम्[१] इति* = दुर्गति को प्राप्त होता है यह लोभी है इस प्रकार
गर्हितः[१] च भवति[] इति* तद्-विरमणम्[१] = भी निंदित होता है ऐसे उस (परिग्रह) का अकरण वा उपरम
श्रेयः[१] एवम्* हिंसा-आदिषु[७] = कल्याण दायक वा उत्तम है इस प्रकार हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म—परिग्रह विषैं है
अपाय-दर्शनम्[१] = वियोग-दुःख-नाश-वा अपत्ति का (=अपाय) अवलोकन-आलोक वा दृष्टि (दर्शन)
अवद्य-दर्शनम्[१] = (इनही हिंसादिक पांच पाप वा अवृतोंमें) पाप वा निंदा (=अवद्य) की प्राप्ति, उपलब्धि [=दर्शन]
भावनीयम्[१] हिंसा-आदिषु[७] = भावने योग्य है वा बारम्बार चिंतवने योग्य है हिंसादिक में
भावना-अन्तर-प्रतिपादन-अर्थम्[१] आह[] = अन्य भावना का बोध कराने के लिये व कथन करने के लिये कहते हैं

दुःखमेव वा ॥१०॥ (हिंसादिषु) दुःखम् एव (इति तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यम्)

हिंसा-आदिषु[७] दुःखम्[१] एव*वा*तत्स्थैर्यार्थम्[१] = अथवा हिंसादिकमें दुःख ही दुःख है पांच भावनाओं के स्थिर रखनेके लिये
इति*भावयितव्यम्[१] = इस प्रकार चिन्तवन वा विचार किये जाने योग्य है

हिंसादयो दुःखमेवेति भावयितव्याः ॥ कथं हिंसादयो दुःखम् ? दुःखकारणत्वात् । यथा अन्नं वै प्राणा इति ॥ कारणस्य कारणत्वाद्वा यथा धनं प्राणा इति ॥ धनकारणमन्नपानं अन्नपानकारणाः प्राणा इति ॥ तथा हिंसादयोऽसद्वेद्यकर्मकारणम् । असद्वेद्यकर्म च दुःखकारणमिति दुःखकारणे दुःखकारणकारणे वा दुःखोपचार ॥ तदेतत् दुःखमेवेति भावनं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस दशवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

हिंसा-आदयः[1/3] दुःखम्[1/1] एव*इति*भावयितव्याः[1/3]; – हिंसादिक [पांच पाप] दुःखही [दुःख] हैं इसप्रकार भावना वा चिन्तवन कियेजाने योग्य है

कथम्*हिंसा-आदयः[1/3] दुःखम्?दुःख-कारणत्वात्[5/1] =कैसे हिंसादिक [पांच अव्रत] दुःख वा क्लेश हैं [उत्तर] क्यं कि [हिंसादिक] दुःखकेकारणहैं

यथा*अन्नम्[1/1] वै* प्राणाः [1/3] इति* । =जैसे नाज ही (=वै) प्राणहैं अर्थात् नाजको प्राणकहनाहै सो कारणको कार्य कहनाहै ऐसे हिंसादिक दुःखके कारण हैं तिनको दुःखही ऐसा कहनेसे यहां कारणमें कार्यका उपचार है

कारणस्य[6/1] कारणत्वात्[5/1] वा*यथा*धनं[1/1] प्राणाः[1/3] =अथवा [हिंसादिक दुःखके] कारणके कारण हैं जैसे धनहै सो प्राण हैं

इति*। धनकारणम् [1/1] अन्नपानम् [1/1] =ऐसे धन है कारण जिसका ऐसा अन्नपान है अर्थात् अन्नपानका कारण धनहै भावार्थ अन्नपान धनसे मोल आते हैं

अन्नपानकारणाः[1/3] प्राणाः [1/3] इति*; =अन्नपानहैं कारण जिनके ऐसे प्राणहैं अर्थात् प्राणका कारण अन्नपानहै भावार्थ अन्नपान खा पी करि प्राण रहते हैं नहीं तौ शरीर से निकल जातेहैं

तथा*हिंसा-आदयः[1/3]असद्वेद्यकर्मकारणम् [1/1] =तैसे हिंसादिक असाता वेदनीय कर्मका कारण है

असद्वेद्यकर्म[1/1] च*दुःखकारणम्[1/1] इतिदुःखकारणे[7/1] =और[=च]असाता वेदनीय कर्म दुःखका कारणहै इसप्रकार दुःखके कारण विषैं

दुःखकारण–कारणे[7/1] वा*दुःख–उपचारः[1/1] । =अथवा दुःखके कारणके कारणविषैं दुःखकी स्थापनाहै अर्थात् अन्नप्राणहैं इस उदाहरण में दुःखके कारणमें दुःखकी कल्पनाहै और धन प्राणहैं इस दृष्टान्तमें दुःखके कारणके कारणमें दुःख का उपचार है

तत्[1/1] एतत्[1/1] दुःखम् [1/1] एव*इति*भावनम्[1/1] =सो[=तत्]यह[=एतत्]हिंसादिक पांचपाप दुःखही हैं इस प्रकार भावना वा चिन्तवन

परात्मसाक्षिकमवगन्तव्यम् (?) ननु च तत्सर्वं न दुःखमेव विषयरतिसुखसद्भावात्। न तत्सुखं वेदनाप्रतिकारत्वात्कच्छूकण्डूयनवत् ॥

परः[१]-आत्म-साक्षिकम् $^{9111}_{6}$(२)
अवगन्तव्यम् $^{9111}_{6}$

= अन्य[के सम्बन्ध वा विषय] में अथवा अन्यके लिये अपने तुल्य(=साक्षिकं)
= बोध किया जाना चाहिये अर्थात् ये हिंसादिक पांच पाप अथवा अव्रत दुःख के कारण हैं अथवा दुःखके कारणके कारण हैं ऐसा विचारकर जानना चाहिये कि जैसे वे मुझको व्यापते घुभते हैं जैसे (क) वध बन्धन पीडन और अन्य दुःख मुझको अप्रिय अनिष्ट वा बुरे लगते हैं वैसे ही सम्पूर्ण जीवों को अप्रिय लगते हैं तथा दुःख उपजाते हैं (ख) जैसे मिथ्याभाषणसे मुझे दुःख होता है अर्थात् मेरे विषय में यदि कोई मिथ्याभाषण करे तौ मुझे दुःख होता है ऐसे ही अन्य प्राणी को दुःखहोगा (ग) जैसे मुझे इष्ट पदार्थके वियोगसे दुःख होता है और पूर्वमें हुआ भी ऐसे ही यदि चोरी करके उनका इष्ट पदार्थसे वियोग कर देवेंगे तौ उनको दुःख होगा (घ) जैसे कोई मेरी स्त्री का तिरस्कार करे तिससे मेरे तीव्र मानसिक पीडा होती है तैसे अन्य जीवोंको जिनकी स्त्रियोंसे व्यभिचार करके उनका अपमान और शील भंग किया जाता है होता है (ङ) जैसे आपके धनादिक परिग्रह नहीं प्राप्त होते वा प्राप्त हुआ तिसको नष्ट होते वांछा-रक्षा-शोक इत्यादि करि उपजा दुःख को प्राप्त होता है तैसे ही परिग्रह की वांछासे तथा परिग्रह के नष्ट होनेसे समस्त जीवोंको दुःख होता है तिससे हिंसादिक पांच पापों से निवृत्ति वा हटना ही जीवों को कल्याण कारी है ॥

ननु*च*विषय-रति सुख-सद्भावात् $^{9}_{6}$ = पुनि प्रश्न-विषय रमण(=रति)में वा भोग (=विषय)विलासकरनेमें(=रति)व सुखकी विद्यमानताहोनेसे
तत्-सर्वम् $^{9111}_{6}$ न*दुःखम् $^{9111}_{6}$ एव* = वह सब(अव्रत) दुःख (के कारण वा कारण के कारण)ही नहीं है ?
न*तत्- $^{9111}_{6}$ सुखम् $^{9111}_{6}$ वेदना- = (उत्तर) वह (विषय रति) सुख नहीं है क्योंकि(वह विषय रति) व्याधि वा रोग का
प्रतिकारत्वात् $^{9111}_{6}$ कच्छू-कंडूयनवत्* = उपाय(=प्रतिकार)खाज की(=कच्छू)खुजली(=कन्डूयन) के समान है

(१) अत्र 'परत्राप्यसाक्षिक मितिपाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते । परत्रात्मसाक्षिकमित्यन्यः पाठस्तृतीयपुस्तके वर्तते ।
परत्र-अत्र-साक्षिकम् इति पाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते=परमें और अपने में(=अत्र समान ऐसापाठताडके पत्तोंपर लिखीहुई प्रतिमें विद्यमानहै
परत्र-आत्मा-साक्षिकम् इति : अन्यःपाठःतृतीय-पुस्तके वर्तते=परमें और आत्मामें समान ऐसा अन्य पाठ तीसरी पुस्तक में विद्यमान है
(२) साक्षात् प्रत्यक्ष तुल्ययोः = साक्षात् यह एक नाम प्रत्यक्षका और तुल्यकाहै (अमरकोष नानार्थ वर्ग श्लोक २४४)

पुनरपि भावनान्तरार्थमाह-

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च स-त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥

अर्थात् सुंदर स्त्रीके कोमल और सुंदर शरीरके स्पर्शनसे रति सुख उपजता दीखताहै सो सुख नहींहै भ्रांति वा झूठी समझ से सुखरूप दीखताहै ॥ वेदनाका उपाय है जैसे चाम-मांस-रुधिर जब विकारसे कलुषपना वा अस्वच्छताको प्राप्त होकर खाजकी उत्कटता वा उग्रता करि बाधा करताहै तब नखोंसे ठीकरीयोंसे पत्थर इत्यादिकसे अपने शरीर को खुजाता है गात्रको छेदनसे रगड़नेसे रुधिरसे लिप्त हुआ भी बहुत खुजला करि दुःखही को सुख मानता है तैसे मैथुन सेवने वाला भी मोहसे दुःखही को सुख मानता है जैसे कोई पुरुष चारौ ओर अग्निकी ज्वालासे वलता अग्निके आतापको नहीं सहन कर सक्ता विष्टासे भरा हुआ महा दुर्गन्ध कुंडमें जायपड़ताहै तिसविष्टा में मस्तक पर्यन्त डूब तिसको आताप रहित सुखमानि मरण करता है तैसे स्पर्शन इन्द्रियके आताप सहनेको असमर्थ हुआ संसारीजीव स्त्रियोंकी दुर्गन्ध देहमें कामको आताप रहित सुख मानता अति तृष्णासे उत्पन्न हुआ तीव्रदुःखको भोगता मरणकरि संसारमें नष्ट हो जाता है

पुनः*अपि*भावनान्तर-अर्थम्[१] आह [२] = फिर (=पुनः) भी अन्य भावनाके लिऐ (आचार्य उत्तर सूत्र) कहते हैं कि

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि[(२)] च[(१)] सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥

इस सूत्रकी निम्नलिखित तीनविधि से वाक्य शेषता पूर्ण कर सक्ते हैं

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय के स्वभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें चशब्द नहीं है ॥ इसचकारका अर्थ यहां 'तथा और, बहुरि वा पुनः' का है ॥ भाषार्थ करनेमें आरम्भमें 'और वा तथा' शब्द लगा दिया गया है यह च ६,१० सूत्रोंका ११-१२ सूत्रोंसे मिलाता है जैसाकि वृत्तिसे प्रगट होगा ॥ यथार्थमें दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ एकसा है ॥ २ ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें तथा दिगम्बर सम्प्रदायके तत्त्वार्थ राजवार्तिक (मुद्रित पृष्ठ २७३) और सर्वार्थसिद्धि द्वतीयावृत्तिमें अविनेयेषु वाक्य है शेष नौ दश तत्त्वार्थ सूत्र की प्रतियों का, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक सहितका अविनयेषु ही पाठ है, पाठ दोनों ही शुद्ध हैं और अर्थ भेद भी नहीं है क्योंकि विनेय, का अर्थ सिखाने योग्य (पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ३५४ में) है इस लिये सप्तमी बहुवचन में अविनेयेषुका अर्थ सिखाने अयोग्य का है और विनय का अर्थ विनययुक्तजन (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५३ में) है इसलिये सप्तमी बहुवचन में अविनयेषु का अर्थ विनय रहित जनका हुआ, यद्यपि विनय शब्दका अर्थ (पुल्लिंग वि + नी + अच् । शिक्षा- प्रणाम और अनुनय (नम्र) के हैं (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५३) परन्तु इसी पृष्ठ में वि + नी + कर्तरि अच् । विनय युक्त जनका भी अर्थ है ॥

(क) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च (यथासंख्यं) सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु (तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यानि)

(ख) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानिच[यथाक्रमं]सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु[भावयतःपूर्णान्यहिंसादीनि व्रतानि भवन्ति]

(ग) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानिच [यथासंख्यं] सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु (तत्स्थैर्यार्थम् भावयेत्)

सूत्रार्थः -[क]च*मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि $\frac{1}{3}^{111}$ = और (=च) मित्रता-हर्ष-दयालुता वा अनुग्रहता-उदासीनता

यथासंख्यं-सत्त्व-गुणाधिक- = क्रमानुसार वा अनुक्रमसे प्राणियोंमें-गुणोंमें श्रेष्ठ वा प्रधानपुरुषोंमें

क्लिश्यमान- अविनयेषु $\frac{9}{3}$ = दुःखितजनोंमें, पीडितोंमें, वा क्लेशसंयुक्तोंमें-मिथ्यादृष्टियोंमें अथवा तत्त्वार्थके उपदेशको ग्रहणकरनेमें अयोग्य पुरुषोंमें

तत्-स्थैर्यार्थम् $\frac{1}{6}^{111}$ भावयितव्यानि $\frac{1}{3}^{111}$ = उन (आहिंसादिक पांच व्रतों) के स्थिरताके लिये भावने योग्य हैं वा वारम्वार चिन्तवन किये जाने योग्यहैं अर्थात् साधारण जीवोंमें मित्रता रखना सो मैत्री भावना है,जो गुणोंमें अधिक हों उनमें प्रमोद रखना(उनको देखते ही प्रणामकरि मुखकी प्रसन्नताकरि नेत्रोंका आल्हादन करि रोमांचहोनेकरि स्तुति,भाषण नामकीर्तनादिकरि अन्तरगतभक्ति प्रगट करना सो) प्रमोद भावनाहै ॥ जो जीव रोगादिक से ग्रसित पीड़ित वा दुःखित हों उन पर करुणा बुद्धि रखना, उनके दुःख दूरहोने वा करनेका अभिप्राय रखना सो कारुण्य भावनाहै;और जो जीव तत्त्वार्थ के उपदेशको ग्रहण करने योग्य नहीं ऐसे अविनयी जीवोंमें राग द्वेष रहित मध्यस्थ वा उदासीन भाव रखना सो माध्यस्थ भावना है ॥

(ख)मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि $\frac{1}{3}^{111}$ च*यथाक्रमम् सत्त्व-=तथा सौहार्द-अधिक आनंद-करुणाभाव-उपेक्षा क्रमसे साधारण जीवोंमें गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु $\frac{9}{3}$ भावयतः $\frac{5}{6}$ ($\frac{6}{6}$) = बड़े गुणियोंमें,दुःखियोंमें,विनय शून्यों में भावना करने से अथवा(?)भावनाकरने वालेके पूर्णानि $\frac{1}{3}^{111}$ अहिंसादीनि $\frac{1}{3}^{111}$ व्रतानि $\frac{1}{3}^{111}$ भवन्ति । = सम्पूर्ण अहिंसादिक (पांच) व्रत होते हैं

(ग)..... तत्-स्थैर्यार्थम् $\frac{1}{6}^{111}$ = ...(मैत्री इत्यादि साधारण जीवोंमें इत्यादि)उन (पांच व्रतोंके)दृढ़ताकोलिये

भावयेत् । = भावना करै (=भावयेत्)

(?) भाव' शब्दके राग, आशय, अवस्था, मत,पदार्थ, सत्ताई जन्म, विश्व, पंडित, इ यादि २७ अर्थ हैं (वैद्यकोश पृष्ट ५२२)। 'भावयतः' शब्द भावयत् की पंचमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंगहै'भावना करनेसे'वारम्बार चिंतवनकरनेसे वा वारम्बार विचार करनेसे ऐसा अर्थ है और इसीरूपमें भावयतः षष्ठी एक वचन पुल्लिंग हो सक्ता है'भावना वा विचार करने वाला ऐसा अर्थ है अतः अनुवाद पंचमीऔर षष्ठी दोनों विभक्तियोंमेंकियागया है ॥

परेषांदुखानूत्पत्त्ययभिलाषो मैत्री। वदनप्रसादादिभिरभिव्यज्यमानान्तर्भक्तिरागः प्रमोदः।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस ग्यारहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

परेषाम्[६/३] दुःख-अनुत्पत्ति-अभिलाषः[१/१] मैत्री[१/१]॥ =अन्यके क्लेश न होनेकी इच्छा सो मैत्री वा मित्रता है वा दूसरोंके दुःखकी उत्पत्तिका अभाव चाहना सो मैत्र्य वा मैत्री है।

वदन-प्रसादादिभिः[३/३] अभिव्यज्यमान-अन्तर्भक्तिरागः[१/१] प्रमोदः[१/१] (वदन-प्रसाद-आदिभिः[३/३] अभिव्यज्यमान-अन्तर्भक्तिरागः[१/१] प्रमोदः[१/१])

=कथन अथवा वचन(=वदन)करि तथा प्रसन्नता आदिक करि प्रगटहुआ(=अभिव्यज्यमान) =अंतरङ्गमें भक्तिका अनुराग सो प्रमोद वा प्रहर्ष है[मुखकी (=वदन)प्रसन्नताकरि(=प्रसाद) =नेत्रों का आल्हाद करि रोमांच होने करि औरस्तुति अभीक्ष्ण-नाम कीर्तिनादिकरि =अन्तर्भक्तिके अनुराग का प्रगट होना (=अभिव्यज्यमान)सो प्रमोद-प्रहर्ष-बहुत आनन्द है]

एकसा रूप इससे है कि अस् प्रत्यय पंचमी और षष्ठी विभक्ति दोनों का चिन्ह है जब भावयत् शब्द में जोड़ा जाता है तो पंचमी और षष्ठी दोनोंमें एक ही रूप बनता है जैसे भावयत् +अस्=भावतस्=भावियतः (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५७ में) इस प्रकार हिंसादि पंच पापोंमें दुःख की ही भावना करने से यहां पंचमी विभक्ति में, इस रीति से भावना करने वाले'''यहाँ षष्ठी विभक्ति में भावयतः का अनुवाद किया गया है। भावयितव्यम् (एक वचन) भाने योग्य है अर्थात् भावना-चिन्तवन वा विचार कियेजाने योग्य है, भावयितव्यौ दो वचन भावयितव्याः बहु वचन है स्थान स्थान में इनका प्रयोग है॥ भावयन् भावना करता हुआ-विचार वा चिन्तवन करता हुआ॥

(१) वदन – कथन, कहना (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३३५ और मुख के भी हैं (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३३५) इसलिये इस वाक्यके दो अर्थ एक यह दूसरा कोष्ठक देकर किया गया है ऊपर के ही वाक्य को दो बार करके कोष्ठक में लिख दिया है (संस्कृत) वृत्ति में केवल एक बार ही यह वाक्य है प्रथम तो आदिभिः वाक्यका आदिककरि अनुवाद कर दिया है और वदन शब्द का अर्थ कथन, वचन किया है, कोष्ठकमें जो वदन शब्द है उसका अर्थ मुख किया है और आदिभिः वाक्य का अर्थ तत्त्वार्थ राजवार्तिक (मुद्रित पृष्ठ २७३) में नयनप्रह्लादनेन रोमांचोद्भवेन स्तुत्य-भीक्ष्णसङ्काकीर्तनादिभिश्च' किया है मैंने भी उक्त वार्तिक के अनुकूल संस्कृत वाक्य का भाषानुवाद करके कोष्ठकमें इन दो कारणों से वदन का दूसरा अर्थ करके और आदिभिः शब्द का उपरोक्त अर्थ करके समस्त वाक्य वदन से प्रमोदः तक कोष्ठकमें दे दिया है एक श्लोक बहुत मनोरंजक 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र" में इस प्रकार दिया है कि

क्षमेऽहं सर्वसत्त्वानाम्, क्षमयेऽहं सर्वसत्त्वान्=सब जीवों के (अपराध) मैं क्षमा करता हूं और सम्पूर्ण जीवों से (अपने अपराध क्षमा कराता हूं)
मैत्री मे सर्व सत्त्वेषु, वैरं ममन केनचित् =सब जीवों पर मैं मित्रता की दृष्टि रक्खू मेरा वैर किसी प्राणी से नहीं है।

दीनानुग्रहभावः कारुण्यम् । रागद्वेषपूर्वकपक्षपाताभावो माध्यस्थम् । दुष्कर्मविपाकव-शान्नानायोनिषु सीदन्तीति सत्त्वा जीवाः । सम्यग्ज्ञानादिभिः प्रकृष्टा गुणाधिकाः । असद्वेद्यो-दयापादितक्लेशाः क्लिश्यमानाः । तत्त्वार्थश्रवणग्रहणाभ्यामसम्पादितगुणा अविनेयाः । एतेषु सत्त्वादिषु यथासंख्यं मैत्र्यादीनि भावयितव्यानि ॥

दीन-अनुग्रह-भावः[१।१] कारुण्यम्[१।१।१]
=क्लिश्यमान वा दुःखित(=पुरुष)निमें उपकारका परिणाम सो कारुण्य है

राग-द्वेष-पूर्वक-पक्षपात-अभावः[१।१]
=अनुराग और दूषणजन्य[=पूर्वक]सहकारिता की अविद्यमानता वा न होना [=अभाव]

माध्यस्थम्[१।१।१] दुष्कर्म-विपाक-
=सो माध्यस्थ है अथवा माध्यस्थ उदासीनता वा उपेक्षा है । बुरे कर्मके फल वा उदयके

वशात्[५।१] नानायोनिषु(१)[७।३] सीदन्ति(२) T
=वशसे अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हैं [=सीदन्ति] अर्थात् दुःख पाते हैं क्लेश भोगते हैं

इति*सत्त्वाः[१।३] जीवाः[१।३] सम्यग्ज्ञानादिभिः[३।३]
=ऐसे सत्त्वा-जीव-प्राणी वा चेतना हैं-सम्यग्ज्ञानादि [गुणों] करि

प्रकृष्टाः[१।३] गुणाधिकाः[१।३] असद्वेद्य-उदय-
=प्रधान-मान्य वा बडे वे गुणाधिक हैं। असाता वेदनीय [कर्म] के उदयसे

आपादित-क्लेशाः[१।३] क्लिश्यमानाः[१।३],तत्त्वार्थ-श्रवण-
=दुःख संयुक्त [आपादित] हैं सो क्लिश्यमान हैं। तत्त्वार्थके सुनने करि और

असम्पादितगुणाः[१।३] अविनेयाः[१।३] ग्रहणाभ्याम्[५।२]
=ग्रहण करने करि गुण न पाने वाले जीव अर्थात् तत्त्वार्थके श्रवण और उपदेश ग्रहण करने में अयोग्य ऐसे मिथ्या दृष्टि हठग्राही बुरे अशिक्षित जन [=अविनेय] अविनेय वा अविनय हैं

एतेषु[७।३] सत्त्वादिषु यथासंख्यम् मैत्री-आदीनि भावयितव्यानि =इन जीवादिक[चारों]में क्रमानुसार मैत्री आदिक(चार)अर्थात् पहिले को पहला दूसरे को दूसरा तीसरे को तीसरा चौथे को चौथा भावने योग्य है वा बारम्बार चिंतवन किये जाने योग्य है

(१) योनिषु-योनि शब्द पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों है (देखो पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ११२ अमरकोष १६ वर्ग ७६वां श्लोक)।

(२) सीदन्ति सात अर्थों में से यहाँ पर (क) जाते हैं (ख) दुःख वा क्लेश उठाते हैं दो अर्थ में है॥ सद्-प्रथम गणका वा कुछ विद्वानों के मतानुकूल छठवां गणका परस्मैपद अकर्मक धातु है इसका 'स' प्रथममें 'प्रति' उपसर्ग के अतिरिक्त यदि कोई उपसर्ग आवै तो 'ष' में परिवर्तित हो जाता है जैसे निषीदति=वह बैठताहै। सद् का रूप बिना किसी नियमके सीद् हो जाताहै:पीछे क्रियाके प्रत्ययलगाये जाते हैं जैसे सीद्+अ+अन्ति, इस का प्रथम अ गिरा दिया जाता है यदि अगले प्रत्यय में अ हो इस लिये सीद्+अ÷अन्ति=सीदन्ति होगया॥

सर्वसत्त्वेषु मैत्री, गुणाधिकेषु प्रमोदः, क्लिश्यमानेषु कारुण्यं, अविनयेषु माध्यस्थमित्येवं भावयतः पूर्णान्यहिंसादीनि व्रतानि भवन्ति ॥ पुनरपि भावनान्तरमाह—

॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

सर्व–सत्त्वेषु[३] मैत्री[१], गुणा–अधिकेषु[३] प्रमोदः[१] क्लिश्यमानेषु[३] कारुण्यम्, अविनयेषु[३] माध्यस्थम्[१] इत्येवं* भावयतः[५,६] अहिंसादीनि[१] व्रतानि[१] पूर्णानि[१] भवन्ति T पुनः*अपि*भावना–अनन्तरम्[१] आह T

=सकल [साधरण] जीवों में मित्रता वा सौहार्द (सम्यग्ज्ञान–चारित्रादिक) गुणोंमें (अपनेसे) प्रधान-अधिक मुख्य बड़े (पुरुष)निमें प्रमोद-हर्ष, बहुत आनंद =संतापित वा दुःखित (जनों) में करुणाभाव-तत्त्वार्थके उपदेशको ग्रहरणकरनेमें असमर्थ हठग्राही मिथ्यादृष्टिजीवोंमें उदासीनता वा उपेक्षा इस प्रकार =भावना करने से वा भावना करने वालेके अहिंसादिक (पांच) व्रत पूर्ण होते हैं फिर भी अन्यभावना (अग्रिम सूत्रमें आचार्य) कहते हैं कि

जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

=वा जगत्काय स्वभावौ संवेग वैराग्यार्थम् (भावयितव्यौ)

सूत्रार्थः—वा-जगत्-काय-स्वभावौ[३] संवेग-अर्थम्[१] वैराग्य–अर्थम्[१] भावियितव्यौ[१]

=अथवा संसार तथा देह (दोनों) का स्वभाव (अत्यंत) संवेगके लिये =और वैराग्यके लिये भावने योग्य है अर्थात् संसारका स्वरूप संयोगके लिये तथा निर्वेद (=वैराग्य) केलिये और शरीर का स्वरूप संवेग के लिये और निर्वेद (=वैराग्य) के लिये वारम्वार चिन्तवने योग्य है, भावने योग्य है

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्रमें वा के स्थानमें च है शेष सूत्रका एकसा पाठहै है वा का अर्थ अथवा हमारी सम्प्रदाय में कियाहै और च शब्दका अर्थ और–तथा- शब्दकरि अन्य सम्प्रदायवालोंने इस प्रकार कियाहै कि और (=च)जगत्कायका स्वभाव संवेग वैराग्य केलिये भावने योग्यहै अर्थात् श्रीआदिक सत्त्वादिकमें (सूत्र ११) भावने योग्यहै और (=च जगत्काय स्वभाव संवेग वैराग्य के लिये भावने योग्य है (सूत्र १२) ऐसे चशब्द दोनो सूत्रोंको मिलादेताहै ॥

जगत्स्वभावस्तावदनादिरनिधनो वेत्रासनझल्लरीमृदङ्गनिभः ।

पदच्छेद औरविभक्त्यर्थसहित इस बारहवां[1] सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दशःहिन्दीअनुवाद

जगत्-स्वभावः[1] तावत्* अनादि :[1] अनिधनः[1] = संसारका स्वभावतो(= तावत्)आदि शून्य(= अनादि)नाशवर्जित वा नाश रहित (=अनिधन)

वेत्र–आसन–झल्लरी–मृदङ्ग–निभः[1] (२) = (जड़ वा तली में) बेंतके (चौकोर) आसनके (मध्यमें झाल्रके (=झल्लरी) (और = ऊर्ध्वमें) मृदङ्ग वा मुरज के सदृश–समान है

(१) " भावयितव्यो व्रतस्थैर्यार्थमितिशेषः" ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ४६१ (मुद्रित) अर्थात् तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके अनुसार इस सूत्रमें भावयितव्यो इत्यादि वाक्य औरअधिक अनुवृत्ति करना योग्य है भावार्थ सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यर्थम् इति भावयितव्यो व्रतस्थैर्यार्थम्' अब यहां पर प्रश्न यह होता है कि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें व्रत की परिभाषा कही गई और तीसरे सूत्रमें यह कहा कि उस व्रतकी स्थिरता वा दृढ़ता के लिये पांच पांच भावना एक एक व्रत के लिये है पश्चात् ६, १०, ११ वां सूत्रमें भी उन व्रतों की ही स्थिरता के लिये अन्य भावनायें कही गई हैं इससूत्र में जो यह कहा है कि संवेग वैराग्य के लिये जगत् तथा शरीर का स्वभाव चिंतवने योग्य है तो संवेग वैरा य का प्रकरण कहां से और कैसे उन व्रतों की स्थिरता के प्रकरणमें आगया इसके उत्तर में तत्त्वार्थ श्लोक-वार्तिकके कर्त्ता कहते हैं कि अर्थ इस प्रकार है कि "संवेग वैराग्ये हि व्रतस्थैर्यस्य हेतू '= संवेग और वैराग्य ही व्रत की स्थिरता के कारण हैं' इसलिये व्रतोंकी स्थिरताके कारण संवेग और वैराग्य के होने से यहां पर उन का कथन करते हुये उन के प्रधान निमित्त बतलाये गये है जिस से जीवको संवेग और वैराग्य के निमित्त मिलने पर संवेग और वैराग्य के द्वारा वह अहिंसा आदि व्रतोंको स्थिर कर सके

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंसादिष्विह इत्यादि सूत्र ६ में दुःखमेव वा सूत्र १० में "तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यम्" मिलाकर और मैत्री प्रमोद आदि सूत्र ११ में तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यानि" जोड़कर तथा जगत्काय आदि सूत्र १२ में "तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यौ" ऐसा वाक्य शेष मानकर अर्थ करना चाहिये जैसा कि तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक के निम्न लिखित वाक्यों से प्रगट है

सूत्र ६ के सम्बन्धमें "सकलव्रतस्थैर्यार्थं मित्थं च भावना कर्तव्येत्याह" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६०

सूत्र १० के सम्बन्ध में "हिंसादिसकलमव्रतं दुःखमेवेति च भावनां व्रतस्थैर्यार्थमाह" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६०

सूत्र ११ के सम्बन्ध में " हिंसादिविरतिस्थैर्यार्थं भावयितव्यानीति भावनाश्चतस्रोपि वेदितव्याः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित) पृष्ठ ४६०

सूत्र १२ के विषय में "भावयितव्यो व्रतस्थैर्यार्थमिति शेषः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६१ ॥

(२) निमः -इस शब्दका जब अकेला प्रयोग करते हैं तब पुल्लिङ्ग होता है और अर्थ व्याज (बहाना) छल वा मिष होता है ॥ जब समासके अन्तमें आता है तब सम तुल्य सदृक्ष सदृश-सदृश्-समान के अर्थ में आता है और तीन लिंगों में से किसी लिंग में होसकता है जैसे पितृनिमः मातृ-निमः (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २१९ देखो)

अनादिःअनिधनः–अनिधन समास के आरम्भ में कमी नहीं आता जगत्स्वभावः तावत् अनादिः अनिधनः ऐसे चार पद इस वाक्य में है

अत्र जीवा अनादिसंसारे ऽनन्तकालं नानायोनिषु दुःखं भोजंभोजं पर्यटन्ति। न चात्र किञ्चिन्नियतमस्ति। जलबुद्बुदोपमं जीवित, विद्युन्मेघादिविकारचपला भोगसम्पद इत्येवमादि जगत्स्वभावचिन्तनात्संसारात्संवेगो भवति ॥ कायस्वभावश्च अनित्यता दुःखहेतुत्वं

अत्र*जीवाः $\frac{१}{३}$ अनादि-संसारे $\frac{१}{८}$ अनन्तकालम् $\frac{१}{८}$ नाना-योनिषु $\frac{१}{३}$ दुःखं $\frac{२}{३}$ भोजम् $\frac{२}{३}$ भोजम् $\frac{२}{३}$ पर्यटन्ति। न*च*अत्र*किञ्चित्*नियतम् $\frac{१}{८}$ अस्ति T। जल-बुद्बुद उपमम् $\frac{१}{८}$ जीवितम् $\frac{१}{८}$; विद्युत्-मेघादि-विकार-चपला $\frac{१}{८}$ भोगसम्पदः $\frac{१}{८}$ इत्यादि $\frac{१}{८}$ एवम्*जगत्स्वभाव-चिन्तनात् $\frac{५}{८}$ संसारात् $\frac{५}{८}$ संवेगः $\frac{१}{८}$ भवति T॥ कायस्वभावः $\frac{१}{८}$ च*अनित्यता $\frac{१}{८}$ दुःखहेतुत्वम् $\frac{१}{८}$

=इस (जगत) में(=अत्र)प्राणी आदि शून्य (संसारमें) अनन्तकाल तक =अनेक जोनियोंमें क्लेशको भोग भोग चारो ओर भ्रमण करता है =और [=च] इस[जगत]में कुछ निश्चितनहींहै। पानीके बुल्बुलाके[बुद्बुद] =सदृश जीवन है, बिजली [=विद्युत] बादलादिक के परिणाम वा पलटने =चंचल वा क्षणभंगुर भोगसम्पदाहै इत्यादिके इस प्रकार लोक के स्वभाव के =चिन्तवन करि संसार से भय-डर-वा भीरूत्व होता है =तथा (=च) शरीर वा कायका स्वभाव अनित्य है, क्लेशका कारण है

निधन=नाश (पद्मकोष पृष्ठ २१२) इसलिये अनिधन का अर्थ नाश रहित वा नाश वर्जित हुआ, इसलिये आदि शून्य और नाश वर्जित शब्दार्थ अनादि रनिधान वाक्यका हुआ अर्थात् संसार की आदि नहीं है और नाना प्रकार के जीव अजीव पदार्थोंकी अपेक्षासे इसका नाश भी नहीं है बरन् प्रवाह रूपसे अनन्त काल तक इसका अस्तित्व बना रहेगा ऐसा तात्पर्य्य जान पड़ता है॥ मैंने इस वाक्य को देखकर यह विचारा कि मुद्रण यंत्र की भूल से अनादिनिधन के स्थान में अनादिरनिधन होगया है परंतु सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी हस्त लिखित सात प्रतियोंमें 'अनादि रनिधनः' है अतः पाठ शुद्ध है राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २७३ में इसी सूत्रकी व्याख्यामें अनादिनिधन इस नीचेके वाक्यमें लिखा है॥ जगत्स्वभावः तावत् आदिमत् अनादिमत् परिणाम-द्रव्यसमुदायरूपः ताल वृक्षसंस्थानः अनादिनिधनः=जगतका स्वभाव तो आदि मान तथा अनादि मान परिणाम वाला द्रव्य का समुदाय रूप ताड के वृक्ष के संस्थान वत् अनादिनिधन है। जयचंदजी की वचनिकामें तहां प्रथम ही जगत का स्वभावजोयह लोक है सो अनादिनिधन वेत्रासन झल्लरी मृदंगसारिखा आकार रूप है ऐसा अर्थ किया है) इसी सूत्र के अर्थमें पं० सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका, तत्वार्थसूत्रकी लघुटीका, और कितने ही स्थानोंपर 'अनादिनिधन' शब्द देखागया है (न कि अनादि निधन, पृथक् पृथक् जो अशुद्ध है) अनादिनिधन=अनादि+अनिधन अर्थात् ऐसा कहते हैं कि अकार निषेध वाची दोनों शब्दोंको लागू होता है॥ हमारी समझमें अनाद्यनिधनका अधिकतम उच्चारण करते २ अनादिनिधन अपभ्रंश हो गया क्योंकि आलापपद्धतिग्रन्थमें श्लोक है कि अनाद्यनिधने (=अनादि+अनिधने) द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् =अनादि और नाशरहित द्रव्यमें अपने स्वभावके अनुकूल क्षणक्षणमें पर्यायें उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोल वज्जले ॥१॥ =जलमें जलकी कल्लोल सदृश उपजती है और विनशती है इसका फल यह निकलाकि समासान्त पदमें तो 'अनाद्यनिधन' ठीक है और संधिरूपमें 'अनादिरनिधन' ठीक है॥ खींचातानी करके अनादिनिधन को भी ठीक मान लेते हैं॥

निःसारता अशुचित्वमित्येवमादि ॥ कायस्वभावचिन्तनाद्विषयरागनिवृत्तेर्वैराग्यमुपजायते इति जगत्कायस्वभावौ भावयितव्यौ ॥ अत्राह उक्तं भवता हिंसादिनिवृत्तिर्व्रतमिति, तत्र न जानीमः के हिंसादयः क्रियाविशेषा इत्यत्रोच्यते । युगपदुक्तुमशक्यत्वात्तल्लक्षणनिर्देशस्य क्रमप्रसंगे याऽसावादौ चोदिता सैव तावदुच्यते—

॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

निःसारता[1] अशुचित्वम्[1] इत्येवम्*आदि[1] ;काय-स्वभाव-चिन्तनात्[1] विषय-राग-निवृत्तेः[1] वैराग्यम्[1]
(१) उपजायते। इति*जगत्काय—स्वभावौ[1] भावयितव्यौ[1]॥
अत्र*आहे T हिंसादि-निवृत्तिः[1] व्रतम्[1]
इति*उक्तम्[1] (२) भवता[1] तत्र*न*जानीमः T
के[1] हिंसादयः[1] क्रिया-विशेषाः[1] इति*अत्र*उच्यते T ।
युगपद्*वक्तुं०अशक्यत्वात्[1] तत्-लक्षण-निर्देशस्य[1]
क्रमप्रसंगे[1] या[1] असौ[1] आदौ[1] चोदिता[1]
सा[1] एव*तावत्* उच्यते T

=सार रहित है अपवित्र है इत्यादिक है कायकी प्रकृतिके
=चिन्तवन करनेसे विषयमें प्रीति वा अनुराग न होनेसे निर्वेद वा वैराग्य
=उपजता है इस प्रकार संसार तथा शरीर(दोनों)के स्वभाव भावने योग्य हैं
=यहां पूछता है कि हिंसादिकसे विरक्तता वा परित्यागता सो व्रत है
=ऐसा आप द्वारा वर्णित हुआ(अध्याय७सूत्र १में) तहां हम नहीं जानतेहैं कि
=हिंसादिक क्रिया विशेष क्याहैं इस प्रकार (प्रश्न होनेपर)यहां कहाजाताहैकि
=एक साथ कहने को असमर्थ होनेसे उन (हिंसादिक) के रूपके कथनके
=क्रमप्रसंगमें जो (=या) यह (=असौ) आदिमें उपदेशकी हुई(हिंसा)
=सो (=सा)ही प्रथम (=तावत्-निम्न सूत्रमें) कही जाता है कि

(४)

(२) सूत्रम्— प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

---

(१) जन् दिवादि चौथे गणका अकर्मकधातु है इस में विकरण य लगाने से कर्तरि प्रयोग में जायते बनता है उप उपसर्ग जोड़ कर उपजायते बन जाता है ॥ (२) भगवता--भवता के स्थान में अशुद्ध मुद्रित हो गया है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि धृतिकी चार हस्त लिखित प्रतियोंमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'भवता' शब्द है ॥(३) दिगम्बर आम्नायमें और श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें औरभाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें एक सा पाठ और अर्थ भी लगभग एकसा है। ३ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें प्रमत्त शब्दका अर्थ इस प्रकारलिखाहै कि

प्रमादः सकषायत्वं तद्भावात्मपरिणामः प्रमत्तः प्रमत्तस्ययोगः प्रमत्तयोगः तस्मात्प्रमत्तयोगात् इन्द्रियादयो दशप्राणास्तेषां यथासंभवं

सूत्रार्थः-प्रमत्त-योगात् ५।१ =कषाय राग द्वेष और अयत्नाचार (असावधानी) के संयोग वा सम्बन्ध से अथवा प्रमादीके मन वचन काय से

प्राण-व्यपरोपणम् १।१।१ हिंसा १।१ =भाव प्राण वा द्रव्य प्राण वा दोनोंका वियोग करना न्यारा करना, सो हिंसा है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस तेरहवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

प्रमादः १।१ सकषायत्वम् १।१।१ तद्भावात् १।१ आत्म-परिणामः १।१ =कषाय सहितपना सो प्रमाद है उस (प्रमाद) सहित चेतनका भाव वा परिणाम सो

प्रमत्तः १।१ प्रमत्तस्य ६।१ योगः १।१ प्रमत्तयोगः १।१ =प्रमत्त है प्रमत्तका संयोग वा सम्बन्ध सो प्रमत्त योग है

तस्मात् ५।१ प्रमत्त-योगात् ५।१ इन्द्रिय-आदयः १।३ =तिस प्रमत्तके संयोगसे, (पांच)इन्द्रिय-मनोबल-कायबल-वचनबल-आयुः स्वासोच्छ्वास

दशप्राणाः १।३ तेषाम् ६।३ यथासम्भवम् १।१।१ =ये दश प्राण हैं तिन (प्राणों) का जितने होसकें उतनों का अर्थात् एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय लग जीवोंके दश प्राणोंमेंसे जितने जितने अमुक अमुक इन्द्रिय वाले जीवोंके हो सकते हैं उतनोंका

(क) इन्द्रियोंके प्रचारका विशेष असावधानीसे वा अयत्नाचार से होना सो प्रमत्त है

(ख) अथवा प्रमत्तकी ज्यों वा सदृश हः सो प्रमत्त है ॥ इहां उपमा वाचक इव शब्द का प्रत्ययार्थमें लोप है सो उपमाका अर्थ ऐसा जैसे दारूका पीवने वाला मतवाला होय तब कार्य अकार्यका जिसके विचार न हो, तिसकी उपमा है ॥ तथा जीवोंके स्थान और उनके उपजनेके ठिकाने तथा जीवों के आधार जाने विना, कषायोंके उदयसे दबाया हुआ (=कषायोदयाविष्टः) हिंसाके कारण विषै स्थिति करै । सामान्य करि अहिंसाका यत्न न करै, सो प्रमत्त है ॥

(ग) अथवा पंद्रह (पांच इन्द्रिय-चारकषाय- चारविकथा-रागद्वेष एक और निद्रा) प्रमाद रूप परिणाम हों सो प्रमत्त है।

(च) संयोग वा सम्बन्धसे अर्थात् प्रमाद रूप परिणाम (=प्रमत्त) के सम्बन्धके हेतुसे मन वचन काकी क्रिया को भी योग कहते हैं अर्थात् प्रमाद रूप भाव होकर मन वचन कायके योगोंके कारणसे (प्राणोंका) व्यपरोपण वा न्यारा करना सो हिंसा है ॥ प्रमत्तयोग को प्राण व्यपरोपण के लिये हेतु रूप कहा है ॥

हिंसा मारणं प्राणातिपातः प्राणवधः देहान्तरसंक्रमणं प्राणव्यपरोपणमित्यनर्थान्तरम् =हिंसा, मारण, प्राणातिपात, प्राणवध, एक देह से दूसरा देह में जीवका संक्रमण और =प्राणोंका व्यपरोपण ऐसे (ये) समानार्थक (वाचक) शब्द हैं समाप्य० पृष्ठ १६० देखो

व्यपरोपणं वियोगकरणं हिंसेत्यभिधीयते ॥ सा प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्महेतुः ॥ प्रमत्तयोगादिति विशेषणं केवलं प्राणव्यपरोपणं नाधर्मायेति ज्ञापनार्थम् ॥ उक्तं च—वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते इति ॥ उक्तं च—उच्चालिदंमि पादे इरियासमिदस्स णिग्गमट्ठाणे । आवादेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज ॥ १ ॥ णहि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहमोवि देसिदो समये ॥ मुच्छापरिग्गहोत्ति य अज्झप्पप्पमाणदो भणिदो॥ २ ॥

व्यपरोपणम्[1] वियोगकरणम्[1] हिंसा[1] इति*अभिधीयते T ॥
सा[1] प्राणिनः[1] दुःख-हेतुत्वात्[1] अधर्म-हेतुः[1] ॥
प्रमत्त-योगात्[1] इति*विशेषणम्[1] ज्ञापन-अर्थम्[1] ।
केवलम्[1] प्राण-व्यपरोपणम्[1] न*अधर्माय[1] इति ॥
उक्तम्[1] च*वियोजयति T च* असुभिः[1]
न*च*वधेन[1] संयुज्यते T इति* ॥ उक्तम्[1] च*
उच्चालिदंमि[1] पादे[1] इरियासमिदस्स[1] णिग्गमट्ठाणे[1]
उत्-चालिते[1] पादे[1] ईर्यासमितस्य[1] निर्गमस्थाने[1]
आवादेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज
आपते च*कुलिङ्गः[1] म्रियेत-तत्-योगम्[1] आसाद्य÷
णहि*तस्स[1] तण्णिमित्तो बंधो सुहमोवि देसिदो समये[1]
नहि*तस्य[1] तत्-निमित्तः[1] बन्धः[1] सूक्ष्मः[1] अपि*उपदेशितः[1]
समये[1] ।
मुच्छापरिग्गहोत्तिय [= मूर्च्छा[1] परिग्रहः[1] इति*च*]
अज्झप्पप्पमाणदो-भणिदा॥२॥[= अध्यात्म-प्रमाणतः*भणितः[1]]

=व्यारा करना (=व्यपरोपण) अलग अलग करना (=वियोगकरण)
=ऐसी हिंसा कही जाती है
=सो (हिंसा) जीवोंका क्लेश वा संतापका कारण होनेसे अधर्मका कारण है
=(इस सूत्रमें) प्रमत्तयोगात् ऐसा गुणवाचकवाक्य जतानेके लिये है कि
=प्राणोंका वियोग करना मात्रही (=केवल) अधर्म के लिये नहीं है ॥
=कहा गया भी (=च) है कि और (=च) (प्राणियोंको) प्राणोंसे न्यारा करताहै
=और हिंसाकरि (=वधेन) बन्धसंयुक्त न होयहै (=न संयुज्यते) कहागया भी है
=पगके उठानेमें ईर्यासमितिवाले (मुनि) के निर्गमस्थानमें अर्थात् निकलनेके स्थानमें भावार्थ बाहर भीतर इधर उधर गमन करनेके स्थानमें
=कोई जीव आपडे (=आपते) और [=च] उस [पग] के संयोगको प्राप्त होकर मरजायतो
=उस [मुनिके] उस [मृत्यु] के निमित्तसे सूक्ष्म बन्धभी [=वि] नहीं होता है [ऐसा] सिद्धान्तमें [=समये] उपदेश किया गया है
=और [=च] वांछा परिग्रह है ऐसा
=अध्यात्म प्रमाणकरि वा प्रमाणद्वारा कहा गया है

(१) प्राकृतमें राम शब्द पुल्लिंगके रामे और रामंमि दोनोंरूप सप्तमी विभक्ति एक वचन है अतः उच्चालदंमि और पादे दोनों सप्तमी एक वचन है

ननु च प्राणव्यपरोपणाभावेऽपि प्रमत्तयोगमात्रादेव हिंसेष्यते । उक्तं च–मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा । पयदस्स णत्थि बन्धो हिंसामित्तेण समिदस्स॥१॥ इति । नैष दोषः । अत्रापि प्राणव्यपरोपणमस्ति भावलक्षणम्॥ तथा चोक्तम्–स्वयमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् ॥ पूर्वं प्राण्यन्तराणान्तु पश्चात्स्याद्वा नवावधः॥१॥ इति ॥

ननु*च*प्राण-व्यपरोपण-अभावे अपि*अप्रमत्त-योग-मात्रात् एव*हिंसा इष्यते T । उक्तम्॥च*
मरदु व*जियदु व*जीवो (=मृतः वा जीवितः वा जीवः)
अयदाचारस्स णिच्छिदाहिंसा(=अयत्नाचारस्यनिश्चिता हिंसा
पयदस्स णत्थि T बन्धो (प्रयत्नस्य न*अस्ति।बन्धः
हिंसामित्तेण समिदस्स (=हिंसामात्रेण समितस्य
न*एषः दोषः; अत्र*
अपि*प्राणव्यपरोपणम् अस्ति T भावलक्षणम्॥ ॥

तथा*च*उक्तम्॥स्वयम्*एव*आत्मना
आत्मानं हिनस्ति T आत्मा प्रमादवान् पूर्वं *
प्राणि अन्तराणाम् तु*पश्चात्*स्यात् T वा*न*वा*वधः इति*

=पुनि प्रश्न-प्राणोंके वियोग करनेके अभावमें भी प्रमत्त योग मात्र से
=ही हिंसा मानी गई है । कहा भी गया है कि
=जीव मरो अथवा मत मरो
=अयत्नाचारीके निश्चय हिंसा होती है
=प्रयत्न (से अवर्तने) वाले
समिति युक्तके हिंसा मात्र से बन्ध नहीं है [ण–त्थि]
=[उत्तर] यह दूषण नहीं है यहां सूत्रमें [अयत्नाचारके प्रवर्तनेमें]
=भाव लक्षणयुक्त प्राणोंकाभी[=अपि]वियोग है अर्थात् अयत्नाचारसे
प्रवर्तनेमें केवल प्रमत्त योगही नहीं वरन् भाव प्राणों का भी वियोग है
=तैसे[तथा-निम्नलिखित श्लोक म] कथन भी है अपनी ही आत्मा करि
=आपको (=आत्मानं) पहिले (वै) प्रमाद सहित आत्मा हनता है
=और(=तु)पीछे अन्य जीवोंका वधहो अथवा नहो बस–इस समस्तका
संक्षेप भावार्थ यह हैकि प्रमादरूप परिणामके सम्बन्धसे प्राणोंका वियोग

करना हिंसा है [अध्याय ७ सूत्र १३]इस पर प्रश्न हुआ कि प्राणों के वियोग बिना केवल प्रमादके संयोग से [अयत्नाचारके प्रवर्तने से] भी हिंसा शास्त्र में कही है उत्तरमें कहते हैं कि प्रमादसे प्रवर्तने में पहिले तो जीव अपने ही भाव प्राणों का वियोग करता है परचात् अन्य का प्राण व्यपरोपण हो अथवा मति हो ऐसे जहां प्रमाद है वहां प्राण व्यपरोपण अवश्य ही है ऐसे दोनों नियम [प्रमत्त के योग का कारणपना और भाव प्राण वा द्रव्य प्राण अथवा दोनों प्राणों का वियोग करना]

आह अभिहितलक्षणा हिंसा, तदनन्तरोद्दिष्टमनृतं किं लक्षणमित्यत्रोच्यते—

॥ असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥

हिंसाकी सूत्रित परिभाषाके द्वारा नियम प्रमादवान् आत्माके पूर्ण होगये

आह[1] अभिहित-लक्षणा[1] हिंसा[1], तद्-अनन्तर- = (शिष्य) प्रश्न करता है कि कथित लक्षण वाली हिंसाके उस (हिंसा) के अत्यन्त समीप
उद्दिष्टम्[1] अनृतम्[1] किं[1] लक्षणं[1] इति[1] अत्र[1] उच्यते = उपदेश कियाहुआ अनृतका लक्षण वालाहैऐसे (प्रश्नहोनेपर) यहां (अग्रिमसूत्र) कहा

असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ = (प्रमत्तयोगात्) असत्-अभिधानम्-अनृतम्(कथ्यते) ।

सूत्रार्थः प्रमत्त-योगात्[3] = प्रमादरूप परिणामके सम्बधसे (अथवा)
(प्रमत्त-योगात्[3])
असत्[1]-अभिधानम्[1] = राग द्वेष कषाय सहित होकर (= प्रमत्त) मनो वचन-काय योगोंसे (= योगात्)
(असत्[1]-) = विपरीत-असमीचीन-मिथ्या-झूठ (=असत्) वचनकहना . =अभिधानम्) (अथवा)
= अप्रशस्त=असुहावना-अहितकारी-पीड़ाकारी-बुरा-हिंस्य-पारुष्य वा कठोर-पैशून्य-गर्हित वा निन्दित)
अभिधानम्[1] = वचनकहना (=अभिधानम्)
असत्[1]-अभिधानम्[1] = (अथवा) सद्भावके निषेधकाकथन(अर्थात् सद्भूत अर्थका अपह्नव वा छिपाना अविद्यमान का उद्भावन वा प्रकटी करण-जैसे आत्मा नहीं है परलोक नहीं है इत्यादि सद्भूत पदार्थ का निषेध और श्यामा वा अतिसूक्ष्म तण्डुलमात्र जीवात्मा है वा अङ्गुष्ठके पर्वमात्र यह आत्मा है आदित्य वर्ण है निष्क्रिय है इत्यादि असद्भूत वस्तु का प्रकटी करण) सो

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायों में एकसा पाठ और अर्थ है ॥ असत्- अन्य तीन व्रत और सत्यव्रत भी हिंसा व्रतकी रक्षा-पालन पोषण वा बचाव के लिये हैं इसलिये इससूत्र के असत् शब्दमें दोभाव गर्भित वा अन्तर्गत हैं (क) असुहावना अहितकारी-पीड़ाकारीहिंस्य-पारुष्य वा कठोर पैशून्य और गर्हित वा निन्दित (ख) मिथ्या-झूठ ॥ यदि असत् शब्दका अर्थ सर्वथा निषेध (अविद्यमानता) कीलेवें तो शून्य का प्रसंग आता है और यदि विपरीत (झूठ-मिथ्या) अर्थ लेवें तो वस्तुका स्वरूप अन्यथा कहे है जिसका प्रसंग आवे है इस हेतु से असत् शब्द का अप्रशस्तअर्थ लेने में पूर्वोक्त दोनों अभिप्राय आजते हैं अर्थात् झूठ वा मिथ्या भाषण अनृत है और पीड़ा कारी-हिंस्य-पारुष्य-निन्दित वचन भी अनृत है ग) तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक (मुद्रित पृष्ठ ४६२) में इस सूत्र की अनुवृत्ति और अध्याहार इस प्रकार है कि प्रमत्तयोगा-दसदभिधानं यत्तदनृतमिति" = प्रमत्त योगसे अप्रशस्त कथन(= अभिधानं) जो सो अनृत है (प्रमत्त योगात्-असत्-अभिधानं यत्-तद्-अनृतम् इति

सच्छब्दः प्रशंसावाची न सदसदप्रशस्तमिति यावत् । असतोऽर्थस्याभिधानमसदभिधानमनृतम् ॥ ऋतं सत्यं न ऋतमनृतम् ॥ किं पुनरप्रशस्तं ? प्राणिपीडाकरं यत्तदप्रशस्तम् ॥ विद्यमानार्थविषयं वा अविद्यमानार्थविषयं वा ॥

अनृतम् $\frac{१}{६}^{१११}$ कथ्यते T =अनृत वा असत्य कहा गया है । इस सूत्रका संक्षेप अर्थ इस प्रकारसे है कि

प्रमत्त-योगात् $\frac{५}{६}^{१}$ =प्रमादरूप परिणामके संबंधसे (अथवा)
रागद्वेष और कषाय सहित होकर(=प्रमत्त)मनो-वचन-काय योगोंसे (=योगात्)

असत्$\frac{१}{६}^{१११}$ अभिधानम् $\frac{१}{६}^{१११}$ अनृतम् $\frac{१}{६}^{१११}$ =अप्रशस्त वा बुरा (हिंस्य-मिथ्या-निंदित) वचनकहना(=अभिधान)सो अनृत वा असत्यहै

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौदहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

सत्-शब्दः$\frac{१}{६}^{१}$ प्रशंसा-वाची $\frac{१}{६}^{१}$ न*सत् $\frac{१}{६}^{१११}$ =सत् शब्द बड़ाई वा श्लाघाका बोधक वा कहनेवाला है सत् न हो सो

[१] असत् $\frac{१}{६}^{१११}$ अप्रशस्तम् $\frac{१}{६}^{१११}$ इति* यावत्* । =असत् वा अप्रशस्त इसप्रकार इतना (अभिप्राय) है

असतः $\frac{५}{६}^{१}$ अर्थस्य $\frac{५}{६}^{१}$ अभिधानम् $\frac{१}{६}^{१११}$ =असत् अर्थका (वस्तुका) विषय कहना सो

असत् $\frac{१}{६}^{१११}$ अभिधानम् $\frac{१}{६}^{१११}$ अनृतम् $\frac{१}{६}^{१११}$ =असत् अभिधान है अनृत है अर्थात् यथार्थ में है उससे अन्यअर्थ कहना सो अनृत है
जैसे गौको अश्व कहै और अश्वको गौकहै (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ१६१)

ऋतं $\frac{१}{६}^{१११}$ सत्यम् $\frac{१}{६}^{१}$ न*ऋतम् $\frac{१}{६}^{१११}$ अनृतम् $\frac{१}{६}^{१११}$ किं $\frac{१}{६}^{१११}$ पुनः* =ऋत है सो सत्य है नहीं ऋत है सो असत्य है । पुनि क्या है ?

अप्रशस्तम् $\frac{१}{६}^{१११}$?प्राणिपीडाकरम् यत् $\frac{१}{६}^{१११}$ तद् $\frac{१}{६}^{१११}$ अप्रशस्तम्=अप्रशस्त । (उत्तर) प्राणियोंको पीड़ाकारी (वचन) जो सो अप्रशस्त है

विद्यमान-अर्थ-विषयं $\frac{१}{६}^{१११}$ =चाहैं [उस वचनका] वर्तमान वस्तु विषय हो

वा* अविद्यमान-अर्थ-विषयं $\frac{१}{६}^{१११}$ वा* अथवा अविद्यमान वस्तु विषय हो (जहां हिंसा हो सो सर्वत्र अनृत है)

(१) ऋत जब विशेषण होता है तब (क) उचित (ख) निष्कपट (ग) पूज्य, जब संज्ञा होता है तब (घ) नियम (ङ) ईश्वरीय नियम (च) सचाई (छ) खेतोंमेंसे अन्नके दाने चुनना अर्थ हैं । इस(ऋत शब्द का संस्कृतमें बहुत थोड़ा प्रयोग किया जाताहै इसके निषेधवाची शब्द अनृत(अन्+ऋत) का प्रयोग बहुत किया जाता है ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें ऋतं सत्यं न ऋतमसत्यम् पाठ है ॥ द्वितीयावृत्तिका, तथा तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'ऋतं सत्यं न ऋतमनृतम् पाठ है; 'न ऋतमनृतम्' तत्त्वार्थराजवार्तिक का पठनहै । श्रुतसागरीटीकाका पाठ 'न ऋतं न सत्यमनृतं' ऐसा है यद्यपि दोनों पाठोंका अर्थ एक है परन्तु बहु मतसे हमने द्वितीयावृत्ति और हस्त लिखित प्रतियोंका पाठ रक्खा है ॥

उक्तं च–प्रागेवाहिंसाप्रतिपालनार्थमितरद्व्रतमिति । तस्माद्धिंसाकर्मवचोऽनृतमिति निश्चेयम् ॥ अथानृतानन्तरमुद्दिष्टं यत्स्तेयं तस्य किं लक्षणमित्यत आह—

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

आदानं ग्रहणमदत्तस्यादानमदत्तादानं स्तेयमित्युच्यते । यद्येवं कर्मनोकर्मग्रहणमपि स्तेयं प्राप्नोति अन्येनादत्तत्वात् ॥ नैष दोषः ।

उक्तम्*च*प्राग्*एव*अहिंसा-प्रतिपालन-अर्थम् इतरत्*व्रतम्*इति*;तस्मात् हिंसा-कर्मवचः*अनृतम्*इति*निश्चेयम्*;अथ*अनृत-अनन्तरम्*उद्दिष्टम्*यत्*स्तेयम्*तस्य*किम्*लक्षणम्*इति*अतः*आह T ।

=और पहले ही [=प्राग् एव] कहागया था कि अहिंसा[व्रत] के रक्षाके लिये =अन्य[=इतरत् वा इतरद्] व्रतहैं । तिससे हिंसाकरने वाला वचन है सो अनृतहै =ऐसा निश्चय करना चाहिये । अब अनृतके अत्यन्त समीप वर्णित जो =चौर्य्य वा स्तेय है तिस(स्तेय)काक्या लक्षण वा परिभाषहैअतः(अग्रिमसूत्र)कहतेहैं कि

(१) अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः–प्रमत्तयोगात्

अदत्त-आदानम्*स्तेयम्* भवति T

वृत्त्यानुवादः-आदानम्*ग्रहणम्*अदत्तस्य*आदानम्*।। अदत्त-आदानम्* स्तेयम्*।।इति*उच्यते T यदि *एवम्* कर्म-नोकर्म ग्रहणम्*।।।अपि*स्तेयम्*।।।प्राप्नोति T अन्येन* अदत्तत्वात्*।।।;न*एषः* दोषः*

= (प्रमत्तयोगात्) अदत्तादानं स्तेयम् भवति ।१५।

=प्रमादरूप परिणामके सम्बन्धसे
अथवा रागद्वेष कषाय सहित होकर (=प्रमत्त)मनो वचन-काय-योगोंसे(=योगात्)
=बिनादिये (वस्तु-धनादिकका)ग्रहण करना वा लेलेना सो चौर्य वा चोरी है अर्थात्
लोभक्लेशादिक प्रमादके योगसे बिनादियेहुये पदार्थका ग्रहण करना सो चोरी है
=आदान है सो ग्रहण वा ले लेना है.बिनादिये हुए(अन्यके धन वस्तु आदि)का ग्रहण
=अदत्ता दान है। सो(अदत्तादान)चोरी है,ऐसा कहागया है(प्रश्न) यदि ऐसे है
अर्थात् जो बिनादिये हुएका ग्रहण वा लेलेना ही चौर्य वा स्तेय है तो
= कर्मवर्गणा तथा नोकर्म वर्गणाओं का ग्रहण भी चोरीको प्राप्त होता है
=क्योंकि(कर्म नोकर्म वर्गणा)किसी दूसरेकरि नहीं दीजाती है(उत्तर)यह दोष नहीं है

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में एकसा अर्थ और पाठ है ॥ प्रमत्त—योगात्-अदत्त-आदानं यत् तत्स्तेयम् इति उच्यते संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३५२ पङ्क्ति ६ में इस सूत्रको उपयुक्त प्रकार से पूर्ण किया गया है ॥

दानादाने यत्र सम्भवतस्तत्रैव स्तेयव्यवहारः। कुतः? अदत्तग्रहणसामर्थ्यात् ॥ एवमपि भिक्षोर्ग्रामनगरादिषु भ्रमणकाले रथ्याद्वारादिप्रवेशाददत्तादानं प्राप्नोति॥ नैष दोषः। सामान्येन मुक्तत्वात्। तथाहि–अयं भिक्षुः पिहितद्वारादिषु न प्रविशति अमुक्तत्वात्। अथवा प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते

दान-आदाने $\frac{१}{३}$'''*यत्र*सम्भवतः*तत्र*एव*स्तेय-व्यवहारः$\frac{१}{२}$; =जहां दैन लैन सम्भव है तहां ही चोरीका व्यवहार होता है।

कुतः*अदत्त-ग्रहण–सामर्थ्यात्$\frac{१}{३}$'''; =(प्रश्न)क्योंकर[=कुतः]विनादीहुई [वस्तु]के ग्रहणकी योग्यता वा शक्तिसे (चोरी होती है) अर्थात् इससूत्र में 'अदत्त' शब्दको इस अर्थमें लिया है कि जहां दैन लैन किसी वस्तु जैसे धन धान्य वस्त्र इत्यादिक का हो सकता है वहां ही चोरी सम्भव है कम नो कर्म वर्गणाओंके ग्रहणमें दैन लैनका व्यवहार नहीं है वे सूक्ष्म और अदृश्य हैं उनके ग्रहण में चोरी नहीं है

एवम्*अपि*भिक्षोः $\frac{१}{४}$ ग्राम-नगरादिषु $\frac{१}{३}$ भ्रमणकाले $\frac{१}{४}$ रथ्या–द्वारादि-प्रवेशात् $\frac{१}{४}$ अदत्त–आदानं $\frac{१}{३}$''' प्राप्नोति T ॥ =(प्रश्न) इस प्रकार भी है कि मुनिके गांव नगरादिकोंमें पर्यटन कालमें गली द्वारादिकमें घुसनेसे अदत्तादान प्राप्त होता है

न*एषः$\frac{१}{४}$ दोषः$\frac{१}{४}$; सामान्येन$\frac{१}{३}$'''मुक्तत्वात् $\frac{१}{४}$''' =(उत्तर) यह दोष नहीं है(द्वार गली–आदिक) साधारणपनेसे(सबके आने जानेके लिये) खुले हुए हैं

तथाहि*अयम् $\frac{१}{४}$ भिक्षुः$\frac{१}{४}$पिहित-द्वारादिषु$\frac{१}{३}$' =जैसा कि-यह मुनि बंद किये हुये (=पिहित) द्वारादिकमें

न*प्रविशति-अमुक्तत्वात् $\frac{१}{४}$'''; =अमुक्त होनेके (हेतु) से प्रवेश नहीं करता है अर्थात् द्वार-गली-आदिक साधारणपनेसे सबके जाने आनेके लिये खुले हैं इससे अदत्ता दानका दोष वर्जित है उनमें मुनि प्रवेश करता है और बंद द्वारादिकोंमें मुनि इस निमित्तसे प्रवेश नहीं करता है कि उनमें प्रवेश करनेसे अदत्तादानका दोष लगता है क्योंकि जिसने वे द्वार गली आदिक बंद किये हैं वह साधारण के आने जाने को नहीं चाहता है इससे बंद किये हैं

अथवा*प्रमत्त-योगात् $\frac{१}{४}$'इति*अनुवर्तते T। =वा (इस सूत्रमें) प्रमत्त-योगात् ऐसे(१३वां सूत्रसे)अनुवृत्ति आती है अर्थात् प्रमत्त योगात् इतने वाक्यको १३वां सूत्रसे इस सूत्रमें मिला लिया गयाहै

प्रमत्तयोगाददत्तादानं यत् तत्स्तेयमित्युच्यते। न च रथ्यादि प्रविशतः प्रमत्तयोगोऽस्ति। तेनैतदुक्तं भवति यत्र सँक्लेशपरिणामेन प्रवृत्तिस्तत्र स्तेयं भवति बाह्यवस्तुनो ग्रहणेवा ऽग्रहणे च। अथ चतुर्थमब्रह्म किंलक्षणमित्यत्रोच्यते—

॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

प्रमत्त-योगात् [५]

=[तब] प्रमाद रूप परिणामके सम्बन्धसे अथवा राग द्वेष कषाय सहित होकर (=प्रमत्त) मनो वचन काय योगोंसे (=योगात्)

अदत्त-आदानम् [१।१] यत् [१।१]

=बिना दीहुई (वस्तु) को ग्रहण करना वा लेलेना जो (=यत्) है

ततु[१।१] स्तेयम् [१।१] इति*उच्यते T।

=वह (=तत्) स्तेय है ऐसा कहा गया है

न*च*रथ्य-आदि [१।१] प्रविशतः[६]प्रमत्त-योगः[६] T। तेन [३।१]

=बहुरि गली आदिमें प्रवेश हुए (मुनि) के प्रमत्त योग नहीं है तिससे

एतत् [१।१] उक्तम्[१।१] भवति T यत्र*सक्लेश-परिणामेन [३] प्रवृत्तिः[१।१]

=यह कथन वा अर्थ होता है कि जहां सक्लेश भाव करि प्रवृत्ति है

तत्र*स्तेयम्[१।१] भवति T च*बाह्य-वस्तुनः [५।१] ग्रहणे[७।१]

=वहां चौर्य वा स्तेय होती है और [=च] बाह्य वस्तुके ग्रहण होनेपर

वा*अग्रहणे [७।१]; अथ*चतुर्थम्[१।१] अब्रह्म [१।१] किम् [१।१]

=वा न होनेपर, [चोरी नहीं होता है]॥ अब चौथा अब्रह्म है जिसका क्या

लक्षणम्[१।१] इति*अत्र*उच्यते T

=लक्षण है ऐसे [प्रश्न होने पर] यहां [अग्रिम सूत्र में] कहा जाता है कि

(१)

मैथुन मब्रह्म ॥ १६ ॥

(प्रमत्त योगात्) मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—प्रमत्त—योगात् [५]

=प्रमादरूप परिणामके सम्बन्धसे [=प्रमत्त—योगात्] [अथवा] रागद्वेषकषायसहित होकर (=प्रमत्त) मनोवचन-कायके योगोंसे (योगात्)

मथुनम्[१।१] अब्रह्म[१।१] भवति T ॥ १६ ॥

=स्त्री पुरुषोंकी परस्पर स्पर्शन रूप क्रिया अर्थात् काम सेवन सो अब्रह्म है

(१) दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें यह सूत्र एक सा पाया जाता है और अर्थ भी एक सा है।

स्त्रीपुंसयोश्चारित्रमोहोदये सति रागपरिणामाविष्टयोः परस्परस्पर्शनं प्रति इच्छा मिथुनम् । मिथुनस्य कर्म मैथुनमित्युच्यते । न सर्वं कर्म । कुतः–लोके शास्त्रे च तथा प्रसिद्धेः । लोके तावदागोपालादिप्रसिद्धं स्त्रीपुंस रागपरिणामनिमित्तं चेष्टितं मैथुनमिति । शास्त्रेऽपि अश्ववृषभयोर्मैथुनेच्छायामित्येवमादिषु तदेवगृह्यते॥ अपि च प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते तेन स्त्रीपुंसमिथुनविषयं रति सुखार्थं चेष्टित मैथुनमिति गृह्यते न सर्वम् ॥ अहिंसादयो धर्मा यस्मिन् परिपाल्यमाने बृंहन्ति

पदच्छेदऔर विभक्त्यर्थसहित इस सोलवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

स्त्री-पुंसयोः[३] चारित्र-मोह-उदये [३]सति [३] रागपरिणाम =स्त्री पुरुष विषैं चारित्र मोहनीय कर्मके उदय होनेपर स्नेहरूपभावकरि
आविष्टयोः[३]परस्पर-स्पर्शनम् [३]। प्रति*इच्छा[१]।मिथुनं[१]।, =संयुक्त आपसमें स्पर्शन प्रति अभिलाषा सो मैथुन है
मिथुनस्य[६]।कर्म[१]।मैथुनं[१]। इति*उच्यते;न*सर्वं[१]।कर्म[१]। =मिथुनका कार्य सो मैथुन ऐसा कहा गया है नकि सर्व कार्य(मैथुन) है
कुतः*लोके [७] शास्त्रे [७] च*तथा*प्रसिद्धेः [५] ; लोके [७] =(प्रश्न)क्यों(उत्तर)लोक और(=च)शास्त्रमें तैसे ही प्रसिद्ध होनेसे। लोकविषैं
तावत्*आ-गोपाल–आदि–प्रसिद्धं [१]। स्त्री–पुंस– =तो गोपालादिक तक [=आङ्=आ]में ख्यात है कि स्त्री–पुरुष द्वारा
राग-परिणाम-निमित्तम्[१]।चेष्टितम्[१]।मैथुनम्[१]।इति* । =(परस्पर) रागभावपूर्वक चष्टा कीजाय सो मैथुन है
शास्त्रे[७]।अपि*अश्व-वृषभयोः[७]मैथुन-इच्छायाम्[७]। =शास्त्रमें भी घोड़ा बैलमें (कें) मैथुनकी इच्छाविषै
इत्येवम्*आदिषु[७] तद्[१]।गृह्यते T। =इत्यादिक(पाठ)है, वहां (मैथुन) ही ग्रहण किया गया है अर्थात् आगम विषैभी
पशुओंके कामादिकको मैथुन कहा गया है ।

अपि*च*प्रमत्त-योगात्[५]इति*अनुवर्तते T =फिर(=च)भी(=अपि) (इससूत्रमें)'प्रमत्त-योगात्'ऐसी अनुवृत्ति(१३वां सूत्रमेंसे)है
तेन[३]।स्त्री-पुंस-मिथुन-विषयम्[१]।रति-सुख-अर्थम् [४]। =तिस[अनुवर्तन]करि स्त्री पुरुषका युगल(=मिथुन)संबंधी(=विषय)रति सुखके लिये
चेष्टितम्[१]। मैथुनम्[१]।इति*गृह्यते T न* सर्वम्[१]।॥ ॥ =चेष्टाकी जाय सो मैथुन ऐसा ग्रहण किया जाय है नकि सर्व [कार्य मैथुन]है

अहिंसा–आदयः[१]।धर्माः[१]।यस्मिन्[७]।परिपाल्यमाने[७]।बृंहन्ति T=अहिंसादिक गुण (=धर्म) जिसके पालन किये जानेमें बढ़ते हैं

वृद्धिमुपयान्ति तद्ब्रह्म । न ब्रह्म अब्रह्म। किं तत् ? मैथुनम्।तत्र हिंसादयो दोषाःपुष्यन्ति॥ यस्मान्मैथुनसेवनप्रवणः स्थास्नूश्चरिष्णून् प्राणिनो हिनस्ति। मृषावादमाचष्टे। अदत्तमादत्ते। सचेतनमितरच्च परिग्रहं गृह्णाति ॥ अथ पञ्चमस्य परिग्रहस्य किं लक्षणमित्यत आह—

॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

वृद्धिम् [1]उपयान्ति[1]तद् [1] ब्रह्म[1];न*ब्रह्म[1]अब्रह्म[1];=वृद्धिको प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है। जो ब्रह्म नहीं सो अब्रह्म है।
किम् [1] तत् [1] मैथुनम् [1]; तत्र*हिंसा-आदयः [1] =(प्रश्न) वह (अब्रह्म) क्या है, (उत्तर) मैथुन है; वहां (अब्रह्मविषे) हिंसादिक
दोषाः[1]पुष्यन्ति T। यस्मात् [1] मैथुन-सेवन-प्रवणः [1] =अवगुण पुष्ट होते हैं। तिस[अब्रह्म]से मैथुन सेवनमें प्रवीण पुरुष
स्थास्नून् [1] चरिष्णून् [1] प्राणिनः [1]हिनस्ति T =थावर त्रस जीवोंको हनता है
मृषावादम् [1] आचष्टे T;अदत्तम् [1] आदत्ते T। =मिथ्या वचन बोलताहै। बिना दीहुई वस्तुको ग्रहण करताहै अर्थात्चोरी करताहै।
[१]सचेतनम् [1]इतरम्[1] च*परिग्रहम्[1] गृह्णाति T ॥ =चेतन तथा अचेतन परिग्रह को ग्रहण करता है
अथ*पञ्चमस्य[1]परिग्रहस्य[1]किं[1]लक्षणं[1]इति*अतःआह =अब पाँचवां परिग्रहका क्या लक्षण है इसलिये(आचार्य उत्तर सूत्र) कहते हैंकि

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ (प्रमत्तयोगात्) मूर्च्छा (मूर्च्छा)परिग्रहः भवति

(२) सूत्रार्थः—प्रमत्त-योगात्[1] मूर्च्छा[1] =प्रमत्त योगसे बाह्य अभ्यन्तर चेतन अचेतन रूप द्रव्योंमें ममत्वरूप परिणाम सो
परिग्रहः [1] भवति T =परिग्रह है अर्थात् बाह्यमें स्त्री-पुत्र दासी-दास सेवक-परिवार-गाय-भैंस-हाथी
घोड़ा-धनधान्य-सुवर्ण-रूपा-मणि-मोती-शय्या-आसन-गृह आभरण-वस्त्रादिक में तथा अभ्यन्तरमें रागादिक
परिणामोंके उपार्जन संसारादिक रूप जो ममत्व भाव उसे मूर्छा कहते है मूर्छा ही परिग्रह है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सत्रहवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

(१) कहीं'सचेतनमितरंच''कहींअचेतन मितरच्च' पाठहै दोनों ठीक हैं। मुद्रित प्रतियोंके'सचेतन मितरच्च'अशुद्ध हैं क्योंकि'इतरत्'का अन्वय परिग्रहके साथ न होसकेगा। (२)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "मूर्च्छा परिग्रह"ऐसा पाठ है, यह पाठ हमारे यहांके सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के पाठ के अतिरिक्त अन्य बहुधा पाठों से मिलता है, अर्थ दोनों आम्नायों में इससूत्रका एक है॥ मूर्छा-और मूर्च्छा दोनों रीतिसे लिखा जाता है।

मूर्छेत्युच्यते॥का मूर्छा?बाह्यानां गोमहिषमणिमुक्तादीनां चेतनाचेतनानां अभ्यन्तराणाञ्च रागादीनामुपधीनां संरक्षणार्जनसंस्कारादिलक्षणाव्यावृत्तिर्मूर्छा॥ ननु च-लोके वातादिप्रकोपविशेषस्य मूर्छेति प्रसिद्धिरस्ति तद्ग्रहणं कस्मान्न भवति?सत्यमेवैतत्। मूर्छतिरयं मोहसामान्ये वर्तते। सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठन्त इत्युक्ते विशेषे व्यवस्थितः परिगृह्यते। परिग्रहप्रकरणात्

मूर्छा[1]॥इति*उच्यते[1];का[1]मूर्छा[1]॥?बाह्यानाम्[6]गो-महिष-=मूर्छा ऐसा कहा जाता है [प्रश्न]मूर्छा क्या है ? बाह्य-गऊ-भैंस[=महिष]
मणि-मुक्ता-आदीनाम्[6]चेतन-अचेतनानाम्[6]च =मणि-मोती-आदिक जीव-अजीव पदार्थ और
अभ्यन्तराणाम्[6]राग-आदीनाम्[6]उपधीनाम्[6]संरक्षण-अर्जन-=अन्तरंग रागादिक परिग्रहकी(=उपधीनाम्) रक्षा करना उपार्जन करना
संस्कार-आदि-लक्षण-अव्यावृत्तिः[1]मूर्छा[1]॥ =संस्कारादिक करनेरूप प्रवृत्ति वा लगन (=अव्यावृत्ति) सो मूर्छा है
ननु*च* लोके[7]वात-आदि प्रकोपविशेषस्य[6] =पुनि प्रश्न लोकविषै वायु आदि (रोग) के प्रकोपका भेद (=विशेष)
मूर्छा[1]इति* प्रसिद्धिः[1]अस्ति T =मूर्छा ऐसा प्रसिद्ध है अर्थात् वात पित्त खखार के वशसे रोग उत्पन्न होने पर अचेतना होजाय उसको मूर्छा कहते है

तद्-ग्रहणम्[1]कस्मात्[5]न* भवति T ? =उस(अर्थात् मूर्छा शब्दका अर्थ अचेतनता)का ग्रहण किसकारण से नहीं होताहै?
सत्यम्*एव*एतत्[1][१]मूर्छतिः[1]अयम्[1] =यह (मूर्छा शब्दका अर्थ अचेतनता) सत्य ही है। यह मुर्च्छ्(=मूर्च्छ्)धातु
मोह-सामान्ये[7]वर्तते T च* सामान्य-चोदनाः[3] =मोह सामान्य अर्थमें वर्तती है और (=च) सामान्य प्रेरणायें (यहां)
विशेषेषु[7]अवतिष्टन्ते T =विशेष [अर्थ]में अवस्थित हैं [=अवतिष्ठन्ते] अर्थात् सामान्य अर्थ छोड़कर विशेष अर्थमें मूर्छा शब्दको लिया है

इति*उक्ते[7]विशेषे[7]व्यवस्थितः[1] =ऐसा कथन होते सन्ते विशेष अर्थ में निर्णीत वा व्यवस्थित [मूर्छा शब्द]
परिगृह्यते T परिग्रह-प्रकरणात्[5], =ग्रहण किया गया है क्योंकि परिग्रहका प्रकरण वा विषय है

(१) मूर्छा परस्मैपदी प्रथम भ्वादिगण का धातु है मूर्च्छति एक वचन अन्य पुरुष वर्तमानकाल में रूप होता है इसका प्रथमाविभक्ति में एक वचन पुल्लिङ्ग मूर्च्छतिः बना लिया है तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित २७६ में मूर्च्छिरयम् (=मूर्च्छिः अयम्) सामान्ये वर्तमानः इत्यादिक है
(२) व्यवस्थित=दूसरे विषय को तोड़कर किसी विशेष विषयमें स्थापित किया गया (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ३७१)

एवमपि बाह्यस्य परिग्रहत्वं न प्राप्नोति ; अध्यात्मिकस्य संग्रहणात् । स यमेवैतत्–प्रधानत्वादभ्यन्तर एव संगृह्यते । असत्यपिबाह्यममेदमिति सङ्कल्पवान् सपरिग्रहो भवति॥ अथ बाह्यः परिग्रहो न भवत्येव ; भवति च मूर्छाकारणत्वाद्यदि ममेमिति,सङ्कल्पः परिग्रहःसंज्ञानाद्यपिपरिग्रहः प्राप्नोति; तदपि हि ममेदमिति सङ्कल्प्यते रागादिपरिणामवत् ।

एवम्*अपि* =(प्रश्न)ऐसे भी अर्थात् यदि मूर्छा शब्दको विशेष अर्थ रागादिमें ग्रहणकरेंतौभी
बाह्यस्य परिग्रहत्वम् न*प्राप्नोति T =बाह्य [वस्तु गऊ-भैंस-माणि-मोती इत्यादिक] के परिग्रहता प्राप्त नहीं होती है
अध्यात्मिकस्य संग्रहणात्; सत्यं*एव*एतत्— =क्योंकि [यहां] अभ्यन्तर [=अध्यात्मिकस्य]मूर्छाका ग्रहणहै यह सत्य ही है
प्रधानत्वात् अभ्यन्तरः एव*संगृह्यतेT =मुख्य पनासे अभ्यन्तर ही ग्रहण किया गया है
असति अपि*बाह्ये मम इदम्*इति*संकल्पवान् =बाह्यके(में)(परिग्रह)विद्यमान न होने परभी यह मेरा है ऐसा संकल्प करने वाला
स-परिग्रहः भवतिT।अथ बाह्यः परिग्रहः न*भवति।एव* =परिग्रह सहित होता है। अब बाह्य परिग्रह होता ही नहीं है
भवति T च*मूर्छा कारणत्वात् =[और] [बाह्य परिग्रह] होती भी है तौ [=च] मूर्छाके कारणसे [होती है]

भावार्थ मूर्छा शब्दमें बाह्य परिग्रह नहीं आती है क्योंकि यह शब्द अन्तरंग रागादिकको प्रगट करता है और इस मूर्छा शब्दमें बाह्य परिग्रह आती भी है क्योंकि मूर्छा है सो बाह्य परिग्रहका कारण है जैसे अन्न प्राण है यथार्थमें अन्न प्राण नहीं है वरन् अन्न प्राणका कारण है यहां कारणमें कार्यका उपचार तैसे ही यह मेरा है ऐसी मूर्च्छा है सो बाह्य परिग्रह का निमित्त है जो कि मूर्च्छा स्वयं बाह्य परिग्रह है यहां भी कारणमें कार्यका उपचार है।

यदि*मम इदम्*इति*संकल्पः परिग्रहः सज्ज्ञानादि*अपि*=[प्रश्न]जो मेरा यह है ऐसी मनकी इच्छा परिग्रह है तौ सम्यज्ञानादिकभी
परिग्रहः प्राप्नोतिT । तद् अपि*हि*मम इदम्*इति* =परिग्रह ठहरें उस (सम्यज्ञानदि) में भी कि मेरा यह है ऐसा
रागादि–परिणामवत्*—संकल्प्यतेT =रागादि भावके सदृश विचार किया जाता है अर्थात् रागादि परिणामको

अभ्यन्तर परिग्रहकी ज्यों है कि यह मेरा है सम्यज्ञानादिक विषैभी पाया जाताहै

नैष दोषः—प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते। ततो ज्ञानदर्शनचारित्रवतोऽप्रमत्तस्य मोहाभावान्न मूर्छास्तीति निःपरिग्रहत्वं सिद्धम्॥ किञ्च तेषां ज्ञानादीनामहेयत्वादात्मस्वभावत्वादपरिग्रहत्वं। रागादयः पुनः कर्मोदयतन्त्रा इति अनात्मस्वभावत्वाद्धेयाः। ततस्तेषु सङ्कल्पः परिग्रह इति युज्यते। तन्मूलाः सर्वेदोषाः॥ ममेदमिति हि सति संकल्पे संरक्षणादयः सञ्जायन्ते। तत्र च हिंसाऽवश्यम्भाविनी। तदर्थमनृतं जल्पति। चौर्यंवा आचरति। मैथुने च कर्मणि प्रयतते। तत्प्रभवा नरकादिषु दुःखप्रकाराः॥ एवमुक्तेन प्रकारेण हिंसादिदोषदर्शिनोऽहिंसादि

न*[1] एषः[1] दोषः[1] प्रमत्त-योगात्[1] इति* अनुवर्तते।
ततः*ज्ञान-दर्शन-चारित्रवतः[1]
अप्रमत्तस्य[1] मोह-अभावात्[1] न* मूर्छा[1] अस्ति। इति*
निः परिग्रहत्वम्[1] सिद्धम्[1], किञ्च तेषाम्[1] ज्ञानादीनाम्[1]
अहेयत्वात्[1] आत्म-स्वभावत्वात्[1] अपरिग्रहत्वम्[1]
रागादयः[1] पुनः*कर्म-उदय-तन्त्राः[1] इति*अनात्म-स्वभावत्वात्[1]
हेयाः[1], ततः*तेषु[1] सङ्कल्पः[1]
परिग्रहः[1] इति*युज्यते। तत्-मूलाः[1] सर्वे[1] दोषाः[1];
मम[1] इदम्[1] इति*हि*सति[1] संकल्पे[1] संरक्षण-आदयः[1]
सञ्जायन्ते। तत्र*च*हिंसा[1] अवश्यम्*भाविनी[1]
तत्-अर्थम्*अनृतम्[1] जल्पति। चौर्यम्[1] वा आचरति। मैथुने[1] च* कर्मणि[1] प्रयतते। तत्प्रभवाः[1] नरकादिषु[1] दुःख प्रकाराः[1]
एवम्*उक्तेन[1] प्रकारेण[1] हिंसादिदोषदर्शिनः[1] अहिंसादि

=(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (इस सूत्रमें भी) प्रमत्त योगात् ऐसे (वाक्य की)
=अनुवृत्ति है अर्थात् यह सूत्र 'प्रमत्त योगात् मूर्छा परिग्रहः' ऐसा है
=तिस (प्रमत्त योगात् इस वाक्यको सूत्रमें और मिलानेसे) ज्ञान-दर्शन-चारित्रवान्
=अप्रमत्त (पुरुष) के मोहके न होने (के कारण) से मूर्छा नहीं है इस प्रकार (सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रवान् के)
=निष्परिग्रहता सिद्ध है। कुछ और (भी विशेष) है तिन ज्ञानादिकके
=आत्माके स्वभाव होनेसे त्यागपना नहीं है (अतएव) अपरिग्रहपना है
=और(=पुनः)रागादिककर्मोंके उदयके आधीनहैं ऐसे आत्माके स्वभाव न होनेसे
=त्याजनीयहैं त्यागने योग्यहैं। तिससेतिन (रागादिक)में संकल्प (कि यह मेरा) है
=सो परिग्रह है ऐसा(कथन) युक्त है उचित है। तिन [रागादिक] के मूल सब दूषण हैं अर्थात् रागादिकसे ही सर्व दोष उत्पन्न होते हैं
=मेरा यह है ऐसा ही संकल्प होनेपर [परिग्रहकी] रक्षा करना आदिक
=उपजते हैं और (=च) तहां (इन रागादिक में) हिंसा अवश्य होती है
=तिस(हिंसा)के लियेझूठ बोलताहै है वा चोरी करता हैऔर मैथुन
=कर्ममें जतन करताहै। ते (पाप) नरकादिकोंमें अनेक प्रकार के दुःखोंके उत्पादकहैं
=ऐसे उक्त अनुक्रमकरि हिंसादिक(पापों)में दोष देखने वालेके अहिंसादिक

गुणाहितचेतसः परमप्रयत्नस्याहिंसादीनि व्रतानि यस्य सन्ति सः—

॥ निश्शल्यो व्रती ॥ १८ ॥

शृणाति हिनस्तीति शल्यमन्तःशरीरानुप्रवेशिकाण्डादिप्रहरणंतच्छल्यमिव शल्यं;यथातत्प्राणिनो

गुण-आहित-चेतसः[६] परम-प्रयत्नस्य[६]-अहिंसादीनि[३]''' व्रतानि[३]''' यस्य[६] सन्ति[1] सः[१]

=गुण निश्चित आत्माके परम जतन करने वाले (आत्मा) के अहिंसादिक =व्रत जिसके होते हैं वह निम्न सूत्र में कहा जाता है कि

[१] निश्शल्योव्रती ॥ १८ ॥ निश्शल्यःव्रती=**निःशल्यः सः व्रती भवति ॥ १८ ॥**

सूत्रार्थः—निश्शल्यः[१]

=जो शल्य रहित है अर्थात् जिसके मायाशल्य-मिथ्यात्वशल्य-निदानशल्य नहीं हैं

सः[१] व्रती[१] भवति[1]

=वही व्रती होता है भावार्थ यह है कि मनमें कुछ और वचन में कुछ और तथा कार्य कुछ और करना ऐसी माया शल्य-तत्त्वार्थका अश्रद्धान ऐसी मिथ्यात्व शल्य-आगामी कालमें विषयभोगोंकी वांछा करना ऐसी निदान शल्य इन तीनों के होते हुए कोई भी मनुष्य अहिंसादिक पांचव्रत होने पर भीव्रती नहीं हो सक्ता वास्तव में व्रतों को धारण कर शल्य रहित होने पर ही व्रती होता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस अठारहवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

[२] शृणाति[1]हिनस्ति[1]इति*शल्यम्[१]॥; शरीर-अनुप्रवेश-काण्ड-आदि-प्रहरणम्[१]॥।

=घातता है-चुभताहै (=शृणाति) मारता है (=हिनस्ति) ऐसी शल्य है। शरीरमें =प्रवेशकरनेवाले अथवा घुसजाने वाले बाण आदिक-शस्त्र (=प्रहरण)

तत्—शल्यम्[१]''' इव* शल्यम्[१]॥; यथा* तत्[१]॥। प्राणिनः[६] =तिस सारिखा (मनविषै)चुभै-बाधा करै सो शल्यहै; जैसे वह(काण्ड=बाण)जीवोंको

(१) इस सूत्रका पाठ कहीं कहीं पर "निः शल्यो व्रती" ऐसाहै क्योंकि निम्नलिखित नियमके अनुसार विसर्गकोश् होजाताहै। यदि विसर्गके पश्चात् श् ष् स् आवें तो श्-ष् वास् में विसर्ग पलट जाताहै अथवा विसर्ग अपने रूप में ही बना रहता है जैसे ऋषयः शाम्यन्ति का विसर्ग श् में बदल कर—ऋषयश्शाम्यन्ति होजाताहै वा न पलटकर ऋषयः शाम्यन्ति ऐसाही बनारहताहै अतःनिः शल्यो व्रती,-निश्शल्यो व्रती दोनों ठीक है(२)शृ-क्र्यादि नवमगणका धातुहै-सार्वधातुक कालोंमें नवमगणके धातुऔर क्रिया प्रत्ययके मध्यमें ना आताहै। जैसे शृ + ना-ति ना का णा हो गया तब शृणाति ऐसा बना॥ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायमें यह सूत्र एकसा है अर्थभी समान है॥

बाधाकरं तथा शरीरमानसबाधाहेतुत्वात्कर्मोदयविकारः शल्यमित्युपचर्यते ॥ तत्त्रिविधम्—मायाशल्यम्। निदानशल्यम्। मिथ्यादर्शनशल्यमिति ॥ माया निकृतिर्वञ्चना । निदानंविषयभोगाकांक्षा । मिथ्यादर्शनमतत्त्वश्रद्धानम् । एतस्मात्त्रिविधाच्छल्यान्निष्क्रान्तो निश्शल्योव्रती इत्युच्यते ॥ अत्र चोद्यते–शल्याभावान्निः शल्यःव्रताभिसम्बन्धाद्व्रती, न निश्शल्यत्वाद्व्रतीभवितुमर्हति । नहि देवदत्तो दण्डसम्बन्धाच्छत्री भवतीत्यत्रोच्यते–उभयविशेषणविशिष्टत्वात्

बाधाकरम्[1]॥ तथा*शरीर-मानस-बाधा-हेतुत्वात्[2]॥
कर्म-उदय-विकारः[1]। शल्यम्[1]॥ इति*उपचर्यते T ॥
तत्[1]॥ त्रिविधम्[1]॥ माया।शल्यम्[1]॥, निदान।शल्यम्[1]॥,
मिथ्या।दर्शनशल्यम्[1]॥ इति;माया[1]॥ निकृतिः[1]॥ वञ्चना[1]॥,
निदानम्[1]॥ विषयभोग- आकांक्षा[1]॥
मिथ्या दर्शनम्[1]॥ अतत्त्वश्रद्धानम्[1]॥;एतस्मात्[1]॥ त्रिविधात्[1]॥
शल्यात्[1]॥ निष्क्रान्तः[1] निशल्यः[1] व्रती[1] इति*उच्यते T ॥
अत्र*चोद्यते Tशल्य-अभावात्[1]॥ निःशल्यः[1] व्रत–
अभिसम्बन्धात्[1]॥ व्रती[1], न*निश्शल्यत्वात्[1]॥ व्रती[1]
भवितुम्[1]॥ ०अर्हति T ।

नहि*देवदत्तः[1]॥ दण्डसम्बन्धात्[1]॥ छत्री[1]॥ भवति T
इति*अत्र*उच्यते Tउभय –
विशेषण–विशिष्टत्वात्[1]॥

=बाधा करताहै, तैसे शरीर सम्बन्धी और मन सम्बन्धी बाधाका कारण होनेसे
=कर्मका उदयजनित विकार (भी) शल्यहै ऐसे (शल्यनामका) उपचारकियागयाहै
=वह (शल्य) तीन प्रकार है-मायाशल्य-निदानशल्य
=मिथ्यात्व शल्य है, छल [=निकृति] ठगाई [=वञ्चना] है सो माया है
=विषय भोगों की वांछा है सो निदान है
=तत्त्वोंके श्रद्धानका अभाव सो मिथ्या दर्शन है। इन तीन प्रकारके
=शल्यों से रहित वा वर्जित है सोनिरशल्य है सोव्रती है ऐसे कहा जाता है
=यहां तर्क की जाती है कि शल्यके न होनेसे निरशल्य होजाता है । व्रतके
=सम्बन्धसे वा धारण (करने) से व्रती होता है, निरशल्य पनासे व्रती
=होने के (को) योग्यनहीं होता है अर्थात्व्रती का विशेषण निःशल्य किया
=सो व्रतके और निरशल्यपनाके विरोध है तिससे विशेषण बनेगा नहीं
निरशल्य को व्रती कहना ठीक नहीं है (तर्ककर्ता दृष्टान्तसे तर्कको पुष्टिकरताहै)
=(जैसे) देवदत्त दण्डके धारण करनेसे छत्री नहीं होता है (वरन् छत्र के धारणसे)
=ऐसे यहां (प्रश्न पर) कहा गयाहै कि दोनों(निःशल्यता और हिंसादिसे त्याग के)
=विशेषणोंकी युक्तता वा मिलावसे (=विशिष्टत्वात्) व्रती होता है।

न हिंसाद्युपरतिमात्रसम्बन्धात् व्रती भवत्यन्तरेण शल्याभावम् । सति शल्यापगमे व्रतसम्बन्धात् व्रती विवक्षितो यथा बहुक्षीरघृतो गोमानिति व्यपदिश्यते । बहुक्षीरघृताभावात्सतीष्वपि गोषु न गोमांस्तथा सशल्यत्वात्सत्स्वपि व्रतेषु न व्रती ॥ यस्तु निःशल्यः स व्रती । तस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

न*हिंसादि-उपरतिमात्र–सम्बन्धात्[५।१]
व्रती[१।१]भवति[T](१)अन्तरेण*शल्य-अभावम्[२।१];
सति[७।१]शल्य-अपगमे[७।१]व्रत-सम्बन्धात्[५।१]व्रती[१।१]
विवक्षितः[१।१]यथा*बहुक्षीरघृतः[१।१]गोमान्[१।१]
इति*व्यपदिश्यते[T] । बहु-क्षीर-घृत-अभावात्[५।१]
सतीषु[७।३]अपि*गोषु[७।३] न*गोमान्[१।१]

=न कि हिंसादिक (पांच पापों) से हटने मात्र के सम्बन्धसे
=शल्यके अभाव विना(=अन्तरेण) व्रती होता है,
=शल्यके अभाव होने पर व्रतके सम्बन्धसे व्रती
=विवक्षित है अर्थात् विवक्षाकरि कहा गया है। जैसे बहुत दूध'घी'संयुक्त गऊवाला
=कहा जाता है । बहुत दूध घी के अभावसे
=गौओंके होने पर भी गौ वाला नहीं कहा जाता है अर्थात् जिसके बहुत दूध हो और गऊयें हों उसको गऊ वाला कहना युक्त है और जिसके गऊयें होवें परन्तु दूध घी न हो तौ उसको गऊ वाला कहना निष्फल है

तथा*सशल्यत्वात्[५।१] सत्सु[७।३]अपि*व्रतेषु[७।३] न*व्रती[१।१];
यः[१।१]तु*निःशल्यः[१।१] सः[१।१]व्रती[१।१]तस्य[६।१]भेद–
प्रतिपत्ति-अर्थम्[४।१] आह[T] ।

=तैसे शल्य सहित पना करि व्रतों के होने परभी व्रती नहीं (कहा जाता है)
=और (=तु) जो शल्य रहित है सो व्रती है, तिस (व्रती) के भेद
=बतानेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

अन्तर् और अन्तरेण —ये दोनों अव्यय हैं। अन् और तुड् प्रत्ययके आगम से अन्तर् शब्द बनाहै मध्य(बीच), प्राप्त, स्वीकार,चित्त इत्यादि अर्थों में आता है, अन्तर शब्दमें 'इण् + ण'लगानेसे अन्तरेण बना है जिसका (क) मध्य,बीच(ख)संबंधमें, बारेमें (ग) बिना इन अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है जब पिछले दो अर्थों में आता है तब इसके साथ द्वितीया विभक्ति आती है जैसे देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनम् गतोऽस्मि(=देवीम् वसुमतीम् अन्तरेण महत् उपालम्भनं गतो(स्मि) = देवी वसुमती के बारे या सम्बन्धमें बड़े दूषण या उलाहने को प्राप्त हुआहूं ।(वैद्यकोष पृष्ठ ३१ में अन्तरेण,१४५ में उपालम्भ,उपालम्भन शब्दों कोदेखो)॥ तानन्तरेण रमणी रमणीय शीले = तान् अन्तरेण रमणी रमणीयशीले = उनके विद्वान प्यारी आनन्दित चित्त में है, क्रियान्तरीतरायमन्तरेण = क्रियान्तर-अंतराय-अन्तरेण = अन्य क्रिया के विघ्नके विद्वानअथवा बिना ॥ इसी अर्थ में अन्तरेण शल्याभावम् = शल्य- अभावम् अन्तरेण = शल्यके अभाव विना, इस वाक्यमें यह शब्द आया है ॥

॥ अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

प्रतिश्रयार्थिभिःअंग्यते इति अगारं वेश्म,तद्वानगारी। न विद्यते अगारमस्येत्यनगारः॥ द्विविधो व्रती अगारी अनगारश्चेति ॥ ननु चात्र विपर्ययोऽपि प्राप्नोति– शून्यागारदेव-कुलाद्यावासस्य मुनेरगारित्वं,

(१)अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥ [व्रती]अगार्यनगारश्च =[व्रती अगार् यू अनगारः च=व्रती अगार्ई अनगारःच]
=व्रती अगारी अनगारःच [द्विविधः भवति]

सूत्रार्थः–व्रती$_{१}^{१}$'अगारी$_{१}^{१}$'अनगारः$_{१}^{१}$'च*
अनगारः$_{१}^{१}$'द्वि-विधः$_{१}^{१}$' भवति ।'

=व्रती गृही वा गृहस्थ (अगारी) अर्थात् श्रावक और (=च)
=अनगारी गृहत्यागी(=अनगारः)अर्थात् मुनि,साधु,ऋषि दो प्रकार होतेहैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उन्नीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

प्रतिश्रय-अर्थिभिः$_{३}^{३}$' अंग्यते ।' इति*अगारम्$_{१}^{१}$'',
वेश्म$_{१}^{१}$'',तद्वान्$_{१}^{१}$'अगारी$_{१}^{१}$';

=बसनेके लिये(=प्रतिश्रय)अर्थियों द्वारा अंगीकार किया जाताहै ऐसा अगार है
=गृह (=वेश्मन्) है उस अगार वा गृहवाला है सो अगारीहै अर्थात् जिस के आश्रय वा आसरे के लिये घर वा अगार हो सो अगारी है।

न*विद्यते अगारम्$_{१}^{१}$''अस्य$_{६}^{६}$'इति*अनागारः$_{१}^{१}$'
द्विविधः$_{१}^{१}$'व्रती$_{१}^{१}$'अगारी$_{१}^{१}$'अनगारः$_{१}^{१}$'च*इति*
ननु च*अत्र*विपर्ययः$_{१}^{१}$'अपि*प्राप्नोति ।'

=नहीं है विद्यमान अगार इसके ऐसा अनगार है
=व्रती दो प्रकार अगारीगृही वा गृहस्थ और अनगार गृहत्यागी अर्थात्मुनिहै
=तर्क इस स्थानमें (=अत्र)अर्थात् जहां पर वचन है कि अगारमेंरहनेवाले
=गृहस्थहैं और घरके त्यागी मुनि हैं वहां उलटा वा व्यतिक्रमभीप्राप्तहोताहै

शून्य-अगार-देव-कुलादि-आवासस्य$_{६}^{६}$' मुनेः$_{६}^{६}$'अगारित्वम्$_{१}^{१}$''
=(जैसे) शून्यघर देव,मंदिर, आदिमें वास करने वाले मुनिके अगारी पना

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा पाठ है॥ इस १९ वां सूत्रमें व्रती शब्दका अनुवर्तन १८ वां सूत्रसे है॥ द्विविधःशब्दका अध्याहार (=वाक्यको पूरा करने के लिये शब्द वा शब्दों का जोड़ना) इस सूत्रमें किया गया है॥ अगारमस्यास्तीत्यगारी= अगारम् अस्य–अस्ति–इति अगारी=गृह इसके (आश्रय) है ऐसा अगारी है (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २८०)॥ नविद्यते अगारमस्येत्य नगारः= न विद्यते अगारम् अस्य इति अनगारः=नहीं (आश्रयके लिये) है गृह इसके विद्यमान ऐसा अनगार है (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २८०) *

अनिवृत्तविषयतृष्णस्य कुतश्चित्कारणाद् गृहं विमुच्य वने वसतोऽनगारत्वञ्च प्राप्नोतीति ॥ नैष दोषः। भावागारस्य विवक्षितत्वात् ॥ चारित्रमोहोदये सत्यगारसम्बन्धं प्रत्यनिवृत्तःपरिणामो भावागारमित्युच्यते ॥ स यस्यासावगारी ॥ वने वसन्नपि च गृहे वसन्नपि तदभावादनगार इति च भवति ॥ ननु चागारिणो व्रतित्वं न प्राप्नोति असकलव्रतत्वात् ॥ नैष दोषः ।

च*अनिवृत्तविषयतृष्णस्य[6] कुतश्चित्*कारणात्[5] =और (=च) जो विषय तृष्णासे (का) निवृत्त नहीं भया किसी कारणसे
गृहम्[2] (१)विमुच्य वने[2] वसतः[6] अनगारत्वम्[1] प्राप्नोति =घरको त्यागवनमें वसने वालेके अनगारपना घरका त्यागना प्राप्त है
इति*भाव-अगारस्य[6] विवक्षितत्वात्[5] न*एषः[1] दोषः[1]; =भाव अगारकी विवक्षासे यह दोष नहीं है
चारित्र-मोह-उदये[7] सति[7] अगारसम्बन्धम्[2] प्रति*अनिवृत्तः[1] =चारित्र मोहके उदय होनेपर घरके सम्बन्ध प्रति नहीं हटा हुआ अथवा लगाभया
परिणामः[1] भाव-अगारम्[1] इति उच्यते (३)सः[1] यस्य[6] =परिणाम है सो भाव अगार ऐसा कहागयाहै जिसके वह (=सः) (भाव अगार)है
असौ[1] अगारी[1]; वने[7] वसन्[1] अपि*च*गृहे[7] वसन्अपि* =वह (=असौ) अगारी है और वनमें वसते हुए भी घरमें वसते हुए भी
तद्-अभावात्[5] अनगारः[1] इति*च*भवति ॥ =उस (भाव अगार) की अविद्यमानतासे वा न होनेसे अनगारी ही (=च)होताहै

भावार्थ यहहै जिसका भाव घरके सम्बन्धमें वा गृहस्थीमें लगा हुआहै फसाहै वह चाहे वनमें रहै चाहे घरमें रहै अगारीहै और जिसका परिणाम गृहस्थीसे विरक्त है हटा हुआहै वह चाहे शून्य (सूने) घरमें रहो चाहे वनमें रहो अनगारी है ॥

ननु*च*अगारिणः[6], असकल-व्रतत्वात्[5] =पुन प्रश्न—गृहस्थके वा गृहीके व्रतकी परिपूर्णता न होने (के हेतु) से
व्रतित्वम्[1] न*प्राप्नोति; न*एषः[1] दोषः[1] =व्रतपना प्राप्त नहीं होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है

(१) विमुच्य-सम्बन्ध सूचक भूत कृदन्त मुच् धातु का है (२) वसतो = वसतः = वसत् + अस्। वसत्-वर्तमान कृदन्त वस् धातु का है और वसतः षष्ठी एक वचन पुल्लिङ्ग वसत् का है ॥ (३) यह वाक्य राजवार्तिक में इस प्रकार हैकि"स यस्यास्त्यसौ वने वसन्नपि अगारीति व्यपदेशमर्हति। तदभावादनगार इति च भवति"। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २८० की दूसरी वार्तिककी वृत्तिका अंत वाक्य देखो)

सः यस्य अस्ति असौ वने वसत् अपि =जिसके (=यस्य) वह (=सः)अर्थात् भाव अगारहै। वह (=असौ पुरुष) वनमें वास करते हुएभी
अगारी इति व्यपदेशम् अर्हति। =अगारी है ऐसा विशेष रूप से उपदेश करना उचित है (ऐसे ही)
तद्-अभावात् अनगारः इति च भवति ॥ =और उस (अगार भावके अभाव से) अनगार होता है ॥

नैगमादिनयापेक्षया अगारिणोऽपि व्रतित्वमुपपद्यते । नगरावासवत् ॥ यथा गृहे अपवरके वा वसन्नपि नगरावास इत्युच्यते । तथा असकलव्रतोऽपि नैगमसंग्रहव्यवहारनयापेक्षया व्रतीति व्यपदिश्यते ॥ अत्राह किं हिंसादीनामन्यतमस्माद्यः प्रतिनिवृत्तः स खल्वगारी व्रती?। नैवम् ॥ किं तर्हि? । पञ्चतय्या अपि विरतेर्वैकल्येन विवक्षित इत्युच्यते—अणुव्रतोऽगारी॥२०॥

नैगम-आदि-नय-अपेक्षाया अगारिणः अपि* =नैगमादिक (सात) नयोंकी अपेक्षासे गृहस्थके भी
व्रतित्वम् नगर-आवास-वत्*उपपद्यते T । =व्रतपना नगरके रहने (=आवास) के सदृश प्राप्त होता है (=उपपद्यते) अर्थात् गृह में बसे और नगरमें वासकरना कहलावे
यथा*गृहे*अपवरके*वा*(१)वसत् अपि* =जैसे घरमें अथवा वासगृहमें (जो नगरका एक भाग है) रहते हुए भी
नगर-आवासः इति*उच्यतेT। तथा*असकल-व्रतः अपि* =नगरमें रहना ऐसा कहा जाता है । तैसे अपूर्ण व्रत धारक भी
नैगम-संग्रह-व्यवहारनय-अपेक्षाया व्रती इति*व्यपदिश्यते I=नैगम-संग्रह-व्यवहार नयोंकी अपेक्षासे व्रती ऐसा कहा जाता है
अत्र*आहTकिम्*हिंसादीनाम्*अन्यतमस्मात् =यहां पूछता है क्या हिंसादिकके बहुतोंमेंसे एक पापसे (=अन्यतमस्मात्)
यः*प्रतिनिवृत्तः*सः*खलु*अगारी*व्रती* ? =जो निवृत्त हुआ है सो गृहस्थ निश्चयरूपसे व्रती है (कि नहीं) ?।
न*एवम्* ॥ =(उत्तर) नहीं है अर्थात् हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म-परिग्रह इन पापोंसे कोई मनुष्य एक पाप न करे तो वह गृहस्थ व्रती वा ग्रहव्रती नहीं है ।
किम्* तर्हि*पञ्चतय्या*अपि*विरतेः*वैकल्येन* =तो क्या है (उत्तर) पांचों (पापों) से ही एक देशपनेकरि(=वैकल्येन) निवृत्ति
विवक्षितः*इति*उच्यते I =अपेक्षित है ऐसे (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(२) अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥=अणुव्रतः सः अगारी भवति ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—अणुव्रतः =अणु व्रतवाला, अणुमात्र व्रतवाला अथवा अल्प व्रतका धारी अर्थात् वह व्रती जिसके एक देशवा थोड़े रूपमें यथाशक्ति पांचों पापोंका त्याग हो
सः अगारी भवति T =सो अगारी-अणुव्रती-गृहस्थ-गृही-अथवा श्रावक है

(१) वसत् वर्तमान कृदन्त वस् धातुका है (२) इस सूत्र का दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों संप्रदायों में एक सा पाठ और एक सा अर्थ है ।

अणुशब्दोऽल्पवचनः । अणूनि व्रतान्यस्य अणुव्रतोऽगारीत्युच्यते ॥ कथमस्य व्रतानामणुत्वं? सर्वसावद्यनिवृत्त्यसम्भवात् ॥ कुतस्तर्ह्यसौ निवृत्तः ? त्रसप्राणिव्यपरोपणान्निवृत्तः अगारीत्याद्यमणुव्रतम् ॥ स्नेहमोहादिवशाद् गृहविनाशे ग्रामविनाशे वा कारणमित्यभिमतादसत्यवचनान्निवृत्तो गृहीति द्वितीयमणुव्रतम् ॥ अन्यपीडाकरपार्थिवभयादिवशादवश्यं परित्यक्तमपि यददत्तं ततः प्रतिनिवृत्तादरः श्रावक इति तृतीयमणुव्रतम् ॥ उपात्तायाः

अणुशब्दः[1]अल्पवचनः[1];अणूनि[3]व्रतानि[3]अस्य[1] अणुव्रतः[1]अगारी[1]इति*उच्यते[1] ॥
कथम्*अस्य[1]व्रतानाम्[1]अणुत्वम्[1] ?
सर्व-सावद्य-निवृत्ति-असम्भवात्[1] ॥

=(इस सूत्रमें) अणुशब्द अल्पवाची है । अल्पव्रत हैं जिसके
=सो अणुव्रती ऐसा अगारी कहा जाता है ॥
=(प्रश्न) इस (अगारी वा गृहस्थ) के व्रतोंकी अल्पता वा सूक्ष्मता कैसे है
=(उत्तर) क्योंकि(अणुव्रतीके)सब पापोंसे निवृत्त होनेकी(छूटनेकी)असम्भवताहै अर्थात् सम्भव नहीं कि गृहस्थ सर्व प्रकारके पापोंसे पूर्णरूपसे बचा रहे ।

कुतः*तर्हि*असौ[1]निवृत्तः[1] ?
त्रस-प्राणिन्-व्यपरोपणात्[3]निवृत्तः[1]अगारी[1] इति* आद्यम्[1]अणुव्रतम्[1]; स्नेह-मोहादि-वशात्[1] गृहविनाशे[1]ग्रामविनाशे[1]वा कारणम्[1]इति* अभिमतात्[1]असत्यवचनात्[1]निवृत्तः[1]गृही[1] इति*द्वितीयम्[1]अणुव्रतम्[1] ॥

=(प्रश्न) तो (तर्हि) वह(=असौ=अगारी) किन (पापों) से निवृत्तहै वा हटा हुआ है
=त्रस जीवोंके मारनेसे अगारी निवृत्त है इस प्रकार
=प्रथम (=आद्य=अहिंसा नामा) अणुव्रत (उसके) है । प्रीति और मोहकेवशसे
=घरके विनाशमें अथवा ग्रामके विनाशमें है कारण जो ऐसे
=अंगेजे वा अंगीकृत झूठसे गृहस्थ वा गृही निवृत्त है
=ऐसा दूसरा (सत्यनामा) अणुव्रत(उस गृहस्थके) है अर्थात् जिस असत्य वचनसे घरका विनाश होय तथा ग्रामका विनाश होय ऐसा आप जानता हो तिस असत्य वचनसे निवृत्त होय स्नेह मोहके वशसे ऐसा वचन नहीं कहै ऐसे गृहस्थके दूसरा अणु व्रत होता है

अन्यपीडाकर-पार्थिव-भयादि-वशात्[1]अवश्यम्*परित्यक्तं[1]अपि*यत्[1]अदत्तम्[1]ततः*प्रतिनिवृत्त-आदरः[1]श्रावकः[1] इति*तृतीयम्[1] अणुव्रतम्[1] ॥ उपात्तायाः[1]

=दूसरेको पीड़ा करने वाला तथा राजाके भयादिकके निमित्तसे अवश्य त्यागनेयोग्य =भी जो बिना दी हुई(वस्तु)तिससे श्रावक हटाहुआ(उसका)प्रयत्न नहीं करताहै =ऐसा तीसरा(अस्तेय नामा)अणुव्रत (उस अगारीके)है ॥ व्याही हुई(=उपात्तायाः)

अनुपात्तायाश्च पराङ्गनायाः सङ्गान्निवृत्तरतिर्गृहीति चतुर्थमणुव्रतम् ॥ धनधान्यक्षेत्रादीनामिच्छावशात् कृतपरिच्छेदो गृहीति पञ्चममणुव्रतम् ॥ आह अपरित्यक्तागारस्य किमेतावानेव विशेषः आहोस्विदस्ति कश्चिदन्योऽपीत्यत आह–

॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

अनुपात्तायाः[६/१] च*पराङ्गनायाः[६/१] सङ्गात्[५] निवृत्तरतिः[१/१] गृहीति=और [=च] विनाव्याहीहुई दूसरोंकी स्त्रीके संगमसे रति रहित गृहस्थ है
इति*चतुर्थम्[१/१] अणुव्रतम्[१/१]; धन-धान्य-क्षेत्रादीनाम् [६/३] =ऐसे चौथा (ब्रह्मनामा) अणुव्रत (उसगृहीके) है-धन-धान्य क्षेत्रादिकका
इच्छावशात्[५] कृतपरिच्छेदः[१/१] गृही [१/१] इति* =इच्छा के वशसे गृहस्थ अथवा गृही परिमाणकरता(=कृतपरिच्छेद)है ऐसा
पञ्चमम् [१/१] अणुव्रतम्[१/१]; आह T =[परिग्रह त्यागनामा) पांचवां अणुव्रत है। पूछता है
अपरित्यक्त-अगारस्य[६/१] किम्*एतावत्[१/१] एव*विशेषः[१/१] =कि गृहस्थ वा अगारी[=अपरित्यक्त अगारस्य]का क्या इतना ही विशेष है
आहोस्वित्*अस्ति*कश्चित्*अन्यः[१/१] अपि*इति*अतः*आह T =अथवा(=आहोस्वित) कुछऔर भी है इसलिये (अगले सूत्रमें कहते है) कि

[१] दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसँविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥

=दिग्विरतिव्रतसम्पन्न-देशविरतिव्रतसंपन्न-अनर्थदण्डविरतिव्रतसम्पन्न-सामायिकव्रतसम्पन्न-प्रोषधोपवासव्रतसम्पन्न-उपभोगपरिमाणपरिभोग-परिमाणव्रत सम्पन्न-अतिथिसंविभागव्रतसंपन्नः च [अगारी व्रती भवति]

दिग्विरतिव्रतसम्पन्न-	=दिशाओंमें गमनागमनकी सीमाका [यावज्जीव] नियमकरियुक्त
देशविरतिव्रतसम्पन्न-	=किसी देशके बाहर गमनागमन [कालकी मर्यादा करि] न करनेवाला
अनर्थदंडविरतिव्रतसम्पन्न-	=अनर्थपापबंधके कारणोंसे त्यागी (ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं)
सामायिकव्रतसम्पन्न-	=स्वरूप विषै तथा शुभक्रियामें एकताकरि लीनहोने वाला वा रागद्वेषत्याग साम्यभावको प्राप्त होकर शुद्ध आत्म स्वरूपमें लीन होने वाला

(१) दिगम्बर सम्प्रदायमें इस सूत्रका पाठ एकसा है॥ श्वेताम्बर आम्नायमें 'पञ्चिमाण' शब्द नहीं है और 'प्रोषधोपवास'के स्थानमें 'पौषधोपवास' है

उपभोगपरिमाणपरिभोगपरिमाण व्रतसम्पन्न	=एक बार सेवने योग्य वस्तु (जैसे ताम्बूल-भोजन आदि) का मर्यादं और बार बार सेवने योग्य वस्तु (जैसे–आभरण–वस्त्र–गृह–वाहन–शय्या आदिक) का मर्यादं और
च*अतिथिसंविभागव्रतसपन्नः ¹/₄	=महा व्रतियोंके लिये चार प्रकार (भिक्षा-उपकरण-भेषज-वसतिका)का दान देने वाला
अगारी ²/₅ व्रती ³/₅ भवति ।	=भी (=च) अगारी व्रती-अणुव्रती होता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इक्कीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद

इन दोनों प्रोषधोपवास और पौषधोपवास शब्दोंका अर्थ एक ही है शेष सूत्र पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ परिमाण शब्द न होने पर भी अर्थ दोनों सम्प्रदायों में एकसा है ॥ 'समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' में उपभोग परिभोग व्रत का पृष्ठ १६३ में संस्कृत और भाषा इस प्रकार है कि "उपभोगपरिभोगव्रतं नामाशनपानखाद्यस्वाद्यगन्धमाल्यादीनामाच्छादनप्रावरणालंकारशयनासनगृहयानवाहनादीनां च बहुसावद्यानां वर्जनम् । अल्पसावद्यानामपि परिमाणकरणमिति ॥ "

उपभोगपरिभोगव्रतम् नाम अशन-पान-खाद्य	= "उपभोगपरिभोग व्रतनामा वह है कि जिसमें भोजन, पानादि खाद्य पदार्थों का
स्वाद्य गन्धमाल्य-आदीनाम्	=स्वाद्य अर्थात् प्रिय आनन्ददायक, गन्धमाला आदि पदार्थों का,
आच्छादन–प्रावरण-अलंकार-शयन-आसन-गृह–	=आच्छादन-आवरण (वस्त्रादि) अलङ्कार, शय्या, आसन, गृह,
यान-वाहन-आदीनाम् च	=यान (सवारी घोड़े हाथी बग्गी आदि) वाहन बैल आदि पदार्थों का भी (=च)
बहुसावद्यानाम् वर्जनम् ।	=जो कि बहुत सावद्य हैं अर्थात् निंदा दोषादि सहित हैं उन सबका त्याग करना ।
	और इन भोजन, पान, गन्धमाल्य, वस्त्र, अलङ्कार, शय्या–गृह–यानादिकमेंसे जो
	=अल्पदोषादि युक्त हैं उनका भी परिमाण करना कि इतने से अधिक नहीं रक्खेंगे अर्थात् अल्प दोषवालोंमें भी आवश्यक पदार्थों की गणना करके काममें लाना ॥ यही अर्थ हमारी-सम्प्रदायमें भी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, पं० जयचंद जीकी भाषावचनिका और अर्थ प्रकाशिका इत्यादिक में दिया है ॥ विशेष जाननेके इच्छुक उक्त ग्रन्थोंकोदेख सकेहैं। इस इक्कीसवां सूत्रके (पृष्ठ ५६,'५७ देखो) पदच्छेदको अनुवादकने सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक तथा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके अनुसार किया है कि

(क) विरति शब्द प्रत्येक पर लगाना चाहिये तब दिग्विरति-देशविरति-अनर्थदंडविरति हुए फिर कहा गयाहै कि व्रतशब्द प्रत्येक परलगाओऐसे दिग्-विरतिव्रत-देशविरतिव्रत-अनर्थदण्डविरतिव्रत हुये पश्चात् में लिखा है कि सामायिक व्रत, प्रोषधोपवासव्रत-उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत-अतिथिसंविभागव्रत ॥ "एतैः व्रतैः सम्पन्नो," इन पूर्वोक्त सातों व्रत करि सहित वा युक्त ऐसा कहने से स्पष्ट है कि सम्पन्न शब्द सर्व पर लगाओ देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३५६ पंक्ति २,३,४,५,६, "तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोग परिमाणम्" दोनोंका परिमाण अर्थात् उपभोग परिमाण तथा परिभोग परिमाण सो उपभोगपरिभोग परिमाण है ॥ देखो सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६१ पंक्ति ६–७ ।

(ख) विरति शब्द प्रत्येक पर लगाओ तो दिग्विरति-देशविरति अनर्थदण्डविरति हुये (=विरति शब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते-दिग्विरतिः

विरतिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। दिग्विरतिः। देशविरतिः। अनर्थदण्डविरतिरिति। एतानि त्रीणि गुणव्रतानि व्रतशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बंधात्। तथा सामायिकव्रतम्। प्रोषधोपवासव्रतम्। उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रतम्। अतिथिसंविभागव्रतमिति॥ एतैर्व्रतैः सम्पन्नो गृही विरताविरत इत्युच्यते।

विरतिशब्दः[1]प्रत्येकम[2]॥परिसमाप्यते T।

दिग्विरतिः[1]॥;देशविरतिः[2]॥; अनर्थदण्डविरतिः[3]॥इति* ॥
एतानि[3]॥त्रीणि[3]॥गुणव्रतानि[3]॥व्रतशब्दस्य[1]प्रत्येकम्[2]॥
अभिसम्बन्धात्[4];

=विरतिशब्द(दिग् देश–अनर्थदण्ड)प्रत्येकको लगाया जाता है प्रत्येकको परिपूर्ण किया जाता है अथवा पृथक् पृथक् तीनों शब्दों पर लगाया जाता है
=(अर्थात्-तब)दिग्विरति देशविरति,अनर्थदण्डविरति ऐसे हुए
=ये तीन गुणव्रत–व्रत शब्दका प्रत्येक (दिग्-देश-अनर्थदण्ड) को
=सम्बन्ध करनेसे होते हैंअर्थात् दिग्विरतिव्रत-देशविरतिव्रत-अनर्थदण्ड-विरतिव्रत हुए (इनको तीन गुणव्रत कहते हैं)॥

तथा*सामायिकव्रतम्[1]॥;प्रोषधोपवासव्रतम्[1]॥;
उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतम्[1]॥;अतिथिसंविभागव्रतम्[1]॥
इति* ॥ एतैः[3]॥व्रतैः[3]॥सम्पन्नः[1]

=तथा सामायिकव्रत,प्रोषधोपवासव्रत,
=उपभोगपरिमाण परिभोगपरिमाणव्रत अतिथिसंविभागव्रत,
=ऐसे (ये चार शिक्षा व्रत)हैं॥इन(सात शील वा सात)व्रतों करि युक्त अर्थात् तीनगुण व्रत,चार शिक्षा व्रत(सबको सात शीलभी कहतेहैं इन करि) सहित

गृही[1]॥विरत-अविरतः[1]॥इति*उच्यते।

=गृहस्थ (=गृही) विरताविरत अथवा संयमासंयम कहा जाता है।

देशविरतिरनर्थदण्डविरतिरिति" तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २८१ पंक्ति २५ देखो। 'व्रतसंपन्नशब्दः' प्रत्येकमभिसंबध्यते ॥ दिग्विरति युतः संपन्नः देशविरतिव्रतसंपन्न इत्यादि" तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २८२ पंक्ति १३)

(ग) श्लोकवार्तिकमें दिशा देश और अनर्थ दण्ड का अर्थ कहने के पश्चात् लिखा है 'विरति शब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते" अर्थात् विरति शब्द प्रत्येक दिग्-देश -अनर्थ दण्ड शब्दों पर लगाया जाता है तब दिग्विरति-देशविरति-अनर्थ दण्ड विरति हुये॥ पश्चात् सामायिक-प्रोषधोपवास-उपभोगपरिभोग परिमाण-अतिथि संविभाग शब्दोंकी व्युतपत्ति और अर्थ कहकर लिखते हैं कि "व्रतशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते संपन्न शब्दश्च तेन दिग्विरतिव्रतसंपन्न इत्यादि योऽयम्। अर्थात् व्रतशब्द प्रत्येकपर जोड़ो और संपन्न शब्दभी (प्रत्येक पर) (जोड़ो) तिस (जोड़ने)करि दिग्विरतिव्रतसंपन्न-देशविरतिव्रतसंपन्न-अनर्थदण्डव्रतसंपन्न-सामायिकव्रतसंपन्न-प्रोषधोपवासव्रतसंपन्न-उपभोग (परिमाण) परिभोगपरिमाण व्रत संपन्न-अतिथि संविभाग व्रतसंपन्न (=इत्यादि) हुये॥ "परिमाणशब्दः प्रत्येकमुभाभ्यां सम्बन्धनीयः" अर्थात् परिमाणशब्द प्रत्येक (उपभोग-परिभोग)दोनों को जोड़ना चाहिये देखो तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ४६६,"तयोःपरिमाणमुपभोगपरिभोग परिमाणम्। सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ३६१॥

तद्यथा–दिक्प्राच्यादिः तत्र प्रसिद्धैरभिज्ञानैरवधिं कृत्वा नियमनं दिग्विरतिव्रतम् ॥ ततो बहिस्त्रसस्थावरव्यपरोपणनिवृत्तेर्महाव्रतत्वमवसेयम्। तत्र लाभे सत्यपि परिणामस्य निवृत्तेर्लोभनिरासश्च कृतो भवति ॥ ग्रामादीनामवधृतपरिमाणप्रदेशो देशः ततोबहिर्निवृत्तिर्देशविरतिव्रतम्। पूर्ववद्बहिर्महाव्रतत्वं व्यवस्थाप्यम् ॥

तद्यथा*-दिक्-प्राच्यादिः $\frac{1}{4}$ तत्र*प्रसिद्धैः$\frac{3}{5}$ ॥ अभिज्ञानैः$\frac{3}{5}$ ॥
अवधिः$\frac{2}{4}$ कृत्वा÷नियमनम्$\frac{1}{4}$ ॥ दिग्विरतिव्रतम्$\frac{1}{4}$ ॥ ॥

=जैसे पूर्वआदि दिशाहैं तिनमें प्रसिद्धचिह्न(=अभिज्ञान)(पर्वत-नदी-ग्रामादिद्वारा)
=मर्यादा करि नियम करना वा प्रमाण करना सो दिग्विरति व्रत है

भावार्थ लोभका आरम्भके त्यागके अर्थ पूर्वादिक दिशाओंका योजन-नदी-ग्राम-नगर-पर्वतादिक प्रसिद्ध चिह्नों करि प्रमाण करना जो इतना क्षेत्रका प्रमाण है, इतना क्षेत्र बाहिर गमनादि नहीं करूंगा और न किसीको गमन कराऊंगा। गमन करने वाले को भला नहीं जानूंगा, सेवक मित्र आदिकको नहीं भेजूंगा, कोई वस्तु किञ्चित् भी नहीं मँगाऊंगा, और कोई किञ्चित् वस्तु भी नहीं भेजूंगा, ऐसी यावज्जीव (=जीवन भरि=जबतकजीवै) मर्यादाकरि अधिक क्षेत्र में वनिज व्यवहारादिक का त्याग करे तिसके दिग्विरति नाम व्रत होता है।

ततः*बहिस्*त्रस-स्थावर-व्यपरोपण-निवृत्तेः$\frac{1}{4}$
महाव्रतत्वम्$\frac{2}{4}$ अवसेयम्$\frac{1}{4}$; तत्र *
लाभे$\frac{2}{4}$ सति$\frac{2}{4}$ अपि*परिणामस्य$\frac{6}{6}$ निवृत्तेः$\frac{1}{4}$
लोभनिरासः$\frac{1}{4}$ च*कृतः$\frac{1}{4}$ भवति ॥(१)ग्रामादीनाम्$\frac{1}{4}$
अवधृत-परिमाण-प्रदेशः$\frac{2}{4}$ देशः$\frac{1}{4}$ ॥

=उस(मर्यादा वा सीमा)से बाहिर चरअचर(=त्रस-स्थावर)जीवोंके घातकेअभावसे
=महाव्रतपना जानना चाहिये(=अवसेयम्)क्योंकि तहां(अर्थात्प्रमाणसेबाहर)
=लाभ होनेपरभी परिणामकी विरक्तताहै अर्थात् परिणाम नहीं चलताहै।
=(इससे)लोभ(कषाय)का परित्याग भी पूरा (=कृतः) होता है॥ ग्रामादिकके
=निश्चित परिमाणोंके प्रदेश हैं सो देशहैं अर्थात् ग्राम-नगर-घर-अंतःपुर अंतर्वेशमन्,इत्यादिके निश्चितपरिमाणोंमें वा परिसरोंका प्रदेशहै वहदेश है

तत*बहिस्*निवृत्तिः$\frac{1}{4}$॥ देशविरतिव्रतम्$\frac{1}{4}$॥;
पूर्ववत्*बहिस्*
महाव्रतत्वम्$\frac{1}{4}$ व्यवस्थाप्यम्$\frac{1}{4}$॥

=(उस देश)से बाहिर (कालकीमर्यादासे गमनागमनका)त्याग देशविरति व्रत है
=पहिले के सदृश(परिमित दिशासे)बाहिर अर्थात् दिग्व्रतके समान ही
=(देश व्रत मेंभी) महाव्रतपना व्यवस्थित वा उपचरितहै भावार्थ जैसे दिग्व्रतमें

(१)ग्रामादीनां अवधृत परिमाणः प्रदेशो देशः (त०राज०वार्तिक३) = ग्रामनगरगृहान्तरकादीनामवधृतपरिमाणानांप्रदेशोदेश इत्युच्यते(श्रा०३वृत्तिः)

असत्युपकारे पापादानहेतुरनर्थदण्डः। ततो विरतिरनर्थदण्डविरतिः॥ अनर्थदण्डः पंचविधः। अपध्यानम्। पापोपदेशः। प्रमादाचरितम्। हिंसाप्रदानम्। अशुभश्रुतिरिति॥ तत्र परेषां जयपराजयवधबन्धनाङ्गच्छेदपरस्वहरणादि कथं स्यादिति मनसा चिन्तनमपध्यानम्। तिर्यक्क्लेशवाणिज्य प्राणिवधकारम्भकादिषु पापसंयुक्तं वचनं पापोपदेशः॥

परमित दिशासे बाहिर न जानेमें हिंसादिकके अभावसे महाव्रत पनेका उपचार है वैसेही यहां भी जितनी गमनागमनकी मर्यादा देशकी कीगई उससे बाहिर न जाने आनेसे हिंसादिकके अभावसे महाव्रत पनेका उपचार है॥

असति[७१]उपकारे[७२]पाप-आदान-हेतुः[१२]अनर्थदण्डः[१२];ततः* विरतिः[१२]अनर्थदण्डविरतिः[१२]; अनर्थदंडः[१२]पञ्चविधः[१२]— अपध्यानं[१२]॥;पापोपदेशः[१२];प्रमादाचरितं[१२]॥हिंसाप्रदानं[१२]॥,अशुभश्रुतिः[१२]॥इति*॥तत्र-परेषाम्[६३] जय—पराजय-वध-बन्धन-अंगच्छेद-परस्व-हरण-आदि[१२]॥कथम्*स्यात् इति*मनसा[१२]॥चिन्तनम्[१२]॥अपध्यानम्[१२]॥॥ तिर्यग्-क्लेशवाणिज्य (तिर्यग्वाणिज्य-क्लेशवाणिज्य)प्राणि-वधक-आरम्भकादिषु[७३] पापसंयुक्तम्[१२]॥वचनम्[१२]॥पापोपदेशः[१२]

=उपकार न होते संते पापके ग्रहणका कारण (है सो) अनर्थदण्ड है। तिससे =विरक्तता (सो) अनर्थ दंड विरति (व्रत) है। अनर्थदंड पांच प्रकार है =अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादाचरित, हिंसाप्रदान, =अशुभ श्रुति इस प्रकार [पांच भेद] है। तहां और [जीवों] की जीत-हार [=पराजय] =मारना-बांधना-अंगछेदन अन्यका धन [=स्व] लैना आदिक कैसे होय =इस प्रकार मनद्वारा स्मरण अथवा ध्यान सो अपध्यान [नामा अनर्थदंड] है। =तिर्यंचोंके वनिजमें, क्लेश वाणिज्यके विषयमें, प्राणियोंके मारनेवालोंमें =तथा आरम्भादिकमें पाप सहित वाक्य कहना सो पापोपदेश [नामअनर्थदंड] है

भावार्थ जैसे इस देश में दास [=दासाः[१३]] दासी [दासी शब्दका=दास्यः[१३]] सुलभ है यहांसे लेकर उस देशमें वेचने पर अत्यन्त धनका लाभ होता है ऐसे क्लेश वाणिज्य है॥ और गाय भैंस आदिक यहां से लेकर और देशमें व्यवहार करने पर बहुतसा लाभ होगा इसप्रकार तिर्यग् वाणिज्य है॥ व्याध वा बहोलिया [=वागुरिक] आखेटकी [सौकारिक] पक्षियों को मारने वाले [शाकुनिक] आदिक से कहना कि हम देशमें हिरन-शूकर-प्रत्येक प्रकार के पक्षी [=शकुन्त] आदिक [बहुत] हैं वध-कोपदेश है॥ खेती-सेना-आदिक आरम्भियोंसे कहना कि पृथिवी (=क्षिति) जल अग्नि-पवन-वनस्पति कायका

प्रयोजनमन्तरेणवृक्षादिच्छेदनभूमिकुट्टनसलिलसेचनाद्यवद्यकार्यं प्रमादाचरितम्॥ विषकण्टक-शस्त्राग्निरज्जुकशादण्डादिहिंसोपकरणप्रदानं हिंसाप्रदानम्। हिंसारागादिप्रवर्धनदुष्टकथा-श्रवणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुतिः। समेकीभावे वर्तते। तद्यथा सङ्गतं घृतं सङ्गतं तैलमित्युच्यते एकीभूतमिति गम्यते। एकत्वेन अयनं गमनं समयः; समय एव सामायिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा

प्रयोजनम् $^{३।१।१}_{१}$ अन्तरेण*वृक्षादिच्छेदन-भूमिकुट्टन-सलिल-सेचन-आदि-अवद्यकार्यम् $^{१।१।१}_{१}$ प्रमाद-आचरितम् $^{१।१।१}_{१}$; विष-कण्टक-शस्त्र-अग्नि-रज्जु-कशा-दण्डादि-हिंसा-उपकरण-प्रदानम् $^{१।१।१}_{१}$ हिंसा-प्रदानम् $^{१।१।१}_{१}$ ॥ हिंसा-रागादि-प्रवर्धन-दुष्टकथाश्रवण-शिक्षण-व्यापृतिः $^{१।१}_{१}$ अशुभश्रुतिः $^{१।१}_{१}$; सम्-एकीभावे $^{३}_{१}$ वर्तते T। तद्यथा* संगतम् $^{१।१।१}_{१}$ घृतम् $^{१।१।१}_{१}$ संगतम् $^{१।१।१}_{१}$ तैलम् $^{१।१।१}_{१}$ इति*उच्यते T एकीभूतम् $^{१।१।१}_{१}$ इति*गम्यते T; एकत्वेन $^{३।१।१}_{१}$ अयनम् $^{१।१।१}_{१}$ गमनम् $^{१।१।१}_{१}$ समयः $^{१।१}_{१}$; समयः $^{१।१}_{१}$ एव* सामायिकं $^{१।१।१}_{१}$; समयः $^{१।१}_{१}$ प्रयोजनं $^{१।१।१}_{१}$ अस्य $^{६}_{१}$ इति*वा*

=प्रयोजन विना (=अन्तरेण) वा निष्प्रयोजन वृक्षादिकका छेदना
=पृथिवीका कूटना, जलका बखेरना आदिक निंद्य कार्य
=सो प्रमादाचरित अथवा प्रमाद चर्यानामा अनर्थ दण्ड है। माहुर वा हलाहल (=विष)
=कांटा-शस्त्र-अग्नि-रस्सी-कोड़ा (=कशा) दंडादिक हिंसाकी
=सामिग्री वा साधन देना सो हिंसा प्रदान (नामा अनर्थ दंड) है
=हिंसा तथा रागादिक (क्रोध-काम-द्वेष-अभिमान इत्यादिक) के बढ़ावने वाली
=खोटी कथाका सुनना-सीखना-प्रवर्तन करना सो दुःश्रुति (नामा अनर्थ दंड है)
=सम् (उपसर्ग) एकताके भावमें वा एकताके अर्थमें प्रवर्तता है॥जैसे (किसी वस्तुमें)
=घी की एकता हो अर्थात् उसमें घी मिलकर एक मेक होजाय सो संगत घृत है।
=(किसी वस्तुमें)तेलकी एकता हो अर्थात् उसमें तेल मिलकर एकमेक होजाय सो संगततैलहै
=ऐसा कहा जाता है। एक हुआ ऐसे जाना जाता है। एकपन करि
=लीन (=अयनम्) गमन(=अयन)सो समय है। समयही हो अर्थात् एकत्व करिलीनहीहो
=सो सामायिक है अथवा समय है प्रयोजन इसका (सो सामायिक है) ऐसे

विगृह्य समायिकम्॥ इयति देशे एतावति काले इत्यवधारिते सामायिके स्थितस्य महाव्रतत्वं पूर्ववद्वेदितव्यम्॥अणुस्थूलकृतहिंसादिनिवृत्तेरसंयमप्रसङ्ग इतिचेन्न। तद्घातिकर्मोदयसद्भावात्॥ महाव्रतत्वाभाव इति चेदुपचाराद्राजकुले सर्वगतचैत्राभिधानवत्॥ प्रोषधशब्दःपर्वपर्यायवाची॥

विगृह्य÷समायिकम्[१][१]॥ { ह् में यङ्(=य) लगानेसे ग्रह=गृह्य } =विग्रहकरि(=अर्थप्रकाशकरने वाले वाक्य करि) समायिक (शब्द) बना है
भावार्थ स्वरूपविषैं तथा शुभ क्रियाविषैंएकताकरिलीन होना सो समायिक है

इयति[२] देशे[२] एतावति[२] काले[२] इति*अवधारिते[२]''समायिके[२]''' =इतनेक्षेत्रमें इतने काल में ऐसीमर्यादाकरि (=अवधारिते)समायिकमें अर्थात्
साम्यभावको प्राप्त होकर आत्म स्वरूप विषैं वा शुद्धस्वरूपविषैं

स्थितस्य[३] महाव्रतत्वम्[१]''' =प्रतिज्ञा वालेके (देश-काल-सम्बन्धी) महाव्रतपना

पूर्ववत्*वेदितव्यम्[३]'' =पहले (दिग्विरतिव्रतऔर देशविरतिव्रत) के समान जानना चाहिये

अणु-स्थूल-कृत-हिंसादि-निवृतेः[५]'' =सूक्ष्म-स्थूल-प्रकार करि(=कृत)हिंसादिक के अभाव (के कारण)से
(इस सामायिक वाले संयतासंयतके) (सकल) संयमका अवसर आता है

संयम-प्रसङ्गः[१] =ऐसा संशयहै (=इति चेत्) (उत्तर)(सकल संयमका प्रसंग) नहीं आता है,

इति*चेत्*न*। =क्योंकि उस(सकल संयम)के घातने वाले(=घातिन्)(प्रत्याख्यानावरण कर्मका)

तद्-घातिन्-कर्मन्-उदय-सद्भावात्[५]॥ =(उस संयतासंय वा अणुव्रती के) उदयका सद्भाव वा अस्तित्व है

महाव्रतत्व-अभावः[१]इति*चेत्* =(उस अणुव्रतीके) महाव्रत के होने की निवृत्ति (आती है) ऐसा संदेह है

उपचारात्[५] राजकुले[७]'' =(पूर्वोक्त सामायिक करने वाले के) उपचार करि वा व्यवहार करि राजघरमें,

सर्वगत-चैत्र-अभिधानवत्*॥ =सब स्थानोंमेंजानेवाले चैत्र नामा राज पुरुष के कथन के समान महाव्रत है

अर्थात् किसी पुरुषका राज घरमें प्रवेशहो परन्तु कोई गुप्त स्थान ऐसे है जहां वह नहीं जा सक्ता है तौ भी सामान्यतासे यह कहते हैं कि उस राज पुरुषका सब स्थानोंमें गमन है तैसे यहां पर पूर्वोक्त सामायिक करने वाले के सकल संयम नहीं है तौ भी उपचार वा बोल चालके व्यवहारमें कहे हैं कि उसके महाव्रत सामायिक समयमेंहै॥

प्रोषधशब्दः[१] पर्व-पर्याय-वाची[१]; =(सूत्रमें)प्रोषधशब्द पर्वशब्दका समानार्थकहै अर्थात् प्रोषध शब्द, पर्वशब्द एक

शब्दादिग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः। चतुर्विधाऽऽहारपरित्याग इत्यर्थः॥ प्रोषधेउपवासः प्रोषधोपवासः। स्वशरीरसंस्कारकारणस्नानगन्धमाल्याभरणादिविरहितः शुभावकाशे साधुनिवासे चैत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथाचिन्तनावहितान्तःकरणः (१)सन्नुपवसेत् निरारम्भश्रावकः॥ उपभोगोऽशनपानगन्धमाल्यादिः।

शब्दादिग्रहणम्[३] प्रति*निवृत्त-औत्सुक्यानि[३] पञ्च[३] अपि*इन्द्रियाणि[३] उपेत्य÷तस्मिन्[२] वसन्ति[I] इति*उपवासः[१];

चतुर्विध-आहार-परित्यागः[१] इति*अर्थः[१] ॥

प्रोषधे[२] उपवासः[१] प्रोषध-उपवासः[१];

स्व-शरीर-संस्कार-कारण-स्नान गन्ध-माल्य-आभरण-आदि-विरहितः[१]

शुभ-अवकाशे[२] साधुनिवासे[२] चैत्यालये[२] स्व-प्रोषधोपवासगृहे[२] वा धर्मकथा-चिन्तन-अवहित-अन्तःकरण[२] सन्[१]

उपवसेत्[T] निरारम्भ-श्रावकः[१]; अशन-पान-गन्ध-माल्य-आदिः[१] उपभोगः[१];

ही आशयको कहते हैं भावार्थ अष्टमी, चतुर्दशी, पर्वोंको प्रोषध कहते हैं।

=शब्दादिक (पांच इन्द्रियोंके विषयों) के ग्रहणसे निवृत्त

=पांचों ही (=अपि) इन्द्रियोंकी इच्छाओंको (विषयोंसे) (=औत्सुक्यानि)

=अपने आधीन करि (=उपेत्य) जसमें वसती हैं ऐसा उपवास है॥ संक्षेपतः पांचों ही इन्द्रियें अपने विषयोंसे छूटकर जिसमें आय बसतीहैं सो उपवास है।

=(अशन-पान-भक्ष्य-लेह्य) चार प्रकारके आहार का त्याग ऐसा अभिप्राय है।

=(अष्टमी वा चतुर्दशी आदिक) पर्वमें निराहार (विधि से)रहना सो प्रोषधोपवासहै।

=(तहां) अपने शरीरके संस्कारके हेतु स्नान-सुगन्ध-पुष्प(=माल्य) वा पुष्पमाला

=गहना(=आभरण) आदिकसे वर्जित हो

=पवित्र भीतरे स्थानमें [=अवकाश] मुनिके रहनेके स्थानमें चैत्यालयमें

=वा अपने बनाये हुए पर्वके उपवासके घरमें धर्मकथाके चिन्तवनमें

=मन लगायेहुये[=अवहितअन्तकरणःसन्][सोलहपहर पर्वके पहिले दिनके दुपहरसे लगाय पारनेके दिनके दुपहर तक]

=आरम्भ वर्जित श्रावक उपवासे (सो प्रोषधोपवास)है-भोजन-पान-सुगन्ध

=पुष्प(=माल्य)पुष्पमाला(=माल्य)आदिक उपभोगहै अर्थात् जो एक वार भोगनेमें आवे सो उपभोग है।

(१)सन् प्रथमाविभक्ति एक वचन पुल्लिंग सत् शब्द काहै, सत् वर्तमान कृदन्त अस्(=होना) काहै। उपवसेत्=उप+वस्+अ+इत् विधिलिंगहै॥

परिभोग आच्छादनप्रावरणालङ्कारशयनासनगृहयानवाहनादिः । तयोः परिमाणमुपभोग-परिभोगपरिमाणम्॥ मधु मांसं मद्यञ्च सदा परिहर्तव्यं त्रसघातान्निवृत्तचेतसा॥ केतक्यर्जुन पुष्पादीनि शृंगवेरमूलकादीनिबहुजन्तुयोनिस्थानान्यनन्तकायव्यपदेशार्हाणि परिहर्तव्यानि बहुघातात्पफलत्वात् ॥ यानवाहनाभरणादिष्वेतावदेवेष्टमतोऽन्यदनिष्टमित्यनिष्टात्

परिभोगः[1] अच्छादन-प्रावरण-अलंकार-शयन-आसन-गृह-यान-वाहन-आदिः[1] । तयोः[1] परिमाणम्[1] (१)उपभोग–परिभोग-परिमाणम्[1] ॥ मधु-[1] मांसं[1] च* मद्यम्[1] सदा* त्रस–घातात्[1] निवृत्त-चेतसा[1] परिहर्तव्यम्[1] ;केतकी-अर्जुन-पुष्पादीनि[1] शृंगवेर-मूलक-आर्द्रानि[1] बहु–जन्तु–योनि–स्थानानि[1] अनन्त–काय-व्यपदेश-अर्हाणि[1] परिहर्तव्यानि[1] बहु–घात–अल्प–फलत्वात्[1] ॥ यान-वाहन-आभरण-आदिषु[1] एतावत्* एव* इष्टम्[1] अतः* अन्यत्* आनष्टम्[1] इति* अनिष्टात्[1]

=बार बार भोगनेमें आवे सो परिभोग वस्त्र-(आच्छादन)दुपट्टा चादर =भूषण-गहना(=अलंकार)सेज(=शयन)बैठक(=आसन)घर,रथ-गाड़ी(=यान) =अश्ववारी (=वाहन) आदिक हैं; तिन दोनों(उपभोग परिभोग)का प्रमाण =सो उपभोग परिभाग परिमाणहै। और पुष्परस-चौद-वा माक्षिक (=मधु) =सुरा-मदिरा वा दारू (=मद्य) नित्य त्रस घात (करने) से निवृत्त आत्माकरि =त्यागने योग्य है ॥ केतक वा केवड़ा(=केतकी)तृण(=अर्जुन) फूलादिक =आर्द्रक-वासौंठ(=शृंगवेर)मूली (=मूलक)आदि बहुत जीवोंकेउपजनेकेठिकाने =जिनको अनन्त काय कहना योग्य है त्यागने योग्य हैं =क्योंकि बहुत घात है और फल अल्प (अर्थात् किञ्चित् स्वाद मात्र) है =रथ-गाड़ी आदि(=यान) अश्ववारी (=वाहन) भूषण(=आभरण) आदिमें =इतना ही इष्ट है इससे अन्य अनिष्ट है इस प्रकार अनिष्ट से

(१) (क) उपेत्य भुज्यत इत्युपभोगः ॥ = ॥ उपेत्यात्मसात् कृत्य भुज्यते अनुभूयत इत्युपभोगः । अशनपानगंधमाल्यादि" (राजवार्तिक,वार्तिक=) उपेत्य भुज्यते इति उपभोगः ॥=॥ =एक साथ भोगा जाताहै ऐसा उपभोगहै अर्थात् एकवार जो भोगनेमें आसकै सो उपभोगहै उपेत्य आत्मसात्*कृत्य भुज्यते अनुभूयते इति उपभोगः =अपना अथवा अपने आधीन(=आत्मसात्)कर(=कृत्य) भोगा जाता है अनुभवमें आताहै अथवासेवनमें आताहै ऐसा उपभोगहै,अर्थात् जोएक वार भोगनेमें आसके वो उपभोगहै अशन-पान-गन्ध-माल्य-आदि =(जैसे) भोजन, (किसी वस्तुका) पीना सुगन्ध-वास, पुष्प अथवा पुष्पमाला इत्यादि "उपेत्य भुज्यत इत्युपभोगःअशनादि" (उपेत्य भुज्यते इति उपभोगःअशन-आदि) =एकसाथ भोगाजाताहैऐसा उपभोगहै(जैसे)भोजन आदि(श्लोकवा०)

निवर्तनं कर्तव्यं कालनियमेन यावज्जीवं वा यथाशक्ति ॥ संयममविनाशयन्नततीत्यतिथिः । अथवा नास्य तिथिरस्तीत्यतिथिः अनियतकालागमन इत्यर्थः ॥ अतिथये संविभागोऽतिथिसंविभागः स चतुर्विधः—भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्॥मोक्षार्थमभ्युद्यतायातिथयेसंयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्याभिक्षादेया। धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनाद्युपबृंहणानि

निवर्तनम्[1] कालनियमेन[2] (१)यावज्जीवं[1] वा*यथाशक्ति* कर्तव्यम्[1]; संयमम्[2] अविनाशयन् अतति इति*अतिथिः[1]; अथवा*न*अस्य[2] तिथिः[1] अस्ति इति*अतिथिः[1] अनियत-काल-आगमनः[1] इति*अर्थः[1] ॥
अतिथये[4] संविभागः[1]
अतिथिसंविभागः[1]; सः[1] चतुर्विधः[1]----
भिक्षा-उपकरण-औषध-प्रतिश्रय-भेदात्[4] ॥
मोक्ष-अर्थम्[1] अभ्युद्यताय[4] संयम-परायणाय[4] शुद्धाय[4]
अतिथये[4] शुद्धचेतसा[3] निरवद्या[1] भिक्षा[1] देया[1];
धर्म-उपकरणानि[1] च*सम्यग्दर्शनादि-उपबृंहणानि[1]

=परित्याग कालकी मर्यादा करि अथवा जीवन पर्यन्त सामर्थ्यके अनुसार
=करना चाहिये। संयमको पालता हुआ विहार करताहै ऐसा अतिथि है।
=अथवा नहीं है इसके (दोज-तीज-आदिक) तिथि ऐसा अतिथि है।
=कालके नियम विना (आहारके लिये) आना ऐसा अर्थ(अतिथि शब्दका) है
=अतिथि अथवा महाव्रतीके लिये (अपने भोजन वस्तु विषै) विभाग देना
=सो अतिथि संविभाग है। वह (अतिथिसंविभाग) चार प्रकार
=भिक्षा-उपकरण-औषध-वसतिका वा वस्तिका [=प्रतिश्रय] भेद से है।
=मोक्षके लिये उद्यमी, संयम विषै तत्पर, शुद्ध,
=अतिथिके लिये,शुद्ध मनकरि,निर्दोष भिक्षा, भोजन, आहार देना चाहिये।
=और [=च] धर्मके साधन सम्यग्दर्शनादिकके बढाने वाले

(ख,परित्यज्य भुज्यतइति परिभोग॥६॥सकृद्भुक्त्वा परित्यज्यपुनरपिभुज्यतेइतिपरिभोगइत्युच्यते।आच्छादनप्रावरणालंकारशयनासनगृहयानवाहनादिः परित्यज्य भुज्यते इति परिभोगः॥ ६॥ =छोड़ छोड़ कर अथवा फिर फिरभोगा जाता है ऐसा परिभोग है॥ राज० वार्तिक वार्तिक ६)
सकृत्भुक्त्वा परित्यज्य पुनः अपिभुज्यते इतिपरिभोगइतिउच्यते =एक बार भोगे हुयेको छोड़कर फिर भी भोगा जाताहै ऐसा परिभोग वर्णित है
आच्छादन-प्रावरण-अलंकार-शयन-आसन-गृह-यान-वाहन-आदि = (जैसे) वस्त्र-चादर-भूषण-सेज-बैठक-घर-रथगाड़ी-अश्ववारी आदिक(परिभोगहैं
परित्यज्य भुज्यत इति परिभोगः पुनः पुनर्भुज्यत इत्यर्थः स वस्त्रादि। तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ मुद्रित ४६६)
परित्यज्य भुज्यते इति परिभोगः पुनःपुनः भुज्यतेइति अर्थः = (जो) छोड़ छोड़कर भोगाजाताहै ऐसा परिभोगहै फिर फिर भोगाजाताहै ऐसाअर्थ है
सः वस्त्रादि =सो वस्त्रादिक है। (क) (ख) से स्पष्ट है। भोग के उपभोग, परिभोग दो भेद हैं। एक बार भोगा जाताहै, सो उपभोग है और बार बार,
भोगा जाता है वह परिभोग है। परि (अव्यय) का अर्थ यहां पर 'फिर फिर' का है किसी ग्रन्थमें भोग का अर्थ बार बार भोगने योग्यका लियाहै॥
(१)काल मर्यादासे जैसे एक दिन-दो दिन-पक्ष-मांस-बरस आदिके वास्ते त्यागको नियम कहतेहैं॥किसी वस्तुका यावज्जीव त्यागको यम कहतेहैं॥

दातव्यानि । औषधमपि योग्यमुपयोजनीयम्। प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति ॥ च शब्दो वक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः ॥ कः पुनरसौ ?—

॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता॥ २२ ॥

दातव्यानि[1,1];औषध[1,1]अपि*योग्य[1,1]उपयोजनीयम्[1,1]। प्रतिश्रयः[1]च*परमधर्मश्रद्धया[1]प्रतिपादयितव्यः[1]इति*॥ च*शब्दः[1]वक्ष्यमाण-गृहस्थधर्म-समुच्चय-अर्थः[1] ॥ कः[1]पुनः*असौ[1] ?

,=देना चाहिये ।योग्य वा उचित भेषज भी देना चाहिये। =और वस्तिका (=प्रतिश्रय) उत्कृष्ट धर्मका विश्वास करि दान देना योग्य है =[इस सूत्रमें]'चशब्द'आगेमें कहे जाने वाले गृहस्थधर्मको इकट्ठा करनेके लियेहै =बहुरि[=पुनः]वह (=असौ=गृहस्थ धर्म) क्याहै ?[प्रश्नके उत्तरमें कहा जाताहैकि]

(२) सूत्रम्—मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषि(१)ता ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—मारणान्तिकीम्[2]सत्-लेखनाम्[2]जोषिता[1] सः[1] अगारी[1] व्रती[1]भवति T।

मारणान्तिकीम्[2]सल्लेखनाम्[2]जोषिता[1] सः[1] अगारी[1] व्रती[1]भवति T ।

=मारणान्तिकीम्[2] सल्लेखनाम्[2]जोषिता[1] सः[1] अगारी[1] व्रती[1]भवति T ।

=मृत्युके निकट वा मरणके अन्तमें [=मारणान्तिकीं]उत्तम प्रकारसे [=सत्] =काय तथाकषायकी कृशताको वा घटाउको प्रीतिसे सेवनेवाला वा सहने वाला = सो अगारी व्रती है ॥ [अन्य प्रकार से अर्थ]

मारणान्तिकी[2]सत्-लेखनां[2]। जोषिता[1]सः[1]अगारी[1]व्रती[1]भवति T

=मृत्युहै निकट प्रयोजन इसके, जो भले प्रकारसे काय तथा कषाय की हीनताको =प्रीतिसे सेवी है अर्थात् प्रीतिसे वा प्रेम से सहन करने वालाहै सो अणुव्रतीहै

(१)किसी किसी पुस्तकमें'जोषिता' पाठ है और कहीं कहीं'योषिता'है दोनोंही पाठ ठीकहैं। सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमेंऔर तत्त्वार्थराजवार्तिकमें जोषिताका अर्थ'सेविता लियाहै। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें जोषिता शब्दका अर्थ'प्रीत्या सेविता' अर्थात् प्रीतिपूर्वक सेवा वालेका है जैसा कि नीचे के वाक्यों से प्रगट है ॥ "तांमारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बध्यते" संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६३ प्रथमा वृत्ति देखो ॥ तांमारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बन्धः"तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रितपृष्ठ २८४ ॥ तांमारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता प्रीत्यासेवितेत्यर्थः॥ "तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ४६७,पश्चात् सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें और तत्त्वार्थराजवार्तिक में प्रश्न उत्तर के स्वरूप में जोषिता का अर्थ प्रीतिसे सेवनेवालेका ही लियाहैइसप्रकार तीनों ग्रन्थों का एकसा ही अर्थ होगया॥(२) दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ,अर्थ एकसाहै-अगारी-व्रती-अणुव्रती-गृही-गृहस्थ-श्रावक, विरताविरत-संयतासंयत-ये समानार्थ वाचक शब्दहैं ॥ इस सूत्रमें अगारी शब्द की अनुवृत्ति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बाईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

स्व-परिणाम-उपात्तस्य[६]''आयुषः[६]''	=अपने(=स्व) परिपाकको (=परिणाम) प्राप्त भये(=उपात्तस्य) आयु कर्मके(निमित्तसे)
इन्द्रियाणाम्[६]''बलानाम्[६]''च*कारणवशात्[५]	=तथा इन्द्रिय [प्राण] निके और [=च] मनो वचन कायके[बलानां]कारण वश से
संक्षयः[१]मरणम्[१]''; अन्त-ग्रहणम्[१]''(१)तद्-भव-मरण-	=क्षय होना सो मृत्यु है (इस सूत्रमें) अन्त शब्दका आदान उसी जन्मकी मृत्युके
प्रति-पत्ति-अर्थम्[४]''; मरणम्[१]''अन्तः[१]मरणान्तः[१]।	=जनावने के लिये है। मृत्यु है अन्त वा निकट सो मरणान्त है
सः[१] प्रयोजनम्[१]''अस्य[६]इति(२)मारणान्तिकी[१]''	=वह मारणान्त) है प्रयाजन इसका ऐसी मारणान्तिकी है अर्थात् मृत्यु वा मरण है निकट प्रयोजन इसका सो मारणान्तिकी है ॥
सम्यक्-काय-कषाय-लेखना[१]''सल्लेखना[१]''।	=भले प्रकार-कायका तथा कषायका[क्रमसे]कृश करना सो सल्लेखना(सत्—लेखना)है

सूत्र१६ से और व्रती शब्दकी सूत्र१८से लीगई है॥ किसी किसी प्रतिमें'मारणान्तिकी'है और किसी किसीमें'मारणांतिकी'है। दोनों ठीक हैं। सल्लेखना मरण-सन्यासमरण-समाधिमरण-उत्तममरण समानार्थक हैं सल्लेखना दो प्रकारहै (क) कायसल्लेखना (ख) कषायसल्लेखना-काय सल्लेखना= कायको आत्महितके लिये सम्यक्(=सत्)कृशकरना(=लेखना)भावार्थ शोक-काम-निंदा-मन-इन्द्रिय-आलस्य-प्रमाद जीतनेको वातपित्त कफादिकके प्रकोपके अभावकरनेको सुखिया स्वभाव दूरकरने को मार्गसे नहिंडिगने को परीषह सहनेको उपवास नीरस आहार वेलातेला आदिक करने को जिन सूत्रके अनुकुल शरीरको कृश करना सो काय सल्लेखना है ॥ (ख) कषायसल्लेखना-कषायोंका आत्महितके लिये कृशकरना-घटावना सो कषाय सल्लेखना है ॥

(१) तत्त्वार्थराजवार्तिक और तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकमें भी नित्यमरण और तद्भवमरणमृत्युके दोभेद कहे हैं॥ "तत्र नित्यमरणं समये समये स्वायुरादीनांनिवृत्तिः" = तहां समय समय पर वा प्रत्येक समय पर अपने आयु आदिककी निवृत्ति सो नित्य मरणहै॥ तद्भव मरणं भवान्तर प्राप्तयमंतरोपश्लिष्टं पूर्वभव विगमनं = पूर्वलेजन्म के नाश होते ही उसके अत्यन्तनिकट वा समीप दूसरे भव की प्राप्तिहोजाना ॥

२) अन्तिक शब्द त्रिलिंगीहै इसका अर्थ पद्मचंद्रकोश पृष्ठ २७में पासका है अन्तिकी स्त्रीलिंग हुआ अर्थ पास वा निकट का है परन्तु अन्तिका वा अम्ति नाटकमें बड़ी बहिन को बोला जाता है॥ मारणान्तिकी का विग्रह (=समास के अर्थ को जतलाने वाला वाक्य)तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में इस प्रकार किया है "मरणमेवान्तो मरणान्तः मरणान्तप्रयोजनमस्या इतिमारणांतिकी = "मरण ही है अन्त सो मरणान्त है मरणांत है प्रयोजन इसका ऐसा मारणांतिकी है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६७ देखो ॥

कायस्य बाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां तत्कारणहापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना । तां मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बध्यते ॥ ननु च विस्पष्टार्थंसेवितेत्येवं वक्तव्यम् । न । अर्थविशेषोपपत्तेः

कायस्य[६]बाह्यस्य[६]अभ्यन्तराणाम् [६] च*कषायाणाम् [६]	=बाहिर कायका तथा [=च] अन्तरंग कषायोंका
[१]तत्कारण-हापन-क्रमेण[३]सम्यक्-लेखना[१]॥	=अनुक्रमसे तिन[काय और कषाय]के कारणोंको घटावने करि,भले प्रकार कृश करना
सल्लेखना[१];ताम्[२]मारणान्तिकीम्[२]सल्लेखनाम्[२]जोषिता[१]	=सो सल्लेखना है । तिस मृत्युके निकटकी सल्लेखनाको जोषिता
सेविता[१]गृही[१]इति*	=[प्रीतिपूर्वक]सेवने वाला वा सेवी अर्थात् प्रेम से सहन करनेवाला गृहस्थ है ऐसा
अभिसम्बध्यते ? । ननु*च*	=[अगारी-व्रती शब्दों का] अनुवर्तन किया गया है ॥ तथा प्रश्न
विस्पष्ट-अर्थम्[१]सेविता[१]इत्येवम्*वक्तव्यम्[१];	=[सूत्रमें जोषिताके स्थानमें]विशेषस्पष्ट करनेको सेविता'शब्द ऐसा कहना योग्य है
न*अर्थ-विशेष-उपपत्तेः[५];	=[उत्तर][सेविता शब्द लाना योग्य]नहीं है क्योंकि अर्थकी विशेष सिद्धिके कारण

(१) "तत्कारणहापन क्रमेण" इस वाक्यको तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'तत्कारणहापनया क्रमेण' ऐसा लिखा है अर्थात् एकसमासके स्थानमें 'तत्कारणहापनया' तक एक समासक्रिया है और 'क्रमेण'शब्दको भिन्न लिखा है)।

(२) जोषिता शब्द 'जुष्' तुदादि छठवां गणका धातु से है पाणिनि मुनिके धातु पाठमें 'जुषि' प्रीति सेवनयोः ऐसा अर्थ कियाहै यही अर्थ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें ' जुषि प्रीति सेवनयोः यस्मात्" किया है अर्थात् जुष धातु हर्ष सेवा के अर्थ में आता है हर्ष में आना,प्रसन्न होना, इस अर्थमें अकर्मक है, जब सकर्मक होता है तब सेवाकरना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६०)और सहन करना (धातु पाठ चन्द्रिका पृष्ठ५८) अर्थों में आता है। यहां दोनों अर्थ मिलाकर 'प्रीतिपूर्वक सहना' के लिये है । इसलिये सेविता = प्रीत्या सेवता = जोषिता भावार्थ संतोष औरप्रीति पूर्वक सहन करना सो जोषिता है ॥ जोषिका(स्त्री०)कलियोंका गुच्छा (स्त्री०)नारी;जोषा(स्त्री०)नारी स्त्री जोषित् (स्त्री०)=नारी, स्त्री, योषा (स्त्री०) = लड़की,तरुणनारी; योषित् (स्त्री०) वा योषिता (स्त्री०) स्त्री लड़की नारी ॥ जुष्-जब विशेषण होता है तब प्रायः (बहुधा, समान्यतः) समासके अन्तमें आता है तब मिलना पहुंचना, लेना, सुख होना अर्थोंमें आता है, जुष्-धातुका अर्थ विशेष रूप से इस प्रकार है जुष्-तुदादि छठवां गणमें अकर्मक और सकर्मक आत्मने पदी होताहै जैसे जुष्+अ+ते=जुषते वर्तमान काल की क्रिया है। पांच अर्थ (क)संतुष्ट होना (ख) कृपालु होना (ग) प्रसन्न होना (घ) सहन करना (ङ) बसना, अपनेतईं रथ इत्यादि में बैठना ॥

जब भ्वादि प्रथम गणका धातु होता है तब अकर्मक वा सकर्मक और परस्मैपद होता है जैसे = जोषति, चुरादिदशवां गणका धातु होता है तब उभय पदी अकर्मक और सकर्मक दोनों होताहै, (ख) ध्यान करना, विचार करना, (छ) संतुष्ट होना अर्थों में आता है जैसे जुष्+अय+ति = जोषयति, जुष्+अय+ते = जोषयते ॥

न केवलं सेवनमिह परिगृह्यते। किं तर्हि ? प्रीत्यर्थोऽपि यस्मादसत्यां प्रीतौ बलान्न सल्लेखना कार्यते। सत्यां हि प्रीतौ स्वयमेव करोति॥ स्यान्मतमात्मवधः प्राप्नोति स्वाभिसन्धिपूर्वकायुरादिनिवृत्तेः॥ नैष दोषः। अप्रमत्तत्वात्। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसेत्युक्तम्।

न*केवलम्[१]॥सेवनम्[१]'''इह*परिगृह्यते T;
किम्*तर्हि*?प्रीति-अर्थः[१]अपि*यस्मात्[५]'''
असत्याम्[७]॥प्रीतौ[७]॥(१)बलात्[५]॥न*सल्लेखना[१]॥कार्यते T ;
सत्याम्[७]॥हि*प्रीतौ[७]॥स्वयम्*एव*करोतिT ॥

=केवल सेवन[शब्द]इस स्थान में [अर्थात् इस सूत्रमें] इच्छित वा वाञ्छित नहीं है
=[प्रश्न]तो (=तर्हि) क्या (=किम् (आकांक्षित)है। प्रेमका अभिप्राय भी है इसकारणसे
=कि प्रीति न होने पर, जोरावरीसे नहीं सल्लेखना कराई जाती है
=प्रीति होनेपरही (=हि) आप ही (=स्वयम्-एव) करताहै भावार्थ इसप्रश्नके होने पर

कि इससूत्रमें जोषिताके स्थानमें यदि सेविताशब्द जो अधिकतर प्रचलित वा प्रगट है सो लाना योग्य था उत्तरमें कहते हैं कि सल्लेखना को जोरावरी से सहन करनेका आशय नहीं है इससे सेविता सूत्रमें नहीं लायेहैं वरन् प्रीतिसे सहना अथवा प्रीतिपूर्वक सेवने से अभिप्रायहै इसलिये जोषिता शब्द लाये हैं क्योंकि जोषिता शब्दमें प्रीतिऔर सेवना दोनों भाव गर्भित वा अन्तर्गत हैं॥

(२) स्यात् T मतम्[१]'''आत्म-वधः[१]प्राप्नोति T
स्व-अभिसन्धिपूर्वक-आयुष्-आदि-निवृत्तेः[५]''॥
न*एषः[१]दोषः[१]।
अप्रमत्तत्वात्[५]''';
प्रमत्त-योगात्[५]'
(प्रमत्त-योगात्[५]')
प्राणव्यपरोपणम्[१]'''हिंसा[१]''इति*उक्तम्[१]'''

=ऐसा अभिप्राय हो अर्थात् संभवहै कि जोषिता शब्दमें प्रीति और सेवन दोनों अर्थ गर्भित होनेसे सूत्रमें सेविता शब्द नहीं लाये (परन्तु सल्लेखना पूर्वक मरण करनेसे) आत्मघात प्रचलित होता है अथवा प्राप्त होता है
=क्योंकि अपने अभिप्रायसे आयु आदिक (प्राणों)का नाश करता है॥
=(उत्तर) (सल्लेखनापूर्वक मरण करनेमें) यह (आत्मघातका) दूषण नहीं है
=क्योंकि कषाय रागद्वेष अयत्नाचार पना नहींहै वा प्रमादरूप परिणाम नहीं है
=कषाय रागद्वेष और अयत्नाचार (=असावधानी) के संयोगसे वा सम्बन्धसे अथवा कषाय रागद्वेष और अयत्नाचार सहित होकर (=प्रमत्त) काय-वचन-मनो योगसे
=भाव वा द्रव्य वा दोनों(प्राणों)कावियोगकरना सो हिंसाहै ऐसाकहागयाहै सूत्र१३।

(१) बल शब्द यहां नपुंसकलिंग में है'बलवाले के' अर्थ में तीनों लिंग में आता है पुंलिंग होताहै तब इसका अर्थ काग, बलदेव-वरुणवृक्ष-एक दैत्य होताहै (पद्मचंद्रकोश २६३) (२) स्यात्-अस् (=होना) धातु का अन्यपुरुष, एकवचन, विधि लिंग क्रियाका है,अव्यय भी होताहै अर्थ 'संभव' है॥

न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति। कुतः ? रागाद्यभावात् रागद्वेषमोहाविष्टस्य हि विषशस्त्राद्युपकरणप्रयोगवशादात्मानं घ्नतः स्वघातो भवति, न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादयः सन्ति ततो नात्मवधदोषः॥ उक्तं च-रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्तेत्ति भासिदं समये।

न*च*अस्य[६] प्रमाद-योगः[१]अस्ति T। =बहुरि[=च] इस [सल्लेखना मरण वाले] के प्रमत्त योग नहीं है

कुतः ? रागादि-अभावात्[५]; राग-द्वेष-मोह-आविष्टस्य[६]=[प्रश्न]किस कारणसे,रागादिक परिणाम के न होनेसे-रागद्वेषमोहकरि ग्रसित वा लिप्तके

हि*विष-शस्त्र-आदि-उपकरण-प्रयोगवशात्[७]आत्मानं[२] =ही विष-शस्त्रादिक कारणों वा साधनों के अनुष्ठानके वश होकरि अपनेको

(१)घ्नतः[६]स्वघातः[१]भवति T;नसल्लेखनाम्[२]प्रतिपन्नस्य[६]=घातनेवाला होताहै(तिसके)आत्मघात होताहै। नहीं है सल्लेखनाको धारणकरनेवालेके

रागादयः[१]सन्ति T ततः*न*आत्म-वध-दोषः[१] =रागादिक , तिससे आत्मघातका दूषण नहीं है। अर्थात् जो रागद्वेष मोहके वशमें होकर विष खाकर शास्त्रादिक द्वारा अपने को मारता है उसके आत्मघात होता है सल्लेखना में रागद्वेष मोहादिक का अभाव है इसलिये सल्लेखना मरणमें अपघात का दोष नहीं आता है

उक्तम्[१]च*रागादीणमणुप्पा=राग-आदीनां[६]अणुप्पा[१]। } =कथित वा भाषित भी है कि(जहां) रागादिक उत्पन्न नहीं होते हैं
राग-आदीनाम्[६] अनुत्पादाः[१]।

अहिंसगत्तेत्तिभासिदंसमये-अहिंसगत्तइति*भासिदं[१]समये } =वहां अहिंसकपना सिद्धान्त में कहा गया है
अहिंसकत्वम्[१]इति*भाषितम्[१]समये[७]।

(१)हन् अदादि दूसरे गणका धातु बहुधा परस्मैपदमें आता है कभी कभी आत्मने पदमें भी आता है॥ इस हन धातुका अन्तका व्यञ्जन(अर्थात् न)उस ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले जो अनुनासिक वा य् र् ल् व् के अतिरिक्त अन्य व्यञ्जनसे आरम्भ हो गिर जाताहै और इसप्रकार 'ह' रहजाता है और इस हन् धातुका ही उपान्तिक (अर्थात् एक छोड़ कर अन्तका अक्षर) अकार उस ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले जो स्वरसे आरम्भ होता हो गिरजाता है अर्थात् हन् ऐसा रूप बन जाता है इस हन् का ह् घ् में बदल जाता है और घ् प्रातिपदिक हो जाता है॥ प्रातिपदिक=व्याकरण में प्रत्यय और प्रत्ययान्त एवं धातु से भिन्न कृदन्त-तद्धित और समास से सिद्ध हुआ अर्थ वाला शब्द का स्वरूप, अर्थ रखनेवाला शब्द (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २५८)। बहुधा वर्तमान कृदन्त इस प्रकार बनाये जाते हैं कि धातु का वह रूप लेलो जो अन्य पुरुष बहु वचन वर्तमान काल के प्रत्यय लगाने से प्रथम बनता है॥ इस के पश्चात् वर्तमान कृदन्त का अत् यदि धातु परस्मैपद में हो और (वर्तमान कृदन्त का मान् प्रत्यय यदि धातु में आत्मने पद जोड़ा जाय॥ क्योंकि हन् धातु द्वितीयगण का है इसमें कोई विकरण नहीं लगाया जाता है इस लिये पूर्वोक्त घ्न्+अत् लगानेसे घ्नत् वर्तमान कृदन्त बन गया, इसका एक वचन षष्ठी पुल्लिंग अस् जोड़नेसे बनता है घ्नत्+अस्=घ्नतःषष्ठीएकवचन बनगया

तेसिं चैदुप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥१॥ किञ्च मरणस्यानिष्टत्वाद्यथावणिजो विविधपण्यदानादानसंचयपरस्य स्वगृहविनाशोऽनिष्टः, तद्विनाशकारणे च कुतश्चिदुपस्थिते यथाशक्ति च परिहरति, दुःपरिहारे च पण्यविनाशो यथा न भवति तथा यतते एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीलपण्यसञ्चये प्रवर्तमानः तदाश्रयस्य न पातमभिवांछति ।

(१)तेसिं चेदुप्पत्ती=तेसिं[६]'चेत्*उप्पत्ती[१]''
तेषाम्[६]'चेत्*उत्पत्तिः[१]''
=यदि(=चेत्) तिन (रागादिक)की उत्पत्ति है सो

हिंसेत्तिजिणेहिणिद्दिट्ठा=हिंसा[१]''इतिजिणेहि[३]'णिद्दिट्ठा
हिंसा[१]''इति*जिनेन[३]' निर्दिष्टा[१]''॥१॥किञ्च*
=हिंसा है इस प्रकार जिन भगवान द्वारा कथित है कुछ और (वा बहुरि विशेष)

मरणस्य[६]''अनिष्टत्वात्[५]''यथा*वणिजः[६]'
=क्योंकि(प्राणीको) मृत्यु अप्रिय है जैसे(किसी) व्यापारीके वा वणिज करनेवालेके

विविध–पण्यदानादान सञ्चय–परस्य[६]' (२)
=नाना प्रकारकी श्रेष्ठ वा उत्तम व्यापरकी देनेलैनेयोग्य वस्तुओंको संचय करनेवालेके

स्वगृह–विनाशः[१]'अनिष्टः[१]'च*तद्
=अपने घरका विनाश इष्ट नहीं है अथवा अप्रिय है । और(=च)उस(अपने घर) के

विनाश-कारणे[७]''कुतश्चित्*उपस्थिते[७]''यथाशक्ति*=विनाशके कारण कहींसे आजाने पर-शक्तिके अनुसार (अर्थात् शक्तिभर)

च*परिहरति T; दुःपरिहारे[७]''। च*
=दूर भी (=च) करता है और (=च) [उक्त कारण को] दूर न कर सकनेपर

पण्यविनाशः[१]'यथा*न*भवति T तथा*यतते T
=जैसे व्यापारकी वस्तुओंका नाश न होय तैसा जतन करता है

एवम्*गृहस्थः[१]'अपि*व्रतशीलपण्य-सञ्चये[७]'
=ऐसे गृहस्थ भी व्रतशील रूप व्यापारकी वस्तुओंके इकट्ठा करनेमें

प्रवर्तमानः[१]'तद्-आश्रयस्य[६]' (३)
=लगा हुआ वा प्रवर्तता हुआ उस (व्रतशील)के आधारका वा घरका (अर्थात् शरीरका)

न*पातम्[२]'अभिवाञ्छति T
=पतन वा नाश नहीं चाहता है अर्थात् व्रत-शील संयमादिक पुन्य परिणामों के संचय संयुक्त जो शरीर तिसका विनाश नहीं चाहता है ॥

(१) राजवार्तिक में ऐसा पाठ है कि ॥"रागादीणं मणुप्पा अहिंसकत्तेति देसिदं समये । तेसिंचेदुप्पत्ती हिंसेति जिणेहिणिद्दिट्ठा ॥ (२) पर शब्द का अर्थ अमरकोष वर्ग २३ श्लोक १६१में श्रेष्ठ,उत्तमका भी है॥(३)आश्रयका अर्थ आधार, गृह दोनों है (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ६३) जिसके आधार कोई वस्तु रहै यहां पर (अर्थात्) जिसके आधार व्रत शील संयम रहते हैं ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें आश्रय शब्द का अर्थ शरीर लिया है जैसा कि निम्न लिखित वाक्य से प्रगट है "एवं गृहस्थेापि व्रतशीलपुण्यसंचयप्रवर्तमानस्तदाश्रयस्य शरीरस्य न पातमभिवाँछति" आश्रयस्य=शरीरस्य ॥

तदुपप्लवकारणे चोपस्थिते स्वगुणाविरोधेन परिहरति। दुःपरिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयतत इति कथमात्मवधो भवेत्॥अत्राह निःशल्यो व्रतीत्युक्तं तत्र च तृतीयं शल्यं मिथ्यादर्शनम्। ततः सम्यग्दृष्टिना व्रतिना निःशल्येन भवितव्यमित्युक्तं तत्सम्यग्दर्शनं किं सापवादं निरपवादमिति ? उच्यते–कस्यचिन्मोहनीयावस्थाविशेषात्कदाचिदिमे भवन्त्यपवादाः-

शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः

तद्–उपप्लव-कारणे^{2}॥ च* उपस्थिते ^{2}॥
स्वगुण–अविरोधेन ^{2}।
परिहरति T; दुःपरिहारे ^{2}। च* यथा*
स्वगुण-विनाशः^{2}।न*भवति Tतथा* प्रयतते T
इति*कथम्*आत्मवधः^{2}। भवेत् T। अत्र*आह T
निः शल्यो^{2}। व्रती ^{2}। इति*उक्तम् ^{2}। तत्र*च*
तृतीयम्^{2}।॥शल्यम्^{2}॥ मिथ्यादर्शनम्^{2}॥।; ततः*
सम्यग्दृष्टिना^{3}।व्रतिना^{3}। निःशल्येन^{3}। भवितव्यम्^{2}॥।

=बहुरि (=च) उस (आश्रय वा शरीर) के नाशके (=उपप्लव) कारणके आजानेपर
=अपने गुण (जैसेसम्यग् दर्शनादिक)कोविना मलिनता करि(उसशरीरके नाशकेनिमित्तको)
=दूर करता है बहुरि (उस शरीरके नाशके कारणको) दूर न करसकनेपर जैसे
=अपनागुण (व्रत-शील-संयमादिक)का विनाश न होय है तैसे प्रयत्न करता है
=ऐसे (करनेमें) कैसे आत्म घात हो। यहां प्रश्न करता है कि
=निः शल्यो व्रती ऐसा(१८ वां सूत्रमें) कथितहै और(=च)उस स्थानमें अर्थात् उस१८सूत्रमें
=तीसरा शल्य मिथ्या दर्शन है, तिस (सूत्र) से (यह फल निकलता है कि)
=शल्य रहित व्रतीसम्यग्दृष्टी (ही) होना चाहिये वा होसक्ताहै अर्थात् जो व्रती होय है
सो सम्यग दृष्टी ही होयहै मिथ्या दृष्टी व्रतोंकी क्रियारूप प्रवर्तने परभी व्रती नहीं है

इति*उक्तम्^{2}॥॥तत्सम्यग्दर्शनं^{2}॥॥किम्^{2}॥॥स-अपवादम्^{2}॥॥=ऐसाभाषित है। क्या वह सम्यग्दर्शन (व्रतीके) अतीचार सहित होता है
निर्* अपवादम्^{2}॥॥ इति*?उच्यते T कस्यचित्*
मोहनीय–अवस्था-विशेषात्^{5}। कदाचित्*
इमे^{3}। भवन्ति T अपवादाः ^{3}।

=किं अतीचार रहित इस प्रकार पूछने पर कहा जाताहै कि किसीके
=मोहनीय कर्मकी अवस्थाके विशेष (जो सम्यक्त्व प्रकृति) से कदाचित्
=ये [अर्थात् अग्रिम सूत्र में निम्न कथित] अतीचार होते हैं

(१) शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥ २३ ॥

दिगम्बर तथाश्वेताम्बर आम्नायके ग्र थोंमें किसीकिसीमें 'व्रतीचाराः' पाठहै किसीकिसीमें 'व्रतिचाराः' पाठहै। अतिचारऔर अतीचार दोनोंशब्दठीक हैं शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में और अर्थ भी एकसा है॥

=(१)शंका-कांक्षा-विचिकित्सा-अन्यदृष्टिप्रशंसा-अन्यदृष्टिसंस्तवाः सम्यग्दृष्टेः अतिचाराः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः-शङ्का- =अरहंत सर्वज्ञ वीतरागके वर्णित तत्त्वोंके स्वरूपमें संदेह करना अथवा अपने आत्माको ज्ञाता दृष्टा अखंड अविनाशी-पुद्गलसे भिन्न जानकरके भी सप्त भय(अर्थात् इस लोकभय-परलोकभय-मरणभय-वेदनाभय-अरक्षाभय-अगुप्तभय और अकस्मात् भय) को प्राप्त होना सो शङ्कानाम अतीचार है ॥ [अतीचार है

कांक्षा- =इसलोक परलोक सम्बन्धी भोगोंमें तथा मिथ्या दृष्टियोंके ज्ञान तथा आचरण आदिकमें वांछा रखना सो कांक्षानाम

(२)विचिकित्सा- =शरीरादिकको शुचि जानना-साधुओं को जो स्नान करें, दाँत न मांजें-केश लोंच करें इत्यादिकों में तथा उनके अन्य गुणोंमें और धर्मात्माओंके गुणोंमें तथा दुखी दरिद्री रोगी-इत्यादि क्लेश सम्पन्न जीवों को देख कर ग्लानि करना सो विचिकित्सा नामा अतीचार है ।

अन्य दृष्टिप्रशंसा- =मिथ्यादृष्टिके ज्ञान-तप-शील-चारित्रदानादिकों को मनकरि प्रगट करनेका विचार अथवा तिनको भला जानना (सो अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार है)

अन्य दृष्टिसंस्तवाः[१] =मिथ्यादृष्टिके ज्ञान, तप-शील-चारित्र-दानादिकों तथा अन्य विद्यमान-अविद्यमान गुणों का वचन से प्रगट करना (सो अन्यदृष्टि वा मिथ्यादृष्टि संस्तव नामा पांचवां अतीचार है)

सम्यग्दृष्टेः[१]अतिचाराः[१] =सम्यग् दृष्टि के (ये पांच) अतिचार अथवा दोष हैं

---

(१) कहीं शङ्का काङ्क्षा पाठ है और कहीं शंका कांक्षा पाठहै दोनों ठीकहैं (अध्याय१ पृष्ठ ५३६,५४०) (२) "विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः" कहीं कहीं यह पाठ है और कहीं कहीं ऽ चिन्ह विचिकित्सा और न्यदृष्टि के बीच में है अर्थात् विचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः" ऐसा पाठ है ॥ इसका कारण जहां तक अनुवादक को ज्ञात पड़ा है यह है किऽऐसा चिन्ह विकल्प करि (=जी चाहैं लाओ जी चाहैं न लाओ) वहां पर लाते हैं जहां यदि संधिके मध्यमें कहीं पर ऐसा शब्द आवे जिसके पदच्छेद करनेमें उसके अन्तका दीर्घ अकार होना चाहिये और इस शब्द के अनन्तर वा लगाहुआ शब्दअकारसे आरम्भ होताहो यहऽचिन्हपदच्छेदकी सुगमताकेलिये लावेंगे(जैसे-विचिकित्साऽन्यदृष्टि=विचिकित्सा-अन्यदृष्टि, एकसमयाविग्रहा वा एक समयाऽविग्रहा=एक समया-अविग्रहा येसर्व ठीकहैं, और यदि दीर्घअकारसे आरंभ होताहो तोऽऽचिन्ह लावेंगे (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति सूत्र २४ अध्याय५) जैसे-शब्द बन्ध ··· तमश्छाया ऽऽ तपोद्योतवन्तश्च = तमश्छाया-आतपोद्योतवन्तश्च ऐसा पदच्छेद हुआ । यही सूत्र अन्य २ पुस्तकों में जैसे पन्नालाल कृत बाल बोधिनी भाषा में, राजवार्तिक मुद्रित तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित में तथा अर्थ प्रकाशिका मुद्रितमें तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रित इत्यादिकोंमें 'तमश्छायातपोद्योत-वतश्च' ऐसा पाठ है। प्रथम अध्याय 'देखो मतिः स्मृतिः इत्यादि' सूत्र १५। 'बहु बहुविध इत्यादि' सूत्र १६, छठवां अध्याय सूत्र ७ इत्यादि। सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६५ में, विवक्षुणा ऽऽ चार्येण है यदि ऽ ऐसा चिन्ह न हो तो बिना अर्थ समझे यह संदेह होता है कि पदच्छेद क्या करे क्योंकि "विवक्षुणाचार्येण" के पदच्छेद विवक्षु-णाचार्येण भी हो सक्ता है वा विवक्षुण-आचार्येण इत्यादि हो सके हैं ऽऽ ऐसे चिन्होंसे स्पष्ट होता है कि अर्थ हमने इस वाक्य का समझा हो वा न समझा हो, विवक्षुणा-आचार्येण ही पदच्छेद है ॥

निःशङ्कितत्वादयो व्यख्याता दर्शनविशुद्धिरित्यत्र । तत्प्रतिपक्षभूताः शङ्कादयो वेदितव्याः । अथ प्रशंसासंस्तवयोः को विशेषः ? मनसा मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशंसा, भूताभूतगुणोद्भावद्वचनं संस्तव इत्ययमनयोर्भेदः ॥ ननु च सम्यग्दर्शनमष्टाङ्गमुक्तं तस्यातिचारैरप्यष्टभिर्भवितव्यम् ॥ नैष दोषः ॥ व्रतशीलेषु पंचपंचातिचारा इत्युत्तरत्र

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस तेईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद॥२३।

निःशंकितत्व-आदयः$_{\frac{1}{3}}^{1}$दर्शनविशुद्धिः$_{\frac{1}{1}}^{1}$	=निःशंकितपना आदिक (आठ सम्यग्दर्शनके अंग) दर्शनविशुद्धिः
इति*अत्र*व्याख्याताः $_{\frac{1}{3}}^{1}$ ।	=ऐसे इस स्थानमें (=अत्र)(अर्थात् छठवां अ०के २४ वां सूत्रमें)वर्णन कियेगये
तत्–प्रतिपक्ष-भूताः$_{\frac{1}{3}}^{1}$	=तिन (निःशंकितत्व आदि) के प्रतिकूल पक्षवाले (इस सूत्रमें वर्णित)
शंका-आदयः$_{\frac{1}{3}}^{1}$वेदितव्याः$_{\frac{1}{3}}^{1}$;अथ*प्रशंसा-संस्तवयोः$_{\frac{2}{3}}^{2}$	=शंकादि(येपांच अतीचार)जाननाचाहिये(प्रश्न)अब प्रशंसा और संस्तवनदोनोंमें
कः$_{\frac{1}{1}}^{1}$विशेषः$_{\frac{1}{1}}^{1}$?मनसा$_{\frac{3}{1}}^{1}$ मिथ्यादृष्टेः$_{\frac{5}{1}}^{5}$ज्ञान-चारित्र-गुण-	=क्या अन्तर है । (उत्तर) मन करि अन्य दृष्टिके ज्ञान तथा चारित्र गुणोंकी
उद्भावनम्$_{\frac{1}{1}}^{1}$ प्रशंसा$_{\frac{1}{1}}^{1}$;भूत-अभूत-गुण-उद्भाव–	=प्रगटता सो प्रशंसा है। छते अन छते अथवा विद्यमान-अविद्यमान गुणोंकी प्रगटता
वचनम्$_{\frac{1}{1}}^{1}$ संस्तवः$_{\frac{1}{1}}^{1}$इति*अयम्$_{\frac{1}{1}}^{1}$अनयोः$_{\frac{2}{2}}^{2}$भेदः$_{\frac{1}{1}}^{1}$ ॥	=वचनकरि (जिह्वा करि) करना सो संस्तव है । ऐसे यह दोनोंमें अन्तर है
ननु*च*सम्यग्दर्शनं$_{\frac{1}{1}}^{1}$ (१)अष्ट-अंगम्$_{\frac{1}{1}}^{1}$उक्तम्$_{\frac{1}{1}}^{1}$तस्य$_{\frac{6}{1}}^{1}$	=पुनि प्रश्न-सम्यग्दर्शन अष्ट अंग संयुक्त कहा गया है, तिस (सम्यग्दर्शन)के
(२)अतिचारैः$_{\frac{3}{3}}^{3}$अपि*अष्टभिः$_{\frac{3}{3}}^{3}$भवितव्यं$_{\frac{1}{1}}^{1}$;न*एषः$_{\frac{1}{1}}^{1}$दोषः$_{\frac{1}{1}}^{1}$	=अतीचार भी आठ अवश्य होना चाहिये। यह दूषण नहींहै अर्थात् सम्यक्त्वके आठ अंग कहे परन्तु अतिचार पांचही कहे ऐसीआठ औरपांचकीसंख्या करनेमें दोषनहींहै
व्रत-शीलेषु$_{\frac{3}{3}}^{3}$पञ्च$_{\frac{1}{3}}^{1}$पञ्च-अतिचाराः$_{\frac{1}{3}}^{1}$इति*उत्तरत्र*	=व्रत शीलोंमें पांच पांच दूषण हैं ऐसा यहां से आगे

(१) अष्टांग को समास मानकर आठ है अङ्ग जिसके ऐसा अर्थ होता है अतएव आठ अङ्ग संयुक्त ऐसा अनुवाद किया है। (२) 'अतिचारैः' अष्टभिः तृतीया बहु वचन है तिसका शब्दशः अनुवाद अतीचार भी आठ करि इत्यादि होगा परन्तु बोल चालमें अच्छा नहीं लग पड़ता है, यह वाक्य राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २८६ में ऐसे है कि "स्यादेतत् सम्यग्दर्शनमष्टाङ्गं निःशङ्कितत्वादिलक्षणं उक्तं तस्यातिचारैरपि तावद्भिरेव भवितव्यमित्यष्टावतिचारा उपदेष्टव्याः".....तिस(सम्यग्दर्शन) के अतीचार भी उतने ही होना चाहिये ऐसे आठ अतीचार उपदेश कियेजाने चाहिये

विवक्षुणाऽऽचार्येण प्रशंसासंस्तवयोरितरानतिचारानन्तर्भाव्य पञ्चैवातिचारा उक्ताः ॥ आह सम्यग्दृष्टेरतिचारा उक्ताः किमेवं व्रतशीलेष्वपि भवन्तीति । ओमित्युक्त्वा तदतिचारसंख्यानिर्देशार्थमाह—

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

विवक्षुणा[३।१] आचार्येण [३।१]
प्रशंसा-संस्तवयोः[७।२] इतरान्[२।३] अतिचारान्[२।३] अन्तर्भाव्य÷
पञ्च[१।३] एव*अतिचाराः[१।३] उक्ताः[१।३];आह T
सम्यग्दृष्टेः[६।१] अतिचाराः[१।३] उक्ताः[१।३] किम्[१।१] एवम्*
व्रतशीलेषु[७।३] अपि*भवन्ति T इति* । ओम्*इति*उक्त्वा÷
तद्—अतिचार—संख्या—निर्देश—अर्थम्[१।१] आह T

=विवरणकरनेकी इच्छा करनेवाले आचार्यकरि
=प्रशंसा-स्तवनमें अन्य अतीचारों को गर्भित करते हुये (=अन्तर्भाव्य)
=[सम्यग्दृष्टी के]पांचही अतीचार कहेगये हैं(सूत्र२५से३७तक) । प्रश्न करताहै कि
=सम्यग्दृष्टिके दूषण वा अपवाद कहे गये, क्या इस प्रकार
=व्रतशीलोंमें भी[अतीचार] होते हैं । हां [=ओम्] ऐसा कहकरि
=तिन अतिचारोंकी गणना कहनेके लिये(आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

(*)व्रतशीलेषु पञ्च पंच यथा क्रमम्२४=व्रतशीलेषु पंच पंच (अति चाराःभवन्ति)यथाक्रमम्२४

सूत्रार्थः-व्रतेषु[७।३] शीलेषु[७।३] पञ्चपञ्च[१।३] अतिचाराः[१।३] यथाक्रमम्*=व्रतोंमें शीलोंमें पांच पांच अतीचार क्रमसे
भवन्ति T =होते हैं अर्थात् पूर्वोक्त अहिंसा अणुव्रतमें
—सत्यभाषण अणुव्रतमें—अस्तेय अणुव्रतमें— ब्रह्मचर्य अणुव्रतमें अपरिग्रह अणु व्रतमें (ऐसे इन पाँच अणुव्रतोंमें) दिग्विरति व्रतमें—देशविरति व्रतमें—अनर्थदण्डविरति व्रतमें (ऐसे तीनगुण व्रतोंमें)सामायिक व्रतमें—प्रोषधोपवास व्रतमें—उपभोग परिमाण परिभोग परिमाण व्रतमें—अतिथि संविभाग व्रत में (ऐसे इनचार शिक्षा व्रतोंमें) [तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत मिलकर ऐसे इन सात शीलोंमें] तथा सल्लेखना में इस प्रकार इन तेरहमें से प्रत्येकके पांच पांच अतीचार अनुक्रमसे (सर्व मिलकर पैंसठ अतीचार) होते हैं वे २५ से ३७ सूत्रोंमें अनुक्रमसे कहे जावेंगे ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौवीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

व्रतानि च शीलानिच व्रतशीलानि तेषु व्रतशीलेषु। शीलग्रहणमनर्थकम्, व्रतग्रहणेनैव सिद्धे:॥ नानर्थकम्विशेषज्ञापनार्थं व्रतपरिरक्षणार्थं शीलमिति दिग्विरत्यादीनीह शीलग्रहणेन गृह्यन्ते॥

व्रतानि[1111] च*शीलानि[1111] च* व्रतशीलानि[1111] =बहुरि=(च) व्रतहैं और (=च) शील हैं सो व्रतशीलानि (ऐसा द्वंद्वसमास) हुआ
तेषु[111] =तिन (व्रत शीलों)मेंहै सो तेषु है अर्थात् तिनमें यह तेषु का अर्थ है
व्रतशीलेषु[111] ; =व्रतों में-शीलों में है सो व्रतशीलेषु (वाक्यका अर्थ) है।
शील-ग्रहणम्[1111] अनर्थकम्[1111], =(प्रश्न-इस सूत्र में) शील (शब्द) का लाना निष्प्रयोजन है
व्रत-ग्रहणेन[1111] एव*सिद्धे:[11] ; =क्योंकिव्रत (शब्द) के ग्रहण करने से ही (शील भी व्रतों में गर्भित होनेसे) सिद्ध है॥

अर्थात् व्रतके ग्रहण करने से ही शीलका भी ग्रहण होजाताहै क्योंकि शीलभी व्रतहै जैसा कि 'अतिथिसंविभाग व्रत-सम्पन्नश्च" (वाक्य जो सूत्र२१ वां जिसमें सातशीलों का कथन है)से प्रगट है।

न-अनर्थकम्[1111]-विशेष- =(उत्तर)(इस सूत्र में शीलशब्दका आदान) निष्प्रयोजननहीं है, विशेष-
ज्ञापन-अर्थम्[1111] व्रत-परिरक्षण-अर्थम्[1111] शीलम्[1111] इति *=जतावनेके लिये (शीलशब्दका ग्रहण) है(क्योंकि) व्रतोंकी रक्षाके लिये शील हैं ऐसे
दिग्विरति-आदीनि[1111] इह * =दिग्विरति आदिकइससूत्रमें (=इससूत्रमें)
शील-ग्रहणेन[1111] गृह्यन्ते T =(शील शब्द)के लानेसे (अथवा ग्रहणकरनेकरि) ग्रहण किये जाते हैं भावार्थ २१ वां सूत्रकेअन्तिम वाक्य 'अतिथिसंविभाग व्रत सम्पन्नश्च" से प्रगट है कि ये सात व्रतहैं अहिंसादिक भी पांच व्रत हैं ऐसी अवस्था में प्रश्नहै कि (१)"व्रतेषु पञ्चपञ्च यथाक्रमम्"सूत्र होनाचाहिये॥ उत्तर में कहतेहैं कि दिग्विरति व्रतआदिक अन्य अहिंसा आदिव्रतोंके रक्षा के लिये हैं इसलिये इन अन्य पांच व्रतोंकी रक्षाकी विशेषता जतावनेकेलिये सूत्रमें शील(शब्द)लायेहैं,अतः पांच व्रत और सात शीलोंके क्रमसे पांचपांच अर्थात् साठअतीचार(२)कहेंगे॥

(१) ये अतीचार गृहस्थ वा अगारी वा अणुव्रती से सम्बन्ध रखतेहैं क्योंकि इस अध्यायके २० वां सूत्र"अणुव्रतो ऽगारीसे"अगारी गृहस्थ, श्रावक, अणुव्रती का प्रकरण वा अधिकार चलाहै इसलिये अणुव्रतीके"(=अगारिणः)"व्रतोंमें शीलोंमें तथा सल्लेखनामें कहे जाने वाले ये पांचपांच अतीचार वा दूषण क्रम से जानना चाहिये और क्योंकि बन्ध-वध-छेद इत्यादिक इन दोषों का वा अतीचारों का साधुओं के होना संभव नहीं है॥(२) अतीचार और अनाचार में यहभेद है कि व्रतको सर्वथा छोड़ देना अनाचार है और व्रतको दोष लगाना (दूषित करना) सो अतीचार है॥

अगार्यधिकारात् अगारिणो व्रतशीलेषु पंच पंचातिचारा वक्ष्यमाणा यथाक्रमं वेदितव्याः।

तद्यथा-आद्यस्य तावदहिंसाव्रतस्य—

॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥२५॥

अगारी-अधिकारात् [५/१]
अगारिणः[६/१] व्रतशीलेषु[७/३] पंच[१/३] पंचअतिचाराः[१/३] वक्ष्यमाणाः[१/३]
यथाक्रमम्* वेदितव्याः[१/३]

=(७ अध्यायके २० सूत्र अणुव्रतोऽगारीसे)अगारी वा अणुव्रतोंका प्रकरण होनेसे
=अणुव्रतीके व्रतशीलोंमें कहेजाने वाले पांच पांच अतीचार वा दूषण
=अनुक्रमसे जानना चाहिये (क्योंकि बन्ध, वध, छेद अतिभार-आरोपण अन्नपाननिरोध दोषोंका अनागारी वा साधुओं के होना संभव नहीं है)

तद्यथा*आद्यस्य[६/१]।।।तावत्* अहिंसा-व्रतस्य[६/१]।

=प्रथम(=तावत्)आदिका अहिंसा (नामा)अणुव्रत के [अतिचार ऐसे हैं कि]

(१)बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

=बन्ध-वध-च्छेद-अतिभार आरोपण-अन्नपान निरोधाः[अहिंसा अणुव्रतस्य पञ्च अतिचाराः भवन्ति]

सूत्रार्थः-बन्ध-वध-च्छेद-अतिभारआरोपण—
अन्नपान-निरोधाः[१/३]
अहिंसा-अणुव्रतस्य [६/१]।।।अतिचाराः[१/३] भवन्ति।

=बांधना,पीटना,छेदना [लेजाने की शक्तिसे] अधिकभार लादना
=खान पानका रोकना अर्थात् भूखा प्यासा रखना वा विलम्ब से अन्नपान देना(ये)
=अहिंसा [नामा] अणुव्रतके पांच अतीचार होते हैं।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पच्चीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

(१)हमारी सम्प्रदायमें किसीकिसी पुस्तकमें"बंध-वध-छेद इत्यादि पाठहै(देखो सदासुखजीकी लघुटीका) परन्तु अधिकतर, बन्ध-वध-छेदइत्यादि पाठ हैं शेष पाठ सर्वत्र एकसा है॥ बन्धके स्थानमें बंध भी ठीक है(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ४३६,४४०और च्छेदके स्थानमें छेद भी ठीक है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ७०)॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें च्छेद शब्द के स्थान में विच्छेद शब्द है और इस शब्दका अर्थ काष्ठादिक की त्वक् (छाल आदि) का छेदन "त्वक् छेदः काष्ठादीनां" लिया है (देखो सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २६६) परन्तु हमारी आम्नाय में च्छेदका अर्थ पशु-मनुष्य इत्यादिकके कान—नाक-हस्त लिंगादिक अङ्गोपाङ्ग का छेदना लिया है शेष सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है॥

अभिमतदेशगतिनिरोधहेतुर्बन्धः ॥ दण्डकशावेत्रादिभिरभिघातः प्राणिनां वधः । न प्राणव्यपरोपणम् । ततः प्रागेवास्य विनिवृत्तत्वात् ॥ कर्णनासिकादीनामवयवानामपनयनं छेदः ॥ न्याय्यभारादतिरिक्तवाहनमतिभारारोपणम् ॥ गवादीनां क्षुत्पिपासाबाधाकरणमन्नपाननिरोधः ॥ एते पंचाहिंसाणुव्रतस्यातिचाराः ॥

अभिमत-देशगति-निरोधहेतुः[1/6] बन्धः[1/1]; दण्ड-कशा-वेत्रादिभिः[2/3] अभिघातः[1/6] प्राणिनाम्[6/3](१) वधः[1/6]; न*प्राण-व्यपरोपणम्[1/1]; ततः* प्राग्-एव* अस्य [6/1] विनिवृत्तत्वात् [5/6] ॥

=मनो वांछित स्थानमें गमन करनेके रुकावका कारण सो बन्ध है। दंडा-कोड़ा(=कशा) =बेत आदिक से चोट (देना) सो जीवों का वध है ।
=(इस वधमें) प्राण व्यपरोपण नहीं होताहै क्योंकि तिस (प्राण व्यपरोपण)से (=ततः)
=पहिलेही (देखो इस अध्याय का सूत्र १३वां) इसकानिषेधहै भावार्थ प्राणव्यपरोपण इस वधमें नहीं लेना चाहिये क्योंकि प्राण व्यपरोपण जो तेरहवां सूत्रमें कथित है वह अतीचार नहीं है उससे तौ व्रतका नाश हो जाता है अहिंसा व्रत नहीं रहता वरन हिंसा नाम अव्रत होजाताहै अतिचारका अर्थहै कि व्रतको दूषित करना व्रतपालन तौ करना परन्तु उसमें दोषलगालेना ॥

कर्ण-नासिका-आदीनाम्[6/3] अवयवानाम्[6/3] अपनयनम्[1/1] छेदः[1/6]; =कान-नाक-आदिक शरीरके भागोंका (=अवय वा नाम्) खण्डनकरना सो छेदहै
न्याय्य-भारात्[5/1] अतिरिक्त-वाहनम्[1/1] अतिभार-आरोपणम्[1/1]; =उचित (अर्थात् जितना चाहिये उस) बोझ से अधिक (=अतिरिक्त) =लादना (=वाहनम्) सो अतिभारारोपण (अतिचार) है
गो-आदीनाम्[6/3] क्षुत्-पिपासाबाधाकरणम्[1/1] =वृषभ (=गो) अथवा गौ (=गो) आदिकके क्षुधातृषाकी बाधारूप क्रियाकरना
अन्नपाननिरोधः[1/1]; =(उनको) खाना पीना न देना अथवा (उनको) विलम्बसे खान-पान देना सो अन्न पाननिरोध (नामा पांचवा अहिंसा अणुव्रतका अतीचार) है
एते[1/3] पंच[1/1] अहिंसा-अणुव्रतस्य[6/1] अतिचाराः [1/3] =ये पांच अहिंसा अणुव्रतके दूषण हैं

(१) तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६६ में इस वधका जिसमें प्राणव्यपरोपण नहीं है निम्नलिखित वाक्य पाया जाता है
"प्राणिपीड़ा हेतुर्यः कशाद्यभिघातमात्रं न तु प्राणव्यपरोपणं तस्य व्रतनाश रूपत्वात् ; ॥ अवयव = शरीर के भाग (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४४)
प्राणिन्-पीडा-हेतुः वधः, कशा-आदि-अभिघात-मात्रम् = जीवके दुःखका कारण सो वध है, कोड़ा(= कशा) आदि से चोटमात्र देना (सो वध) है
न तु प्राणव्यपरोपणम् तस्य व्रतनाश रूप त्वात् =न कि प्राणव्यपरोपण (यहां वध)है क्योंकि तिस (प्राणव्यपरोपण)के व्रतका नाशपना है
अर्थात् प्राणव्यपरोपण (= द्रव्यप्राण वा भाव प्राण वा दोनों को दुखा देने) से अहिंसा व्रतका नाश होजाताहै ।

मिथ्योपदेशरहोऽभ्याख्यानकूटलेखक्रिया-न्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

अभ्युदयनिः श्रेयसार्थेषु क्रियाविशेषेषु अन्यस्यान्यथा प्रवर्तनमतिसन्धापनं वा मिथ्योपदेशः। यत्स्त्रीपुंसाभ्यामेकान्तेऽनुष्ठितस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशनं तद्रहोऽभ्याख्यानं वेदितव्यम्।

मिथ्योपदेश (१) रहोऽभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

=मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमंत्रभेदाः (सत्य-अणुव्रतस्यपंच-अतिचाराः भवन्ति ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः-मिथ्या-उपदेशः[१] रहोऽभ्याख्यानम्[२] कूटलेख क्रिया[३] न्यासापहारः[४] साकार मंत्रभेदः[५] सत्य-अणुव्रतस्य[६] पंचअतिचाराः भवन्ति।

=झूठा वा अयथार्थ वचनका उपदेश देना-किसीकी गोप्य वार्ता वा आचरण को प्रगट करना
=झूठा, बनावटी, कृत्रिम वा झूठी लेखलिखना, धरोहरको (=न्यास) छिपाना अर्थात् विस्मरण आदिक द्वारा धरोहर रूपसे स्थापित पदार्थ को हर लेना
=किसीकी चेष्टासे उसका गुप्त अभिप्राय जानकर प्रगट करना (ये) सत्य अणुव्रतके
=पांच व्यक्तिक्रम दूषण अथवा अतीचार हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस छब्बीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद॥

अभ्युदय-निः श्रेयस-अर्थेषु[१] =स्वर्ग(=अभ्युदय)मोक्षकी (=निःश्रेयस) साधक (=अर्थेषु)
क्रियाविशेषेषु[२] अन्यस्य[३] अन्यथा*प्रवर्तनम्[४] वा* =क्रियाविशेषोंमें दूसरेका अयथार्थ प्रवर्तावना, अथवा
अतिसंधानम्[५] =विवादोंमें सम्बन्ध (=सन्धान) को उल्लंघिकर असम्बद्ध वा प्रकरण विरुद्ध उपदेश
मिथ्योपदेशः[१] यत्[१] स्त्री-पुंसाभ्याम्[२] =सो मिथ्योपदेश (अतीचार) है, जो स्त्री पुरुषकरि
एकान्ते[१] (२)अनुष्ठितस्य[२] क्रियाविशेषस्य[३] =अकेलेमें की हुई क्रिया विशेषका
प्रकाशनम्[१] तद्[१] रहोऽभ्याख्यानम्[२] वेदितव्यम्[३] =प्रगट करना सो (=तद्) रहोऽभ्याख्यान वा रहस्याभ्याख्यान जानना चाहिये

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें 'रहोभ्याख्यान' के स्थानमें 'रहस्याभ्याख्यान' है अर्थ भेद नहींहै क्योंकि रहस् और रहस्य शब्दोंका एकही 'गोप्य' छिपाने योग्य अर्थहै हमारी सम्प्रदायकी पुस्तकोंमें कहीं पर रहोऽभ्याख्यानहै और कहीं पर रहोभ्याख्यान है। (२) अनेष्ठितस्य अनुष्ठितम् अनुष्ठित शब्द

अन्येनानुक्तं यत्किंचित्परप्रयोगवशादेवं तेनोक्तमनुष्ठितमिति वंचननिमित्तं लेखनं कूटलेखक्रिया। हिरण्यादेर्द्रव्यस्य निक्षेप्तुर्विस्मृतसंख्यस्याल्पसंख्येयमादधानस्यैवमित्यनुज्ञानवचनं न्यासापहारः। अर्थप्रकरणाङ्गविकारभ्रूनिक्षेपणादिभिः पराकूतमुपलभ्य तदाविष्करणमसूयादिनिमित्तं यत्तत्साकारमन्त्रभेद इति कथ्यते॥ त एते सत्याणुव्रतस्य पंचातिचारा बोद्धव्याः।

अन्येन[३] अनुक्तम्[१] यत्[१] किंचित् * परप्रयोगवशात्[३] एवम्*
तेन[३] उक्तम्[१] (१) अनुष्ठितम्[१] इति*
वंचना-निमित्तम्[१] लेखनम्[१] कूटलेखक्रिया[१]।

=अन्य [पुरुष] से विना कहा गया जो किंचित् परके
=अभिप्राय के[=प्रयोग] वशसे ही अथवा चेष्टाके[=प्रयोग]वशसे ही कि
=तिस् द्वारा ऐसा[=इति] कहागया है वा तिस द्वारा ऐसा किया गया है
=[पर को]ठगनेके लिये लिखना सो कूटलेखक्रिया है अर्थात् झूठा बनावटी वा कृत्रिम पर को ठगने के लिये लेख लिख देना सो कूटलेख क्रिया है

हिरण्य-आदेः[६] द्रव्यस्य[६] निक्षेप्तुः[६] विस्मृत-संख्यस्य-
अल्प-संख्येयम्[१] आदधानस्य[६] एवम्*इति*
अनुज्ञानवचनम्[१] न्यास-अपहारः[१]।

=सुवर्ण आदि वस्तुके सोपने वालेके विस्मरण होगई है संख्या जिसकी
=थोड़ी संख्याउठाने वालेको ऐसा
=आदेशका वचन वा सम्मति का वचन[सो]न्यासापहार है अर्थात् कोई पुरुष न्यास [=धरोहर]किसीके रखगया है और गणना भूल करि थोड़ी मांगने लगा तब उसको उसकी धरोहर की गणना न बतलाकर कहना कि जितना हो तुम्हारा लेजाओ सो-न्यास-अपहार-[=धरोहर का अपहरण नामा अतीचार] है

अर्थ-प्रकरण-अङ्ग विकार-भ्रू निक्षेपण-आदिभिः[३]
पर-आकूतम्[२] उपलभ्य÷
तद्-आविष्करणम्[१] असूयादि-निमित्तम्[१]
यत्*तत्*साकार-मन्त्र-भेदः[१] इति कथ्यते[T]। ते[३] एते[३]
सत्य-अणुव्रतस्य[६] पंच-अतिचाराः[१] बोद्धव्याः[३]॥

=प्रयोजन करि-प्रकरणकरि-अंगकी चेष्टाकरि-भ्रकुटी के विक्षेपादिक करि
=अन्यका अभिप्राय [=आकूत]जान कर
=ईर्षादिक निमित्तकर उस[अभिप्राय]का प्रगट करना
=जो सो साकार मन्त्र भेद ऐसा कहा गया है। ते इतने
=सत्य अणुव्रत के पांच अतीचार जानना चाहिये॥

पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनोंमें आता है क्रियाविशेषस्य पुल्लिगमें है इसलिये अनुष्ठितस्य को षष्ठी विभक्ति पुल्लिग में लिखाहै और अनुष्ठितम् को नपुसलिंग मेंलिखा है।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः । २७॥

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥

=स्तेनप्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः(पञ्चास्तेयाणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)

सूत्रार्थः-स्तेनप्रयोग- =चोरी(करने) का उपाय बताना वा प्रेरणा करना(=प्रयोग)अथवा चोर(=स्तेय) को उपाय बताना वा प्रेरणा करना सो स्तेन प्रयोग है ।

तदाहृतादान- =उस (तद्=चोरी) से लायेहुए (द्रव्य) का (=आहृत)ग्रहण करना वा लेना(=आदान) अथवा उस (चोर) द्वारा लाये हुए (वस्तु) का (=आहृत) लेना (=आदान) सो तदाहृतादान है ।

(२)विरुद्धराज्यातिक्रम- =राज्य से विरुद्ध(=विरुद्ध राज्य)अन्याय रूप देन लेन(=अतिक्रम)(जैसे बहु मूल्य द्रव्यको धोकेसेथोड़े मूल्यमें ले लेना सो विरुद्ध राज्यातिक्रम (अतीचार)है अथवा राज्यकेन्याय से विरुद्ध वा प्रतिकूल सोविरुद्ध राज्यातिक्रम अतिचार है, जैसे खोटेरुप्यका बनाना, खोटादाम चलाना इत्यादि ।

हीनाधिकमानोन्मान- =(लेन देनके) बाट(=मान)तखड़ी(=उन्मान)न्यून(=हीन)बढती (अधिक राखने सो हीनाधिक मानोन्मान [अतीचार]है-संक्षेपतः कमती बढ़ती बाट तखड़ी लेनेदेनेको रखना सो हीनाधिकमानोन्माननामअतीचारहै

प्रतिरूपकव्यवहाराः[१] =सदृशरूप बनाकर व्यापारकरना अथवा वैसा ही बनावटीरूप बनाकर व्यवहार करना अर्थात् बहु मूल्य वस्तुमें अल्पमूल्य द्रव्य मिलाकर बहुमूल्य वस्तुके सदृश उसका रूप करके मायाचार पूर्वक व्यापार करनेको प्रतिरूपकव्यवहार कहते हैं

पञ्च-अस्तेय-अणुव्रतस्य[६] अतिचाराः[१] भवन्ति T=पांच अचौर्य अणुव्रतके अतीचार होते हैं॥

---

(१) सूत्र पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "तत्र स्तेनेषु हिरण्यादि प्रयोगः" = "उनमें (चोरोंमें) सुवर्ण आदिका लेन देन करना यह स्तेन प्रयोगहै ऐसा अर्थ कियाहै २) श्वेताम्बर आम्नायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में ऐसा अर्थ है" विरुद्धराज्यमें अतिक्रम करना अर्थात् विरुद्धराज्यमें कमका उल्लंघन करना क्योंकि विरुद्धराज्य में सब स्तेय युक्त ही ग्रहण होता है (= विरुद्धे हि राज्ये सर्वमेव स्तेययुक्तमादानं भवति) जैसे अपने राजा और अन्यराजामें युद्धके समय में, अन्यराजा की सहायता अस्त्र शस्त्र और अन्य प्रकारकी वस्तुयें देकर करना ॥

मुष्णन्तं स्वयमेव वा प्रयुंक्तेऽन्येन वा प्रयोजयति प्रयुक्तमनुमन्यते वा यतः स स्तेनप्रयोगः। अप्रयुक्तेनाननुमतेन च चौरेणानीतस्य ग्रहणं तदाहृतादानम्। उचितन्यायादन्येन प्रकारेण दानग्रहणमतिक्रमः- विरुद्धं राज्यं विरुद्धराज्यं विरुद्धराज्येऽतिक्रमः विरुद्धराज्यातिक्रमः। तत्र ह्यल्पमूल्यलभ्यानि महार्घ्याणि द्रव्याणीति प्रयत्नः ॥ प्रस्थादि मानं,

पद छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सत्ताईसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

मुष्णन्तम्[२]स्वयम्*एव*(१)वा* (२)प्रयुंक्ते[१]अन्येन[३] वा*
प्रयोजयति T प्रयुक्तम्[२]अनुमन्यते T वा*
यतः*सः[१]स्तेनप्रयोगः[१], अप्रयुक्तेन[३]॥
अननुमतेन[३]च चौरेण[३]
आनीतस्य[६] ग्रहणम्[१]तदाहृतादानम्[१] ।

=चोर को आप(=स्वयम्)ही (=एव) प्रेरणा करता है अथवा दूसरेसे
=प्रेरणा करता है वा प्रेरणा करनेको अनुमोदना करता है, भला मानता है
=इसी कारण से (=यतः) सो स्तेन प्रयोगहै, (चोर को)न प्रेरणाद्वारा
=और (=च) [चोर की]न अनुमोदनाद्वारा (वरन्) चौर (=चोर)के द्वारा
=लायेहुये[द्रव्य] का (=आनीत) लैना है सो तदाहृतादानहै)
अर्थात् शब्दार्थ यह हुआ कि उसचोरके लायेहुए द्रव्यका ग्रहण [=आदानम्]

उचित-न्यायात्[५]अन्येन[३]प्रकारेण[३]दान-ग्रहणम्[१]
अतिक्रमः[१];विरुद्धम्[१]राज्यम्[१]विरुद्धराज्यम्[१]
विरुद्धराज्ये[७] अतिक्रमः[१]विरुद्धराज्यातिक्रमः[१] ।
तत्र*हि*महान्-अर्घ्याणि[३]द्रव्याणि[३]अल्पमूल्य-लभ्यानि[३]॥
इति#प्रयत्नः[१] ॥ प्रस्थादि[१]मानम्[१]

=योग्य न्याय से(वर्जित)अन्यथांतिकरि वा अन्यथा देन-लेन सो
=अतिक्रमहै, विरुद्धहै राज्य से सो विरुद्धराज्यं है
=[यह]अन्यथा देनलेन (=अतिक्रम) राज्यसे विरुद्ध सो विरुद्ध राज्य अतिक्रम है
=क्योंकि (=हि) तहां बहु मूल्य (=अर्घ्याणि) द्रव्यें थोड़े मूल्यमें लभ्य
=ऐसा प्रयत्न (विरुद्धराज्य अतिक्रम) है प्रस्थ (=एक सेरका माप)आदिक=मान है

(१) यह वा शब्द संस्कृतके बोल चाल में आता है भाषामें 'अथवा चोर को आपही इत्यादि अनुवाद अच्छा न होगा' (२ प्रयुंक्ते और प्रयोजयति (अन्य पुरुष-एकवचन)युज्धातु से निम्न लिखित रीतिसे बनते हैं(क)युज्=दिवादि चतुर्थ गणका धातुहै य विकरणजोड़ा जाता है अकर्मक है जैसे युज्यते =जुड़ता है -समाधि लगाता है यहां चतुर्थ गण में प्रयोग नहींहै (ख) युज् जुड़ना—प्रयुज्=प्रेरणा करना रुधादि उभय पदी सकर्मक धातु है इस गणके धातुके मूल का स्वर और अन्तके व्यञ्जनके मध्यमें क्रियारूप बनानेसे पहले न लाते हैं जैसे युज्-यु+न+ज्=युनज्+ते इस न का अकारलिङ्सार्वधातुक(क्रियाके साथ ज ड़े जाने)प्रत्ययोंके पहिले गिर जाता है अतःयुन्+ज्+ते हुआ॥च अथवा ज्=क्,ख्-च्,छ्-ट्,ठ्-त्,थ्-प्,फ्-श्,ष्,स्के पहिले क् में पलट जाता है और ग्,घ्-ज्,झ्-ड्,ढ्,द्,ध्-ब्,भ् और ह्के पहिले ग् में पलट जाता है अतः युन्ज्+ते=युङ्क्ते,हुआ

तुलाद्युन्मानमेतेन न्यूनेनान्यस्मै देयमधिकेनात्मनो ग्राह्यमित्येवमादिकूटप्रयोगो हीनाधिकमानोन्मानम् ॥ कृत्रिमैर्हिरण्यादिभिर्वंचनापूर्वको व्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहारः ॥ त एते पंचादत्तादानाणुव्रतस्यातिचाराः ॥

॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

तुलादि[१]'''उन्मानम्[१]'''एतेन[३]'''न्यूनेन[२]'''अन्यस्मै[४]देयम्[३]''' =ताखडी आदिक उन्मानहैं इस (मान वा उन्मान)करि अन्यके लिये न्यूनदियाजाय
आत्मनः[५]अधिकेन[३]''' ग्राह्यम्[१]'''इत्येवम्*आदि[१]''' =आपको (=आत्मनः[५]) अधिककरि लियाजाय इत्यादिक
कूट-प्रयोगः[१] हीनाधिकमानोन्मानम्[१]''' ॥ =कपटका अनुष्ठानसोही नाधिक मानोन्मान (नामक चौथा अतिचार) है
कृत्रिमैः[३] हिरण्यादिभिः[३] =सुवर्णआदिक खोटेबनायकरि (=कृत्रिमैः)ठगईके बनायकरि (=कृत्रिमैः)
वंचना-पूर्वकः[१]व्यवहारः[१] प्रतिरूपकव्यवहारः[१] ॥ =मायाचारपूर्वक व्यापार सो प्रतिरूपक व्यवहार [नामा पांचवां अतीचार] है
ते[१]एते[१]पंच(१ अदत्ता-दान-अणुव्रतस्य[६]'''अतिचाराः[१]- =ते एते पांच बिनादी हुई का(=अदत्ता)त्याग,छोड़ना[=दान] अणुव्रतके अतीचार है

॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीड़ाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥

यह 'न्' उस अनुनासिक अक्षर में पलट जाता है जो न् के पश्चात् के वर्गसे संबंध रखता है क्योंकि न् के पश्चात् क् है इसलिये न् पलट गया ङ् में,तब युङ् क् + ते हुआ प्रजोड़ो तब प्रयुङ्क्ते = प्रयुक्ते बना(ग)युज् = मिलना-जुड़ना,-चुरादि दशवां गणका उभय पदी है इसका विकरण अय् है युज् का गुण होकर योजय हुआ प्र-ति लगाने से प्रयोजयति बना । (घ) युज् भ्वादि प्रथम गणका धातु जब होता है तब अ विकरण लगाकर योजति बनता है ॥ (ङ) पंच-अदत्तादान-अणुव्रतस्य-अतिचाराः । इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट समझ [illegible] प्रत्यक्षरूपसे यह हुआ कि पांच स्तेय(=अदत्तादानं तेयम् देखो सूत्र १५)अणुव्रतके अतीचार हैं अब स्तेय अणुव्रत नहीं है वरन् अ-तहँ,अस्तेय, वा अदत्तादान-त्याग, अदत्तादान विरति,अवश्य अणुव्रत वा (महाव्रत)है इसीहेतुसे तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २८७ में यह वाक्य ऐसे है कि 'त एते पंच अदत्तादानविरतेरतीचाराः इसमें अणुव्रत शब्द बढा देनेसे, 'त एते पंच अदत्तादानविरतेरणुव्रतस्यातीचाराः' हुआ और इसी कारणसे अर्थप्रकाशिकामें, अदत्तादानत्यागनामा अणुव्रतके पांच अतिचार त्यागने योग्य है ऐसा वाक्य लाये यदि यह शब्द रह गया हो तो

=परविवाहकरण-इत्वरिकापरिग्रहीतागमन-इत्वरिकाअपरिगृहीतागमन-अनङ्गक्रीडा-कामतीव्रअभिनिवेशाः (पञ्च ब्रह्मचर्याणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)

=परविवाहकरणम्$^{\frac{1}{2}}$'''' इत्वरिकापरिगृहीतागमनम्$^{\frac{1}{2}}$'''' इत्वरिकाअपरिग्रहीतागमनम्$^{\frac{1}{2}}$'''' अनङ्गक्रीडा$^{\frac{1}{2}}$'''' कामतीव्रअभिनिवेशः$^{\frac{1}{2}}$ पञ्च$^{\frac{1}{2}}$ ब्रह्मचर्य-अणुव्रतस्य$^{\frac{1}{2}}$।।'अतीचाराः$^{\frac{1}{2}}$' भवन्ति T

सूत्रार्थः—परविवाहकरणम् $^{\frac{1}{2}}$''''

=दूसरेके लड़की लड़केका विवाह करना अर्थात् अपनी पुत्री विना दूसरेकी पुत्रीका विवह करदेना अथवा अपने पुत्र विना दूसरे के पुत्र का विवाह करना ।।

(१) इत्वरिकापरिग्रहीतागमनम्$^{\frac{1}{2}}$''''

=व्यभिचारिणी विवाही हुई स्त्री के पास जाना अथवा व्यभिचारिणी रांड के पास जाना

'त एते पंचादत्तादानत्यागाणुव्रतस्यातिचाराः' ऐसा वाक्य होना चाहिये ॥ इस अवस्थामें पदच्छेद और अर्थ ऐसा होता है कि पंच-अदत्ता-आदान-त्याग-अणुव्रतस्य अतिचाराः =पांच विनादिये हुये के (=अदत्ता) ग्रहणसे (=आदान) परित्याग(=त्याग) सो अणुव्रत के अतीचार हैं। जब मैंने चार हस्तलिखित प्रतियों से पाठ मिलाया तो दोनों मुद्रित आवृत्तियोंके पाठ किंतु एते पंचादत्तादानाणुव्रतस्यातिचाराः'मिलगये मैंने इसी पाठ को रक्खा है और अपनी समझ से 'ते एते पंच-अदत्ता-दान-अणुव्रतस्य-अतिचाराः" पदच्छेद करके और दानका अर्थ त्याग, वा छोड़ना लेकर यह अनुवाद ते इतने पांच विनादी हुई (वस्तु) का (=अदत्ता) छोड़ना (=दान) नामा अणुव्रतके दूषण हैं, किया है अर्थ दोनों प्रकारके पाठों से एक ही निकला जो विद्वान् इस पर प्रकाश डालकर सूचित करगे उनका आभारी हूंगा। (१) श्वेता-बर सम्प्रदायमें 'इत्वरिका' के स्थानमें'इत्वर' शब्द है अर्थ वही लिया है अतीचारका जो हमारे यहां किया है, "व्यभिचारिणी वा दूसरेकी विवाहिता से संग करना" अन्यकी विवाहिता वा लटा स्त्रीसेगमन करना ऐसा अर्थ समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १६८ पर किया है। दूसरेकी विवाही हुई व्यभिचारिणी स्त्रीके यहां जाना आना वा उसके साथ देन लेन वचनालापादि करना सो 'परिग्रहीतेत्वरिका गमन नामका अतीचार है ऐसा अर्थ पन्नालालजी कृत टीकामें किया है इस से प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ भेद कुछ भी नहीं है। 'इत्वर' शब्दका अर्थ पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६६ में तीनों लिंगों में 'नीच-क्रूरकर्मा' लिखा है। और पृष्ठ ६६ में ही इत्वरी का अर्थ 'व्यभिचारिणी' जो प्यारेको मिलनेकी इच्छासे संकेत किये गये स्थान पर जाती है अथवा 'अभिसारिका' लिखा है अभिसारिका वा अभिसारिणीका अर्थ पृष्ठ ३७ में 'नायकको मिलने के लिये संकेत स्थानमें आय पहुंचने वाली स्त्री अर्थात् इत्वरी, व्यभिचारिणी, अभिसारिका और अभिसारिणी वा एक सा अर्थ हुआ ॥ अमरकोश के सोलहवां मनुष्य वर्ग में श्लोक १० और ११ में जारिणी स्त्रीको 'इत्वरी' कहते हैं जैसे पुंश्चली-धर्षिणी-बंधकीसती कुलटेत्वरी ॥ १० ॥ स्वैरिणी पांसुला च स्यादशिश्वी-शिशुना विना ॥ अर्थात् पुंश्चली-धर्षिणी-बंधकी-असती-कुलटा-इत्वरी ॥१०॥ स्वैरिणी-पांसुला ये आठ नाम जारिणी स्त्री के हैं। प्रश्न यह है कि 'इत्वर' शब्दके होतेहुये इत्वरिका शब्द हमारे यहां क्यों लाये अर्थात् जब इत्वरी का अर्थ जारिणी वा यभिचारिणी स्त्रीका है तब इत्वरी शब्दके "निदा अर्थ विषे क प्रत्ययत इत्वरिका ऐसा नाम भया" वचनिका पृ० ५७४ सो क्यों ? यदि कहे कि उमास्वामी सूत्रकर्ताके समयमें 'इत्वरी' शब्द का अर्थ केवल स्त्रीका था दुराचारिणी स्त्रीका नहीं था पश्चात् में व्यभिचारिणीका अर्थ हुआ अथवा दुराचारिणीका अर्थ होगया क्योंकि बहुत से शब्द भाषा और संस्कृत में ऐसे हैं कि प्राचीन कालमें उनके अर्थ अच्छे थे और पश्चात् वे शब्द बुरे अभिप्रायमें काम आने लगे सो बात इस शब्दके सम्बन्धमें नहीं है क्योंकि अमरकोश 'तत्त्वार्थ सूत्र' से पहिलेका है उसमें 'इत्वरी' का अर्थ जारिणी स्त्रीका है अनुवादक के विचारमें इत्वर शब्दसे सूत्र लघु होता है और श्वेता०स०केअनुसारठीकभी है।

कन्यादानं विवाहः परस्य विवाहः परविवाहः परविवाहस्य करणं परविवाहकरणम् । परपुरुषानेति गच्छतीत्येवंशीला इत्वरी, कुत्सायां क इत्वरिका । या एकपुरुषभर्तृका सा परिगृहीता । या गणिकात्वेन पुंश्चलित्वेन वा

इत्वरिकाअपरिगृहीतागमनम् [१]।।। =कुलटा अविवाहिता (जैसे कन्या–कुमारी–वेश्यादिक) स्त्रीके पास जाना अर्थात् वह व्यभिचारिणी स्त्री जिसका कोई पति वा भरतार नहीं है जैसे गणिका–कन्या–कुमारी इत्यादिकके पास जाना आना देनलैन वार्तालापादिक करना इत्वरिकाअपरिग्रहीतागमनहै।

अनङ्गक्रीडा [१]।। =लिंग वा योनि जो काम सेवने के अंग है तिन को छोड़ कर अन्य अंगोंमें वा अन्य अंगोंसे वा अन्यरीति से कामकेलिकरना (सो अनंग क्रीड़ा है)

(१) कामतीव्र–अभिनिवेशः [१] =कामका प्रवृद्ध वा बढाहुआ परिणाम अर्थात् जिसमें काम सेवनेका निरन्तर अभिप्राय प्रवर्तता है वा अत्यन्त कामी होना(सो कामतीव्राभिनिवेश नामा पांचवां अतिचारहै)

पञ्च [१]।।। ब्रह्मचर्य-अणुव्रतस्य [६]।।। अतिचाराः [३] भवन्ति T=पांच ब्रह्मचर्य अणुव्रतके वा एकदेश व्रतके व्यतिक्रम दूषण वा अतीचार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अट्ठाइसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

(२)कन्यादानम् [१]।।। विवाहः [१] परस्य [६] विवाहः [१] परविवाहः [१] =कन्याका देना सो विवाह है दूसरे वा अन्यका विवाह सो पर विवाह है

पर–विवाहस्य [६] करणम् [१]।।। पर-विवाह-करणम् [१]।।। =अन्यके विवाह का करना सो परविवाह करना है अर्थात् अपनी पुत्री विना दूसरे की पुत्रीका विवाह करना अथवा अपने पुत्र न होनेपर दूसरेके पुत्रका विवाह करना

परपुरुषान् [२] एति T गच्छति T इत्येवंशीला [१]।। =अन्य पुरुषोंके (पास) जाती है (=एति) गमन करती है ऐसे स्वभाववाली है सो

इत्वरी [१]।। कुत्सायाम् [७] (२) कः [१] इत्वरिका [१]।। इत्वरी अर्थात् कुत्सा है, निंदा[अर्थ]में क [प्रत्यय इत्वरी शब्दमें जोड़ने] करि इत्वरिका हुआ

या [१]।। एकपुरुषभर्तृका [१]।। सा [१]।। परिगृहीता [१]।। या [१]।। =जो एक मनुष्य की भरतारा वा गृहणा हो सो परिगृहीता है, जो

गणिकात्वेन [३]।।। पुंश्चलित्वेन [३]।।। वा* =वेश्यापनकरि अथवा[वा] असतीपनसे [पुंश्चलित्वेन]

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "कामतीव्राभिनिवेशः" के स्थानमें 'तीव्रकामाभिनिवेशः' है दोनों वाक्योंका अर्थ एक है ।

(२) दश वर्षकी कारी–अ विवाही हुई लड़की ये दो अर्थ क-याके पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६३में लिखेहैं यहा विना विवाही हुई लड़की से अभिप्राय है ।

परपुरुषगमनशीला अस्वामिका सा अपरिगृहीता। परिगृहीता चापरिगृहीता च परिगृहीता-परिगृहीते इत्वरिके च ते परिगृहीतापरिगृहीते च इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीते, तयोर्गमने

परपुरुषगमनशीला[१] अस्वामिका[२] सा[३]	=दूसरेमनुष्यके पास) जानेके स्वभाववाली(=शीला)बिनाभरतार वाली वा पतिहीन सो
अपरिगृहीता[१] ;परिगृहीता[२] च-अपरिगृहीता[३] च=	अपरिगृहीता है। बहुरि(=च)परिगृहीता और(=च)अपरिगृहीता(मिलकर-समासहोकर)
परिगृहीता-अपरिगृहीते[१] इत्वरिके[२] च ते[३]	=परिगृहीता परिगृहीते (वाक्य)हुआ बहुरि(=च)तेदोनों इत्वरिके
परिगृहीतापरिगृहीते[१] च*	=और(च)परिगृहीता परिगृहीते (मिलकर—समासहोकर)
इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीते[१]	=इत्वरिका परिगृहीता अपरिगृहीते (ऐसावाक्य हुआ)
(१) तयोर्गमने[२]	=तिन दोनों प्रकार की कुलटाओंका गमन

(१)परिगृहीतापरिगृहीतेत्वरिका गमन में जो गमन शब्द है उस के तीन अर्थ हो सकतेहैं। एक तो किसी अन्य कार्य की योजना करते समय भ्रम से वेश्या वापुश्चलीके गृह के अन्दर पहुंच जाना, जैसे कोई पुरुष किसी नगर से परिचित नहीं है और वह उस नगर में रहना चाहता है इस लिये वह भाड़े के लिये गृह की खोजमें वेश्या वा पुंश्चलीके गृह-पर पहुंच जावे। दूसरे स्त्री। प्रसंग अर्थ में भी गमन शब्द आता है। (देखो वैद्य कोश पृष्ठ २३६)। वेश्या वा व्यभिचारिणी स्त्री के यहां रागभावसे संलापादिके (=आपस में प्रेमसे बात चीत करना वा एकान्त में बात चीत आदिक करना) लिये आना जाना परन्तु उनके साथ प्रसंग न करना इस अर्थ में भी गमन शब्द आताहै। अब देखना तो यह है कि यहां गमन शब्द के इन तीनों अर्थों में कौन सा अर्थ लेना चाहिये। परन्तु इस के पहिले अतीचार के लक्षण का "कि व्रतका मूल से नाश तो न हो पर तु व्रत दूषित हो जावै" ॥ स्मरण रखना प्रयोजनीय है कि यदि गमन शब्द का पहिला अर्थ लिया जाता है तो उस अर्थसे अणु व्रतोंमें कोई दोष नहीं पहुंचा है इस लिये पहिले अर्थ में अतीचार का लक्षण नहीं घटता है। यदि गमन शब्द का स्त्रीप्रसंग अर्थ लेते हैं तो स्वदार संतोष वा पर स्त्री त्याग व्रतके मूल से नष्ट होनेके कारण परिगृहीतेत्वरिका गमन वा अपरिगृहीतेत्वरिका गमन अतीचार न होकर अनाचार हो जाते हैं। क्योंकि इस चौथे अणुव्रत में अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य समस्त स्त्रियों का त्याग किया जाता है। यह दूसरा अर्थ भी नहीं आता है यदि गमन शब्द का तीसरा अर्थ लिया जाता है तो इस वेश्या या पुश्चली स्त्री के साथ प्रसंग तो नहीं किया जाता है अत एव ब्रह्मचर्य अणुव्रत समूल नष्ट तो नहीं होता है परन्तु रागपरिणामों से चित्त अवश्य चलायमान हो गया है अत एव अन्तरंग में व्रत के दूषित हो जानेसे नष्ट हो गया परन्तु बाह्यसे व्रत नष्ट नहीं हुआ अत एव व्रतके भंगाभंग होने से अतीचार लगता है। इस लिये पाठकों को यहां पर वेश्या वा पुश्चली स्त्रीसे काम राग भाव से संलाप आदिके लिये उस के यहां जाना गमन शब्द का तीसरा अर्थ लेना चहिये। इसका अर्थ हमारी समझ में ऐसा ही आया है अधिक तर पाठक गण विचार करलें ॥

इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमने। अङ्ग प्रजननं योनिश्च ततोऽन्यत्र क्रीडा अनंगक्रीडा। कामस्य प्रवृद्धः परिणामः कामतीव्राभिनिवेशः। त एते पंच स्वदारसन्तोषव्रतस्यातिचाराः॥

॥क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः॥२९॥

इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनेइ''' ।

अङ्गम्१''' प्रजननम्१''' योनि१''' च ततः अन्यत्र क्रीडा१''' अनंग-क्रीडा१'''

(१)कामस्य१ प्रवृद्धः१ परिणामः१ कामतीव्र-अभिनिवेशः१'

ते१' एते१' पञ्चस्वदारसंतोषव्रतस्य१ अतिचाराः१'

=इत्वरिका परिगृहीताऽपरिगृहीतागमने' यह वाक्य) हुआ अर्थात् व्यभिचारिणी विवाहा हुई वा पतिवाली स्त्रीके पास जाना आना सोई इत्वरिका परिगृहीता गमन नामा अतीचार है और कुत्सटा अविवाहिता (जैसे कन्या कुमारी वेश्यादिक)के पासजाना आनासो इत्वरिका अपरिगृहीता गमन नामा अतीचार है

=लिंग (=प्रजनन) तथाभग (=योनि) अंगहै इस (अंग से दूसरे स्थानमें क्रीडन वा केलि =सो अयोग्य अंगसे क्रीड़ा है अर्थात् काम सेवनके योग्य अंगोंको छोड़कर अन्य अंगोंसे अन्य अंगोमें वा अन्यरीति से क्रीड़ा करना सो अनंग क्रीडा है

=कामका बढ़ाहुआ भाव अर्थात् जिसमें कामसेवनका निरन्तर परिणाम वा अभिप्राय प्रवर्तता है सो कामतीव्राभिनिवेश (नामक अतीचार) है

=ते एते पांच अपनी स्त्रीमें तृप्ति (अणु) व्रतके व्यतिक्रम वा दूषण हैं

क्षेत्र ..स्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाण-अतिक्रमाः (पञ्च परिग्रह विरतेरणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें और हमारे यहां की अधिकतम पुस्तकोंमें यही उपर्युक्त पाठ है जो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है परन्तु पं० सदासुखजी कृत अर्थप्रकाशिकामें और तत्त्वार्थ सूत्रकीलघुटीकामें और पं० लालचन्द्र जी लाहौर की मुद्रित तत्त्वार्थ सूत्र में कुप्यं शब्दके पश्चात् भाण्ड (भांड) शब्द अधिक पाया जाता है। भाण्ड अथवा भांड शब्दका अर्थ पात्र वा बासन है। यह भाण्ड शब्द व्यर्थ है क्योंकि इसका अभिप्राय कुप्य शब्दमें आजाता है, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसका अर्थ ऐसा लिखा है "और कुप्य अर्थात् भाण्ड वर्तनादि पदार्थोंको प्रमाण से अधिक नियत करना" पं० पन्नालालजी ने इसप्रकार लिखा है "वस्त्र-थाली-लोटा, कपास-चन्दनादि कुप्यहैं" ऐसा जान पड़ता है कि यह भाण्ड शब्द पीछेसे बढ़ाया गयाहै क्योंकि तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें लिखाहै कि क्षेत्रवास्त्वादीनां द्वयोर्द्वयोः द्वन्द्व = भवति किं-अविशेषोक्त्याह-प्राक कुप्यात् अर्थात् क्षेत्र-वस्तु-आदिकों के दो दो का जोड़ा होता है वा दो दो का द्वंद्व समास होता है

=क्षेत्र-वास्तु-प्रमाण-अतिक्रमः, हिरण्य-सुवर्ण-प्रमाण-अतिक्रमः, धनधान्य-प्रमाण-अतिक्रमः दासी-दास-प्रमाण-अतिक्रमः कुप्यप्रमाण अतिक्रमः पञ्चपरिग्रहविरतेः अणुव्रतस्य अतिचाराः भवन्ति—

सूत्रार्थः—क्षेत्र-वास्तु-प्रमाण-अतिक्रमः[1]

=खेत और रहनेके घरकी मर्यादा का उलंघन करना अर्थात् खेत और गृहको प्रमाण से अधिक ग्रहण करलेना भावार्थ अन्न वा धान्यादिक उत्पन्न होने के स्थान को तथा रहनेके घरआदि के राखने की प्रथम तो एक सीमा नियत करना पश्च त् लोभके वशसे अधिक ग्रहण करना (सोक्षेत्रवास्तु प्रमाण अतिक्रम नामका अतिचार है

हिरण्यसुवर्ण-प्रमाण-अतिक्रमः[1]

=गढ़ेहुये-अन गढ़ेहुये प्रत्येक प्रकारके सोने चांदी रुपयाको तथा सुवर्ण को प्रमाण से. प्रतिज्ञा किये हुयेसे अधिक संग्रह करना(सो हिरण्य सुवर्ण प्रमाण अतिक्रम अतिचार है)

धनधान्य-प्रमाण-अतिक्रमः[1]

=पोहे(=धन) और नाज-अन्न (=धान्य) की मर्यादाको उलंघन करना अर्थात् गौ भैंस बैल अश्व-ऊंट-हाथी आदि जो हैं तथा जौ गेहूं चना-ज्वार-मटर-मक्का तंदुल इत्यादि अनाजकी प्रतिज्ञा की थी उससे अधिक संग्रह करना वा रखना(सोधन-धान्य प्रमाण अतिक्रमअतिचारहै

दासी-दास-प्रमाण-अतिक्रमः[1]

=चाकर और चाकरनियोंकी नियमित गणनाको उलंघकर अधिक नियत करना(सोदासी) दास प्रमाण अतिक्रम नामक अतिचार ग व्यतिक्रम है)

कुप्य-प्रमाण-अतिक्रमः[1]

=सोने चांदीके अतिरिक्त अन्य गढ़ेहुई (=गढ़ीहुए) अनगढ़ी (अनगढेहुए) धातु जैसे= तांबा-पीतल-जस्त-आदिक) को (=कुप्य-) अथवा भाण्डा-वर्तनादिक (=कुप्य) अथवा वस्त्र-कपास-चंदनादिकको (=कुप्य) कियेहुये प्रमाणसे अधिक संग्रह करना (सोकुप्यप्रमाणातिक्रम नाम का अतिचार है

पंच[1] परिग्रहविरतेः[6] अणुव्रतस्य-अतिचाराः[1] भवन्ति =(ये) पांच परिग्रह परिमाण अणुव्रतके अतीचार होते हैं

(प्रश्न होने पर) क्या विशेषरहित (यह जोड़ा चलाजाता है वा चालू रहता है) ऐसे कहते हैं कि (कुप्य के) कुप्य (शब्द) के पहिले तक; इसी प्रकार तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४३० में "क्षेत्रवास्त्वादीनां द्वयोर्द्वयोर्द्वन्द्वः प्राक् कुप्यात्" ऐसा वाक्य है॥ सर्वार्थसिद्धि संस्कृत टीकमें जो इस सूत्रका विग्रह दिया है 'क्षेत्रंच वास्तुच इत्यादि' इससे भी प्रगट है कि भाण्ड शब्द मूलमें नहीं है जब इन चारों संस्कृत ग्रंथों से स्पष्ट है कि भाण्ड शब्द नहींहै मेरी समझमें यह शब्द पीछेसे किसीने विचारकर कि पांचों द्वंद्वहोजाय बढ़ादियाहै॥ सूत्रका अर्थ भी दोनों संप्रदायोंमें एकहै

[१] स्यात्कोशश्च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते। ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यं रूप्यं तद्यमाहतम् [देखो अमर कोश (उत्तरार्ध) वैश्य वर्ग श्लोक ११]

स्यात् कोशः च हिरण्यम् च, कृते— =बहुरि [=च] कोश तथा [=च] हिरण्य [ये दो नाम], गढ़े हुये (=कृत=गढ़े हुये-बने हुये)

अकृते हेम रूप्ये =और अन गढ़े हुये(=अकृत=अगढ़े हुये-बिना बनेहुये), सोना रूपके हैं अर्थात् कोश [कोष] के

क्षेत्रं सस्याधिकरणम्। वास्तु अगारम्। हिरण्यं रूप्यादिव्यवहारतन्त्रम्। सुवर्णं प्रतीतम्। धनं गवादि। धान्यं व्रीह्यादि। दासीदासं भृत्यस्त्रीपुंसवर्गः।

वृत्त्यनुवादः-क्षेत्रम्[१]''सस्य-अधिकरणम्[२]'',वास्तु[३]''अगारम्[४]''; हिरण्यम्[१]''रूप्य-आदि[२]''व्यवहार-तन्त्रम्[३]''; सुवर्णम्[१]''प्रतीतम्[२]'',धनम्[१]''गौ-आदि[२]''। धान्यम्[१]''व्रीहि-आदि[२]''दासीदासम्[१]''भृत्यः[२]स्त्रीपुंसवर्गः[३]''

=क्षेत्र नाज(=सस्य)(उपजाने)का आधार है अर्थात् खेतहै वास्तु गृह वा घर है
=हिरण्य रूपा (=तांवा मिली हुई चांदी वा रजत) आदिक व्यवहार में-
=प्रवृत्तिका कारण (=तन्त्रम्) है। सोना-प्रसिद्ध वा ख्यातहै, धन गौ आदि है
=धान्य तंदुल आदिक हैं दासीदास चाकर, नर नारिका समूह[=वर्गः] है

इक्कीस अर्थोंमें से बना हुआ अथवा वे बना हुआ सने अथवा आदी के मो हैं (वैश्य कोश पृष्ठ२११)
हिरण्य नो अर्थोंमेंसे[क]सोना(ख चांदी अर्थोंमें भी आता है(वैश्य संस्कृत आंगिल क श पृष्ठ ८३३ देखो]
ताभ्याम् यत् अन्यत् तत् कुप्यम् =तिन (हेम रूप्य]से जो भिन्न है वह कुप्य है अर्थात् सोने चांदी को छोड़कर शेष धातु कुप्य हैं
रूप्यम् तद् द्वयम् आहतम् =उन दोनों [=कुप्य और चांदी] मिलाकर बनाया जाता है सो रूपा है ॥

इस श्लोकसे प्रगट है कि कुप्य शब्द का अर्थ अमर कोशके अनुसार सोने चांदी को छोड़कर तांबा आदिक सब धातु चाहें वे गढे हुए हों और चाहें अनगढ़े हुए हैं, पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ११९ में कुप्यशब्द का अर्थ इसप्रकार किया है कि सोने और रूपे से भिन्न तैजस उपधातु, सोने रूपे के बिना और सबधातु' है। सात उप धातुहैं-(क)स्वर्णमाक्षिक (सोना मक्खी) (ख) तारमाक्षिक (रूपामक्खी) तुत्थ (तूतिया -नीला थोथा घ) कांस्य (ङ) रीति वा पीतल(च)सिंदूर(छ)शिलाजीत,इसलिये अनुवादमें सोना चांदी को छोड़कर अन्य गढ़ीहुई वा वे बनी हुई धातुको कुप्य माना है।२)सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें कुप्यका अनुवाद भाण्ड वर्तनादि कियाहै इसलियेभाण्ड वर्तनादिकको अनुवादमें कुप्य मानाहै। सर्वार्थसिद्धिसंस्कृतवृत्ति और तत्त्वार्थराज वार्तिकमें "क्षौमकार्पास-कौशेय-चंदनादि"को कुप्य कहाहै अनुवाद में-वस्त्र-कपास-चंदनादि लायेहैं क्योंकि क्षौम औरकौशेय पाट वस्त्रको कहतेहैं ॥हिरण्य शब्दका अर्थ कृत =गढ़ेहुये-बनेहुये)और अकृत(=जे बनेहुये-अनगढ़ेहुए)सोना और रुपाके हैं जैसाकि अमरकोशके १९वां वैश्यवर्ग के उपर्युक्त ११ वां श्लोक से स्पष्ट है। हिरण्य ="(न०) हिरण्यमेव (स्वार्थे) यत्। सुवर्ण। सोना। धनूरा। धन" (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४४६) धतूरे से इस सूत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। धन का अर्थ यहां पर संपत्ति,द्रव्य,अर्थ जैसे रुपया-पैसा-मोहर इत्यादिक हैं ॥ "हिरण्य रूप्यादि व्यवहार-तन्त्रम्"(देखो पृष्ठ सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति ३६९ और तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित)२८८। हिरण्य (देखो अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ४३१) हिरण्य शब्द करि तो व्यवहारमें प्रवृत्ति का कारण रुप्ये मोहर इत्यादि लिखे हैं। हिरण्य शब्द का अर्थ जो अमरकोश-पद्मचंद्र कोश-सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अनुसार जो मैंने ऊपर लिया है इससे स्पष्ट है कि हिरण्य शब्द ऐसा विशाल अर्थ वाला है कि उसमें प्रत्येक प्रकारका रुपया चांदी और सोना चाहे वह किसी रूपमें हो अन्तर्गत होजाता है इसलिये द्वितीय अतिचारमें हिरण्य शब्द और सुवर्ण शब्द लेकर ऐसा अर्थ करना पड़ाहै कि गढ़ेहुए अनगढ़ेहुए प्रत्यक प्रकार के सोना, चांदी-रूपया (किसी रूपमें क्यों न हों) को तथा सुवर्णको प्रमाणसे अथवा प्रतिज्ञा कियेहुए से अधिक संग्रह करना सो हिरण्य सुवर्ण प्रमाण अतिक्रम है क्योंकि अनुवाद मैंने इसका शब्दार्थ रूपमें किया है इससे मुझे "तथा सुवर्ण" भी लाना पड़ा है नहीं तो हिरण्य शब्दमें ही सुवर्ण भी गर्भित है अब प्रश्न यह है कि उमा स्वामी महाराजने सुवर्ण शब्दका प्रयोग क्यों कियाहै क्योंकि सुवर्ण शब्द सूत्रमें न लायाजाता तौभी काम केवल हिरण्य शब्दसे ही चल जाता जैसाकि भाष्य से स्पष्ट लघुसूत्र बनानेमें सूत्रकर्ताको हर्षहोताहै ॥

कुप्यं क्षौमकार्पासकौशेय चन्दनादि । क्षेत्रं च वास्तु च क्षेत्रवास्तु, हिरण्यं च सुवर्णं च हिरण्यसुवर्णं, धनं च धान्यं च धनधान्यम्, दासी च दासश्च दासीदासं, क्षेत्रवास्तु च हिरण्यसुवर्णं च धनधान्यं च दासीदासं च कुप्यं च-क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यानि । एतावानेव परिग्रहो मम नान्य इति परिच्छिन्नात्प्रमाणात्क्षेत्रवास्त्वादिविषयादतिरेका अतिलोभवशात्प्रमाणातिक्रमा(रेका)इतिप्रत्याख्यायन्ते ॥ त एते परिग्रहपरिमाणव्रतस्यातिचाराः॥

कुप्यम्$_{4}^{1}$।।।
क्षौम-कार्पास-
कौशेय-
चन्दनादि$_{1}^{1}$।।।; क्षेत्रम्$_{2}^{1}$।।। च* वास्तु$_{3}^{1}$।।। च*
क्षेत्रवास्तु$_{4}^{1}$।।, हिरण्यम्$_{1}^{1}$।।। च*
सुवर्णम्$_{2}^{1}$।।। च* हिरण्यसुवर्णम्$_{3}^{1}$।।,धनम्$_{4}^{1}$।।। च*
धान्यम्$_{1}^{1}$।।। च* धनधान्यम्$_{2}^{1}$।।। दासी$_{3}^{1}$।।। च* दासः$_{4}^{1}$च*
दासीदासम्$_{1}^{1}$।।।,क्षेत्रवास्तु$_{2}^{1}$।।। च हिरण्यसुवर्णम्$_{3}^{1}$।।। च*
धनधान्यम्$_{4}^{1}$।।। च* दासीदासम्$_{1}^{1}$।।। च* कुप्यम्$_{2}^{1}$।।। च*
क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यानि$_{3}^{1}$।।;
एतावान्$_{4}^{1}$ एव* परिग्रहः$_{1}^{1}$ ममं$_{2}^{1}$ न* अन्यः$_{3}^{1}$ इति*
परिच्छिन्नात्$_{4}^{1}$।।। प्रमाणात्$_{1}^{1}$।।।
क्षेत्र-वास्तु-आदि-विषयात्$_{2}^{1}$ अतिलोभवशात्$_{3}^{1}$।
अतिरेकाः$_{4}^{1}$ प्रमाण-अतिक्रमाः$_{1}^{1}$। [अतिरेकाः$_{4}^{1}$]
इति* प्रत्याख्यायन्ते P

=कुप्य अर्थात् सोने चांदीको छोड़कर अन्य सबधातु,(रूपा=चांदी तांबा मिलाहुआ)
=सनका वस्त्र[=क्षौम] पाटका वस्त्र [=क्षौम] दुकूल वा कपास [=कार्पास]
=कृमियोंके कोशसे उपजा वस्त्र[=कौशेय]वा पीले पाटका वस्त्र वा पीतांबर[=कौशेय]
=चन्दनादिक हैं । बहुरि [=च] क्षेत्र और [=च] वास्तु
=[मिलकर वा द्वन्द्व समास होकरि]क्षेत्रवास्तु[वाक्य]हुआ, तथा [=च] हिरण्य
=और [=च] सुवर्ण [मिलकर] हिरण्यसुवर्ण वाक्य हुआ बहुरि [=च]धन तथा[=च]
=धान्य[मिलकर]धनधान्य वाक्य हुआ और[=च]दासी बहुरि(=च)दास
=(समास होकर) दासीदास हुआ तथा (=च) क्षेत्रवास्तु और(=च) हिरण्यसुवर्ण
=और (=च) धनधान्य तथा (=च) दासी दास बहुरि (=च) कुप्य (मिलकर)
=क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य [वाक्य] हुआ,
=इतना ही(=एव)परिग्रह मेरा है अन्य नहीं है(इससे अधिक परिग्रह का मेरे त्याग है)
=सीमा वा इयत्ता किये ऐसे (=परिछिन्नात् अथवा) मर्यादासे (=प्रमाणात्)
=क्षेत्र-गृह आदिक विषयका तीव्र लोभ वा तृष्णाके अभिनिवेशसे(=लग बसे)
=अधिक ग्रहण करने (से) प्रमाण अतिक्रम वा अतिरेक हैं
=ऐसे(ये प्रमाण अतिक्रम वा अतिरेक)निरादर किये गये हैं अथवा अनादर किये गये हैं

ते$_{3}^{1}$। एते$_{4}^{1}$। परिग्रह-परिमाण-व्रतस्य$_{1}^{1}$। अतिचाराः$_{2}^{1}$[भवन्ति]=ते इतने परिग्रह परिमाण (अर्थात् परिग्रह त्याग) अणुव्रतके अतीचार वा दूषण हैं

उक्तव्रतानामतिचाराः शीलानामतिचारा वक्ष्यंते, तद्यथा—

॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥

उक्ताः[३] व्रतानाम्[६] अतीचाराः[३] शीलानाम्[६]।।। =अणुव्रतोंके अतीचार कहे गये (सात) शीलोंके
अतिचाराः[३](१) वक्ष्यन्ते[T] तद्यथा* =व्यतिक्रम (आचार्य अग्रिम सूत्रोंमें कहते हैं जैसे(देखो सूत्र ३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६)

(*)ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥

=ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि (पञ्च–दिग्विरतेरणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)॥३०॥

=ऊर्ध्वव्यतिक्रम-अधोव्यतिक्रम-तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि-(पञ्च-दिग्विरतेः अणुव्रतस्य-अतिचाराः भवन्ति) ।।३०।।

सूत्रार्थः—ऊर्ध्वव्यतिक्रम- =मर्यादासे अधिक (=व्यतिक्रम) ऊपर (=ऊर्ध्व) जाना अर्थात् प्रतिज्ञा किये हुयेसे पर्वत, वृक्ष, भूमि आदिक पर अधिक ऊपर चढ़ना,

अधोव्यतिक्रम- =मर्यादासे अधिक उतरना वा नीचेको जाना अर्थात् नियमित सीमासे कूप बावड़ी नदी इत्यादिकमें उतरना,

तिर्यक्–व्यतिक्रम- =मर्यादासे अधिक इधर उधर जाना अर्थात् कंदरा-बिले-गुफा-सुरंग आदिकमें मर्यादासे अधिक प्रवेशकरना,

क्षेत्रवृद्धि– =गमना गमनके क्षेत्रको बढ़ाना अर्थात् मर्यादा कियेहुये क्षेत्रसे लालचके वशसे वा तृष्णाके अभिनिवेशसे गमना गमनके लिये अधिककी वांछा करना

स्मृति-अन्तरा–धानानि[३]।।। =मर्यादाके अनुसार सुध न रखना

(१) ध्यान रहे कि 'वक्ष्यन्ते' वच् धातुसे कर्तरि प्रयोगमें अन्य पुरुष बहु वचन बना है। वक्ष्यते (एक वचन) वक्ष्येते (द्विवचन) हैं। वच् + स्यन्ते स्यन्ते-लृट वा अद्यस्तनीवृत्ति का साधारण भविष्यत् कालके आत्मने पदका अन्य पुरुष बहुवचन का चिन्ह है ॥ वच् + स्यन्ते वक् + स्यन्ते वक् + ष्यन्ते = वक्ष्यन्ते ॥ कर्मणि प्रयोग वच् का-उच्यते-उच्येते-उच्यन्ते होगा-कहा गया है, दोनों कहे गये हैं-बहुत कहे गये हैं।

(२) यह सूत्र दोनों आम्नायोंमें एकसाहै केवल स्मृत्यन्तराधानके स्थानमें श्वेताम्बर सम्प्रदायमें स्मृत्यन्तर्धानानि है,अर्थ सर्वत्र एकसाहै, क्योंकि

स्मृत्यन्तर्धानम् =स्मृतिअन्तर्-धानम् = स्मरणका छिपना (= अन्तर्धान,पद्मचन्द्र कोश-पृष्ठ २७)

स्मृत्यन्तर्धानम् =स्मृतेर्भ्रंशोऽन्तर्धानम् (सर्वार्थसिद्धि तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १६६) = सुध वा स्मरणका जाता रहना वा न रहना

स्मृत्यन्तराधानम् = स्मृति-अन्तर्-आधानम् = सुधको-भीतर-रखना अर्थात् गुप्तरखना भावार्थ सुध न रखना

,, = स्मृति-अन्तर-आधानम् = स्मरण न रहना अन्तर = बिना, पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २६)

,, = स्मृति-अन्तरा-आधानम् - सुध न रहना (अन्तरा अव्यय है) अन्तरा = बिना (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २६)

परिमितस्य दिगवधेरतिलङ्घनमतिक्रमः। स समासतस्त्रिविधः—ऊर्ध्वातिक्रमः। अधोऽतिक्रमः तिर्यग्गतिक्रमः इति। तत्र पर्वताध्यारोहणादूर्ध्वातिक्रमः, कूपावतरणादेरधोऽतिक्रमः। बिलप्रवेशादेस्तिर्यग्गतिक्रमः॥परिगृहीताया दिशो लोभावेशादाधिक्याभिसन्धिः क्षेत्रवृद्धिः॥स एषोऽतिक्रमः प्रमादान्मोहाद्यासङ्गाद्वा भवतीत्यवसेयः॥अननुस्मरणं स्मृत्यन्तराधानम्॥त एतेदिग्विरमणस्यातिचाराः॥

पञ्च[1]दिग्विरतेः[6]अणुव्रतस्य[6]अतिचाराः[1]भवन्ति =(ये) पांच दिग्विरति अणुव्रतके अतिचार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदीअनुवाद

परिमितस्य[6]दिक्-अवधेः[6]अतिलंघनम्[1]''अतिक्रमः[1] =इयत्ता कीहुई दिशाकी सीमाका उल्लंघन करना वा नांघना सो अतिक्रम है।

सः[1]समासतः* त्रिविधः[1]ऊर्ध्वअतिक्रमः[1] =वह (उल्लंघन) संक्षेपसे तीन प्रकार है ऊर्ध्व अतिक्रम

अधः* अतिक्रमः[1]तिर्यक्* अतिक्रमः[1]इति*;तत्र*पर्वत- =अधो अतिक्रम, तिर्यक् अतिक्रम। तहां पर्वतादिक पर

अध्या-आरोहणात्[5]''ऊर्ध्व-अतिक्रमः[1]कूप- =(मर्यादासे अधिक) चढ़नेसे ऊर्ध्व अतिक्रम (नामका अतीचार) है। कूपमें

अवतरण-आदेः[5]अधाअतिक्रमः[1]बिल-प्रवेश- =(मर्यादासे अधिक)उतरनेसे अधोअतिक्रम है, बिलमें (मर्यादासेअधिक) प्रवेश

आदेः[5] तिर्यक्-अतिक्रमः[1]; परिगृहीतायाः[6]'' दिशः[6]'' =आदिक से सो तिर्यक् अतिक्रम है। मर्यादा की हुई दिशासे

लोभ-आवेशात्[5]आधिक्य- अभिसन्धिः[1]'' =लालचके वशसे अथवा तृष्णाके अभिनिवेशसे अधिक (दिशा) की आकांक्षा

क्षेत्रवृद्धिः[1]''; सः[1]एषः[1]अतिक्रमः[1]प्रमादात्[5] =सो क्षेत्रवृद्धिहै सो यह मर्यादा का उल्लंघन प्रमादसे

मोह-दि-आसङ्गात्[5]वा भवति T =मोहसे अथवा भोगकी अभिलाषासे वा परिग्रह (के निमित्त) से होता है

इति*अवसेयः[1]; अनु-स्मरणम्[1]'' =ऐसाजानना वा निश्चय करना चाहिये न(=अन्)मर्यादाके अनुसार (=अनु) सुधरहना

स्मृति-अन्तराधानम्[1]''; ते[1]एते[1] =सो स्मृति-अन्तराधानहै अर्थात् दिशामें की हुई मर्यादा का भूलजाना। ते इतने

दिग्विरमणस्य[6]'' अतिचाराः[1] =दिग्विरति अणुव्रतके अतिचार वा दूषण हैं

(१) "बिल प्रवेशादेस्तिर्यग्" (=बिलमें प्रवेश आदिकसे तिर्यग् (अतिक्रमहै) यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्ति, तीन हस्त लिखित प्रतियोंका तथा तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकका है परंतु बिलप्रवेशादि स्तिर्यग्-" =बिलमें प्रवेश आदिक सो तिर्यग (अतिक्रम)) है ऐसा पाठ द्वितीया वृत्तिमें, तत्त्वार्थराजवार्तिक श्लोकवार्तिक तथा एक हस्त लिखित प्रतिका पाठहै, प्रथमपाठ अच्छाहै क्योंकि इसके ऊपरके दो वाक्योंमें पञ्चमी विभक्तिलायेहैं॥

॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

आत्मना सङ्कल्पिते देशे स्थितस्य प्रयोजनवशाद्यत्किंचिदानयेत्याज्ञापनमानयनम् ।

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥

=आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दअनुपात-रूपअनुपात-पुद्गल क्षेपाः[1] [पंचदेशविरतेरणुव्रतस्यैते चाराः भवन्ति] दोनों आम्नायोंमें सूत्रका पाठ अर्थ एक है

आनयन- =मगावना वा बुलावना अर्थात् मर्यादासे बाहरकी वस्तुको मगावना वा किसीको बुलाना

प्रेष्यप्रयोग- =सेवक द्वारा [=प्रेष्य] अनुष्ठान [=प्रयोग] चाकरसे [=प्रेष्य] कामकराना [=प्रयोग] भृत्य द्वारा [=प्रेष्य] कामनिकाललेना [=प्रयोग] अर्थात् मर्यादा कियेहुये क्षेत्रसे स्वयम् तो गमन न करे परन्तु भ्राता-पुत्र-मित्र-परिवार इत्यादिक द्वारा कहकर कि हमारे तो अमुक क्षेत्रमें जाने की प्रतिज्ञा है तुम अमुक कार्य को हमारे अभिप्रायके अनुसारकरना

शब्दअनुपात =शब्दका अभिप्रायके अनुसार पतन =(अनुपात) शब्दका प्रयोजनके अनुयायी पतन अर्थात् परिमित क्षेत्रके बाहर न जाकर परिमाण कियेहुये क्षेत्रमें स्थित करते हुये शब्द सुनाकर कार्य निकाल लेना अथवा कार्यका निर्वाह करलेना

रूपअनुपात- =स्व विग्रह [=स्वरूप] अथवा शरीर (=रूप) प्ररूपण करना (=अनुपात) रूपका दिखावना अर्थात् नियत देशसे बाहिर स्वयं न जाकर मर्यादा कियेहुये क्षेत्रसे बाहिर अपना प्रतिबिम्ब वा अपना रूप दिखाके कार्य चलालेना वा कार्यमें प्रवर्त करावना प्रयोजन समझादेना

पुद्गलक्षेपाः[2] =निर्जीव वस्तुका (=पुद्गल) फेंकना (=क्षेप) अचेतन द्रव्यका (पुद्गल) निपात (=क्षेप) अर्थात् परिमाणके बाहिर क्षेत्रमें देशमें ढेला-पाषाण वस्त्रआदिक फेंककर डा कर अपने कार्यका निर्वाह करलेना

पञ्च[1] देशविरतेः[2] अणुव्रतस्य[3] अतिचाराः[4] भवन्ति[5] =(ये) पांच देशविरति अणुव्रतके अतीचार वा व्यतिक्रम होते हैं

वृत्त्यर्थः-आत्मना[1] सङ्कल्पिते[2] देशे[3] स्थितस्य[4] प्रयोजन-=आत्म द्वारा मर्यादा किये हुए क्षेत्र में स्थित युक्त (अणुव्रती) अभिप्रायके वशात्[5] यत्[6] "किञ्चित् आनय" इति* आज्ञापनम्[7] =वशसे कहे कि कोई वस्तुको ला (=आनय) ऐसा आदेशपन (=आज्ञापन)

(१) आनयनम्[1] आनयन है अर्थात् अणु व्रती मर्यादा किये हुये क्षेत्रमें हो कहे 'लाओ' किसी को ॥

(१) नी भ्वादि प्रथम गण का धातु है इसमें क्रिया प्रत्ययके पहिले अ विकरण जोड़ा जाता है और नी का "गुण" हो जाता है नी - ने = नय् इसमें

एवं कुर्विति नियोगः प्रेष्यप्रयोगः। व्यापारकरान्पुरुषान्प्रत्यभ्युत्कासिकादिकरणं शब्दानुपातः। स्वविग्रहदर्शनं रूपानुपातः। लोष्टादिनिपातःपुद्गलक्षेपः॥त एते देशविरमणस्य पञ्चातिचाराः॥

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि।

एवम्*(१)कुरु T इति* नियोगः[१] =ऐसा करो, इसप्रकार आज्ञा (=नियोग) अथवा निकृष्ट प्रेरण (=नियोग) नौकरों को काममें लगाना
प्रेष्यप्रयोगः[१]; व्यापारकरान्[३] =सो प्रेष्य नौकरको) प्रयोग (=काममें लगाना) है। व्यापार करनेवाले (=व्यापार करान्)
पुरुषान्[३] प्रति*अभ्युत्- =मनुष्योंको (=पुरुषान् दृष्टिमें(=प्रति) प्रकाश करनेको (=अभ्युत्)
कासिकादि करणम्[१] शब्द-अनुपातः[१]। =खांसना आदिक सो शब्द अनुपातहै अर्थात् मर्यादा कियेहुये क्षेत्रमें रहकर व्यापारियों को खांसी आदिक शब्द रूप समस्या द्वारा अपने प्रयोजनको समझा देना सो शब्दानुपात है
स्व-विग्रह-दर्शनम्[१] रूप-अनुपातः[१]। =अपना (=स्व) शरीर (=विग्रह) दिखाना (कि प्रयोजन प्रगट होजाय) सो रूपानुपात है
लोष्ट-आदि-निपातः[१] पुद्गलक्षेपः[१]॥ =ढेला वा डेला आदिक फेंकना (कि अभिप्राय दूसरेको प्रगट हो) सो पुद्गलक्षेप है
ते[१] एते[१] देश-विरमणस्य[६] पञ्चअतिचाराः[१] =ते इतने देश विरति (अणुव्रत) के पांच व्यतिक्रम वा दोष हैं

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अ जोड़ा नय नय हुआ, नीका अर्थ लेजाना है जब क्रिया के साथ आङ् (=आ) उपसर्ग लगाया जाता है तब इसका अर्थ उलट जाता है अर्थात् नी=लेजाना और आनी=लाना, इस "नय" के साथ आ जोड़नेसे आनय हुआ॥ यदि इस में ति प्रत्यय जोड़े, जो अन्य पुरुष एक वचन है तो 'आनयति' हुआअर्थ वह लाताहै ऐसा हुआ, आज्ञासूचक क्रिया एक वचन मध्यम पुरुष(सार्वधातुकका)तिङ् वा क्रिया प्रत्यय कुछ नहीं है अतः आनय रूप हुआ, आनय=ला अर्थात् कुछ वस्तु ला वा कोई वस्तु ला भावार्थ किसी वस्तुका मगावना, और जब कहैं ला अर्थात् किसी पुरुष वा स्त्रीको तो भावार्थ होगा किसी पुरुष अथवा स्त्रीको बुलावना इसी कारणसे और एक भाषा कोशके पृष्ठ ६६ के निमित्तसे मैंने आनयनं का अर्थ मंगावना (कोई वस्तु) और बुलाना (किसी जन वा स्त्रीका) किया है॥ यहां अर्थ सदा सुखजीने दोनों टीकाओंमें लिया है किया है। कोई वस्तु "ला" ऐसा अर्थ तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकमें "तमानयेत्याज्ञापनमानयनं=तम् आनय इति आज्ञापनम् आनयनम्=उसको लाओ ऐसा आज्ञापनहै सो आनयन है (१) यहांपर कृ तनादि आठवां गण का धातु है अर्थ करना है आठवां गणमें क्रिया प्रत्यय मध्यम-उत्तम-जघन्य पुरुषके पहिले उ जोड़ा जाता है इसलिये कृ+उ हुआ परन्तु कृ का कुर् ङित् संज्ञक क्रिया प्रत्ययों के पहिले होजाताहै अब कुर्+उ=कुरु होगया॥ हि मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद प्रत्यय आज्ञासूचक क्रिया का आठवां गणके धातुमें गिरजाताहै तब केवल'कुरु ही रहा अर्थ हुआ करो अर्थात् हि प्रत्यय ङित् संज्ञक होने के हेतुसे कृ धातु कुर् रूपमें होगया पश्चात् उ लगाने से कुरु हुआ॥ कुरु+इति=कुरु इति=कुरव्+इति=कुरविति॥

(१) कंदर्प- =काम संयुक्त वाक्य अर्थात् राग और हास्य पूर्ण सभ्यता विरुद्ध भाषण,

(२) कौत्कुच्य- =रागोदयकी तीव्रतासे हास्य और अशिष्ट भंडवचन बोलना और कायसे भी निन्द्यनीय क्रियाकरना

(३) मौखर्य-असमीक्ष्याधिकरण- =निर्लज्जता लिये अनर्थक बहुत बकबक (=बकवाद)--बिना विचार कर (=असमीक्ष्य) (आवश्यकतासे) अधिक प्रवर्तन करना अर्थात् प्रयोजनको बिना विचारे (आवश्यकतासे) अधिक क्रिया करना भावार्थ अधिक प्रवर्त्तन मनो, वचन, कायसे तीन प्रकार है तहां अनर्थको करने वाला खोटा काव्य श्लोकादिक चिंतवन करना सो मन अधिकरण है और निष्प्रयोजन कथा करना विकथा करना तथा परके पीड़ा करने वाला वचन सो वचन अधिकरण है और प्रयोजन बिना गमन करना बैठना खड़ारहना सचित्त अचित्त तृण-वृक्ष-पत्र-पुष्प-फलादि छेदन-भेदन-कुट्टन-क्षेपणादिकरना अग्निका-विषका देना समस्त असमीक्ष्या धकरण हैं

(४) उपभोग-परिभोग-आनर्थक्यानि[१११] =एकबार भोगने योग्य पदार्थ (उपभोग जैसे खान पान इत्यादि) और बार बार भोगने योग्य पदार्थ (=परिभोग जैसे वस्त्राभूषणादि) प्रयोजनादि से बाहिर वा अधिकता में देखना

पञ्च[१] अनर्थ-दण्ड-विरतेः[६] अतिचाराः[१] भवन्ति[T] =पांच अनर्थदण्डविरमण (अणुव्रत) के दूषण होते हैं ॥

(१) कहीं कहीं कन्दर्प पाठ है और कहीं कहीं कन्दर्प पाठ है कहीं कहीं कंदर्प पाठ है तीनों पाठ ठीक हैं (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५३६, '४०) (२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें कौत्कुच्य शब्दके स्थानमें कौकुच्य है अर्थ दोनों शब्दोंका एकहै, तो हमारे यहां के पाठमें त् क्यों अधिक है (३) कहीं मौखर्य पाठ है और कहीं मौखर्य्य भी पाठ है दोनों (अच्छा रहाभ्यां ङे वा--व्याकरणके सूत्रसे) ठीक हैं (४) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में, "उपभोग परिभोगानर्थक्यानि, वाक्य के स्थान में "उपभोगाधिकत्वानि" है, अनर्थक्यानि और अधिकत्वानि क्रमसे आवश्यकतासे व्यर्थ रखना और आवश्यकतासे अधिक रखना दोनों का पृथक् पृथक् अर्थ है भावार्थ दोनों का एकसा है, परन्तु अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायके सूत्रों में केवल इतना है कि परिभोगका अर्थ अन्य सम्प्रदायके सूत्रमें नहीं निकलता क्योंकि भोग सामान्य शब्द है जिसमें उपभोग और परिभोग तत्त्वार्थराजवार्तिक और तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकके अनुसार (देखो राजवार्तिक पृष्ठ २८२, श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४८६ और इस अध्याय का पृष्ठ ६४ और ६५) दोनों गर्भित हैं। उपभोग वह है जो एक बार भोगमें आवे जैसे भोजन और पान और परिभोग वह है जो बारबार अथवा बहुत बार भोगने में आवे जैसे वस्त्र गहना आदिक, हमारे यहां भी किन्हीं किन्हींके मतमें भोग वह है जो बारबार भोगनेमें आता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जब "दिग्देशानर्थ दण्ड विरतिव्रतादि" सूत्रमें उपभोग परिभोग लाये हैं तब परिभोग इससूत्र में क्यों नहीं लाये परिभोग को यदि कोई आवश्यकतासे अधिक संग्रह कर लेता तो अतिचार का वह भागी न होगा ऐसा अर्थ किसी आम्नायमें नहीं होसक्ता हमारी समझमें सभाष्य-तत्त्वार्थ धिगमसूत्रमें परिभोग रह गया है। आनर्थक्यानि ऐसा पदच्छेदहै क्योंकि देखो वृत्ति पृ० ३७१ पंक्ति ८, ९ "आधिक्यम्, आनर्थक्यम्॥

रागोद्रेकात्प्रहासमिश्रोऽशिष्टवाक्प्रयोगः कन्दर्पः। तदेवोभयं परत्र दुष्टकायकर्मप्रयुक्तं कौत्कुच्यम्। धार्ष्ट्यप्रायं यत्किञ्चनानर्थकं बहुप्रलपितं मौखर्यम्। असमीक्ष्य प्रयोजनमाधिक्येन करणमसमीक्ष्याधिकरणम्। यावतार्थेनोपभोगपरिभोगौ सोऽर्थस्ततोऽन्यस्याधिक्यमानर्थक्यम्॥ त एते पंचानर्थदण्डविरतेरतिचाराः॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद

राग-उद्रेकात्[५]प्रहास-मिश्रः[१]
अशिष्टवाक्-प्रयोगः[१]कन्दर्पः[१]तद् एव* उभयं[१]
परत्र*दुष्ट-काय-कर्म-
प्रयुक्तम्[१] कौत्कुच्यम्[१] धार्ष्ट्यप्रायम्[१]
यत्किञ्चन[१]अनर्थक[१] बहुप्रलपितम्[१]मौखर्यम्[१]
(१)असमीक्ष्य÷प्रयोजनम्[१]आधिक्येन[३]करणम्[१]
असमीक्ष्याधिकरणम्[१]; यावता[३] अर्थेन[३]
उपभोग-परिभोगौ[१] अर्थः[१] ततः *
अन्यस्य[६] आधिक्यम्[१] आनर्थक्यम्[१]

=राग (भाव) के तीव्र उदयसे वा उत्कटतासे (उद्रेकात्) हास्यमिलेहुये
=नीचवचनकाव्यव्यवहार(=प्रयोग)सो कंदर्प है वही दोनों(रागसंयुक्त असभ्यभाषण, हास्य)
=और कहीं (=परत्र) अर्थात् यदि दुष्टकाय (शरीर) की निन्दनीय क्रिया (=कर्म) से
=भराहुआहोतो कौत्कुच्यहै। ढीठपन की बहुतायतसे अथवा निर्लज्जता की बाहुल्यसे
=जो कुछ निरर्थक बहुत प्रलाप (करना) वा बकवक सो मौखर्य है
=प्रयोजन को विनाविचार कर अधिकपनासे क्रिया (=करण) सो
=असमीक्ष्याधि करणहै, जितना (=यावता) अर्थकरि वा आवश्यकता करि
=उपभोग परिभोगहै सो प्रयोजनहै वा अर्थ है तिस (अर्थ) से अर्थात् आवश्यकतासे-
=अन्यकी अधिकाई वा बहुतायतहै सो आनर्थक्यहै अर्थात् खानेपीने की सामिग्री जे उपभोगको तथा वस्त्र आभूषण आदि जे परिभोगको विना आवश्यकताके संग्रह करना सो उपभोग परिभोग आनर्थक्य है॥

ते[३]एते[३]पञ्च-अनर्थदण्डविरतेः[६] अतिचाराः[१]
=ते एते पांच अनर्थ दण्ड विरति (अणुव्रत) के अतीचारा हैं

चित्, अपि, चिदपि, अथवा चन को यदि 'किम्के' साथ उसके किसी लिंगमें जोड़ दें तो वह अर्थात् जुड़ा हुआ वाक्य आनिश्चित अर्थ का द्योतक होगा जैसे किंचित्=कुछ वस्तु वा कोई वस्तु, कश्चित् कोई पुरुष वा जन, कश्चिद् यक्षः=कोई यक्ष (देखो भाण्डारकार कृता मार्गोपदेशिका पृष्ठ १२१)। "यत्किंचन अथवा यत्किंचित्" क्षुद्रवस्तु, निरर्थक वस्तु, असार वस्तु, अकिंचित्कर द्रव्य, देखो वैद्य संकृत आंगलकोश पृष्ठ ५९३)॥ (२) असमीक्ष्य = सम्बन्धसूचकभूत कृदन्त है अ + सम् + ईक्ष्य = असमीक्ष्य = विना विचारकर। भोग, उपभोग, परिभोगके लिये पृष्ठ ६४

॥ योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

योगो व्याख्यातस्त्रिविधः । तस्य दुष्टं प्रणिधानं योगदुष्प्रणिधानम्-

(१)योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

=योगदुष्प्रणिधान-अनादर-स्मृतिअनुपस्थानानि (पंच सामायिकस्य-अतिचाराः)

=कायदुष्प्रणिधान-वचनदुष्प्रणिधान-मनोदुष्प्रणिधान-अनादर-स्मृतिअनुपस्थानानि[३]'''पञ्च[१]सामायिकस्य[६]अतिचाराः[३]भवन्ति T

सूत्रार्थः-काय-दुष्प्रणिधान- =शरीरको खोटी वा अन्यथा प्रवृत्ति अर्थात् सामायिक करनेके अवसरमें शरीरके अंगो-पांगादिकों का निश्चल और सावधान न रखना,

वचन-दुष्प्रणिधान- =वचनका बुरा प्रवर्तन अर्थात् सामायिक करनेके समयमें अक्षरोंके उच्चारणमें शुद्ध, स्पष्ट संस्कारका अभाव इसप्रकार पाठ पढ़ना जिसमें अर्थ न जाना जाय,

मनो-दुष्प्रणिधान- =मनका दुष्ट परिणमन,मनका अन्यथा चलायमान अर्थात् सामायिकके भावमें,अर्थमें मन न लगाना,

अनादर- =उत्साहका न होना,निरादर अर्थात् सामायिक विषै उत्साह न होना जैसे तैसे कालपूरा करना तथा आपत्तिसी टाल देना,

स्मृति-अनुपस्थानानि [१] ॥ =सुधका भुलाव,स्मरण न रहना अर्थात् पूर्णरूपसे सामायिककी विधि कैसे करनी चाहिये तथा किसकाध्यान, किस आसनसे वा किस विधिसे इत्यादि विषयोंका स्मरण न रखना अथवा चित्तकी व्यग्रतासे पाठका भूलजाना अथवा सामायिक करनाही भूलजाना

पंच[१]सामायिकस्य[६]अतिचाराः[३]भवन्ति T=(ये) पांच सामायिक के व्यतिक्रम, अतिचार वा दूषण हैं ॥ ३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस तेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दशःहिन्दीअनुवाद

योगः [१] व्याख्यातः[१] त्रिविधः [१]; =योग तीन प्रकार(काययोग-मनोयोग-वचनयोग) वर्णन कियागया।अध्याय ६ सूत्र १ देखो)है

तस्य[६]दुष्टं[१]'''प्रणिधानं[१]'''योगदुष्प्रणिधानं[१]'''=तिस(योग)की खोटी अथवा अन्यथा प्रवृत्ति सोयोग दुष्प्रणिधान है

(१)अधिकतर पुस्तकोंमें 'योग दुःप्रणिधान' वाक्य है, सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें और कई पुस्तकोंमें 'योगदुष्प्रणिधान' वाक्य है''दुः' नहीं दुःप्रणिधान और दुष्प्रणिधान ठीक हैं क्योंकि यह शब्द दुर् उपसर्ग और प्रणिधानसे मिलकर बना है जिसके नियम नीचे लिखते हैं (क) शब्दों के अन्तका स् जिस

कायदुष्प्रणिधानम् । वाग्दुष्प्रणिधानम् । मनोदुष्प्रणिधानमिति । अनादरोऽनुत्साहः । अनैकाग्र्यं स्मृत्यनुपस्थानम् । त एते पंच सामायिकस्यातिक्रमाः ॥

(१)कायदुष्प्रणिधानम्[१] ; =शरीरकी खोटी वा अन्यथाप्रवृत्ति अर्थात् सामायिक करनेके अवसरमें शरीरके अंगोपांगादिकोंको निश्चल न रखना

वाग्दुष्प्रणिधानम्[१] ; =वचन का बुरा प्रवर्तन शुद्ध, स्पष्ट उच्चारण न करना

मनोदुष्प्रणिधानम्[१] इति * । =मनका खोटा परिणमन ऐसे है कि जिसकाल सामायिक करै उस समयमें मनकी लगन वा प्रवृत्ति सामायिकमें न रहै अन्य कार्यमें चलीजाय

अनादरः[१] अनुत्साहः[१] ; =उत्साहका न होना सो अनादर वा निरादर है अर्थात् जैसे तैसे सामायिकका समय पूरा करना तथा सामायिकको आपत्ति समझ कर टाल देना

(२)अनैकाग्र्यं[१] (३)स्मृति-अनुपस्थानम्[१] ॥ =चित्तकी एकाग्रताविना, सुध, स्मरण न रहना अर्थात् पूर्ण रूपसे सामायिककी विधि कैसे करनी चाहिये तथा किसका ध्यान किस आसनसे वा किस विधिसे इत्यादि विषयोंको स्मरण न रखना अथवा चित्तकी व्यग्रतासे पाठ भूलजाना अथवा सामायिक करना ही भूलजाना इत्यादि ध्यान पूर्वक विधि न रखना

ते[१] एते[१] पंच[१] सामायिकस्य[६] अतिक्रमाः[१] =ते इतने पांच सामायिक व्रतके अतीचार हैं

स् के पश्चात् कोई अक्षर हो वा न हो और र् यदि उसके पश्चात् कुछ न हो अथवा क्-ख्-च्-छ्-ट्-ठ्-त्-थ्-प्-फ्-श्-ष्-स्-में से कोई अक्षर हो तो उन र् स् का विसर्ग हो जाता है अतः दुर् के र् का (:) विसर्ग हो गया और दुःप्रणिधान हो गया ।(ख)विसर्ग जो प्रत्ययका न हो और उसके पहिले इ वा उ हो और पश्चात् उस विसर्ग के क्-ख्-च् छ्-ट्-ठ्-त्-थ्-प् फ् हो तो यह विसर्ग ष् में पलट जाता है अतः दुः प्रणिधानका दुष्प्रणिधान हो गया यह नियम निर् दुर्-बहिर् आविस्-चतुर्-प्रादुस् के विसर्गोंसे सम्बंध रखता है ॥ मुहुस् के स् अर्थात् विसर्गसे यह नियम लागू नहीं है इस लिये दुहःकामा और दुहस्कामा रूप हुये ॥ जो विसर्ग प्रत्ययका न हो जैसे अग्निः करोति, वायुःकरोति यहां विसर्ग स् प्रत्यय का है इस लिये विसर्ग का परिवर्तन ष् न नहीं हुआ (ग) मातुः कृपा और पितुः कृपा के विसर्ग प्रत्यय के नहीं है तो भी इनका षमें परिवर्तन नहीं होता परन्तु भ्रातुः पुत्रका विसर्ग भी प्रत्ययका नहीं है इसका परिवर्तन हो जाताहै भ्रातुष्पुत्र हमको पुस्तकोंमें मिलता है ८-३-४१ ॥(१)प्रणिधानं प्रयोगःपरिणामः इत्यनर्थान्तरम् अर्थात् प्रणिधान,प्रयोग,परिणाम एकार्थ वाची हैं । तत्त्वार्थराजवार्तिकमुद्रित पृष्ठ २६०) (२)एकाग्र अथवा एकाग्र्य = और विषयोंको छोड़कर एकही ओर मनवाला (पद्मचंद्रकोश पृष्ठ २८) ३,सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें अनुपस्थानादिके स्थानमें अनुपस्थापनादि है अर्थ भेद सूत्रमें कुछ नहीं है क्योंकि अनुपस्थान और अनुपस्थापन एकही अर्थमें लिये गये हैं शेष पाठ एक है अर्थ इस सब सूत्र का दोनों आम्नायमें एक है । अन्-उप स्थान और अन् उप-स्थापनका एकसा यहां पर अर्थ है ॥

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोप-क्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥

(१ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान(२ संस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

=अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित उत्सर्ग–अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित आदान–अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण–अनादर–स्मृतिअनुपस्थानानि $\frac{1}{5}$ ''ते$\frac{1}{5}$ एते$\frac{1}{5}$ पञ्च$\frac{1}{5}$ प्रोषधोपवासस्यातिचाराः$\frac{1}{5}$ भवन्ति T ॥ ३४ ॥

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित उत्सर्ग– =विना देखे हुये विना स्वच्छकिये हुये क्षेपण करना (=उत्सर्ग)अर्थात् विना नेत्रोंसे देखे हुये तथा विनाझाड़े हुये स्थान पर मल–मूत्र–खखार–नाकका मैलादिक डालना

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित आदान– =विना देखे हुये (=अप्रत्य वेक्षित) विनी स्वच्छकिये हुये वा विना शुद्ध किये हुये (=अप्रमार्जित) उठाना वा लैना वा ग्रहण करना अर्थात् विना देखे हुये और विना शोधे हुये अरहंत आचार्यादिकोंके पूजनके उपकरण गंधमाल्य धूपादिकको ग्रहण करना वा वस्त्र पात्रादिक को भूमि देखे शोधे विना ही घसीट कर उठाना

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण- =विना देखे हुये विना झाड़े हुये वा विना स्वच्छ किये हुये दुपट्टा आदिका सांथरा करना वा विछावना

अनादर- =उत्साह का न होना वा निरादर अर्थात् क्षुधा तृषा की बाधासे आवश्यकीय धर्म क्रियायोंमें अनादर से प्रवर्तना

स्मृत्यनुपस्थानानि$\frac{1}{5}$''' =सुधका भुलाव अथवा स्मरण न रहना अर्थात् प्रोषधोपवासके दिन करने योग्य धर्म क्रियायों क भूलजाना अथवा प्रोषधमें उपवास ही भूलजाना

ते$\frac{1}{5}$ एते$\frac{1}{5}$ पंच$\frac{1}{5}$ प्रोषधोपवासस्य$\frac{1}{5}$ अतिचारा:$\frac{1}{5}$ भवन्ति T=ते इतने पांच प्रोषधोप वासके अतीचार होते हैं

(१) हमारे यहां एक पाठ सर्वत्र ए : है और अर्थ भी एक है ॥ समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें निक्षेप शब्द अधिक है और उपस्थान शब्द के स्थान में उपस्थापन है ॥ उपस्थान और उपस्थापन का तात्पर्य्य एक ही है ॥ अर्थ भेद केवल निक्षेप शब्द की अधिकता से इस दूसरे अतीचार में वस्तुके कहीं स्थापित कर देना अथवा फैंकदेना बढ़ गया है शेष सूत्र दोनों आम्नायों में एक है (२) संस्तरोपक्रमण के स्थान में समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें संस्तारोपक्रमण है, अर्थ दोनों शब्दोंका एक सा है ॥

जन्तवः सन्ति न सन्ति वेति प्रत्यवेक्षणं चक्षुर्व्यापारः। मृदुनोपकरणेन यत्क्रियते प्रयोजनं तत्प्रमार्जितम्। तदुभयं प्रतिषेधविशिष्टमुत्सर्गादिभिरभिसम्बध्यते-अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग इत्येवमादि। तत्र अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितायां भूमौ मूत्रपुरीषोत्सर्गः अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गः। अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्यार्हदाचार्यपूजोपकरणस्य गन्धमाल्यधूपादेरात्मपरिधानाद्यर्थस्य

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

जन्तवः[1] सन्ति T न*सन्ति T वा*इति*चक्षुर्-व्यापारः[1]; =जीवहैं अथवा नहीं हैं इसप्रकार नेत्रको काममें लाना अर्थात् देखना
प्रत्यवेक्षणम्[1]''; मृदुन-उपकरणेन[3]''' = सो प्रत्यवेक्षण है। कोमल (=मृदुन) साधनकरि (=उपकरणेन)
यत्[1]''' क्रियते T प्रयोजनम्[1]''' =जोकार्य,काम(=प्रयोजन)किया जाताहै अर्थात् स्वच्छ किया जाताहै झाड़ा जाताहै
तत्[1]'''प्रमार्जितम्[1]'''; तत्[1]'''उभयम्[1]'''प्रतिषेध-विशिष्टम्[1]''' =सो प्रमार्जित है। वह दोनों(प्रत्यवेक्षित प्रमार्जित) निषेधरूपमें मानेहुये विशेषण
उत्सर्ग-आदिभिः[3] अभिसम्बध्यते T =उत्सर्ग, आदान, संस्तर (=आदि) से मिलादिये जाते हैं अर्थात् प्रत्यवेक्षण और प्रमार्जित विशेषणों के निषेधरूप विशेषण यथासंख्य अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित हैं जब ये दोनों निषेधरूप गुणवाचक प्रत्येक उत्सर्ग आदान संस्तरोपक्रमण के साथ मिलाये जाते हैं (तब)
अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित-उत्सर्गः[1] इत्येवम्* आदि[1]'''; =अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित—उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित-आदान, अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण ऐसेहुये
तत्र* अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जितायाम्[2]''भूमौ[2]''मूत्र-पुरीष- =तहां विना देखी हुई विना स्वच्छ कीहुई पृथिवी पर मूत्र और विष्टाका
उत्सर्गः[2]' अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जितोत्सर्गः[2]; अप्रत्यवेक्षित =क्षेपण सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग है। विना देखेहुये
अप्रमार्जितस्य[6]'''अर्हत्-आचार्य-पूजा-उपकरणस्य[6]''' =विना स्वच्छ किये हुये अरहंत आचार्य के पूजा के उपकरणका
गन्ध-माल्य-धूपादेः[6]''' =वास(सुगंधवाली वस्तु जैसे लोंग कपूर इत्यादि) पुष्प (=माल्य) पुष्पमाला (=माल्य)
आत्म-परिधानादि-अर्थस्य[6]''' =धूपादिकका अपने पहरने के आदिक वस्तुका (=अर्थस्य)

च वस्त्रादेरादानमप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानम् । अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्यावरणादेः संस्तरस्योपक्रमणं, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमणम् । क्षुदभ्यर्दितत्वादावश्यकेष्वनादरोऽनुत्साहः । स्मृत्यनुपस्थानं व्याख्यातम् ॥ त एते पंच प्रोषधोपवासस्यातिचाराः ॥

॥ सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

च*वस्त्र-आदेः[६/१] आदानम्[१/१] अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित-आदानम्[१/१]; अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जितस्य[६/१] आवरण-आदेः[६/१] संस्तरस्य[६/१] उपक्रमणम्[१/१], अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित-संस्तर-उपक्रमणम्[१/१]; क्षुत्-अभ्यर्दितत्वात्[५/१] आवश्यकेषु[७/३] अनादरः[१/१] अनुत्साहः[१/१]; स्मृत्यनुपस्थानम्[१/१] व्याख्यातम्[१/१]

ते[१/३] एते[१/३] पञ्च-प्रोषध-उपवासस्य[६/१] अतिचाराः[१/३]

=और (=च) वस्त्र आदिका उठावना-लेना-सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित
=आदानहै । बिना देखेहुये बिना स्वच्छ कियेहुये डुपट्टा
=आदिका सांथरा करना अर्थात् बिछावना सो अप्रत्य वेक्षित-
=अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण है । भूखकरि पीड़ित होनेसे
=(उपवासकी) आवश्यक क्रियाओंमें निरादर सो अनुत्साह है ।
=भूलजाना वा स्मरणका भुलाव विस्मृति होना (सूत्र ३३ में) वर्णन कर दिया गया
अर्थात् प्रोषधोपवासमें कर्तव्य विधिकी विस्मृतिहोना वा पर्वमें उपवासही भूलजाना
=ते इतने पांच प्रोषधउपवास के व्यतिक्रम-दूषण-दोष अतीचार हैं ॥

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

=सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः पञ्चोपभोगपरिभोगपरिमाणस्यातिचाराः भवन्ति

=सचित्त-सचित्तसम्बन्ध-सचित्त सम्मिश्र-अभिषव-दुः पक्व-आहाराः[१/३] पञ्च-उपभोग परिमाण परिभोगपरिमाणस्य अतिचाराः[१/३] भवन्ति T ॥३५॥

सूत्रार्थः-सचित्त-आहारः[१/१]
सचित्त-सम्बन्ध-आहारः[१/१], सचित्त-सम्मिश्र-आहारः[१/१], अभिषव-आहारः[१/१], दुष्पक्व-आहारः[१/१] ते[१/३] एते[१/३] पञ्च[१/३] उपभोगपरिमाण परिभोग परिमाणस्य[६/१] अतिचाराः[१/३] भवन्ति T

=जीव सहित अथवा चेतना सहित द्रव्य (जैसे-पुष्प फलादिक) का भोजन करना
=सचित्त वस्तुसे स्पर्शेहुये (द्रव्य) का भोजन करना-सचित्तसे मिलीहुई (वस्तु) का
=आहार करना-पुष्ट अथवा रस संयुक्त आहार करना-अच्छे प्रकार नपकायेहुये(द्रव्य) का
=आहार करना-ते इतने पांच उपभोग परिमाण
=परिभोग परिमाणके व्यतिक्रम--अथवा दूषण हैं

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सम्बन्धके स्थानमें संबद्धहै सम्मिश्रके स्थानमें संमिश्र है दुःपक्वके स्थानमें दुष्पक्व है (क) यहां पर सम्बन्ध

सह चित्तेन वर्तते इति सचित्तं चेतनावद्द्रव्यम् । तदुपश्लिष्टःसम्बन्धः । तद्व्यतिकीर्णः सम्मिश्रः । कथं पुनरस्य सचित्तादिषु प्रवृत्तिः स्यात्? प्रमादसम्मोहाभ्याम् । द्रवो वृष्यो वाऽभिषवः । असम्यक्पक्वो दुःपक्वः । एतैः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस पैंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद

सह* चित्तेन$_{३}$ वर्तते$_{T}$ इति*सचित्तम्$_{१}$ =जीव सहित वा जीवकरि विद्यमान ऐसा सचित्त है
चेतनावत्* द्रव्यम्$_{१}$, तद्-उपश्लिष्टः$_{१}$ =चेतना सम वस्तु है, उस (सचित्त) से भिड़ा हुआ वा लगा हुआ(=उपश्लिष्ट)
सम्बन्धः$_{१}$, तद् व्यतिकीर्णः$_{१}$ सम्मिश्रः$_{१}$, =सम्बन्ध है । उस(सचित्त)में मिलाहुआ (=व्यतिकीर्णः) सो समिश्र है
कथम् पुनः* अस्य$_{६}$ सचित्तादिषु$_{३}$ प्रवृत्तिः$_{१}$ स्यात्? =बहुरि (=पुनः) इस सचित्तादिकमें कैसे प्रवृत्ति होती है
प्रमाद-सम्मोहाभ्याम्$_{३}$ द्रवः$_{१}$ वृष्यः$_{१}$ वा* =(=उत्तर) प्रमाद और तीव्र रागसोरस(=द्रव) अथवा (=वा) पुष्ट पदार्थ (=वृष्य)
अभिषवः$_{१}$, असम्यक्-पक्वः$_{१}$ दुःपक्वः$_{१}$, =अभिषव है, भले प्रकार न पका हुआ(पदार्थ)दुःपक्व है
एतैः$_{३}$ =इन (सचित्त-सचित्तसम्बंध-सचित्तसंमिश्र-अभिषव-दुष्पक्व) करि ।

और संबद्ध का एकही तात्पर्य वा अभिप्राय है क्योंकि पद्मचन्द्र कोशके पृष्ठ ४१३ में दोनों का अर्थ सम्बन्ध = अच्छाबन्धन,सम्बद्ध (संबद्ध) = सम्यक् बन्धन लिखा है इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है कि सम्यक् बन्धन और अच्छा बन्धन का अर्थ एक है (ख)सम्मिश्र और संमिश्र = सम् मिश्र दोनों ठीक हैं सम्मिश्र अशुद्ध है(टिप्पणी अ०१ पृष्ठ ५३६,५४०)(ग)दुःपक्व और दुष्पक्वदोनों एकही हैंक्योंकि यह शब्ददुर् (उपसर्ग)और पक्व सेबना है दुर्के र् का विसर्गमें परिवर्त्तन होगया और दुःपक्व शब्द हुआ पश्चात् इस विसर्ग का परिवर्तन ष् में होकर दुष्पक्व बना इसके नियमके सम्बंधमें देखो टिप्पणी अध्याय ७ पृष्ठ६७,६८ अथवा देखो अष्टाध्यायी"खरवसानयोर्विसर्जनीयः।८-३-१५"इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ॥८-३-४१॥ दोनों सम्प्रदाओंमें इस सूत्रका एकही अर्थ है हमारे यहां कहीं सम्बन्ध पाठ है कहीं 'संबंध' पाठ है दोनों ठीक हैं[देखो टिप्पणी अध्याय१ पृष्ठ ५३६,५४०]

(२) उपश्लिष्टः–यह शब्द 'उप' उपसर्ग और 'श्लिष्' चतुर्थ दिवादि गणका सकर्मक अनिट् धातु से मिलना, संसर्ग होना अर्थमें बना है ॥ श्लिष् का और अन्य धातुओं का भी भूत कृदन्त धातु में त जोड़ने से बनता है जैसे श्रु = सुनना धातु से श्रुत (= सुनागया) बनगया इसी प्रकार श्लिष् में त जोड़ने से श्लिष्+त हुआ, अष्टाध्यायी ८–४ ४१ सूत्र ष्टुना ष्टुः (स्तोः) के एक भाग द्वारा कि त्–थ्–द्–ध्–न् ष् के साथ अनुक्रमसे ट्–ठ् ड्–ढ् ण् में पलट जाते हैं श्लिष्+त = श्लिष्ट हुआ, इसमें उप उपसर्ग ईषत्–किंचित् अर्थ में जोड़ने से उपश्लिष्ट बनगया । अर्थ हुआ लगा हुआ,भिड़ा हुआ ॥ उपश्लेष(पु०)उप अव्यय[क्योंकि अव्यय क्रिया के साथ आते हैं तबउनकी उपसर्ग संज्ञा हो जाती है]और श्लेष = आलिंगन ईषत् अर्थ में इस प्रकार बना है कि "उप ईषद् एक देशेन श्लेषः[सम्बन्धः]एक ओरकी मिलावट । आधार और आधेयका एक ओरमें मिलना, जैसे घर और घट का उपश्लेष होता है इसी प्रकार यहांपर'सांवस्त'आधार है और उससे भिड़ी हुई वस्तु आधेय है ॥उपश्लेषण(न०) = आलिंगन

आहारो विशेष्यते–सचित्ताहारः सम्बन्धाहारः सम्मिश्राहारोऽभिषवाहारो दुःपक्वाहार इति ॥ त एते पञ्च भोगोपभोगपरिसंख्यानस्यातिचाराः ॥

॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥

आहारः[1] विशेष्यते T

=आहार विशेष किया गया है वा अधिक किया गिया है अर्थात् सचित्त, सचित्त सम्बन्ध, सचित्तसम्मिश्र-अभिषव-दुष्पक्व ये आहार शब्दके विशेषण वा गुणवाचकहैं और आहार शब्द इन सचित्तादिक का विशेष्य है (तब)

सचित्त-आहारः[1] सम्बन्ध-आहारः[1] सम्मिश्र-आहारः[1] अभिषवआहारः[1] दुःपक्व-आहारः[1] इति*

=सचित्तआहार-सचित्त सम्बन्ध आहार, सचित्तसम्मिश्रआहार, =अभिषवआहार, दुष्पक्व आहार इस प्रकार

ते[1] एते[1] पञ्च-भोग-उपभोग-परिसंख्यानस्य[1] अतिचाराः[1]=ते इतने पाँच परिभोग परिमाण-उपभोग परिमाणके दूषण वा व्यतिक्रम हैं

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

=सचित्तनिक्षेप-सचित्तअपिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमाः (पञ्चातिथिसंविभागव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)॥

=सचित्त-निक्षेपः[1] सचित्तअपिधानम्[1] पर–व्यपदेशः[1] मात्सर्यम्[1] काल-अतिक्रमः[1] पञ्च[1] अतिथिसंविभागव्रतस्य[1] अतिचाराः[1] भवन्ति T

(१) यहां पर सम्बन्ध आहारसे-सचित्त-सम्बन्ध आहारसे आशय है और सम्मिश्र आहारसे सचित्तसमिश्र आहार से प्रयोजन है (२) भोगसे यहांपर परिभोगसे तात्पर्य है क्योंकि भोगके दो भेदहैं उपभोग, परिभोग, उपभोग वहहै जो एक बार भोगने वा सेवनेमें आवे जैसे खान पान आदि, परिभोग जो बार बारसेवने में आवै जैसे वस्त्र-आभूषण इत्यादि (देखो पृष्ठ ६४ और ६५) (३) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अपिधान शब्दके स्थानमें पिधान है दोनों का अर्थ एकही है पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ३३में "अपिधान" (नं०) अपि + धाञ् + ल्युट् ढकना (आच्छादन) पिधान इसी अर्थमें होता हैं ऐसा अर्थ लिखाहै और पद्मचंद्र कोश पृष्ठ २४० में 'पिधान (नं०)अपि + धा + ल्युट् (अकालोप, छादन-आवरण-उच्छादन। ढकना, जब पिधानसे काम चल जाता है और सूत्रभी एक अकार मात्र लघुहोजाता है तब मेरी समझमें सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम का पाठ लघु है, शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थभी एक है (४) कहीं कहीं पर मात्सर्थ शब्द है कहीं कहीं पर मात्सर्य्य है दोनों शुद्ध अर्थो रहाभ्यांहे वा व्याकरण के सूत्रसे हैं, परन्तु मात्सर्य लिखना श्रेष्ठ है क्योंकि मूल सूत्र जितना भी लघुहो उतना ही अच्छा है॥

सचित्त-निक्षेप- =जीव सहित (कमलके पत्रादिक) में (अतिथिके देनेका आहारपानादिक) रखना

सचित्त-अपिधान- =सचिताकरि (अतिथिके देनेका आहार पानादिक) ढकना अथवा आच्छादन करना-

(१)पर-व्यपदेश- =दूसरे (दातार) की देने योग्य वस्तुका दान करना अन्यकी वस्तुका दानकरना अर्थात् अन्य दातारकी देय कहिये आहार आदि देने योग्य वस्तु सो लेकरि अपना नाम करना, (=अन्यकी वस्तुका दान करना) अथवा अन्यका नाम करि दान दैना अपना नाम न करना-

मात्सर्य- =पर गुणमें द्वेष-दूसरेके गुणमें वैर करना अर्थात् अन्य देही दातारके गुणआदिसेईर्षाकरना

कालातिक्रमः[१] =समयको उल्लंघन करना अर्थात् समय पर अतिथि को भोजन न दैना अथवा अतिथि का जो भोजनका समय है उस समयको उल्लंघनकरि विलम्बसे देरीसे भोजन दैना

ते[१] एते[१] पंचअतिथिसंविभाग व्रतस्य[६] अतिचाराः[१] भवन्ति=येपांच अतिथिसंविभाग व्रतके अतीचार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस छत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

(१) व्यपदेश = (पु०) वि + अप + देश + घञ् । कथन (कहना) संज्ञा (नाम) कापट्य (छलपन) पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ३७१ ऐसा अर्थ है, परव्यपदेशका अर्थ " अन्यदातृदेयार्पणम् " (संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ३७३ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४७२) तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६१ में) ऐसा किया है, इसके विवरण उक्त राजवार्तिक में " अन्यत्र दातारः संति दीयमानोप्ययमन्यस्येति वा अर्पणं परव्यपदेश इति प्रतिपद्यते " से प्रगट है कि संक्षेपतः इस विवरण के दो भाग हैं (क) अन्यकी वस्तु का दान करना (ख) अपनी द्रव्यका दान करना परन्तु परका नाम करना अपना नाम न करना, जय चंद्रायजीने राजवार्तिकके अनुसार दोनों अर्थ किये हैं इसी का सारांश लेकर हमने भी दोनों अर्थ किये हैं ॥ पं० ठाकुर प्रसादजीने सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७२ में दूसरा भाग लिया है " यह पदार्थ पराया अर्थात् अन्य मनुष्यका है ऐसा कहना" । पं० सदासुखजीने तत्त्वार्थसूत्रकी लघुटीका में प्रथम भाग " अन्य पुरुषका दान अपने नाम से देना" लिया है (रेखोलघुटीकापृष्ठ ४०) और अर्थप्रकाशिकामें द्वितीय भाग लिया है "अन्यका नाम करिदान दैना" (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५३७) ॥ परव्यपदेश = (१) अन्यसे कापट्य वा अन्यसे छलपना अर्थात् अन्यसे वस्तु लेकरि अपना नाम करिके दान दैना (२) अन्यका नाम (करना) वा कथन (करना) अर्थात्, अपनी वस्तु दान दैना दूसरे का नाम करना इस प्रकार दोनोंके अर्थ कोशके अनुसार भी हो गये ॥

सचित्तो पद्मपत्रादौ निक्षेपः सचित्तनिक्षेपः। अपिधानमावरणं सचित्तेनैव सम्बध्यते सचित्तापिधानमिति। अन्यदातृदेयार्पणं परव्यपदेशः। प्रयच्छतोऽप्यादराभावोऽन्यदातृगुणासहनं वा मात्सर्यम्। अकाले भोजनं कालातिक्रमः॥ त एते पँचातिथिसंविभागशीलातिचाराः॥

॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७॥

सचित्त[२]''' पद्मपत्र-आदौ[२]''' निक्षेपः[१] सचित्तनिक्षेपः[३]; =जीवसहित कमलके पत्र आदिमें रखना सो सचित्त निक्षेप है।

अपिधानम्[१]''' आवरणम्[१]''' सचित्तेन[३]''' एव* सम्बध्यते। =अपिधान आवरण वा ढकनाहै, सचित्तकरिही(इसअपिधान शब्दका)सम्बन्ध कियागया है

सचित्त-अपिधानम्[१]''' इति*। =सो सचित्त-अपिधान है अर्थात् सचित्त करि (अतिथिके देनेका आहार) ढाकना सो सचित्त अपिधान वा सचित्त पिधान है।

अन्यदातृ-देय-अर्पण*[१]''' परव्यपदेशः[१]। =दूसरे दाताकी देने योग्य (वस्तु) का दान करना अथवा अन्यका दान (अपने नामसे) देना सो पर व्यपदेश है (देखो टिप्पणी इस सूत्रके अर्थ पर)

प्रयच्छतः[६] अपि* आदर-अभावः[१] वा अन्यदातृगुण-असहनम्[१]''' मात्सर्यम्[१]'''; अकाले[२] भोजनम्[१]''' =दान देने वाले के भी आदर का अभाव अथवा अन्य दातारके गुणको =सहन न करना सो मात्सर्य है। असमय पर भोजन देना अर्थात् भोजन के समय का उल्लेख करि बिलम्ब से अतिथि को भोजन देना,

काल-अतिक्रमः[१]; ते[१] एते[१] पंच[१] अतिथिसंविभाग-शील-अतिचाराः[१] =सो काल अतिक्रम है। ते एते पांच अतिथि विभाग =शील के अतिचार हैं॥ (अगलेसूत्रमें आचार्य सल्लेखनाके पांच अतिचार कहते हैं)

(१)जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥

=जीवितआशंसा-मरणआशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि (ते एते पञ्च सल्लेखनायाः अतिचाराः भवन्ति)॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः—जीवित-आशंसा- =(सल्लेखना धारण करके) जीनेकी इच्छा वा अभिलाषा करना

मरण-आशंसा-मित्रानुराग- =(रोगादिक के उपद्रवोंसे घबराकर) मरनेकी वांछा करना, मित्रोंमें प्रीति अर्थात् जिन मनुष्योंके साथ प्रीतिपूर्वक पहिले क्रीड़ा कीथी उनका बारम्बार स्मरण करना-

(१) किसीकिसी पुस्तकमें बंध पाठहै और कहीं कहीं बन्धहै दोनों पाठ ठीक हैं(देखो टिप्पणी अध्याय प्रथमपृष्ठ ५३६, ५४०) शेषपाठ हमारेयहां एकहै॥

आशंसनमाशंसा आकांक्षणमित्यर्थः । जीवितं च मरणं च जीवितमरणं, जीवितमरण-स्याशंसे जीवितमरणाशंसे । पूर्वसुहृत्सहपांसुक्रीडनाद्यनुस्मरणं मित्रानुरागः अनुभूतप्रीतिविशेष-स्मृतिसमन्वाहारः सुखानुबन्धः । भोगाकांक्षया नियतं दीयते चित्तं तस्मिंस्तेनेति वा निदानम् ।

सुखानुबन्ध— =सुखका सम्बन्ध रखना अथवा सुखका स्मरण करना-अर्थात् पूर्वकाल में अनुभव किये जे इन्द्रिय जनित सुख तिनका बारम्बार चिन्तवन सो सुखानुबन्ध है ।

(१) निदानानि $\frac{1}{3}^{111}$ ॥ =अगले जन्म में विषयादि सुखोंके प्राप्त होने की वांछा करना सो निदान है ।

ते$\frac{1}{3}$ एते$\frac{1}{3}$ पंच$\frac{1}{3}$ सल्लेखनायाः$\frac{1}{4}$''अतिचाराः$\frac{1}{3}$ भवन्ति । =ते इतने पांच सल्लेखना व्रतके अतिचार होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सैंतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

आशँसनम्$\frac{1}{4}^{111}$ आशँसा$\frac{1}{4}^{11}$ आकंक्षणम्$\frac{1}{4}^{111}$ इति*अर्थः$\frac{1}{4}$, =आशँसन है वह आशँसा है अभिलाषा वा इच्छा ऐसा अर्थ (आशँसा का) हुआ ।

जीवितम्$\frac{1}{4}^{111}$ च * मरणम्$\frac{1}{4}^{111}$ च * जीवितमरणम्$\frac{1}{4}^{111}$ =और (=च) जीवित तथा (=च) मरण (मिलकर) जीवित मरण (वाक्य) हुआ ।

जीवितमरणस्य$\frac{6}{4}^{111}$ आशँसे$\frac{1}{3}^{11}$ (२) जीवित मरणाशंसे$\frac{1}{4}^{11}$, =जीने और मृत्यु की आकांक्षा-सो जीवितमरणआकांक्षा है ।

पूर्व-सु-हृत्-सहपांसुहक्रीडन-आदि-अनुस्मरणम्$\frac{1}{4}^{111}$ =पहिले मित्र सहित धूल(पांसु=पांशु)परिहास्य वा केलि आदि की सुध वा स्मृति

मित्रानुरागः$\frac{1}{4}^{1}$; अनुभूत-प्रीति-विशेष-स्मृति-समन्वाहारः$\frac{1}{4}^{1}$ =सो मित्रानुराग है । अनुभव किये हुये(सुख)की प्रीति विशेषसे बार बार स्मरण

सुखानुबन्धः$\frac{1}{4}^{1}$; भोग-आकांक्षया$\frac{3}{4}^{11}$ तस्मिन्$\frac{7}{4}^{1}$ =सो सुखानु बन्ध है । भोग की आशा करि उस (भोग) पर (तस्मिन्)

तेन$\frac{3}{4}^{1}$ इति * वा * नियतम्$\frac{1}{4}^{11}$, दीयते चित्तम्$\frac{1}{4}^{111}$ निदानम्$\frac{1}{4}^{111}$ =अथवा उस (भोग) से (=तेन) नियत की जाय चित्त लगाया जाय सो निदान है ।

अर्थात् भोगकी वांछाकरि नियम बांधना जो ऐसा भोग मिलै सो निदान है

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, ' निदानानि ' शब्दके स्थानमें ' निदानकरणानि ' है शेष सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ हमारे यहां निदानका वही अर्थ किया है जो सभाष्य० में निदानकरणका किया है । " आगामी विषय भोगों की आकांक्षा करना निदान करण पँचम अतिचार है " (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७२) " अगले जन्ममें विषयादि सुखोंके प्राप्त होनेकी वांछा करना सो निदान नामका अतिचार है " (पं० पन्नालाल जी टीका) ॥ आगामी विषय भोगोंकी आकांक्षा करना इस वाक्यमें और अगले जन्ममें विषयादि सुखों के प्राप्त होने की वांछा करना एक ही अभिप्राय के द्योतकहैं॥ २) जीवित अनुशंसा और मरण अनुशंसाभी कहतेहै, जीवितं का लिंग नपुसक है,आशंसा का स्त्रीलिंग है इन दोनोंके मिलनेसे द्वि वचन अन्त शब्द के अनुसार होगा, आशंसा का स्त्रीलिंग द्वि वचन आशंसे है ॥ इसलिये जीवितमरणा संशे हो गया ॥

त एते पंच सल्लेखनाया अतिचाराः ॥ अत्राह—उक्तं भगवता तीर्थकरत्वकारणकर्मास्रवनिर्देशे शक्तितस्त्यागतपसीति, पुनश्चोक्तं शीलविधानेऽतिथिसंविभाग इति। तस्य दानस्यलक्षणमनिर्ज्ञातं तदुच्यतामित्यत आह—

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥

स्वपरोपकारोऽनुग्रहः। स्वोपकारः पुण्यसंचयः, परोपकारः सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः। स्वशब्दोधनपर्यायवचनः।

ते॥३॥ एते॥३॥ पंच॥३॥ सल्लेखनायाः॥६॥ अतिचाराः॥१॥ अत्र* आह T =ते इतने पांच सल्लेखनाके अतीचार हैं। यहां प्रश्न है कि
तीर्थकरत्व कारण—कर्म—आस्रव निर्देशे॥७॥ शक्तितः* =तीर्थंकर होनेका कारण कर्म आस्रवके कथनमें शक्तितः शक्ति पूर्वक—
त्यागतपसी॥२॥ इति* उक्तम्॥१॥ भगवता॥३॥ =त्याग तपसी ऐसा आप (भगवान्) द्वारा वर्णित है,
पुनः च* उक्तम्॥१॥ शील विधाने॥७॥ अतिथिसंविभागः॥१॥ इति*। =बहुरि शील विधानमें अतिथिसंविभाग भी (=च) ऐसा वर्णितहै (=उक्तम्)।
तस्य॥६॥ दानस्य॥६॥ लक्षणम्॥१॥ निर्ज्ञातम्॥१॥ तद्॥१॥ =तिस दानका लक्षण ज्ञात नहीं हुआ वह (दानका लक्षण)
उच्यताम् T इति* अतः* आह T =कहाजाना चाहिये, इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्र) कहतेहैं कि

(१)अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् —अनुग्रह—अर्थम्—स्वस्य—अतिसर्गः दानम् भवति॥३८॥

सूत्रार्थः—अनुग्रह-अर्थम्॥१॥ स्वस्य॥६॥ अतिसर्गः॥१॥ दानम्॥१॥। =(अपने; परके) उपकारके लिये धन, वस्तु का अर्पण वा त्याग करना सोदान है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अड़तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दश हिन्दीअनुवाद-

स्व—पर—उपकारः॥१॥ अनुग्रहः॥१॥, स्वउपकारः॥१॥ =अपना तथा दूसरे का उपकार सो अनुग्रह है। अपना (=स्व) उपकार
पुण्य संचयः॥१॥, पर-उपकारः॥१॥ सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः॥१॥; =पुण्यका इकट्ठाहोना वा बन्धहोना है अन्यका उपकार सम्यग्ज्ञानादिककीवृद्धी होना है,
(२)स्व—शब्दः॥१॥ धन—पर्याय वचनः॥१॥; =(इस सूत्रमें) स्व शब्द धनके समअर्थको (=पर्याय) कहने वालाहै
अर्थात् स्व शब्दका वही अर्थ यहां पर है जो धन शब्दका अर्थ होता है

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर संप्रदायोंमें एकसा पाठ और अर्थ है। (२) स्व —(क)आत्मा (आप) आत्मीय (अपना) अर्थमें इसकी सर्व नाम संज्ञा होती है (ख) (पु०) ज्ञाति किसीके वंशका अथवा जातिका (ग) स्वाभाविक, प्राकृतिक, मूल (घ) पुल्लिंगमें आ मा के अर्थ में भी आता है (ङ) धन के अर्थ में पुल्लिंग नपुंसक होता है (देखो वैद्य संस्कृत आंगलकोश पृष्ठ ८१६)

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गस्त्यागो दानं वेदितव्यम् ॥ अत्राह–उक्तं दानं तत्किमविशिष्टफलमाहोस्विदस्ति कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत आह—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

प्रतिग्रहादिक्रमो विधिः।

अनुग्रह-अर्थम्[1] स्वस्य[1] अतिसर्गः[1] त्यागः[1] दानम्[1] वेदितव्यम्[1] ॥ अत्र* आह[T] उक्तम्[1] दानम्[1] तत्किम्[1] अविशिष्टफलम्[1] आहोस्वित्* अस्ति[T] कश्चित्* प्रतिविशेषः[1] इति* अतः * आह[T]

=(अपने तथा परके) उपकारकेलिये(अपने) धनका (=स्वस्य) अर्पण वा त्याग सो दान =जानना चाहिये। यहां प्रश्न करताहै कि दान कहागया =क्याउस (दान) का(=तत्) विशेषरहित वा एकही फलहै अथवा (=आहोस्वित्) =कुछ विशेष (फल) है इसलिये (आचार्यउत्तर सूत्र कहते हैं कि

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

विधिविशेषात्-द्रव्यविशेषात्-दातृविशेषात्-पात्रविशेषात् तद् (=दानस्य) विशेषः वेदितव्यः ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थः—विधिविशेषात्[5] द्रव्यविशेषात्[5] दातृविशेषात् पात्रविशेषात्[5] तद्-विशेषः[1] वेदितव्यः[1]।

=(आदरपूर्वक वचन वा प्रतिग्रहादिक)विधानकीविलक्षणतासे,दातव्य पदार्थकेविशेष से =दातार (देने वाले) के विशेषसे, -जिसको दान दिया जाय उसके विशेष से =उस (दान) में विलक्षणता वा भेद होताहै अर्थात् उत्तम रीतिसे दान देने में, उत्तमजाति तथा गुणसंयुक्त वस्तु देनेसे, उत्तमगुण वाले दातारके हाथसे दान दिये जानेसे, तथा रत्नत्रयके धारकमुनि जो उत्तम पात्रहैं उनको दान देनेसे उत्तमफल होताहै इसी प्रकार मध्यमविधिसे मध्यमगुणसंयुक्त द्रव्य देनेसे, मध्यमगुण वाले दातासे तथा मध्यमपात्रव्रत सहित श्रावकको दानदेने मेंमध्यमफलकी प्राप्ति होताहै और ऐसेही जघन्यविधिसे जघन्य गुणसंयुक्त वस्तु वा पदार्थ देनेसे जघन्यगुणसंयुक्त दातारद्वारा दिये जानेसे तथा जघन्यपात्र जो व्रत रहित सम्यक्त सहित अव्रत सम्यक् दृष्टि को दान देनेसे जघन्य फल होता है।

वृत्त्यनुवादः—प्रतिग्रह-आदि-क्रमः[1] विधिः[1]

=(क) पडगावना अथवा आदरपूर्वक वचन (=प्रतिग्रह) (ख) उच्च स्थान देना (ग) पाद-प्रक्षालन वा पादोदक (घ) पूजनकरना वा अर्घन (ङ) नमस्कारकरना प्रणामकरना वा प्रणमन (च) मनकीशुद्धता (छ) वचनकीशुद्धता (ज) कायकी शुद्धता (झ) भोजनकी शुद्धता-क्रमविधिहै। अर्थात् मुनिको दानदेनेमें नव प्रकारकीभक्ति कही गईहै॥

विशेषो गुणकृतः। तस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धः क्रियते—विधिविशेषो द्रव्यविशेषो दातृविशेषः पात्रविशेष इति ॥ तत्र विधिविशेषः प्रतिग्रहादिष्वादरानादरकृतो भेदः। तपः स्वाध्यायपरिवृद्धिहेतुत्वादिर्द्रव्यविशेषः। अनसूयाविषादादिर्दातृविशेषः।

विशेषः[1] गुणकृतः[1];

=गुणसे कियागया वा गुणद्वारा कियागया सो विशेष है अर्थात् विलक्षणता को कहते हैं

तस्य[6] प्रत्येकम्[3]|||| अभिसम्बन्धः[1]

=तिस (विशेषशब्द) का प्रत्येक (विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र) को सम्बन्ध

क्रियते T—विधिविशेषः[1] द्रव्यविशेषः[1] दातृविशेषः[1] पात्रविशेषः[1] इति* ॥ तत्र*विधिविशेषः[1]

=किया जाता है कि विधिविशेष—द्रव्यविशेष—दातृविशेष—पात्रविशेष ऐसे हुये। तहां विधानकी विलक्षणता

प्रतिग्रहादिषु[7] आदर—अनादरकृतः[1] भेदः[1]।

=प्रतिग्रहादिक (पूर्वोक्त नवधाभक्ति) में सन्मान अप्रतिष्ठा कृत भेद है,

तपः-स्वाध्याय—परिवृद्धि-हेतुत्वादिः[1] द्रव्यविशेषः[1]।

=तपस्वाध्यायकी बढ़ती अथवा उन्नतिका निमित्तपना आदि द्रव्यविशेष है, अर्थात् जिस वस्तुसे राग-द्वेष-असंयम-मद-दुःख—भय-प्रमाद रोगादिक उत्पन्न हों सो तपस्वी को न देना, जिनसे तपस्वाध्यायकी वृद्धि हो ऐसी उत्तम जाति तथ उत्तम गुण संयुक्त वस्तु देना सो द्रव्यविशेष है

अन्—असूया-अविषाद—आदिः[1] दातृविशेषः[1]।

=अन्यके गुणोंमें दोषदृष्टि न करना शोक न करना (अविषाद) आदिक—दातृविशेष है अर्थात् दाताके निम्नलिखित गुण हैं (क) अनसूया वा ईर्षारहितता (ख) विषाद रहितता, पछतावा न करे (ग) देनेके इच्छुकमें, देने वालेमें प्रीति हो (घ) कुशल वा कल्याणका अभिप्राय हो (ङ) दृष्ट फल की चाहना न हो अर्थात् दान देय इस लोक परलोकमें धन संपदा, यश, कीर्ति इनकी वांछा न करना—(च) निष्कपटोपधना अर्थात् उपधा (=छल=उपाधि) विशेष से वर्जित हो कपटसे दान न दिया जावै (छ) निदान रहित (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित २९२ देखो) ॥

मोक्षकारणगुणसंयोगः पात्रविशेषात्ततश्च पुण्यफलविशेषः क्षेत्रादिविशेषाद्बीजफलविशेषवत्॥

क्षेत्रादिविशेषाद्बीजफलविशेषवत् ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायां सप्तमो ऽध्यायः ॥

मोक्ष-कारण-गुण-संयोगः[१।१]	=मोक्षके निमित्त गुण (जे सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान-सम्यक्-चारित्र) तिनकरि संयुक्त
पात्रविशेषः[१।१]; ततः * च *	=सो पात्रविशेष है, बहुरि (=च)तिन (विधिविशेष-द्रव्यविशेष-दातृविशेष–पात्रविशेष)से
पुण्यफलविशेषः[१।१];	=पुण्यफलमें विशेष वा भेद है अर्थात् इन चार कारणोंसे उत्तम-मध्यम जघन्य आदि दानके विशेष भेद होते हैं और उनके फल भी उत्तम-मध्यम-जघन्य होते हैं
क्षेत्रादि-वशपाते[७।१] बीज-फल–विशेषवत् *	=जैसे पृथिवी वा भूमि आदिके विशेषसे बीज तथा फल का विशेष वा भेद होता है

इति* तत्त्वार्थवृत्तौ[७।१] =इस प्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें
सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायाम्[७।१] =सर्वार्थसिद्धि नामा ग्रन्थमें
सप्तमः[१।१] अध्यायः[१।१] =सातवां अध्याय (पूर्ण) हुआ ॥ ७॥

शुभमस्तु ! शुभमस्तु !! शुभमस्तु !!!

सर्वार्थ-सिद्धि १

॥ अथाष्टमोऽध्यायः ॥

व्याख्यात आस्रवपदार्थस्तदनन्तरोद्देशभाग्बन्धपदार्थ इदानीं व्याख्येयस्तस्मिन्व्याख्येये सति पूर्वं बन्धहेतूपन्यासः क्रियते तत्पूर्वकत्वाद्बन्धस्येति ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥

अध्याय ८ सूत्र १

अथ*अष्टमः[1]अध्यायः[1] = आठवां अध्याय प्रारम्भ(= अथ)है

व्याख्यातः [1] आस्रव-पदार्थः [1] = आस्रव पदार्थ (छठे और सातवें अध्यायों में) वर्णन किया गया है
तद्-अनन्तर-उद्देशभाक्[1]बन्ध-पदार्थः[1]इदानीम्*व्याख्येयः[1] = जिस (आस्रव पदार्थ) के निकट कहा गया बन्ध पदार्थ अब व्याख्यान योग्य है
तस्मिन्[3] व्याख्येये[3] सति[7] पूर्वम्[111]बन्ध-हेतु-उपन्यासः[1] = जिस के व्याख्यान योग्य होते संते पहिले बन्ध के कारण की प्रस्तावना(= उपन्यास)
क्रियते T तत्पूर्वकत्वात्[7][1] बन्धस्य[1] इति * = की जाती है क्योंकि बन्धका होना उस (कारण) पूर्वक है ऐसे (निम्नसूत्र कहा जाता है)

(१) मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—मिथ्यादर्शन- = अतत्त्वार्थ श्रद्धान अथवा तत्त्वार्थका अश्रद्धान
अविरति- = हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म परिग्रह से विरति न होना पृथक् न रहना अथवा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह की आकांक्षा रूप होना
प्रमाद- = कल्याण रूप कार्यों में अनादर और मनकी खोटी प्रवृत्ति का होना अर्थात्

(१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भेद केवल इतना है कि दोनों सम्प्रदायोंमें मिथ्यादर्शनके दो भेद गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व मानने पर भी हमारे यहां गृहीत मिथ्यात्वके पाँच भेद (क) एकान्तमिथ्यात्व (ख) संशयमिथ्यात्व (ग विनयमिथ्यात्व (घ) अज्ञानमिथ्यात्व (ङ) विपरीतमिथ्यात्व माने हैं. इस विपरीतमिथ्यात्वमें केवलीके कवलाहार मानना और स्त्री को मोक्ष होना इत्यादिक गर्भित किये हैं। परन्तु दूसरी आम्नाय वाले इसको विपरीत मिथ्यात्व नहीं कहते हैं। वे 'एकादश जिने' अध्याय ९ सूत्र ग्यारह से केवलीके कवलाहार मानते हैं। वे स्त्री के मोक्ष इत्यादि मानते हैं॥ (२) हेतवः-'हेतु' शब्दका प्रथमाविभक्ति पुल्लिंग बहुवचन है॥

मिथ्यादर्शनादय उक्ताः । क मिथ्यादर्शनं तावदुक्तं ? तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्यत्र,

भाव शुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भैक्ष्यशुद्धि शयनासनशुद्धि, प्रतिष्ठापन शुद्धि और वाक्य शुद्धि ये आठ शुद्धियें तथा दशलक्षण धर्ममें उत्साह रहित परिणाम हो,मन्दउद्यमीहो,स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा,देशकथा ये चार विकथा और क्रोध,मान,माया(= कपट),लोभ ये चार कषाय पांच(स्पर्शन-रसन-घ्राण-आंख-कर्ण)इन्द्रियें,निद्रा और अतिराग(= प्रणय) वा स्नेह ये १५प्रमाद हैं।

कषाय-- = आत्मा के स्वभाव अथवा परिणाम को कषैला करने में कारण (सो कषाय) है अर्थात् उनके पचीस भेद हैं, अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया (कपट), अनन्तानुबन्धी लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध,अप्रत्याख्यानमान(अहंकार,घमंड),अप्रत्याख्यान माया,(कपट)अप्रत्याख्यान लोभ संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान (अभिमान), संज्वलन माया(कपट), संज्वलन लोभ (लालच) नौ अकषाय वा ईषत् कषाय, अल्परूप कषाय अर्थात् हास्य,रति,अरति,शोक,भय,जुगुप्सा,स्त्री वेद,पुरुष वेद, नपुंसक वेद, ऐसे सोलह उपर्युक्त कषाय,और नौ ये,अकषाय,सर्व मिलकर पचीस कषाय हुये

योगाः $\frac{1}{3}$ = काय-वचन-मनकी क्रिया (देखो अध्याय ६ सूत्र १) अर्थात् काय, वचन, मन इन तीनों द्वारा आत्माके प्रदेशोंका कम्पायमान होना सो योग है, भावार्थ कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलन रूप होना सो काय योग है। वचनके निमित्तसे, आत्माके प्रदेशोंका चलना सो वाग्योग है। और मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलना सो मनो योग है,

बन्ध हेतवः $\frac{1}{3}$ (ये सर्व) बन्धके हेतु वा कारण हैं, अर्थात् आत्माके कर्म बन्ध इनके निमित्तसे ही होता है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस प्रथम सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदीअनुवाद ।

मिथ्यादर्शन-आदयः $\frac{1}{3}$ उक्ताः $\frac{1}{3}$ = मिथ्यादर्शन आदिक पहिले कहे जा चुके हैं (देखो अध्याय २ सूत्र ६ अ० ६ सूत्र १, अ० ७ सूत्र १)

क मिथ्यादर्शनम् $\frac{1}{3}$ [1] तावत् * उक्तम् $\frac{1}{3}$ [1] ? = (प्रश्न) तो (= तावत्) मिथ्यादर्शन कहां कहा गया है ?

तत्त्वार्थ-- = (उत्तर)जीवादि अर्थ जिस प्रकारसे अवस्थित है उसको उसी प्रकारसे(= तत्त्वेन) निश्चयकरि(= अर्थ)

श्रद्धानम् $\frac{1}{3}$ [1] सम्यग्दर्शनम् $\frac{1}{3}$ [1] इति * अत्र = जो विश्वास(= श्रद्धान)है सो सम्यग्दर्शनहै,इस प्रकार यहां अर्थात् इस ग्रन्थके अ० १ सूत्र २में(कहागया)

तत्प्रतिपक्षभूतमास्रवविधाने च क्रियासु व्याख्यातं मिथ्यादर्शनक्रियेति ॥ विरतिरुक्ता । तत्प्रतिपक्ष भूता अविरतिर्ग्राह्या । आज्ञाव्यापादनक्रिया अनाकांक्ष क्रियेत्यनयोः प्रमादस्यान्तर्भावः । स च प्रमादः कुशलेष्वनादरः ॥ कषायाः क्रोधादयः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलनविकल्पाःप्रोक्ताः । क ? इन्द्रियकषाया इत्यत्रैव ॥ योगाः कायादिविकल्पाः प्रोक्ताः ।

तत्–प्रतिपक्षभूतम्[1] = उस (तत्त्वार्थ श्रद्धान वा सम्यग्दर्शनको) का प्रतिपक्षी वा विरोधी(अतत्त्वार्थ श्रद्धान)
आस्रव–विधाने[1] च* क्रियासु[1] व्याख्यातम्[1] = तथा (= च) आस्रवके कथनमें पच्चीस क्रियाओंमें व्याख्यान की गयी
(१)मिथ्यादर्शनक्रिया[1] इति*॥ = मिथ्यादर्शन क्रिया ऐसा(मिथ्यादर्शन)है(देखोअ०६सू०५ संस्कृत सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ३१६)
विरतिः[1] उक्ता[1], तत्–प्रतिपक्षभूता[1] अविरतिः[1] = विरति कही गई है (अध्याय ७ सूत्र १) तिस विरतिके विपरीत(प्रतिपक्षभूत)अविरति
(२)ग्राह्या[1];आज्ञाव्यापादनाक्रिया[1] = जानने योग्य(ग्राह्य)है। आज्ञा व्यापादन क्रिया अर्थात् चारित्र मोहके उदयसे(परमागममें)
= कहीहुई आज्ञानुसार आवश्यक आदिकके करनेको असमर्थ होकर और प्रकार वर्णन करना
अनाकांक्षाक्रियाः[1] = और अनाकांक्ष क्रिया अर्थात् कष्ट तथा आलस्यसे शास्त्रोक्त विधानके कर्तव्यमें अनादर
इति*अनयोः[1] प्रमादस्य[6] अन्तर्भावः, = इस प्रकार इन दोनोंमें प्रमाद अन्तर्भावित है अर्थात् प्रमाद इन दोनोंमें गर्भित है
सः[1] च*प्रमादः[1] कुशलेषु[7] अनादरः[1];कषायाः[1] = बहुरि वह प्रमाद कल्याण कार्योंमें निरादर (रूप है ॥ कषाय
क्रोध-आदयः[1] अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान– = क्रोध आदिक अनन्तानुबन्धी. अप्रत्याख्यान ।
प्रत्याख्यान–संज्वलन–विकल्पाः[1] प्र–उक्ताः[1]; = प्रत्याख्यान, सञ्ज्वलनके भेद पहिले (= प्र) कहे गये हैं (= उक्त :)
क*इन्द्रिय–कषायाः[1] इति*अत्र*एव*॥ = (प्रश्न) कहां (कहे गये हैं इन्द्रिय कषाय ऐसे इस स्थान (अध्याय ६ सूत्र ५) में ही
योगाः[1] काय–आदि–विकल्पाः [1] प्रोक्ताः[1] = योग-काय आदि भेद रूप प्रथम कहे गये है (अध्याय ६ सूत्र १)

---

(१) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ३१६ में मिथ्यात्वक्रिया है और यहां पर उसी अर्थमें मिथ्यादर्शन क्रिया लिखी है। इससे प्रगट है कि मिथ्यादर्शन और मिथ्यात्व शब्द एक ही अर्थ में लियेगये हैं। इसी कारणसे भाषाकी पुस्तकोंमें और संस्कृतकी पुस्तकोंमें भी मिथ्यात्व शब्द मिथ्यादर्शनके अर्थ में लिया गया है। (२) ग्राह्य शब्द के अर्थ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २३६ में जानने योग्य, ग्रहण करने योग्य लिखा है।

क ? कायवाङ्मनःकर्म योग इत्यत्र ॥ मिथ्यादर्शनं द्विविधम् । नैसर्गिकं परोपदेशपूर्वकं च । तत्र परोपदेशमन्तरेण मिथ्यात्वकर्मोदयवशाद्यदाविर्भवति तत्त्वार्थाश्रद्धानलक्षणं तन्नैसर्गिकम् ॥ परोपदेशनिमित्तं चतुर्विधम् । क्रियाक्रियावाद्यज्ञानिवैनयिकविकल्पात् ॥ अथवा पञ्चविधं मिथ्यादर्शनम्--एकान्तमिथ्यादर्शनम् । विपरीतमिथ्यादर्शनम् । संशयमिथ्यादर्शनम् । वैनयिकमिथ्यादर्शनम् । अज्ञानमिथ्यादर्शनं चेति ॥ तत्र इदमेव इत्थमेवेति धर्मिधर्मयोरभिनिवेश एकान्तः पुरुष एवेदं सर्वमिति वा नित्यमेवेति ॥

क*?काय-वाङ्-मनः कर्म[1] योगः[1] = [प्रश्न]क्या[योग कहे गये हैं] काय-वाङ्-मनः कर्म योगः [काय-वचन-मनकी क्रिया योग है]

इति*अत्र*मिथ्यादर्शनम्[1] द्वि-विधम्[1];नैसर्गिकम्[1] = ऐसे इस स्थानमें अर्थात् अ० ८ सूत्र १ में [योग कहे गये हैं] मिथ्यात्व दो प्रकार नैसर्गिक

पर-उपदेश पूर्वकम्[1] च।तत्र पर-उपदेशम्[1] (१)अन्तरेण* = और [=च] उस उपदेश निमित्तक या परउपदेश जन्य,तहां दूसरेके उपदेशविना

मिथ्यात्व-कर्म-उदय-वशात्[1] यत्[1] आविर्भवति।तत्त्वार्थ- = मिथ्यात्व कर्मके उदेक वशसे जो प्रगट होता है [=आविर्भवति] तत्त्वार्थका

अश्रद्धान-लक्षणम्[1] तत्[1] नैसर्गिकम्[1]; = अश्रद्धानरूप परिणाम[आत्माके]सो[=तत्] नैसर्गिक या अगृहीत[मिथ्यात्व]है

पर-उपदेश-निमित्तम्[1] चतुर्-विधम्[1];क्रियावादिन् = दूसरेकेउपदेश या शिक्षासे उत्पन्नहुआ जो[मिथ्यादर्शनसो] चार प्रकार,क्रियावादी

अक्रियावादिन्-अज्ञानिक-वैनयिक-विकल्पात्[1];अथवा* = अक्रियावादी, अज्ञानिक और वैनयिक भेद से है अथवा

पंचविधम्[1] मिथ्यादर्शनम्[1] एकान्तमिथ्यादर्शनम्[1] = मिथ्यादर्शन या मिथ्यात्व पांच प्रकार [क]एकान्तमिथ्यादर्शन

विपरीतमिथ्यादर्शनम्[1] संशयमिथ्यादर्शनम्[1] वैनयिक- = [ख]विपरीतमिथ्यादर्शन [ग] संशयमिथ्यादर्शन [घ] वैनयिक

मिथ्यादर्शनम्[1] अज्ञानमिथ्यादर्शनम्[1] च*इति* = मिथ्यादर्शन और (=च)अज्ञानमिथ्यादर्शन इस प्रकार (पांच भेद) हैं

तत्र*इदम्[1] एव*इत्थम्*एव*इति*[२]धर्मि- = तहां यह [=इदम्]ही[=एव]है,इसरीतिसे[इत्थम्]ही है। धर्मी तथा

धर्मयोः अभिनिवेशः[1] = धर्मका हठ करना अर्थात् पदार्थका धर्मीमात्र होनेका हठ करना तथाधर्ममात्र होने का हठ करना भावार्थ–वस्तु द्रव्य और पर्यायस्वरूप है उसमें से उस को केवल द्रव्यात्मक ही मानना अथवा केवल पर्याय स्वरूप ही मानना सो

एकान्तः[1];पुरुषः[1] एव*इदम्[1] सर्वम्[1] इति*वा* = एकान्त है [जैसे]पुरुष मात्रही (=एव) यह सब रचना है इस प्रकार अथवा

नित्यम्[1] एव*इति* = नित्यही है ऐसे [अपेक्षा रहित एक नयका पक्षपात करे सो एकान्त मिथ्यात्व]है

सग्रन्थ निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिः विपर्ययः। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि किं मोक्षमार्गः स्याद्वा न वेत्यन्यतरपक्षापरिग्रहः संशयः ॥ सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकम्॥ हिताहितपरीक्षाविरहोऽज्ञानिकत्वं॥ उक्तञ्च–असिदिसदं किरियाणं

सग्रन्थः[१] निर्ग्रन्थः[१]; (१)केवली[१] कवल-आहारी[१], =परिग्रह सहित अपरिग्रही, केवली ग्रासद्वारा भोजन करने वाले (माने जाते) हैं
स्त्री[१] सिध्यति T एवम् * इत्यादिः[१] विपर्ययः[१]; =नारीसिद्धहोजातीहैवामोक्ष प्राप्त करती है,ऐसे इत्यादि(मानना)विपर्यय मिथ्यात्वहै
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि[३][१] किम्[१] मोक्षमार्गः[१] स्यात् T =सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चारित्र क्या मोक्ष पथ है,
(२) वा* न* वा* इति* अन्यतर-पक्ष (३) अपरिग्रहः[१] =वा नहीं ऐसे दोनोंमेंसे एक (=अन्यतर) पक्षको स्वीकार न करना (=अपरिग्रहः)
संशयः[१]; सर्वदेवतानाम्[६] सर्व-समयानाम्[६] च * =सो संशय मिथ्यादर्शन है। सब देवोंकी तथा (=च) सब शास्त्रोंकी
समदर्शनम्[१] वैनयिकम्[१]; हित--अहित- =समान बुद्धि वा समान मानता करना सो वैनयिक (मिथ्यादर्शन) है। भले बुरे की
परीक्षाविरहः[१] अज्ञानिकत्वम्[१]; उक्तम्[१] च* =पहिचान और परख रहित सो अज्ञानिकपना वा अजान मिथ्यात्व है,कहा भी है
असिदिसदं[१] किरियाणं[१]=अशीतिशतम्[१] क्रियावादिनः[१] =एकसौ अस्सी (४) क्रियावादि हैं अर्थात् एकसौ अस्सी भेद क्रियावादियों के हैं

(१) केवलिन् और आहारिन् शब्दोंके प्रथमा एक वचन पुलिंग क्रमसे केवली और आहारी हैं। (२) यह 'वा' संस्कृत की बोलचाल का कारण है यदि यह न होता तो भी वाक्य 'स्याद् नवेति' (=स्यात् न वा इति) ठीक था॥ (३) अपरिग्रहः—पास कुछ न रखना यहां यह अर्थ नहीं है, स्वीकार न करना ऐसा अर्थ है (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ३१) (४) क्रियावादियों में कौत्कल, कांठेविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधपिक, रोमश हारीत, मुंड, आश्वलायन इत्यादिक हैं उनके एकसौ अस्सी भेद इस प्रकार से हैं कि मूल भेद पांच (क) काल (ख) ईश्वर (ग) आत्मा (घ) नियति (ङ) स्वभाव इन पांचोंमें से प्रत्येक पर आपसे परसे-नित्यपनाकरि-अनित्यपनाकरि–लगाने से बीस भेद हुये, पश्चात् इन बीसोंमें से प्रत्येक का जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप पै लगानेसे एकसौ अस्सी भेद हुये। उक्त पांच भेदों का आशय ऐसा है कि (क) कालवादी तो सर्वथा काल ही को कर्त्ता मानता है और कहता है कि काल ही सर्वको उत्पन्न करता है काल ही सर्वका (नाश करता है, कालही निद्रा को करता है काल ही जागृत करता है काल ही पुण्य पाप आदिके फल करि संयुक्त करता है, काल ही रहित करता है, काल ही संयोग वियोग करता है, काल ही समस्त को तरुण करता है और काल ही जीर्ण करता है काल सर्व के ऊपर खड़ा है काल किसीसे जीता नहीं जासक्ता है। समस्त जगत की रचना का काल ही कारण है (ख) ईश्वरवादी कहता है कि आत्मा तो अज्ञानी है अनाथ है। आत्मा के सुख, दुःख, जीवन, मरण, लाभ,अलाभ, ज्ञानता, अज्ञानता, पापीपना, धर्मीपना, स्वर्ग गमन नरक गमन इत्यादि ईश्वर करता है। और संसारका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, ईश्वर ही है तात्पर्य जो कुछ इस संसार में होता है बिना ईश्वर के कुछ भी नहीं हो सक्ता है सबका कारण एक ईश्वर ही है(ग) आत्मावादी समस्त को एक आत्मा कहता है आत्मा जगतमें एक ही है वह सर्व व्यापी है देव है महात्मा है पुरुष है सर्व अंग इसके गूढ़ हैं चेतना है निर्गुण है उत्कृष्ट है–यह सब रचना है सो पुरुष मयी है दूसरा कोई नहीं है।

(घ) नियतवादी भवितव्य, भवितव्यता को मानता है। और कहता है कि जो जिसके जैसा होना है सो अवश्य होवेगा, उसको कोई भी इन्द्रादिक भी मेंट नहीं सकता है, वह अमिट है होनहार है वह अवश्य ही होयगा॥ इस सम्बन्धमें भर्तृहरिशतकमें एक शार्दूलविक्रीडित छन्द है

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे। वाणिज्यं कृषिसेवनादि सकला विद्याः कलाः शिक्षतु॥
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं। नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः॥ १०२॥

मज्जतु अम्भसि, यातु मेरु शिखरम्, शत्रून् जयतु आहवे = (चाहे)समुद्रमें डूब जाओ,मेरु पर्वतके शिखर पर चढ़ जाओ,शत्रुओंको युद्धमें जीतलो
वाणिज्यम् कृषि-सेवनादि सकलाः विद्याः कलाः शिक्षतु = चाहे वनिज को, खेती, सेवा आदिक सर्व विद्या और कलाओं को सीखलो
आकाशम् विपुलम् प्रयातु खगवत् कृत्वा प्रयत्नम् परम् = (चाहे) पक्षीके समान बड़ा आकाश को उत्कृष्ट (=परम्) प्रयत्न करके उड़ जाओ
अभाव्यम् इह कर्म वशतः न भवति = (परन्तु जानलो कि)अनहोनी(=अभाव्यम्)इस लोकमें कर्मवशसे नहीं होती है,
भाव्यस्य नाशः कुतः = हुई न थाली का क्योंकर नाश हो (सकता) है॥ १०२॥

अर्थात् जो अनहोनी है वह कभी न होगी और जो होनी है वह कभी टल नहीं सकती॥

(ङ) स्वभाववादी कहता है कि जो कुछ संसार में है सो स्वभाव से है काँटेको तीक्ष्ण कौन करता है वह स्वभाव से तीक्ष्ण है, मोर को विचित्र कौन करता है वह स्वभाव से ऐसा है, कमलोंमें तथा और द्रव्योंमें सुगन्ध कौन करता है वे स्वभाव से सुगन्धित हैं, मृग, शूकर, सिंह, व्याघ्र, सर्प, पक्षी इत्यादिकों का भिन्न भिन्न रूप कौन करता है इन समस्त को स्वभाव ही कारण है॥

क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी (१८०) भेद काल पर लगानेसे ऐसे होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये है। (२) जीव पदार्थ परहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये है।
(३) जीव पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये है। (४) जीव पदार्थ कालकरि अनित्यपनकरि अस्तित्व कीजिये है।
(५) अजीव पदार्थ आपहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये है। (६) अजीव पदार्थ परहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (८) अजीव पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ कालकरि नित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (२०) संवर पदार्थ कालकरि अनित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये।

(२१) निर्जरा पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (३६) पाप पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।

निम्नलिखित छत्तीस (३६) भेद ईश्वर पर लगाने से होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपही से ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये। (२) जीव पदार्थ परही तें ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये।
(३) जीव पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (४) जीव पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि अस्तित्व कीजिये।
(५) अजीव पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये। (६) अजीव पदार्थ परही से ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (८) अजीव पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२०) संवर पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परहीसे ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही तें ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३६) पाप पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।

निम्नलिखित छत्तीस (३६) भेद आत्मा पर लगाने से होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपही से आत्माकरि अस्तित्व कीजिये। (२) जीव पदार्थ परही तैं आत्माकरि अस्तित्व कीजिये।
(३) जीव पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (४) जीव पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि अस्तित्व कीजिये।
(५) अजीव पदार्थ आपही तें आत्माकरि अस्तित्व कीजिये। (६) अजीव पदार्थ परही से आत्माकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (८) अजीव पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपहीतैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२०) संवर पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परहीसे आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही तैं आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३६) पाप पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।

क्रियावादियोंके छत्तीस भेद नियति पर ऐसे होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये है। (२) जीव पदार्थ परहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये है।
(३) जीव पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये है। (४) जीव पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनकरि अस्तित्व कीजिये है।
(५) अजीव पदार्थ आपहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये है। (६) अजीव पदार्थ परहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (८) अजीव पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ नियतिकरि नित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ नियतिकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।

(१५) संवर पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (१६) संवर पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (२०) संवर पदार्थ नियतिकरि अनित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थ नियतिकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(२९) पुण्य पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (३०) पुण्य पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(३१) पुण्य पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (३२) पुण्य पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (३६) पाप पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।

निम्नलिखित छत्तीस (३६) भेद स्वभाव पर लगाने से होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपही से स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये। (२) जीव पदार्थ परही तैं स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये।
(३) जीव पदार्थ स्वभावकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (४) जीव पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि अस्तित्व कीजिये।
(५) अजीव पदार्थ आपही ते स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये। (६) अजीव पदार्थ परही से स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (८) अजीव पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपहीतै स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२०) संवर पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परहीसे स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थस्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि ,, ,, कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से स्वभावकरि ,, ,, कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३६) पाप पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।

अक्किरियाणं च होइ चुलसीदि

अक्किरियाणं $\frac{१}{१}^{111}$ चअ्होइ T चुलसीदि $\frac{१}{१}^{11}$ } और (=च) अक्रिया वादी चौरासी हैं
अक्रियावादि $\frac{१}{१}^{111}$ च* भवति T चतुर-अशीतिः $\frac{१}{१}^{11}$ } =अर्थात् अक्रिया वादियोंके चौरासी भेद हैं ॥

(क) अक्रिया वादीयोंकेचौरासी भेद इस प्रकार हैं कि उनके मूलभेद दो नास्तिस्वतः(२)नास्ति परतः इन दोनोंको प्रत्येक जीवपदार्थ(वा जीवतत्व) अजीव पदार्थ आस्रव पदार्थ, बन्ध पदार्थ, संवर पदार्थ, निर्जरा पदार्थ, और मोक्ष पदार्थ पर लगाने से चौदह भेद हुये ॥ इन चौदहमेंसे प्रत्येकको काल-ईश्वर-नियति आत्मा-स्वभाव-पर लगाने से सत्तर भंगहुये अर्थात्

(१) जीवपदार्थ कालकरि आपही से नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ कालकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (४) अजीवपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (८) बन्धपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(९) संवरपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (१०) संवरपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(११) निर्जरापदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (१२) निर्जरापदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(१३) मोक्षपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (१४) मोक्षपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।

निम्नलिखित १४ भेद ईश्वर पर लगाने से हुये

(१) जीवपदार्थ ईश्वरकरि आप से नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ ईश्वरकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (४) अजीवपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (८) बन्धपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(९) संवरपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (१०) संवरपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(११) निर्जराषदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (१२) निर्जरापदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(१) मोक्षपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (१४) मोक्षपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।

नीचे के १४ भेद नियति पर लगाने से हुये

(१) जीवपदार्थ नियतिकरि आपतैं नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ नियतिकरि आपतैं नास्तिस्वरूप कीजिये। (४) अजीवपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ नियतिकरि आपतैं नास्तिस्वरूप कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ नियतिकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (८) बन्धपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(९) संवर पदार्थ नियतिकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (१०) संवर पदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।

(११) निर्जरा पदार्थ नियतिकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (१२) निर्जरा पदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(१३) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि आपसेनास्तिस्वरूप कीजिये। (१४) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।

॥अग्रिम चौदह भेद आत्मा पर लगाने से हुये॥

(१) जीव पदार्थ आत्माकरि आपसे नास्ति स्वरूप कीजिये। (२) जीव पदार्थ आत्माकरि परसे नास्ति स्वरूप कीजिये।
(३) अजीव पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (४) अजीव पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(५) आस्रव पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (६) आस्रव पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(७) बन्ध पदार्थ आत्माकरिआपसे ,, ,, कीजिये। (८) बन्ध पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(९) संवर पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (१०) संवर पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(११) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (१२) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(१३) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (१४) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।

॥ सत्तरमेंसे शेष अग्रिम चौदह भेद स्वभाव पर लगाने से हुये॥

(१) जीवपदार्थ स्वभावकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ स्वभावकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (४) अजीवपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (८) बन्धपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(९) संवरपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (१०) संवरपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(११) निर्जरापदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (१२) निर्जरापदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(१३) मोक्षपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (१४) मोक्षपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।

(स) अक्रिया वादियोंके ८४ भेदोंमेंसे ७० भंगका कथन करचुके हैं अब केवल चौदह भेद शेष कथन करने के लिये रहे, नास्तित्व,शब्द,काल और नियति इन दो पर लगाने से और फिर पूर्वोक्त सात पदार्थों पर इन दोनोंके लगानेसे चौदह भेद हो जाते हैं, यहां यह विशेष हुआ कि इन भेदों में स्वतः परतः न कहा नास्तित्वही कहा अर्थात् जैसे ॥(१) जीवपदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये।
(२) अजीव पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (३) आस्रव पदार्थ कालतैं ना स्तित्व कीजिये।(४)बन्धपदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये
(५) संवर पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (६) निर्जरा पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (७) मोक्ष पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये।

नियति पर लगानेसे ७ भेद जैसे

(१) जीव पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (२) अजीवपदार्थ नियतैं नास्तित्व कीजिये। (३)आस्रव पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये
(४) बन्धपदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (५) संवरपदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (६) निर्जरा पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये।
(७) मोक्ष पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। उपर्युक्त सत्तरभेद (७०) और चौदह (१४) ये सर्व जोड़नेसे ८४ भेद अक्रियावादियोंके हुये॥

सत्तट्ठिण्णाणीणं वेणइयाणं तु बत्तीसम् ॥ १ ॥

सप्तषष्टिअज्ञानिकं $\frac{१}{६}$''' वैनयिकम् $\frac{१}{६}$'''तु द्वात्रिंशत् $\frac{१}{६}$' } सरसठ अज्ञानिक [वादी] हैं और [=तु] बत्तीस वैनयिक हैं
सत्तट्ठिण्णाणीणं$\frac{१}{६}$''' वेणइयाणंतु* बत्तीस } अर्थात् सरसठ भेद अज्ञान वादियों के हैं और बत्तीस भेद वैनयिक वादियों के हैं

(१) अज्ञानवाद के सरसठ भंग वा भेदोंमेंसे ६३ भेद इस प्रकार हैं कि प्रत्येक अस्ति (२) नास्ति (३) अस्तिनास्ति (४) अवक्तव्य (५) अस्तिअवक्तव्य (६) नास्तिअवक्तव्य (७) अस्तिनास्तिअवक्तव्य को समस्त ही जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप इन नव पदार्थों पर लगाने से तिरसठ भेद हुए अर्थात्

(१) जीव पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है। (२) अजीव पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(३) आस्रव पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता (४) बन्ध पदार्थ अस्ति स्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(५) संवर पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (६) निर्जरा पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(७) मोक्ष पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (८) पुण्य पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(९) पाप पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (१०) जीव पदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(११) अजीवपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (१२) आस्रवपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१३) बन्धपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (१४) संवरपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१५) निर्जरापदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (१६) मोक्षपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१७) पुण्यपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (१८) पापपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१९) जीवपदार्थ अस्तिनास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (२०) अजीवपदार्थ अस्तिनास्तिस्वरूप यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२१) आस्रवपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (२२) बन्धपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२३) संवरपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (२४) निर्जरापदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२५) मोक्षपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (२६) पुण्यपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२७) पापपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (२८) जीवपदार्थ अवक्तव्य स्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२९) अजीवपदार्थ अवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (३०) आस्रव पदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३१) बन्धपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (३२) संवरपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३३) निर्जरापदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (३४) मोक्षपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३५) पुण्यपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है (३६) पापपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३७) जीवपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता (३८) अजीवपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता
(३९) आस्रवपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता (०) बन्धपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता
(४१) संवरपदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता (४२) निर्जरापदार्थ ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता

(४३)मोक्षपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जानेहै कोई भी नहीं जानता(४४)पुण्यपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूपहै यह कौन जानेहै कोई भीनहीं जानता
(४५)पापपदार्थ ,, ,, है यह कौन जानेहै कोई भी नहीं जानता(४६)जीवपदार्थ नास्ति ,, है यह कौन जाने है कोईभीनहीं जानता
(४७)अजीवपदार्थ नास्ति ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता(४८)आस्रवपदार्थ ,, ,, है यह कौन जानेहै कोई भी नहीं जानता
(४९)बन्ध पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोईभी नहीं जानता(५०)संवर पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोईभी नहीं जानता
(५१)निर्जरा पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोई भीनहीं जानता(५२)मोक्ष पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोई भीनहीं जानता
(५३)पुण्य पदार्थ ,, ,, हैयह कौन जानेहै कोई भी नहीं जानता(५४)पाप पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता
(५५)जीवपदार्थअस्तिनास्तिअवक्तव्यस्वरूप है कौन जाने कोई नहीं जानता(५६)अजीवपदार्थअस्तिनास्तिअवक्तव्यस्वरूपहै कौन जाने कोई नहीं जानता
(५७)आस्रवपदार्थ ,, ,, है कौन जानेकोई नहीं जानता(५८)बन्धपदार्थ ,, ,, हैकौन जाने कोई नहीं जानता
(५९)संवरपदार्थ ,, ,, है कौन जाने कोई नहीं जानता(६०)निर्जरापदार्थ ,, ,, है कौनजाने कोई नहीं जानता
(६१)मोक्षपदार्थ ,, ,, है कौन जाने कोई नहीं जानता(६२)पुण्यपदार्थ ,, ,, है कौन जाने कोई नहीं जानता
(६३)पापपदार्थ अस्तिनास्तिअवक्तव्यस्वरूप है कौन जाने कोई नहीं जानता

नवपदार्थ का भेद न कर और एकशुद्ध पदार्थ थापि करके इसको अस्ति,नास्ति,अस्ति,अस्तिनास्ति,अवक्तव्य,पर लगाने से चार भेद ऐसेहोतेहैं कि

(१) शुद्धपदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानताहै (२) शुद्धपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (३)शुद्धपदार्थ अस्तिनास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता(४) शुद्धपदार्थ अवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है

अर्थात् इस प्रकार कहना कि पदार्थ है कि नहीं है कि दोनों रूप है कि अवक्तव्य है ऐसे कौन जानता है कोई नहीं जानता यहां भावार्थ ऐसा जानना कि सर्वज्ञ कोई नहीं है सर्वज्ञविना कौन जाने—ऐसे अज्ञान की पक्ष हुई ॥ ६३ और ४ भेद ये सर्व का योग ६७ हुआ ॥

अब वैनयिक वाद के बत्तीस भंग कहते हैं

(१) मनसे देवका विनय करना (२) वचनद्वारा देवका विनय करना (३) कायसे देवका विनय करना (४) ज्ञानसे देवका विनय करना (५) मनसे राजाका विनय करना (६) वचनसे राजा का विनय करना (७) शरीरसे राजाका विनय करना (८) ज्ञानसे राजा का विनय करना (९) मनसे ज्ञातिका विनय करना (१०) वचनसे ज्ञातिका विनय करना (११) शरीरसे ज्ञातिका विनय करना (१२) ज्ञानसे ज्ञातिका विनय करना (१३) मनसे यतिका विनय करना (१४) वचनसे यतिका विनय करना (१५) कायसे यतिका विनय करना (१६) ज्ञानसे यतिका विनय करना (१७) मनसे वृद्धका विनय करना (१८) वचनसे वृद्धका विनय करना (१९ कायसे वृद्धका विनय करना (२०) ज्ञानसे वृद्धका विनय करना (२१) मनसे बालका विनय करना (२२) वचनसे बालका विनय करना (२३) कायसे बालका विनय करना (२४) ज्ञानसे बालका विनय करना (२५) मनसे माताको विनय करना (२६) वचनसे माताकी विनय करना (२७) कायद्वारा माताकी विनय करना (२८) ज्ञानसे माताकी विनय करना (२९) मनसे पिताकी विनय करना (३०) वचनसे पिताकी विनय करना (३१) कायसे पिताको विनय करना (३२) ज्ञानसे पिताकी विनय करना।

अविरतिर्द्वादशविधाषट्कायषट्करणविषयभेदात् । षोडश कषाया नव नोकषायास्तेषामीषद्भेदो न भेद इति पञ्चविंशतिकषायाः॥ चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाः पंच काययोगा

षट्-काय-षट्-करण-विषय-भेदात्[५][६] अविरतिः[१] द्वादशविधा[१];	=छह (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस) काय और छह (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः, श्रोत्र, मन) इन्द्रियोंके विषयभेदसे अविरति बारह प्रकार है अर्थात् त्वचा, जीभ, नासिका, नेत्र, कान और मन इन छह इन्द्रियोंके विषयोंमें रागसहित प्रवृत्ति और पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय जीवोंकी रक्षा न करना ये बारह अविरति हैं।
षोडश[१]	=सोलह (अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान, अनन्तानुबन्धीमाया, अनन्तानुबन्धीलोभ; अप्रत्याख्यानक्रोध, अप्रत्याख्यानमान, अप्रत्याख्यानमाया, अप्रत्याख्यानलोभ; प्रत्याख्यानक्रोध, प्रत्याख्यानमान, प्रत्याख्यानमाया, प्रत्याख्यानलोभ; सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान, सञ्ज्वलनमाया, सञ्ज्वलनलोभ।
कषायाः[३] नव[१]	=कषाय हैं। नौ (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद)
(१) (२) नोकषायाः[१] तेषाम्[६] ईषत्* भेदः[१]	=नोकषाय हैं। तिन कषायोंके हलके (=ईषत्) भेद वा प्रकार (ये नोकषाय) हैं।
न* भेदः[१]	=अन्यभेद वा अन्तर (=भेद) (इन कषाय वा नो कषाय में) नहीं है अर्थात् नोकषाय हैं वे हलके कषाय हैं कषाय रहित नहीं हैं।
इति*पञ्चविंशतिकषायाः[१]; चत्वारः[१]	=ऐसे पच्चीस कषाय हैं। चार (सत्य, असत्य, मिश्र, अनुभय)
मनोयोगाः[१] चत्वारः[१] वाक्-योगाः[१]	=मनोयोग हैं। चार (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय) वचनयोग हैं
पञ्च[१] काययोगाः[१]	=पांच (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, कार्मण) काययोग हैं।

(१) नो (अव्यय) = " अभाव। नहीं। न होना " पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २२२ परन्तु "नो" शब्द यहाँ पर अर्थात् नोकषाय वाक्यमें अभाव वा निषेध अर्थमें नहीं है वरन ईषत्-किंचित् वा अल्पके अर्थमें है (२) ईषत् शब्द अव्ययहै "अल्प थोडा किंचित-कुछ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ६८ देखो ॥

इति त्रयोदशविकल्पो योगः ॥ आहारककाययोगआहारकमिश्रकाययोगयोः प्रमत्तसंयते सम्भवात्पञ्चदशापि भवन्ति ॥ प्रमादोऽनेकविधः- पञ्चसमितित्रिगुप्तिशुध्यष्टकोत्तमक्षमादिविषयानुत्साहभेदात् ।

इति* त्रयोदश-विकल्पः[1] योगः[2] ।
=ऐसे तेरह प्रकार योग हैं ।

आहारककाययोग-आहारकमिश्रकाययोगयोः[3]
=आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग का

प्रमत्तसंयते[4] सम्भवात्[5] पञ्चदश[6] अपि * भवन्ति T ।
=प्रमत्तसंयमी (छठवें गुणस्थानवर्ती) मुनि में सम्भव होने से (योग) पन्द्रह भी होते हैं ।

पञ्च-समिति-
=पांच(सम्यगीर्या,सम्यग्भाषा,सम्यगेषणा,सम्यगादाननिक्षेपण,सम्यगुत्सर्ग)समितिमें

त्रिगुप्ति-शुद्धिअष्टक-
=तीन(सम्यग्मनो,सम्यग्वचन,सम्यक्काय)गुप्तिमें और(अग्रिम कथित)आठशुद्धियोंमें

उत्तम-क्षमा-आदि-
=उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य, उत्तमब्रह्मचर्य

(१)
विषय-अनुत्साह-भेदात्[7] प्रमादः[8] अनेक-विधः[9]
=विषयमें उत्साहरहित भेदसे प्रमाद अनेक प्रकार है, अर्थात् इनमें उत्साहवर्जित परिणाम होना सो प्रमाद है उस प्रमादके अनेक भेद हैं ॥

(१) अनुत्साह-शब्द मुद्रित पुस्तकमें जिससे अनुवादकने अनुवाद किया है नहीं है, किन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २९६ में यह शब्द आया है । बिना इस शब्दके अर्थ और भाव स्पष्ट नहीं होते हैं । इस शब्दको पं० जयचन्द्रजीने भी अपनी वचनिकामें लेकर इस प्रकार अर्थ किया है "बहुरि प्रमाद है सो अनेक विध है। तहां भाव, काय, विनय, ईर्यापथ,भिक्षा, प्रतिष्ठापन, शयनासन, वाक्य ये आठ तो शुद्धि बहुरि दशलक्षणधर्म इन विषैं उत्साह रहित परिणाम होय तहां प्रमाद कहिये" तत्त्वार्थराजवार्तिकमें यहवाक्य तांसवीं-वार्तिकके रूपमें ऐसे है "प्रमादोऽनेकविधिः ।३०। भावकायविनयेर्यापथभैक्ष्यशयनासनप्रतिष्ठापनवाक्यशुद्धिलक्षणाऽष्टविधसंयमोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यतपस्त्यागाऽऽकिञ्चन्यब्रह्मचर्यादि विषयानुत्साहभेदादनेकविधः प्रमादोऽवसेयः" = भावकी, कायकी, विनयकी, ईर्यापथकी, भिक्षाकी, शयनासनकी, प्रतिष्ठापनकी, वाक्यकी शुद्धि स्वरूप (=लक्षण) आठ प्रकार और (उत्तम) संयम-उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य,उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य, उत्तमब्रह्मचर्यआदिक विषयमें उत्साह रहित भेद से अनेक भांति प्रमाद जानना चाहिये (=प्रमादःअवसेयः) सम्भव है कि विषय शब्द और भेदात् शब्द के मध्य में "अनुत्साह" छूटनेसे रह गया हो अथवा यों कहिये कि इन दोनों शब्दों के बीच में अनुत्साह शब्द का अध्याहार करना चाहिये वा लगाना चाहिये कि अर्थ स्पष्ट होजाय ॥ हमने तीन हस्तलिखित प्रतियें देखी उनका पाठ नीचे देते हैं "प्रमादोऽनेकविधः भावकायविनयेर्यापथभिक्षाप्रतिष्ठापनशयनासनवाक्यशुद्धयोऽष्टौ शुद्धयष्टकोत्तमक्षमादि भेदात्" ॥ विद्वान् इसपर अधिक प्रकाश डालकर कृपया सूचित करें

शुध्यष्टकस्यार्थः भावकायविनयेर्यापथभिक्षाप्रतिष्ठापनशयनासनवाक्यशुद्धयोऽष्टौ, दशलक्षणो धर्मश्च ॥ त एते पंच बन्धहेतवः समस्ता व्यस्ताश्च भवन्ति ॥ तद्यथा—मिथ्यादृष्टेः पंचापि समुदिता बन्धहेतवो भवन्ति ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टीनामविरत्यादयश्चत्वारः ॥ संयतासंयतस्याविरतिर्विरतिमिश्राः, प्रमादकषाययोगाश्च । प्रमत्तसंयतस्य प्रमादकषाययोगाः । अप्रमत्तादीनां चतुर्णां योगकषायौ ।

शुद्धिश्च,इष्टकस्य[1]'''अर्थः[1]अष्टौ[3]भाव-काय-
विनय-ईर्यापथ-भिक्षा
प्रतिष्ठापन-शयनासन-वाक्यशुद्धयः[1]
दशलक्षणः[1]धर्मः[1]च*;ते[3]एते[3]पंच[1]
बन्धहेतवः[1]समस्ताः[1]व्यस्ताः[1]च*भवन्तिT;तद्यथा*—
मिथ्यादृष्टेः[6]पंचअपि*समुदिताः[1]बन्धहेतवः[1]भवन्ति
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-
असंयतसम्यग्दृष्टीनाम्[6]अविरति-आदयः[3]
चत्वारः[1]; संयतासंयतस्य
अविरतिः[1]'(१)विरति-मिश्राः[1]''प्रमाद-कषाय-योगाः[1]च*= अविरति(बन्धका कारण) है सो विरति करि मिली हुई है प्रमाद,कषाय,योगभी बन्धके

=शुद्धि अष्टकका अभिप्राय है कि आठ परिणामकी पवित्रता,शरीरकी शुद्धि वा मार्जन
=नम्रताकी निर्मलता, देखकर चलनेकी शुद्धि, भिक्षाकी पवित्रता,
=प्रतिष्ठापनकी शुद्धिता,सोने और बैठनेकी शुचाई,वचनकी शुद्धता
=और (=च) दशलक्षण धर्म है वे इतने पांच
=बन्धके कारण (कहीं कहीं) सब और (=च) (कहीं कहीं)न्यारे होते हैं जैसे
=मिथ्यादृष्टि(प्रथम गुण स्थानवर्ती)के पांचों ही (=अपि)इकट्ठे बन्धके कारण होते हैं
=सासादन सम्यग्दृष्टि(=दूसरे गुणस्थानवर्ती)सम्यग्मिथ्यादृष्टि(मिश्र गुणस्थानवर्ती)
=तथा असंयतसम्यग्दृष्टि(चौथा वा अव्रतगुणस्थानवर्ती)नि के अविरति,प्रमाद,कषाय,योग
=चार(बन्धके कारण) होते है ।संयतासंयत(अणुव्रतगुणस्थान वा पांचमेगुणस्थान वर्तीके)
(कारण होतेहैं)अर्थात् अणुव्रतगुणस्थानवर्तीके विरति करि मिश्रित अविरति और प्रमाद-कषाय-योग ये चार बन्धके कारण होते हैं ।

प्रमत्तसंयतस्य[6]प्रमाद-कषाय-योगाः[1]
अप्रमत्तादीनाम्[6]चतुर्णाम्[6]
कषाय-योगौ[1].

=प्रमत्तसंयमी (छठवे गुणस्थानवर्ती)मुनिके प्रमाद, कषाय योग होते हैं ।
=अप्रमत्तसंयमी (सातवे गुणस्थानवर्ती मुनि) आदिक चार (अप्रमत्त संयमी)
=अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मलोभके योग कषाय(ये दो बन्धके कारण होते हैं) ।

(१)उत्तरोत्तर भावे तु = परन्तु(= तु)उत्तर उत्तर(आगे आगे)के होने पर(अर्थात् अविरतिकी सत्तामें मिथ्यादर्शन हो भी सकता है और नहींभी होसकता पूर्वेषाम् अनियमः इति = पूर्व पूर्वके(बन्धके हेतुओंकी स्थितिका)नियम नहीं कि अवश्य हो)जैसे अविरतिकी सत्तामें नियम नहीं कि मिथ्यादर्शन अवश्य हो

उपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवलिनामेक एव योगः । अयोगकेवलिनो न बन्धहेतुः ॥ उक्ता बन्धहेतवः । इदानीं बन्धो वक्तव्य इत्यत आह —

॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवलिनाम्[६।३] एकः[१।१] एव* योगः[१।१], अयोगकेवलिनः[६।१] न * बन्धहेतुः[१।१]; बन्ध-हेतवः[१।३] उक्ताः[१।३], इदानीम् * बन्धः[१।१] वक्तव्यः[१।१] इति * अतः* आह T

=उपशान्तकषाय क्षीणकषाय और सयोगकेवलीयों के एक ही =योग (बन्धका कारण) है। अयोगकेवली के बन्धका कारण नहीं है बन्धके =कारण कहे गये। इस समय बन्ध कहना चाहिये, इसलिये कहते हैं कि

(१)सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

(२)सकषायत्वात् (३) जीवः(४) (५)कर्मणः योग्यान् पुद्गलान् (६) आदत्ते सः बन्धः (भवति)

सूत्रार्थः—सकषायत्वात्[५।१] जीवः[१।१] कर्मणः[६।१] योग्यान्[२।३] पुद्गलान्[२।३] आदत्ते T सः[१।१] बन्धः[१।१] भवति T

=कषायसहित होनेसे प्राणी वा संसारी कर्मके (उत्पन्न होने) योग्य =पुद्गलोंको ग्रहण करता है सो बन्ध होता है (दूसरे प्रकार से अर्थ)

कर्मणः[५।१] जीवः[१।१] सकषायत्वात्[५।१]

=कर्मकेहेतुसे जीव कषाय सहित होकरि (=सकषायत्वात्) [संबंध है

योग्यान्[२।३] पुद्गलान्[२।३] आदत्ते T सः[१।१] बन्धः[१।१]

=उचित पुद्गलों को ग्रहण करता है सो बन्ध होता है। अतः जीवकर्मका अनादि

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एक पाठ तथा एकसा अर्थ है। अध्याय छठवें में "कायवाङ्मनः-कर्मयोगः प्रथमसूत्र स आस्रवः द्वितीय सूत्र जिस प्रकार दोनों सम्प्रदायों में इसको दो दो सूत्र माने हैं। तैसे ही श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में इस सूत्रके भी दो सूत्र इस प्रकार माने हैं कि " सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते ॥२॥ " "स बन्धः ॥२॥ "परन्तु हमारे यहाँ एक ही सूत्र माना है। (२) सकषायत्वात् +जीवः =सकषायत्वाद् + जीवः = सकषायत्वाज् + जीवः अर्थात् द् यदि च, छ, ज, झ, ञ इनमें से किसी एक के साथ आने पर ज् में पलट जाता है। (३) जीवसे यहां पर शुद्ध जीवसे प्रयोजन नहीं है। प्राणों द्वारा जीने वाले वा प्राणधारी जीवसे प्रयोजन है अर्थात् संसार में परिभ्रमण करने वाले जीवसे अभिप्राय है (४) यहांपर छठवीं विभक्ति सम्बन्धके अर्थमें है "कर्मणः" सम्बन्ध है योग्यपुद्गलान् सम्बन्धवान् है और कर्मणः का अर्थ कर्म के ऐसा है अर्थात् ज्ञानावरण आदि आठ कर्म प्रकृतियों के (परिणमने) योग्य पुद्गलस्कन्धको। (५) यहाँपर कर्मणः अपादान कारक अर्थात् पञ्चमी विभक्ति में लाये हैं हेतुके अर्थ में। अर्थ-कर्म से अर्थात् कर्मके हेतुसे जीव कषाय सहित होता है। कर्म रहित (जीव) के कषाय का लगाव नहीं है तिस हेतुसे जीव कर्म का अनादि संयोग है ऐसा अभिप्राय है इसलिये कर्म के निमित्त से जीव कषाय सहित होकर ऐसा अर्थ किया है। (६) आदत्ते यह रूप दा धातु में आङ् उपसर्ग जोड़ने के बना है परन्तु जब आङ् (=आ) उपसर्ग क्रिया के पहिले लगाया जाता है तब क्रिया के अर्थ को उलट देता है। जैसे दा = देना परन्तु आदा = लेना वा ग्रहण करना है ॥

भावार्थ इस सूत्रका इस प्रकार है कि समस्त लोक ऊपर नीचे इधर उधर सब ओर पुद्गलोंकरि गाढा गाढ भराहुआ है। ते पुद्गल अनेक प्रकार परिणमन की योग्यता को प्राप्त हो रहे हैं। तिनमें अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु कर्म होने योग्य भी समस्त लोक में भरे है - जहां आत्माके प्रदेश हैं, वहां भी विद्यमान हैं अथवा तिष्ठ हुए हैं। जब यह आत्मा मन वचन, काय योगों द्वारा सकम्प होकर कषाय सहित होता है, तब सब ओरसे समस्त आत्माके प्रदेशोंकरि कर्म के उत्पन्न होने योग्य पुद्गलस्कन्धों का ग्रहण करता है सोही बन्ध है अथवा यों कहिये कि कर्म के हेतुसे (=कर्मणः[५]) यह आत्मा कषाय सहित होता है। मन वचन काय योगों द्वारा सकम्प होता है, तब सब ओरसे समस्त आत्म प्रदेशोंकरि उचित (योग्य) पुद्ग-

'दा' प्रथम भ्वादि, द्वितीय अदादि, तृतीय जुहोत्यादि चतुर्थ दिवादि गणका धातु है। इस सूत्र में तृतीयगण का दा है जो परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में आता है। प्रथम पुरुष (=अन्य पुरुष, भिन्न पुरुष) एक वचन वर्तमान कालकी क्रिया का चिन्ह परस्मैपद में 'ति' और आत्मनेपदमें "ते" है। जुहोत्यादिगणमें यदि धातुमें एकस्वर हो तो उस धातु के प्रथम स्वर को दुहरा कर देते हैं। जैसे इष् धातुमें इको दोहरा कर देनेसे "इइष्" हो जाता है अथवा धातुके प्रथम व्यञ्जनको और उसके लगता ही वा अत्यन्त समीप स्वर दोनोंको दोहरा देते हैं। जैसे दाको "दादा" कर देते हैं। यह दोहरा हुआ दीर्घ स्वर ह्रस्वहो जाता है इसलिये दादा का ददा होगया। परस्मैपदी पूर्वोक्त क्रिया का "ति" चिन्ह लगानेसे 'ददाति' बनगया॥

ददाति=वह देता है परन्तु आददाति=वह लेताहै, वह ग्रहण करताहै। अब प्रश्न यह है कि' आददाति को सूत्रमें न लगाकर आदत्ते क्यों लाये? उत्तरमें कहते हैं कि आदत्ते आत्मनेपदी है। आत्मनेपदी क्रिया से यह अभिप्राय है कि क्रियाका फल अपने पर पड़ता है और परस्मैपदमें दूसरे पर क्रिया का फल होता है। जैसे पचति=वह पकाताहै परस्मैपद में यह क्रिया है और अर्थ यह है कि वह रसोई करता है जिसको अन्य पुरुष खायेगा परन्तु पचते आत्मनेपदी है उसका अर्थ यह है कि वह रसोई पकाताहै और स्वयम् खावेगा अर्थात् अपने खाने के वास्ते रसोई करता है। इसी प्रकार आदत्ते का अर्थ है कि जीव कर्म के योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है और उन का शुभ अशुभ फल जो कुछ भी होगा उसका भोक्ता वही जीव होगा अर्थात् अपने ही वास्ते ग्रहण करताहै। इस लिये आददाति न लाकर आदत्ते लाये हैं। आदत्ते वाक्य आददाति से लघु भी है परन्तु हमारी समझ में अर्थ की यथार्थता प्रकाश करना ही यहां पर आदत्ते लाने का विशेष कारण जान पड़ता है। 'आदत्ते' वाक्य और अग्रिम कथित 'धत्ते' वाक्य (देखो सं० सर्वार्थसिद्धि अध्याय ८ सूत्र २ पृष्ठ ४६० प्रथमावृत्ति 'इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्म') इस प्रकार बने हैं कि दा और धा के अन्त का आ ङित् संज्ञक प्रत्ययों (जैसे ये, से, ते इत्यादिकों) के पहिले गिर कर दद् और दध् क्रम से हो जाते हैं। दध् के पश्चात् यदि स्, ध्व, त्, थ् क्रियाप्रत्यय आवें तो दध् का धत् हो जाता है इस लिये दद्+ते और धत्+ते=दत्ते [देखो खरिच् (झलांवर) अष्टाध्यायी ८।४।५५।] +ते दत्ते और धत्ते रूप क्रमसे हुये दत्ते में आङ् (=आ) लगाने से आदत्ते (हुआ) लेता है। दा के चारों गणों में प्रथम पुरुष एक बचन वर्तमानकाल क्रियाके रूप :-

[क] दा, प्रथम गणमें यच्छ् होजाता है अ [प्रथम गणका विकरण] और पूर्वोक्ति-प्र यय लगाकर यच्छति [=वह देता है] हो जाता है।

[ख] दा, दूसरे गणमें विकरण नहीं होता है। ति पूर्वोक्त क्रिया का चिन्ह लगाने से दाति (=वह काटता है) हो जाता है।

[ग] ददाति [परस्मैपदमें होता है]=इस दा का ददाति और दत्ते रूपों के बननेके नियम ऊपर दे चुके हैं। इस शब्दके इस तीसरे गणमें दत्ते आत्मनेपद में होता है अर्थ है देता है और आदत्ते=लेता है ग्रहण करता है। दा के और भी कई अर्थ हैं परन्तु उनको स्थान अभाव से नहीं लिखा है॥

[घ] दा [चतुर्थ गण परस्मैपदमें] इस धातुके पश्चात् य विकरण आता है पुनः ति लगाकर दायति [=देता है] बनजाता है॥

सह कषायेण वर्तत इति सकषायः। सकषायस्य भावः सकषायत्वम्। तस्मात्सकषायत्वादिति ॥ पुनर्हेतुर्निर्देशः किमर्थम्। जठराग्न्याशयानुरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकषायाशयानुरूपस्थित्यनुभवविशेष-

स्कन्धों का ग्रहण करता है वही बन्ध है। यह ही एक बन्ध है। अन्यप्रकार के बन्धसे यहां प्रयोजन नहीं है। जैसे गुण और गुणीके भी बन्ध है सो बन्ध यहां न जानना। कर्मके निमित्तसे आत्मामें कषाय उत्पन्न होती है इस बातका ज्ञापक है कि आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि कालसे है ॥ पुद्गलद्रव्यके तेईस भेद हैं। अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सांतरनिरंतरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा, महास्कन्धवर्गणा। तेईस प्रकारकी वर्गणाओंमेंसे अणुवर्गणामें जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है। शेष बाईस जातिकी वर्गणाओं में जन्यष उत्कृष्ट भेद हैं। तथा इन बाईस जातिकी वर्गणाओंमें भी आहार वर्गणा, भाषावर्गणा (=वचनवर्गणा), मनोवर्गणा, तैजसवर्गणा, कार्मणवर्गणा ये पांच ग्राह्यवर्गणा हैं अर्थात् येही आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा विषय में जीव के साथ सम्बन्ध रखती हैं और ज्ञानावर्णादिक कर्मरूप में परिवर्तित होती रहती हैं। आहार वर्गणाओं के द्वारा आहारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं। तथा तैजोवर्गणारूप स्कन्धके द्वारा तैजस शरीर बनता है ॥

व्रत्यनुवादः—सह * कषायेण[5] वर्तते T इति * सकषायः[1];=कषायकरि सहित (=सह) वर्तता है ऐसा सकषाय है।
सकषायस्य[6] भावः[1] सकषायत्वम्[1,1], तस्मात्[5,1] सकषायत्वात्[5,1,1] इति * ॥ पुनः * हेतुर्निर्देशः[1,1] किम्[1,1,1] अर्थम्[1,1,1]।
=सकषायका सत्ता वा होना सो सकषायपना है तिस
=कषाय सहितपना (के हेतु) से ऐसा (सकषायत्वात्) है (प्रश्न) बहुरि हेतुकानिर्देश
=क्यों किया अर्थात् सूत्रमें सकषायत्व शब्दकी पञ्चमी विभक्ति (सकषायत्वात्) करि हेतु कहा सो इस हेतु के कहने का क्या अभिप्राय है ?।

जठर-अग्नि-आशय-अनुरूप-
आहार-ग्रहणवत् * तीव्र-मन्द-मध्यम-कषाय-
आशय-अनुरूप-स्थिति-अनुभव-विशेष-

=(उत्तर) उदर वा पेट में (=जठर) अग्नि के आशय अथवा पचने के स्थानके अनुसार
=आहार गृहण कियेजाने के सदृश तीव्र, मन्द, मध्यम कषायके
=स्थानके अनुकूल (कर्मों की) स्थिति (बन्ध)की और अनुभाग बन्ध की विशेषता

प्रतिपत्त्यर्थम् ॥ अमूर्तिरहस्त आत्मा कथं कर्मादत्त इति चोदितः सन् जीव इत्याह ॥ जीवनाज्जीवः प्राणधारणादायुः सम्बन्धान्नायुर्विरहादिति ॥

प्रत्तिपत्ति–अर्थम्[१]''' ॥

(१) अमूर्तिः[१] अहस्तः[१] आत्मा[१] कथम्* कर्म[२]''' आदत्ते T इति* चोदितः[१] सन्[१] जीवः[१] इति* आह T ॥

जीवनात्[५]''' जीवः[१] प्राणधारणात्[५] आयुस् सम्बन्धात्[५] न* आयुस्-विरहात्[५] इति*

=प्रतिपत्तिके लिये (हेतुका निर्देश पंचमी विभक्तिकरि किया) है अर्थात् अग्रिम सूत्रमें प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध अनुभवबन्ध और प्रदेशबन्ध कहेंगे। उनमें प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योग द्वारा होते हैं ॥ सो यहां पर कहते हैं कि जैसे उदर पकनेके स्थानकी तीव्र, मन्द, मध्यम अग्निके अनुसार आहारका रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि (=हड्डी) मज्जा, शुक्र (वीर्य) और खल (=खलि) भाग आदि रूप परिणमन होता है। तैसे ही कषायके आशय वा स्थानों की तीव्र, मन्द, मध्यम अवस्थाके अनुकूल कर्मोंकी स्थितिबन्धकी तथा अनुभागबन्धकी विशेषता होती है।

=आत्मा अमूर्तिक है, हाथ रहित है कैसे कर्मको (=कर्म[२]''') ग्रहणकरता है

=ऐसा प्रश्न(=चोदित) होनेपर (=सन्) जीव ऐसे कहते हैं अर्थात् इस सूत्र में वर्णित जीवकी परिभाषा आचार्य आगे कहते हैं।

=जीनेसे जीव है प्राणके धारणसे आयु (नामाप्राण के) सम्बन्धसे (जीव) है

=न कि आयु (नामा प्राणके) विछेदसे अथवा पृथक्तासे (जीव) है।

=ऐसा (जीव कर्मको ग्रहण करता) है

(१) मूर्ति शब्द स्त्रीलिंग होता है यहां पर अमूर्ति शब्द आत्मा शब्दका जो सदा पुलिंग होता है विशेषण है। इस लिये अमूर्ति शब्द भी पुलिंग है अर्थ यह है आत्मा नहीं है मूर्ति जिसकी सो अमूर्तिक है। (२) प्राणके मूल भेद चार हैं और विशेष भेद निम्नलिखित कवित्तमें दस हैं तथा परिभाषा भी व्यवहार तथा निश्चय जीवकी बहुत श्रेष्ठ इकत्तीसा (मनहर) में है—

इन्द्री पांच बल तीन श्वास आव दस प्राण, मूल चार इन्द्री बल श्वास आव मानियें।
पूरव जीवै था अब जीवै आगे जीवैहिगा, येही प्राण संती विवहार जीव जानियें॥
सुख सत्ता बोध और चेतन निहचै प्राण सास्वतः स्वभाव तीन कालमें बखानियें।
विवहार निहचे स्वरूप जान सरधाने, ऐसे जीव वस्तु लखसो सुखी पिछानियें॥ १॥ (धान्तरायजी अनुवादितद्रव्यसंग्रहसे)

कर्मयोग्यानिति लघुनिर्देशात्सिद्धेः। कर्मणो योग्यानिति। पृथग्विभक्त्युच्चारणं वाक्यान्तरज्ञापनार्थम्॥ किं पुनस्तद्वाक्यान्तरम्। कर्मणो जीवः सकषायो भवतीत्येकं वाक्यम्। एतदुक्तं भवति—कर्मण इति हेतुनिर्देशः, कर्मणो हेतोर्जीवः सकषायो भवति नाकर्मकस्य कषायलेपोऽस्ति ततो जीवकर्मणोरनादिसम्बन्ध इत्युक्तं भवति॥ तेनामूर्तो जीवो मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते इति चोद्यमपाकृतं भवति॥ इतरथा हि

कर्मयोग्यान् इति * लघु-निर्देशात् $\frac{प्र}{ए}$ सिद्धेः $\frac{प्र}{ए}$;

=(प्रश्न) कर्मयोग्यान् ऐसी सिद्धि थोड़े कथन (कर्मयोग्यान्) से हो जाती अर्थात् सूत्रमें कर्मणोयोग्यान् वाक्यके स्थानमें कर्मयोग्यान् लघुवाक्य ठीक होता।

कर्मणः $\frac{प्र}{ए}$ योग्यान् इति * पृथक्-विभक्ति-उच्चारणम् $\frac{प्र}{ए}$ वाक्य-अन्तर-ज्ञापन-अर्थम् $\frac{प्र}{ए}$ किम् * पुनः तद् $\frac{प्र}{ए}$ वाक्य-अन्तरम् $\frac{प्र}{ए}$ कर्मणः $\frac{प्र}{ए}$ जीवः $\frac{प्र}{ए}$ सकषायः $\frac{प्र}{ए}$ भवति T इति * एकम् $\frac{प्र}{ए}$ वाक्यम् $\frac{प्र}{ए}$ एतद् $\frac{प्र}{ए}$ उक्तम् $\frac{प्र}{ए}$ भवति T कर्मणः $\frac{प्र}{ए}$ इति * हेतु-निर्देशः $\frac{प्र}{ए}$ कर्मणः $\frac{प्र}{ए}$ हेतोः $\frac{प्र}{ए}$ जीवः $\frac{प्र}{ए}$ सकषायः $\frac{प्र}{ए}$ भवति T अकर्मकस्य $\frac{प्र}{ए}$ न * कषाय-लेशः $\frac{प्र}{ए}$ [=लेपः $\frac{प्र}{ए}$ अस्ति T ततः * जीवकर्मणः $\frac{प्र}{ए}$ अनादि-सम्बन्धः $\frac{प्र}{ए}$ इति * उक्तम् $\frac{प्र}{ए}$ भवति T तेन $\frac{तृ}{ए}$ अमूर्तः $\frac{प्र}{ए}$ जीवः $\frac{प्र}{ए}$ मूर्तेन $\frac{तृ}{ए}$ कर्मणः $\frac{तृ}{ए}$ कथम् * बध्यते T इति * चोद्यम् $\frac{प्र}{ए}$ अपाकृतम् $\frac{प्र}{ए}$ भवति T॥ इतरथा * हि *

=कर्मयोग्यान् ऐसे (दो) न्यारे कारकोंका वर्णन वा कथन
=अन्य वाक्यके जतावनेके लिये है (प्रश्न) बहुरि वह अन्य
=वाक्य क्या है। कर्मसे जीव कषाय सहित
=होता है ऐसा एक वाक्य हुआ अर्थ यह
=होता है किकर्मणः (कर्मसे) ऐसे (कर्म शब्द के पंचमी विभक्ति करि) हेतुका उपदेशहै कि
=कर्मके निमित्तसे जीव कषाय सहित होता है।
=कर्म रहित (जीव) के कषाय का लगाव नहीं है, तिस (हेतुनिर्देश) से
=जीव कर्म का अनादि संयोग है ऐसा अर्थ वा आशय वा कथन होता है
=तिस (जीव कर्मके अनादि सम्बन्धहोने) से अमूर्तिक जीव मूर्तिक कर्मकरि कैसे
=बांधा जाय है ऐसी तर्कणा वा प्रश्न (=चोद्य) निराकृत होता है।
=क्योंकि (=हि) अन्यथा अर्थात् जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध न मान करि बन्ध नवीन माना जाय तो

पांच (स्पर्शन = त्वचा, रसन = रस्वन, जीभ — जिह्वा, घ्राण = नाक = नासिका, चक्षु = आंख = नेत्र = अक्षि, श्रोत्र = कान) इन्द्रियें, मनोबल वचनबल कायबल तीन योग श्वासोच्छ्वास आयुः केवल चार हैं।

बन्धस्यादिमत्त्वे आत्यन्तिकीं शुद्धिं दधतः सिद्धस्येव बन्धाभावः प्रसज्येत ॥ द्वितीयं वाक्यं कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्त इति । अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति पूर्वं हेतुसम्बन्धं त्यक्त्वा षष्ठीसम्बन्धमुपैति कर्मणो योग्यानिति ॥ पुद्गलवचनं कर्मणस्तादात्म्यख्यापनार्थम्

बन्धस्य[६]१ आदिमत्वे[७]२ आत्यन्तिकीम्[२]३ शुद्धिम्[२]४ ॥ =बन्धका आदिमान् वा आदिवाले होनेमें आतिशयजात अथवा सर्वथा शुद्धताको

दधतः[५]५ सिद्धस्य[६]६ इव*बन्ध-अभावः[१]७ प्रसज्येत[१]८ । =धारण करनेसे सिद्धके समान (जीवके) बन्धका अभाव ठहरै भावार्थ इसका यह है कि जीवके यदि कर्मोंका बंध नवीन मानलें तो उस समयसे पहिले जब जीवके बन्ध होना प्रारम्भ हुआ है सर्वथा जीव शुद्ध ठहरे जब जीवको सर्वथा शुद्ध मान लिया जाय तो मुक्त जीवोंके समान अर्थात् सिद्धोंके तुल्य इन जीवोंके भी बन्धका अभाव हुआ जाता है ।

द्वितीयम्[१]१ वाक्यम्[१]२ कर्मणः[६]३ योग्यान्[३]४ =दूसरा वाक्य कर्मके (उत्पन्न होने) योग्य

पुद्गलान्[३]५ आदत्ते[१] T =पुद्गलोंको ग्रहण करता है

इति*। अर्थ-वशात्[५]१ विभक्ति-परिणामः[१]२ इति*; =ऐसा है। तात्पर्यके वशसे विभक्तिके पलटाव इस प्रकार होता है कि

पूर्वम्[२]३ हेतुसम्बन्धम्[२]४ त्यक्त्वा षष्ठीसम्बन्धम्[२]५ =पहिले हेतुका संसर्ग वा लगाव छोड़कर षष्ठी विभक्तिके संयोगको

(२)उपैति T कर्मणः[६]६ योग्यान्[३]७ इति* =कर्मणो योग्यान् वाक्य प्राप्त होताहै अर्थात् कर्मणो शब्दको पहिले हेतुनिर्देश कियाथा, अब सम्बन्ध निर्देश किया है। पहिले कर्मणो शब्दका अर्थ होता था कि कर्म (के हेतु) से (जीव कषाय सहित होजाता है) अब कर्मणो शब्दका अर्थ होता है कि कर्मके (योग्य)

पुद्गल-वचनम्[१]८ कर्मणः[६]९ तादात्म्य-ख्यापन-अर्थम्[१]१०, =(सूत्रमें) पुद्गलका कथन [=वचन] कर्मका उसी(पुद्गल) स्वरूपमय होनेके (=तादात्म्य) प्रकाश करनेके लिये है

---

(१) यह वाक्य प्रथम गणके सद् धातुमें प्र उपसर्ग लगाने से बना है, कर्मणि प्रयोग, प्रथम पुरुष एक वचन विधिलिङ् (क्रिया) है। (२) यह उपैति शब्द द्वितीय गणके इ धातुसे बना है इ का गुण होने से 'ए' हो जाता है पश्चात् प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमान क्रिया का ति प्रत्यय लगानेसे एति हो जाताहै पश्चात् उप, उपसर्ग जोड़नेसे उप+एति) = उपैति बन जाताहै प्राप्त होजाता है ऐसा अर्थ है।

तेनआत्मगुणोऽदृष्टोनिराकृतो भवति तस्य संसारहेतुत्वानुपपत्तेः॥आदत्तेहेतुहेतुमद्भाव-ख्यापनार्थम्। अतो मिथ्यादर्शनाद्यावेशादार्द्रीकृतस्यात्मनःसर्वतो योगविशेषात्तेषांसूक्ष्मैकक्षेत्रा वगाहिनामनन्तानन्तप्रदेशां पुद्गलानां कर्मभावयोग्यानाम्॥

तेन ३।१।
आत्म-गुणः १।१ अदृष्टः १।१ निराकृतः १।१ भवति T
तस्य ६।१ संसार -हेतुत्व-
अनुपपत्तेः ५।१,

=तिस (कर्मके पुद्गल स्वरूप मय होने अथवा कर्मको पुद्गल परमाणु का स्कन्ध होने) से
=आत्माका अदृष्ट गुण (कर्मको माननेका सिद्धान्त) अपाकृत अथवा दूर होता है।
=क्योंकि तिस (कर्म) के (यदि कर्म आत्माका गुण होय तो) संसारके कारणपनाका
=साधन(=उपपत्ति) नहीं(=अन्) हो सकता है भावार्थ सूत्रमें पुद्गलशब्द इसलिये लाये हैं कि कर्म पुद्गल स्वरूपही हैं वा पुद्गल परमाणुका स्कन्धही है। कर्मको पुद्गलका स्कन्ध होनेसे वैशेषिक मती आदिकके इस सिद्धान्तका निराकरण होता है कि कर्म आत्माका अदृष्टगुण है और कर्मको यदि आत्माका अदृष्टगुण माने तो कर्म संसारका हेतु नहीं होता है। कर्म पुद्गलमयी है आत्माका गुण नहीं है इसलिये इस सिद्धान्तकी पुष्टि होताहै कि कर्म संसारका कारण है

[*]आदत्ते(वाक्यम्) १।१ इति *हेतु-[२]हेतुमत्-भाव-ख्यापन-अर्थम् २।१

=आदत्ते ऐसा (वाक्य) हेतुके और हेतुमानके
=भाव (=कार्यके) प्रगट करनेके लिये है अर्थात् मिथ्यादर्श-अविरति-प्रमाद-कषाय-योग ये हेतु हैं और हेतुमान अथवा कार्य (पुद्गल कर्मका) बन्ध है।

अतः*मिथ्यादर्शनादि-आवेशात् ५।१
आर्द्रीकृतस्य ६।१ आत्मनः ६।१
सर्वतः*योग-विशेषात् ५।१ तेषाम् ६।१ सूक्ष्म-एक-क्षेत्र-अवगाहिनाम् ६।३ अनन्तानन्त-प्रदेशानाम् ६।३ पुद्गलानाम् ६।३ कर्मभावयोग्यानाम् ६।३

=इसलिये (ऐसा अर्थ सिद्ध होता है कि) मिथ्यादर्शन आदि के आश्रयसे
=गीलाभया (=आर्द्रीकृत) वा सीले हुए (=आर्द्रीकृत) आत्माके
=सब ओरसे अथवा सब तरफसे योगके विशेषसे तिन सूक्ष्म
=एक क्षेत्रमें स्थिति करनेवाले(=अवगाहिनाम्] अथवा रहनेवाले[=अवगाहिनाम्]अनन्तानन्त
=कर्म होने [=भाव] योग्य पुद्गलके प्रदेशोंका

"आदत्ते" का यहां पर कर्त्ताकी भांति प्रयोग हुआ है और वाक्यम् वा वचनम् इसके पश्चात् वाक्यशेष है और ख्यापनार्थम् वाक्य नपुंसक-लिंगमें है इसलिये आदत्तेका लिंगभी नपुंसक है॥ हेतुमत्=[हेतुःअस्ति अस्य] हेतुवाला, कार्य [पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४५१]

अविभागेनोपश्लेषो बन्ध इत्याख्यायते ॥ यथा भाजनविशेषे क्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामस्तथा पुद्गलानामप्यात्मनि स्थितानां योगकषायवशात्कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः ॥ सवचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् । स एष बन्धो नान्योऽस्तीति । तेन गुणगुणिबन्धो निवर्तितो भवति ॥ कर्मादिसाधनो बन्धशब्दो व्याख्येयः ॥

अविभागेन[३] उपश्लेषः[१] बन्धः[१] इति *
(१) आख्यायते[T]। यथा-भाजन-विशेषे-
क्षिप्तानाम्[६] विविधरस-बीज-पुष्प-फलानाम्[६]।।
मदिरा-भावेन[३] परिणामः[१] तथा * आत्मनि[७] अपि *
स्थितानाम्[६] पुद्गलानाम्[६] योगकषाय-वशात्[५]
कर्मभावेन[३] परिणामः[१] वेदितव्यः[१]; (२) सवचनम्[१]।।।
अन्य-निवृत्ति-अर्थम्[१]।।; सः[१] एषः[१] बन्धः[१]
न * अन्यः[१] अस्ति T इति*; तेन[३]।।। गुणगुणिबन्धः[१]
निवर्तितः[१] भवति T।
कर्म-आदि-साधनः[१]
बन्ध-शब्दः[१] व्याख्येयः[१]

=विभाग रहित परस्पर मिलना (=उपश्लेषः)(सो) बन्ध है ऐसा
=प्रसिद्ध है। जैसे बासन विशेष (अर्थात् भाजनके विशेष जे हांडी आदिक) में
=क्षेपे हुए नाना प्रकार (=विविध के रस वा द्रव्यवस्तु बीज (=बिया) फूल फलों के
=मदिरा स्वभावकरि (=भावेन) पलटना होता है तैसे आत्मामें भी
=टिकेहुये पुद्गलोंके योगकषायके वशसे कर्मरूपकरि
=कर्मरूपकरि (=भावेन) परिणमन जानना योग्य है। (सूत्रमें) 'स' का कथन (=वचन)
=अन्यके निराकरण वा निवारण के लिये है सो यह बन्ध है।
=दूसरा बन्ध नहीं है (तिस वचन वा कथन) करि गुण और गुणीका बन्ध
=निराकृत होता है अर्थात् गुण गुणीके बन्ध होताहै सो बंध इस सूत्रमें न जानना।
=कर्म आदिक है साधन जिसका ऐसा अथवा कर्म आदिक साधनवाला
=बन्ध शब्द व्याख्यान योग्य है अर्थात् बन्ध शब्द है सो कर्म साधन है, कर्तृ साधन है, करणसाधन है भावसाधन भी है जिनका विशेष कथन ऐसे है कि
(क) जो आत्मा बांध्या सो बन्ध ऐसे कर्मसाधन है।

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ५३ में जहां 'आख्या' शब्द लिखा है। वहाँ 'आख्यायते' का अर्थ वा अनुवाद 'प्रसिद्ध' ऐसा किया है (२)[प्रश्न] सकषाय-जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः" इस सूत्रमें सः' शब्द का ग्रहण न करना चाहिये। और प्रश्न कर्त्ता का अभिप्राय है कि "सः" शब्द नहीं देते तो भी बन्धक' लक्षण हो ही जाता तो भी काम चल जाता फिर 'सः' शब्द सूत्रमें क्यों लिखा।(उत्तर)संसारमें अनेक प्रकारके बन्धहैं जैसे गुण गुणीका बन्ध, पशबन्ध, लड्गबन्ध, मुरजबन्ध इत्यादि इनके निषेधके लिये सशब्द है कि सूत्रमें वर्णित लक्षण वाले बन्धसे यहां प्रयोजन है अन्यसे नहीं। 'सवचनम्' यहां पर कर्त्ता वा प्रथम कारक में मेरी समझसे प्रयोग हुआ है और नपुंसक लिंगमें है॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३३३ में वचनके अर्थ कथन, वाक्य, ये दो भी लिखे हैं।

आह किमयं बन्ध एकरूप एव, आहोस्वित्प्रकारा अप्यस्य सन्तीत्यत इदमुच्यते —

॥ प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥

[ख] आत्मा बन्धरूप आपही परिणमें है तिससे बन्धको कर्त्ता कहिये। यहां कर्त्तृसाधन है।
[ग] पहिले बन्धकी अपेक्षासे आत्माबन्धकरि नवीन बन्ध करे है तिससे बन्ध करणसाधन है
[घ] बहुरि बन्धन रूप क्रिया सोही भाव ऐसे क्रिया रूपभी बन्ध है यहां भाव साधन है।

आह=कर्म्*अयम्[१]बन्धः[१]एकरूपः[१]एव*आहोस्वित्* =वह प्रश्न करता है कि यह बन्ध एकरूपही है।?अथवा [=आहोस्वित्]
प्रकाराः[१]अपि*अस्य[१]सन्ति=इति अतः*इदम्[१]=उच्यते=इसके भेद[=प्रकाराः] भी हैं। इसलिये यह [अग्रिमसूत्र] कहा जाता है कि

प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः =प्रकति-स्थिति अनुभव-प्रदेशाः तद्(बन्धस्य) विधयः॥३॥
=प्रकृतिबन्ध-स्थितिबन्ध-अनुभवबन्ध-प्रदेशबन्धः तद्(बन्धस्य) विधयः भवन्ति॥

सूत्रार्थः—प्रकृतिबन्धः[१]स्थितिबन्धः[१]अनुभवबन्धः[१]
प्रदेशबन्धः[१]तद्-बन्धस्य[१]भेदाः[१]भवति=

=प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभवबन्ध
प्रदेशबन्ध-उसबन्धके भेद हैं अर्थात् कर्माण वर्गणाओंमें आठ प्रकार ज्ञानके ढकने वाले, दर्शनके आच्छादन करने वाले, सुख दुःखका अनुभव करने वाले, मोह उत्पन्न करनेवाले, शरीरमें कालकी मर्यादा किये हुये आत्माको अटकानेके, आत्माके लिये नाना प्रकारके शरीर सांगोपांग आदि रचनेके, जीवको ऊंच नीच कुलमें उत्पन्न करनेके आत्माकेदान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यमेंबाधा डालने के स्वभावका रसका पडना सो प्रकृति बंध हैं। कर्म (अपने स्वभाव को छोड़कर) जितने कालतक आत्मासे भिन्न न हो सो स्थिति बन्ध है। कर्मों में तीव्र, मध्यम, मंद, रस (फल) देने की शक्ति होनेको अनुभव बन्ध अथवा अनुभाव बन्ध वा अनुभाग बन्ध कहते हैं। आठ प्रकारके कर्मों का आत्माके सर्व प्रदेशोंमें एक क्षेत्रमें आत्मा के साथ अवगाह करि स्थिर रूपसे रहते हुए नीर क्षीरवत् संबन्धका होना सो प्रदेश बन्ध है।

[१] हमारी आम्नायमें सूत्रका कहीं अनुभव और कहीं अनुभाग पाठ है। श्वे ताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारणी तत्त्वार्थटीकामें अनुभाव पाठ है और उकदोनों भाष्योंमें विपाकोविपाकोनुभावः]नुभावःक्रमसे (हमारे यहांके २१वां सूत्रका पाठ है॥अर्थ एक है॥

प्रकृतिः स्वभावः। निबस्य का प्रकृतिः? तिक्तता। गुडस्य का प्रकृतिः? मधुरता। तथा ज्ञानावरणस्य का प्रकृतिः?। अर्थानवगमः। दर्शनावरणस्य का प्रकृतिः? अर्थानालोचनम्॥ वेद्यस्यसदसल्लक्षणस्य सुखदुःखसंवेदनम्॥ दर्शनमोहस्यतत्त्वार्थाश्रद्धानम्॥ चारित्रमोहस्यासंयमः॥ आयुषो भवधारणम्॥ नाम्नो नारकादिनामकरणम्॥गोत्रस्योच्चैर्नीचैः स्थानसंशब्दनम्॥अन्तरायस्य दानादि विघनकरणम्॥ तदेवं लक्षणं कार्यम्—प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृतिः॥ तत्स्वभावादप्रच्युतिःस्थितिः।

वृत्त्यनुवादः—प्रकृतिः[1/6]''स्वभावः[1/6]',निम्बस्य[6/6]'' का[1/6]''प्रकृतिः[1/6]''? तिक्तता[1/6]'' गुडस्य[6/6]''का[1/6]''' प्रकृतिः[1/6]''? मधुरता[1/6]'', तथा*ज्ञान-आवरणस्य[6/6]''' का[1/6]'' प्रकृतिः[1/6]''? अर्थ–अव्–अवगमः[1/6]' ; दर्शनावरणस्य[6/6]''' का[1/6]'' प्रकृतिः[1/6]''? अर्थ–अव्–आलोच (क) नम्[1/6]''; वेद्यस्य[6/6]''' सत्–असत्–लक्षणस्य[6/6]''' सुखदुःखसंवेदनम्[1/6]''', दर्शन–मोहस्य[6/6]''' तत्त्वार्थ–अश्रद्धानम्[1/6]''' ; चारित्रमोहस्य[6/6]'असंयमः[1/6]';आयुषः[6/6]'''भवधारणम्[1/6]''';नाम्नः[6/6]'''नारक-आदि-नाम-करणम्[1/6]''';गोत्रस्य[6/6]' उच्चैः*नीचैः*स्थान–संशब्दनम्[1/6]''';अन्तरायस्य[6/6]' दान-आदि-विघ्नकरणम्[1/6]''',तद्-एवम्*लक्षणम्[1/6]''' कार्यम्[1/6]''',प्रक्रियते।प्रभवति। अस्याः[5/6]'' इति*प्रकृतिः[1/6]'',तत्-स्वभावात्[5]',अप्रच्युतिः[1/6]''स्थितिः[1/6]'';

=प्रकृति है सो वान वा शील वा लक्षण [=स्वभाव] है, नीमका
=क्या स्वभाव है ? कड़वापन वा कटुकता, गुड़का क्या
=स्वभावहै, मीठापन, मिठास, मिष्टता, वैसे ही ज्ञानावरण (कर्म) का
=क्या स्वभाव है । पदार्थ वा वस्तुका न जानने देना है ।
=दर्शनावरण (कर्म) की क्या वान है अथवा क्या लक्षण है । पदार्थ का न
=देखनाहै अर्थात् वस्तुके ज्ञानके सामान्य अवलोकन रूप अंशको अच्छादन करदेनेका है ।
=वेदनीयका प्रशस्त(सत्=सराहनेयोग्य)अप्रशस्त (असत्=असराहनेयोग्य) स्वभाव(=लक्षण)
=सुख दुःख रूप अनुभव होना (=संवेदन) है ।
=दर्शनमोहका (लक्षण) तत्त्वार्थका अविश्वासहै अथवा अतत्त्वार्थका विश्वास है ।
;=चारित्र मोहका (लक्षण) संयम रूप न होने देनाहै । आयुका(लक्षण)भवमेंस्थिर करनेकाहै।
=नामकी (प्रकृति)नारकादिक नामका कारण[=करण]है वा हेतु है । गोत्रका (लक्षण)
=ऊंचे नीचे स्थानके कथन का है । अन्तरायका (लक्षण)
=दान आदिकर्म बाधा करनेका है, उस प्रकृति का इस प्रकार लक्षण हुआकि
=जिससे[=अस्याः[5/6]]कार्य प्रकर्षकरि किया जाता है,जिससे[=अस्याः[5/6]'']कार्य प्रगट होता है
;=ऐसी प्रकृति है। उस स्वभावसे(जब तक)छूटे नहीं वा जाण नहीं सो स्थिति है अर्थात्

यथा-अजागोमहिष्यादिक्षीराणां माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तथा ज्ञानावरणादीनामर्थानवगमादिस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तद्रसविशेषोऽनुभवः। यथा-अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमंदादिभावेनरसविशेषः। तथा कर्मपुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभवः॥ इयत्तावधारणं प्रदेशः।

उक्त आठ प्रकारकी कर्म प्रकृति जो आत्माके प्रदेशोंसे बंध रूप हुई है वे जितने काल तक रहेगी वा जितने कालतक अपने स्वभावका नहीं छोडेगी, उसको स्थिति कहतेहैं

यथा* अजा-गो-महिषी-आदि-क्षीराणाम्$^{\frac{6}{3}}$'''
माधुर्य-स्वभावात्$^{\frac{5}{4}}$ अप्रच्युतिः$^{\frac{1}{4}}$ स्थितिः$^{\frac{1}{4}}$''; तथा*
ज्ञानावरणादीनाम्$^{\frac{6}{3}}$ अर्थ-अन्- अवगमादि-स्वभावात्$^{\frac{5}{3}}$
अप्रच्युतिः$^{\frac{1}{4}}$'' स्थितिः$^{\frac{1}{4}}$'';

=जैसे बकरी भेड़ी गाय, भैंस (=महिषा आदिकके दूधके
=मीठे स्वभावसे क्षीण न होना (=अप्रच्युति) स्थिति है तैसे
=ज्ञानावरणादिकनिके पदार्थका न जानने देना आदिक स्वभावसे [जब तक]
=न छूटना सो स्थिति है। संक्षेपतः कर्म (अपने स्वभावको लिये हुये) जितने कालतक आत्मासे जुदा न हों वह स्थिति बन्ध है।

तद्-रस-विशेषः$^{\frac{1}{4}}$ अनुभवः$^{\frac{1}{4}}$; यथा*अजा-गो-महिषी-
आदि-क्षीराणाम्$^{\frac{6}{4}}$''; तीव्र-मन्दादिभावेन$^{\frac{3}{4}}$ रस-विशेषः$^{\frac{1}{4}}$;
तथा*कर्मपुद्गलानाम्$^{\frac{6}{4}}$ स्वगत-सामर्थ्य-विशेषः$^{\frac{1}{4}}$
अनुभवः$^{\frac{1}{4}}$;(१)इयत्ता-अवधारणम्$^{\frac{1}{4}}$''
प्रदेशः$^{\frac{1}{4}}$ ।

=तिस(कर्म)केरसका(तीव्र-मन्द मध्यम)विशेषसे अनुभाग है जैसे बकरीगाय भैंस(=महिषी)
=आदिक दुग्धका तीखा धीमादिक स्वरूप करि(=भावेन) रस (स्वाद का विशेष है,
=तैसे कर्मके (उत्पन्न होने) योग्यपुद्गलोंको अपने विषै प्राप्त हुई शक्तिकी विशेष सो
=अनुभव वा अनुभाग है। गिनती (=इयत्ता) वा संख्या[=इयत्ता]का निश्चयकरना सो
=प्रदेश है(कि इतने हैं)अर्थात् परमाणुओंकी गिनतीरूप अवधारण वा निश्चयसो प्रदेश है

(१)''इयत्तावधारणंप्रदेशः॥७॥''''कर्मभाव परिणत पुद्गल स्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेश इति व्यपदिश्यते। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २६६। पूज्यपाद स्वामीके उपर्युक्त दोनों वाक्योंमें से पहिलेको तत्त्वार्थराजवार्तिकके कर्ताने सातवाँ वार्तिक शब्दशः माना है और दूसरेको सातवीं वार्तिककी संस्कृत व्याख्याके रूपमें शब्दशः दिया है॥ इति व्यपदिश्यते (=ऐसा विशेषतासे उपदेश दिया गया है) अधिक वाक्य है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें''इयत्तावधारणं प्रदेश'है उक्त दोनोंवाक्योंका पं०जयचन्द्रजीने अपनी वचनिकामेंनिम्न प्रकारक्रमसे अनुवाद कियाहै

इयत्तावधारणं प्रदेशः (=इयत्ता-अवधारणम् प्रदेशः)
कर्मभाव-परिणत-पुद्गल-स्कन्धानाम्
परमाणु-परिच्छेदेन-अवधारणम् प्रदेशः

''बहुरि परमाणुनिका गणतिरूप अवधारण जो एते हैं सो प्रदेश है,
=जो पुद्गल परमाणुके स्कन्ध कर्म भावकूं परिणये
=तिनका गणनारूप परिमाण यामें करिये है सोप्रदेश है। तिनका=परिमाणुनिका

कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेशः ॥ विधिशब्दः प्रकारवचनः। ते एते प्रकृत्यादयश्चत्वारस्तस्य बन्धस्य प्रकाराः ॥ तत्र योगनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ कषाय-निमित्तौ स्थित्यनुभवौ। तत्प्रकर्षाप्रकर्षभेदात्तद्बन्धविचित्रभावः । तथा चोक्तम्–जोगा पयडिपएसा ठिदिअणुभागा कसायदो कुणदि । अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधठिदिकारणं णत्थि॥१॥

कर्म-भाव-परिणत-पुद्गल-स्कन्धानाम्[६] परमाणु-परिच्छेदेन[३] अवधारणम्[१।१] प्रदेशः[१] =कर्मस्वरूपको परिणये पुद्गलस्कन्धोंके परमाणुओंकी =गणनाकरि (=परिच्छेदेन) निरचय करना (=अवधारण) सो प्रदेश है । अर्थात् परमाणुओंके वे स्कन्ध जो ज्ञानावरणादि कर्म स्वरूपमें परिणमन वा परिवर्तन करणये हैं उनपरमाणुओंके स्कन्धोंकी गणना जिसमें की जावे वह प्रदेश है ॥

विधि-शब्दः[१] प्रकार-वचनः[१]; ते[३] एते[३] प्रकृति-आदयः[३] चत्वारः[३] तस्य[६] बन्धस्य[६] प्रकाराः[३]; तत्र*योग-निमित्तौ[३] प्रकृति-प्रदेशौ[३] कषाय-निमित्तौ[३] स्थिति-अनुभवौ[३]; तत्-प्रकर्ष-अप्रकर्ष-भेदात्[५] तद्-बन्ध-विचित्रभावः[१]; तथा*च*उक्तम्[१।१] जोगा[५] पयडिपएसा[१] (योगात्[५] प्रकृतिप्रदेशौ[१]) ठिदिअणुभागा[१] कषायदोः*कुणदि[T] (स्थित्यनुभवौ[१] कषायतः* करोति[T]) अपरिणदुच्छिण्णेसु[७] (अपरिणतोच्छिन्नेषु[७]) य*बन्धठदि कारणं[१।१] णत्थि[T] च*बन्ध-स्थितिकारणम्[१] न* अस्ति T

(इस सूत्रमें) विधिशब्द प्रकारवाची है । ते इतने प्रकृति–स्थिति–अनुभव–प्रदेश =चार तिस बन्धके विकल्प वा भेद हैं । तहां (मनो, वचन, काय) योगके =कारण प्रकृति (बन्ध) और प्रदेश (बन्ध) हैं । कषाय के निमित्त स्थिति (बन्ध) =अनुभाग(बन्ध)हैं । तिन(योग कषाय)के हीनादिक भेदसे उस बन्धका =विचित्रस्वरूप है अथवा नाना प्रकारका रूपहै । उसी प्रकार कथन भी है कि =योगसे प्रकृति (बन्ध) और प्रदेश(बन्ध) को =कषाय से स्थिति (बन्ध) अनुभाग (बन्ध) को जीव करता है।

=कषायके अपशान्त होने पर(=अपरिणतेषु)तथा कषायके निर्जीण होनेपर (=उच्छिन्नेषु) अथवा कषायके क्षीण होनेपर (=उच्छिन्नेषु)

=बन्ध ,स्थितिबन्धका कारण नहीं है,और(=य=च)(बन्ध भी नहीं है भावार्थ जिस के ज-=घन्यएक समयतथाउत्कृष्ट अन्त मुहूर्त काल प्रमाण कषायस्थान अपरिणत अर्थात्उदय रूप

(१) प्राकृत [भाषा] में विसर्ग चतुर्थी विभक्ति [जिसके स्थानमें छठी विभक्ति का प्रयोग है] और दो वचन नहीं होते हैं। दो वचनके स्थानमें बहु वचनका प्रयोग होता है। अतः 'पयडि पएसा, और 'ठिदिअणुभागा बहु वचनमें हैं परन्तु संस्कृत में प्रकृति प्रदेशौ और स्थित्यनुभागौ दो वचन

तत्राद्यस्य प्रकृतिबन्धस्य भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ३ ॥

नहीं ऐसे उपशान्त कषाय, कषायस्थान जिसके क्षीण होगये हैं ऐसे क्षीणकषाय, सयोगकेवलीके एक समयका बन्ध, स्थितिका कारण नहीं अर्थात् जिससमय बन्ध हो उसी समय झड़जावें और "य=घ" अयोगकेवलीके चारों बन्ध (प्रकृति—प्रदेश- स्थिति—अनुभाग) के कारण योग और कषाय ये दोनों ही नहीं हैं ।

तत्र*आद्यस्य[१]प्रकृतिबन्धस्य[१]भेद-प्रदर्शन-अर्थम्[२]'''आह T=तहां आदिके-प्रकृतिबन्ध के भेद प्रगट करने के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥

=आद्य (प्रकृतिबन्धः) ज्ञानावरण—दर्शनावरण—वेदनीय-मोहनीय-आयुः-नाम—गोत्र—अन्तरायाः (अष्टविधयः)

सूत्रार्थः—आद्यः[१]प्रकृतिबन्धः[१]ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीय-आयुः-नाम-गोत्र-अन्तरायाः[१] अष्टविधयः[१]

=आदिका प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण—दर्शनावरण—वेदनीय—मोहनीय—आयुः—नाम—गोत्र—अन्तराय =आठ प्रकार है अर्थात्—(१) ज्ञानको आच्छादन करनेवाला वा ढकनेवाला सो ज्ञानावरण है (२)पदार्थके सामान्य अवलोकनको आच्छादन वा ढकनेवाला दर्शनावरण है (३) वेदना वा सुख दुःख रूप अनुभव करानेवाली वेदनीय है (४) जो मोहित करती है अथवा जिसकरि आत्मा मोहको प्राप्त होता है सो मोहनीय है । (५) जिसकरि (नारकादिक के) जन्म को प्राप्त होता है वह आयुः है (६) अनेक प्रकार उत्पत्तिस्थानोंमें नारकादिक पर्यायोंकरि आत्माको नाम परावे है वा प्रसिद्ध करताहै सो नाम है (७)ऊंचापन तथा नीचापन प्राप्तकरावे वह गोत्र है(८)दातार,देनेयोग वस्तु,याचकके मध्य विघ्न डाले बाधाकरै सोअन्तराय है।

'में है ॥ गोम्मटसार में चुण्णदि के स्थान में होंति [भवन्ति] है दोनों पाठ ठीक हैं क्योंकि पयडि पएसा और ठिदिअणुभागा के रूप प्राकृत में प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के एक है इसलिये उक्त दोनों वाक्य जब द्वितीया विभक्ति में हैं तब करोति के साथ अन्वय होजाता है और जब प्रथमा विभक्ति में हैं तब भवन्ति के साथ अन्वय हो जाता है । दो हस्त लिखित प्रतियोंमें कुणदि शब्द है पर तीसरी हस्त लिखित प्रतिमें होंति शब्द है । गोम्मटसार में ' पएसा शब्द के स्थानमें पदेसा शब्द है । दोनों को संस्कृत छाया प्रदेशाः है

श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकामें " आयुः " के स्थानमें आयुष्क शब्द है । आयुः और आयुष्क में अर्थ भेद नहीं है ॥ अर्थात् स्व-अर्थ में [= अपनेअर्थ में आयुस् शब्दमें , कन् [क] प्रत्यय लगाकर आयुष्क शब्द बनाया है सूत्रका शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है और अर्थ भी एक है ॥ कन् प्रत्यय न लाकर सूत्र लघु होना ही अच्छा है ॥

आद्यः प्रकृतिबन्धो ज्ञानावरणाद्यष्टविकल्पो वेदितव्यः॥ आवृणोत्याव्रियतेऽनेनेति वा आवरणम्। तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते—ज्ञानावरणं, दर्शनावरण मिति॥ वेदयति

वृत्यनुवादः—आद्यः$\frac{१}{६}$ प्रकृतिबन्धः$\frac{१}{६}$ ज्ञानावरणादि—अष्ट—=आदिका वा पहिला प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरणादिक आठ

विकल्पः$\frac{१}{६}$ वेदितव्यः $\frac{१}{६}$'(१)आवृणोति T अनेन$\frac{३}{६}$ वा*=प्रकार जानना चाहिये। जो आवरण वा आच्छादन करताहै, अथवा जिसकरि

आव्रियते T इति*आवरणम्$\frac{१}{६}$''' ; तत्$\frac{१}{६}$''' =आवरण वा आच्छादन किया जाता है[=आव्रियते]ऐसा आवरण है। वह(आवरण) ब्द्

प्रत्येकम्$\frac{३}{६}$'''[२)अभिसम्बध्यते Tइति*ज्ञानावरणम्$\frac{१}{६}$''' =पृथक्पृथक् (ज्ञानतथादर्शन) को लगाया जाताहै वा जोड़ा जाता है ऐसे ज्ञानावरण

दर्शनावरणम् $\frac{१}{६}$''' ॥ (३) वेदयति T =दर्शनावरण हुये। जो वेदती है अर्थात् जो वेदना वा सुख दुःखका अनुभव कराती है

(१) यह शब्द वृ (आच्छादन करना पकाना) स्वादि पांचमां गणका उभय (परस्मैपदी और आत्मनेपदी) सकर्मक धातु है। पांचमें गणके धातुमें 'नु' विकरण लगाया जाता है इस लिये वृ + नु हुआ, न् उसी शब्दमें यदि ऋ-र् अथवा ष् के पश्चात् आवे तो ण् में पलट जाता है और पित्संज्ञक प्रत्ययके पहिले अंगका अन्तिक स्वर और उपान्तिक ह्रस्वके गुणका आदेश हो जाता है इसलिये वृणो हुआ 'ति' पित्संज्ञक प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमान कालका क्रियाका चिन्ह है॥ अतः वृणोति हुआ। आ अव्ययका अर्थ यहां पर असर्व वा थोड़े का है. इसलिये आवृणोति बन गया। भावार्थ आत्माके ज्ञानको सर्वथा नहीं ढँकता है एक देश ढँकता है।

(२) बन्ध् क्र्यादि नवमें गणका परस्मैपदी सकर्मक धातु है। इस गणके धातुओंका उपान्तिक (एक छोड़कर अन्तका) न् गिरजाता है इसलिये बन्ध् = बध् कर्मणि प्रधानकाय जोड़कर प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमानकाल क्रियाका 'ते लगानेसे बध्यते बना. पश्चात् अभि और सम् उपसर्गोंके लगानेसे अभिसम्बध्यते धातु रूप बना। (३) यह शब्द विद् धातुके पश्चात् णिच् (=इ) प्रत्यय हेतु अर्थमें लगानेसे और विद्के स्वरको गुण करनेसे तथा प्रथम पुरुष एक वचन कर्तृ प्रधान लट् वर्तमान कालकी द्योतक क्रियाका 'ति' चिन्ह लगानेसे इस प्रकार बना है कि-विद् + णिच् = वेद् + इ = वेद् + य = वेद + अय अब पूर्वोक्त "ति" जोड़ दो = वेदयति = अनुभव कराता हैं बन गया, परन्तु ध्यान रहेकि वेद्यते जोविद्का दशवां गणमें रूप है उस का अर्थ = अनुभव करता है ऐसा है।

धातु	गण	अर्थ	पद	प्रथम पुरुष एक वचन कर्तृप्रधान	किस प्रकार से बना है
(क) विद्	दूसरा	जानना अनुभवकरना	परस्मै	लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रियाका चिन्ह ति	()ति पित् संज्ञक है ∴ विद्के स्वरका गुणहोकरऔरद्कात् होकरवेत्तिरूपबना
					()इस विद्में अ परोक्षाद्योत्ति लिट्का अ(प्रथम पु० वर्त०)जोड़नेसे विदभो बना
(ख) विद्	चौथा	होना(अकर्मक)	आत्मने	ते	()इस चौथे गणके धातुमें य विकरण जोड़कर ते लगानेसे विद् + य + ते = विद्यते

वेद्यत इति वा वेदनीयम्॥ मोहयति मुह्यतेऽनेनेति वा मोहनीयम्॥

[१]वेद्यते[1]इति*वा*[2]वेदनीयम्[2]''''=अथवा[जिसकरि]वेदनाको जाती है(=वेद्यते)अर्थात्[जिससे अनुभव सुख दुःखका किया जाता है सोवेदनीय है

मोहयति[1]अनेन[2]वा* =जो मोहको उत्पन्न करती है, जो मूढ करती है, जो भुलाती है, अथवा जिसकरि [आत्मा]

मुह्यते[1]इति*[2]मोहनीयम्[2]'''' =मोही जाती है, भुलाई जाती है, अथवा मूढ की जाती है सो मोहनीय है

धातु	गण	अर्थ	पद	प्रथम पुरुष एक वचन कर्तृप्रधान	किस प्रकारसे बना है
(ग) विद्	छठवां	पाना [सकर्मक]	उभयपदी	ति (परस्मैपदका) ते(आत्मनेपदका)	अनुनासिक न्-वि और द के मध्यमें आता है पुन विकरण अ तथा ति अथवा ते लाकर विन्दति, विन्दति और विन्दते, विन्दते बना जिसका अर्थ पाना है
[घ] विद्	सातवां	जानना [सकर्मक]	आत्मनेपदी	ते (आत्मनेपदका चिन्ह है)	न विकरण मूलीय स्वर और अन्त के व्यंजनके मध्यमें लाकर इस न का अ ते ङित् संज्ञक प्रत्यय होनेसे जाता रहता है वि न् द् + विन् त् + ते = विन्त् + ते = विन्ते रूप बन गया
[ङ] विद्	दसवां	कहना अनुभव करना	आत्मनेपदी	ते (आत्मनेपदका चिन्ह है)	दसवां गणका अय विकरण लगानेसे और विद्को गुणकरनेसे वेद् + अय + ते = वेदयते बना ।

(१) यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि 'विद्यते' का अर्थ वही नहीं है जो 'वेद्यते' का है क्योंकि 'विद्यते' चतुर्थ गणका विद् धातु है उसमें 'य' विकरण लगानेसे तथा ते चिन्ह आत्मनेपदीका जोड़नेसे विद्यते बना है इसका अर्थ है होता है परन्तु विद् धातुमें य कर्मणिप्रधान का चिन्ह लानेसे और ते आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे और विद् धातुकी इ को गुण करनेसे बनता है। जैसे विद् + य + ते = वेद्यते अर्थ है वेदा जाता है अर्थात् (जिससे सुख दुःखका अनुभव किया जाता है।(२)'वेदनीयम्' यह शब्द विद् धातुमें अनीयर् प्रत्यय लगानेसे और विद के इ को गुण करनेसे और नपुंसकलिंग एक वचनका म् लानेसे बना है॥ जैसे विद् + अनीयर् + म् = वेद् + अनीय + म् = वेदनीयम् - जे वेदतीहै

(३) मोहनीयम्-यह शब्द मुह धातुमें अनीयर् प्रत्यय लगानेसे मुह् के उ की गुण(संज्ञा)करनेसे बना है तव्यत्तव्यानीयरः(अष्टा-३।१।९६॥ तव्यत्,तव्य अनीयरः (धातोः)अर्थ-धातुके पश्चात् तव्यत्, तव्य, अनीयर् प्रत्यय आते हैं। तव्यत्का त् और अनीयर् का र् केवल उच्चारणके लिये है इसलिये तव्य-तव्य-अनीय ऐसे तीन प्रत्यय हुये। जैसे कृ + तव्यत् = कर्तव्यम् (=अवश्य किया जाना चाहिये) और कृ + तव्य = कर्तव्यम्, कृ + अनीयर् = करणीयम् (अवश्य किया जाय, किया जाना चाहिये) इसी प्रकार-

(क) विद् + अनीयर् = वेद + अनीय नपुंसकलिंग एकवचनका चिन्हम्लगानेसे वेदनीयम् हुआ।[जिससे सुख दुःखका अनुभव किया जाताहै]

(ख) मुह् अनीयर् = मोह् + अनीय नपुंसकलिंग एकवचनका चिन्ह म् लगानेसे मोहनीयम् हुआ। अर्थ-कर्मणिप्रधान और कर्तरिप्रधान दोनोंमें इन दोनों शब्दोंको आचार्योंने लिया है।जैसे-

(क) वेदनीयम् = जो वेदती है [कर्तरिप्रधान हुई] जिस करि वेदना की जाय अथवा जिसकरि वेदा जाय [कर्मणिप्रधान हुई] [ख]मोहनीयम् = जो मूढ करती है-जो भुलाती है। जो मोह लेती है [कर्तरिप्रधान हुई] जिसकरि मोही जाती है [आत्मा, जिसकरि भुलाई जाती है-जिस

एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः ॥ नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम्र ॥ उच्चैर्नीचैश्च गूयते शब्द्यत इति वा गोत्रम् ॥ दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः ॥ एकेनात्मपरिणामेनादीयमानाः पुद्गला ज्ञानावरणाद्यनेकभेदं प्रतिपद्यन्ते

एति T अनेन$_{3}^{2}$ नारकादि-भवम्$_{2}^{2}$'' इति*आयुः$_{1}^{1}$; =जिसकरि नारक आदि भवको वा जन्मको जाता है, प्राप्त करता है ऐसो आयु है।

(२)नमयति T आत्मान$_{2}^{2}$ =जो आत्माको नम्रकरती है(=नमयति), नमावती है (=नमयति)

नम्यते T अनेन$_{3}^{2}$''वा* =अथवा जिसकरि(आत्मा)नम्र कीजाती है (=नम्यते) (आत्मा नवाई जातीहै [=नम्यते]

"जो आत्माका नाम करे" 'जाकरि नाम कीजिये" जयचन्द्रजी वचनिका से उद्धृत।

इति*नाम्न$_{1}^{1}$''उच्चैः*नीचैः*च*(१)गूयते T =ऐसा नाम है जिससे ऊंचा वा नीचा [=च] कहाजाता है (=गूयते)

शब्द्यते इति*वा*गोत्र$_{1}^{1}$''दातृ-देय-आदीनाम्$_{3}^{1}$ =अथवा प्रसिद्ध किया जाता है सो गोत्र है। दाता तथा देने योग्यवस्तुआदिक[=पात्र]के

अन्तर$_{2}^{2}$। मध्य$_{2}^{2}$ एति T =मध्य अन्तरको (भेद वा दूरी को) करता है अर्थात् विघ्न बाधाओं को करता है

इति* अन्तरायः$_{1}^{1}$; एकेन$_{3}^{2}$ आत्म-परिणामेन$_{3}^{2}$ =ऐसा अन्तराय है। एक जीवके परिणाम अथवा भावकरि

आदीयमानाः$_{1}^{1}$ पुद्गलाः$_{1}^{1}$ अनेक-भेदम्$_{2}^{2}$ =ग्रहण कियेजे पुद्गल परमाणु (ते) अनेक भेदको

ज्ञानावरणादि $_{1}^{1}$'' प्रतिपद्यते T =ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय,नाम,गोत्र,अंतराय (रूपसे वेसेही)प्राप्तहोतेहैं

करि मूढकी जाती है [आत्मा] यहां पर कर्मणिप्रधान हुई। मोहयति-यह शब्द मुह् दिवादि चतुर्थगणके उभय [परस्मैपदी और आत्मनेपदी] धातुके आगे णिच् [=अय] प्रत्यय हेतु अर्थमें लानेसे और मुह् के स्वरको गुण करनेसे और प्रथम पुरुष एक व॰ न कर्तृप्रधान लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रियाका 'ति' चिन्ह लगानेसे इस प्रकार बना है कि मुह + णिच् + ति = मुह् + अय + ति = मोह् + अय + ति = मोहयति। [पु॰ मुह्-मुह्यते पूर्वोक्त चतुर्थगणके धातुमें य लगानेसे और प्रथमपुरुष एकवचन कर्मणिप्रधान लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रियाका ते चिन्ह लगानेसे इस प्रकार बना है कि मुह् + य + ते मुह्यते [जिसकरि आत्मा मूढकी जाती है वा भुलाई जाती है] परन्तु ध्यान रहे कि मुह् धातुका य विकरण लगाकर चौथे गणमें मुह्यति बनते हैं अर्थ-बेसुध होता है, वेचित्त होता है। यह भी ध्यान रहे कि मोहयते भी आत्मनेपदमें होता है, मेरी समझमें मोहयति और मोहयते दोनोंके अर्थमें यह अन्तर है कि जो दूसरेको जैसे अन्य जीव अथवा अन्य आत्माको मोह उपजावे वा भुलावे सो मोहयति कहा जाता है इसीलिये श्री आचार्य ने यहां पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें मोहयति लाये हैं और जो अपने को मोह उपजावे तब मोहयते ऐसा आत्मने पदमें लाते हैं यदि उनके पहिले परि उपसर्ग लावें, तो परिमोहयति और परिमोहयते ऐसे रूप बनेंगे। परिका अर्थ बहुत वा अधिक का है।

[१] नसे गु यहां पर] भ्वादि प्रथम गण का आत्मनेपद धातु है। कर्मणि प्रयोग में उकारवर्ण हो जाता है जैसे गु + य + ते = गूयते = कहाजाता है

[२]नमति-नमयति नम् भ्वादि प्रथमगण परस्मैपद धातु प्रणाम करने और शब्दकरने [प्रह्वे शब्देच] अर्थ में आता है नम् धातु में अय् प्रत्यय लगानेसे

सकृदुपभुक्तान्नपरिणामरसरुधिरादिवत् ॥

'आद्योक्तो मूलप्रकृतिबन्धोऽष्टविधः । इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धो वक्तव्य इत्यत आह—

॥ पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥

द्वितीयग्रहणमिह कर्तव्यं द्वितीय उत्तरप्रकृतिबन्ध एवं विकल्प इति॥ न कर्तव्यं

सकृत्–उपभुक्त–अन्न–परिणाम–रस–रुधिर–आदिवत्* =जैसे एकबारके खाये हुये अन्नके परिणमनरूप [पलटनेरूप] रस रुधिर =मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र [=वीर्य] [हो जाते हैं]

आह[1] उक्तः[1/2] मूलप्रकृतिबन्धः[1/2] अष्ट–विधः[1/2] । =प्रश्न करता है कि मूलप्रकृतिबन्ध आठ प्रकार कहा गया है।

इदानीम्*उत्तर-प्रकृति-बन्धः[1/2] वक्तव्यः[1/2] इति*अतः*आह[1]=अब 'उत्तर प्रकृतिबन्ध अर्थात् प्रकृतिबन्धके भेद कहना चाहिये इसलिये कहते हैं कि

(१) पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

=[आद्यो मूलप्रकृतिबन्धोऽष्टविधो पुनरेकशः]पञ्चभेदः नवभेदः, द्विभेदः, अष्टाविंशतिभेदः, चतुर्भेदः, द्विचत्वारिंशद्भेदः द्विभेदःपञ्चभेदःयथाक्रमम्

सूत्रार्थः—आद्यः[1/2] मूलप्रकृतिबन्धः[1/2] अष्टविधः[1/2]= आदिका मूलप्रकृतिबन्ध आठ प्रकार है

पुनः*एकशः*पञ्चभेदः[1/2] नवभेदः[1/2] द्विभेदः[1/2] = फिर प्रत्येकके (=एकशः) वा एकएकके [=एकशः] पांचभेद, नौभेद, दोभेद,

अष्टाविंशतिभेदः[1/2] चतुर्भेदः[1/2] द्विचत्वारिंशद्भेदः[1/2] = अट्ठाईस भेद, चारभेद, व्यालीसभेद

द्वि–भेदः[1/2] पंच–भेदः[1/2] यथाक्रमम्* = दो भेद [और] पांचभेद क्रमानुसार हैं अर्थात् ज्ञानावरणके पांचभेद, दर्शनावरणके नौभेद, वेदनीयके दो भेद, मोहनीयके अट्ठाईस भेद, आयुके चार भेद, नामकर्मके बियालीस भेद, गोत्रकर्मके दो भेद, अन्तरायकर्मके पांच भेद हैं

द्वितीय–ग्रहणम्[1/1] इह* कर्तव्यम्[1/1] द्वितीय–उत्तर–प्रकृति–बन्धः[1/2] एवम्*विकल्पः[1/2] इति* न* कर्तव्यम्[1/1], = द्वितीय शब्दका आदान इस स्थानमें अर्थात् इस सूत्रमें करना चाहिये ॥ = क्योंकि दूसरा उत्तर–प्रकृतिबन्ध इस प्रकार भेद वाला है ॥ =(उत्तर) (इस सूत्रमें द्वितीय शब्दका ग्रहण) न करना चाहिये (क्योंकि)

न के अ को विकल्प करि(जो चाहै करो जो चाहै न करो) वृद्धिकर देते हैं,वृद्धि न करें तो नम् + अय + ति = नमयति रूप है,वृद्धि करनेपर नाम् + अय + ति = नामयति है (१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है (२) एकशः–जिन शब्दों के अन्तमें 'शस्' प्रत्यय आता है वे अव्यय होते हैं

पारिशेष्यात्सिद्धेः ॥ आद्यो मूलः प्रकृतिबन्धोऽष्टविकल्प उक्तः । ततः पारिशेष्यादयमुत्तरप्रकृतिविकल्पविधिर्भवति ॥ भेदशब्दः पञ्चादिभिर्यथाक्रममभिसम्बध्यते-पंचभेदं ज्ञानावरणीयं, नवभेदं दर्शनावरणीयं, द्विभेदं वेदनीयं, अष्टाविंशतिभेदं मोहनीय, चतुर्भेदमायुः, द्विचत्वारिंशद्भेदं नाम, द्विभेदं गोत्रं, पंचभेदोऽन्तराय इति ॥

पारिशेष्यात् [५।१] सिद्धेः [५]; =अवशेषताके नियमसे वा शेषमात्र बच रहनेकी रीतिसे (द्वितीय शब्दका ग्रहण) सिद्धहै अर्थात् मूलप्रकृतिबन्ध, उत्तर प्रकृतिबन्ध जब दोही भेदहैं। और एक भेद (मूलप्रकृतिबन्ध) का कथन कर दिया तब स्वतः विना ग्रहण किये हुये ही वा विना कथन कियेही दूसरा भेद जाना जाता है। इसलिये सूत्रमें द्वितीय शब्द का आदान नहीं कियागया है।

आद्यः [१।१] मूलः [१।१] प्रकृतिबन्धः [१।१] अष्टविकल्पः [१।१] उक्तः [१।१] ततः* =आदिका मूलप्रकृतिबन्ध आठ प्रकार कहा गया है, तिस (निरूपण वा वर्णन) से

पारिशेष्यात् [५।१] अयम् [१।१] उत्तर-प्रकृति-विकल्प-विधिः [१।१] =अवशेषमात्र रही हुई यह उत्तर प्रकृति के भेदोंका क्रम अर्थात् आठ भेदोंके प्रभेद

भवति T; भेदशब्दः [१।१] पञ्चादिभिः [३।३] यथाक्रमम्* =है(=भवति)। भेद शब्द पंच आदि (गणना) करि क्रमानुसार (चौथे सूत्रके ज्ञानावरण दर्शनावरण आदिक पर अर्थात् पहिलको पहिला, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा, पांचमेको पांचमा छटवेंको छठवां सातवेंको सातवां आठवेंको आठवां)

अभिसम्बध्यते T पञ्चभेदम् [१।१] =जोड़ाजाता है, सम्बन्ध कियाजाता है अथवा मिलाया जाता है कि पांच प्रकार

ज्ञानावरणीयम् [१।१], नवभेदम् [१।१] दर्शनावरणीयम् [१।१], =ज्ञानावरणीय (कर्म) है। नौ प्रकार दर्शनावरणीय (कर्म) है।

द्विभेदम् [१।१] वेदनीयम् [१।१], अष्टाविंशतिभेदम् [१।१] मोहनीयम् [१।१], =दो प्रकार (साता असाता रूप) वेदनीय (कर्म) है। अट्ठाईस प्रकार मोहनीय (कर्म) है

चतुर्भेदम् [१।१] आयुः [१।१], द्विचत्वारिंशद्भेदम् [१।१] नाम [१।१], =चार प्रकार आयु (कर्म) है। ब्यालीस प्रकार नाम (कर्म) है

द्विभेदम् [१।१] गोत्रम् [१।१] पंचभेदः [१।१] अन्तरायः [१।१] इति* =दो प्रकार गोत्र (कर्म) है। पांच प्रकार अन्तराय (कर्म) है।

(१) आयुस् शब्द नपुंसकलिंगी है। नियम यह है कि शब्दके अन्त में जब एक व्यञ्जनसे अधिक हो तो प्रथम व्यञ्जनको रहने देते हैं और शेष व्यंजनों को गिरादेते है। जैसे मरुत् (पुंलिंग) वाच् (स्त्रीलिंग) आयुस् (नपुंसकलिंग) के प्रथमा विभक्ति बनानेमें स् जोड़ाजाता है इसलिये मरुत् साथ स् के और वाच साथ स् के. आयुस् साथ स् के मरुत्स्-वाच्स्-आयुस्स् होजाते हैं। इन सर्वका स् गिरजाने से मरुत्, वाक् (च पलट जाता है क् में) और आयुस् रहेजाते हैं। इसलिये आयुः शब्द प्रथमा विभक्ति-एक वचन-नपुंसक लिंगी हुआ॥

यदि ज्ञानावरणं पंचभेदं तत्प्रतिपत्तिरुच्यतामित्यत आह

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

यदि*ज्ञानावरणम् $\frac{1}{6}$''' पंचभेदम् $\frac{1}{6}$''' तत्- =जो ज्ञानावरण [कर्म] पांच प्रकार है तो उस [ज्ञानावरण] का

प्रतिपत्तिः $\frac{1}{6}$'' (१) उच्यताम् T इति*अतः*आह T = निरूपण वा कथन किया जाय अथवा परिभाषण किया जाय इसलिये ऐसा कहते हैं कि

(२) मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

(१) यह शब्द वच् कहना-परिभाषण करना अदादि द्वितीयगणका द्विकर्मक परस्मैपदधातुसे इस प्रकार बना है कि व इसका उ में पलट कर उच् हो जाता है पश्चात् य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय लगानेसे उच्य हो गया। पश्चात् अन्य पुरुष एकवचन आत्मनेपदी आज्ञाद्योतक (=लोट्) क्रियाका चिन्ह ताम् लगानेसे उच्य + ताम् हुआ। पुनः, उच्यताम्=कहा जाय ऐसा हुआ।

(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है वरन् इस सूत्रके स्थानमें "मत्यादीनाम्" ऐसासूत्र है और इस सूत्र को उन्होंने अपने यहांका नवमां सूत्र प्रथम अध्यायके (मतिश्रुताधिमनः पर्यायकेवलानि ज्ञानम्) का सम्बन्ध लेकर ऐसे अर्थ किया है कि

"ज्ञानावरणम् पञ्चविधम् भवति। मत्यादीनां ज्ञानानामावरणानि पञ्चविकल्पाश्चैकशः इति" सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७५

ज्ञानावरणम् पञ्चविधम् भवति च* =ज्ञानावरण (जो प्रकृतिबन्धका प्रथम भेद है) पांच प्रकार होताहै और (=च)

एकशः*मत्यादीनाम्ज्ञानानाम्आवरणानि पञ्चविकल्पाः इति* =प्रत्येक वा एक २ (=एकशः) मति आदिक ज्ञानोंके आवरण अथवा ढकने पांचप्रकारहैं

जैसे १. मतिज्ञानावरण २. श्रुतज्ञानावरण ३. अवधिज्ञानावरण ४. मनःपर्ययज्ञानावरण ५. केवलज्ञानावरण अर्थात् उनके यहा 'मत्यादीनाम्' में आदीनाम् शब्दको श्रुत-अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञानोंका द्योतक माना है। हमारे यहाँ भी प्रथम अध्यायका नवमां सूत्र यही है जो उनके यहां है। मनःपर्याय शब्द के स्थानमें हमारे यहां मनःपर्यय ऐसा शब्द है। हमारे यहां भी इस सूत्र का यही अर्थ किया है जो उनके यहा अर्थात् ऐसा अर्थ किया है कि मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण में पांच भेद ज्ञानावरण प्रकृतिबन्ध के हैं परन्तु तत्त्वार्थ राजवार्तिक और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक में इस "मत्यादीनाम्" सूत्रको इस कारण अस्वीकार किया है कि इन पांच ज्ञानोंका मत्यादीनाम् सूत्रके निर्देशमें पांच आवरण नहीं ठहरेंगे। केवल एक आवरण पाचों मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवलज्ञानों का ठहरेगा।

=मति–श्रुत-अवधि-मनःपर्यय–केवलानाम् ज्ञानावरणानि (=ज्ञानानामावरणानि)एतेः ज्ञानावरणप्रकृतिबन्धस्य पंचभेदाः भवन्ति

सूत्रार्थः—मति–श्रुत–अवधि–मनः पर्यय–केवलानाम् ज्ञानानाम् =मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञानोंके आवरणानि एते ज्ञानावरणप्रकृतिबन्धस्य पंचभेदाः भवन्ति T =आवरण अथवा ढंकने ये ज्ञानावरण प्रकृतिबन्धके पांचभेद होते हैं

अर्थात् मतिज्ञानावरण(मतिज्ञानको ढकनेवाला)श्रुतज्ञानावरण(श्रुतज्ञानका आच्छादक है)अवधिज्ञानावरण(अवधिज्ञानका आवरक) मनः पर्ययज्ञानावरण (मनः पर्ययज्ञानका आवरण करने वाला) केवलज्ञानावरण (केवलज्ञानका आवरण करने वाला) ये सब ज्ञानावरण प्रकृतिबन्धके भेद हैं भावार्थ आवरण नाम आड़का अथवा ढकने का है जैसे किसी मूर्तिपर कपड़ेसे आड़करी जाय तो उसका आकार नहीं दीखता है उसी प्रकार आत्मामें केवलज्ञान रूप होने की शक्ति है परन्तु इस

मत्यादीनामिति पाठो लघुत्वादिति चेन्न, प्रत्येकमभिसंबंधार्थत्वात्। तेन पंच ज्ञानावरणानि सिद्धानि भवन्ति ।(तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४७७

मत्यादीनाम् इति पाठः लघुत्वात् इति चेत् न
प्रत्येकम्
अभिसम्बन्ध-अर्थत्वात्। तेन
पंच-ज्ञान-आवरणानि सिद्धानि भवन्ति ।

=मत्यादीनाम् ऐसा पाठ छोटा होना ऐसा प्रश्न वा संदेह (=चेत्)है (उत्तर) नहीं होता
=(क्योंकि) प्रत्येक (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान) के
=सम्बन्धके लिये =अर्थ) ऐसा सूत्र है। तिस मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानां(सूत्र)करि
=पांचों ज्ञानों के ढंकने वा आवरण सिद्ध होते हैं (तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४७७)

तत्त्वार्थराजवार्तिक में इसी "मत्यादीनामिति पाठोलघुत्वादिति चेन्नप्रत्येकमभिसम्बन्धार्थत्वात् वार्तिकको दूसरी वार्तिक नियतकर विशेष वर्णन वा भाष्य इसप्रकार कियाहै

स्यान्मतं मत्यादीनि ज्ञानानि उक्तानि तेषामिहादिशब्दोपलक्षितानां पाठोऽयुक्तो लघुत्वादिति ? तत्र किं कारणं ? प्रत्येकमभिसंबंधार्थं इह प्रतिपदं पाठ क्रियते। मतेरावरणं श्रुतस्यावरण मित्यादि। इतरथा हि मत्यादीनामित्युच्यमाने तेषामेकमावरणमिति संप्रत्ययः स्यात् पृष्ठ ३०१,३०२

स्यात् मतम् मत्यादीनि ज्ञानानि उक्तानि
तेषाम् इह आदिशब्द-उपलक्षितानाम् पाठ अपि
लघुत्वात् इति तत् न किम् कारणम्

=(ऐसा)अभिप्राय वा आशय =मत)हो कि (प्रथमअध्यायके नवमे सूत्रमें)कथित मत्यादिकज्ञान
उक्तः =तिन ज्ञानोंका इसस्थानमें(=इह)आदिशब्दकरि उपलक्षित वा संयुक्त कहा हुआ(=उक्त)पाठभी
=छोटा होगा। सो (आदिशब्दकरि उपलक्षित पाठ ठीक) नहीं है क्या कारण भावार्थ
मत्यादीनाम् ऐसा सूत्र कहकर लघु (पाठ) क्यों न किया सो नहीं क्योंकि (आवरण शब्दको)

प्रत्येकम् अभिसम्बन्ध-अर्थम् इह
प्रतिपदम् पाठ क्रियते T
मतेः आवरणम् श्रुतस्य आवरणम्
इत्यादि इतरथा हि

=प्रत्येक (ज्ञान) को लगानेकेलिये इस स्थान (सूत्र) में
=पदपदप्रति वा (प्रत्येक शब्दश पर अर्थात् प्रत्येक ज्ञानका न्यारा न्यारा पाठ किया है जैसे
=मतिका आवरण, श्रुतका आवरण,
=अवधिका आवरण, मनः पर्ययका आवरण, केवलकाआवरण क्योंकि (=हि) अन्य प्रकार

मत्यादीनां इतिउच्यमाने तेषां एक आवरणं इतिसंप्रत्ययः स्यात् =मत्यादीनाम् ऐसे सूत्रके निर्देश किये जानेमें तिन मत्यादिकका एक आवरण प्रतीत होता
नकि पांच मतिज्ञानका आवरण, श्रुतज्ञानका आवरण, अवधिज्ञानका आवरण, मनःपर्ययज्ञानका आवरण, केवलज्ञानका आवरण प्रतीत होते

मत्यादीनि ज्ञानानि व्याख्यातानि ॥ तेषामावृतेरावरणभेदो भवतीति पञ्चोत्तरप्रकृतयो वेदितव्याः ॥ अत्र चोद्यते—अभव्यस्य मनःपर्ययज्ञानशक्तिः केवलज्ञानशक्तिश्च स्याद्वा न वा ?। यदि स्यात्—तस्याभव्यत्वाभावः । अथ नास्ति-तत्रावरणद्वयकल्पना व्यर्थेति ॥ उच्यते आदेशवचनान्न दोषः—द्रव्यार्थादेशान्मनःपर्ययकेवलज्ञानशक्तिसम्भवः । पर्यायार्थादेशात्तच्छक्त्यभावः ॥ यद्येवं, भव्याव्यविकल्पो नोपपद्यते ।

ज्ञानावरण कर्मने सब ज्ञानोंके ढक रखा है मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणके किंचित् क्षयोपशमसे थोड़ा बहुत ज्ञान सब जीवोंमें है। शेष सब प्रकारका ज्ञान उक्त पांचों प्रकारके ज्ञानावरणकर्मने ढक रखा है ॥

वृत्त्यनुवादः—मति-आदीनि[1] ज्ञानानि[1] व्याख्यातानि[1] = मति आदिक ज्ञान व्याख्यान किये गये (अध्याय १ सूत्र ६)

तेषाम्[6] । आवृत्तेः[4] =तिन(मति,श्रुत,अवधि,मनःपर्यय केवलज्ञान) के आवरणसे वा आच्छादनसे

आवरण-भेदः[1] भवति T इति*पञ्च-उत्तर-प्रकृतयः वेदितव्याः[1] =आवरणका भेद होताहै,ऐसे पांच(ज्ञानावरणकी)उत्तर प्रकृति जानना चाहिये ।

अत्र(१)*चोद्यते T अभव्यस्य[6] मनःपर्ययज्ञान-शक्तिः[1] च* =यहप्रश्न किया जाता है(=चोद्यते) कि अभव्य के मनःपर्यय ज्ञानकी शक्ति और

केवलज्ञान-शक्तिः[1] स्यात्*वा*न*वा*? यदि*स्यात् T तस्य[6] =कवल ज्ञानकी सामर्थ्य है वा नहीं ? जो है तिस (जीव) के

अभव्यस्य-अभावः[1]; अथ*न* अस्ति T तत्र* =अभव्यपनाकी विद्यमानता नहीं है जो (=अथ) नहीं है तो वहां (सूत्रमें)

आवरण-द्वयकल्पना[1] व्यर्थ[1] इति*; =दो[मनःपर्यय केवल] ज्ञानके आवरणका मानना निष्प्रयोजन है [उत्तरमें]

उच्यते T आदेश-वचनात्[5] न* दोषः[1] =कहाजाता है कि[अपेक्षारूप वचनमें] नियमरूप वचनसे दूषण नहीं है

द्रव्यार्थ-आदेशात्[5] मनःपर्यय-केवलज्ञान- =द्रव्यार्थिक नयके नियमसे वा अपेक्षासे मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञानकी(अभव्यके)

शक्ति-सम्भवः[1] पर्यायार्थ-आदेशात्[5] तत्- =सामर्थ्य सम्भव है पर्यायार्थिक नयके आदेशसे उन [मनःपर्यय केवलज्ञान]की

शक्ति-अभावः[1] यदि* एवम* =शक्ति वा सामर्थ्यका अभाव है, जो ऐसे है, अर्थात् द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षास अभव्यमें भी मनःपर्ययज्ञानकी शक्ति और केवलज्ञानकी शक्ति विद्यमान है तो

भव्य-अभव्य-विकल्पः[1] न* उपपद्यते T =भव्य अभव्यका भेद नहीं होता है [=न उपपद्यते]

(१)यह शब्द चुरा दशवांगण के उभय (परस्मैपदका वा आत्मनेपदका)सकर्मक धातु(प्रेरणा करना)को गुण करनेसे और यप्रत्यय कर्मणिप्रयोग का

उभयत्र तच्छक्तिसद्भावात् ॥ न शक्तिभावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते ॥ कुतस्तर्हि ? व्यक्तिसद्भावासद्भावापेक्षया ॥ सम्यग्दर्शनादिभिर्व्यक्तिर्यस्य भविष्यति स भव्यः । यस्य तु न भविष्यति सोऽभव्यः । कनकेतरपाषाणवत् ॥

आह, उक्तो ज्ञानावरणोत्तरप्रकृतिविकल्पः । इदानीं दर्शनावरणस्य वक्तव्य इत्यत आह—

उभयत्र*तत्–शक्ति–सद्भावात्[५]; न*शक्तिभाव-अभाव-अपेक्षया[३] भव्य-अभव्य-विकल्पः[१] इति*उच्यते[T];कुतः*तर्हि*व्यक्ति-सद्भाव-असद्भाव-अपेक्षया[३];

=क्योंकि दोनों(भव्य-अभव्य में उस(मनःपर्ययज्ञान,केवलज्ञान)की शक्तिकी विद्यमानता है
=[उत्तर] शक्तिकी विद्यमानता और अविद्यमानताकी अपेक्षासे भव्य अभव्यका
=भेद नहीं है (पुनः प्रश्न) तो क्योंकर है ? उत्तर प्रगटताके होने और
=नहोनेकी विवक्षासे (भव्य अभव्यमें) भेद है अर्थात् जिन जीवोंके मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रगट होजाय वे भव्य हैं और जिनके प्रगट न होवें प्रगट न हो सके वे अभव्य हैं

सम्यग्दर्शनादिभिः[३] व्यक्तिः[१] यस्य[६] भविष्यति [T] सः[१] भव्यः[१]; यस्य[६] तु*न*भविष्यति[T]सः[१] अभव्यः[१]

=जिस(जीव) के सम्यग्दर्शन आदि सहित प्रगटता होगी
=सो भव्य है और (=तु) जिस (आत्मा) के (व्यक्ति) न होयगी सो अभव्य है ।

कनक–इतर–पाषाणवत्

=जैसे (भव्य) सुवर्ण पाषाण सदृश और (अभव्य) अन्य पाषाणवत् अर्थात् जैसे कनकपाषाण अथवा सुवर्णपाषाणको किसी कालमें अग्नि,यन्त्र लोहार इत्यादि परिपूर्ण सामग्री मिलनेपर उसमें से स्वच्छ सुवर्णन्यारा हो जाता है और किट्टिका तथा मैल पृथक् होजाता है तैसे जिस जीवके गुरु शास्त्र इत्यादिकका संयोग मिलनेपर अथवा और प्रकार से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्रकी प्रगटता होजावैगी सो भव्य है और जैसे अन्य पाषाणमेंसे अग्नि यन्त्र लोहार इत्यादिक सामग्री मिलने पर भी सुवर्ण नहीं निकलता है तैसे ही गुरु आचार्य मुनि शास्त्र इत्यादिकके उपदेश अथवा भिन्न प्रकारसे जिस जीवको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी व्यक्ति प्राप्त न हो सो अभव्य है ।

आह [T] उक्त[१] ज्ञानावरण–उत्तरप्रकृति–विकल्पः[१]; =प्रश्नकरताहै कि ज्ञानावरणकी उत्तरप्रकृतिका भेद कहा गया है
इदानीम्*दर्शनावरणस्य[६] वक्तव्यः[१] इति*अतः*आह =अब दर्शनावरणका (उत्तरप्रकृतिबन्धका भेद)कहे जाने योग्य है इसलिये [सूत्रमें] कहतेहैं कि

जोड़नेसे,पीछे ते प्रथम पुरुष एक वचन आत्मनेपद लट् वर्तमान्कालद्योतक क्रियाका 'क्रिह लगानेसे बनाहै जैसे युद् + य = युद्य + ते = योधते ।
(१) सद्भावका अर्थ पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०३में विद्यमानता का लिखा हुआ है। (२)इतर का अर्थ यहां पर अन्यका इसलिये लिया गयाहै क्योंकि

॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

पाषाण जिससे सुवर्ण निकलताहै कनक,अन्ध दो भेदका होताहै, जब कनक पाषाण कहदिया तब इतर दुसरा पाषाण अन्ध पाषाण शेष रहगया। (१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक पाठ है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका में "स्त्यानगृद्धयश्च" वाक्यके स्थानमें "स्त्यानगृद्धिवेदनीयानि च" ऐसा वाक्य है अर्थात् उनके यहां पांचों निद्राओंमें वेदनीय शब्दको जोड़कर दर्शनावरणके नव भेदों में ही गर्भित ऐसे कर दिया है कि "भाष्यम् —चक्षुर्दर्शनावरणम् अचक्षुर्दर्शनावरणम्, अवधिदर्शनावरणम्, केवलदर्शनावरणम् निद्रावेदनीयम्, निद्रानिद्रावेदनीयम्, प्रचलावेदनीयम्, प्रचलाप्रचलावेदनीयम्, स्त्यानगृद्धिवेदनीयमिति दर्शनावरणं नवभेद भवति"। वेदनीयमिति = वेदनीयम् इति। इस भाष्यका अर्थ स्पष्ट है। पं० जयचन्द्रजी ने सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ६१० में निद्राओंको सातादिका अनुभव कराने वाला इस प्रकार कहा है कि" यहां कोई पूंछै जो निद्रा तो पाप प्रकृति है अरु सोवनेमें प्राणिनि के सुख दुःख है सो कैसे है? ताका समाधान-जो निद्रा आवे है सो तो पाप ही का उदय है। जातैं दर्शन ज्ञान वीर्य आत्मा का स्वभाव है ताका घात होय है। बहुरि सोवनेतैं खेद ग्लानि मिटै भी है सो याके लगता सातावेदनीय का उदय है तथा असाताका उदय भेद पड़े है ताकूं यह निद्रा सहकारी मात्र होय है तातैं यह प्राणी सुख भी मानैं है॥ परमार्थतैं किछु सुख है नाहीं" ॥ (२) केवलानाम्" षष्ठी विभक्ति बहुवचन नपुसकलिंगमें है और "स्त्यानगृद्धयः" प्रथमा विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमें है। इन दोनों विभक्तियोंको मिलाकर नीचे लिखा हुआ लघुसूत्र क्यों नहीं किया ?

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलनिद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयः ॥

(उत्तर) चक्षुरादिकका दर्शनावरणके साथ भेद अपेक्षासे सम्बन्ध है निद्रादिकके साथ अभेद रूपसे। इसलियेषष्ठी प्रथमा दोहरी विभक्तियें है। चक्षुरादीनां दर्शनावरणसम्बन्धात् भेद निर्देश (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३०२ तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक पृष्ठ ४७८ चक्षुरादिकका दर्शनावरणके सम्बन्धसे भेद रूप उपदेश वा कथन है अर्थात् चक्षु, अचक्षु अवधि केवलका भेदकी अपेक्षासे दर्शनावरणके साथ सम्बन्ध किया गया है। (परन्तु) निद्रादीनाम् अभेदेन अभिसम्बन्धः तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ३०३ = निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यान गृद्धयः अनुवर्तमानेन दर्शनावरणेन- अभेदेन अभिसम्बन्धः क्रियते (राजवार्तिक पृष्ठ ३०३) निद्रादिकोंका अभेदकरि सम्बन्ध होता है अर्थात् निद्रा निद्रा निद्रा-प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यान गृद्धिनिका अनुवर्तमान दर्शनावरणकरि अभेद (विवक्षा) से संबन्ध कियाजाता है ॥ स्त्यान गृद्धयश्च स्त्यान गृद्धयः च,यह स्त्यान गृद्धयः रूप स्त्यानगृद्धि शब्दकी प्रथमा विभक्ति बहु वचन स्त्रीलिंग है ॥ (१) चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां ॥ इस वाक्य का विग्रह (= समास के अर्थ को बताने हारा वाक्य, सामासार्थ बोधक वाक्य विग्रहः) तत्त्वार्थ राजवार्तिकके अनुसार निम्न पदच्छेद है चक्षुः च अचक्षुः च अवधि च केवल च चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानि तेषाम् चक्षुरचक्षुरवधि केवलानां दर्शनावरणानि भेद निर्देशः दर्शनावरण संबंधात् वेदितव्यः इति = बहुरि (=च) चक्षुः और अचक्षुः और अवधि और केवल मिलकर चक्षुरचक्षुर वधि केवलानि (ऐसा वाक्य हुआ)

सूत्रार्थः—चक्षुषः $\frac{6}{4}$ दर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=नेत्र के अवलोकनको आच्छादन करे भावार्थ जिसके उदयसे आत्मा चक्षु इन्द्रिय रहित हो

अचक्षुषः $\frac{6}{4}$ दर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=नेत्र [इन्द्रिय] के अतिरिक्त अन्य इन्द्रिय [स्पर्शन—रसन—नासिका—कान के विषयों] के दर्शन [=सामान्यज्ञान—सामान्य ग्रहण] को ढांके वा आवरण करे अर्थात् जो चक्षु विना अन्य इन्द्रिय द्वारें अर्थके सामान्य ग्रहणको नहीं होने दे सो अचक्षुर्दर्शनावरण प्रकृति है

अवधेः $\frac{6}{4}$ दर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=जो अवधि दर्शन वा सामान्यग्रहणको रोके वा आच्छादन करे अर्थात् अवधि दर्शनसे जो वस्तुका सामान्य ग्रहण वा अवलोकन होता है उसका आच्छादन करे सो अवधि दर्शनावरण प्रकृति है

केवलस्य $\frac{6}{4}$ दर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=केवल दर्शनको जो रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावरण प्रकृति है

च=निद्रा-दर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=और (=च) आलस, दुःख, वा शोक, थकावटको दूर करने केलिये सोना अथवा शयनकरना सो निद्रादर्शनावरण प्रकृति है

निद्रा—निद्रा—दर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=जिस निद्राका फिर फिर प्रवृत्ति अथवा स्थिति सो निद्र निद्रा दर्शनावरणप्रकृति है अर्थात् निद्रा-निद्रादर्शनावरण कर्मप्रकृतिके उदयसे जीवनेत्रोंको उघाड़ नहीं सकताहै ऐसी गाढ़ निद्रा होती है

प्रचलादर्शनावरणम् $\frac{1}{4}$=जो क्रिया आत्माको चलाती है अथवा चलायमान करती है सो प्रचला है शोक खेद मद आदि की उपजावने हारी है बैठे हुये के भी नेत्रमें शरीरमें विकार उत्पन्न करने वाली है भावार्थ प्रचला दर्शनावरण कर्म प्रकृति के उदय से जीवनेत्रों को कुछ उघाड़े हुये हों सो जाता है [अर्थात् सोता सोता भी कुछ जानता है] बैठा बैठा भी घूमने लग जाता है नेत्र गात्र चलायमान रहते हैं देखते हुये भी कुछ नहीं देखता है

तिन चक्षुरचक्षुरवधि केवलके दर्शनावरण वा दर्शनके ढकने ऐसे दर्शनावरणके संयोगसे ऐसेरूप कथन जानना चाहिये अर्थात् तेषां चक्षुरचक्षुरवधि केवलानाम् इन दो षष्ठी बहुवचनोंसे और अवधि दर्शनावरणानि से स्पष्ट है कि प्रत्येक शब्द—चक्षुः—अचक्षुः अवधि केवल को षष्ठीमें लेना चाहिये और दर्शनावरण शब्द के साथ संबन्ध करना चाहिये, इसलिये चक्षुषः दर्शनावरणम्, अचक्षुषः दर्शनावरणम् अवधेर्दर्शनावरणम्-केवल दर्शनावरणम् ऐसे पद छेद किया है और संस्कृत सर्वार्थसिद्धि के पृष्ठ ३८५ पंक्ति ६-१० में "चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधि दर्शनावरणं केवलदर्शनावरण मिति" ऐसा वाक्य है उसमें चक्षुष और दर्शनावरणम् के बीचमें विभक्ति षष्ठी (अस्) का लोप करके चक्षु-र्दर्शनावरणम् समास कर दिया है इसी प्रकार अचक्षु में भी जानो और अवधि और दर्शनावरणके मध्यमें भी षष्ठी विभक्ति का लोप करके अवधिदर्शनावरणम् ऐसा समास किया है इसी प्रकार केवल और दर्शनावरणम् शब्दों के बीच में स्य षष्ठीके चिह्नका लोप करके केवल-दर्शनावरणम् समास किया है मैंने षष्ठियों को लोप न करके पृथक् पृथक् पदच्छेद कर दिया है।

चक्षुश्चक्षुरवधिकेवलानामिति दर्शनावरणापेक्षया भेदनिर्देशः-चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति ॥ मदखेदक्लमविनोदनार्थः स्वापो निद्रा । तस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा । या क्रियाऽऽत्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका ।

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणम् ९।।। =सो प्रचलाही फिर फिर प्रवर्ते सो प्रचला प्रचला है भावार्थ प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म प्रकृतिके उदयसे अत्यन्त घूमताहै अत्यन्त ऊंघता है मुंहसे लार बहने लगती है अङ्ग उपांग चलायमान होतेहैं कोई शरीरमें शलाका आदि चुभावे तो भी चेतना नहीं होती है

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणम् ९।।। जिसकरि सोवनेमें विशेष बल वा सामर्थ्यका प्रकटपना सो स्त्यानगृद्धि है भावार्थ जिस निद्राके आने पर चेतन्यसा होकर अनेक रौद्रकर्म करने लगता है बहुत पराक्रमकर लेता है और फिर अचेत हो जाता है फिर निद्रा छूटने पर वह नहीं जानताहै कि मैंने क्या क्या काम कर डाले उस निद्राको स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण कर्मप्रकृति कहते हैं

एते दर्शनावरणप्रकृतिबन्धस्य नवभेदाः भवन्ति =ये दर्शनावरण प्रकृतिके नवभेद होते हैं

पदार्थ :- चक्षुर्-अचक्षुर्-अवधि-केवलानाम्=चक्षुका, अचक्षुका-अवधिका, केवलका

दर्शन-आवरण-अपेक्षया ३।।। भेदनिर्देशः १। =दर्शनावरणकी अपेक्षासे भेद निर्देश है ।

चक्षुर्दर्शनावरणम् १।।। अचक्षुर्दर्शनावरणं १।।। अवधि=चक्षुर्दर्शनावरणम् अचक्षुर्दर्शनावरणम्-अवधि

दर्शनावरणम् १।।। केवलदर्शनावरणम् १।।। इति*मद-=दर्शनावरण और केवलदर्शनावरण ऐसे हुये । मत्तता (=मद) चित्तकी उद्रेकता (=मद)

खेद-क्लम-विनोदन-अर्थः १। स्वापः १। निद्रा १।=दुःख वा शोक (=खेद) थकावट (=क्लम) खंडन (=विनोदन) केलिये शयन वा सोवना सोनिद्रा है

तस्याः ६।। उपर्युपरि*वृत्तिः १।। निद्रानिद्रा १।। =तिस निद्राकी पुनि पुनि (=उपर्युपरि) प्रवृत्ति सो निद्रानिद्रा है (=नींदपैनींद है)

या १।। क्रिया १।। आत्मनं २। प्रचलयति(१) सा १। प्रचला १।।=जो क्रिया चैतनको चलाती है वा चलायमान करतीहै सो प्रचला है

शोक-श्रम-मदादि-प्रभवा १।। =शोक-खेद-मद-आदिकको उत्पादक अथवा उपजाने वाली है (=प्रभवः १।।)

आसीनस्य ६। अपि*नेत्र-गात्र-विक्रिया-सूचिका १।। =बैठे हुये के भी नेत्रमें शरीरमें विकार (=विक्रिया) की बतानेवाली है

(१) प्रचलयति-यह वाक्य 'चल्' भ्वादि प्रथम गण परस्मैपदी अकर्मक धातुसे सहेतुक सकर्मक धातु ऐसे बनाया गया है कि 'चल्' (=चलना मेंअर्थ

सैव पुनःपुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला। स्वप्नेऽपि यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकार्थत्वात्स्वप्नार्थं इह गृह्यते। गृद्धिरभिदीप्तिः। स्त्याने स्वप्ने गृद्धयति दीप्यते यदुदयादात्मा रौद्रं बहुकर्म करोति सा स्त्यानगृद्धिः॥ इह निद्रादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसम्बध्यते–निद्रादर्शनावरणं निद्रानिद्रादर्शनावरणमित्यादि॥

तृतीयस्याः प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिप्रतिपादनार्थमाह—

सदसद्वेद्ये॥८॥

सा[१।१] एव*पुनः*पुनः* आवर्तमाना[१।१] प्रचलाप्रचला[१।१]; स्वप्ने[७।१] अपि*यया[३।१] वीर्य-विशेष-आविर्भावः[१।१] सा[१।१] (१)स्त्यानगृद्धिः[१।१]; स्त्यायतेः[६।१] अनेक-अर्थत्वात्[५।१] स्वप्न-अर्थः[१।१] इह*गृह्यते[८; गृद्धिः[१।१] अभिदीप्तिः[१।१]; स्त्याने[७।१] स्वप्ने[७।१] गृद्धयति-दीप्यते[८]। यद्-उदयात्[५।१] आत्मा[१।१] रौद्र*म्[२।१] बहुकर्म[२।१] करोति[८] सा[१।१] स्त्यानगृद्धिः[१।१]; इह* दर्शनावरणम्[१।१] निद्रा-आदिभिः[३।३] समानअधिकरण्येन[३।१] अभिसम्बध्यते[८]–निद्रादर्शनावरणं[१।१] निद्रानिद्रादर्शनावरणं[१।१] इति*आदि[१।१]

=सो ही फिर फिर आवते वा लौट लौटकर आवे सा प्रचला प्रचला है।
=सोवनेमें भी जिसकरि बल वा सामर्थ्यकी अधिक प्रगटता हो सो
=स्त्यानगृद्धि है,। स्त्यायति (धातु) के विविध अर्थ होनेसे
=इस स्थान (अर्थात् इस सूत्र) में स्वप्न अर्थ लियागया है। गृद्धि है सो
=अभिदीप्ति है अर्थात् प्रशस्त वा विशेष (=अभि) कान्ति (=दीप्ति) को कहते हैं।
=सोवनेमें(=स्त्याने)स्वप्नमें जो प्रकाश होता है, दिपता है (सो स्त्याने गृद्धयति है)
=जिसके उदयसे जीव डरावने (=रौद्र) अनेक कार्य करता है सो
=स्त्यानगृद्धि है। यहांपर (=इह) दर्शनावरण निद्रा-
=निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धिसे समानअधिकरणरूपमेंजोड़ाजाता है।
=तब निद्रा दर्शनावरण–निद्रानिद्रादर्शनवरण–प्रचलादर्शनावरण प्रचलाप्रचला दर्शनावरण–स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण ऐसे होते हैं

तृतीयस्याः[६।१] प्रकतेः[६।१] उत्तर-प्रकृति-प्रतिपादन-अर्थम्[२।१] आह=तीसरी (वेदनीय) प्रकृतिके उत्तर प्रकृति (के भेद) कहनेकेलिये कहते हैं कि

सदसद्वेद्ये = सद्वेद्यम् असद्वेद्यम् च वेदनीयम् द्विभेदः भवति। दोनों समाजमें सूत्रका एकपाठ है

हेतुक प्रत्यय लगाकर फिर प्र उपसर्ग जोड़ने से प्र + चल् + अय रूप हुआ पश्चात् प्रथम पुरुष एक वचन कर्तरि प्रयोग लट् वर्तमान काल द्योतक क्रियाका 'ति' चिन्ह लगाने से प्रचलयति बनाया। चल धातुके अकारका वृद्धिकरनेसे चाल् होजाता है, प्र + चाल् + अय + ति = प्रचालयति बना, धातु जो स्वतः सकर्मक नहीं है, अक्षरों, मात्राओंके घटाने,बढ़ाने वा पलटनेके कारण अकर्मकसे सकर्मक बनजाता है वह सहेतुक सकर्मक कहलाता है॥ (१) स्त्यानगृद्धि = स्त्याने गृद्धि, स्त्याने = सोनेमें, गृद्धि = (पराक्रमरूप) दिपना, सोनेमें पराक्रम रूप दिपना ऐसा स्त्यान गृद्धि वाक्यका शब्दहै।

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद्वेद्यं प्रशस्तं वेद्यं सद्वेद्यमिति ॥ यत्फलं दुःखमनेकविधं तदसद्वेद्यमप्रशस्तं वेद्यमसद्वेद्यमिति॥चतुर्थ्याः प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिविकल्पनिर्दर्शनार्थमाह

॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश-भेदाःसम्यक्त्वामिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—सद्वेद्यम्[1]॥असद्वेद्यम्[1]॥च*वेदनीयम्[1]॥द्विभेदम्[1]॥ =प्रशस्तवेदने योग्य और(=च)अप्रशस्त वेदनेयोग्य दो भेद वेदनीय (कर्म)के भवति T =होतेहैं अर्थात् सातावेदनीय और असातावेदनीय ऐसे दो प्रकारका वेदनीयहै

वृत्त्यनुवादः—यद्—उदयात्[5]॥देवादिगतिषु[7]॥ शारीर—मानस—सुखप्राप्तिः[1]॥ तत्[1]॥सद्वेद्यम्[1]॥प्रशस्तम्[1]॥ =जिसके उदयसे देवादि गतियों में शारीरिक और मन सम्बन्धी वा मानसिक =सुखकी प्राप्ति वा लब्धि होताहै वह सातावेदनीयहै,सराहनेयोग्य (=प्रशस्त) वेद्यम्[1]॥सद्वेद्यम्[1]॥इति* ;यत्फलम्[1]॥दुःखम्[1]॥अनेकविधम्[1]॥=वेदनीय है सो सद्वेद्य है। जिसका फल नाना प्रकार कलेश हो तत्—असद्वेद्यम्[1]॥अप्रशस्तम्[1]॥वेद्यम्[1]॥असत्-वेद्यम्[1]॥इति*;।=वह असाता वेदनीय है, असराहने योग्य वेदनीय है, ऐसा असद्वेद्य है ॥ चतुर्थ्याः[6]॥प्रकृतेः[6]॥उत्तर-प्रकृति-विकल्प-निर्दर्शन-अर्थम्[1]॥आह T=चौथा (मोहनीय) प्रकृतिके उत्तर प्रकृतिकेभेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसक वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

सूत्रका पदच्छेद-दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषायवेदनीय-कषायवेदनीय- आख्याः त्रि-द्वि-नव-षोडश भेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयानि-अकषाय-कषायौ-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्-नपुंसक-वेदा-अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाः च एकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः (एते मोहनीयस्याष्टाविंशतिभेदाः भवन्ति) ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषाय=दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषाय

वेदनीय-कषायवेदनीय-आख्याः=वेदनीय-कषाय वेदनीय नामवाले (मोहनीय कर्म) के (क्रमसे) तीन-दो-नौ-सोलह-भेद हैं अर्थात् दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं-चारित्रमोहनीयके दो भेदहैं-अकषायवेदनीयके नौभेद हैं और कषाय वेदनीयके सोलह भेद हैं

सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयानि =सम्यक्त्व, मिथ्यात्व-सम्यक् मिथ्यात्व-(तद्-उभय-वेदोंनों) (दर्शनमोहनीयके) हैं

अकषाय-कषायौ हास्य-रति-अरति- =नोकषाय(=अकषाय=ईषत् कषाय) कषाय(चारित्र मोहनीयके) हैं- हास्य-रति-अरति-

शोक-भय-जुगुप्साः स्त्री-पुन्-नपुंसक वेदाः =शोक, भय, जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद- (नोकषाय) हैं

षडनन्तानुबन्धी—अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान- =(और)=ष अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-

संज्वलन—विकल्पाः एकशः क्रोध-मान-मायलोभाः =संज्वलन (तिन) एक एक के क्रोध, मान, माया, लोभ [१६ कषाय के] भेद हैं

एते मोहनीयस्य अष्टाविंशतिभेदाः भवन्ति T =इतने मोहनीय [कर्म]के अट्ठाईस भेद होते हैं अर्थात् (१) अनन्तानुबन्धी क्रोधकषाय (२) अनन्तानुबन्धीमानकषाय (३) अनन्तानुबन्धीमायाकषाय (४) अनन्तानुबन्धीलोभ कषाय (५) अप्रत्याख्यान क्रोधकषाय (६) अप्रत्याख्यान मानकषाय (७) अप्रत्याख्यानमाया कषाय (८)अप्रत्याख्यान लोभ कषाय (९) प्रत्याख्यान क्रोध कषाय(१०)प्रत्याख्यानमान कषाय(११) प्रत्याख्यानमाया कषाय १२—प्रत्याख्यान लोभ कषाय (१३) संज्वलन क्रोध कषाय (१४) संज्वलनमानकषाय (१५) संज्वलन माया कषाय—(१६) संज्वलन लोभ कषाय भावार्थ मोहनीय कर्मके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय-ये दो तो मूल भेद हैं और दर्शन मोहनीय-, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, और सम्यग् मिथ्यात्व अर्थात् मिश्रमोहनीय ऐसे तीन प्रकार का है और चारित्र मोहनीयके अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय दो भेद है।

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अकषाय कषायके स्थानमें कषायनोकषाय है अकषायका वोही अर्थ है जो नो कषाय का है, क्योंकि समाप्य०में कषायको प्रथम कहकर पश्चात् नो कषाय शब्द है इसी हेतु से क्रमानुसार अथवा यथासंख्यके नियमानुसार षोड़श नव भेदाः वाक्य नव षोड़श भेदाः वाक्यके स्थानमें लाये हैं आगे चल कर अर्थात् तदुभयानि के पीछे अकषाय कषायौ वाक्यके स्थानमें कषाय

दर्शनादयश्चत्वारः। त्र्यादयोऽपि चत्वारः। तत्र यथासंख्येन सम्बन्धो भवति–दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं, चारित्रमोहनीयं द्विभेदं,

जिनमें से अकषायवेदनीय, हास्य, रति–अरति–शोक–भय–जुगुप्सा–स्त्रीवेद–पुरुषवेद–और नपुंसकवेद–ऐसे नव प्रकार का है और (१) अनन्तानुबन्धी क्रोधकषाय (२) अनन्तानुबन्धी मानकषाय (३) अनन्तानुबन्धी मायाकषाय (४) अनन्तानुबन्धी लोभकषाय (५) अप्रत्याख्यान क्रोधकषाय (६) अप्रत्याख्यान मानकषाय (७) अप्रत्याख्यान मायाकषाय (८) अप्रत्याख्यान लोभकषाय (९) प्रत्याख्यान क्रोधकषाय– (१०) प्रत्याख्यान मानकषाय (११) प्रत्याख्यान मायाकषाय (१२) प्रत्याख्यान लोभकषाय (१३) संज्वलन क्रोधकषाय (१४) संज्वलन मानकषाय (१५ संज्वलन मायाकषाय (१६) संज्वलन लोभकषाय–ऐसे सोलह प्रकार का कषायवेदनीय है ऐसे ३ दर्शनमोहनीयकी, ९ अकषायवेदनीयकी, १६ कषायवेदनीयकी सर्व मिलकर २८ मोहनीय कर्म की प्रकृतियें हुईं

वृत्त्यनुवादः–दर्शन–आदयः[१/३] चत्वारः [१/३];=दर्शनादिक चारहैं अर्थात् दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषाय वेदनीय-औरकषायवेदनीय,

त्रि–आदयः[१/३] अपि* चत्वारः[१/३];तत्र* =तीन आदिक (गणनामें) भी चारहैं अर्थात् (सूत्रमें) तीन-दो-नो-सोलह हैं तहां (इससूत्रमें)

यथासंख्येन[३/१] सम्बधः[१/१] भवति T =अनुक्रमसे अभिसम्बन्ध होताहै अर्थात् दर्शनमोहनीयको तीनके साथ चारित्र मोहनीयको दोके साथ,अकषाय वेदनीको नोकेसाथ,और कषाय वेदनीयको सोलहके साथ साथ जोड़ना चाहिये

दर्शनमोहनीयं[१/१] त्रिभेदं[१/१];चारित्रमोहनीयं[१/१] द्विभेदं[१/१]=(तब) दर्शनमोहनीय तीन प्रकार चारित्रमोहनीय दो प्रकार

पुनिहमारे यहां अकषाय के नव भेद हास्य रत्यरति इत्यादि कहके अनन्तानुबन्ध्य इत्यादि सोलह भेद कहकर सूत्र पूर्ण किया है. सभाष्य० में (चूंकि प्रथम कषाय लाये हैं उसी के अनुसार) प्रथम अनन्तानुबन्ध्य सोलह भेद कहे फिर हास्यरत्यरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुं-नपुंसक वेदाःवाक्य कहा क्योंकि वेदाःशब्द अन्तमेंहै इसलिये विसर्गका लाना सभाष्य०में आवश्यकहुआ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें प्रत्याख्यान प्रत्याख्यानावरण है हमारे यहां केवल प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान है अर्थात् सभाष्य० में आवरण शब्द अधिक है वह हमारे यहां नहीं है हमारे यहां सूत्रमें केवल १०० सौ अक्षर हैं सभाष्य०में १०६ अक्षर हैं अर्थमें भेद दोनों सम्प्रदायोंमें से किसीमें नहीं है जब अर्थ भेद नहीं है और छह अक्षर भी न्यून होतेहैं तो सूत्रका पाठ लघु होना चाहिये, सभाष्य० का पाठ हम नीचे लिखते है जिसको हमारे यहां के पाठ से अवश्य मिलाना चाहिये ॥ दर्शनचारित्रमोहनीयकषायनोकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विषोडशनवभेदाःसम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयानि कषाय नोकषायानन्तानुबन्ध्य प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाःहास्यरत्यरतिशोक,भय,जुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदाः ॥ १० ॥ सभाष्य०में यह दशवां सूत्र है क्योंकि प्रथम सूत्र मिथ्या दर्शनादिक जो हमारे यहां एक सूत्र है सभा य० में दो हैं इसलिये हमने भी इसे १० वाहीं लिखा है यहां पर किंचित् कषायको ईषत्कषाय नोकषाय तथा अकषाय वेदनीय कहते हैं आत्माको कषैवलेशितरूप करे उसको कषाय कहते हैं यहां अकषाय शब्द का अर्थ कषाय रहित नहीं है किन्तु ईषत्कषाय है ॥

अकषायवेदनीयं नवविधं, कषायवेदनीयं षोडशविधमिति ॥ तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, तदुभयमिति । तद्बन्धंप्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मापेक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते। तत्र यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम् । तदेव सम्यक्त्वम्

अकषायवेदनीयम् $\frac{1}{6}$॥ नवविधम् $\frac{1}{6}$॥ कषायवेदनीयम् $\frac{1}{6}$॥ =अकषाय वेदनीय नौ प्रकार,कषाय वेदनीय
षोडशविधम् $\frac{1}{6}$॥ इति*; तत्रदर्शनमोहनीयम् $\frac{1}{6}$॥त्रिभेदम् $\frac{1}{6}$॥=सोलह प्रकार ऐसे हैं तहां दर्शनमोहनीय तीन प्रकार है,
सम्यक्त्वम् $\frac{1}{6}$॥, मिथ्यात्वम् $\frac{1}{6}$॥, तद्-उभयम् $\frac{1}{6}$॥इति* । =सम्यक्त्व,मिथ्यात्व, दोनों(सम्यक्त्व मिथ्यात्व अर्थात् मिश्रमोहनीयऐसे (तीन)है
तद्-बन्धम् $\frac{2}{6}$। प्रति* एकम् $\frac{1}{6}$॥ भूत्वा * सत्कर्म- =वो (दर्शनमोहनीय)बन्ध अपेक्षासे एक(मिथ्यात्वरूप)होते हुये(उदय)सत्ताकर्मकी
अपेक्षया $\frac{2}{6}$॥ त्रिधा* (१) व्यवतिष्ठते T ॥ =विवक्षासे तीन प्रकार विशेष रूपसे तिष्टता है वा रहता है (=व्यवतिष्ठते)
तत्र*यस्य $\frac{5}{6}$। उदयात् $\frac{3}{6}$। सर्वज्ञ-प्रणीत-मार्ग-पराङ्मुखः$\frac{1}{6}$। =तहां जिसके उदयसे (=उदयात्) सर्वज्ञकृत वा सर्वज्ञभाषित (मोक्ष) पथसे विमुख
तत्त्वार्थ-श्रद्धान-निरुत्सुकः$\frac{1}{6}$।हित-अहित-विचार-असमर्थः$\frac{1}{6}$।=तत्त्वार्थकेविश्वासमेंउत्साह रहित हित-अहितके निर्णयमें(=विचार)असमर्थहो
मिथ्यादृष्टिः$\frac{1}{6}$ भवति T तद्-मिथ्यात्वम्$\frac{1}{6}$॥; =सो मिथ्यादृष्टि होता है, उस (उपर्युक्त) मिथ्यादृष्टीका भाव
सो मिथ्यात्व प्रकृति है अर्थात् जिसके उदयकरि सर्वज्ञके कहेहुए मोक्षमार्गसे विमुखपना तत्त्वार्थके
विश्वासमें निरुत्सुकपना वा उद्यमरहितपना और हित अहित की परीक्षासेरहितपना सो मिथ्यात्व है।
तद्$\frac{1}{6}$॥ एव * =(दर्शनमोहनीय कर्मकी मिथ्यात्व प्रकृति है) वह (=तद्=मिथ्यात्व) ही (=एव)
(२) सम्यक्त्वम् $\frac{1}{6}$॥ =सम्यक्त्व है अर्थात् तिसही मिथ्यात्वके भेदको सम्यक्त्व मिथ्यात्व संज्ञा है ॥

(१)यह शब्दवि(=विशेषतासे,) + अव + स्था + तेकरि बनाहै स्था का तिष्ठ विनाकिसी नियमके होजाता है। वि + अव + तिष्ठ + अ + ते = व्यवतिष्ठते

(२)जंतेण कोद्दव वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण } (मिथ्यात्व के ये तीन भेद गोम्मटसारके कर्मकाण्डकी इस २६वीं गाथा में कहे गये हैं)
यंत्रेण कोद्रवं वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयन्त्रेण } =कलकरि (=घरटीकरि) कोदों सदृश प्रथमोपशमसम्यक्त्वभाव वा परिणामरूप कलसे
मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा } =मिथ्यात्व (रूपी) कर्मद्रव्य-क्रमसेअसंख्यातगुणा हीन होताहुआ तीनप्रकार होजाताहै
मिथ्यात्वम् द्रव्यम् तु त्रिधा असंख्यगुणहीनद्रव्यकमात् } भावार्थ जैसे कोदों-धान्य विशेष दलने पर, भुसी तन्दुल और कण ऐसे तीन रूप हो
जाताहै उसी प्रकार मिथ्यात्वरूप कर्मद्रव्य भीउपशम-सम्यक्त्वरूपी यंत्रकेद्वारा मिथ्यात्व

शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मनःश्रद्धानं न निरुणद्धि । तद्वेदयमानःपुरुषः

शुभ–परिणाम–निरुद्ध–स्वरसम् $^{1}_{1}$''' (१) यद्*औदासीन्येन $^{3}_{1}$'''अवस्थितम् $^{1}_{1}$'''(२) आत्मनः $^{6}_{1}$' श्रद्धानम् $^{2}_{1}$'''न* (३) निरुणद्धि T	=शुभ परिणाम वा विशुद्धता (के बल) से मिथ्यात्वकाविपाकरस रुक जाय =जिससे उदासीनता सहित ठहरे हुये वा स्थितशीलआत्माके =विश्वास को (यह सम्यक् प्रकृतिरूप मिथ्यात्व) रोक नहीं सक्ता है अर्थात् उदासीनरूपसे स्थित आत्माके श्रद्धानको यह (सम्यक् प्रकृतिरूप मिथ्यात्व) बिगाड़ नहीं सकता है वरन् मल सहित करदेता है ।
तद् $^{1}_{1}$'''वेदयमानः $^{1}_{1}$पुरुषः $^{1}_{1}$'	=तिस (दर्शनमोहनीयकर्मकी मिथ्यात्व प्रकृतिके उदय)को वेदताहुआ पुरुष

(ख) ,सम्यक्त्व (=सम्यग्मिथ्यात्व)और(ग)सम्यक्त्वप्रकृति अथवा सम्यक्त्वप्रकृति मिथ्यात्व=तदुभयानि) तीनरूप परिणमन करता है। अतः एक मिथ्यात्वरूप दर्शनमोहनीयकर्मके तीनभेद कहेहैं । सम्यक्त्वके भेदोंमेंसे उपशमसम्यक्त्व दोप्रकार हैं प्रथमोपशमसम्यक्त्व और द्वितीयोपशमसम्यक्त्व

(१) यद्–यहां अव्यय है (पद्मचन्द्र कोश पृष्ट ३०७) जिससे (नकि 'जो' के) अर्थमें आया है , जिससे अर्थात् जिस शुभ परिणामके कारणसे ।

(२) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी प्रथमा तथा द्वितीयावृत्तिमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें भी "अवस्थितमात्मानः श्रद्धानं" पाठ है परन्तु तत्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३०४ में "अवस्थितमात्मानं श्रद्धानं" ऐसा पाठ है अर्थात् आत्मानः एक वचन षष्ठी विभक्ति के स्थानमें द्वितीया विभक्ति एक वचन 'आत्मनम्' राजवार्तिकमें है । दोनों पाठ ठीक हैं और दोनोंका एकसा तात्पर्य भी है॥

(३) निरुणद्धियह शब्द रुधादि सातवां गणके परस्मैपदी सकर्मकधातु रुध् (=रोकना,बन्दकरना, आच्छादन करना, दबाना) धातुमें न (=ण) जो सातवां गणका विकरणहै,उसको रु,और ध् के मध्यमें लाने से और ति प्रथम पुरुष एकवचन कर्तरिप्रधान परस्मैपदी लट् वर्तमानकाल यौगिक क्रिया का चिन्ह लगाने से पश्चात् निअव्यय आदिमें लगानेसे इस प्रकार बनता है कि:–

रुध् , विकरण ण जोड़नेसे रुणध् हुआ पूर्वोक्त ति क्रिया का चिन्ह लगानेसे"रुणध् + ति"ऐसा हुआ इस"ति"का धि नीचे लिखे हुये नियमसे हुआ झषस्तथोर्धोऽधः । अष्टाध्यायी ८-२-४०, पदच्छेद करनेसे झषः त-थोः धः अधः ॥ झष् पाणिनि मुनिके चौदह प्रसिद्ध सूत्रोंमें से एक है इसमें झ, भ, घ, ढ, ध गर्भित हैं त, थका, , ध हो जाता है यदि इस त-थ के पहिले झ, भ, घ, ढ, ध आवे परन्तु धा धातुके पश्चात् नहीं । इसलिये रुणध् + धिरूप हो गया इस रुणध् का ध् नीचे लिखित नियमसे दु में पलट जाता है ङ्, ञ्, ण्, न् म्, और य्, र्, ल्, व्, को छोड़कर कोई व्यञ्जन जिसके पीछे किसी वर्गका तीसरा वा चौथा अक्षर आवे तो यह व्यञ्जन अपने वर्गके तीसरे अक्षरमें पलट जाता है इसलिये रुणध् + धि, इस ध् के पीछे चौथा अक्षर धि है ध् पलट गया दु में रुणद्धि हुआ इस रुणद्धि के आदिमें नि अव्यय लानेसे निरुणद्धि सिद्ध हुआ झरीझरि सवर्णे सूत्रसे (८-४-६५) ध् गिरजाता है "निरुन्धि" भी ठीक है ।

वेदयमानः–विद्–यहां पर दशवां चुरादि गणका धातु वेदना अर्थमें है, दशवां गणका विकरण 'अय' लगानेसे और विदुको गुण करनेसे वेद + अय = वेदय बना 'मान्' आत्मने पदके वर्तमान कृदन्तके प्रत्ययके लगानेसे, वेदयमान् हुआ इसका प्रथमाविभक्ति एक वचन पुल्लिंग वेदयमान् + अस् = वेदयमानः हुआ । विद् धातुकी पूर्ण टिप्पणी पृष्ट ३०,३१ में दीगई है वहां देखलीजिये ॥

सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते। तदेव विध्यात्वं प्रक्षालनविशेषात्क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्सामिशुद्धस्वरसं तदुभयमित्याख्यायते सम्यङ्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयादात्मनोऽर्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयात्मको भवति परिणामः

सम्यग्दृष्टिः[१] इति* =सम्यग्दृष्टि अर्थात् वेदकसम्यग्दृष्टि है ऐसी (दर्शनमोहनीयकर्मकी) सम्यक्त्व प्रकृति
अभिधीयते[१] प्रक्षालन-विशेषात्[५] =कही जाती है, विशेषरूपसे जलकरिधोनेसे (=प्रक्षालन)
क्षीण-अक्षीण-मदशक्ति-कोद्रव-वत्* =कोदोंको मादकताकी सामर्थ्य कुछ हीन होनेके, कुछ विद्यमान रहनेके सदृश
तद्[१] एव* मिथ्यात्वम्[१] सम्यि-शुद्ध-स्वरसम्[१] =सोही मिथ्यात्व अपना रस आधा शुद्ध भया आधा मिथ्यात्व रहा
तद्-उभय[१] इति आख्यायते। सम्यङ्मिथ्यात्वं[१] इतियावत् =एतद्-उभय अथवा मिश्र कहलाता है, ऐसा ही (=यावत्) सम्यङ्मिथ्यात्व है अर्थात् जैसे कोदों नामा मादक वस्तु को धोते २ उसका मद हीन करदेते हैं तैसे पूर्वोक्त मिथ्यात्वका रस आत्माके श्रद्धानरूपी बरसे आधाक्षीण होजाय और आधा बना रहे सो तदुभय मिश्र है अथवा सम्यग् मिथ्यात्वरूप है।

तस्य[६] उदयात्[५] आत्मनः[६] उभय-आत्मकः[१] =जिसके उदयसे आत्माका दोनों (सम्यक्त्व और मिथ्यात्व) रूप (=आत्मकः)
भवति T परिणामः[१] अर्ध-शुद्ध-मद-कोद्रव- =परिणाम वा भाव होताहै जैसे आधे शुद्ध वा स्वच्छ किये हुए मदकेकोदोंके
(ओदन) उपयोग-आपादित-मिश्र-परिणामवत् * =भातका=(ओदन) भोजन (=उपयोग) प्राप्त करि (=आपादित) मिश्र (कुछ उन्मत्त कुछ चेतसा) परिणाम (होजाता है)

दूसरे प्रकारसे इसी वाक्यका अनुवाद

यस्य[६] उदयात्[५] आत्मनः[६] अर्ध-शुद्ध-मद-कोद्रव— =जिसके उदय से जीवका आधे शुद्ध किये हुये मदके कोदोंके
ओदन-उपयोग-आपादित- =भातका(=ओदन) भोजन (=उपयोग) प्राप्तकरि (=आपादित)
मिश्र-परिणामवत्*उभय- =मिश्र(कुछ उन्मत्त सा कुछ चेतसा)भाव होने के सदृश दोनों(सम्यक्त्व-मिथ्यात्व)
आत्मकः[१] भवति T परिणामः[१]; =रूप (=आत्मकः) भाव होता है भावार्थ यह है कि जैसेबार बार धोने से

(१) अभिधीयते रूप 'धा' धातु जिसको बिना किसी नियमके कर्मणि प्रयोगमें (=कर्मप्रधान क्रियामें) 'धी में पलट देते हैं', य कर्मणि प्रधान का चिन्ह और अभि उपसर्गके लगानेसे 'अभिधीय' बना, अभिधाका अर्थ कहना पुकारना है, पर 'धा' का अर्थ धारण करना, रखना है. ते प्रथम पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालकी क्रियाका द्योतक प्रत्यय जोड़नेसे अभि + धी + य + ते = अभिधीयते = कहा जाता है, बना।

चारित्रमोहनीयं द्विधाअकषायकषायभेदात्। ईषदर्थेनञःप्रयोगादीषत्कषायोऽकषायइति। अकषाय वेदनीयं नवविधम्। कुत? हास्यादिभेदात्॥ यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम्। यदुदयाद्विषयादिष्वौत्सुक्यं सा रतिः। अरतिस्तद्विपरीता। यद्विपाकाच्छोचनं स शोकः। यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम्(१)

चारित्रमोहनीयम् १।१।१ द्विधा * अकषाय-कषाय-भेदात् ५।१;
ईषत् * अर्थे ७।१ (२) नञः ६।१ प्रयोगात् ५।१
ईषत् * कषायः १।१ अकषायः १।१ इति *; अकषायवेदनीयम् १।१।१
नवविधम् १।१।१ कुतः*? हास्य-आदि-भेदात् ५।१; यस्य ६।१।१
उदयात् ५।१ हास्यम् ६।१।१ आविर्भावः १।१।१ तद् १।१।१ हास्यम् १।१।१ यद्-उदयात् ५।१
विषयादिषु ७।३ औत्सुक्यम् १।१।१ सा १।१ रतिः १।१; तद्-विपरीता १।१
अरतिः १।१;
यद्-विपाकात् ५।१ शोचनम् १।१।१ सः १।१ शोकः १।१;
यद्-उदयात् ५।१ उद्वेगः १।१ तद् १।१।१ भयम् १।१।१ ॥

कोदोंका मद क्षीण होने पर उसका भात पकाकर खाया जाता है तब खाने वालेको कुछ उन्मत्तता कुछ चेतना होजाती है तैसे ही जिसके उदयसे आत्मा का मिश्ररूप परिणाम कुछ सम्यक्त्वरूप कुछ मिथ्यात्व रूप होजाता है।
=चारित्र मोहनीय दो प्रकार नोकषाय (वेदनीय) वा ईषत्कषाय (वेदनीय)
=और कषाय (वेदनीय) भेदसे है। कषाय=कषति कण्ठम्=जो कंठ कोकसै, पीड़ै।
=(इस सूत्रमें) किंचित् (=ईषत्) अभिप्रायमें नञः (अव्यय) का प्रयोग करनेसे
=किंचित् कषाय है, सो अकषाय है। नोकषाय वेदनीय
=नौ प्रकार है। क्योंकर? (उत्तर) हंसी आदिक भेदसे। जिसके
=उद्रेकसे हंसी प्रकट हो वह हास्य है। जिसके उद्रेकसे
=विषयादिकोंमें उत्सुकता वा आसक्तता सो रति है। उस (रति) कीउलटी
=अरति है अर्थात् जिसके उदयसे विषयादिकोंमें लगन न हो सो अरति है
=जिसके उदयसे (=विपाकात्) शोच वा चिंता हो सो शोक है।
=जिसके उद्योतसे(चित्त की)व्याकुलता हो सो डर है। (भय सातप्रकार)है।

(१) यद्-उदयात् त्रासलक्षणम् उपपद्यते तद् भयम् इति अन्यःपाठः=जिसके उदय से शंकारूप चिन्ह उपजता है सो भयहै ऐसा भिन्न पाठ है
(२) नञ्- (अव्यय)-व्याकरणमें एक पारिभाषिक अथवा सांकेतिक शब्द निषेध वाचक 'न' के लिये है।
नञ् शब्दको यहाँ पर थोड़ापन, थोड़ा अर्थ में लिया है सो अकषाय शब्द में अका अर्थ थोड़ा है इसी प्रकार नो कषाय शब्दमें नो का अर्थ थोड़े वा किंचित् का है निषेध अथवा अभावका अर्थ नहीं है। अकार (=अव्यय अर्थात् नञ्) कैसे और किस किस अर्थमें आता है निम्न लिखित श्लोक से विदित है। "तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वंतदल्पता। अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः॥"
तत् सादृश्यम्, अभावः च तद् अन्यत्वम्, तद् अल्पता। =समानता, अभाव-अविद्यमान, अन्यता-भेद, थोड़ापन—अल्पता
अप्राशस्त्यम्, विरोधः च, नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः॥ =अप्रशस्त-बुरा, और(=च) विरोध-विपर्यय-प्रतिकूलता ये छह नञ् के अर्थ प्रसिद्ध हैं।

यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्यदोषस्याधारणं सा जुगुप्सा । यदुदयात्स्त्रैणान्भावान्प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः । यस्योदयात्पौंस्नान्भावानास्कन्दति स पुंवेदः । यदुदयान्नापुंसकान्भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः ॥ कषायवेदनीयं षोडशविधम् । कुतः ?। अनन्तानुबन्ध्यादिविकल्पात्॥ तद्यथा—कषायाः क्रोधमानमायालोभाः । तेषां चतस्रोऽवस्थाः-

---

यद्-उदयात्[५] आत्मदोष संवरणम्[१] अन्य-दोषस्य[६] आधारणम्[१] सा[१] (१) जुगुप्सा[१]; यद् उदयात्[५] स्त्रैणान्[३] भावान्[३] प्रतिपद्यते T सः[१] स्त्रीवेदः[१]; यस्य[६] उदयात्[५] पौंस्नान्[३] भावान्[३] आस्कन्दति T सः[१] पुंवेदः[१]; यद्-उदयात्[५] नपुंसकान्[३] भावान्[३] उपव्रजति सः[१] नपुंसकवेदः[१] ॥ कषाय-वेदनीयम्[१] षोडशविधम्[१]; कुतः? *अनन्तानुबन्धी आदिविकल्पात्[५], तद्यथा-कषायाः[३] क्रोध-मान-माया-लोभाः[१] तेषाम्[६] चतस्रः[३] अवस्थाः[१]

=जिसके विपाकसे अपना दूषण आच्छादन करना वा ढंकना दूसरेके दोषका आधारण[=आविर्भाव वा प्रगट करना] सो जुगुप्सा है । जिसके उदय से =स्त्रीसम्बन्धी भावों को वा परिणामों को पाता है सो स्त्रीवेद है अर्थात् जिसके उदय से पुरुषसे [रमनेकी इच्छा हो सो स्त्रीवेद है ।

=जिसके उद्भवसे पुरुषसम्बन्धी भावोंको वा परिणामोंको प्राप्त होता है =सो पुरुषवेद है अर्थात् जिसके उदय से स्त्रीमें रमण करने की इच्छाहो सो पुरुषवेद है ।

=जिसके उदयसे नपुंसक सम्बन्धी परिणामों को प्राप्त होता है वा पाता है सो =नपुंसकवेद है अर्थात् जिसके उद्भवसे स्त्री पुरुषमें रमण करनेका भावहो सो नपुंसकवेद है।

=कषाय वेदनीय सोलह प्रकार है, क्योंकर अनन्तानुबन्धी- आदिक भेदसे जैसे क्रोध-मान-माया-लोभ ये कषाय हैं ।

=तिन[कषायोंकी] अर्थात् तिन कषायोंमें से प्रत्येककी चार चार अवस्थायें हैं ।

क्रमसे प्रत्येक का उदाहरण, (क) अब्राह्मणः = वह जो ब्राह्मण न हो यद्यपि ब्राह्मण सा हो अर्थात् नीच ब्राह्मण (ख) अभाव अर्थ में जैसे अघट घड़ाका अभाव वा अविद्यमानता, अपापम् = पाप वर्जित, पापरहित, (ग) भेद अर्थमें जैसे अन्यटः पटः अर्थात् घटको छोड़कर अन्य भाव्यार्थ पट (घ) अल्पता जैसे अनुदरा अर्थात् वह कन्या जिसकी कटि छीण हो, पतली कमर वाली अविवाहित लड़की, अलोमिकामेड़ी = वह मेड़ी जिसके बाल छोटे हो काटने योग्य न हों (ङ) बुरा जैसे अनाचारीहै अर्थात् बुरे आचरण वाला (च) विरोध अर्थमें जैसे असुर अर्थात् जो सुरका वा देवका विरोधी हो, वैरी हो, असित श्वेतका विरोधी अर्थात् काला ॥ संज्ञा जिसके आरम्भ में अ जोड़ना है स्वरसे प्रारम्भ हो तो अ के स्थान में 'अन्' लाते हैं जैसे अनादि, अनन्त, यह नियम कभी कभी लागू उन शब्दोंके साथ न होगा जिनके आदिमें अ आवे जैसे अनृणिन् वा अऋणिन् ॥

(१) यदुदयात्परदोषानाविष्करोत्यात्मदोषान्संवृणोति सा जुगुप्सा इत्यप्यन्यः पाठः ॥

अनन्तानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः संज्वलनाश्चेति ॥ अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तं तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः । यदुदयाद्देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । यदुदयाद्विरतिं कृत्स्नां संयमाख्यां न शक्नोतिकर्तुं ते कृत्स्नं प्रत्याख्यानमावृण्वन्तः

अनन्तानुबंधिनः$^{१}_{३}$ अप्रत्याख्यानावरणाः$^{१}_{३}$ प्रत्याख्यानावरणाः $^{१}_{३}$ संज्वलनाः $^{१}_{३}$ च * इति * ॥ अनन्त-संसार-कारणत्वात्$^{५}_{१}$''मिथ्यादर्शनम्$^{१}_{१}$''अनन्तम्$^{१}_{१}$''तद्-अनुबन्धिनः $^{१}_{३}$ अनन्तानुबन्धिनः $^{५}_{३}$ क्रोध-मान-माया-लोभाः $^{१}_{३}$; यद्-उदयात्$^{५}_{१}$''देशविरतिम्$^{३}_{१}$''संयमासंयम-आख्याम्$^{३}_{१}$'' अल्पाम्$^{३}_{१}$''अपिकर्तुम्न*शक्नोति''ते$^{१}_{३}$''देश-प्रत्याख्यानम्$^{३}_{१}$''आवृण्वन्तः$^{१}_{३}$''अप्रत्याख्यानावरणाः$^{१}_{३}$''क्रोध-मान-माया-लोभाः$^{१}_{३}$;यद्-उदयात्$^{५}_{१}$''विरतिम्$^{३}_{१}$''कृत्स्नाम्$^{३}_{१}$''संयम-आख्याम्$^{३}_{१}$'' न*शक्नोति''कर्तु$^{२}_{१}$''ते कृत्स्नं$^{३}_{१}$''प्रत्याख्यानम्$^{३}_{१}$''आवृण्वन्तः$^{१}_{३}$

=तीव्रतम (=अनन्तानुबंधी कोप-अहङ्कार-वञ्चना-कांक्षा) तीव्र(रोष-गर्व-अनार्जव-इच्छा =मंद(अमर्ष-दर्प-ठगई-अभिष्वङ्ग) और मंदतम (क्रोध-मान-माया-लोभ-) इस प्रकार हैं ।
=अनन्त संसारका हेतुहोने से मिथ्यात्वहै सोही अनन्तहैअर्थात्अनन्त नाम मिथ्यात्वका है क्योंकि यह मिथ्यात्व अनन्त संसारका कारण है
=तिस (मिथ्यादर्शन) का सहचर-अनुचर-अनुसारिणी-अनुकरण करनेवाला
=अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ हैं अर्थात् ये अन्तानुबन्धी क्रोध-मान माया-लोभ-सम्यक्त्व को नहीं होने देते हैं ।
=जिसके उदयसे एकदेश व्रतरूप संयमासयम नामक (अर्थात् श्रावकव्रत) को =किंचत् मात्र भी करनेको समर्थ नहीं होते वे ईषत्(=देश) प्रत्याख्यान को =ढकनेवाले वा आच्छादन करनेवाले अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध-मान-माया =लोभ हैं। जिसके उदयसे समस्त त्यागरूप(=विरति)संयम नामको अर्थात् महाव्रत =करने को समर्थ नहीं होता है ते समस्त प्रत्याख्यानको आच्छादनकरने वाले

यत्-उदयात् परदोषान् आविष्-करोति आत्म-दोषान् = जिसके उदयसे दूसरों के दोषों को प्रगट करता है (और) अपने दोषों को संवृणोति सा जुगुप्सा इति अपि अन्यः पाठः =ढकता है अथवा आच्छादित करता है सो जुगुप्सा है ऐसा भी अन्य पाठ है
क्रोधः-कोपः-रोषः-द्वेषः भण्डनम्-भामः इत्यनर्थान्तरम् सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७७ ॥ मानः-स्तम्भः-गर्वः-उत्सेकः-अहङ्कारः-दर्पः-मदः स्मयः-इत्यनर्थान्तरम् (पृष्ठ १७९) माया-प्रणिधिः-उपाधिः-निकृतिः-आचरणं-वञ्चना-दम्भः कूटम्-अतिसंधानम्-अनार्जवम् इत्यनर्थान्तरम् लोभः-रागः-गार्ध्यं:-इच्छा-मूर्छा-स्नेहः-कांक्षा-अविरतिः-इत्यनर्थान्तरम् (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १८०)

प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः। समेकीभावे वर्तते। संयमेन सहवस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति सयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः। त एतेसमुदिताः सन्तः षोडशकषाया भवन्ति॥ मोहनीयानन्तरोद्देशभाज आयुष उत्तरप्रकृति-निर्ज्ञापनार्थमाह—

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

प्रत्याख्यानावरण[1]क्रोध-मान-माया-लोभाः[1]; सम्
एकीभावे[2]वर्तते[1]संयमेन[3]सह*अवस्थानात्[4][1]
एकीभूय*ज्वलन्ति T वा येषु[3] सत्सु[3] अपि*
संयमः ज्वलति[1] इति*संज्वलनाः[1] क्रोधमानमायालोभाः[1];
ते[1]एते[1]समुदिताः[1]सन्तः[1]षोडश-कषायाः[1] भवन्ति T
मोहनीय-अनन्तर-उद्देश-भाजः[5][1] आयुषः[5][1]
उत्तर-प्रकृति-निर्ज्ञापन-अर्थम्[1][1] आह T

=प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ हैं। (संयमशब्दमें) सम् (उपसर्ग)
=एकपन वा एकतामें प्रवर्तता है सयमके साथ स्थिति होनसे (=सह अवस्थानात्)
=एक होकर दैदीप्यमान होतेहैं, दिपतेहैं, वा जिनके(=येषु) होनेपर (=सत्सु)भी(=अपि)
=संयम दैदीप्यमान रहता है ऐसे संज्वलन क्रोध--मान-माया-लोभ हैं
=ते इतने समुचित होकर सोलह कषाय होते हैं।
=मोहनीय (कर्म प्रकृति) के निकट वा लगताई इच्छित विभाग आयु (कर्म) की
=उत्तर-प्रकृति प्रकाशनेकेलिये अथवा जतावने केलिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि = नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ताः एताः आयुषः चतुरुत्तर प्रकृतयः

नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि[1][1]ताः[1]एताः[1]आयुषः[1][1]
चतुर्-उत्तर-प्रकृतयः[1]

=नारक-तैर्यग्योन, मानुष और देव ये आयु (कर्म) की
=चार उत्तर प्रकृतियें हैं अर्थात् नरक आयु--तिर्यंचआयु-मनुष्यआयु-देवायु ये आयुकर्मकी चार उत्तर प्रकृतियें हैं भावार्थ(क)जिसके सद्भावसे आत्मा नरकगतिमें जीवे और जिसके अभावसे मरणको प्राप्त होजाय उसे नारक आयुकर्म कहते हैं (ख) जिसकी विद्यमानतासे तिर्यंचगतिमें आत्मा जीता है और जिसके अन्तहोनेपर मृत्युको प्राप्तहोता है वह तिर्यग्योनि आयुकर्म है॥ (ग) जिसके सद्भावसे मनुष्यगतिमें जीव जीता है और जिसके अभाव होने पर मरजाता है वह मनुष्य आयुकर्म है और (घ) जिसके होने पर जीव देवगतिमें जीता है जिसके अभाव होने पर जीव मृत्यु को प्राप्तहोता है वह देव आयु कर्म है—

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ दोनों दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आम्नायों में एक है।

नारकादिषु भवसम्बन्धेनायुषो व्यपदेशः क्रियते । नरकेषुभवं नारकमायुः । तिर्यग्योनिषु भवं तैर्यग्योनं । मानुषेषुभवं मानुषं । देवेषु भवं दैवमिति ॥ नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं तन्नारकम् ॥ एवं शेषेष्वपि ॥

आयुश्चतुर्विधं व्याख्यातं तदनन्तरमुद्दिष्टं यन्नामकर्म तदुत्तरप्रकृतिनिर्णयार्थमाह—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसदशवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

नरक-आदिषु[७]भवसम्बन्धेन[३]आयुषः[६]व्यपदेशः[१]=नरकादिकोंमें जन्मके प्रसंगकरि आयुका कथन
क्रियते[T];नरकेषु[७]भवं[१]नारकं[१]आयुः[१];तिर्यग्=किया गया है; नरकमें उत्पत्तिका कारण (कर्म) सो नारक आयु है; तिर्यंच
योनिषु[७]भवं[१]तैर्यग्योनं[१];मानुषेषु[७]भवम्[१] =योनियोंमें उपजनेका कारण (कर्म)सो तैर्यग्योन है; मनुष्योंमें जन्मका कारण (कर्म)
मानुषम्[१];देवेषु[७]भवम्[१]दैवम्[१]इति * ॥ =सो मानुष है; देवविषै उपजने को कारण (कर्म) सो दैव है ॥
नरकेषु[७]तीव्र-शीत-उष्ण-वेदनेषु[७]यद्-निमित्तं[१] =नरकोंमें अतिशय ठंड और तपके (दुखःरूप) अनुभव करने पर जिसके निमित्तसे
दीर्घ-जीवनं[१]तद्-नारकम्[१];एवं*शेषेषु[७]अपि*=बहुत(कालतक)जीवन हो सो नारक (आयुकर्म) है । ऐसे बचेहुए तीनआयुकर्म भी है

अर्थात् जिसके उदयसे क्षुधा-तृषा शीत उष्णादिकृत प्रचुर उपद्रव सहित तिर्यग्योनिमें वसनाहोय सो तिर्यगायु है, बहुरि जिसके उदयसे शरीर मनः सम्बन्धी सुख दुःख करि व्याप्त मनुष्य पर्यायमें जन्महोय सो मनुष्य आयु है, और जिसके उदयसे शारीरिक मानसिक सुखादिसहित देवोंमें उत्पत्तिहोय सो देवायु है ॥

आयुः[१]चतुर्-विधम्[१]व्याख्यातम्[१]तद्-अनन्तरम्[१]=आयु चार प्रकार वर्णन की गई है । उस (आयु) के समीप
उद्दिष्टम्[१]यत्-नामकर्म[१]तद्-उत्तर-प्रकृति-निर्णयअर्थंआह=कहाहुआ जो नामकर्म उस(नामकर्म)की उत्तर प्रकृतियोंके निरूपणकोकहतेहैंकि

नरक (पु० न्+घञ्। पापियोंके दुःख भोगनेको एक स्थान । नारक,निरय और दुर्गति नरकके नामहैं ॥ स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम् । स्यात् नारकः निरयः दुर्गतिः स्त्रियाम् (अमरकोषः नरकवर्गः) =नारक, नरक, निरय (पुल्लिंगमें) और (=तु) दुर्गति स्त्रीलिंगमें नरकके नाम हैं ॥ नारक(पु०)नृ+वुन् (अक)नरक नरके भवः" अण् नरकका । नरकनेवासीको नारकिक, नारकीय और नारिकिन् कहते हैं ये तीनों शब्द पुल्लिंग हैं । उनमेंसे नारकिन् शब्दको व्युत्पत्ति इस प्रकार है 'नारके भोग्यत्वेन अस्ति अस्य इति' =नरककी पीड़ाओंका भोगनेहारा जीव ॥

(१) ' शेषेषु ' बचे हुये तीन मनुष्य आयु कर्म, तिर्यंग् आयु कर्म, देव आयु कर्म, के लिये आयाहै इसलिये नपुंसक लिंग यहां पर है ।

॥ गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्श-रसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेय-यशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥

(१) गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—गति-जाति-शरीर-अंगोपाँग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध- वर्ण-आनुपूर्व्य-अगुरुलघु-उपघात-परघात-आतप- उद्योत-उच्छ्वास-विहायोगतयः $\frac{1}{3}$'' प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिर-आदेय-यशःकीर्ति-सेतराणि $\frac{2}{3}$''' तीर्थकरत्वं $\frac{1}{4}$'''' च, ते$\frac{1}{3}$' एते$\frac{2}{3}$' प्रकृतिबन्धस्य $\frac{5}{6}$' षष्ठस्य $\frac{5}{6}$'''' नामकर्मणः $\frac{5}{6}$''''' द्वि—चत्वारिंशत्-उत्तरप्रकृतिभेदाः $\frac{2}{3}$' भवन्ति ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-निर्माण-बन्धन-संघात- =गति,जाति-शरीर,अंगोपांग,निर्माण,बन्धन,संघात,

संस्थान—संहनन—स्पर्श—रस—गन्ध—वर्ण—(२)आनुपूर्व्य— =संस्थान,संहनन,स्पर्श,रस,गन्ध,वर्ण,आनुपूर्व्य,

(१) समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्नपाठके साथ उपर्युक्त पाठ पढ़ो, "गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपराघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयःप्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशांसिसेतराणितीर्थकृत्वं च ॥ १२ ॥" (२) कहीं कहीं पर "वर्णानुपूर्व्यागुरु" पाठहै और कहीं कहीं पर जैसे 'जैन नित्य (सोलह) पाठसंग्रह" में तथा "सनातन जैनग्रन्थमाला" इत्यादिमें "वर्णानुपूर्व्यगुरु" ऐसा पाठ है दोनों ही पाठ शुद्ध हैं क्योंकि'आनुपूर्वी और आनुपूर्व्य दोनों शब्द एकही अर्थ में पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ५७ में पाये जाते हैं, इसलिये वर्ण + आनुपूर्वी + अगुरु = वर्ण + आनुपूर्व्य, (इकोयणचि ६-१-७७ सूत्रकरि) + अगुरु = वर्णानुपूर्व्यगुरु ॥ वर्ण + आनुपूर्व्य + अगुरु = वर्णानुपूर्व्यागुरु और कोशके इसी पृष्टमें 'आनुपूर्व' शब्द भी है इसलिये—वर्ण + आनुपूर्व + अगुरु = अर्णानुपूर्वागुरु ऐसा पाठ भी ठीक हो सक्ता है। "आनुपूर्व्यगुरु" छोटा होनेसे अच्छा है ॥ समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें वर्णानुपूर्व्यागुरु के स्थानमें वर्णानुपूर्व्यगुरु है ॥

अगुरुलघु-उपघात (१) परघात-आतप-उद्योत-उच्छ्वास- =अगुरुलघु, उपघात,परघात,आतप,उद्योत,उच्छ्वास,

विहायोगतयः[1] प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर- =विहायोगति (=आकाशगमन), ये इक्कीस तथा)प्रत्येक शरीर,त्रस,सुभग सुस्वर,

शुभ-सूक्ष्म-(२)पर्याप्ति-स्थिर-आदेय-यशः(३)कीर्ति =शुभ-सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशस्कीर्ति (ये दश और इन दशोंके)

(४)स-इतराणि[1] =प्रतिपक्षी वा उलटी (=इतराणि)सहित (=स) अर्थात् साधारणशरीर,स्थावर,दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ,बादर, अपर्याप्ति, अस्थिर अनादेय,और अयशस्कीर्ति (ऐसे दश)

(५) तीर्थकरत्वम्[1] च[*] ते[2] एते[3] प्रकृतिबन्धस्य[4] =और (=च) तीर्थकरत्व (तीर्थंकरपना) ये इतने प्रकृतिबन्धके

(१) परघातके स्थानमें समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पराघात है अर्थ 'पर त्रासप्रतिघातादिजनकं पराघातनाम' ऐसा लिखा है ॥

(२) पर्याप्तिके स्थानमें समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'पर्याप्त' है परन्तु अर्थमें कितनेही स्थानोंमें पर्याप्ति शब्द ही लाये हैं जैसे "पर्याप्तिः पञ्चविधा तद्यथा। आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिः इन्द्रियपर्याप्तिः प्राणापानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिरिति" "पर्याप्तिः क्रियापरिसमाप्तिरात्मनः" इससे जान पड़ता है कि पर्याप्त शब्दके स्थानमें पर्याप्ति मुद्रित हो गया है। कुछ भी हो अर्थमें भेद नहीं है परन्तु पर्याप्ति पांच मानी हैं पुनि लिखाहै कि किन्हीं आचार्योंका कथन है कि मनः पर्याप्ति भी है हमारे यहां पर्याप्ति छह मानी हैं ॥ (३) यशः कीर्ति अथवा यशस्कीर्ति (क्योंकि हमारे यहां ये दोनों ही पाठ हैं) के स्थान में समाप्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यशांसि है। 'यशांसि यह शब्द यहां पर प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग यशस् शब्द का है ॥ द्वितीया (कर्म) विभक्तिमें भी यशांसि रूप है। सभाष्य०में' विहायोगतयः प्रथमा विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग तक वाक्य पूर्ण करनेके पश्चात् दो वाक्य (क) "प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेय यशांसि ख) सेतराणि (=स+इतराणि) में स्पष्ट प्रकारसे प्रगट करनेके लिये कि प्रत्येकशरीर त्रस इत्यादिक और इनके उलटे दश ऐसे बीस नाम कर्म के भेद हैं दो न्यारी न्यारी विभक्तियों (यशांसि और सेतराणि) की हैं और इन दशों के साथ भाष्यकारने निर्वर्तक (=उत्पादक, उत्पन्न करने वाला, साधक, जनक, सिद्ध करनेवाला) शब्द लगाकर जैसे हमारे यहां पूज्यपाद स्वामीने "स्थिर भावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम" अभिप्रायको प्रगट किया है तैसे, ' यशोनिवर्तकं यशोनाम" इससे अभिप्राय प्रगट करदिया है, हमारे यहां यशः के पश्चात् कीर्ति शब्द "ख्यापन, संशब्दन (प्रगट करनेके) अर्थमें सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३९५, तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०९ में और शब्दन, शब्द तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४८० मुद्रित में लाये हैं और उक्त दोनों वार्तिकों में प्रश्न करने पर कि यशः और कीर्तिमें अन्तर नहीं हैं एकार्थ वाचीहैं, उत्तर दिया है कि संशब्दन वा शब्दन अर्थमें कीर्ति शब्द है, और राजवार्तिकमें 'यशसः कीर्तिः यशःकीर्तिरित्यस्त्यर्थ भेदः"अर्थात् यशका ख्यापन वा प्रगटपना सो यशकीर्ति है ऐसा(=इति)है(अस्ति)अर्थान्तर (=अर्थभेदः) ॥ इस प्रकार यशः कीर्ति समास का विग्रह किया है ॥ हमारी समझमें उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट कि यशस् शब्द से भी वही अर्थ निकल आताहै जो यशःकीर्तिसे इसलिये यशांसि शब्द पर्याप्त है बसहै ॥ पद्मचंद्रकोश पृष्ठ १०९ में कीर्ति (स्त्री) शब्दका अर्थ यश लिखा है ॥

(४) स – यह शब्दके पहिले सम् सम-तुल्य-सह-सदृशके अर्थमें लगाया जाता है जैसे सपुत्र,सभार्य सतृष्णा,सधन,आदि (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३९६) यहांपर सह' के अर्थ में अर्थात् प्रतिपक्षी सहित, भावार्थ इन दशा भेदोंके उलटे सहित भेद भी लेने ॥

(५) 'तीर्थकरत्वं के स्थानमें समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'तीर्थकृत्त्वं' शब्द है ॥ तीर्थकृत्त्वका अर्थ 'तीर्थकरत्व निर्वर्तकं तीर्थकरनाम" अर्थात् तीर्थकरत्वका सिद्ध करनेवाला कर्मही वह तीर्थकर नाम(कर्म)है ऐसा किया है अतःतीर्थकृत्त्वं और तीर्थकरत्वमें अर्थ भेदनहीं है ॥

यदुदयादात्मा भवान्तर गच्छति सा गतिः। सा चतुर्विधा–नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्देवगति–र्मनुष्यगतिश्चेति॥ यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम। एवं शेषेष्वपि योज्यम्॥ तासु नरकादिगतिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतोऽर्थात्मा जाति:॥ तन्निमित्तं

(१)षष्ठस्य[१]।।नामकर्मणः[१]।।उत्तर-प्रकृति–भेदाः[३]। द्वि-चत्वारिंशत्(२) भवन्ति T

=छठवां नामकर्मके उत्तर प्रकृतिके भेद
=बियालीस होतेहैं। इन ४२ के आगे नाम इतना जोड़के पढ़ो जैसे गति=गतिनाम

वृत्त्यनुवाद:–यद्-उदयात्[५]।आत्मा[१]।भवान्तर[२]।।गच्छतिT=जिसके उदयसे जीव अन्य भवको वा पर्यायको जाता है

सा[१]।।गति[३]।।सा[१]।।चतुर्-विधा[३]।।नरकगतिः[१]।।तिर्यग्गतिः[१]।। देवगतिः[१]।।मनुष्यगतिः[१]।।च*इति।।यद्-निमित्तः[१]।आत्मनः[१] (*)नारकः[१]। भावः[१]।तद्-नरकगतिनाम[१]।।

=सो गति है। वह (गति) चार प्रकार नरकगति, तिर्यंचगति =देवगति और(=च) मनुष्यगति ऐसे है। जिसके निमित्त जीवकी =नरककी (=नारकः)सत्ता (=भाव) हो सो नरक गति नाम (कर्म) है।

एवम्*शेषेषु(४)[३]।।अपि*योज्यम्[१]।।।

=इस प्रकार बचीहुई (तीन गति) योंमें भी लगायाजाता हैअर्थात् जिसके हेतु जीवके तिर्यंचमें उत्पत्तिहो सो तिर्यंच गतिनाम कर्म है जिसके कारण अत्मा के देवका भाव हो सो देव गति नाम कर्म है और जिसके निमित्तचेतनके मनुष्यका सत्ता हो सो मनुष्यगति नाम कर्म है

तासु[३]।।नरक-आदि-गतिषु[३]।।अव्यभिचारिणा[३]।।। सादृश्येन[३]।।।एकीकृतः[१]अर्थ-आत्मा[१]जातिः[१]।। तद्–निमित्तम्[१]।।।

=तिन नरकादिक गतियोंमें अव्यभिचारी
=समान भावकरि (=सादृश्येन) एकता रूपभया जो अर्थका स्वरूप सो जाति है
=तिस (अव्यभिचारी सादृश्य वा अव्यभिचाररूप समानताके होने) का कारण

(१) षष्ठस्य–यह शब्दत्रिलिंगी है(पद्मचंद्रकोष पृष्ठ|३९५) कर्मणःशब्दके साथ आयाहै इसीलिये नपुसक लिंगमें है क्योंकि कर्मण: शब्द कर्मन् शब्द की षष्ठी विभक्ति है और नपुसक लिंगीहै (२) इन बियालीस प्रकृतियोंमेंसे पहिली चौदह (अर्थात् गति–जाति शरीर–अंगोपांग–निर्माण–बन्धन संघात-संस्थान–संहनन–स्पर्श रस–गन्ध–वर्ण–आनुपूर्व्य) पिंड प्रकृति हैं(=जिस प्रकृतिके आवान्तर भेदहों वह पिंड प्रकृति कहलाती है) शेष २८ अपिंड प्रकृति हैं॥ इन १४ पिंड प्रकृतिके सर्व भेदोंकी गणना करने से ६५ होती है उनमें २८ अपिंड प्रकृति जोड़देनेसे सर्वयोग ९३ का होता है अथवा शरीर नामकर्मके मिलेहुये दश भेद जोडने से १०३ प्रकृतियां हैं॥ इसी अपेक्षासे कोई आचार्य सब कर्मोकी १५८ प्रकृतियां कहतेहैं जो इन शरीरों के पन्द्रह भेदोंको पांच शरीरही में गर्भित करलेंतो १४८ ही प्रकृतियां हैं इनसब प्रकृतियोंकी परिभाषायें और भेद विशेषतासे आगे चलकर यथायोग्य स्थानोंमें कहेंगे (३)नारक = नरक की (पद्म चंद्र कोश पृष्ठ २१०) (४) शेषेषु = शेषेषु गति षु: अत:शेषेषु को सप्तमी विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमें रक्खाहै

जातिनामतत्पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति॥ यदुदयादात्माएकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम एवशेषेष्वपि योज्यम् ॥ यदुदयादात्मनः शरीरनिवृत्तिस्तच्छरीरनाम । तत्पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम,

जाति-नाम[1] तद्-पञ्च-विधम्[1] एकेन्द्रिय-जातिनाम =सो जातिनामकर्म है, वह (जातिनामकर्म) पांचप्रकार है एकेन्द्रियजातिनामका (नामकर्म)
द्वि-इन्द्रिय-जाति-नाम[1], त्रि-इन्द्रिय-जाति-नाम[1], =दो इन्द्रियजातिनाम (का नाम) कर्म—त्रीन्द्रियजातिनाम का नामकर्म
चतुर्-इन्द्रिय-जाति-नाम[1] पञ्च-इन्द्रिय-जाति-नाम[1] इति=चतुरिन्द्रियजातिनामका नामकर्म पञ्चइन्द्रियजातिनामका नामकर्म ऐसे हैं
यद्-उदयात्[2] आत्मा[2] एकेन्द्रिय[1] इति शब्द्यते। तद् =जिसके उदयसे चेतन एकेन्द्रिय कहा जाता है वह (=तद्) वा वर्णन किया गया है (शब्द्यते)
एकेन्द्रिय-जाति-नाम[1] एवम्* =एकेन्द्रियजातिनाम (कर्म) इस प्रकार
शेषेषु [7] अपि * योज्यम् [1]; =बचीहुई (इन्द्रियों) में भी लगाया जाय है अर्थात् जिसके उदयसे जीव द्वीन्द्रिय होता है
वह द्वीन्द्रिय जातिनामकर्म कहा जाता है, जिसके उदयसे आत्मा त्रीन्द्रिय होता है वह त्रीन्द्रिय जातिनामकर्म बोला जाता है, जिसके उद्योतसे चेतन चतुरिन्द्रिय होता है वह चौइन्द्रियजातिनामकर्म कहा जाता है और जिसके उद्रेकसे जीव पञ्चेन्द्रिय होता है वह पंचेन्द्रियजातिनामकर्म वर्णन किया जाता है

यद्-उदयात्[2] आत्मनः[6] शरीर-निवृत्तिः[1] =जिसके उदयसे वा उद्योत से जीवके शरीरकी रचना (=निर्वृत्ति) वानिष्पत्ति हो
तत्[1] शरीर-नाम[1] तत्[1] पंच-विधम् [1] =वह शरीरनामकर्म है वह (शरीर नामकर्म) पांच प्रकार है
औदारिकशरीरनाम [1], =औदारिकशरीरनामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे स्थूल इन्द्रियोंसे देखने योग्य शरीर की रचना हो (वह औदारिकशरीरनामका नामकर्म है)

वैक्रियिकशरीरनाम [1], =वैक्रियिक शरीरनामकर्म अर्थात् जिसके उद्योतसे उसविधिके शरीरकी रचना हो जिसमें अनेकप्रकारके स्थूल-सूक्ष्म-हलका भारी इत्यादि विकार होनेकी योग्यता (सो वैक्रियिकशरीरनामकानामकर्म है)

आहारकशरीरनाम[1], =आहारक शरीर नाम कर्म अर्थात् जिसके उद्रेकसे उस शरीरकी उत्पत्ति वा बनावट हो जो सूक्ष्म पदार्थके निर्णय के लिये वा संयम पालनेकेलिये प्रमत्त (छठवां) गुणस्थान वर्तीमुनियों के प्रकट होता है (सो आहारकशरीरनामका नामकर्म है)

सैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम चेति ॥ तेषां विशेषो व्याख्यातः ॥ यदुदयादङ्गोपांगविवेकस्तदंगोपांगनाम । तत्त्रिविधम्–औदारिकशरीरांगोपाँगनाम, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारक–शरीरांगोपांग नाम चेति ।

तैजसशरीरनाम $\frac{१}{६}^{।।।}$, =तैजस शरीरनामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे उस शरीरकी रचनाहो जिससे शरीरमें तेजका कारण होताहै (वह तैजसशरीरनामकानामकर्म है)

कार्मणशरीरनाम $\frac{१}{६}^{।।।}$ च * इति * ॥ =और (=च) कार्मणशरीरनामकर्म ऐसे है अर्थात् जिसके उदयसे कार्मण शरीरकी रचना हो (उसको कार्मणशरीरनामकानामकर्म कहते हैं)

तेषाम् $\frac{६}{३}^{।}$ विशेषः $\frac{१}{६}^{।}$ व्याख्यातः $\frac{१}{६}^{।}$ ॥ =तिन (शरीरों) का विशेष कहागया है (देखो अध्याय २ सूत्र ३६)

यद्-उदयात्$\frac{१}{६}^{।}$अङ्ग-उपाङ्ग-विवेकः$\frac{१}{६}^{।}$तद्$\frac{१}{६}^{।।।}$अङ्गोपाङ्गनाम$\frac{१}{६}^{।}$ =जिसके उदयसे शरीरके अवयवों (=अङ्ग)की, अप्रधान भागोंकी (=उपांग) अर्थात् शरीरके अवयवोंके अवयवोंका भेद प्रगट होना सो आङ्गोपांग नामक नामकर्म है

तद् $\frac{१}{६}^{।।।}$ त्रिविधम् $\frac{१}{६}^{।।।}$ औदारिक-शरीर-अंगोपांगनाम$\frac{१}{६}^{।।।}$ =वह(अंगोपांग नामकर्म) तीन प्रकारहै औदारिकशरीर अंगोपांग नामका नामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे औदारिक वा स्थूल शरीरके अंग तथा उपांगका हो ।

वैक्रियिकशरीरांगोपांगनाम $\frac{१}{६}^{।।।}$, =वैक्रियिक शरीरांगोपांग नामका नामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे उस शरीर के अंग तथा उपांगों का भेद प्रगट हो जिस (शरीर) में अनेक प्रकार के स्थूल सूक्ष्म हलका भारी इत्यादि विकार होनेकी योग्यता हो

आहारकशरीरांगोपांगनाम $\frac{१}{६}^{।।।}$ च * इति * =और आहारकशरीरांगोपांग नामका नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे उस शरीरके अंग तथा उपांगोंका भेद प्रगटहो जोसूक्ष्मपदार्थके निर्णयकेलिये वा संयम पालनेकेलिये प्रमत्त-(छठवां)गुणस्थानवर्ती मुनियोंके मस्तकमेंसे एक हाथका पुतला निकलता है ।

---

(१) ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंके समूहको कार्मणकहते हैं, जो कार्मण शरीररूप परिणमें उनको कार्मण वर्गणा कहते हैं (जैनसिद्धान्तप्रवेशिका)

(२) प्रथम अङ्गके नाम कहते हैं–शिरोनाम–उरो (छाती) नाम, पृष्ठ (पीठ) नाम,बाहुनाम, उदरनाम तथा पादनाम–उपाङ्ग नाम–भी अनेक प्रकार हैं जैसे स्पर्शनाम–रसननाम–घ्राणनाम–चक्षुर्नाम–तथा श्रोत्रनाम । और मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शंख, ललाट, तालु-कपोल-हनु-चिबुक [ठोड़ी] दशन [दांत] ओष्ठ-भ्रू [भौंह] नयन,कर्ण-नासा, आदि शिरके उपाङ्गनाम है इसी रीतिसे सम्पूर्ण अंग तथा उपाङ्गोंके नाम जानना चाहिये ॥

यन्निमित्तात्परिनि ष्पत्तिस्तन्निर्माणम्॥ तद्द्विविधम्—स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति। तज्जातिनामोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्वर्तयति। निर्मीयतेऽनेनेति निर्माणम्॥ शरीरनामकर्मोदयवशादुपात्तानां पुद्गलानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धननाम। यदुदयादौदारिकादिशरीराणां—

यद्-निमित्तात्[८] परिनिष्पत्तिः[१] तद्[८] निर्माणम्[८] ॥ =जिसके हेतुसे १ (अंगोपांगकी) निष्पत्ति वा उत्पत्ति हो वह निर्माणनाम कर्म है

तद्[१] द्वि-विधम्[१] -स्थाननिर्माणम्[१] प्रमाणनिर्माणम्[१] च * इति # ॥ =वह (निर्माणनामकर्म) दो प्रकार है, स्थान निर्माण नाम (का नाम) कर्म =तथा (=च) प्रमाणनिर्माण नाम (का नाम) कर्म ऐसे हैं अर्थात् जिनके उदयसे शिरो-उरो-पीठ-बाहु-उदर-पाद इत्यादिक अंग तथा ठोढी-दशन-ओष्ठ-भौंह-नयन कर्ण-नासा-आदिक उपांगों की यथास्थान लिये हुये उत्पत्ति वा रचना (=स्थाननिर्माण) और यथा प्रमाणलिये हुये परिनिष्पत्ति वा उत्पत्ति (=प्रमाणनिर्माण) हो सो क्रम से स्थान निर्माणनाम कर्म तथा प्रमाणनिर्माण नाम कर्म हैं।

तद्-जाति-नाम-उदय-अपेक्ष[१] चक्षुरादीनां[६] स्थानं[२] =तिस प्रकारके (=जाति) नाम कर्मकी उदय अपेक्षा अर्थात् उस निर्माणनाम के नामकर्मकी विवक्षा से नेत्रादिकों के स्थानको

प्रमाणम्[२] च* निर्वर्तयति T =तथा (=च) प्रमाणको (लिये हुये) निर्वर्तन करती है पूरा करती है निष्पन्न करती है

निर्मीयते T अनेन[३] इति * निर्माणम्[१] =जिसकरि नियतकिया जाता है वा जिसकरि रचा जाता है ऐसा निर्माण (शब्दका अर्थ है)

शरीर-नामकर्म-उदय-वशात्[३] उपात्तानाम्[६] =शरीर नाम(के नाम) कर्मके उदय वशसे गृहीत (अर्थात् ग्रहणकिये हुये आहारवर्गणाके)

पुद्गलानाम्[६] अन्योन्य-प्रदेश-संश्लेषणम्[१] यतः* भवति T =पुद्गलस्कन्धोंके प्रदेशों का परस्पर अनुप्रवेश वा मिलना जिससे होता है

२तद्-बन्धन-नाम[१] यद्-उदयात्[५] औदारिकादि-शरीराणां[६] =सो बन्धन नाम (कर्म) है—जिसके उदय से औदारिकादि (पांच) शरीरों के

(१) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें "अंगोपंगानां, वाक्यको अध्याहार करके इस वार्तिकका विवरण किया है इस लिये अनुवादमें "अंगोपांगकी" इस वाक्यको कोष्ठकमें लिखकर अनुवाद किया है ॥ यह वाक्य तथा वार्तिक पांच राजवार्तिक पृष्ठ ३०६ में ऐसे है कि "यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणं ॥ ५=अंगोपंगानां यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणम् इति ज्ञायते" ॥ (२) बन्धननामकर्म पांच प्रकारका (क) औदारिकबन्धननाम कर्म (ख) वैक्रियिकबन्धननामकर्म (ग) आहारकबन्धननामकर्म (घ) तैजसबन्धन नामकर्म (ङ) और कार्मण बन्धन नामकर्म है अर्थात्

विवरविरहितान्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम ॥ यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम; तत् षोढा विभज्यते-समचतुरस्रसंस्थाननाम । न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम ।

विवरविरहित–अन्योऽन्य–प्रदेश–अनुप्रवेशेन[३] =प्रदेशोंका परस्पर छिद्ररहित (=विवरविरहित) अनुप्रवेशकरि
एकत्व–अपादनं[१] भवतितद्[३]।।।(१)संघातनाम[३]।।; =एकता वा संघटनका ग्रहण (=अपादन) होता है सो संघात नामकर्म है
यद्–उदयात्-[५]औदारिकादि-शरीर-आकृति-(२)निर्वृत्तिः[३]।।=जिसके उद्गमतसे औदारिकादिक (पांच)शरीरोंके आकारकीउत्पत्ति वा रचना।
भवति T तत्संस्थाननाम[३]।।।;तत्[३]।।षोढा* =होती है वह संस्थान नामकर्म है। वह (संस्थानामकर्म) छह प्रकार से (=षोढा)
विभज्यते T (३)सम(४)चतुरस्र संस्थाननाम[३]।।। =विभाजितहै समान वा ज्योंका त्यों (=सम)चतुष्कोण (=चतुरस्र=चतुरश्र) शरीरकाआकार (=संस्थान)सोलह चतुरस्र संस्थानहै औरजितकेउदयसे शरीरका आकृति(=संस्थान)ऊपर नीचे मध्यमें और इधर उधर (=चतुरस्र) समान हो सो समचतुस्रसंस्थान नाम (कर्म) है
न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम [१]।।। =न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म अथवा वड़के पेड़के सदृश (न्यग्रोधसम) चारो ओर (=परि) गोल (=मण्डल) शरीर के आकार (=संस्थान) का उत्पादक वा निर्वर्तक

जिसके उदयसे औदारिक बन्ध हो सो औदारिकबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे वैक्रियिक बन्ध हो वह वैक्रियिकबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे आहारक बन्ध हो वह आहारकबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे तैजस बन्ध हो वह तैजसबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे कार्मण बन्ध हो वह कार्मणबन्धन नामकर्म है। ये भेद सर्वार्थसिद्धिसंस्कृतमें, राजवार्तिक और तत्वार्थश्लोकवार्तिकमें इस सूत्रके विवरण करनेमें नहीं कहे हैं परन्तु 'अर्थप्रकाशिका' इत्यादिकमें पाये जाते हैं (२) संघातनाम कर्म के (क) औदारिकसंघातनामकर्म (ख) वैक्रियिक-संघातनामकर्म (ग) आहारकसंघात नामकर्म (घ) तैजससंघात नामकर्म (क) कार्मणसंघात नामकर्म ऐसे पाँच प्रकारका है अर्थात् जिसके उदयसे औदारिक शरीरमें छिद्र रहित संधि (जोड़) हो वह औदारिक संघात नामकर्म है, जिसके उदय से वैक्रियिक शरीरमें छिद्ररहित एकता वा संघठन हो वह वैक्रियकसंघात नामकर्म है, जिसके उदयसे आहारक शरीरमें छिद्ररहित एकता वा संघठन हो वह आहारकसंघात नामका नामकर्म है, जिसके उदयसे तैजसशरीरमें छिद्र रहित संधि (जोड़) हो वह तैजससंघात नामकर्म है और जिसके उदयसे कार्मणशरीरमें संघात हो वह कार्मण संघात नामका नामकर्म है। ये संघातके पांच प्रभेद सर्वार्थसिद्धि और दोनों वार्तिकोंमें नहीं है अर्थप्रकाशिका आदिमें पायेजाते हैं (२) निर्वृति = हटना उपरम, विश्राम परंतु, निर्वृत्ति = उत्पत्ति, रचनाके हैं सर्वार्थसिद्धिकी दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें निर्वृत्ति शब्द 'निर्वृत्ति' के स्थानमें छप गया है, क्योंकि अन्य हस्तलिखित प्रतियोंमें तथा राजवार्तिक पृष्ठ ३०७ में 'निर्वृत्ति' शब्द है ॥ (३) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०८ में 'सम' शब्दका अर्थ साधु (भला) लिखा है यदि भला अथवा सुंदर शब्दका अर्थ यहां पर ले (जैसा कि सदासुखजीने तत्वार्थ सूत्रकी लघुटीकामें लिया है) तो आशय इस प्रकार होगा कि जिसके उदयसे शरीरका आकार ऊपर नीचे मध्यमें और इधर उधर सुंदर मर्यादरूप हो वह समचतुरस्रसंस्थान नामका नामकर्म है। [४] चतुरस्र अथवा चतुरश्र [= चतुष्कोण-चौकौन चार कौन वाला] पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१४२ मेंदोनों रूप हैं॥

स्वातिसंस्थाननाम । कुब्जसंस्थाननाम । वामनसंस्थाननाम । हुण्डसंस्थाननाम चेति। यस्यो-
दयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहननंनाम ।[१]तच्छड्विधम्–वज्रवृषभनाराचसंहननंनाम ।

कर्म सो–न्यग्रोध परिमण्डल नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे वटवृक्षके (=न्यग्रोध) समान नाभिके नीचे पतला और ऊपरिका स्थूल वा मोटी (=परिमण्डल) शरीरकी आकृति वा आकार हो सो न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननामका नामकर्म है

स्वातिसंस्थाननाम $\frac{1}{4}^{111}$; =स्वातिकसंस्थान नामकर्म, वल्मीकसंस्थाननामकर्म, अथवा वल्मिकिसंस्थाननामकर्म, बांबी संस्थान नामकम अथवा बांबीके सदृश शरीरके आकार वा आकृतिका उत्पादक अर्थात् जिसके उदयसे नीचे मोटी ऊपर पतली (स्वातिसम) शरीरकी आकृति हो वह स्वातिकसंस्थाननामकर्म है

कुब्जसंस्थाननाम $\frac{9}{4}^{111}$; =कुब्जकसंस्थान नामका नामकर्म, कुबड़े शरीरके आकारका निर्वर्तक कर्म अर्थात् जिसके उदयसे टेढ़ी कुबड़ी पीठकी आकृति हो सो कुब्जकसंस्थान नामका नामकर्म है

वामनसंस्थाननाम $\frac{9}{4}^{111}$; =वामनसंस्थाननामकर्म छोटे वा गड्ढे शरीरके आकारका (=संस्थान) निर्वर्तक कर्म अर्थात् जिसके उदयसे शरीरका आकार अथवा शरीरके अवयव अधिक छोटेहों सो वामनसंस्थाननामकर्म है

हुण्डसंस्थाननाम च * इति* =और (=च)हुंडकसंस्थाननामकर्म ऐसे (=इति) (छह) हुये अर्थात जिसके उदयसे शरीरके अंग तथा उपांगके आकार (=संस्थान) की रचना ऊंची नींची घट बढ़ बेडौल विषमरूप बुरी तथा भयानकहो सो हुण्ड वा हुण्डक संस्थान नामका नामकर्म है ॥

यस्य-उदयात्$\frac{11}{4}$ अस्थि-बन्धन-विशेषः$\frac{1}{4}$ =जिसके उदयसे हाड़के बन्धनमें विशेषता
भवति।तत्$\frac{1}{4}^{111}$ संहननंनाम$\frac{1}{4}^{111}$;तत्$\frac{1}{4}^{111}$ षड्– =होती है वह संहननंनाम [का नाम] कर्म है । वह [संहननंनामक नामकर्म] छह
विधम्$\frac{1}{4}^{111}$ (२)वज्र(३)वृषभनाराचसंहननंनाम$\frac{1}{4}^{111}$ =प्रकार है वज्रवृषभनाराचसंहनन [नामका] नामकर्म,

(१) षट् शब्दका षड् अथवा षट् प्रथमा विभक्ति बहुवचन है, तीनों लिंगोंमें इसका यही रूप रहता है (२) वज्र–हीरा हीरक ॥ यह रत्न ऐसा कड़ा कठिन–दृढ़ होता है कि प्रसिद्ध है"हीरा वही घन चोटन टूटै" एक भाषा कोषमें वज्रका अर्थ कठिनका भी है तब इस अवस्थामें ऐसा अर्थ होगा कि कठिन वा कड़ा (नसोंका) वेष्टन, कीला तथा हाड़ [निकासमूह] सं। वज्रवृषभनाराचसंहनन है (३) 'वृषभ और ऋषभका एकही अर्थ है। वज्रऋषभका वज्रर्षभ नीचे लिखेहुये संस्कृत नियमसे हो जाता है यदि पहिले कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋ हो तो ऐसा ऋ विकल्प करिके स्वरके साथ मिलता है अर्थात् चाहे ऋ को स्वरके साथ मिलादो चाहे न मिलादो जैसे देव + ऋषि = देवऋषि, देव + अर्षि = देवर्षि, वज्र + अर्षभ = वज्रर्षभ हो गया । वृषभ अथवा ऋषभ = वेष्टन, वलय बन्धन, वेठन अर्थात् नसोंका

वज्रनाराचसंहननाम । नाराचसंहननाम । अर्धनाराचसंहननाम । कीलितसंहननाम । असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननाम चेति ॥

वज्रनाराचसँहननाम$_{द्व}^{१११}$ (१)नाराचसंहननाम$_{द्व}^{१११}$, =वज्रनाराचसंहनन [नामका] नामकर्म, नाराचसंहनन (नामका)नामकर्म,
अर्धनाराचसंहननाम$_{द्व}^{१११}$, कीलित(२)संहननाम$_{द्व}^{१११}$ =अर्धनाराचसंहननाम नामकर्म, कीलितसंहनन [नामका] नामकर्म
असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननाम$_{द्व}^{१११}$ च * इति * =और असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन (नामका) नामकर्म ऐसे (छह) हुये अर्थात्

(क) वज्र वा हीरके सदृश[=वज्रइव] [कड़े-दृढ़]वलयबन्धन [=वृषभ] कीला (=नाराच) तथा हाड़ों के समूहका निर्वर्तक कर्म सो वज्रवृषभनाराचसंहनन (नामका) नामकर्म, अथवा वज्रऋषभनाराचसंहनन (नामका) नामकर्म अथवा वज्रर्षभनाराचसंहनन (नामका) नामकर्म है भावार्थ जिसके उदयसे शरीरके ऋषभ (नशोंके बन्धन वा वेष्टन) नाराच (संधिके कीला) संहनन (हाड़ोंका समूह) वज्रके समान अभेद्य–अकाट्य–अछेद्य हों सो वज्रऋषभनाराच-शरीरसंहननाम (का नाम) कर्म है वा वज्रर्षभनाराचशरीरसंहननामकर्म है ॥

लपेटन वा वेष्टन, नसोंका वलयबन्धन, नसोंका बैठन ऐसा अर्थ है भावार्थ नसोंसे हाड़ोंके बंधनको यहां पर वृषभ कहा है (१) नाराच इस शब्दका यथार्थ अर्थ बाण अथवा तीरका है [देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २११] यहां पर कीलके अर्थ में है(२) 'संहननं अस्थिसंचयः''हाड़ोंका समूह संहनन है ऐसा अर्थ केशववर्णी गोम्मटसारकी ३३वीं गाथाके अर्थमें कहा है ॥ नाराच और संहननके मध्यमें शरीर शब्द गुप्त है पूर्ण ऐसे है "वज्रवृषभ नाराचशरीरसंहनन नामकर्म" जैसा कि गोम्मट सारकी गाथा (कर्मकाण्ड) के अर्थमें पण्डित टोडलमलजीने लिखा है "सो जिस वज्र संहनन युक्त शरीर विषै वज्रका वृषभ वज्रका नाराच ए दोऊ जहां होय ऐसा शरीर जाके उदयसे होय सो वज्रवृषभनाराचशरीरसंहनन नामहै"। इसी प्रकार शेष पाँचोंमें शरीर शब्द गुप्त है जिसको आगे सिद्ध करेंगे ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अर्थ वज्रर्षभनाराचसंहननाम इस दूसरेको कहा परन्तु यह नहीं प्रगट किया है कि इससे क्या अभिप्राय है, देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १८४॥

छहों संहननका अच्छा और स्पष्टकथन केशववर्णिकृतजीवतत्त्वप्रदीपिका(=गोम्मटसारके कर्मकांड पर टीका) में लिखा है जिसका अनुवाद ऐसे हैं

(क) संहननं-अस्थिसंचयः ऋषभो वेष्टनं वज्रवद्भेद्यत्वात् वज्रर्षभः । वज्रैवनाराचो वज्रनाराचः तौद्वावपि यस्मिन् वज्रशरीरे संहनने तत् वज्रर्षभनाराच संहननाम ॥ (गोम्मटसार कर्मकांड मुद्रित पृष्ठ २६)

संहननम् अस्थिसंचयः ऋषभः वेष्टनम् वज्रवत्	=हाड़ोंका समूह है सो संहनन है । ऋषभ बन्धन है। (वह वेष्टन) हीरा (रत्न)के समान
अभेद्यत्वात् वज्रर्षभः । वज्रे—	=अभेद्यअकाट्य होने(के हेतु) से वज्रवृषभ वा वज्रर्षभ(=वज्रऋषभ) है । हीराके
वत् नाराचःवज्रनाराचः तौ द्वौअपि(=तौद्वावपि)	=सदृश (कठिन) कीलाहै सो वज्रनाराचहै । ते दोनों(वज्रवृषभ और वज्रनाराच) भी
यस्मिन्वज्रशरीरे संहनने	=जिस वज्र संहननयुक्त शरीरमें
(यस्य उदयात्) तत् वज्रर्षभनाराचसंहननाम	=(जिसके उदयसे) होते हैं वह वज्रऋषभनाराच (शरीर) संहनन(नाम का)नामकर्म है॥

(ख) जिसके उदयसे शरीरके वज्रके हाड(=संहनन)और वज्रकी कीली (नाराच)हों परन्तु वेष्टन(=नशोंके बंधन,नशोंके लपटे) वज्रकेनहों सामान्य नशों के बन्धन हों सो वज्र(=हीरेके सदृश अभेद्य)नाराच(संधिके कीलायुक्त)शरीर संहनन नामकर्महै

(ग) जिसके उदयसे शरीरमें हाड तथा संधिनिके कीला तो हों परन्तु वज्र मयी न हों और वज्रमयी वलयबन्धन (=वेष्टन) भी न हों वह नाराचशरीरसंहनन (नामक=नामवाला) नामकर्म है ॥

(घ) जिसके उदयसे शरीरके हाड़ोंकी संधियां नाराचकरि आधी कीलीगई हैं वह अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म हैभावार्थ जिसके उदयसे शरीरमें हाड़ोंके सन्धिके कीला एकओर हों दूसरी लग नहों सो अर्द्धनाराचशरीरसंहनन(नामका)नामकर्म है

(ङ) जिसके उदयसे वज्रविना शरीरके हाड़कीलेहुये अर्थात् एक दूसरेमें फंसे हुये होते हैं सो कीलितशरीर संहनन नामका नामकर्म है भावार्थ जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीरहो जिसमें न वज्रवत् हाड़हों न वज्रके वेष्टनहों और न वज्र सदृश नाराचहों साधारण हाड़ोंकी सन्धियें परस्पर एक दूसरेमें फंसी हुई हों सो कीलित शरीर संहनन नामक नामकर्म है

(ख) एष एव वज्रास्थिबन्धः वज्रवेष्टनवर्जितः सामान्यर्षभवेष्टितः यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराच शरीरसंहनननाम। गोम्मटसार कर्मकांड मुद्रित पृष्ठ२६

एषः एव वज्रअस्थिबन्धः = यह(=एष)ही वज्रसदृश(अभेद्य) हाड़ों का शरीर(=बंध)अर्थात् वह शरीर जिसके वज्रवत् वेष्टन वज्रवत् कीला अथवा नाराच और वज्रवत् ही हाड़ संहनन कहे हैं

वज्रऋषभ(=वज्रवेष्टन)वर्जितः सामान्यऋषभ(=सामान्यवेष्टन) = वज्रके वेष्टन अथवा वज्रके वलयबन्धन(=वज्रवेष्टन)बिना सामान्यबन्धन(=ऋषभ से वेष्टितः यस्य उदयेन भवति तद् वज्रनाराच शरीरसंहननाम = वेढ़ा हुआ वा लिपटा हुआ (=वेष्टितः) जिसके उदयसे होता है वह वज्रनाराच शरीर संहनन (नामक) नामकर्म है।

(ग) यस्य कर्मणः उदयेन वज्रविशेषणेन रहितनाराचकीलिता अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहननाम ॥ (गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ २६)

यस्य कर्मणः उदयेन वज्रविशेषणेन रहित- = जिसकर्मके उदयकरि(शरीर) वज्रका विशेषणकरि वर्जित होताहै और जिसशरीरकी

नाराचकीलिताः अस्थि-संधयः भवन्ति । = हाड़ की संधियां(=अस्थिसंधयः)कीलोंकरि(नाराच)कीलित होती हैं(=कीलितामवन्ति)

तद् नाराच शरीरसंहननाम ॥ = वह नाराचशरीरसंहनन(नामका)नाम कर्म हैभावार्थ जिसके उदयसे शरीरमें वज्र रहित साधारण वेठन साधारण कील लगे हुये साधारण हाड़ हों

(घ) यस्य कर्मणः उदयेन अस्थि संधयो नाराचार्धकीलिता भवंति तदर्धनाराच शरीरसंहननाम ॥ गोम्मटसारकर्मकांड मुद्रितपृष्ठ२६से उद्धृत

यस्य कर्मणः उदयेन अस्थि-संधयः नाराच अर्ध-कीलिताः = जिस कर्मके उदयकरि (शरीरके)हाड़की संधियां नाराचकरि आधीकीलित

भवंति, तद्-अर्ध-नाराच-शरीर-संहननाम = होती हैं। वह अर्द्ध नाराच शरीर संहनन (नामका) नामकर्म है भावार्थ जिसके उदयसे जिस शरीर में हाड़ोंकी संधिमें कीला एक ओर हो दूसरा ओर न हो सो अर्धनाराच शरीर संहनन नामक नाम कर्म हैं।

(ङ) यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानि भवंति तत्कीलित शरीर संहननाम ॥ गोम्मटसार कर्मकांड मुद्रित पृष्ठ २६ से उद्धृत ॥

यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शननाम। तदष्टविधम्—कर्कशनाम। मृदुनाम। गुरुनाम। लघुनाम। स्निग्धनाम। रूक्षनाम। शीतनाम। उष्णनाम चेति॥ यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम

(च) जिसके उदयसे (आपसमें) नहीं मिले हों (=असम्प्राप्ति) (वरन् जुदे जुदे) सांपके (हाड़के) सदृश संहनन (सृपाटिकासंहनन) बंधेहुये हों वह असम्प्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहननामका नाम कर्म है भावार्थ जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर हो जिसके हाड़ परस्पर कीले हुये न होउन हाड़ोंकी संधियोंमें अन्तर हो चारों ओर बड़ी छोटी नसों लिपटीहों मांसादिकसे भरीहों आच्छादित हों वहअसम्प्राप्तासृपाटिका शरीरसंहनन (नाम का) नामकर्म है

यस्य उदयात् स्पर्श-प्रादुर्भावः तत् स्पर्शननाम ॥; =जिसके उदयसे स्पर्श वा छुहावटका प्रकाश हो वह स्पर्शन(नाम का)नाम कर्म है

तद् अष्ट-विधम् कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, स्निग्ध नाम, रूक्षनाम, शीतनाम, उष्णनाम च इति ॥ =वह आठ प्रकार कठोर स्पर्शनामकर्म कोमल नामकर्म, भारी स्पर्श नाम कर्म, हलका(=लघु) स्पर्श नाम कर्म-चिकना स्पर्श नाम कर्म, रूखा वा अचिक्कण स्पर्शनामकर्म, ठंडास्पर्शनामकर्म और (=च) तप्तस्पर्श नाम कर्म ऐसे हैं ॥

यद्-निमित्तः रस-विकल्पः तद् रसनाम ॥; =जिसके निमित्त स्वाद का भेद हो (=विकल्पः) वह रस (नामका)नाम कर्म है

यस्य उदयात् अवज्र-अस्थीनि कीलितानि भवंति तत् कीलित शरीर संहनन-नाम =जिसके उदयसे वज्ररहित(शरीरके)हाड़ [परस्पर-टोड़लमलअनुयादसे कीलेहुये होतेहैं वह कीलित शरीर संहनन नामक नामकर्म है॥ कीलक शरीर = कीलिक शरीर ॥

कीलक संहनन और नाराच[= कील, कीला] संहनन में यह अंतर है कीलकमें संहनन को एक दूसरे में साल देते हैं जैसे बढ़ई चौखटों के थानोंको एक दूसरेमें फास देते हैं नाराच संहननमें बढ़ई जैसे फसे हुये थानों में कीलें जड़ देते हैं तैसे फसे हुये हाड़ों में अथवा लगे हुये हाड़ों में कीले होती हैं, अर्धनाराचमें कील आर पार नहीं होती ॥

(च) यस्योदयेन अन्योन्यासंप्राप्तानि सरीसृप संहननवत्सिरावंधानि अस्थीनि भवंति तदसंप्राप्तसृपाटिका शरीर संहननम। कर्मकांडपृष्ठ२६सेउद्धृत

यस्य उदयेन अन्योन्य-असम्-प्राप्तानि- =जिसके उदयकरि परस्पर (=अन्योन्य) नहीं (=अ)एकत्रताको[=सम्]प्राप्तहुये(=प्राप्त)

सरीसृप संहननवत् सिरा - =वरन् भिन्न भिन्न] सांप[=सरीसृप]के हाडके समान[=संहननवत्] नसोंकरि(=सिरा)

बंधानि अस्थीनि भवंति, तद् अ-सम्-प्राप्त-सृपाटिका- =बंधेहुये हाड़ [=अस्थीनि] (जिस शरीरके] होते हैं वह असम्प्राप्तसृपाटिका

शरीर संहनन नाम। =शरीर संहननामका नाम कर्म है ॥

भावार्थ जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर हो जिसके हाड़ परस्पर कीले हुये नहो उन [हाड़ों] की संधियों में अन्तर हो चारो ओर बड़ी छोटीनसै लिपटी हों मांसादिकसे भरी हों और आच्छादित हों वह असम्प्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन [नामका) नाम कर्म है ॥

तत्पञ्चविधम्-तिक्तनाम। कटुकनाम। कषायनाम। आम्लनाम। मधुरनाम चेति ॥ यदुदयप्रभवो गन्धस्तद्गन्धनाम । तद्द्विविधम्-सुरभिगन्धनाम । असुरभिगन्धनाम चेति ॥ यद्धेतुको वर्णविभागस्तद्वर्णनाम । तत्पञ्चविधम्-शुक्लवर्णनाम । कृष्णवर्णनाम । नीलवर्णनाम । रक्तवर्णनाम । हरिद्वर्णनाम चेति ॥ पूर्वशरीराकारविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम । तच्चतुर्विधम्-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम । तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम ।

तत्[१] पञ्च-विधम्[१]-तिक्तनाम[१], कटुकनाम[१], कषायनाम[१], आम्लनाम[१], मधुरनाम[१] च *इति* ॥

=वो पांच प्रकार तीखारसनामकर्म वा चरपरारसनामकर्म, कडुआरसनामकर्म, खट्टेरसनामकर्म, खट्टारसनामकर्म और मीठारसनामकर्म ऐसे (पांच) हैं

यद्-उदय-प्रभवः[१] गन्धः[१] तद्-गन्धनाम[१], तद्[१] द्वि-विधम्[१]-सुरभिगन्धनाम[१], असुरभिगन्धनाम[१] च *इति* ॥

=जिसके उदयकी सामर्थ्यसे (देहमें) वासहो वह गन्धनामकर्म है, वह दो =प्रकारसुगन्ध(=सुरभिवास-अच्छीवास-)नामकर्म और खोटीवासनामकर्म ऐसेहै

यद्-हेतुकः[१] वर्णविभागः[१] तद्[१] वर्णनाम[१]; तत्-पंचविधम्[१]

=जिसके निमित्तक(शरीरमें)रंगका भेदहो वह वर्णनामकर्म है, वह पांच प्रकार-

शुक्लवर्णनाम[१] कृष्णवर्णनाम[१], नीलवर्णनाम[१], रक्तवर्णनाम[१], हरिद्-वर्णनाम[१] च *इति* ॥

=श्वेतवर्णनामकर्म, कालावर्णनामकर्म, नीलावर्णनामकर्म =अरुणवर्णनामकर्म और पीतवर्णनामकर्म ऐसे (पांच) हैं।

पूर्व-शरीर-आकार-अविनाशः[१] यस्य[१] उदयात्[१] भवति। तद्-आनुपूर्व्यनाम[१];

=जिसके उदयसे पहिले शरीरकी आकृति वा मूर्तीका विनाश नहीं होता है =वह आनुपूर्व्यनामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे मृत्युके पश्चात् और जन्मसे पहिले नवीन शरीरके योग्यपुद्गल वर्गणाओंको आत्मा ग्रहण नहीं करता है वरन् पूर्वले शरीरके आकार आत्माके प्रदेश बने रहते हैं, इस कर्मका उदय विग्रहगति (=नवीन शरीरधारण करने केलिये जीव के गमन) में ही होता है अन्यकाल में नहीं होता है ॥ इस कर्मका उदय काल जघन्य एक समय, मध्यम दो समय, उत्कृष्ट तीन समय मात्र है

तत्[१] चतुर्विधम्[१]-(१)नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम[१], तिर्यग्-गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम[१]

=वह(आनुपूर्व्य)नामकर्म चारप्रकार-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामका नामकर्म =तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनामका नामकर्म,

(१) "नरकगति प्राप्त होनेकों योग्य ऐसा पंचेंद्री जीवके विग्रहगति विषै पंचेंद्री पर्याप्त शरीरका आकार जाके उदयतें रहै सो नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम है ऐसे ही सब जानने।" कर्मकाण्डगोम्मट गाथा ३३ का अर्थ पं० टोडरमलकृत देखो ॥

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम । देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति ॥ यस्योदयादयस्पिण्डवद् गुरुत्वान्नाधः पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम ॥ यस्योदयात्स्वयंकृतोद्बन्धनमरुत्प्रपतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम ॥ यन्निमित्तः परशस्त्रादेर्व्याघातस्तत्परघातनाम ॥ यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातपनाम ।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम[1]''; ष* देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम[1]'' इति* ॥

=मनुष्यगतिप्रायोग्यापूर्व्य नामकर्म और (=च) देवगति =प्रायोग्यानुर्व्य (नामका)नामकर्म ऐसे है · अर्थात् जिस समयमनुष्य वा तिर्यंचकी आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीरसे पृथक् होकर नरकभव वा तिर्यंचभव प्रतिजानेको सन्मुख हो उस समय मार्गमें आत्माके प्रदेश पहिले(मनुष्य वा तिर्यंचके) शरीरकेआकारके ही रहते हैं सो क्रमसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य वा तिर्यंगति प्रायोग्यानुपूर्व्य है और जिस के उदयसे पूर्वोक्त शरीरका आकार विग्रहगतिमें बनारहता है उसको नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य वा तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं ॥ ऐसे ही शेषको जानलो।

यस्य[1]'' उदयात्[1]'अयस्-पिण्डवत्*गुरुत्वात्[1]'' =जिसके उदयसे लोहेके (=अयस्) पिंडके समान भारी होनेसे

न*अधः* पतति T न*च* अर्क-तूलवत्*लघुत्वात्[1]'' =न नीचे गिरताहैऔर(=च)न आकके(=अर्क)रुईकेसदृश (=तूलवत्) हलकापनसे

ऊर्ध्वम्*गच्छति T तद्[1]''(१)अगुरुलघुनाम[1]''; =ऊपर को जाता है वह अगुरुलघुनाम (का नाम) कर्म है ।

यस्य [1]''उदयात् [1]'स्वयंकृत-उद्बन्धन- =जिसके उदयसे अपनेआप कृत (=स्वयंकृत) फांसी लगाने (=उद्बन्धन)

मरुत्प्रपतन =देवतापर (=मरुत्) गिरने (=प्रपतन) वा वायुमें (=मरुत्) गिरपड़ने (=प्रपतन)

आदि-निमित्तः[1]'(२) उपघातः[1]'भवतिTतद्[1]'' उपघातनाम । =आदिक निमित्तसे उपघात(=आत्मघात)होता है वह उपघात(नामका)नामकर्महै

यद्-निमित्तः[1]'पर-शस्त्र-आदेः[1]'व्याघातः[1]'तत्[1]''परघातनाम[1]''; =जिसकेनिमित्त परके शस्त्र आदिसे(अपना)घातहो वह परघात(नामका)नामकर्महै

यद्-उदयात्[1]'निर्वृत्तम्[1]''आतपनम[1]''तद्[1]''आतपनाम[1]'' =जिसके उदयसे प्रकाशन (=आतपन)निष्पन्न होता है वह आतपनाम कर्म है अर्थात् जिसके उद्गतसे आतपकारी शरीर पावै सो आतपनाम है

(१) यहां शरीरसहित आत्माके सम्बन्धमें अगुरुलघु कर्मकी प्रकृतिहै सो शरीर सम्बन्धीहै अगुरुलघु स्वाभाविक जीवद्रव्योंमें गुणहै उससे आशय नहीं।
(२)"उपेत्यघात इत्युपघात आत्मघात इत्यर्थः" = अपने आधीनकरि अर्थात् अपने आप घात ऐसा उपघात है आत्मघात अर्थहै गोम्मट०कर्म०३३ गाथा

तदादित्येवर्ततेयन्निमित्तमुद्योतनंतदुद्योतनामातच्चन्द्रखद्योतादिषुवर्ततेयद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनामविहायआकाशम्। तत्र गतिनिर्वर्तकंतद्विहायोगतिनाम। तद्द्विविधम्-प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्

तद्[1] आदित्ये[2] वर्तते[3]।

=वह(आतापन) सूर्यमें होता है(=वर्तते) (और इस कर्मका उदय भी जो सूर्यके विमानमें बादर पर्याप्तजीव पृथिवीकायिक मणी स्वरूपहैं उनकेही होता है अन्यकें नहीं होता है)

यद्-निमित्तम्[1]।।।(१)उद्योतनम्[2]।।।तद्[3]।।।उद्योतनाम[4]।।।=जिसके कारण उजाला (=उद्योतन) होता है अर्थात् जिसके हेतु उद्योतरूप शरीर हो भावार्थ आतप रहित चमकीला शरीरका हेतुक हो वह उद्योतनाम (का नाम) कर्म है॥

तत्[1]।।।चन्द्र-खद्योत-आदिषु[2]वर्तते[3]।

=वह(उद्योतन,उजाला)चन्द्रमाके विमानमें पटवीजना आदि(चौइन्द्रिय जीवों)मे होता है

यद्-हेतुः[1] उच्छ्वासः[2]तद्[3]।।उच्छ्वासनाम[4]।।।विहायः=जिसके कारण(शरीरमें) (२) उच्छ्वास हो वह उच्छ्वास नाम कर्म है। विहाय (का अर्थ) आकाशम्[1]।।।;तत्र*गति-निर्वर्तकं[2]।।।तद्[3]।।।विहायो-गतिनाम[4]।।।; तद्[5]।।।द्विविधम्[6]।।।-प्रशस्त-अप्रशस्त-भेदात्[7]

=आकाश है वहां (आकाश)में गमनका जनक, साधक, वह विहायो =गति (नाम का) नामकर्म है, वह (आकाश गमन) दो प्रकार है शुभ वा मनोज्ञ- =और अशुभ, अमनोज्ञ वा अशोभनीक भेद से अर्थात् जैसे जो हस्ती-हंस-वृषभ की गतिके समान सुन्दर गमनका कारण हो वह तो प्रशस्त विहायो गति नाम कर्म है और जो ऊंट गर्धभादिकके समान असुन्दर गमनका कारणहोवहअप्रशस्त विहायो गति(नामका)नामकर्महै किन्तु मुक्त होनेपर जीवके तथा जड़ पुद्गलके जो गति होती है उसमें कर्म जनित कारण नहीं है।

(१) इसके पहिले "यदुदयादिवृत्तमातपनं" ऐसा वाक्य है इससे जान पड़ता है कि इस वाक्य में भी 'निर्वृत्तम्' शब्द पूर्वोक्त वाक्य से आकर्षित हो सक्ता है इस अवस्थामें यह वाक्य इस प्रकार होगा 'यन्निमित्तं निर्वृत्तमुद्योतनं' तब अनुवाद इस प्रकार होगा,- 'यद्निमित्तम् निर्वृत्तम् उद्योतनम्= जिसके कारण उजालापन (=उद्योतन) उत्पन्न(=निर्वृत्तम्) होता है (२) इसमें निः श्वास (=अपान) भी गर्भितहै क्योंकि राज० मुद्रित पृष्ठ ३०८ "यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम" वाक्यको १७वां वार्तिक नियतकर भाष्य लिखा है"उच्छ्वसनमुच्छ्वासःप्राणापानकर्मतद्धेतुकं तदुच्छ्वास नाम। उच्छ्वसनम् उच्छ्वासः प्राण-अपानकर्म-=उसासका लेना सो उच्छ्वास(अर्थात्)प्राण(=उच्छ्वास)अपान(=निःश्वास)की क्रिया(=कर्म)है तद् यद् हेतुकम् तद् उच्छ्वासनाम =उस (प्राण-अपानकर्म)का निर्वर्तक वा उत्पन्न करनेवाला जो सो (=तद्) उच्छ्वासनामकर्म है॥ "जिसकर्मके उदयसे श्वासोच्छ्वास हो उसे उच्छ्वास नामकर्म११५ कहतेहैं"संक्षेप गोम्मटसारपृष्ठ२०"प्राणापानपुद्गलग्रहण सामर्थ्यजनकमुच्छ्वास प्राण-अपान-पुद्गलग्रहण- =प्राण (=उच्छ्वास) अपान(=श्वास=निःश्वास) पुद्गलग्रहण करनेकी नाम, समाध्य० पृष्ठ१८३॥ सामर्थ्य-जनकम् उच्छ्वास नाम। =शक्तिका जो उत्पादक वा उपजाने वाला है, (वह) उच्छ्वास (नामका) नाम कर्म है।

(२)ऊंचालिया जो कोठेसे पवन सो। उच्छ्वासहै। यह प्राणहै। आमाकरि बाहिरकापवनभीतर कियाहुआ निःश्वास सो अपान है। अध्याय५सूत्र१९

शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम ॥ बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं शरीरं यतो भवति तत्साधारणशरीरनाम ॥ यदुदयाद् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत्त्रसनाम ॥ यन्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम ॥ यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्तत्सुभगनाम ॥

शरीरनामकर्म उदयात्[५]निर्वर्त्यमानं[१]।शरीरम्[१]।।एक-आत्म-उपभोग-कारणम्-[१]।।यतः*भवति[T]तत्[१]।। प्रत्येकशरीरनाम[१]।।।

=शरीर नामकर्मके उदयसे विद्यमान शरीर एक आत्माके
=भोगनेका निमित्त जिससे होता है वह प्रत्येक शरीरनाम(कानाम)कर्म है अर्थात् जिसके उदयसे एक एक आत्माके प्रति एक एक शरीर होता है सो है

यतः*
बहूनाम्[६]आत्मनाम्[६]उपभोग-हेतुत्वेन[३]।।साधारणं[१]।।शरीरं भवति[T] तत्[१]।।साधारण शरीरनाम[१]।।

=जिससे (अर्थात् शरीरनामा नामकर्मके उदयसे विद्यमान एक शरीर में)
=बहुत आत्माओं के उपभोगसे हेतुपना करि साधारण शरीर होता है
=वह साधारण शरीर(नामका)नाम कर्म है अर्थात् एकही शरीरमें अनन्त जीव एक क्षेत्रमें अवगाहन रूप रहैं जिस कालमें आहार, शरीर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास चार पर्याप्ति जन्म,मरण, उपकार, उपघात एकजीव ग्रहणकरता है उसीकालमें दूसरे भी अनन्त जीव ग्रहण करते हैं ऐसे जीव साधारण जीव कहलाते हैं ये साधारण जीव निगोदिया वनस्पति-कायमें होते हैं अन्य स्थावरोंमें नहीं होते और जिसके उदयसे एक शरीरमें ऐसे जीव होते हैं वह साधारण शरीरनामकर्म है

यद्-उदयात्[५]द्वि-इन्द्रिय-आदिषु[३]जन्म[१]।।।तत्[१]।। त्रसनाम[१]।।';यद्-निमित्तः[१]एकेन्द्रियेषु[३]

=जिसके उदयसे दो इन्द्रिय आदिकमें उत्पत्ति अथवा भव हो, वह
=त्रस(नामका)नाम कर्म है। जिसके कारण एकेन्द्रिय(पृथिवीकायिक-जलकायिक अग्निकायिक-वायुकायिक,वनस्पतिकायिक) निमें,

प्रादुर्भावः[१]तत्[१]।।।स्थावरनाम[१]।।।
यद्-उदयात्[५]अन्य-प्रीति-प्रभवः[१]तत्[१]।।।सुभगनाम[१]।।। ॥

=आविर्भाव,प्रकाश-(अर्थात् उत्पत्ति वा जन्म) हो वह स्थावर नाम कर्म है
=जिसके उदयसेदूसरेको प्रीतिउत्पत्ति (=प्रभवः) हो वह सुभग(नामका) नाम कर्म है अर्थात् जिसके उदयसे देखते ही अन्य जनोंकेप्रीतिरूपभाव होजाय।

(१) जन्मन् शब्द नपुंसक लिंगी है इसकी प्रथम विभक्ति एक वचन नपुंसकलिंग अम्म है

यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तत् दुर्भगनाम । यन्निमित्तं मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं तत्सुस्वर-नाम । तद्विपरीतं दुःस्वरनाम ॥ यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छुभनाम । तद्विपरीतमशुभनाम ॥ सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम ॥ अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम ॥ यदुदयादाहारादि-

---

यद्-उदयात्[५] रूपादिगुण-उपेतः[१] अपि* =जिसके उदयसे सुंदरता आदि गुण सहित हो तोभी (=अपि)

अप्रीतिकरः[१] ततः[५] दुर्भगनाम[१] यद्-निमित्तम्[७] =(अन्यजनोंको)प्रीतिका कारण न हो वह दुर्भगनाम कर्म है । जिसके कारण

मनोज्ञस्वर-निर्वर्तनम्[१] तत्[७] सुस्वरनाम[१] =अच्छे प्रियशब्दकी स्थापन (=निर्वर्तक) हो वह मनोज्ञस्वरनामक नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे किसीका शब्द प्रियलगे वह सुस्वर(नामका)नामकर्म है ।

तद्-विपरीतम्[१] दुःस्वरनाम[१] ॥ =उस(सुस्वरनामकर्म)के प्रतिकूल वा उलटा दुःस्वरनामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे किसी का शब्द अप्रिय लगे वा जिसके उदयसे अमनोज्ञस्वरकी प्राप्तिहो वह दुःस्वरनामकर्म है

यद्-उदयात्[५] (१)रमणीयत्वम्[१] तत्[७] शुभनाम[१] =जिसके उदयसे(मस्तक-मुख-हाथ-आदि अवयवोंमें)सुन्दरताहो वह शुभनाम(कानाम)कर्म है

तद्-विपरीतम्[१] अशुभनाम[१]; =उस(शुभनामकर्म)के विरुद्ध अशुभनामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे शरीरमें सुन्दरता न हो

सूक्ष्म-शरीर- =सूक्ष्म (अर्थात् जीवोंका उपकारक वा अघातक और अघात्य अरोक्य)शरीरका

निर्वर्तकम्[१] सूक्ष्मनाम[१] । =जनक वा उत्पन्न करने वाला सूक्ष्म है सो नामकर्म है ॥

अन्य-बाधाकर-शरीर-कारणम्[१] बादरनाम[१] =दूसरे को रोककरनेवाला (बाधाकर)शरीरका कारण सो बादरनामकर्म है ।

यद्-उदयात्[५] (२)आहार-आदि- =जिसके उदयसे (जीवके) आहार आदिक

---

(१) वैद्यकोश पृष्ठ ६०६ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३१०में रमणीय का अर्थ सुन्दर है इसलिये रमणीयत्वको सुन्दरताके अर्थ में लेकरअनुवाद किया गया है।

(२) जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाता है उसको पुद्गल कहते हैं, पुद्गल द्रव्य के दो भेद (क) परमाणु (ख) स्कन्ध हैं सबसे छोटे पुद्गल को परमाणु कहते हैं, अनेक परमाणुके बन्ध (= अनेक वस्तुओंमें एकपनेका ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध विशेष) को स्कन्ध कहते हैं ॥ स्कन्धके आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनो वर्गणा, कार्मणवर्गणा आदि २३ भेद हैं ॥ संसारी वा अशुद्ध जीवके सम्बन्धमें येही पांच प्रकारकी वर्गणायें जिसको ग्राह्य वर्गणा कहते हैं काम में आती हैं ॥ शेष १८ प्रकार की वर्गणायें काममें नहीं आती हैं, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीररूप जो परिणमें उनको आहारवर्गणायें कहते हैं । औदारिक और वैक्रियिक शरीरोंको कान्ति देने वाला तैजस शरीर जिन वर्गणाओं से बनता है उनको तैजसवर्गणा कहते हैं। जो शब्दरूप परिणमें उनको भाषा वर्गणा कहते हैं अथवा वचनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको भाषा वर्गणा कहते हैं। द्रव्यमनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको मनोवर्गणा कहते हैं । जो कार्मण(= ज्ञानावरणादि

पर्याप्तिनिर्वृत्तिः तत्पर्याप्तिनाम ॥ तत् षड्विधम् आहारपर्याप्तिनाम । शरीरपर्याप्तिनाम । इन्द्रियपर्याप्तिनाम । प्राणापानपर्याप्तिनाम । भाषापर्याप्तिनाम । मनःपर्याप्तिनाम चेति ॥

पर्याप्ति-निर्वृत्तिः[१]॥ =पर्याप्तिकी समाप्ति वा पूर्णता हो

तत्[२]॥[१]पर्याप्तिनाम [१]॥, तत्[२]॥षड्-विधम् [१]॥ =जो पर्याप्तिनामकनामकर्म है। वह (पर्याप्तिनामकनामकर्म) छह प्रकार

आहारपर्याप्तिनाम [१]॥, शरीरपर्याप्तिनाम[१]॥ =आहार पर्याप्तिनामक,म शरीरपर्याप्तिनामकर्म,

इन्द्रियपर्याप्तिनाम[१]॥,प्राणापानपर्याप्तिनाम[१]॥,=इन्द्रिय-पर्याप्तिनामकनामकर्म, प्राण-अपानपर्याप्ति नामकनामकर्म,

भाषापर्याप्तिनाम[१]॥,मनःपर्याप्तिनाम[१]॥च*इति*=भाषापर्याप्तिनामकर्म और (=च)मनःपर्याप्तिनामकर्म ऐसे हैं अर्थात् (क) एक शरीरको छोड़कर, नवीन शरीरको कारणभूत जिस नोकर्मवर्गणाको जीव ग्रहण करता है उसको खल रस भागरूप परिणमावनेके लिये जीवकी शक्तिके पूर्ण होजानेको आहारपर्याप्ति कहते हैं। (ख) खलभागको हड्डी आदि कठोर अवयवरूप तथा रस भागको लोहू आदि द्रव (नरम) अवयवरूप परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण होनेको शरीरपर्याप्ति कहते हैं॥ (ग) उनही नोकर्मवर्गणाके स्कन्ध मेंसे कुछ वर्गणाओंको अपनी अपनी इन्द्रियके स्थानपर उस उस द्रव्येन्द्रियके आकार परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण होजानेको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं (घ) इस ही प्रकार कुछ स्कन्धोंको श्वासोच्छ्वास-रूप परिणमावनेकी जो जीवकी शक्तिकी पूर्णता होती है उसको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं॥

आठ कर्मोंके अष्टकर्मोंके समूह रूप) परिणमै उनको कार्मण वर्गणा कहते हैं॥ (१) पर्याप्तिः—ग्रहीत आहारवर्गणाको खल, रस भागादिरूप परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होजाने को पर्याप्ति कहते हैं॥ जैसे घर घट वस्त्र आदिक अचेतन द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकारके होते हैं। वैसे ही जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकारके होते हैं। जिस प्रकार घर, घट वस्त्रादिक द्रव्य बन चुकने पर पूर्ण और उससे पहिले अपूर्ण कहे जाते हैं उस ही प्रकार जिन जीवोंकी पर्याप्ति पूर्ण होजाती है। उनको पर्याप्त वा पूर्ण और जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती उनको अपर्याप्त वा अपूर्ण कहते हैं॥ अपर्याप्त जीवोंके भी दो भेद हैं (क) निर्वृत्यपर्याप्त(ख)लब्ध्यपर्याप्तक जिनकी पर्याप्ति अभी तक पूर्ण नहीं हुई है किन्तु अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे पूर्ण हो जायगी उनको निर्वृत्यपर्याप्ति कहते हैं और जिनकी अभी तक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई और पूर्ण होनेसे प्रथमही जिनका मरण भी हो जावेगा अर्थात् अपनी आयुके कालमें जिनकी पर्याप्ति कभी पूर्ण न होसकेगी उनको लब्ध्यपर्याप्तक जीव अथवा लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं (४) छह पर्याप्तियोंमेंसे एकेन्द्रिय जीवके आदिकी (आहार-शरीर-इन्द्रिय-प्राणापान) चार पर्याप्तियें होती हैं द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनः पर्याप्ति को छोड़कर शेष पांचपर्याप्तियें होती हैं और संज्ञि पंचेन्द्रिय जीव के सर्वही पर्याप्तियें होती हैं॥

षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तिनाम ॥ स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम ॥ तद्विपरीतमस्थिरनाम ॥ प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम ॥ निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम ॥ पुण्यगुणख्यापनकारणं यशः कीर्तिनाम ॥

(ङ) वचनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंका(=भाषावर्गणाको)वचनरूप परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होनेको भाषा पर्याप्ति कहतेहैं ॥(च)और द्रव्यमनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको(=मनोवर्गणाको) द्रव्यमनके आकार परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण होनेको मनः पर्याप्ति कहते हैं ॥

षड्विध-पर्याप्ति-अभाव-हेतुः[१] अपर्याप्तिनाम[१] ; =छह प्रकार पर्याप्तिके न होने (=अभाव) का =कारण सो अपर्याप्ति(नामका)नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे जीव छह पर्याप्तियोंमेंसे एक भी पर्याप्ति पूर्ण करनेको समर्थ नहीं होता है अपर्याप्ति अवस्थामें ही मरणको प्राप्त होजाताहै अथवा यों कहिये–जिस कर्मके उदयसे जीवकी लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो वह अपर्याप्ति नाम =(कानाम)कर्म है।(शरीरके अंगोपांगके)दृढ़ताका(=स्थिरभावस्य=स्थिरत्वस्य)उत्पादक वा उत्पन्न

स्थिर-भावस्य[१] निर्वर्तकम्[१] स्थिरनाम[१] । =करनेवाला स्थिर नाम (कानाम) कर्म है भावार्थ जिसके उदयसे सात (रस-रुधिर-मांस-मेद-हाड-मज्जा-वीर्य धातु और सात (वात–पित्त-श्लेष्मखार–शिरसिरा नस–स्नायु-चाम और जठराग्नि)उपधातु अपने अपने स्थानमें स्थिरता को प्राप्त हों,दुष्कर उपवासादिक तपश्चचरणसे भी अंग उपांगोंमें भी स्थिरता बनी रहे वह स्थिर नामकर्म है ॥

तद्[१]विपरीतम्[१]अस्थिरनाम[१]; =उस (स्थिरभाव) के विरुद्ध अस्थिर नाम (का नाम) कर्म है भावार्थ जिसके उदयसे किंचित् उपवासादिक करनेमें तथा किंचिन्मात्र शीत उष्णादिके कारण अंगोपांग कृश होजायं धातु उपधातुओंकी स्थिरता नहीं रहे सो अस्थिर नाम (कानाम,कर्महै।

प्रभा-उपेत-शरीर-कारणम्[१] आदेयनाम[१]; =दीप्ति सहित वा चमक सहित शरीरका निमित्त सो आदेयनाम कर्म है।

निष्प्रभ-शरीर-कारणम्[१]अनादेयनाम[१]; =प्रभारहित वा दीप्तिवर्जित शरीरका हेतु अनादेयनाम (का नाम) कर्म है।

पुण्यगुण-ख्यापन-कारणम्[१] यशःकीर्ति-नाम[१]; =पवित्रवा उज्जवल(=पुण्य)गुणों की प्रगटताका,विख्याततांका हेतु सो =यशः(=पवित्र गुण, उज्ज्वल गुण) कीर्ति (=प्रगटता)(नामका) नाम कर्म है।

तत्प्रत्यनीकफलमयशःकीर्तिनाम ॥ आर्हन्त्य कारणं तीर्थकरत्वनाम ॥ उक्तो नामकर्मण उत्तरप्रकृतिभेदः । तदन्तरोद्देशभाजोगोत्रस्यप्रकृतिभेदो व्याख्यायते—

॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

गोत्रं द्विविधम् ॥ उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रमिति ॥ यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् । यदुदयाद्गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ॥ अष्टम्याः कर्मप्रकृतेरुत्तरप्रकृतिनिर्देशार्थमाह

तत्-प्रत्यनीक-फलम्[१] अयशःकीर्तिनाम[१]; =उस (यशःकीर्ति) के विरुद्ध फलदेनेवाला अर्थात् पापगुणोंकी ख्यातिका कारण अयशःकीर्ति नाम कर्म है भावार्थ ऐसा है कि जिसके उदयसे छते (विद्यमान) गुणभी प्रगट नहो सकें वरण अवगुण ही प्रगट हों सो अयशःकीर्ति नामकर्म है

आर्हन्त्य-कारणम्[१] तीर्थकरत्वनाम[१] ॥ =अरहन्तके होनेका (=आर्हन्त्य) निमित्त तीर्थकरत्व नामकर्म है अर्थात् जिस प्रकृतिके उदयसे अचिन्त्य विभूति संयुक्त अरहतपना उत्पन्न हो वह है ॥

उक्तः[१] नामकर्मणः[६] उत्तरप्रकृतिभेदः[१] तद्-अनन्तर-उद्देशभाजः[६] गोत्रस्य[६] प्रकृतिभेदः[१] व्याख्यायते । =नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिके भेद कहेगये उस (नामकर्म) के समीप (अनन्तर) =इच्छितविभाग गोत्र (कर्म) के प्रकृतिभेद कहेजाते हैं कि

उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥

= उच्चैर्नीचैश्च (गोत्रस्य द्वि-उत्तरः-प्रकृति-भेदौ भवतः)

सूत्रार्थ उच्चैः-नीचैः च गोत्रस्य[६] द्वि-उत्तर-प्रकृति-भेदौ[१] भवतः=ऊंच और (=च) नीच गोत्र (कर्म) के दो उत्तर प्रकृति भेद होते हैं

वृत्यनुवादः गोत्रम्[१] द्विविधम्[१] उच्चैस्*गोत्रम्[१] नीचैस्*=गोत्र (कर्म) दो प्रकार है ऊंचा अथवा बड़ा गोत्र (और) नीच

गोत्रम्[१] इति*; यस्य[६] उदयात्[५] लोकपूजितेषु[७] =गोत्र इस प्रकार(=इति)है। जिसके उदयसे संसारद्वारा पूजित वा प्रतिष्ठित

कुलेषु[७] जन्म[१] तद्[१] उच्चैस्गोत्रम्[१]; यद्-उदयात्[५] =कुलमें उत्पत्ति वह ऊंच गोत्र है । जिसके उदयसे

गर्हितेषु[७] कुलेषु[७] जन्म[१] तद्[१] नीचैः*गोत्रम्[१] =निंदित कुलमें उत्पत्ति वह नीच गोत्र है ।

अष्टम्याः[६] कर्मप्रकृतेः[६] उत्तरप्रकृतिनिर्देश-अर्थम्[१] आह =आठवां(अन्तराय) कर्म प्रकृतिके उत्तरप्रकृतियोंके कहनेके लिये कहते हैं कि

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम्॥१३॥दानलाभभोगोपभोगवीर्याणामन्तराय,एतेपञ्चान्तराय भेदाः॥

सूत्रार्थः—दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणाम्[६।१।] अन्तराय-एते[१।३।] पञ्चान्तरायस्य[६।१।] भेदाः[१।३।] =जो दान देनेमें प्रतिबन्धक हो सोदानका अन्तराय है जो लाभहोनेमें विघ्नकारक है सो लाभका अन्तरायहै
=जो भोग(करने)में बाधक है जो भोगका अन्तराय जो उपभोग(करने)में रुकावट डाले सोउपभोगकाअन्तराय है
=जो शक्ति वा बलके प्रगट करनेमें अड़चन वा अटकाव डाले सो वीर्य अथवा शक्तिका अन्तराय है
=जो पांच अन्तराय(कर्म)के भेद है भोग जो बार बार भोगनेमें आवे जैसे वस्त्र उपभोग जो एक बार भोगनेमें आवे

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समाष्ययत्त्वार्थाधिगमसूत्र में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें इस सूत्र का पाठ "दानादीनाम्" केवल इतना ही है परन्तु अर्थ वही किया है जो हमारे यहां अर्थात् "अन्तरायः पञ्चविधः । तद्यथा । दानस्यान्तरायः लाभस्यान्तरायःभोगस्यान्तरायः, उपभोगस्यान्तरायः वीर्यान्तराय इति ॥ इसलिये इससूत्र का दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्र पाठ तो एक नहीं हैं परन्तु अर्थ एक हैं ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदाय वालोंने जैसे "मतिश्रुतावधिमनः पर्यय केवलानाम् इस अध्यायके ६ वां सूत्रके स्थानमें "मत्यादीनाम्" ऐसा सूत्र मतिश्रुताधि मनः पर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ प्रथम अध्याय के इस सूत्र के आधार पर किया है उसी प्रकार उन्होंने दूसरे अध्यायके "ज्ञान दर्शनदानलाभभोगोपयोग वीर्याणि च" सूत्रके आधार पर इस सूत्र को "दानादीनाम्" ऐसा किया है हमारे यहां तत्त्वार्थराजवार्तिकके कर्त्ता स्वामी अकलङ्कदेवने तथा यत्त्वार्थश्लोक वार्तिकके कर्त्ता स्वामी विद्यानन्दजीने "मत्यादीनाम्" को इस कारणसे नहीं माना कि इन पांचोंका आवरण एकही उहरैगा पांच आवरण नहीं ठहरेंगे । (देखो टिप्पणी अध्याय ८ सूत्र ६ परन्तु उक्त स्वामीयों ने दानादीनाम् के न माननेके लिये कुछभी नहीं लिखा वरन् उनके निम्नलिखित वाक्योंसे ज्ञात होता है कि उनको कुछ विरोध भी नहीं है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यों और श्लोकसे प्रगट होता है ॥ दानादीनामंतरायापेक्षमार्थ्यतिरेकनिर्देशः, अंतराय इत्यनुवर्तनात् ॥ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४८० ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें यह प्रथम वार्तिक है जिसका भाष्य निम्न है = अंतराय इति वर्तते तदपेक्षया दानादीनामर्थ्यतिरेकः, क्रियते दानस्यांतरायो लाभस्यांतराय इत्यादि ।

दान-आदीनाम् अंतराय-अपेक्षया अर्थ-व्यतिरेकनिर्देशः = दानादिकके अन्तरायकी अपेक्षासे अर्थका पृथक् पृथक् (= व्यतिरेक) कथन है ॥
अन्तराय इति वर्तते (= अन्तराय इति-अनुवर्तनात्-श्लोकवार्तिक) = दान, लाभ, भोग उपभोग, वीर्य शब्दोंमें अन्तराय शब्द ऐसे जुड़ जाता है कि = (दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय हो जाते है)
तद्-अपेक्षया दान-आदीनाम् अर्थ-व्यतिरेकः क्रियते = उस (अन्तराय)के अपेक्षासे दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्यका अर्थ भिन्न२किया गया है
दानस्य-अन्तरायः लाभस्य-अन्तराय-इत्यादि । = (अर्थात्)दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय ।
वानादीनांतुपंचानामंतरायाः प्रसूत्रिताः पंचदानादिविघ्नस्य तत्कार्यस्य विशेषतः॥१४॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ४८० से उद्धृत ॥
दान-आदीनाम् तुपंचानाम् अन्तरायाः प्रसूत्रिताः = और (=तु) दानादिकके पांच अन्तराय प्रकर्ष रूपसे (=प्र)सूत्रमें कहे गये हैं
पंच दानादि विघ्नस्य तत्कार्यस्य विशेषतः = उस (अन्तरायकर्म) का कार्य विशेषरूपसे पांच दानादिमें विघ्न (करने)का है कई स्थानोंमें में 'दानादीनाम्' लानेसे प्रगट है कि इन आचार्यों को विरोध नहीं है ॥

अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते–दानस्यान्तरायो लाभस्यान्तराय इत्यादिदानादिपरिणाम व्याघातहेतुत्वात्तद्व्यपदेशः ॥ यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते, उपभोक्तुमभिवाञ्छन्नपि नोपभुंक्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते त एते पञ्चान्तरायस्य भेदाः ॥ व्याख्याताः प्रकृतिबन्धविकल्पाः ॥ इदानीं स्थितिबन्धविकल्पो वक्तव्यः ॥ सा स्थिति–

टीकानुवादः–अन्तराय–अपेक्षया[३] । भेद-निर्देशः[१] क्रियते=विघ्न करनेकी अथवा अन्तराय करनेकी अपेक्षाकरि भेदरूप कथन कियागया है

दानस्य[६] । अन्तरायः[१] लाभस्य[६] अन्तरायः[१] इत्यादि दान-आदि-परिणाम-व्याघात-हेतुत्वात् [५] ॥

=जैसे दानका अन्तराय, लाभका अन्तराय, इत्यादिक (पाँच भेद कहे गये हैं) =दानादि (करने) के भावोंकी रुकावट (=व्याघात) के कारण होनेसे

तद्-व्यपदेशः[१] यद्-उदयात्[५] दातु-कामः[१] अपि*न*प्रयच्छति=उस (अन्तरायकर्म) का उपदेश वा कथन है (अर्थात्) दानदेनेकीइच्छा है तोभी (=अपि) जिसके उदयसे नहीं देसक्ता है (सोदानान्तराय कर्म है)

लब्धु-कामः[१] अपि*न*लभते T =लेनेकी वांछा हो तोभी (=अपि) (जिसके उदयसे) नहीं प्राप्त करसकता है (सो लाभान्तराय कर्म है)

भोक्तुम्[६] । इच्छन् अपि*नभुंक्ते T =भोगनेको अभिलाषा करते हुयेभी (=अपि) (जिसके उदय से) नहीं भोग सक्ता है (सो भोगान्तराय कर्म है)

उपभोक्तुम्[६] । अभिवाञ्छन् न*अपि*न–उपभुंक्ते T =उपभोगनेको वांछा करते हुये भी (अपि) (जिसके उदयसे) नहीं उपभोग करसक्ता है सो उपभोगान्तरायकरि है

उत्सहितु–कामः[१] अपि* न* उत्सहते T =(किसी कार्यके लिये) उत्साह करने की इच्छा भी (=अपि) हो (जिसके उदयसे उत्साह नहीं कर सक्ता है अर्थात् बल प्रगट नहीं करसक्ता है सोवीर्यान्तरायकर्म है

ते[१] । एते[१] पंच–अन्तरायस्य[६] भेदाः[१] । प्रकृतिबन्ध–विकल्पाः[१] =ते इतने पांच अन्तराय (कर्म) के भेद हुये । प्रकृति बन्धके भेद

व्याख्याताः[१] । इदानीम्*स्थिति-बन्ध-विकल्पः[१] वक्तव्यः[१] सा[१] । स्थितिः[१] =कहे गयेहैं। अब स्थितिबन्धके भेद कहना चाहिये । वह स्थिति

त्रिविधा, उत्कृष्टा जघन्या च ॥ तत्र यासां कर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिः समाना, तन्निर्देशार्थमुच्यते

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यःपरास्थितिः

द्वि-विधा[१]।उत्कृष्टा[२]।जघन्या[३]।चतत्रयासां[४]।कर्मप्रकृतीनाम्[५]।=दो प्रकार है उत्कर्ष आर (=च)जघन्य तहां जिन कर्मप्रकृतियों की उत्कृष्टा[१]।स्थितिः[२]।समाना[३]।तद्-निर्देश-अर्थम्[४]।।उच्यते।=उत्कृष्ट स्थिति तुल्य है।उस (उकृष्ट स्थिति)के उपदेशके लिये कहाजाता हैकि

(१) (२)आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः परा स्थितिः ॥१४॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है (२) तिसृणाम्- तिसृणाम्-यह शब्द स्त्रीलिंग में 'त्रि' शब्दकी षष्ठीविभक्ति बहु वचन है ॥ हमने सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकी चार हस्तलिखित प्रतियों का, राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकोंका, श्लोकवार्तिक मुद्रित, हस्तलिखित प्रतियोंका और बारह तेरह और भी तत्त्वार्थसूत्रके, श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र तथा माध्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकाके पाठ मिलाये तो सबमें 'तिसृणाम्' शब्द निकला,सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों मुद्रित प्रतियोंमें आठ दश स्थानोंमें और अर्थ प्रकाशिकामें 'तिसृणाम्' शब्द निकला, तिसृणाम् शब्द व्याकरणानुसार सर्वत्र प्रयोगमें आता है 'तिसृणाम्' का प्रयोग नहीं करते हैं', इसका प्रयोग वेदोंमें मिलता है, वेदोंमें कहीं कहीं पर 'तिसृणाम्' भी पाया जाता है जैसाकि निम्नसूत्रोंसे प्रगट है ॥ "त्रि चतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ" अष्टाध्यायी ७ २-९९=(विभक्तौ - सूत्र ८४ से अनुवर्तता है)त्रि, चतुरोः, स्त्रियाम् 'तिसृचतसृ =विभक्ति परे हो, पश्चात् आवें तो स्त्रीलिंगमें (वर्तमान) त्रि-चतुर् शब्दोंको तिस्-चतस् क्रमसे)आदेश हों ॥ नामि ।६।४।३=नामि अङ्गस्य दीर्घः)=नाम् परे हो तो अङ्गको दीर्घ हो जैसे कर्तृ+नाम् =कर्तॄणाम् परन्तु 'न तिसृचतसृ' ६। ४ । ४-न, तिसृ, चतसृ (नामि दीर्घः)=नाम परे होतो तिसृ और चतसृ अङ्गका दीर्घ नहीं जैसे तिसृ+नाम्=तिसृणाम् और चतसृ+नाम्=चतसृणाम्(इनका न पलट गया णमें)इसलिये तिसृणाम् ठीक है। छन्दस्युभय था। ६। ४। ५ =छन्दसि उभय था=नाम् परे हो तो छन्दो विषयमें (अर्थात् वेदोंमें) तिसृ और चतसृ अंगोको विकल्प करके दीर्घ हो तिसृणाम् तिसृणाम्, चतसृणाम् चतसृणाम् ॥ अन्य व्याकरणोंमेंभी यही नियम माना गया है ॥ सुबन्तरूप कौमदीके पृष्ठ५१ से जहां स्त्रीलिंग 'त्रि' शब्दके रूप दिये हैं निम्न वाक्य उद्धृत हैं "तिसृचतसृ इत्यनयोः षष्ठीबहुवचने दीर्घो न भवति" =तिसृ-चतसृ इन दोनोंका षष्ठीविभक्ति बहुवचनमें दीर्घ नहीं होता है अर्थात् ऋ उक्त दो शब्दों का दीर्घ नहीं होता है। पूज्यपादस्वामी जो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और जैनेंद्रव्याकरणके भी कर्ता हैं, इस विषय पर निम्न सूत्र देते हैं "नाभ्यतिसृचतसृ' ४-४-३ सूत्र तिसृ-चतसृ शब्दों को छोड़कर 'नाम्' परे होतो अंगको दीर्घ हो अर्थात्'नाम् षष्ठी विभक्ति किसी अंगके पश्चात् आवे तो उस शब्दके अंगका दीर्घ हो जाता है परन्तु तिसृ चतसृ दो दीर्घ नहीं होते हैं जैसे सर्वज्ञ+नाम्=सर्वज्ञा+ नाम् यहां 'अ' को दीर्घ किया परन्तु तिसृ+नाम् ।चतसृ+नाम्=तिसृणाम् चतसृणाम् यहां ऋ स्वर दीर्घ न हुआ॥पाठक विचार करलें क जब पूज्यपाद स्वामी के मतानुसार तिसृणाम् रूप बनता है तो वह अपनी वृत्ति में कैसे'तिसृणाम्' का प्रयोग कर सक्ते हैं इसलियेमुद्रित सर्वार्थ-सिद्धिवृत्तिके पृष्ठ २६,३९६,३९८ और द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ १६ इत्यादि पर जहां कहीं भी' तिसृणाम्' शब्द का प्रयोग किया है वह पूज्यपाद स्वामीके मतके विरुद्ध है और ठीक नहीं है इसलिये हमने सबस्थानोंमें 'तिसृणाम्' शब्दका प्रयोग किया है ॥

सूत्रार्थः—आदितः*तिसृणाम्[१] अन्तरायस्य[२]च*=आदिसे(अर्थात् अध्याय ८ सूत्र ४केआरम्भ क्रमसे) तीन ज्ञानावर्णदर्शनावरण—वेदनीय कर्म प्रकृतियोंकी और (=च) अन्तराय(कर्म प्रकृति) की

(१)त्रिंशत्सागरोपम—कोटीकोट्यः[१]परा[२]स्थितिः[३]=तीस सागर प्रमाण कोड़ा कोड़ी (अर्थात् तीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण) (जीवके साथ) अधिकसे अधिक अवस्थान वा ठहराव है भावार्थ उक्त चार कर्मकी उत्कर्ष वा अधिकतम स्थिति वा ठहराव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके साथ तीस कोड़ा कोड़ी ३०×१०००००००×१०००००००=३०,०००००००००००००अर्थात् तीन पद्मसागर प्रमाण है।

(१) (क) तीस सागर प्रमाण कोड़ा कोड़ी, सत्तर सागरोपम कोड़ा कोड़ी (सूत्र १५) और बीस सागरोपम कोटी कोट्यः इन वाक्यों का क्या आशय है बहुधा भाईयोंका यह विचार है वा समझ रक्खा है कि तीस करोड़को तीस करोड़से गुणा करनेसे जो फल आवै वह तीस कोड़ा कोड़ी प्रमाण होगा, इसी प्रकार सत्तर करोड़को सत्तर करोड़से गुणा करनेसे जो लब्धि आवै वह सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है और इसी प्रकार बीस करोड़को बीस करोड़से गुणा करनेसे जो लब्धि आवैगी वह बीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होगी ॥ यथार्थ में यह बात नहीं है, ठीक यह है कि तीसको एक कोड़ा कोड़ी अर्थात् ३०×(एक करोड़ × एक करोड़)=३०×१०००००००×१०००००००=३०००००००००००००००तीन पद्म ॥७०×(१०००००००×१०००००००)=७००००००००००००००सात पद्म सागर प्रमाण हुये इसी प्रकार २०×(१०००००००×१०००००००)=२००००००००००००००=२ पद्म सागर प्रमाण हुये क्योंकि(१)एक कोड़ा कोड़ी का अर्थ स्पष्ट है कि एक करोड़की गणनाको एक करोड़की संख्यासे गुण करनेसे जो लब्धि वा गुणन फल आवेगा सो गुणन फल एक कोड़ा कोड़ी होगा अर्थात् १०००००००×१०००००००=१००००००००००००००दस नील संख्या होगी(ख) त्रिंशत्सागरोपम कोटी कोट्यः सततिः सागरोपम कोटी कोट्यः (सूत्र १५) और विंशतिः सागरोपम कोटी कोट्यः' इन तीनों वाक्योंसे प्रगट है कि तीस सागर प्रमाण गुणित कोड़ा कोड़से, सत्तर सागर गुणित एक कोड़ा कोड़ीसे और बीस सागर गुणित एक कोड़ा कोड़ी से तात्पर्य है (ग) प्रबल प्रमाण यह है कि पं० टोडलमलजी ने गोम्मट सारके कर्मकाण्ड की गाथा १५६ का अर्थ केशव वर्णीकृत जीव तत्व प्रदीपिका संस्कृतके अनुसार अनुवाद करते हुये निम्नलिखित लेख दिया है "आयुविना सात कर्मनिकी उदयकी अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिका एक सौ वर्ष जानने। अवशेष स्थितिकी इसी प्रतिभागकरि आबाधा जाननी। सो कहिये है एक कोडा कोडी सागर स्थितिकी सौ वर्ष आबाधा होय तौ सत्तर कोडा कोडी सागर स्थिति की आबाधा केती होइ ऐसे त्रैराशिक करिए। तहां प्रमाण राशि एक कोड़ा कोड़ी सागर, फल राशि सौ वर्ष, इच्छा राशि सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर; तहां फल राशिकरि इच्छाको गुणो प्रमाणका भाग दीए लब्धिराशिका प्रमाण सात हजार वर्ष आए सोई मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट आबाधा जाननी ऐसेही अपनी अपनी स्थिति प्रमाण इच्छा राशि कीएँ अपना अपना आबाधाकाल का प्रमाण आवै है। जिनकी चालीस कोड़ा कोड़ी सागरकी स्थिति है तिनका चार हजार वर्ष प्रमाण आबाधा काल है। जिनकी तीस कोड़ा कोड़ी सागरकी स्थिति है तिनकी तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधाका काल है ऐसे और भी प्रकृतिनिका आबाधाकाल जानना। पं० टोडलमल कृत गोम्मट कर्म० पृष्ठ १६०।

मध्येऽन्ते वा तिसृणां ग्रहणं माभूदिति आदित इत्युच्यते। अन्तरायस्येतिवचनं व्यवहितग्रहणार्थम् ॥ सागरोपममुक्तपरिमाणम्।कोटीनां कोट्यः कोटीकोट्यापरा उत्कृष्टेत्यर्थ। एतदुक्तं भवति-

वृत्यनुवादः मध्ये[१] अन्ते[२] वा तिसृणाम्[३] ग्रहणं[४] =मध्यमें अथवा अन्तमें तीन (कर्मों) का आदान अथवा ग्रहण

मा*भूत् T इति* आदितः*
इति* उच्यते T ।

=न(=मा)होजावै(=अभूत्)ऐसे आदितः(=आदिसे)(तिसृणां शब्दके प्रथम और निरन्तर)
=कहा गया है भावार्थ यदि सूत्रमें आदितः शब्द न लाकर केवल 'तिसृणामन्तरायस्य च' इत्यादि सूत्र होता तो यह नहीं जान पड़ताकि मध्यके तीनकर्म वा अन्तके तीन कर्म(ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय,आयु,नाम,गोत्र,अन्तरायमेंसे किस)की अन्तराय सहित तीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण उत्कर्षस्थिति है इसलिये आदितः शब्दसे स्पष्टकर दिया है कि "ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तराय" सूत्रसे आदिके तीन कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और वेदनीय,अन्तराय सहितकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है ॥

अन्तरायस्य[१] इति*वचनं[२] व्यवहित-ग्रहण-अर्थम्[३] =(सूत्रमें) 'अन्तरायका'ऐसा वाक्यका ग्रहण संयुक्तता(=व्यवहित)के लिये (अर्थम्)है
अर्थात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-तथा (=च) अन्तराय संयुक्त (प्रत्येककी) तीस तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है

सागरोपमम्[१] उक्त-परिमाणम्[२] । =सागरोपम है सो वर्णित संख्या (=उक्त-परिणाम) है (देखो अध्याय तीन सूत्र ३८)

(१) कोटीनाम्[१] कोट्यः[२] कोटीकोट्यः[३]; =किरोड़ोंके किरोड़ हैं सो कोटी कोट्य है भावार्थ एक करोड़को एक करोड़से गुणा करनेसे जो लब्धि आवे, जो गुणनफल आवै सो एक कोड़ा कोड़ी है। जैसे
१०००००० × १०००००० = १०००००००००००० दसनील प्रमाण संख्या हुई ॥

परा[१] उत्कृष्टा[२] इति*अर्थः[३] एतत्[४] उक्तं[५] भवति=परा उत्कर्ष ऐसा तात्पर्य है (इसलिये) यह अर्थ (=उक्त) (इस सूत्रका) होता है कि

(१)(क) कोटी अथवा कोटि ये दोनों शब्दोंका अर्थ करोड़ है ॥ यहां पर कोटी शब्दका प्रयोग है न कि कोटि का (क्योंकि)दशशती और कोटी शब्दों के विभक्तियोंके वेही रूप हैं जो दासी शब्दके हैं दासी शब्दका बहुवचन प्रथमा विभक्ति में दास्यःरूप है और षष्ठी विभक्ति बहुवचनमें दासीनाम् है इसी प्रकार कोटी शब्दका बहुवचन प्रथमा विभक्तिमें कोट्यः रूप है औरषष्ठी विभक्तिबहुवचनमें कोटीनाम् है(ख)कोटि शब्दभी स्त्रीलिंग है इसके

ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामुत्कृष्टा स्थिति स्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्य इति ॥ सा कस्य भवति ?। मिथ्यादृष्टेः संज्ञिनः पंचेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य ॥ अन्येषामागमात्सम्प्रत्ययःकर्तव्यः ॥ मोहनीयस्योत्कृष्टस्थितिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

ज्ञानावरण—दर्शनावरण—वेदनीय—अन्तरायाणाम्[६] उत्कृष्टा[१] (१) स्थितिः[१]। त्रिंशत्सागरोपम—कोटीकोट्य :[१] इति* : सा[१] कस्य[६] भवति T ? मिथ्यादृष्टेः[६] संज्ञिनः[६] पंचेंद्रिय[६] पर्याप्तकस्य[६]; (२)अन्येषाम्[६] (३)आगमात्[५] सम्प्रत्ययः[१] कर्तव्यः[१]; मोहनीयस्य[६]॥ उत्कृष्ट—स्थिति—प्रतिपत्ति—अर्थम्[२]॥ आह T

=ज्ञानावरण—दर्शनावरण—वेदनीय—तथा अन्तराय(कर्म) निका
=उत्कर्ष ठहराव (संसारी जीवके साथ) तीस सागर प्रमाण
= कोड़ा कोड़ी है (प्रश्न) वह स्थिति किसकी होती है?
(उत्तर) मिथ्यादृष्टी (प्रथमगुणस्थानवर्ती)संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तक जीवकी
=होती है । अन्य (जीवों)की स्थिति शास्त्रसे प्रतीत करना चाहिये ।
=मोहनीय कर्मकी उत्कर्ष स्थिति जानने के लिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ सप्ततिः (सागरोपमकोटीकोट्यःपराःस्थितिः)मोहनीयस्यकर्मणःभवति

रूप सब विभक्तियोंमें उन स्त्रीलिंग शब्दोंके सदृश हैं जिनके अन्तमें इ-ई जैसे मति-मति शब्दका प्रथमा विभक्ति बहुवचन मतयः है इसी प्रकार कोटि शब्दका कोटयः है परन्तु ऊपर वृत्तिमें हमको कोट्यः रूप बहु वचनमें मिलता है इसलिये स्पष्ट है कि कोटी शब्दका प्रयोग है निःसन्देह दासीकी षष्ठीबहुवचन दासीनाम् है और मतिकी मतीनाम् है उसी भांति कोटी और कोटि दोनोंकी षष्ठी बहुवचनका एकही रूप कोटीनाम् है (१) बन्धके प्रथम समयसे लेकर जितने काल अवस्थान रहै सो स्थिति बन्ध है() अन्येषाम्—अन्य शब्दकी षष्ठी बहुवचन पुल्लिंग और नपुसंकलिंगमें यही एक रूप होताहै यहांपर पुल्लिंगमें इस हेतुसे लिखा है कि जीवोंसे सम्बन्ध रखताहै और जीव शब्द पुल्लिंग है(३)शास्त्रमें इस प्रकार अन्य जीवोंकी स्थिति बन्धकी स्थिति लिखी हैकि(क)एकेन्द्रिय पर्याप्तककें इनचार(ज्ञाना-वरण दर्शनावरण-वेदनीय-अन्तराय)कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपमके सप्तभाग कीजिये उनमें तीन भाग प्रमाणहै(ख)द्वीन्द्रिय पर्याप्तकके पचीस सागरोपमके सात भागमें तीन भाग प्रमाण है (ग)त्रीन्द्रिय पर्याप्तकके पचास सागरोपमके सात भागमें तीन भाग प्रमाणहै(घ)चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकके सौसागरोपमके सातभागमें तीन भाग प्रमाण है(ङ)असैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके सहस्र सागरोपमके सात भागमें तीन भाग प्रमाणहै। संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके अन्त कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण (अर्थात् एक कोटी सागरसे ऊपर और कोड़ाकोड़ी सागरसे नीचे इतने सागर प्रमाण) उत्कृष्ट स्थिति बन्ध है (छ) एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय-असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके उक्तचारकर्मोंकीउत्कृष्ट स्थिति अपनेर पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति कहीं तिनसे पल्यकाअसंख्यातवांभागन्यूनहै

सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिरित्यनुवर्तते॥ इयमपि परा स्थितिर्मिथ्यादृष्टेः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्यावसेया॥ इतरेषां यथागममवगमः कर्तव्यः॥ नामगोत्रयोरुत्कृष्टस्थितिप्रतिप्रत्यर्थमाह—

विंशतिर्नामगोत्रयोः॥ १६॥

सूत्रार्थः—सप्ततिः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ सागरोपम-कोटीकोटयः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ =सत्तरि सागर प्रमाण कोड़ा कोड़ी
परा$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ स्थितिः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ मोहनीयस्य$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ कर्मणः$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ भवति T =उत्कृष्ट स्थिति मोहनीय(कर्म)की है॥(दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठअर्थएक है)

वृत्त्यनुवादः—सागरोपम-कोटीकोट्यः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ परा$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ स्थितिः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ =(इस पन्द्रहवां सूत्रमें चौदहवां सूत्रसे) सागरोपम कोटीकोटयः परास्थितिः
(=सागर प्रमाण कोड़ाकोड़ी उत्कृष्ट स्थिति)
इति* अनुवर्तते T। इयम्$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ अपि* =ऐसा (वाक्य)आता है। यह भी(अर्थात् चौदहवां सूत्रमें स्थितिकही सो,यह भी)
परा$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ स्थितिः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ मिथ्यादृष्टेः$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ संज्ञिन्-पञ्चेन्द्रियस्य$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ =उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टी सैंणीपंचेन्द्रिय
पर्याप्तकस्य$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ अवसेया$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ इतरेषाम्$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ (१)यथाआगमम्* =पर्याप्तक(जीवों)कीजानना चाहिये। अन्य(जीवों)की(उत्कृष्टस्थिति) आगमकेअनुसार
अवगमः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ कर्तव्यः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$॥नाम-गोत्रयोः$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ उत्कृष्ट- =बोध करना चाहिये। नाम तथा गोत्र दोनों (कर्मों)की उत्कर्ष
स्थिति-प्रतिपत्ति-अर्थम्$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ आह T ॥ =स्थिति कहनेके लिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

विंशतिर्नामगोत्रयोः॥१६॥विंशतिः(सागरोपमकोटीकोट्यः परास्थितिः)नामगोत्रयोःकर्मणोःभवति

सूत्रार्थः—विंशतिः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ सागरोपम-कोटी-कोटयः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ परा$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ =बीस सागर प्रमाण कोड़ाकोड़ उत्कृष्ट वा अधिक से अधिक
स्थितिः$_{\text{प्र}}^{\text{१}}$ नाम-गोत्रयोः$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ कर्मणोः$_{\text{ष}}^{\text{६}}$ भवति T =स्थिति नाम तथा गोत्र दोनों कर्मोंकी होती है॥

(१) यथाआगमम्—एकेन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरकी है (ख) द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पचीस सागर प्रमाण है (ग)त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर है(घ)चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सौसागर प्रमाण है(ङ)बहुरि पर्याप्तक असंज्ञि पंचेन्द्रियकी एक सहस्र सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है(च)बहुरि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तथा असंज्ञि पचेन्द्रिय अपर्याप्तककी अपनी अपनी पर्याप्तिकी स्थितें कहीं तिनतिन्सें पल्यके असंख्यातवां भाग न्यून जाननी (छ) और सैंनी पचेन्द्रिय अपर्याप्तककें अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति जाननी॥ समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "नामगोत्रयोर्विंशतिः" पाठ है॥ दोनों आम्नायोंमें अर्थ एक है॥

सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिरित्यनुवर्तते ॥ इयमप्युत्कृष्टा स्थितिर्मिथ्यादृष्टेः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य ॥ इतरेषां यथागममवबोद्धव्या अथायुषः कोत्कृष्टा स्थितिरुच्यते

॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

पुनः सागरोपमग्रहणं कोटीकोटी

वृत्त्यनुवादः-सागरोपम-कोटीकोटयः[1]''परा[1]''स्थितिः[1]''=(इस सोलहवां सूत्रमें चौदहवां सूत्रसे) सागरोपमकोटीकोटयः परास्थिति (=सागर प्रमाण कोड़ाकोड़ी) (उत्कृष्ट स्थिति)

इति* अनुवर्तते T इयम्[1]''' अपि*
=ऐसा(वाक्य) आता है। यह भी(अर्थात् १४,१५ सूत्रमें स्थिते कहीं वे भी,यहभी)

उत्कृष्टा[1]''स्थितिः[1]''मिथ्यादृष्टेः[1]संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य[1]
=अधिकतम (=उत्कृष्ट) स्थिति मिथ्यादृष्टीसंज्ञी पंञ्चेन्द्रिय

पर्याप्तकस्य[1] इतरेषां[1](१)यथा-आगमम्[1]''अवबोद्धव्या[1]''
=पर्याप्त(जीव)कीहै।शेष(जीवों)की(उत्कृष्ट स्थिति) शास्त्रानुसार जानना चाहिये

अथ-आयुषः[1]''का[1]''उत्कृष्टा[1]'' स्थितिः[1]''उच्यते T ॥
=अब आयु की प्रकर्ष स्थिति कितनी है (अग्रिमसूत्रमें)कही जाती है

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥

= त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणिआयुषः(परास्थितिः)भवति

सूत्रार्थः—त्रयस्त्रिंशत्–सगरो–पमाणि[1]''आयुषः[1]''
=तेतीस सागरप्रमाण आयु

कर्मणः[1]''परा[1]''स्थितिः[1]''भवतिT
=कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति अर्थात् अधिकसे अधिक स्थिति होती है

वृत्त्यनुवादः-पुनः*सागरोपमग्रहणं[1]''कोटीकोटी-
=बहुरि(=पुनः) (इससूत्रमें) सागरोपम(शब्द)का ग्रहण कोटीकोटी (वाक्य) के

(१) यथा आगमम् (क) एकेन्द्रिय पर्याप्तककी (एक सागरका सात भागमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है (ख) द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी पचीस सागरका सात भागमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है (ग) त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरके सात भागमें से दो भाग प्रमाण हैं (घ) चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरके सात भागमें से दो भाग प्रमाण है (ङ) असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से दो भाग प्रमाण है (च) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है और (छ,-ज-झ-ञ-ट) बहुरि एकेन्द्रिय,द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय असैनी अपर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति अपने अपने पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थितिसे पल्योपमके असंख्यात वें भाग घाटि(स्थिति)जाननी ॥ (२) समाप्यतस्त्वार्थाधिगमसूत्रमें आयुषः १७वां सूत्र बदलके स्थानमें आयुष्कस्य है शेष सूत्र पाठ एकही है आयुषः और आयुष्कस्य का एकही अर्थ आयुका ऐसा है क्योंकि आयुस् शब्दमें कन् प्रत्यय स्वार्थ में (=उसी अर्थमें, अपने अर्थ में) लगानेसे आयुष्क बनता है इसलिये, दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्रका अर्थ एक है ॥

निवृत्त्यर्थम्। परा स्थितिरित्यनुवर्तते ॥ इयमपि पूर्वोक्तस्यैव ॥ शेषाणामागमतोऽवसेया ॥ उक्तोत्कृष्टा स्थितिः॥ इदानीं जघन्या स्थितिर्वक्तव्या॥ तत्र समानजघन्यस्थितीः पञ्च प्रकृतीरवस्थाप्य तिसृणां जघन्यस्थितिप्रतिपत्त्यर्थं सूत्रद्वयमुपन्यस्यते लघ्वर्थम्—

॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अपरा जघन्या, वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्ताः ॥

निवृत्ति–अर्थम्$^{1}_{6}$'''$_{6}$,परा$^{1}_{6}$''स्थितिः$^{1}_{6}$''इति* =छोड़ने वा न लानेके लिये है। परा स्थिति ऐसा (वाक्य चौदहवां सूत्रसे इस सूत्रमें)
अनुवर्तते T। इयम्$^{1}_{6}$''' अपि*पूर्व-उक्तस्य$^{6}_{6}$' =आता है। यहभी(उत्कृष्ट स्थिति) प्रथम कथित(संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों) की
एव*। शेषाणाम्$^{5}_{6}$'(१)आगमतः*अवसेया$^{1}_{6}$'' ॥ =ही(=एव) है। बचे हु`(जीवो की उत्कृष्ट स्थिति) आगमसे जानना चाहिये।
उक्ता$^{1}_{6}$''उत्कृष्टा$^{1}_{6}$'' स्थितिः$^{1}_{6}$''; इदानीम्*जघन्या$^{1}_{6}$'' =उत्कर्ष स्थिति कही गई। अब जघन्य वा हीनसे हीन
स्थितिः$^{1}_{6}$''वक्तव्या$^{1}_{6}$''; तत्र समान-जघन्य-स्थितीः$^{2}_{6}$'' =स्थिति कहना चाहिये। तहां बराबर वा तुल्यन्यूनसेन्यून (=जघन्य) स्थितियें
पञ्च$^{2}_{6}$'' प्रकृतीः$^{2}_{6}$'' अवस्थाप्य ÷ =पांच(ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-आयु-अन्तराय कर्म)प्रकृतियोंको(इससमय)छोड़कर
तिसृणाम्$^{5}_{6}$॥जघन्य-स्थिति-प्रतिपत्ति-अर्थम्$^{4}_{6}$''' =तीन (कर्म वेदनीय–नाम–गोत्र) की घाटि से घाटि स्थिति कहनेके लिये
सूत्र–द्वयम्$^{1}_{6}$'''उपन्यस्यते T लघु-अर्थम्$^{4}_{6}$'''– =युगल सूत्र संक्षेपके लिये रचाजाता है

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य = अपरा (स्थितिः) द्वादशमुहूर्ताः वेदनीयस्य कर्मणः भवति।

सूत्रार्थः—(२) अपरा$^{1}_{6}$'' (३) द्वादश–मुहूर्ताः$^{1}_{6}$' =हीनसे हीन (=अपरा) बारह मुहूर्त (=९$\frac{3}{5}$ घंटा) ॥
वेदनीयस्य $^{6}_{6}$''' कर्मणः स्थितिः$^{1}_{6}$''भवति T =वेदनीय कर्मके अवस्थान वा ठहराव है। $\frac{48}{5}$घंटेका एक मुहूर्त होता है।

वृत्त्यनुवादः—अपरा$^{1}_{6}$''जघन्या$^{1}_{6}$'' वेदनीयस्य$^{6}_{6}$''' =न्यूनसे न्यून (=अपरा) घाटि से घाटि (=जघन्या) वेदनीय (कर्म) का
द्वादशमुहूर्ताः $^{1}_{6}$' =(अवस्थान वा ठहराव) बारह मुहूर्त है।

---

(१)असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है और एकेन्द्रियादिकके आयुका उत्कृष्ट स्थिति बंध कोटि पूर्व जानना ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३१२ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४८१(२)दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है(३)मुहूर्तः–यह शब्द पुल्लिंग

नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥

मुहूर्ता इत्यनुवर्तते । अपरास्थितिरिति च॥ अवस्थापितप्रकृतिजघन्यस्थितिप्रतिपत्त्यर्थमाह-

शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ॥२०॥

(१) **नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥** (अपरा स्थितिः) नामगोत्रयोःअष्टौ (२)(मुहूर्ताः) भवति

सूत्रार्थः-अपरा$\frac{1}{1}$॥स्थितिः$\frac{1}{1}$॥नामगोत्रयोः$\frac{6}{2}$॥अष्टौ$\frac{1}{1}$मुहूर्ताः$\frac{1}{1}$=जघन्य स्थिति नाम तथा गोत्र दोनों कर्मों की आठ मुहूर्त (काल पर्यन्त)है।

वृत्त्यनुवादः-मुहूर्ता$\frac{1}{1}$॥इति*अनुवर्तते।

=मुहूर्ताः ऐसा(वाक्य अठारहवां सूत्रसे इस सूत्रमें) आता है अथवा प्रवर्तता है

अपरा$\frac{1}{1}$॥स्थितिः$\frac{1}{1}$॥इति*च*

=(सूत्रमें)अपरा(शब्द १८वां सूत्रसे)और स्थितिःऐसा(शब्द सूत्रमें १४वां सूत्रसे)आताहै

अवस्थापित-

=ठहरे हुये अथवा रहे हुये (=अवस्थापित) (पांच ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-आयु-अन्तराय कर्मकी)

प्रकृति-जघन्य-स्थिति-प्रतिपत्ति-अर्थम्$\frac{1}{1}$॥॥ आह-

=प्रकृतियोंका हीनसे हीन अवस्थान वा स्थिति जतावनेके लिये कहते हैं कि

शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः(३) **॥२०॥**

सूत्रार्थः—शेषाणां$\frac{6}{3}$॥पंचानाम्$\frac{6}{3}$॥

=शेषाणांपंचानामप्रकृतीनाम् अन्तर्मुहूर्ता$\frac{1}{1}$॥अपरास्थितिः

प्रकृतीनाम्$\frac{6}{3}$॥अन्तर्मुहूर्ता$\frac{1}{1}$॥अपराः$\frac{1}{1}$॥स्थितिः$\frac{1}{1}$॥

=अवशिष्ट वा बचेहुये पांच(ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-आयु अन्तराय कर्मों)की

=प्रकृतियोंकी मुहूर्तसे हीन जघन्य स्थितिहै प्रत्येक कर्मकी जघन्य स्थिति $\frac{8}{9}$ घंटे सेन्यूनहै

और नपुंसकलिंग दोनों हैं यहां पर पुल्लिगमें आया है॥ $\frac{8}{9}$ घंटे का मुहूर्त होता है। समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "शेषाणामन्तर्मुहूर्ता"सूत्रका पाठ "शेषाणामन्तर्मुहूर्तम्" ऐसा है॥ इस पाठ में अन्तर्मुहूर्तम् नपुंसकलिंगमें आया है॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३००और अमरकोश वर्ग ४ श्लोक ११ के अनुकूल यह शब्द(पु०न० है 'मुहूर्तो द्वादशक्षिप्रयाम्", इत्यमरः अर्थात् मुहूर्त बारह क्षण का है और स्त्रीलिंग वर्जित(शेषलिंगोंमें)होताहै।

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है (२) अष्टौके स्थानमें अष्ट लानेसे सूत्र लघु होजाता अर्थात् "नामगोत्रयो रष्ट" ऐसा सूत्र होता सो क्यों नहीं किया ? क्योंकि अष्टन् शब्द यथार्थमें है उसका प्रथमा बहुवचन तीनों लिंगोंमें अष्ट-अष्टौ दोनों ही होता है। केवल बहुवचन ही इस अष्टन् का होता है,जिस संज्ञाके साथ आता है उसके अनुसार इसका वचन और विभक्ति होती है परन्तु तीनों लिंगोंमें एकही अष्ट वा अष्टौ होता है ॥

(३)समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अन्तर्मुहूर्ताःकेस्थानमें अन्तर्मुहूर्तम् है शेषपाठ वही है जो हमारेयहां है,हमारेयहां सूत्र पाठ दोप्रकार का है एकमें"अन्त-

शेषाणां पंचानां प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्ताऽपरा स्थितिः ॥ ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां जघन्या स्थितिः सूक्ष्मसाम्पराये। मोहनीयस्य अनिवृत्तिबादरसाम्पराये। आयुषः संख्येयवर्षायुष्कतिर्यक्षुमनुष्येषु च॥ आह-उभयी स्थितिरभिहिता ज्ञानावरणादीनामथानुभवः किं लक्षण इत्यत आह-

भावार्थ ज्ञानावरण कर्म प्रकृतिकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त स्थिति है (२) दर्शनावरण कर्म प्रकृतिकी न्यूनसेन्यून अन्तर्मुहूर्त स्थिति है (३) मोहनीय कर्म प्रकृतिकी घाटि से घाटि अन्तर्मुहूर्त अवस्थान है (४) आयु कर्म प्रकृतिका भी हीन से हीन ठहराव एक मुहूर्तसे हीन है (५) और अन्तराय कर्मप्रकृतिकी भी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥

वृत्यनुवादः—शेषाणाम् ६/३ पंचानाम् ६/३ =शेष पांच(ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-आयु-अन्तराय कर्मों मेंसे प्रत्येककर्म)की
प्रकृतीनाम् ६/३ अन्तर्मुहूर्ता:१/३ अपरा १/१ स्थितिः १/१; =प्रकृतियोंकी अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है।
ज्ञान-दर्शन-आवरण-अन्तरायाणाम् ६/३ जघन्या १/१ =ज्ञानावरण-दर्शनावरण तथा अन्तराय (कर्मों) की हीन से हीन
स्थितिः १/१ सूक्ष्मसाम्पराये ७/१, मोहनीयस्य ६/१ =स्थिति सूक्ष्मसांपराय (दशवांगुण स्थान वर्ती) में है। मोहनीय (कर्म) की
अनिवृत्तिबादरसाम्पराये ७/१; आयुषः ६/१ =अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (नववां गुणस्थानवर्ती)मेंहै। आयु(कर्म) की(जघन्य-स्थिति)
संख्येय-वर्ष-आयुष्क-तिर्यक्षु ७/३ मनुष्येषु ७/१ च *॥आह =संख्यात बरसकी आयु वाले तिर्यंचोंमें तथा मनुष्योंमें (बन्धती) है। प्रश्न करताहै कि
उभयी १/१ स्थितिः १/१ ज्ञानावरणादीनाम् ६/३ अभिहिता १/१ =दोनों (जघन्यतथा उत्कृष्ट) स्थितियें आठकर्म ज्ञानावरणादिकोंकी कहींगई
अथ *अनुभवः १/१ किं *लक्षणः १/१ इति *अतः * आह T =अब अनुभवका क्या लक्षण है, इसलिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

मुहूर्ता है अन्यमें "अन्तर्मुहूर्ताः" है (जैसे सदा सुखजीकृत मुद्रित तत्वार्थसूत्रलघुटीका में तथा निर्णयसागरमुद्रित जैनपाठसंग्रहमें मुहूर्ताः है) इस अध्यायके अठारहवां सूत्रमें सिद्ध किया है कि मुहूर्त शब्द पुल्लिंगी और नपुंसक लिंगी है, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको नपुंसक मानकर 'अन्तर्मुहूर्तम्' पाठ है और हमारे यहां उन पाठोंमें जहां 'अन्तर्मुहूर्ता' पाठ है वहां 'आ' स्त्रीलिंगका चिह्न लगा कर मुहूर्तका स्त्रीलिंग कर दिया है, स्त्री लिंग शब्द जिनके अन्तमें दीर्घ अकार होता है उनका स्त्रीलिंग भी दीर्घ अकारान्तही होता है जैसे शाला शब्द का स्त्री लिंग एक वचन शाला है दो वचन शालेहै और बहु वचन 'शालाः' है ॥ और इसी प्रकार मुहूर्ताः बहु वचन स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति में यहां पर हो सक्ता है, यदि मुहूर्त शब्द को पुलिंग रक्खा तो भी बहु वचन – पुल्लिंग– प्रथमा विभक्ति में मुहूर्ताः ही रूप होगा अन्तर्मुहूर्ताः पाठ अन्तर्मुहूर्ता पाठ से और अन्तर्मुहूर्तम् दोनों पाठों से अच्छा है क्योंकि अन्त मुहूर्ता और अन्त मुहूर्तम् इन एक वचन शब्दों में यह अर्थ भी हो सक्ता है कि शेष (पांच) सबकी जघन्य स्थिति अर्थात् सब पांचों की मिल कर अन्तमुहूर्त मात्र है जब कि सूत्र कारका अभिप्राय है कि शेष पांच कर्मों मेंसे प्रत्येक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है-ऐसा अभिप्राय अन्तर्मुहूर्त शब्दके बहु वचन-अन्तर्मुहूर्ताः से ही स्पष्टतया निकल सक्ता है। इसलिये "शेषाणाम् अन्तर्मुहूर्ताः" ऐसा पाठ लिया है ॥

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

विशिष्टोनानाविधोवापाकोविपाकःपूर्वोक्तकषायतीव्रमन्दादिभावास्रवविशेषाद्विशिष्टःपाकोविपाकः॥

विपाकोऽनुभवः=विपाकःअनुभवःभवति ॥"उदयो विपाकः"सर्वार्थसिद्धि अध्याय ६ सूत्र १४ ॥

सूत्रार्थः-(१)विपाकः$_{१}$अनुभवः$_{१}$ =विशेषरूप वा विविध प्रकार, नाना प्रकार पचन (=पाक) सो विपाक है सोही (विपाक अनुभव है अर्थात् "कर्मप्रकृति पचकर उदय आवैताका रस अनुभवमें "(भोगनेमें आवै)"सो अनुभव कहिये"सर्वार्थ०वचनिका॥

वृत्यनुवादः-विशिष्टः$_{१}$ वा नानाविधः$_{१}$ =विशेषरूप =विशिष्ट) अथवा विविध प्रकार–अनेक प्रकार

पाकः$_{१}$ विपाकः$_{१}$ =पचन अथवा पाक सो विपाकहै अर्थात् विपाक(क)=विशिष्टपाक(ख)=नानापाक, (इनदोअर्थोंकोकहेहैं)

पूर्वोक्त–कषाय–तीव्र–मन्द–आदि–भाव– =पूर्व कथित कषायके प्रकर्ष, तीव्र अथवा तीक्ष्ण तथा धीमे आदिक भाव

आस्रव-विशेषात्$_{५}$'विशिष्टः$_{१}$'पाकः$_{१}$'विपाकः$_{१}$'=आस्रवके विशेषसे विशेषयुक्त (=विशिष्ट) पाक सो विपाक है अर्थात् उपकार,अपकार करनेके है स्वरूप जिनका ऐसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी प्रकृतियोंके पूर्व आस्रवके निमित्तसे तीव्र, मंद मध्यम भावकरि जो उदय सो विपाक है सो ही अनुभव (सूत्रमें) वर्णित है ॥

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'विपाकोऽनुभवः" पाठ है कहीं कहीं पर "विपाकोनुभवः"पाठ है । दोनों ठीक है ऐसेऽचिन्हके सम्बन्धमें देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ १० ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "विपाकोऽनुभावः" पाठ है । कहीं कहीं पर विपाकोऽनुभागः पाठ है ॥ उदय,विपाक,अनुभव,अनुभाव,अनुभाग,एकार्थ वाची हैं ॥"विपाक कूं अनुभव कह्या अनुभव नाम भोगने का है"अर्थप्रकाशिका ॥ अब प्रश्न यह है कि विशेषरूपसे उदय, विविधप्रकारसे उदय, अनुभव, विपाक का अर्थ यथार्थमें अनुभव, अनुभाग का है वा अनुभाग बन्ध,अनुभव बन्धका है ॥ नम्रतापूर्वक निवेदन हैकि एक अर्थ नहीं है,सदासुखजी, जयचन्दजीने जो अर्थ किया है वह विपाक और अनुभवका लक्षण कहा है और सर्वार्थसिद्धिमें "अथानुभवः किं लक्षणः" ऐसा प्रश्न किया गया है उसका उत्तर दिया है कि "विपाकोऽनुभवः" या यों कहिये कि उक्त दोनों अनुवादकों ने शक्ति में व्यक्तिका उपचार किया है अर्थात् अनुभागबन्ध शक्ति रूप है उसको व्यक्ति रूपमें कह दिया है, जिन्गुणस्थानोंमें कषायका अभाव है वहाँ प्रकति बन्ध और प्रदेश बन्ध होते हैं जो योगके द्वारा उत्पन्न होते हैं और स्थितिबन्ध तथा अनुभागबन्ध नहीं होते हैं ज्योंही प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध होते जाते हैं(त्योंही विना अवस्थान, ठहराव वा स्थितिके और विना फलदानके शक्ति के पड़े हुये झडते चल जाते हैं । "ततश्च निर्जरा" =उदय, विपाक, कर्मफल भोगने वा अनुभव के पश्चात् कर्म झड़जाते हैं यह सूत्र ज्ञापक है कि 'विपाकोऽनुभवः' सूत्रमें शक्तिमें व्यक्तिका उपचार किया है अन्यथा यह सूत्र अनुभव बंधसे संबंध नहीं रखता है क्योंकि अनुभवबंध का लक्षण ऐसे है कि"तीव्रमंद मध्यम रूप कर्मोंके उदय होने पर आत्माको सुख दुःखादि फल होता है सो कर्ममें उस फलदान शक्तिका पड़जानाहै उसे अनुभाग बन्ध कहते हैं"इस विषयपर विद्वान प्रकाश डालकर मुझको कृपया सूचित करेंगे ॥

अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभवभावलक्षणनिमित्तभेदजनितवैश्वरूप्यो (वैस्वरूपो) नानाविधः पाको विपाकः । असावनुभव इत्याख्यायते ॥ शुभपरिणामानां प्रकर्षभावाच्छुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः । अशुभप्रकृतीनांनिकृष्टः ॥ अशुभपरिणामानां प्रकर्षभावादशुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः । शुभप्रकृतीनां निकृष्टः ॥ स एवं प्रत्ययवशादुपात्तोऽनुभवो द्विधा प्रवर्तते, स्वमुखेन परमुखेन च ॥ सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनैवानुभवः ।

अथवा*द्रव्य–क्षेत्र–काल–भव–भाव–लक्षण–निमित्त-	=अथवा द्रव्य-क्षेत्र–काल–भव–भावके लक्षण निमित्तके
भेदजनित–वैश्वरूप्यः$^{1}_{6}$ (वैस्वरूपः$^{1}_{6}$)	=भेदसे उत्पन्न हुआ (=जनित)विचित्र रूप (वैश्वरूप्यः=वैस्वरूपः)
नानाविधः$^{1}_{6}$पाकः$^{1}_{6}$विपाकः$^{1}_{6}$;असौ$^{1}_{6}$	=(वा)अनेक प्रकार उदय(=पाकः)सो विपाक है, यह (असौविपाक) अर्थात् उदय
अनुभवः$^{1}_{6}$इति*आख्यायते^{T} ॥	=अनुभव है ऐसा प्रसिद्ध है (=आख्यायते)
शुभ–परिणामानाम्$^{6}_{3}$प्रकर्षभावात्$^{5}_{6}$शुभप्रकृतीनाम्$^{6}_{3}$॥	=भले परिणामोंके उत्कर्ष होनेसे (=भावात्) शुभ प्रकृतियोंका
प्रकृष्टः$^{1}_{6}$अनुभवः$^{1}_{6}$; अशुभ–प्रकृतीनाम्$^{6}_{3}$॥निकृष्टः$^{1}_{6}$;	=उत्कृष्ट अनुभव होता है । अशुभ प्रकृतियोंका हीन (=निकृष्ट) (अनुभव) होताहै अर्थात् अशुभ प्रकृतियोंमें मन्द रस पडता है सो उदय मन्द होता है
अशुभपरिणामानाम्$^{6}_{3}$ प्रकर्षभावात्$^{5}_{6}$अशुभ-प्रकृतीनाम्$^{6}_{3}$॥	=बुरे परिणामोंकी अधिक विद्यमानतासे (=भावात्) अशुभ प्रकृतियोंका
प्रकृष्टः$^{1}_{6}$ अनुभवः$^{1}_{6}$; शुभप्रकृतीनाम्$^{6}_{3}$॥ निकृष्टः $^{1}_{6}$;	=उत्कृष्ट अनुभव वा उदय होता है भली प्रकृतियोंका हीन अनुभव होता है, अर्थात् शुभ प्रकृतियों में मंदरस पड़ता है अशुभ प्रकृतियोंमें तीव्ररस पड़ता है ।
सः$^{1}_{6}$ एवं* प्रत्ययवशात्$^{5}_{6}$; उपात्तः$^{1}_{6}$ अनुभवः$^{1}_{6}$द्विधा*	=वह इसप्रकार कारणके वशसे प्राप्तहुआ अनुभव दो प्रकार
प्रवर्तते ^{T} स्वमुखेन$^{3}_{6}$॥॥	=प्रवर्तताहै अथवा दो प्रकार होताहै । स्वमुखकरिअर्थात् अन्यकर्म अन्यकर्म रूप होकर, उदयमें नहीं आवै अपने २ बंधके अनुसार उदय आता है ।
परमुखेन$^{3}_{6}$॥॥ च*	=और परमुखकरि अर्थात् अन्यकर्म अन्यकर्मरूप होय उदय आता है बंध अन्य कर्म रूप होता है उदय दूसरे कर्म रूप प्रवर्तता है ।
सर्वासाम्$^{6}_{3}$॥मूल-प्रकृतीनाम्$^{6}_{3}$॥ स्वमुखेन$^{3}_{6}$॥॥एव*अनुभवः$^{1}_{6}$	=सबमूल (ज्ञानावर्णादिक आठकर्मों की)प्रकृतियोंका स्वमुखकरिही=(एव)अनुभवहोताहै

उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानां परमुखेनापि भवति (१)॥ आयुर्दर्शनचारित्रमोहवर्जानां

अर्थात् इन आठ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु,नाम,गोत्र और अंतराय ,कर्म अपने अपने बंधके अनुसार ही उदय में आतेहैं, इन मूल आठ कर्मों में ऐसा नहीं हो सक्ता है कि ज्ञानावरणकर्मरूप होकर बंध होवै और दर्शनावरण रूपहोकर अथवा किसीऔर कर्मरूप होकर उदयमें आवै,पूर्वोक्त आठ कर्मों मेंसे जो कर्म बन्धता है उसही कर्मरूप उदयमें आता है न कि अन्य कर्मरूप

उत्तरप्रकृतीनाम्[६] तुल्यजातीयानाम्[६] =समानजातिके (कर्म) जिनकी उत्तरप्रकृतियोंका
परमुखेन[३] अपि भवति[१] ॥ =(परमुखकरि) भी(अनुभव) होता है अर्थात् उसी जातिके कर्मकी अन्यरूप उत्तरप्रकृति बंधती है परन्तु उसीजातिके कर्मकी दूसरी उत्तरप्रकृतिरूप उदयमें आती है अथवा अनुभवमें आती है भोगनेमें आती है ॥ जैसे—ज्ञानावरण कर्मकी उत्तरप्रकृति मतिज्ञानावरणीय रूप बंधै और ज्ञानावरणकी अन्य उत्तरप्रकृति श्रुतज्ञानावरणीयरूप होकर उदयमें आती है। तथा जैसे वेदनीय कर्मकी उत्तर प्रकृति असाता वेदनीयरूप होकर बंधै परन्तु कारणके वशसे सातावेदनीयरूप होकर रस देवे वा उदय में आवै ॥

आयुःदर्शन-चारित्रमोह-वर्जानाम्[६]- =(तिन समान जातिकी उत्तरप्रकृतियोंमें भी) आयु तथा दर्शनमोह,चारित्रमोह =(कर्मों) की (उत्तरप्रकृतियोंको) छोड़करके, त्यागकरके (अन्यतुल्य जातीय कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंमें परमुखकरि अनुभव अथवा परमुखोदय होता है अर्थात् आयु कर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके अन्यरूप होकर अनुभव वा उदय नहीं होता है जो आयु बन्धती है उसहीका उदय होता है (=आयुर्वर्जनस्य) और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके जो दर्शनमोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियें है उनका परस्पर परिवर्तन नहीं होता है (=दर्शनचारित्रमोहवर्जयोः) जो प्रकृति बंधता है सो ही उदय आती है ॥

(१) 'भवति' शब्द और 'आयुर्दर्शनचारित्रमोह वर्जानां' वाक्यके मध्यमें विराम का "॥" चिन्ह है इसकारण इनदोनों वाक्योंका अनुवाद बहुत बढगया है तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ३१२में इन दोनों वाक्योंमें भवतिके पश्चात् विरामका चिन्ह नहीं है इसलिये लोकों दोनों वाक्योंका अर्थ सुगमतासे थोड़े में आजाता है "उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानांपरमुखेनापि भवति-आयु दर्शन चारित्रमोह वर्जानां । नहि नरकायुर्मुखेन" इत्यादि

आयुः दर्शन-चारित्र-मोह वर्जानाम् =आयु-दर्शनमोह चारित्र मोह(को उत्तर प्रकृतियों को) वर्जकरके
तुल्य जातीयानाम् उत्तर प्रकृतीनाम् परमुखेन अपि भवति = समान जातिके (कर्मनिकी) उत्तर प्रकृतियोंका अन्यरूप होकर भी उदय होता है ॥

नहि नरकायुर्मुखेन तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा विपच्यते । नापि दर्शनमोहश्चारित्रमोहमुखेन । चारित्रमोहो वा दर्शनमोहमुखेन ॥ आह–अभ्युपेमः प्रागुपचितनानाप्रकारकर्मविपाकोऽनुभव इति इदं तु न विजानीमः किमयं प्रसंख्यातो ऽप्रसंख्यात इत्यत्रोच्यते प्रसंख्यातोऽनुभूयते

(१)नहि*नरक आयुर्मुखेन[३]''' तिर्यग्आयुःमनुष्य आयुर्वा विपच्यते[T] ।

=(जैसे) तिर्यंच आयु अथवा मनुष्य आयु नरक आयु रूप होकर नहीं =भोगीजाती है, नहीं पचाई जाती है, नहीं उदय में आती है ।

न*अपि* दर्शनमोह[१]'चारित्रमोह(२)मुखेन[३]''; चारित्रमोहः[१]' वा*दर्शनमोहमुखेन[३]''' (३)(विपच्यते) ।

=न दर्शन मोह भी (=अपि)चारित्र मोह रूप करि (भोगा जाताहै=विपच्यते) =अथवा चारित्र मोह दर्शनमोह रूप करि (नहीं भोगी जाती है,वा नहीं उदयमें आती है)

आह[T](४)अभि-उपेमः प्राच्-उपचित-नाना-प्रकार-कर्म-विपाकः[१]' अनुभवः[१]' इति*इदं[३]''' तु न(५)विजानीमः किम्[१]।।। अयम्[१]''' प्रसंख्यातः[१]' अप्रसंख्यातः[१]' इति* अत्र* उच्यते[T] प्रसंख्यातः[१]' अनुभूयते[T]

=प्रश्न करता है–स्वीकार करते हैं कि पहले संचयकिये हुये अनेक प्रकारके =कर्मों का उदयहै (=विपाकः) सो अनुभव है । परन्तु (=तु) यह हम नहीं जानते हैं =कि यह (अनुभव)गणनाकी हुई प्रकृतिके (स्वरूप है)जैसी प्रकृति है तिस स्वरूप है =कि संख्याकी हुई प्रकृतियें स्वरुप नहीं है ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहाजाता है कि =(यह अनुभव वा विपाक) प्रसंख्यातरूप भोगा जाता है वा अनुभव किया जाता है अर्थात् जैसी प्रकृतिगणना में आई है तिस रूपही भोगनेमें आती है।

(१) न हि-दो अव्यय भिन्न भिन्न भी हैं और (कहीं कहीं नहि ऐसा भी पाठ है वहां) नहि एक अव्यय है ॥ निःसन्देह नहीं है दोनों रूपोंका अर्थ है (वैद्यकोश पृष्ठ ३७२ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २०६) ॥ (२) दोनों मुखेन शब्दोंके पश्चात् "विपच्यते" वाक्य गुप्त है ॥ (३)पच् =पाक, पकाना, भ्वादि प्रथम गणका धातु यहां पर आत्मने पदी है व्यक्तीकार,प्रकट करनेके अर्थमें आया है । कर्मणि प्रधानमें य लगानेसे पच्य हो जाता है, पश्चात् अन्य पुरुष, एकवचन, वर्तमान क्रियाद्योतक,आत्मने पदका चिन्ह ते लगानेसे पच्यते बन जाता है । पुनि विशेष प्रकार वा नाना प्रकारके अर्थमें 'वि' उपसर्ग जोड़नेसे विपच्यते बन जाता है, व्यक्त किया जाता है,अर्थात् भोगा जाता है वा उदयमें आता है अर्थ है ॥ (४) इण् अदादि दूसरे गणका धातु है । ण् इसलिये है कि नाना भांतिके पद वा गणोंका यह धातु है इ रह जाता है उसमें "अभि" और "उप" उपसर्गों के जोड़नेसे अभि+उप+इ होजाता है । मस् उत्तमपुरुष, बहुवचन, वर्तमान क्रिया, आत्मनेपद, कर्तरिप्रधान क्रियाका चिन्ह लगानेसे अभि+उप+इ+मस् होजाता है=अभिउपेमस्=अभ्युपेमः=हम मानते हैं,अंगीकार करते हैं ।(५)विजानीमः—ज्ञा क्र्यादि नववां गणका धातु है इसका ना विकरण है । 'ना'को नी कर देते हैं व्यञ्जनीय ङित् संज्ञक क्रिया प्रत्ययोंके पहिले–वि लगाकर ज्ञा पलट जाता है जा में ॥ तब विजानी रूप हुआ, मस् उत्तम पुरुष बहुवचन कर्तरिप्रधान वर्तमान काल की क्रियाद्योतक चिन्ह जोड़कर विजानी+मस्=विजानीमः बनालिया ॥

इति ब्रूमहे ॥ कुतः यतः— **॥ स यथानाम ॥ २२ ॥**

ज्ञानावरणस्य फलं ज्ञानाभावो दर्शनावरणस्य फलं दर्शनशक्त्युपरोध इत्येवमाद्यन्वर्थं सञ्ज्ञानिर्देशात्सर्वासां कर्मप्रकृतीनां सविकल्पानामनुभवसम्प्रत्यो जायते ॥

इति*(१) ब्रूमहे । (२) कुतः* ? यतः *

स यथानाम ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—(३)सः[1]अनुभवः[1]ज्ञानावरणादीनाम्[6]''' यथानाम * विपच्यते T

वृत्यनुवादः—ज्ञान-आवर्णस्य[6]'''फलम्[1]'''ज्ञान-अभावः[1]दर्शनावर्णस्य[6]'''फलं[1]'''दर्शन-शक्ति-उपरोधः[1] इत्येवम्*आदिः[1]'' अनुअर्थ–संज्ञा–निर्देशात्[5]' सर्वेसाम्[6]''कर्मप्रकृतीन[6]''सविकल्पानाम्[6]''अनुभव-सम्प्रत्ययः [1](४) जायते T

=ऐसा (=इति) हम कहते हैं (प्रश्न) कैसे ? (=कुतः) (उत्तर) क्योंकि (=यतः)

=सोऽनुभवो ज्ञानावरणादीनां यथानाम विपच्यते॥२२॥

=वह (अनुभव, विपाक उदय अथवा परिपाक) ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के

=नामके अनुकूल (=जैसा नाम तैसे) विपाकको प्राप्त होता है। अर्थात् जैसा कर्मकी प्रकृतिका नाम है तैसा ही ताका विपाक अथवा उदय है

=ज्ञानावरण (कर्मकी प्रकृति) का परिणाम (=फल) ज्ञानका

=न होना है दर्शनावरण (कर्म प्रकृति)का फल दर्शनकी सामर्थ्यका अवरोध वा रुकाव है

=इत्येवं आदि सार्थक संज्ञाके कथनसे वा नामके अनुकूल अर्थवाली संज्ञाके उपदेशसे अर्थात् जैसा जिसकर्म प्रकृतिका नाम है वैसाही उस प्रकृतिका विषयरूप कथनसे

=सब कर्म प्रकृतियोंके भेद सहित अनुभवकी

=प्रतीति उत्पन्न होती है ।

(१)ब्रूमहे-ब्रू अदादि दूसरे गणका उभय (परस्मै और आत्मने) पदी धातु द्विकर्मक(जैसे माणवकं धर्मं ब्रूते=छोकड़ों को वह धर्म को कहता है) कहना अर्थ में आता है। इस गणमें विकरण कोई नहीं लगाया जाता है । महे उत्तम पुरुष बहुवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका द्योतक चिन्ह ब्रू में जोड़नेसे ब्रूमहे (=हम कहते हैं) बनता है ॥

(२) कुतस् (=कुतः) (क) जहांसे (ख) जहां, जहां कहीं (ग) कैसे (घ)बहुत अधिक, बहुत न्यून अर्थों में आता है,यहां पर'कैसे' अर्थ में आया है (वैयकोश पृष्ठ १९४ देखो) (३) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एकसा है ।

(४) 'जन्' (=जनन- उत्पन्न होना) यह दिवादि चतुर्थ गण का आत्मनेपदी अकर्मक धातु है इस जन् के स्थान में 'जा' आदेश हो जाता है और क्योंकि यह चतुर्थ गण का धातु है इस का विकरण 'य' है इस लिए जा+य=जाय, अब इस 'जाय' अंगमें अन्यपुरुष, एक वचन, कर्तरि प्रधान वर्तमान क्रिया का द्योतक आत्मने पदी चिन्ह 'ते' लगाकर जायते बना लेते है जिस का अर्थ उत्पन्न होता है ऐसा है ॥

आह यदि विपाकोऽनुभवः प्रतिज्ञायते, तत्कर्मानुभूतं किमाभरणवदवतिष्ठते, आहोस्विन्निष्पीतसारं प्रच्यवते? इत्यत्रोच्यते—

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

पीडानुग्रहावात्मने प्रदायाभ्यवहृतौदनादिविकारवत्पूर्वस्थितित्यागादवस्थानाभावात्

आह[T] यदि*विपाकः[1] अनुभवः[1]प्रतिज्ञायते[T],=प्रश्न करता है कि जो "विपाकोऽनुभवः" (देखो सूत्र २१) पहिले कहागया है(=प्रतिज्ञायते)
तत्कर्म-अनुभूतम्[1]"किम्*आभरणवत्* =सो(=तत्)कर्म क्या बीतगये(=भूत)पीछे(=अनु)अर्थात् भोगे पीछे, आभूषण के सदृश
अवतिष्ठते[1],आहोस्वित्[1]निष्पीतसारम्[1]"प्रच्यवते[2]=लगा रहता है अथवा (=आहोस्विन्) सार रहित होकर गिरपड़ता है वा झड़जाता है
इति*अत्र*उच्यते[T]— =ऐसा [प्रश्न होनेपर] यहां [अग्रिम सूत्र] कहा जाता है कि

(३)ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ = (४)ततश्चानुभवात्कर्मनिर्जरा भवति ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः-ततः*(४)च*अनुभवात्[1]कर्मनिर्जरा[1]"=तिस विपाक-अनुभव-उदय-परिपाक वा कर्मके फल प्राप्तिके पीछे भी कर्मकी निर्जरा
भवति[T] =होतीहै[संक्षेपतः]उदयकेपश्चात् कर्मझड़जातेहैंअर्थात् किसीऔर कारणसे निर्जराहोतीहैऔर अनुभव वा उदयसे निर्जरा होती है। भावार्थ नवमें अध्यायका तीसरा सूत्र कि 'तपसा निर्जरा च'=तप से निर्जरा भी होती है, और विपाक वा उदयसे भी निर्जरा होती है।

वृत्त्यनुवादः-पीडा-अनुग्रहौ[2]आत्मने[4]प्रदाय÷=आत्माके लिये दुःख [पीड़ा] सुख प्रदानकर वा देकर
अभ्यवहृत-ओदन-आदि- =खायेहुए वा भक्षित [=अभ्यवहृत] अनाज (=ओदन) आदिके [पचकर]
विकारवत्*पूर्वस्थितित्याग[2]अवस्थान-अभावात्[2]=परिणमनके सदृश पहली स्थितिके नाशसे ठहराव(=अवस्थान) के न रहनेसे

(१) निष्पीतसारम् = जिसका सार पीलियागया हो, सार रहित अर्थ है (२) प्रच्यवते-च्यु भ्वादिगणका आत्मनेपदी धातु झड़जाना अर्थमें है च्यु को गुण करने से च्योहुआ अ विकरण लानेसे च्यो + अ = च्यव प्र और ते लगनेसे प्रच्यवते हुआ(३)सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायों में एक है (४) सूत्रमें 'च' शब्द है सो नवमें अध्यायके तीसरे सूत्र (तपसा निर्जरा च = तपसे भी निर्जरा होती है) के अर्थको संग्रह करने के लिये है। (५) विशेषरूपसे सूत्रको ऐसे लिख सकेहैं "ततःविपाकात् अन्यथा च निर्जरा भवति" = तिस विपाकसे और अन्य प्रकारसे भी(=च) निर्जरा होती है अर्थात् विपाकसे और तपसे (दोनों से) निर्जरा होती है, ॥ "ततश्च निर्जरा" सूत्र २३ "तपसा निर्जराच" (अध्याय ९ सूत्र ३) इन दोनों सूत्रोंके भेद कोध्यान में रखना चाहिये उस (विपाक) से भी निर्जरा होतीहै अर्थात् किसी अन्य हेतुसे भी निर्जरा होती है। तप से निर्जरा भी होती है-अर्थात् तपसे निर्जरा होती हैं और कुछ औरभी होता है(संवर भी होता है) अन्तर यह है कि निर्जरा होने के दो कारण हैं विपाक और तप २३ वें सूत्र सेयह बात निकलती है। तप दो बातका कारण है वा तपके दो फल है निर्जरा,संवरयह नवमें अध्यायके३सूत्र सेहै

कर्मणो निवृत्तिर्निर्जरा ॥ सा द्विप्रकारा-विपाकजा इतरा च ॥ तत्र चतुर्गतावनेकजातिविशेषावघूर्णिते संसारमहार्णवे चिरं परिभ्रमतः शुभाशुभस्य कर्मणः क्रमेण परिपाककालप्राप्तस्यानुभवोदयावलिस्रोतोऽनुप्रविष्टस्यारब्धफलस्य या निवृत्तिः सा विपाकजा निर्जरा॥ यत्कर्मा-प्राप्तविपाककालमौपक्रमिकक्रियाविशेषसामर्थ्यादनुदीर्णं बलादुदीर्योदयावलिं

कर्मणः[6]।निवृत्तिः[1]।निर्जरा[1]।सा[1]।द्वि-प्रकारा[1]।
विपाकजा[1]
इतरा[1]।च* ।
तत्र*चतुर्गतौ[7]।अनेक-जाति-विशेष-अवघूर्णिते[7]।
ससार-महा-अर्णव[7]।चिरम्* परिभ्रमतः[6]।
शुभ-अशुभस्यकर्मणः[6]।क्रमेण[3]।परिपाककालप्राप्तस्य[6]।
अनुभव-उदय-आवलि स्रोतः[6]।
अनुप्रविष्टस्य[6]।आरब्ध-फलस्य[6]।
या[1]।निवृत्ति[1]।सा[1]।विपाकजा[1]।निर्जरा[1]॥

=कर्मका झड़जाना निर्जरा है। वह (निर्जरा) दो प्रकार है
=विपाकजनित वा विपाकसे उपजी (अर्थात् फल देकर जो निर्जरा उत्पन्न हो)
=और (=च)भिन्न अर्थात् अविपाक जनित। (दोनों का स्वरूप निम्न लेख में है)
=तहां चार गतियोंमें बहुत जातिके विशेषोंकरि संयुक्त शब्दरूप ऐसे
=संसाररूपी दीर्घ समुद्रमें सदा काल बार बार भ्रमणकरतेहुए(जीव)निके(=परिभ्रमतः)
=भले बुरे कर्मके क्रमकरि परिपाक समयको प्राप्त हुआ
=भोगनेके उदया वलिरूप (=नालामें उदय-आवलि-स्रोतः)
=पेठकर वा प्रवेश होकर(=प्रविष्टस्य) फलको देय (=आरब्ध-फलस्य)
=जो झड़ना है सो विपाकजा निर्जराहै अर्थात् एकेंद्रियादिक जाति विशेषसे फिरण

रूप चतुर्गति मय ससार समुद्रमें चिरकालसे भ्रमते हुए जीवोंके अनेक प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंका उदयकाल प्राप्त होने पर जिस प्रकारके परिणामोंसे तीव्र मंद रूप बन्ध किया था उसी प्रकार भोगते हुये जीवका उदयावली रूप नाली द्वारा जो कर्म रस फल देकर झड जाते हैं उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं संक्षेपतः—
कर्मोंका उदयकाल आने पर रस देकर अपने आप झड जाना सो सविपाक निर्जरा है। यह सविपाक निर्जरा चारों गतिमें रहने वाले सर्व संसारी जीवों के हुआ करती है

यत्[1]।कर्म[1]-अप्राप्त-विपाक-कालम्[2]।
औपक्रमिक-क्रिया-विशेष-सामर्थ्यात्[5]।
अन्-उदीर्णम्[2]।बलात्[5]।उदीर्य उदयावलिम्[2]

=जो कर्म (अपनी स्थिति पूर्ण करि) उदय (=विपाक)काल को प्राप्तन होते हुए
=उपचार क्रिया (जैसे तपश्चरणादि) की विशेष शक्तिसे
=बिना उदय आयेहुए [कर्म] बलात् कारीसे उपायकरि [=उदीर्य] उदयावलीको

प्रवेश्य वेद्यते आम्रपनसादिपाकवत् सा अविपाकजा निर्जरा ॥ चशब्दो निमित्तान्तरसमुच्चयार्थः । तपसा निर्जरेति वक्ष्यते ततश्च भवति अन्यतश्चेति ॥ किमर्थमिह निर्जरानिर्देश क्रियते संवरात्परा निर्देष्टव्या ॥ उद्देशवल्लघ्वर्थमिह वचनम्

प्रवेश्य÷आम्र–पनस–आदि–पाकवत्*वेद्यते T
=प्रवेश किया जाकर आमके फल तथा कटहर आदिकके (भूसा आदिमें रखकर) =पकाय लेनेके तुल्य वेदा जाता है वा उदयमें लाया जाता है,

सा[१।१] अविपाकजा [१।१] निर्जरा [१।१] ॥
=सो अविपाक निर्जरा है (अर्थात्) कर्मोंका उदयकाल तो आया नहीं और तपश्चरणादि करके अनुदय अवस्थामें ही कर्मों को झड़ा देना सो अविपाक निर्जरा है ॥

चशब्दः[१।१] निमित्त-अन्तर-समुच्चय-अर्थः[१।१] ;
=(इस सूत्रमें) चशब्द (निर्जराके) अन्यहेतुके संग्रहके लिये है,

तपसा[३।१] निर्जरा [१।१] इति*
=तपकरि निर्जरा होती है (=तपसा निर्जरा) ऐसा (नवम अध्यायके तीसरे सूत्रमें)

वक्ष्यते।ततः॥ च* भवति T
=कहेंगे, तिस (विपाक=अनुभव=उदय) से भी (=च) निर्जरा होती है

अन्यतः* च* इति*; किम्[१।१] अर्थम् [१।१]
=और (=च) अन्य (=तप) करि (निर्जरा) होती है किसलिये

इह * निर्जरा–निर्देशः [१।१]
=यहां (इस अध्यायमें वा इस स्थानमें] निर्जराका कथन (=निर्देश)

क्रियते T संवरात्[५।१] परा[१।१] निर्देष्टव्या[१।१] ॥ ॥
=किया गया है (=क्रियते) संवरसे पश्चात् (निर्जरा) कहना चाहिये

भावार्थ–प्रथम अध्यायका चौथा सूत्र 'जीव–अजीव–आस्रव–बन्ध–संवर–निर्जरा–मोक्षाः तत्त्वम्" में निर्जराका संवर (तत्त्व) के पश्चात् उपदेश किया है इसलिये क्रमानुसार संवरके कथनके पश्चात् निर्जरा का कथन करना योग्य था ॥ इस अध्यायमें तो बंध तत्त्वका प्रकरण और विषय है और निर्जरा तत्त्वके कथनका अभी तक अवसर नहीं आया है, फिर किसलिए इस बंध तत्त्वके अध्यायमें निर्जराका सूत्र क्रमको उल्लंघन करके कहा है ?

उद्देश–वत्* लघु–अर्थम्[१।१]
=[उत्तर] प्रयोजनके अनुसार (=वत्) लघु (करने) के लिए

इह* वचनम्[१।१]
=यहां (अर्थात् इस अध्यायमें) (इह) सूत्र [=वचनम्] है, ।

अर्थात् तत्त्वार्थसूत्रके रचनाका उद्देश है कि थोड़े लेखमें बहुत आशय गर्भित हो जावे इसउद्देशके अनुकूल कि सूत्र पाठ लघु हो जाय इस सूत्रको इस अध्यायमें (अन्तर्गत वा गर्भित) किया ॥

तत्र हि पाठे विपाकोऽनुभव इति पुनरनुवादः कर्तव्यः स्यात्। आह अभिहितोऽनुभवबन्धः। इदानीं प्रदेशबन्धो वक्तव्यः तस्मिंश्च वक्तव्ये सति, इमे निर्देष्टव्याः, किं हेतवः? कदा? कुतः? किंस्वभावाः? कस्मिन्? किं परिमाणाश्चेति॥ तदर्थमिदं क्रमेण परिगृहीतप्रश्नापेक्षभेदं सूत्रं प्रणीयते—

॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥

तत्र*हि*पाठे[२]'विपाकोऽनुभवः'[१] =क्योंकि (=हि) तहां (अर्थात् संवर के पश्चात्) पाठ करने में "विपाकोऽनुभवः"
इति*पुनः*अनुवादः[१] कर्तव्यः[१] स्यात् T =ऐसा(सूत्र) फिर व्याख्यान, कथन किये जाने योग्य होता॥
आह*अभिहितः[१]अनुभवबन्धः[१]इदानीं*प्रदेशबंधः[१] =पूछता है कि(१) अनुभवबन्ध कहागया अब प्रदेशबंध
वक्तव्यः[१],च*तस्मिन्[२]वक्तव्ये[२]सति[२],इमे[३](२)=कहना चाहिये और (=च) तिस (प्रदेशबन्ध) के कथन (=वक्तव्ये) होनेमें ये (=इमे)
निर्देष्टव्याः[३], किं[१]॥ हेतवः[३] ? कदा* ? =कहेजाने चाहिये कि-(प्रदेशबन्ध का)क्या कारण है ? किस कालमें,अथवा कब होताहै ?
कुतः* ? किम्[१]॥स्वभावाः[३]?कस्मिन्[२] ? =कहां से होताहै?क्या स्वभावहै?किस में होताहै?किस निमित्त करि होताहै?क्योंकरहोताहै?
किम्[१]॥परिमाणाः[३]?च*इति*॥ =और(=च)क्या परिमाण वा सीमा है ? अर्थात् प्रदेशबंधके कितने प्रमाण परमाणु हैं।
तद्-अर्थम्[१]॥इदम्[१]॥क्रमेण[३] =उस (उत्तर) के लिए अनुक्रमसे
परिगृहीत-प्रश्न-अपेक्ष-भेदं[१]॥सूत्रम्[१]॥प्रणीयते T =प्रश्नके भेदकीअपेक्षा लेकर (=परिग्रहीत)(अग्रिम) सूत्र कहाजाता है कि

नामप्रत्ययाःसर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः२४

(१) " अथानुभवः किं लक्षणः" : तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धिवृत्ति सूत्र २०' अनुभवबन्धो व्याख्यातः राजवार्तिक,सर्वार्थसिद्धिवृत्तिसूत्र २३ ये दोनों वाक्य तात्पर्य्य में उस समय मेल खासक्ते हैं जब हम 'विपाकोऽनुभवः"सूत्रको शक्तिमें व्यक्तिका उपचार मानलें नहीं तो वृत्तिकारोंकेदोनों वाक्यों में विरोध आता है॥ विद्वान् प्रकाश डालकर सूचितकरें (२) इदम् शब्दका रूप प्रथमा विभक्ति बहुवचन, पुल्लिङ्ग में, इमे बनता है॥ इस सूत्रका हमारी आम्नायमें सर्वत्र एक पाठहै॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "एकक्षेत्रावगाह स्थिताः के स्थान में"एकक्षेत्रावगाढस्थिताः"है,उनकी भविष्यानुसारिणीतत्त्वार्थदीका के पत्र ६५८ "एकक्षेत्रावगाढाः स्थिताः" पाठ है शेषपाठ दोनों समाज में एक है॥

सूत्रार्थः (१) नामप्रत्ययाः। =कर्मरूप होनेको(=नाम)कारणभूत (=प्रत्ययाः) वा ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी प्रकृतियोंरूप परिणमने योग्य

अवगाहका अर्थ व्याप्त है और 'अवगाढ' का अर्थ व्याप्तहुआ। जब 'एकक्षेत्र अवगाढ' और 'एकक्षेत्रअवगाढ', स्थिताः शब्दके साथ समास रूप होकर 'एकक्षेत्रअवगाढस्थिताः' और 'एकक्षेत्रअवगाढस्थिताः' हो जाते हैं, तब भाषामें तात्पर्य दोनोंका एकसा होता है। जैसेः- "एकक्षेत्रावगाढस्थिताः" ="एकक्षेत्रअवगाही" = (एक क्षेत्रमें व्याप्त हुए तथा स्थितिशील पुद्गल बन्धको प्राप्त होते हैं) (समाप्य०पृष्ठ १ ६०) "एकक्षेत्रावगाहस्थिताः" ="एक क्षेत्रावगाहकरि तिष्ठै"(सर्वार्थसिद्धि वचनिकापृष्ठ ६३३, ६३४)अर्थात् अन्यक्षेत्रका अभावजतावनेकेअर्थिहैं "एकक्षेत्रावगाहस्थिताः" ="एक क्षेत्रमें अवगाहकार तिष्ठते" "आत्माके प्रदेश अर कर्मके प्रदेश क्षीर नीरकी ज्यों एक क्षेत्रमें अवगाहकरि तिष्ठैं हैं। सदासुखजीकृता तत्वार्थसूत्र टीका मुद्रित पत्र ४६,और सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५८७) "अवगाह"शब्द-'गाह्' धातुमें अव उपसर्ग लगानेसे और घञ् (=अ) प्रत्यय लगानेसे (अव+गाह+घञ्=अवगाह) बनाया जाता है और पुल्लिङ्ग है। यहांपर व्याप्ति अर्थमें है। 'अवगाढ' भूत कृदन्त है-तीनों लिङ्गोंमें इसका प्रयोग होता है, अव उपसर्ग "गाह्" धातुमें लगानेसे तथा "क्त" (=त) लगानेसे (अव+गाह+क्त=अवगाढ)व्याप्त हुआ यहां पर अर्थ है॥ शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एकहै, "यक्खेत्तोगाढ(एकक्षेत्रअवगाढ एकक्षेत्रमें अवगाहनरूप॥ गोम्मटसार-कर्मकाण्ड, गाथा १८५॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर "अनंतानंत" ऐसा पाठ है-देखोटिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५३६, ५४० ॥ इस सूत्रका अर्थ समझने के लिए ध्यान में रखना चाहिए "अनन्तानन्त प्रदेशः' से अभिप्राय "अनन्तानन्त पुद्गल प्रदेश से है। और इसके विशेषण-गुण वाचक (क) नाम प्रत्ययाः (ख) सूक्ष्म (ग) एकक्षेत्रअवगाह (घ) स्थिताः ऐसे चार वाक्य हैं अर्थात् आत्माके समस्त प्रदेशोंमें वा सम्पूर्ण आत्म प्रदेशोंमें बन्धरूप होनेवाले अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश कैसे है वा किन किन गुणोंकरि संयुक्त है उत्तर में कहते हैं कि (१) कर्मप्रकृतियोंरूपपरिणमने योग्य है (२) सूक्ष्म हैं इन्द्रिय गोचर नहीं हैं (३) आत्माके प्रदेशोंके साथ दूध पानीके समान एक क्षेत्रमें व्याप्त हो जाते हैं (४)बहुरि स्थितिशील हैं अर्थात् समस्त आत्माके प्रदेशोंमें तिष्ठेही हैं-चलते नहीं हैं, सब प्रदेशोंको प्रसित किये हुए हैं॥

(१) इस वाक्यको समझानेके लिये निम्न टिप्पणी लिखते हैं॥ पुद्गलद्रव्य (=जिसमें स्पर्श,रस, गन्ध, और वर्ण पाया जाय) के दो भेद हैं, एक 'परमाणु' दूसरा 'स्कन्ध'। सबसे छोटे पुद्गलको 'परमाणु' कहते हैं और अनेक परमाणुओंके बन्ध (=अनेक वस्तुओंमें एकपनेका ज्ञान कराने वाला सम्बन्ध विशेष) को स्कन्ध कहते है स्कन्ध (क)आहार वर्गणा(ख) तैजस वर्गणा (ग) भाषा वर्गणा (घ) मनोवर्गणा(ङ)कार्मण वर्गणा आदि २२ प्रकारके होते हैं। समान अविभाग प्रतिच्छेदोंके धारक प्रत्येक कर्म परमाणुको 'वर्ग' कहते हैं और वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते है,(वर्गणाओंका समूह=स्पर्द्धक है)ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंका समूहहै सो कार्मण शरीर है। गोम्मटसार-जीवकांड गाथा२२१देखो॥ जो ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोंके समूह रूप (कार्मण शरीर रूप) परिणमें वा परिणमन करे वे कार्मण वर्गणा है अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंका समूह कार्मण वर्गणाओंकाकार्य है और कार्मण वर्गणा ज्ञानावरणादि कर्मके समूहके होनेको कारण है। ये ही कार्मण वर्गणा यहां पर "नाम प्रत्ययाः" कहीगई हैं नामप्रत्यय, नामहेतुक, नामनिमित्तक, नामकारणक एकार्थवाची वाक्य हैं॥

नामप्रत्ययाः=समस्त ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति रूप, उत्तरप्रकृतिरूप, उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप होनेको कारण हैं ऐसे अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश हैं जो बन्धको प्राप्त होते हैं॥ नामप्रत्ययाः=इस वाक्यका अर्थ श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न वाक्य से भी यही अर्थ निकलता है ॥ "नामप्रत्ययाः पुद्गला बध्यन्ते। नाम प्रत्यय एषां ते इमे नामप्रत्ययाः। नामनिमित्ता नामहेतुका नामकारणा इत्यर्थः",

नाम-प्रत्ययाः पुद्गलाःबध्यन्ते = नाम वा कर्म (प्रकृति)होनेको जो कारण हैं ते पुद्गल बन्धको प्राप्त होते हैं।

नाम प्रत्ययः एषाम् ते इमे नामप्रत्ययाः। = नाम वा कर्म (प्रकृति)होने को (=नाम)निमित्त जिनके है ते ये नाम 'प्रत्यय'(वा नाम हेतुकहैं)

(२) सर्वतः* योग-विशेषात्[२] सूक्ष्म-एकक्षेत्र-अवगाह-स्थिताः[३] सर्वआत्मप्रदेशेषु[४] अनन्तानन्त-प्रदेशाः[१] ॥

=समस्त भवोंमें (मन वचन कायके) योगोंके निमित्तसे(=विशेषात्)
=सूक्ष्म (जोइन्द्रिय गोचर न हों) जित क्षेत्रमें आत्मा ठहरा हो उसी क्षेत्रमें (नीरक्षीरवत्)
=अवगाहकरि वा व्याप्त होकर स्थितिरूप रहनेवाले आत्माके संपूर्ण प्रदेशोंमें
=(ऐसे गुणों वाले) अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश हैं ॥ भावार्थ-अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश जो आत्माके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं किन किन गुणोंकरि संयुक्त हैं ? सो कहते हैं (क)सर्व ज्ञानावरणादिकमूल प्रकृतिरूप उत्तरप्रकृतिरूप उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेके कारण हैं , [ख] समस्तत्रिकालवर्ती भवोंमें वा जन्मोंमें मन-वचन-कायके योगोंके निमित्तसे आते हैं , [ग] सूक्ष्म हैं-इन्द्रियगोचर नहीं है , [घ] आत्माके सम्पूर्ण प्रदेशोंके साथ दूध-पानीके समान एक क्षेत्रमें व्याप्त होजाते हैं अथवा दूध पानीके समान एकमेक होकर आत्माके प्रदेशोंमें ही व्याप्त हो जाते हैं ये पुद्गल प्रदेश एक क्षेत्रमें अवगाह रूपसे तिष्ठैं हैं न कि एक क्षेत्रमें भिन्न भिन्न रूपसे अर्थात् एकमेक होकर तिष्ठते हैं, [ङ] आत्माके सकल प्रदेशोंमें उक्तअनन्तानन्त पुद्गल प्रदेश तिष्ठै हैं अर्थात् आत्माके सर्व प्रदेशोंको ग्रसित कियेहुये स्थिर रूपसे रहते हैं , [च]एक आत्माके असंख्य प्रदेश हैं सो प्रत्येक प्रदेशमें अथवा एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त पुद्गलके स्कन्ध विद्यमान हैं ॥ सारांश-ज्ञानावरणादि कर्मरूप होनेको कारण, सूक्ष्म कर्मरूप अनन्तानन्त पुद्गल प्रदेशोंका और आत्माके सर्व प्रदेशों का सब भवोंमें योगोंकी प्रवृत्तिसे दूध पानीके सम एकमेक होना है सो "प्रदेशबन्ध" है

वृत्यनुवादः-नाम्नः[६] प्रत्ययाः[१] नामप्रत्ययाः[१] =नामके(होनेको) कारण हो अथवा नाम निमित्तक,नाम हेतुक हों
=सो नामप्रत्ययाः है अर्थात् कर्मप्रकृति (=नाम) होनेको कारणभूत (ऐसे पुद्गलके स्कन्ध) वा कर्म प्रकृतिके रूप परिणमने योग्य(पुद्गलके स्कन्ध)हों वे नाम प्रत्ययाःहैं-भावार्थ-कर्मरूपमें होनेको कारणहैं ॥

नामनिमित्ताः नामहेतुकाः =नाम वा कर्म प्रकृति होने का निमित्त हैं प्रकृति होनेको हेतु हैं
नामकारणाः इति अर्थः =कर्म रूप होने को कारण हैं ऐसा अर्थ (नाम)प्रत्ययका) है ॥

(२) सर्वतः- इस शब्दका अर्थ हमारे यहां "सब भावोंमें वा सब जन्मोंमें" ऐसा किया है यह शब्द 'सर्व' और 'तस्' प्रत्यय से बना है सर्वार्थसिद्धिके कर्त्ताने इस तस् प्रत्यय को सप्तमी अर्थ (अधिकरण)में लिया है,परन्तु समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस'तस्' प्रत्यय को पंचमी विभक्तिमें लेकर "सर्वओरसे"अर्थात् तिर्यक् (इधर उधर चारों ओरसे) ऊर्ध्व भागसे, अधोभागसे बन्ध को प्राप्त होते हैं, हमारे अनुसार अनन्तानन्त पुद्गल प्रदेश जीवके सब भावोंमें बन्धको प्राप्त होते हैं, दोनों ही अर्थ हो सकते हैं और ठीक हैं क्योंकि 'गोम्मटसार कर्मकांड'

नामेति सर्वाः कर्मप्रकृतयोऽभिधीयन्ते, स यथानामेति वचनात्। अनेन हेतुभाव उक्तः। सर्वेषु भवेषु सर्वतो दृश्यते अन्यतोऽपीति तसि कृते सर्वतः। अनेन कालोपादानं कृतम्। एकैकस्य हि जीवस्यातिक्रान्ता अनन्तानन्ता भवाः।

सः[१] यथानाम*
इति*वचनात्[५]''' नाम[१]''' इति*
सर्वाः[१]''' कर्मप्रकृतयः[१]''' (१)अभिधीयन्ते Tअनेन[३]'''
(२)हेतुभावः[१] उक्तः[१] सर्वेषु[७] भवेषु[७] सर्वतस्*
(३) दृश्यते—अन्यतः* अपि* इति*(४) तसि[७] कृते[७] सर्वतस्* ।

=स यथानाम (=सो विपाक कर्मकी प्रकृतिके नामके अनुकूल होता है)
=ऐसे (=इति) सूत्र (के हेतु) से "नाम" इस प्रकार (के शब्द) से (=इति)
=सम्पूर्ण कर्म प्रकृतियां ग्रहणकी गई हैं (=अभिधीयन्ते)इस(नामप्रत्ययवचन)करि
=(प्रदेश बन्धका)कारणपना कहा गया। सकल वा सम्पूर्णभवों में हो सो सर्वतः है ॥
=देखा जाता है कि अन्य अथवा भिन्न (विभक्ति अर्थात् सप्तमी विभक्ति)से भी 'तस्'(प्रत्यय)
=करनेमें 'सर्वतस्'(शब्द) होता है अर्थात् 'तस्' प्रत्यय पंचमी अपादान
विभक्ति से-ओरसे इत्यादि अर्थोंमें(जैसे एकतस्=एक ओरसे, सर्वतस्=समस्त ओरसे)बहुधा
आया करता है। इस सूत्रमें विशेष प्रकारसे सप्तमी विभक्ति वा अधिकरण विभक्ति में
भी 'भवमें'ऐसे अर्थमें 'दृश्यतेअन्यतोऽपि' ऐसे व्याकरणके सूत्रकरि (तस् प्रत्यय)आया है

अनेन[३]''' (४)काल-उपादानं[१]''' कृतम्[१]''' एकैकस्य[६] =इस(सर्वेषु भवेषु वाक्य)करि समयका ग्रहण कियागया है। यहां 'कदा?'दूसरे प्रश्नका उत्तरहुआ
हि*जीवस्य[६] अतिक्रान्ताः[१] अनन्तानन्ताः[१] भवाः[१] =एक एकही जीवके अनन्तानन्त जन्म(=भवाः)पीछे होगये वा बीत गये

की गाथा तीनके अर्थसे विदित है कि आत्मा योग सहित होकर सब ओरसे कर्म वर्गणा तथा नोकर्म वर्गणाओंको प्रत्येक समय ग्रहण करता है॥

(१) 'अभिधीयन्ते'–यह वाक्य 'धा' (=धारण करना–पकड़ना ग्रहण करना) जुहोत्यादि तृतीयगणके उभय पदी सकर्मक धातुसे ऐसे बना है कि 'धा'का कर्मणि प्रधानमें 'धी' हो जाती है धीमेंअभि'उपसर्ग तथा कर्मणि प्रधानका 'य'चिन्ह लगाकर'अभिधीय ऐसा अंग बना लेते हैं। पश्चात् अन्य पुरुष बहु वचन. आत्मनेपदी,वर्तमान कालकी क्रियाद्योतकका'अन्ते' चिन्ह लगाकर अभिधीय + अन्ते, ऐसा बना लेते हैं॥ क्रिया प्रत्ययके यदि आरम्भमें'अ'हो और क्रिया प्रत्ययके पहले वाले शब्द अर्थात् अङ्गके अन्तमें अकार हो तो यह अकार गिर जाता है। अतःअभिधीय + अन्ते =अभिधीय् + अन्ते = अभिधीयन्ते बनगया (२) प्रदेश बन्धके सम्बन्धमें छह प्रश्नोंमेंसे पहला प्रश्न कि प्रदेशबन्ध"किं हेतवः"का उत्तर हुआ॥

(३) सूत्रः "दृश्यतेऽन्यतोऽपि" = दृश्यतेअन्यतोऽपि (=सप्तम्यर्थे) तसिकृते = देखा जाता है कि भिन्न (विभक्ति) से भी तस् प्रत्यय किया जाता है (सप्तमी अधिकरण विभक्तिमें), जैसे सर्वतः॥ 'सर्वतः' में सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार 'तस्' प्रत्यय पंचमी अपादान विभक्तिमें प्रयोग हुआ है जैसा कि निम्न अनुवादसे प्रगट है "सर्वतः = सर्वतस्तिर्यगूर्ध्वमधश्च बध्यन्ते = सर्वतः अर्थात् तिर्यक् इधर उधर चारों ओरसे, उर्ध्वभागसे तथा अधो भागसे सब ओरसे पुद्गलबन्धको प्राप्त होते हैं" पृष्ठ १८९, १९० ॥ सूत्रमें 'दृश्यते' शब्द इसबात का द्योतक है कि 'तस् (=तसिल्) प्रत्ययके सम्बन्धमें अन्य सूत्र लागू है और यह भी देखा गया है (=दृश्यते)॥

आगामिनः संख्येया असंख्येया अनन्ता वा भवन्तीति। योगविशेषान्निमित्तात्कर्मभावेन पुद्गला आदीयन्त इति निमित्तविशेषनिर्देशः कृतो भवति। सूक्ष्मादिग्रहणं कर्मग्रहणयोग्यपुद्गलस्वभावानुवर्तनार्थं ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः सूक्ष्मा न स्थूला इति। एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्त्यर्थम्।

आगामिनः[१/३] संख्येयाः[१/३] असंख्येयाः[१/३] अनन्ताः[१/३] वा* भवन्ति = भविष्यत् (काल) के संख्यात असंख्यात अथवा (=वा) अनन्त (भव) होते जाते हैं

इति* योगविशेषात्[३/५] निमित्तात्[३/५] कर्मभावेन[३/५] पुद्गलाः[१/३] आदीयन्ते T = ऐसे (मन-वचन-कायके) योगके विशेषसे (अर्थात्) कारणसे, कर्म भावकरि = (अर्थात् जीव द्वारा कर्मरूप परिणामकरि) पुद्गल स्कन्ध ग्रहण किये जाते हैं।

इति* (१) निमित्त-विशेष-निर्देशः[१/३] (२) कृतः[१/३] भवति T = इस प्रकार हेतु विशेषका कथन पूरा (कृतः) होता है।

सूक्ष्म-आदि-ग्रहणम्[१/३] कर्म-ग्रहण-योग्य-पुद्गल-स्वभाव-(३) अनुवर्तन-अर्थम्[१/३] = (सूत्रमें) सूक्ष्म एकक्षेत्रअवगाह और स्थितका आदान वा लाना (ज्ञानावरणादि) कर्मके ग्रहण योग्य पुद्गल (स्कन्ध) नि के स्वरूपके पूरा करनेके (=अनुवर्तन) लिये हैं

ग्रहण-योग्याः[१/३] पुद्गलाः[१/३] = (ज्ञानावरणादिकर्मके) ग्रहणयोग्यपुद्गल अर्थात् ज्ञानावरणादिकर्मकीप्रकृतियों में परिणमन करने योग्य जो पुद्गलके स्कन्ध है वे—

सूक्ष्माः[१/३] न* स्थूलाः[१/३] इति*; एक-क्षेत्र-अवगाह-वचनम्[१/१] = सूक्ष्म हैं (इन्द्रियों द्वारा गोचर नहीं हैं) बादर नहीं है। एकक्षेत्रमें व्याप्त ऐसा वाक्य

क्षेत्र-अन्तर-निवृत्ति-अर्थम्[१/१] ॥ = अन्य क्षेत्रके अभाव, वा निषेधके लिए है। अर्थात् कर्मरूप पुद्गलोंके स्कन्ध नीर क्षीर के सदृश एकमेक होकर आत्माके प्रदेशोंमेंही विद्यमानहैं न्यारेन्यारे स्थानोंमें नहीं हैं

(१) पृष्ठ ४०२में तीसरा प्रश्न यह है "कुतः" = क्योंकर ? अर्थात् किसकरि प्रदेशबन्ध) हो ता है, प्रथम प्रश्न यह है 'कि हेतवः' इन दोनोंमें अन्तर वा भेद यह है कि पहले प्रश्नके उत्तरमें तो प्रदेशबन्धका उपादान कारण बतलाया है कि 'नामप्रत्ययाः' हैं और तीसरे प्रश्नके उत्तरमें यह दर्शाया है कि 'योगोंका निमित्त' प्रदेशबन्ध का निमित्त कारण है॥ निमित्तकारण, उपादान कारण, द्रव्यके बन्धका निमित्त कारण और द्रव्य बन्धका उपादान कारण क्या है सो कहते हैं ? (क) जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप न परिणमै किंतु कार्यकी उत्पत्तिमें सहायक हों। उनको निमित्त कारण कहते हैं जैसे घटकी उत्पत्तिमें कुंभकार, दंड, चक्र आदिक (ख) जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमै उसको उपादान कारण कहते हैं जैसे घड़ेके बननेमें मिट्टी (ग) आत्माके योग कषाय रूप परिणाम द्रव्यबन्धके निमित्त कारण हैं (घ) बंध होनेके पूर्व क्षणमें बंध होनेको सन्मुख कार्माण स्कन्धको द्रव्यबंधका 'उपादान कारण' कहते हैं। इसलिये यह उत्तर कुतः तीसरे प्रश्नका हुआ कि योगोंके निमित्तसे पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं॥ (२) कृतः शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ११४में 'पूरा' ऐसा लिखा है॥ (३) अनुवर्तन = पूरा करना (पद्म० कोश पृष्ठ २४)

स्थिता इति वचनं क्रियान्तरनिवृत्त्यर्थं स्थिता न गच्छन्त इति। सर्वात्मप्रदेशेष्विति वचनमाधारनिर्देशार्थं नैकप्रदेशादिषु कर्मप्रदेशा वर्तन्ते, क्व तर्हि? ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु व्याप्य स्थिता इति ॥ अनन्तानन्तप्रदेशवचनं परिमाणान्तरव्यपोहार्थं न संख्येया न चासंख्येया नाप्यनन्ता इति ॥ ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्तगुणाः

स्थिताः इति* वचः क्रिया-अंतर-निवृत्ति-अर्थम्
स्थिताः न*(१)गच्छन्ते इति*।

(२)सर्व-आत्म-प्रदेशेषु इति* वचनम्
आधार-निर्देश-अर्थम्
न*एकप्रदेशादिषु कर्मप्रदेशाः वर्तन्ते तर्हि*
क्व*? ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यक्*च*
सर्वेषु आत्म-प्रदेशेषु व्याप्य÷
स्थिताः इति*।।(३)अनन्तानन्त-प्रदेश-वचनम्
परिमाण-अंतर-व्यपोह-अर्थम्॥ न*संख्येयाः
न*च*असंख्येयाः न*अपि*अनन्ताः इति*। ते
खलु*पुद्गल-स्कन्धाः अभव्य-अनंतगुणाः

=(इससूत्रमें)स्थित ऐसा वाक्य अन्य स्थानमें चलन फिरनके अभावके लिये है।
=अटल है चलते नहीं। अर्थात् कर्मग्रहण योग्य पुद्गल स्थितिशील हैं। सम्पूर्ण आत्माके प्रदेशोंमें तिष्ठे हीं हैं आत्माके सब प्रदेशोंको ग्रसित कियेहुयेस्थिररूपसे रहते हैं
=सम्पूर्ण आत्म प्रदेशोंमें अथवा आत्माके सकल प्रदेशोंमें ऐसा वाक्य
=(कर्मप्रदेशों वा कर्मयोग्य पुद्गल स्कंधोंके)आश्रयके कथनके लिये है।
=कर्म प्रदेश,न (आत्माके केवल) एक आदिक प्रदेशों में तिष्ठते हैं—तब
=कहां (=क्व) (तिष्ठतेहैं)?(उत्तर-) ऊपर नीचे और (=च) इधर उधर (=तिर्यक्)
=सम्पूर्ण आत्म प्रदेशोंमें व्याप्त होकर वा सर्वत्र प्रदेशोंमें प्रवेश होकर(स्थिररूप से)
=रहते हैं (=स्थिताः)। (इस सूत्रमें) अनन्तानन्त प्रदेश (यह) वाक्य
=अन्य परिमाण वा गणनाके त्याग(=व्यपोह)के लिये है।(वे प्रदेश)संख्यात नहीं हैं
=और(=च) असंख्यात नहीं हैं अनन्त भी नहीं है वे (पुद्गल-प्रदेश)
=निश्चय करके (=खलु) पुद्गलके स्कंध अभव्यराशिसे अनन्तगुणे

(१)"सूक्ष्मादि ग्रहणं कर्मग्रहणयोग्यपुद्गलस्वभावानुवर्तनार्थं ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः सूक्ष्मा न स्थूला इति ॥ एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्त्यर्थं स्थिता इति वचनं क्रिया-तरनिवृत्त्यर्थं स्थिता न गच्छन्त इति। "स्वभावः"? क्या स्वभाव उन प्रदेशोंका है जो बंधको प्राप्त होते हैं इस चौथे प्रश्नका उत्तर दिया है कि वे अनंतानंत पुद्गलके प्रदेश वा स्कन्ध जो बंधको प्राप्त होते है तीन गुणोंके धारक हैं कि(क)सूक्ष्म हैं,इन्द्रिय गोचर नहीं है(ख)एक क्षेत्रमें व्याप्त हैं (ग) और आत्म प्रदेशोंके साथ एकमेक होकर दूधजलके समान स्थितिशील हैं ॥

(२) इसी पृष्ठमें 'सर्वात्म.....व्याप्यस्थिताः इति यहां तक'कस्मिन्'? किस विषैं (प्रदेश बन्ध)होता है ? इस पांचवें प्रश्नका उत्तर सम्पूर्ण हुआ।(३)'अनंतानंत प्रदेश वचन से-योग्याः तक इस पृष्ठ और पृष्ठ ९८में छठा प्रश्न " किं परिमाणश्चेति",? और(उस प्रदेशबंधकी क्या) परिमाण(परमाणुओं का)है पूर्ण हुआ ॥

सिद्धानन्तभागप्रमितप्रदेशा घनांगुलस्यासंख्येयभागक्षेत्रावगाहिन एकद्वित्रिचतुःसंख्येया-संख्येयसमयस्थितिकाः पञ्चवर्णपञ्चरसद्विगन्धचतुःस्पर्शस्वभावा अष्टविधकर्मप्रकृतियोग्याः। योगवशादात्मसात्क्रियन्त इति प्रदेशबन्धः समासतो वेदितव्यः ॥ आह बन्धपदार्थानन्तरं पुण्यपापोपसंख्यानं चोदितं तद्बन्धेऽन्तर्भूतमिति प्रत्याख्यातं तत्रेदं वक्तव्यं कोऽत्र पुण्यबन्धः कः पापबन्ध इति ॥ तत्र पुण्यबन्धप्रकृतिपरिगणनार्थमिदमारभ्यते—

सिद्ध-अनन्तभाग-प्रमितप्रदेशाः[1] घन-अंगुलस्य [2] असंख्येय-भागक्षेत्र-अवगाहिनः[3] एक-द्वि-त्रि-चतुर्-संख्येय-असंख्येय-समय-स्थितिकाः [4] पञ्चवर्ण-पञ्चरस-द्विगन्ध-चतुः स्पर्शस्वभावाः[5]

=सिद्धराशिके अनन्तवां भाग प्रमाण प्रदेश लियेहुए घनाङ्गुलके =असंख्यातवां भाग क्षेत्रमें रहनेवाले एक, दो, तीन, चार, =संख्यात, असंख्यात, समय (पर्यन्त) की स्थिति वा मर्यादा वाले =पांच वर्ण, पांचरस, दोगंध, चार स्पर्श स्वभाव वाले वा गुण वाले (अर्थात् ये सोलह गुण रूप स्वभावको लियेहुये आने वाले)

अष्ट-विधि-कर्म-प्रकृति-योग्याः[1] । योगवशात् [2] (१) आत्मसात्* क्रियन्ते। इति* प्रदेशबन्धः[3] समासतः* वेदितव्यः[4] ॥ आह।

=आठ प्रकारकी कर्मप्रकृतिके योग्य हैं। योगके वशसे (उक्त अनंतानंत प्रदेश) =अपने आधीनमें (=आत्मसात्) अपने ग्रहणमें (आत्मसात्) किये जाते है। =ऐसे प्रदेशबन्ध संक्षेपसे जानना चाहिये। पूछता है कि

बन्ध-पदार्थ-अन्तर [1]''' पुण्यपाप-उपसंख्यान [2]''' चोदितं[3]''' तद्-बन्धे[4]''' अन्तर्भूतम्[5]''' इति* प्रत्याख्यातम्[6]''' तत्र* इदम्[7]''' वक्तव्यम्[8]''' कः[1] अत्र* पुण्यबन्धः[2] कः[3] पापबन्धः[4] इति*

=बन्धपदार्थके समीप पुण्यपापकी गणना प्रेरित वा उपदेशित =उस बन्ध(पदार्थ) में गर्भित वा अन्तर्गत ऐसे (वहां ही=तत्रैव) अर्थात् प्रथम अध्यायके चौथे सूत्र "जीवाजीवास्रव" इत्यादिमें वहां ही =छूट जाती है वा रहजाती है तहां यह कहना चाहिये ॥ =यहां क्या पुण्यबन्ध है ? क्या पाप बन्ध है ?

तत्र* पुण्यबन्ध-प्रकृति-परिगणन-अर्थम्[1]''' इदम्[2]''' आरभ्यते=तहां पुण्यबन्ध प्रकृतियोंके संख्या करनेके लिये यह सूत्र प्रारम्भ किया जाता है

(१) आत्मसात्-अव्यय है पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ५५ में "अपने आधीन, किसीका, अपना," ऐसा अर्थ दिया है॥

सद्वद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

शुभं प्रशस्तमिति यावत् । तदुत्तरैः प्रत्येकमभिसम्बध्यते-शुभमायुः शुभं नाम शुभं गोत्रमिति ॥ शुभायुस्त्रितयं तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुरिति ॥ शुभ नाम सप्तत्रिंशद्विकल्पं तद्यथा-मनुष्यगतिर्देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिः

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्। = सद्वेद्य-शुभआयुः-शुभनाम-शुभगोत्राणि-कर्मप्रकृतयः पुण्यम्

सूत्रार्थः- [1]सद्वेद्य-शुभ-आयुः-शुभनाम-गोत्राणि[1] =साता वेदनीय शुभ आयु, शुभनाम, शुभगोत्र

पुण्यम्[1] कर्म-प्रकृतयः[1] भवन्ति T ॥ =पुण्यकर्मकी प्रकृतियें हैं। (इनके नाम आगे वृत्त्यनुवादमें दियेगये हैं)

वृत्त्यनुवादः- शुभम्[1] प्रशस्तम्[1] इति* यावत्* =जो (=यावत्) सराहने योग्य हैं, ऐसा प्रशस्त है।

तद्[1] उत्तरैः[1] प्रत्येकम्[1] अभिसम्बध्यते T- =वह (शुभ) अगले वा अग्रिम प्रत्येक (शब्द) को लगाया जाता है

शुभम्[1] आयुः[1] शुभं[1] नाम[1] शुभं[1] गोत्रम्[1] इति* =ऐसे शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र, हुये ॥

शुभआयुः त्रितयं[1]। तिर्यग् आयुः[1] मनुष्यआयुः[1] =शुभ आयु के तीन भेद, तिर्यञ्च आयु, नर आयु,

देवआयुः[1] इति*। शुभनाम[1] सप्त-त्रिंशत्-विकल्पम्[1] =देवआयु ऐसे है। शुभ नाम सैंतीस प्रकार है। अर्थात् नाम कर्म की प्रकृतियों में से सैंतीस प्रकृतियें शुभ हैं वा पुण्य रूप हैं।

तद्यथा*-मनुष्यगतिः[1] देवगतिः[1] पञ्चेन्द्रियजातिः[1] =जैसे (क) मनुष्यगति (ख) देवगति (ग) पञ्चेन्द्रियजाति-

---

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "सद्वेद्य" शब्दके पश्चात् 'सम्यक्त्व-हास्य-रति-पुरुषवेद ये चार अधिक हैं। शेष पाठ वही है जो हमारे यहां है अर्थात् 'सद्वेद्य सम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्" ऐसा पाठ है। इसके पश्चात् संस्कृत भाष्यका अंतका वाक्य ऐसे है "इत्येतदष्टविधं कर्म पुण्यम्- अतोऽन्यत् पापम्" ऐसे यह आठ प्रकार कर्म पुण्य है और इससे भिन्न पाप है अर्थात् उनके यहां "अतोऽन्यत्पापम्" इसको ग्यारा सूत्र नहीं माना है हमारे यहां यह अन्तका सूत्र है ॥ 'सम्यक्त्व वेदनीय', 'दर्शन मोहनीय' की प्रकृति होनेके निमित्तसे तथा हास्यवेदनीय, रतिवेदनीय, पुरुषवेदनीय, 'चारित्र मोहनीय' की प्रकृति होनेसे और ये घातिया कर्मकी चारों प्रकृतियें हैं। आत्माके गुणको घात करनेवाली हैं हमारे यहां इनको पाप (प्रकृतियों) में जो १०० हैं स्थान दिया है श्वेताम्बर समाजमें इनको पुण्य रूप माना है॥ यही दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रके सम्बन्धमें भेद है ॥

पंच शरीराणि त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं प्रशस्तवर्णरस-गन्धस्पर्शाः, मनुष्यदेवगत्यानुपूर्व्यद्वयमगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायो-गतयस्त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तयो निर्माणं तीर्थकरनाम चेति। शुभमेकमुच्चैर्गोत्रं सद्वेद्यमिति ॥ एता द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुण्यसंज्ञाः ॥

पञ्च$^{1}_{3}$ ''शरीराणि $^{1}_{3}$''	=पांच(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक, तैजस और कार्मण) शरीर
त्रीणि$^{1}_{3}$ ''अङ्गोपाङ्गानि $^{1}_{3}$''	=तीन (औदारिक शरीर,वैक्रियिकशरीर और आहारक शरीर) अंगोपांग
समचतुरस्रसंस्थानम्$^{1}_{3}$ ''वज्रर्षभनाराचसंहननम्$^{1}_{3}$''	=(ठ) समचतुरस्रसंस्थान (ड) वज्रर्षभनाराचसंहनन,
प्रशस्तवर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शाः $^{1}_{3}$	=(ढ) शुभवर्ण (ण) शुभरस (त) शुभगन्ध (थ) शुभस्पर्श
मनुष्यदेव-गत्यानुपूर्व्यद्वयम्$^{1}_{3}$ ''अगुरुलघु-परघात-	=(द) मनुष्यगत्यानुपूर्वी (ध) देवगत्यानुपूर्वी (ये दोनों)(न) अगुरुलघु(प)परघात
उच्छ्वास-आतप-उद्योत-प्रशस्तविहायोगतयः$^{1}_{3}$''	=(फ) उच्छ्वास (ब) आतप (भ) उद्योत (म)प्रशस्तविहायोगति
त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक शरीर-स्थिर-	=(य) त्रस (र) बादर (ल)पर्याप्त (व) प्रत्येक शरीर (श) स्थिर
शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशः-कीर्तयः$^{1}_{3}$''	=(ष) शुभ (स)सुभग (ह) सुस्वर (क्ष) आदेय (त्र) यशःकीर्ति
निर्माणम्$^{1}_{3}$ ''तीर्थकरनाम्$^{1}_{2}$'' च* इति*	=(ज्ञ)निर्माण और (का)तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति ऐसे हैं
शुभम्$^{1}_{2}$ ''एकम्$^{1}_{2}$ ''उच्चैः*गोत्रम्$^{1}_{2}$ ''सद्वेद्यम्$^{1}_{2}$ ''इति*	=(खा) एक शुभ (प्रकृति) ऊंच गोत्र है (गा)साता वेदनीय ऐसे
एता$^{1}_{3}$ ''द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः$^{1}_{3}$ ''पुण्यसंज्ञा$^{1}_{3}$''	=ये ब्यालीस प्रकृतियें पुण्य संज्ञक हैं=आयु ३+नाम३७+गोत्र१+वेदनीय१=४२

(१) यहां पर पुण्य प्रकृतियें ब्यालीस कही गई हैं, उत्तर सूत्रमें पाप प्रकृतियें ब्यासी कहेंगे इस प्रकार सर्व मिलकर एकसौ चौबीस(१२४) हुईं सो यह कथन बन्धकी अपेक्षा जानना चाहिये। बन्ध प्रकृतियें एकसौ बीस (१२०) कही हैं तहां दर्शन मोहकी तीन प्रकृतियोंमें बन्ध एक मिथ्यात्व ही का है। पश्चात् तीन होती हैं तिससे दो तौ यह घटी। बहुरि पांच बन्धन, पांच संघात, शरीरोंसे अविनाभावी हैं। तिससे शरीर ही में गर्भित की गई हैं। इसलिये दश यह घटी ॥ बहुरि वरणादिक बीस हैं तिनको संक्षेप करि चारही कहीं तिससे सोलह ये घटी ॥ इस प्रकार एकसौ अड़तालीस प्रकृतियोंमें से उपर्युक्त २८ प्रकृतियों के घटने से एकसौ बीस (१२०) शेष रही सो स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण पुण्यरूप भी हैं पाप रूपभी हैं प्रशस्त भी हैं अप्रशस्त भी हैं। दो बार संख्यामें ये चारों आने से चार बढ गईं अर्थात् एकसौ चौबीस हो गई इसलिये ४२ पुण्य प्रकृतियें और ८० पाप प्रकृतियें सब मिलकर हुई ॥ बहुरि आठ कर्म प्रकृतियोंका सत्ताकी अपेक्षा कथन करनेसे १४८के स्थान में १६८ हो जाती हैं क्योंकि स्पर्श ८, रस ५, गन्ध २ वर्ण ५ ये प्रशस्त भी हैं और अप्रशस्त भी होती हैं किसी जीवके ये बीसो शुभ भी होते हैं किसी किसी जीवके अशुभ भी होते हैं इसलिये १६८ प्रकृति का सत्तामात्र है इनमें से१०० प्रकृतियें पाप रूप हैं और शेष ६८ पुण्यरूप हैं।

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

अस्मात्पुण्यसंज्ञककर्मप्रकृतिसमूहादन्यत्कर्म पापमित्युच्यते। तत् द्व्यशीतिविधं तद्यथा· ज्ञानावरणीयप्रकृतयः पंच, दर्शनावरणस्य नव, मोहनीयस्य षड्विंशतिः, पञ्चान्तरायस्य, नरकगतितिर्यग्गती,

---

सूत्रम्–अतोऽन्यत्पापम् = अस्मादन्यत्कर्मपाप भवति = अस्मात् अन्यत् कर्म पापं भवति । २६।

सूत्रार्थः–अस्मात्[५]''अन्यत्*कर्म[१]''पापम्[१]''भवति। =इस(पुन्यकर्म)से भिन्न कर्म पाप है अर्थात् पच्चीसवां सूत्रमें वर्णित ब्यालीस पुन्य प्रकृतियोंमें शेष रही जो कर्म प्रकृतियें वे पापरूप हैं ॥

वृत्त्यनुवादः-अस्मात्[५]''पुण्य-संज्ञक-कर्म-प्रकृति-समूहात्[५]अन्यत्*=इस पुन्य नामा (=संज्ञक) कर्म प्रकृतिके समूहसे अन्य–

कर्म[१]''पापम्[१]''इति*उच्यते। तद्-द्विअशीति-विधम्[१]''। =कर्म पाप है ऐसा कहा जाता है वह (पापकर्म) बयासी भांति है

तद्यथा*-ज्ञानावरणस्य[६]''प्रकृतयः[१]''पञ्च[३]'' =जैसे ज्ञानावरणकी प्रकृति पांच

दर्शनावरणस्य[६]''नव[३],मोहनीयस्य[६]''षड्-विंशति[१]। =दर्शनावरण की (प्रकृति) नौ, मोहनीयकी (प्रकृति) छब्बीस

पञ्च-अन्तरायस्य[६]नरकगतिः[१]।तिर्यग्-गति[१]। =पांच अंतरायकी (प्रकृतियें) नरक गति, तिर्यञ्चगति

पुण्य प्रकृति ६८=ब्यालीस पूर्वोक्त प्रकृतियें+पांच शरीरोंके न्यारे २ पांच बन्धन और पांच ही भिन्न भिन्न संघातअतः ४२+१०=५२

स्पर्श की आठ प्रकृतियोंमें से ४२ की गणनामें केवल एक आई है इसलिये अवशिष्ट अधिक =७

रस के गुणोंमें ५ हैं, ४२ की गणनामें केवल एक ग्रहण हुई है इसलिये अवशिष्ट अधिक =४

गंधके गुणोंमें दो हैं, ब्यालीस की संख्यामें केवल एक आई है इसलिये अवशिष्ट अधिक =१

वर्ण प्रकृतियों[५] में से ४२की संख्यामें सामान्य करि एक आईहै इसलिये अवशिष्ट अधिक चार सर्वयोग अड़सठ =४=६८

पाप प्रकृति १००= ८२ वे ही प्रकृतियें है जो छब्बीसवें सूत्रमें कहेंगे

१६ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णके ८+५+२+५=२०क्रमसे भेद मानने पर, ४के स्थानमें २० हो जाती है १६अधिक हैं

२,सम्यक्त्व मिथ्यात्व,सम्यग् प्रकृति मिथ्यात्व मोह कर्मकी तीन प्रकृतियोंमेंसे एक मिथ्या लीथी =८२+१६+२=१००

(१)श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नहीं माना है। बरञ् सूत्र२५के अन्तमें "अतोऽन्यत् पापम्" भाष्यरूपमेंलिखा है ॥

चतस्रो जातयः, पंच संस्थानानि, पंच संहननान्यप्रशस्तवर्णरसस्पर्शा नरकगतितिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयमुपघाताप्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तयश्चेति नामप्रकृतयश्चतुस्त्रिंशत् । असद्वेद्यं नरकायुर्नीचैर्गोत्रमिति एवं व्याख्यातो बन्धपदार्थः सप्रपंचः ॥ अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानप्रत्यक्षप्रमाणगम्यस्तदुपदिष्टागमानुमेयः ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायामष्टमोऽध्यायः ॥

चतस्रः[1/3]।जातयः[2/3]।
=चार (एकेन्द्रिय–द्वीन्द्रिय–त्रींद्रिय–चतुरिंद्रिय) जाति,

पंच[1/3]।।संस्थानानि[2/3]।।,
=पांच (न्यग्रोधपरिमंडल–स्वाति–कुब्जक–वामन और हुंडक) संस्थान,

पचं[1/3]।।संहननानि[2/3]।।
=पाच (वज्रनाराच,नाराच,अर्द्धनाराच, कीलक,असम्प्राप्तासृपाटिका)संहनन

अप्रशस्त–वर्ण–गंध–रस–स्पर्शाः[1/3]।
=अशुभ वर्ण, अशुभ गंध, अशुभ रस, अशुभ स्पर्श

नरकगति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयम[1/2]।।उपघात-अप्रशस्त-
=नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी दो, उपघात, अप्रशस्त

विहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म–अपर्याप्ति-साधारणशरीर-
=विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति साधारण शरीरि,

अस्थिर अशुभ-दुर्भग-दुस्वर-अनादेयच*अयशःकीर्तयः[1/3]।।
=अस्थिर,अशुभ, दुर्भग,दुःस्वर,अनादेय आर (=च)अयशःकीर्ति

इति* नाम-प्रकृतयः[1/3]।चतुस्त्रिंशत्[1/3]। असद्वेद्यम[1/3]।।।
=इस प्रकार नाम कर्मकी प्रकृतियें चौंतीस हुई ॥ असाता वेदनीय

नरकआयुः[1/4]।।नीचैः*गोत्रस्[1/4]।।इति*एवम्*
=नरकआयुः नीच गोत्र हुई । इस प्रकार-

व्याख्यातः[1/4]बन्ध-पदार्थः[1/4]सप्रपंचः[1/4]
=बंध पदार्थ विस्तार साहित वर्णन किया गया

अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञान-
=अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवल ज्ञानकरि (ये सब कर्म)

प्रत्यक्ष-प्रमाण-गम्यः[1/4]।।।तद्–उपदिष्ट–
=प्रत्यक्ष जाना जाता है । (उस प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा) उपदेश (किये हुये)

आगम–अनुमेयः[1/4]।।।
=शास्त्रकरि अन्य मतिज्ञान,श्रुतज्ञान करिके (यहउभय रूप कर्म) जानाजाता है ॥ १०२

इति*तत्त्वार्थ वृत्तौ[3/4]।।सर्वार्थ सिद्धि-सञ्ज्ञिकायाम्[3/4]।।अष्टमः[1/2]अध्यायः[1/2]।।८।।

= इस प्रकारतत्त्वार्थके विवरणमें सर्वार्थ सिद्धि-
= नामा ग्रन्थमें आठवा अध्याय हुआ ॥८

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

बन्धपदार्थो निर्दिष्टः । इदानीं तदनन्तरोद्देशभाजः संवरस्य निर्देशः प्राप्तकाल इत्यत इदमाह—

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥

अभिनवकर्मादानहेतुरास्रवो व्याख्यातः । तस्य निरोधः संवर इत्युच्यते । स द्विविधो भावसंवरो द्रव्यसंवरश्चेति ।

बन्ध-पदार्थः निर्दिष्टः, इदानीम् तदु-अनन्तर-उद्देशभाजः संवरस्य निर्देशः प्राप्तकालः इति * अतः * इदम् आहT

=बन्ध तत्त्व (आठवां अध्यायमें) कहागया है, अब उस (बन्ध पदार्थ) के =समीप इच्छितभाग संवर (तत्त्व) का उपदेश (=निर्देश) है =जिसके (कहनेका) अवसर प्राप्त है इसलिये(=अतः)इस(सूत्र)को कहते हैं कि

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥

सूत्रार्थः-यथा-उक्तस्य शुभ-अशुभ-आस्रवस्य निरोधः संवरः भवति T

=यथन कियेहुये अनुसार शुभ और अशुभ नवीन कर्मके आवने(के कारण)कोरोकना =सो संवरहै(वह दो प्रकार है-द्रव्यआस्रवोंकेरोकनेमें जो कारणरूपआत्माके भाव सो भाव संवर है,भावके निमित्तसे कर्म पुद्गलोंके आगमनका रुकाउ सो द्रव्य संवर है

वृत्त्यानुवादः—अभिनव-कर्म-आदान-हेतुः आस्रवः। व्याख्यातः,तस्य निरोधः संवरः इति*उच्यतेT

=नवीन (=अभिनव) कर्मके ग्रहण करनेका कारण आस्रव =कहा जाता है, तिस (आस्रव)का रोकना संवर ऐसा कहाजाता है।

सः द्वि-विधः भावसंवरः द्रव्यसंवरः *च*इति*

=वह (संवर) दो प्रकार भावसंवर और (=च) द्रव्य संवर ऐसे है ॥

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (२)आस्रवः- यह शब्द संस्कृत ग्रन्थोंमें "आस्रवः" लिखाहुआ मिलता है परन्तु आनन्दजीमुद्रिततत्वार्थसूत्राणि प्रति में प्रथम अध्याय सूत्र ४ में और छठवां अध्यायके द्वितीय सूत्रमें 'आश्रव" पाठ है इसी पुस्तकके नवमा अध्यायके प्रथम सूत्रमें और सातवां सूत्र में "आस्रव" है। सदासुखजी कृत लघु सूत्र टीकामें तथा जयचन्दजीकी वचनिकामें (मुद्रित और हस्त लिखित दोनों में) उक्त सूत्रोंके अर्थ तथा छठवां अध्याय और नवमां अध्यायमें जहां कहीं "आस्रव" शब्द का प्रयोग किया है वहां वहां बहुधा स्थानों में आश्रव है कहीं आस्रव है। क्या आश्रव शब्द भी शुद्ध है ? नहीं क्योंकि "आस्रव" (पु०) आस्रवति मनोऽनेन । करणे अप् जिससे मन बह जाता है ॥ 'भावे अप्' निरंतर बहना, (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ६५) यह शब्द स्रु"(जाना, बहना) भ्वादि प्रथम गणके अकर्मक परस्मैपद धातुसे बना है। 'स्रु'-जाना और 'आस्रु'-आना, अर्थ भी 'आस्रव' का आगमन का है भावार्थ कर्मोका आगमन परन्तु 'आश्रवः' (पु०) जो आ- और श्रु(= सुनना)स्वादि पांचवां गण के धातु और अच् से बना है । आशृणोति वाक्यम् = वचनको भलो भांति सुनलेता है,अंगीकार भी अर्थ है ॥

तत्र संसारनिमित्तक्रियानिवृत्तिर्भावसंवरः। तन्निरोधे तत्पूर्वककर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्य-संवरः ॥ इदं विचार्यते—कस्मिन् गुणस्थाने कस्य संवर इति ॥ उच्यते—मिथ्यादर्शनकर्मोदयवशीकृत आत्मामिथ्यादृष्टिः। तत्र मिथ्यादर्शनप्राधान्येन यत्कर्म आस्रवति तन्निरोधाच्छेषे सासादनसम्यग्दृष्ट्यादौ तत्संवरो भवति ॥

तत्र* संसार-निमित्त-क्रिया-निवृत्तिः[1] =तहां संसारके(परिभ्रमणको)कारणरूप (मिथ्यात्व-रागादि परणतिरूप) क्रियाकात्याग होना
भावसंवरः[2] । तत्-निरोधे[3](१)तत्-पूर्वक- =सो भाव संवर है। तिस(संसार निमित्त क्रिया)के रोकनेमें तिस(क्रिया)के निमित्त से(आनेवाले)
कर्मपुद्गल-आदान-विच्छेदः[4] द्रव्यसंवरः[5]॥ =कर्मपुद्गलोंके ग्रहणका अभाव अथवा निवारण हो सो द्रव्य संवर है
इदम्[1] विचार्यते[T] कस्मिन्[2] गुणस्थाने[3] =यह विचार कियाजाता कि किस गुणस्थानमें
कस्य[4] संवरः[5] इति।*उच्यते-मिथ्यादर्शन-कर्म- =किस (आस्रव)का संवर होता है— कहा गया है कि मिथ्यादर्शन कर्मके
उदयवशीकृतः[1] आत्मा[2] मिथ्यादृष्टिः[3],तत्र* =उदयकरि वशमेंहुआ जीव मिथ्यादृष्टि है। तहां [मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में]
मिथ्यादर्शन,प्राधान्येन[4] यत्-कर्म-आस्रवति[T]=मिथ्यात्वकी श्रेष्टता वा मुख्यताकरि जो कर्म आता है,
तत्-निरोधात्[1] शेषे[2] सासादन-सम्यग्दृष्टि- =तिस (मिथ्यादर्शन के) निरोध वा अभाव करि शेष (गुणस्थान) सासादन सम्यग्दृष्टि
आदौ[3] तत्-संवरः[1] भवति T । =आदिकमें उस[कर्म] का संवर होता है। अर्थात् उस कर्म प्रकृतियोंके आगमनका निरोध है।

(१) "तन्निरोधेन तत्पूर्वकर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः ॥" सर्वार्थसिद्धि प्रथमावृत्ति पृष्ठ ४०६, द्वितीयावृत्तिमें 'तन्निरोधेन' के स्थानमें 'तन्निरोधे' है॥ "तन्निरोधे तत्पूर्वककर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः" तीन हस्तलिखित प्रतियोंका, राजवार्तिक, वार्तिक ६ तथा श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४०६ में है, हमारी समझमें तीनों पाठ ठीक हैं क्योंकि प्रथम पाठमें 'तन्निरोधेन' = तिसके रोकनेसे, तत्पूर्व = तत्पूर्वक (जैसे श्रुतं मतिपूर्वं = श्रुतंमतिपूर्वकं) यहां स्वार्थमें अर्थात् अपने अर्थमें कन् (=क)प्रत्यय है जैसे बाल+कन् (स्वार्थे) = बालक, यही अर्थ त्रितीय पाठका है जैसे तन्निरोधे = उसके निरोधमें अर्थात् उसके निरोध होने पर इत्यादि। हमने बहु मतानुसार तृतीय पाठ लिया है॥इसका तात्पर्य तत्त्वार्थराजवार्तिक में निम्नप्रकार लिखा है "तस्य संसारकारणस्य भावसंवरस्य निरोधे तत्पूर्वकस्य कर्मपुद्गलस्य निरासो द्रव्यसंवरः इति निश्चीयते।" तस्य संसारकारणस्य भावसंवरस्य निरोधे तत्-पूर्वकस्य = तिस संसारका कारण भावसंवरका रुकाउ होजाने पर उसके निमित्तसे कर्म-पुद्गलस्य निरासःद्रव्य-संवरःइति निश्चीयते = उसमहोने वाली पुद्गल कर्म वर्गणाओं का अभाव, द्रव्य संवर ऐसा निर्णीत है

(२)विचार्यते यहवाक्य चर् प्रथम भ्वादिगण परस्मैपदके धातुमें वि उपसर्ग लगानेसे और चर्के अ की वृद्धि करनेसे विचार् ऐसा बना पश्चात् कर्मणि प्रधानका य चिन्ह लगानेसे विचार्+य ऐसा हुआ,कर्मणि प्रधानके बनानेका नियम यह है कि धातु में य जोड़नेके पश्चात् आत्मनेपदी प्रत्यय लगादेते हैं यहां पर प्रथम पुरुष एकवचन, आत्मनेपदी वर्तमानकाल की क्रिया द्योतक ते विचार्य में लगानेसे विचार्यते बना ॥

किंपुनस्तन्मिथ्यात्वं नपुंसकवेदनरकायुर्नरकगत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिहुण्डसंस्थानासम्प्राप्तसृपाटिकासंहननरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणशरीरसंज्ञकषोडशप्रकृतिलक्षणम्॥ असंयमस्त्रिविधः।अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानोदयविकल्पात्।तत्प्रत्ययस्य कर्मणस्तदभावे संवरोऽवसेयः॥ तद्यथा–निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृध्यनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभस्त्रीवेदतिर्यगायुस्तिर्यग्गतिचतुः संस्थानचतुः संहननतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यो-

किम्[1]''पुनः*तत्[2]''मिथ्यात्वं[3]''नपुंसकवेद–नरकायुः=और (=पुनः) वह (=तत्) कर्म क्या है॥(उत्तर) मिथ्यात्व, नपुंसकवेद,नरकआयुः,
नरकगति–एक–द्वि–त्रि–चतुरिन्द्रियजाति– =नरकगति, एकेन्द्रियजाति,द्वीन्द्रियजाति,त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति,
हुण्डसंस्थान–असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन– =हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन,
नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य–आतप–स्थावर–सूक्ष्म- =नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म,
अपर्याप्तक,साधारणशरीरसंज्ञक–षोडशप्रकृति-लक्षणम्[4]॥=अपर्याप्तक, साधारण शरीर नामा सोलह (ये) प्रकृतियोंके लक्षण हैं, सारांश–उक्त सोलह कर्मप्रकृतियोंका संवर (आस्रवका रुकाव) सासानादिक गुणस्थानोंमें हुआ।

अनन्तानुबंधिन्–अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–उदय- =अनन्तानुबन्धीके उदय, अप्रत्याख्यानावरणके उदय, प्रत्याख्यानावरणके उदय
विकल्पात्[5]'असंयमः[1]'त्रिविधिः[1]' =भेदसे असंयम तीन प्रकार है
तत्प्रत्ययस्य[1]''कर्मणः[1]''तत्-अभावे[1]'संवरः[1]'अवसेयः[1]'॥=उस (असंयम)के न होनेमें उस (असंयम)के निमित्तिक कर्मका संवर जानना चाहिये अर्थात् असंयम तीन प्रकारका है-अनन्तानुबन्धीउदयकृत, अप्रत्याख्यानावरणका उदयकृत, प्रत्याख्यानावरणका उदयकृत सो इस असंयम के निमित्तसे जिन प्रकृतियोंका आस्रव होता है सो तिस असंयमके अभावसे तिनका संवर होता है

तद्यथा* निद्रानिद्रा–प्रचलाप्रचला–स्त्यानगृद्धि- =जैसे निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि
अनन्तानुबन्धिन्–क्रोध–मान–माया–लोभ- =अनन्तानुबंधी क्रोध, अनन्तानुबंधीमान, अनन्तानुबंधीमाया, अनन्तानुबंधीलोभ
स्त्रीवेद-तिर्यगायुः–तिर्यग्गति–चतुर्– =स्त्रीवेद, तिर्यंचआयु, तिर्यंचगति, चार (न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक,वामन)
संस्थान–चतुर्–संहनन–तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी– =संस्थान,चार(वज्रनाराच,नाराच,अर्धनाराच,कीलक)संहननतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

द्योताप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयनीचैर्गोत्रसंज्ञिकानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तानुबन्धिकषायोदयकृतासंयमप्रधानास्रवाणामेकेन्द्रियादयः सासादनसम्यग्दृष्ट्यन्ता बन्धकाः । तदभावे तासामुत्तरत्रसंवरः ॥ अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभमनुष्यायुर्मनुष्यगत्यौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम्नां दशानां प्रकृतीनामप्रत्याख्यानकषायोदयकृतासंयमहेतुकानामेकेन्द्रियादयोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ता बन्धकाः । तदभावादूर्ध्वं तासां संवरः ॥

उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचैर्गोत्र-संज्ञिकानाम्‌ ''पंचविंशति-प्रकृतीनाम्‌'' =उद्योत अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र, =(ये) नामधारक पच्चीस प्रकृतियोंका

अनन्तानुबंधिकषाय-उदय-कृत-असंयम-प्रधान-आस्रवाणाम्‌ बन्धकाः ''एकेन्द्रिय-आदयः'' सासादनसम्यग्दृष्टि-अन्ताः ''; तद्-अभावे ''तासाम्‌ ''

=अनन्तानुबंधी कषायके उदयभूत, असंयमको मुख्यकरि =आस्रवोंके बांधने वाले एकेन्द्रिय आदिक =सासादनसम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती) पर्यंत जीव होते थे, =उस (अनन्तानुबंधीकषाय उदयकृत असंयमके न होनेपर) तिन (पच्चीस प्रकृतियों) का

उत्तरत्र* संवरः ', =संवर यहां (सासादनसम्यग्दृष्टि) से अगले (गुणस्थान)में हुआ ।

अप्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ-मनुष्यायुः-मनुष्यगति-औदारिकशरीर-तद्-अंगोपांग-वज्रर्षभनाराच संहनन-मनुष्यगति + प्रायोग्यानुपूर्व्य-नाम्नाम्‌ ''दशानाम्‌ ''

=अप्रत्याख्यानावरणक्रोध, अप्रत्याख्यानावरणमान, अप्रत्याख्यानावरणमाया, =अप्रत्याख्यानावरणलोभ, मनुष्यआयुः, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, =उस (औदारिक)के अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यगति + =प्रायोग्यानुपूर्वी नामकी दश

प्रकृतीनाम्‌ ''अप्रत्याख्यानकषाय-उदयकृत-असंयम-हेतुकानाम्‌ ''बन्धकाः ''एकेन्द्रिय-आदयः ''असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्ताः ', तद्-अभावात्‌ ' ऊर्ध्वम्‌* तासाम्‌ ''संवरः ' ।

=प्रकृतियोंका अप्रत्याख्यानकषाय उदयकृत असंयमके =निमित्तक(आस्रवोंके)बांधनेवाले जीव(=बंधकाः)एकेन्द्रिय आदिक असंयत सम्यग्दृष्टि =पर्यन्त थे, उस (अप्रत्याख्यानावरणकृत असंयम) के न होनेसे =ऊपर(अर्थात् देश असंयत आदिगुणस्थानोंमें तिन(उक्त दश प्रकृतियों)का संवरहोता है

सम्यग्मिथ्यात्वगुणेनायुर्न बध्यते । प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानां चतसृणां प्रकृतीनां प्रत्याख्यानकषायोदयकारणासंयमास्रवाणामेकेन्द्रियप्रभृतयः संयतासंयतावसाना बन्धकाः ॥ तदभावादुपरिष्टात्तासांसंवरः ॥प्रमादोपनीतस्य तदभावे निरोधः ॥ प्रमादेनापनीतस्य कर्मणः प्रमत्तसंयतादूर्ध्वं तदभावान्निरोधः प्रत्येतव्यः । किं पुनस्तदसद्वेद्यारति-

---

सम्याङ्मिथ्यात्व–गुणेन$_{\frac{1}{5}}^{1}$ आयुः$_{\frac{1}{4}}^{1}$''न*
बध्यते$_{T}$ ।
प्रत्याख्यानावरणक्रोध–मान–माया–
लोभानाम्$_{\frac{6}{5}}^{6}$ (१)चतसृणाम्$_{\frac{6}{5}}^{6}$''प्रकृतिनाम्$_{\frac{6}{5}}^{6}$''प्रत्याख्यानकषाय—
उदय–कारण–असंयम–आस्रवाणाम्$_{\frac{6}{5}}^{6}$ बन्धकाः$_{\frac{1}{5}}^{1}$
एकेंद्रिय–(२)प्रभृतयः$_{\frac{1}{5}}^{1}$ संयतासंयत–अवसानाः$_{\frac{1}{5}}^{1}$,
तद्–अभावात्$_{\frac{1}{5}}^{1}$ उपरिष्टात्*
तासाम्$_{\frac{6}{5}}^{6}$''
संवरः$_{\frac{1}{4}}^{1}$;प्रमाद–उपनीतस्य$_{\frac{6}{4}}^{6}$''तद्–
अभावे$_{\frac{7}{4}}^{7}$ निरोधः$_{\frac{1}{4}}^{1}$,प्रमादेन$_{\frac{3}{4}}^{3}$ अपनीतस्य$_{\frac{6}{4}}^{6}$
कर्मणः$_{\frac{6}{4}}^{6}$''निरोधः$_{\frac{1}{4}}^{1}$,प्रमत्तसंयतात्$_{\frac{5}{4}}^{5}$ ऊर्ध्वम्*
तद्–अभावात्$_{\frac{5}{4}}^{5}$ प्रत्येतव्यः$_{\frac{1}{4}}^{1}$
किम्*पुनः*तद्$_{\frac{1}{4}}^{1}$''' असद्वेद्य–अरति–

=मिश्र अथवा सम्यग्मिथ्यात्व (तीसरे) गुणस्थानद्वारा आयु नहीं
बांधीजाती है अर्थात् तीसरे गुणस्थानमें आयुका बन्ध नहीं होता है
=प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरणमान,प्रत्याख्यानावरणमाय[1]
=प्रत्याख्यानावरणलोभ चार प्रकृतियोंके प्रत्याख्यानावरणकषायके
=उदय निमित्तक जो असंयम तिसकरि आस्रवोंके बाँधनेवाले
=एकेंद्रिय आदिक(=प्रभृतयः) संयतासंयत (पांचवाँ गुणस्थान)पर्यन्त जीवोंके
=उस असंयम)के न होनेसेऊपर अर्थात्पांचवां गुणस्थानसे अग्रिम (गुणस्थान)में
=तिन (प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ चार प्रकृति)का
=संवर होता है ॥ प्रमाद सहितके (=उपनीतस्य)उस (प्रमाद) के
=न होनेपर संवर (=निरोध)होता है । प्रमादकरि रहित (जीव)के
=कर्मका निरोध (संवर) प्रमत्तसंयत (छठवां गुणस्थान) से ऊपर (=ऊर्ध्वम)
=उस(प्रमाद) के न होने (के निमित्त)से जानना चाहिये ।
=(प्रश्न)पुनि वह (निरोध वा संवर)क्या है (उत्तर) असाता वेदनीय अरति

---

(१) तिसृणाम् और चतुसृणाम्के संबन्धमें देखो टिप्पणी सूत्र १४ अध्याय ८ पृष्ठ ७५ पर
(२) प्रभृतयः–प्रभृति,अव्यय है तदादि तबसे लेकर अर्थ है । बहुव्रीहि समासमें यह शब्द पीछे रहता है ॥ जैसे "इन्द्र प्रभृतयो देवाः' इन्द्रादिक देवता हैं इसलिये "एकेन्द्रियप्रभृतयः' यह वाक्य बहुव्रीहि समास है (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २५४)
(३)उपरिष्टात् औरउपरिअव्यय हैं ऊपर ऊंचे,इनके साथ षष्ठी विभक्ति जैसे यहां पर और इनके साथ द्वितिया विभक्ति मिलती है पद्मचन्द्रकोषपृष्ठ७८

शोकास्थिराशुभायशःकीर्तिविकल्पः॥ देवायुर्बन्धारम्भस्य प्रमाद एव हेतुरप्रमादोऽपि तत्प्रत्यासन्नस्तद्ऊर्ध्वं तस्य संवरः॥ कषाय एवास्रवो यस्य कर्मणो न प्रमादादिस्तस्य तन्निरोधे निरासोऽवसेयः॥ स च कषायः प्रमादादिविरहितस्तीव्रमध्यमजघन्यभावेन त्रिषु गुणस्थानेषु व्यवस्थितः तत्रापूर्वकरणस्यादौ संख्येयभागे द्वे कर्मप्रकृती निद्राप्रचले बध्येते।

शोक-अस्थिर-अशुभ-अयशः कीर्ति-विकल्पः — =शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति विकल्प है, अर्थात् प्रमाद करि सहित जीवके असातोदयनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति ये छह प्रमादके निमित्तसे बंध होते थे सो प्रमादका अभाव होने पर तिनका संवर होता है, अप्रमत्त आदि अगले गुणस्थानोंमें तिन उक्त छह प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है

देव-आयुः-बन्ध-आरम्भस्य प्रमाद-हेतुः एव अप्रमादः अपि तत्-प्रत्यासन्नः — =देव आयुके बन्धके आरम्भका कारण प्रमाद ही है
=प्रमाद रहित भी उस (प्रमाद सहित) के अति निकटस्थ (=प्रत्यासन्न) है अर्थात् देव आयुका बन्ध प्रमत्त संयत (छठवाँ गुणस्थानवर्ती) और अप्रमत्त संयत (सातवां गुणस्थानवर्ती) निके होता है।

तद्-ऊर्ध्वम् तस्य संवरः॥ यस्य कर्मणः आस्रवः कषायः एव न प्रमादआदिः तस्य निरासः तत्-निरोधे अवसेयः। — =उन (प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत) के ऊपर (अपूर्वकरणादि ८वांगुणस्थानवर्तीनिके) =तिस (देव आयुका) संवर होता है॥ जिस कर्मका आस्रव (का कारण) =कषाय ही है (और) प्रमादादि कारण नहीं है तिस (कर्म) का परित्याग अर्थात् निरास्रव =उस (कषाय) के अभावमें वा रोकनेमें जानना चाहिये (कहीं निरास्रवः पाठ है कहीं निरासः)

सः च कषायः प्रमाद-आदि-विरहितः तीव्र-मध्यम-जघन्य-भावेन त्रिषु — =वह कषाय भी (=च) प्रमादादि (भाव) करि वर्जित तीव्र =मध्यम, हीन परिणाम करि (यथासंख्य) तीन

गुणस्थानेषु व्यवस्थितः तत्र, अपूर्वकरणस्य आदौ संख्येयभागे द्वे कर्म-प्रकृती निद्रा-प्रचले बध्येते — =गुणस्थानोंमें अवस्थित वा विद्यमान है तहां (उक्त तीन गुणस्थानोंमें से) अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय) =अपूर्वकरणके आदि विषै संख्यात भागमें =दो कर्म प्रकृतियें निद्रा और प्रचला बंधती हैं

ततऊर्ध्वंसंख्येयभागे त्रिंशत् प्रकृतयो देवगतिपंचेन्द्रियजातिवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गवर्णगन्धरसस्पर्शदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयनिर्माणतीर्थकराख्या बध्यंते॥ तस्यैव चरमसमये चतस्रः प्रकृतयो हास्यरतिभयजुगुप्सासंज्ञा बन्धमुपयान्ति॥ ता एतास्तीव्रकषायास्रवास्तदभावान्निर्दिष्टाद्भागादूर्ध्वं संवियन्ते॥ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्यादिसमयादारभ्य संख्येयेषु भागेषु पुंवेदक्रोधसञ्ज्वलनौ

ततः*ऊर्ध्वम्*संख्येयभागे३ त्रिंशत्३१ =उस(अपूर्वकरण गुणस्थानके आदिके संख्यात भाग)से ऊपर संख्यात भागमें तीस
प्रकृतयः३१ देवगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-आहारक- =प्रकृतियें देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर,
तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वैक्रियिक- =तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर,
आहारकशरीरांगोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श =आहारकशरीरआंगोपांग, वर्ण, गंध रस, स्पर्श,
देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-अगुरुलघु-उपघात- =देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात,
परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त =परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त,
प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण- =प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग सुस्वर आदेय, निर्माण
तीर्थंकर-आख्याः३१ बध्यन्ते। =तीर्थंकरनामा बांधी जाती हैं अर्थात् बन्ध को प्राप्त होती हैं
तस्य३१ एव*चरम-समये३ चतस्रः३१ प्रकृतयः३१ =तिस (अपूर्वकरणगुणस्थान) के ही अन्तके समयमें चार प्रकृतियें
हास्य-रति-भय-जुगुप्सासंज्ञाः३१ बन्धम्३१ उपयान्ति। =हास्य-रति-भय-जुगुप्सा नामा बन्ध को प्राप्त होती हैं॥
ताः३१ एताः३१ तीव्रकषाय आस्रवाः३१ तद्-अभावात्३१ =ते इतनी(२+३०+४=प्रकृतियें)तीक्ष्णकषाय आस्रव वाली तीव्र कषायके अभावसे
निर्दिष्टात्३१ भागात्३१ ऊर्ध्वम्*, संवियन्ते। =बतलायेहुये भागसे ऊपर विसेधी गई हैं वा संवर को प्राप्त होती हैं अर्थात् आठवां अपूर्व करण गुण स्थानमें ३६ प्रकृतियें तीव्र कषाय संबन्धी हैं सो जिस जिस भागमें जो जो प्रकृति बंधती है उसके ऊपर ऊपर भागमें वोही वोही प्रकृतियें संवरको प्राप्त है
अनिवृत्तिबादरसांपरायस्य३१ आदिसमयात्३१ =अनिवृतिबादर साम्पराय नववां गुणस्थानके आदि समयसे
आरभ्य÷संख्येयेषु३१ भागेषु३१ पुंवेद-क्रोधसंज्वलनौ३१ =आरम्भ करि संख्यात भागोंमें पुरुष वेद क्रोध संज्वलन

बध्येते॥ तत ऊर्ध्वं शेषेषु संख्येयेषु भागेषु मानमायासंज्वलनौ बन्धमुपगच्छतः॥ तस्यैव चरमसमये लोभसंज्वलनो बन्धमेति। ता एताः प्रकृतयो मध्यमकषायास्रवास्तदभावे निर्दिष्टस्य भागस्योपरिष्टात्संवरमाप्नुवन्ति॥ पंचानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां यशःकीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्यपंचानामन्तरायाणां च मन्दकषायास्रवाणां सूक्ष्मसाम्परायो बन्धकः

बध्येते1ततः*ऊर्ध्वम्*शेषेषु2'संख्येयेषु3'भागेषु4'
मानमायासंज्वलनौ5'बन्धम्6'उपगच्छतः7'।
तस्य1'एव* चरम-समये2'लोभ-
संज्वलनः3'बन्धम्4'एति1। ताः 1''एताः2''

प्रकृतयः1''मध्यम-कषाय-आस्रवाः2'
तद्-अभावे3' निर्दिष्टस्य4'भागस्य5' उपरिष्टात् *
संवरम्6'आप्नुवन्ति1'। पंचानाम्1''
ज्ञानावरणानाम्2''चतुर्णाम्3''दर्शनावरणानाम्4''
यशः कीर्तेः उच्चैः* गोत्रस्य5'च* पंचानाम्6''
अन्तरायाणाम्1'मन्द-कषाय-आस्रवाणाम्2'
सूक्ष्मसाम्परायः3'बंधकः4'

=बांधे जाते हैं। तिन (संख्यात भागों)से ऊपर बचेहुये संख्यात भागोंमें
=मानसंज्वलन, मायासंज्वलन बन्धको प्राप्त होते हैं।
=तिस(अनिवृत्तिबादरसाम्परायगुणस्थान)के ही अन्त समयमें लोभ-
=संज्वलन बन्धको प्राप्त होता है, ते इतनी अर्थात् उपर्युक्त पांच पुरुषवेद, क्रोध-संज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन
=प्रकृतियें मध्यम कषाय आस्रववाली अथवा मध्यम कषायद्वारा आगमनवाली
=उस (मध्यम कषाय)के न होने पर कथित भागसे ऊपर (=उपरिष्टात्)
=संवरको प्राप्त होती हैं। पांच (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल)
=ज्ञानावरण प्रकृतियोंका, चार (चक्षुःअचक्षुः अवधिः केवल) दर्शनावरण प्रकृतियोंका
=यशःकीर्तिका, ऊंच गोत्रका और (=च)पांच (दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य)
=अन्तरायकी (कर्म प्रकृतियों)के मन्द कषायकरि आस्रवोंका
=बांधने वाला सूक्ष्म साम्पराय दशवां गुणस्थान है अर्थात् दशवां गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभके होनेके कारणसे उक्त सोलह प्रकृतियों का आस्रव होता है

(१) "यशः कीर्तिरुच्चैर्गोत्रस्य" सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें तथा एक हस्त लिखित प्रतिके पत्र ७८ पर यह पाठ है सो अशुद्ध है शुद्ध पाठ "यशः कीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्य" है जैसा कि दो हस्त लिखित प्रतियोंके और तत्त्वार्थराजवार्तिक (मुद्रित)के पत्र ६४,१७१,पृष्ठ ३१६पर क्रमसे है क्योंकि "यशःकीर्ति रुच्चैर्गोत्रस्य = यशः कीर्तिः उच्चैः गोत्रस्य" और यशः कीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्य = यशः कीर्तेःउच्चैःगोत्रस्य। कीर्तिः प्रथमा विभक्ति कीर्ति शब्दका है और कीर्तेः षष्ठी विभक्ति कीर्ति शब्दका है। पंचानां ज्ञानावरणा चतुर्णां दर्शनावरणानां उच्चैर्गोत्रस्य पंचानामन्तरायाणां च मन्द कषायास्रवाणां षष्ठी विभक्तियोंमें है, इनका अन्वय, सम्बन्ध और अनुवाद षष्ठी विभक्ति कीर्तेः शब्दके साथ बनताहै न कि कीर्तिः शब्द प्रथमा विभक्तिके साथ॥ (२) स च कषाय...बन्धकः पृष्ठ ६,७,८ तकका सारांश है (क) अपूर्वकरण आठवां गुणस्थानमें तीव्र

तदभावात्तदुत्तरत्र तेषां संवरः ॥ केवलेनैव योगेन सद्वेद्यस्योपशान्तकषायक्षीणकषाय सयोगानां बन्धो भवति । तदभावादयोगकेवलिनस्तस्य संवरो भवति ॥ उक्तः संवरस्तद्धेदप्रतिपादनार्थमाह

तद्-अभावात्[५] उत्तरत्र* =वहां (सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान) से ऊपर =उत्तर) उस (मन्द कषाय) के न होनेसे
तेषाम्[६] संवरः[१] । केवलेन[३] एव* योगेन[३] सद्वेद्यस्य[६] ॥ =तिन (उक्त सोलह प्रकृतियों) का संवर होता है । अकेलेही योगकरि सातावेदनीयका
उपशांतकषाय-क्षीणकषाय- =उपशांतकषाय (ग्यारहवां गुणस्थान) क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान)
सयोगानाम्[६] बन्धः[१] भवति[१] । =सयोगकेवली (तेरहवां गुणस्थानवर्तियों) के बन्ध होता है अर्थात् उक्त तीन गुणस्थानोंमें केवल योगके निमित्तसे सातावेदनीय प्रकृतिका बन्ध होता है
तद्-अभावात्[५] अयोगकेवलिनः[६] तस्य[६] ॥ संवरः[१] । =उस योग) के अभावसे अयोग केवली के तिस (सातावेदनीय का संवर
भवति[१] । उक्तः[१] संवरः[१] । तद्-हेतु-प्रतिपादन-अर्थम्[५] ॥ आह[१] =होता है । संवर कहा गया है, उस (संवर) के कारण कहनेके लिये कहते हैं कि

कषायके निमित्त से वा कारणसे कर्मकी प्रकृतियें बंधतीहैं । अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थानमें मध्यम कषाय के निमित्तसे अथवा हेतुसेकर्मकी प्रकृतियें बन्धको प्राप्त होती हैं और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्मकषाय अर्थात् सूक्ष्म वा मंद लोभ कषायके निमित्तसे प्रकृतियोंका आस्रव होता है (ख) आठवां अपूर्वकरण गुणस्थानके सात भागोंमेंसे पहिले भागमें निद्रा,प्रचला दो प्रकृतियों की बन्धसे व्युच्छित्ति होती है पहले भागसे अगले भागोंमें इन दो प्रकृतियों का संवर होता है दूसरे भागसे पांचवां भाग तक शून्य, छठवां भागमें देवगति आदि उक्त तीस प्रकृतियों की बन्धसे व्युच्छित्ति होती है, छठवां भागसे ऊपर सातवां भाग तथा नवमां,दशवां इत्यादिक अगले गुणस्थानोंमें उक्त तीस प्रकृतियें का संवर होता है और सातवां भागमें अर्थात् अन्तके समय विषे चार हास्य-रति-भय-जुगुप्सा प्रकृतियोंकी बन्धसे व्युच्छित्ति होती है ऐसे तीक्ष्ण कषाय निमित्तक ३६ प्रकृतियोंकी बन्धसे अपूर्व करणमें व्युच्छित्ति होतीहै । गोम्मट० कर्म० [ग] नवमां गुणस्थानके आदि समयसे लगाय संख्यातभागमें पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध बन्धको प्राप्त होते हैं, उक्त संख्यात भागोंसे ऊपरके भागोंमें तथाअगले गुणस्थानोंमें इनका संवर होता है उक्त संख्यात भागों से ऊपर शेष संख्यात भागोंमें संज्वलनमान,संज्वलनमाया बंधतो है ॥ इन पश्चात्में कहे हुये संख्यात भागोंसे ऊपर तथा अगले गुणस्थानोंमें संज्वलनमान,संज्वलनमायाका संवर होता है,नवमें गुणस्थानके अन्त समयमें संज्वलन लोभ बंधता है, इस समयसें ऊपर गुणस्थानोंमें इस संज्वलन लोभका भी संवर होता है जिसर भागमें जोर प्रकृतियें बंधती हैं तिस तिस भागके ऊपरर भागोंमें उसर प्रकृतिका संवर होता है उक्त पांच प्रकृतियें मध्यम कषायके निमित्तसें बंधती हैं । (घ) दशमें गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभ कषाय वा मंद लोभ कषायके निमित्तसे उक्त १६ प्रकृतियोंका आस्रव होता है सो इस गुणस्थानके अन्त समयमें इन सोलह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है इस गुणस्थानके आगे इन सोलह प्रकृतियोंका संवर होता है, ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानोंमें किसी प्रकृति की व्युच्छित्ति नहीं होती है ॥

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजय चारित्रैः ॥ २ ॥

यतः संसारकारणादात्मनो गोपनं भवति सा गुप्तिः। प्राणिपीडापरिहारार्थं सम्यगयनं समितिः।

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः=सः गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परिषहजय-चारित्रैः।

सूत्रार्थः—सः[१] गुप्ति- =वह (संवर) गुप्ति करि अर्थात् संसार में परिभ्रमणके कारणोंसे आत्माका बचाव अथवा रक्षण करि,
समिति- =समितिसे अर्थात् प्राणियोंको दुःख न होनेदेनेके लिये यत्नाचाररूप प्रवर्तन द्वारा,
धर्म- =धर्मद्वारा अर्थात् शान्ति और सुखस्थानमें आत्माको धरनेवाला वा लेजाने वाला ऐसे दशलक्षणरूप धर्म करि
अनुप्रेक्षा- =भावनासे अर्थात् शरीरादि परद्रव्य, ज्ञानमय आत्मद्रव्यऔर अन्य२ धार्मिकद्रव्योंके स्वभावका बारबार चिंतवनसे
परिषहजय- =परीसहोंके जीतनेकरि अर्थात् बाह्याभ्यन्तर कारणोंसे क्षुधा तृषा शीत उष्ण इत्यादि दुःखोंके आने पर उनको शान्ति पूर्वक, क्लेशरहित परिणामों द्वारा सहन करतेरहनेसे
चारित्रैः भवति। =और चारित्रकरि अर्थात् संसारके परिभ्रमणके कारणरूप बाहिर अभ्यन्तर क्रियाका त्याग द्वारा होती है

शब्दानुवादः—यतः संसार- =जिससे (पांचपरिवर्त रूप) संसार परिभ्रमणके
कारणात् आत्मनः गोपनं =निमित्तसे अथवा हेतुसे आत्माका रक्षण अथवा बचाव
भवति। सा गुप्तिः ; =होता है सो गुप्ति है, (वह गुप्ति मनोगुप्ति, वचनगुप्ति कायगुप्ति तीन प्रकारकी होती है)
प्राणिन्-पीडा-परिहार-अर्थम् =जीवोंका दुःख, क्लेश वा पीडा दूरकरने के लिये, नाश करने के लिये,
सम्यग् अयनम् समितिः ॥ =भले प्रकारसे (अर्थात् यत्नाचार रूपसे) आश्रय(=अयन)वा प्रवर्तन सो समितिहै। सम्यक् सम्यग् सम्यच् रूपहैं

[१] इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है। व्याधि वा पीड़ाकी सहन झेलन है सो परिषह है यहाँ पर "षह" शब्दमें अकार है सो कर्मणि अकार है अर्थात् कर्मणिप्रयोगके अर्थ में है ऐसा ही अर्थ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३२०में किया है कि "परिपूर्वात्सहेः कर्मण्यकारः। परिषह्य इति परीषहः" यही अर्थ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४८७में किया है परिषह्यंते इति परीषहाः व्याधि वा पीड़ाका सहेजाना वाझेलजाना ऐसी परीषायें है "तेषां जयोन्यकार" तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४८७तिन(परीषह)का तिरस्कार, अपमान, निरादर वा जीतना सो तेषांजयः है, (प्रश्न) पांच व्रतोंको भी संवरका कारण सूत्रमें क्योंनकहा? (उत्तर) द्रव्य संग्रह ग्रन्थकी "वदसमिदी गुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसहजओ य =व्रतसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षाः परीषहजयश्च।" गाथा में व्रतोंको भी संवरका कारण कहा है यहां इस कारणसे सूत्रमें व्रतों को समावेश नहीं किया है कि (क) व्रतोंका कथन सातवें अध्यायमें करदिया है यहां द्वितीयवार कहना पड़ता (ख) लगभग सब व्रत दशधर्ममें भी अन्तर्गत हैं॥

१०

इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः। शरीरादीनां स्वभावानुचिन्तनमनुप्रेक्षा। क्षुदादिवेदनोत्पत्तौ कर्मनिर्जरार्थं सहनं परिषहः। परिषहस्य जयः परिषहजयः। चारित्रशब्द आदिसूत्रे व्याख्यातार्थः। एतेषां गुप्त्यादीनां संवरक्रियायाः साधकतमत्वात् करणनिर्देशः। संवरोऽधिकृतोऽपि स इति तच्छब्देन परामृश्यते गुप्त्यादिभिः साक्षात्सम्बन्धार्थः॥ किं प्रयोजनमवधारणार्थं?। स एष संवरो गुप्त्यादिभिरेव नान्येनोपायेनेति॥ तेन तीर्थाभिषेकदीक्षाशीर्षोपहार-

---

इष्ट[१]-स्थाने[२]-धत्ते[३]-इति[४] धर्मः[५];शरीरादीनाम्[६] स्वभाव-अनुचिंतन[७]-अनुप्रेक्षा[८];क्षुधा-आदि-वेदना-उत्पत्तौ[९] कर्म-निर्जरा-अर्थम्[१०]-सहनम्[११] परिषहः[१];परिषहस्य[२] जयः[३] परिषहजयः[४]।

=(स्वर्ग-मोक्षादि)वांछित सुखस्थानमें(आत्माको) धरता है ऐसा धर्म है। शरीरादिकोंके =लक्षण वा स्वरूप बारम्बार चिंतवन सो अनुप्रेक्षा है। भूखादिकी पीड़ा वा व्याधि =आनेपर कर्म के क्षय होनेके लिये(वह वेदना)सहीजाय अथवा झेलीजाय =सो परीषह है। उक्त वेदनाका न्यक्कार,अर्थात् निरादर करना सो परीषहजय है अर्थात् पीड़ाके सहनेमें समभाव रखना, शोक क्लेश रहित परिणामोंसे सहना सो परीषहजय है

चारित्र-शब्दः[१] आदि-सूत्रे[२]
व्याख्यात-अर्थः[१],एतेषां[२] गुप्ति-आदीनां[३] संवर-क्रियायाः[४] साधकतमत्वात्[५] करण-निर्देशः[१]।
संवरः[१] अधिकृतः[२]
अपि*(१)सः[१] इति* तत्-शब्देन[२] परामृश्यते।
गुप्ति-आदिभिः[३]
साक्षात्*संबंध-अर्थः[१] (२)किम्[२]।
प्रयोजनम्[१] अवधारण-अर्थम्[२]।,सः[१] एषः[२] संवरः[३]
गुप्तिआदिभिः[३] एव*न*अन्येन[४] उपायेन[४] इति*।तेन[३]
तीर्थ-अभिषेक-दीक्षा-शीर्षउपहार-

=चारित्र शब्दका प्रथम सूत्र(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः)में =अर्थ कहा गया है। इन गुप्ति आदिकके संवरकी =क्रियाका उत्कृष्ट साधकपनासे(इस सूत्रमें)हेतुरूप उपदेश अथवा कथन (कियागया) है। =(इस अध्यायके आरम्भमें)संवर(तत्त्व)अधिकृत है अर्थात् संवर तत्त्वका प्रकरण वा विषय है =तौ भी(सूत्रमें)स ऐसे तत् शब्द द्वारा(उस संवरका)परामर्श व विचार किया जाता है कि =(सशब्द) गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परिषहजय-चारित्र करि(उस संवरके) =प्रत्यक्ष संबन्धके लिये है(प्रश्न)संवरका स शब्दकरि गुप्ति आदिके साथ संबन्ध करनेका क्या =प्रयोजन है?(उत्तर)नियम जतावनेके लिये (सूत्रमें स शब्द)है,सो यह संवर =गुप्तादिकरि ही होता है न(कि किसी)दूसरे साधन करि,तिस (अवधारण वा नियम)से =तीर्थमेंस्नान करना(भेष मात्र)दीक्षाका लेना,देवी-देवता-चंडी-आदि पर मस्तकका अर्पण

---

(१)स = सःप्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंगतत् शब्दका है इसलिये अनुवादमें स शब्दकेलिये "तत् शब्द द्वारा" लाये हैं(२)किम् दोनों मुद्रित प्रतियोंमें

देवताराधनादयो निवर्तिता भवन्ति ॥ रागद्वेषमोहोपात्तस्य कर्मणोऽन्यथा निवृत्त्यभावात् ॥

संवरनिर्जराहेतुविशेषप्रतिपादनार्थमाह—॥ तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

देवता-आराधन-आदयः[१](१) निवर्तिताः[१] भवन्ति[1]=देवताकी पूजा वा सेवा आदिक (संवरके कारणोंमेंसे) निराकरण (=निवर्तिता) होते हैं

राग-द्वेष-मोह-उपात्तस्य[६''] कर्मणः[६''] अन्यथा*=क्योंकि राग द्वेष और मोहद्वारा उपार्जित कर्मकी अन्य प्रकारसे

निवृत्ति-अभावात्[५] =निवृत्ति नहीं होती है। सारांश यह है कि आस्रवका निरोधरूप जो संवर वह गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परिषहजय और चारित्र द्वारा ही होता है तीर्थमें स्नानादिक करि नहीं होता है इस आशयका द्योतक "स" शब्द सूत्रमें है क्योंकि राग, द्वेष, मोह, कषाय आदिसे आत्मामें उत्पन्न हुये कर्मों की निवृत्ति संवरके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे नहीं होसक्ती है ॥

संवर-निर्जरा-हेतु-विशेष-प्रतिपादन-अर्थम्[१''] आह[1]=संवर तथा निर्जरा के कारण विशेष जाननेके लिये कहते हैं कि

(२)तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥ = (३)तपसा निर्जरा च भवति ३ ॥

सूत्रार्थ:—तपसा[३''] निर्जरा[१''] च*भवति[1]=तपकरि निर्जरा भी (=च) होती है अर्थात् भी (=च) से प्रगट है कि तपसे कुछ और भी होता है और निर्जरा भी होती है—भावार्थ—तपकरि संवर तो होता ही है निर्जरा भी होती है इसलिये सूत्रमें 'च' शब्द संवरके संग्रहके लिये है ॥

नहीं है अन्य तीन हस्त लिखित प्रतियोंके पत्र १७१, ६४, ७६ पर पाया जाता है, छूटनेसे रह गया है क्योंकि अन्यथा अनुवाद, तात्पर्य नहीं हो सका है (१) सर्वार्थसिद्धिकी दो मुद्रितप्रतियोंमें और एक हस्त लिखित प्रतिके पत्र १७१ पर 'निर्वर्तिता' पाठ है सो सर्वथा अशुद्ध है, निवर्तिता पाठ शुद्ध है क्योंकि निवर्तिता का अर्थ निराकरण, निषेधका है परन्तु निर्वर्तिता का अर्थ इससे उलटा पूर्ण वा समाप्तिका है, स्पष्ट है कि यहांपर निराकरणसे आशय है ॥ (२) संवरके समस्त कारणोंमें प्रधान वा श्रेष्ठ तप है इस प्रकार इसके कहनेके लिये चशब्द सूत्रमें पृथक् ग्रहण किया गया है सर्वेषुसंवरहेतुषु प्रधानं तप इत्यस्य(=इति-अस्य) =समस्त संवरके कारणोंमेंसे तप प्रधान(कारण) है ऐसे इस (प्रधान कारण)के प्रतिपत्त्यर्थं च पृथग्ग्रहणं क्रियते-तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३२० ॥ =निरूपणके लिये(सूत्रमें)च भिन्न ग्रहण कियागया है(देखो राजवार्तिकपृष्ठ३२०) (३)श्वेताम्बरआ०के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें और सर्वत्र हमारे यहां इस सूत्रका एक पाठ और अर्थ है। तपसा निर्जरा च=तपसा संवरो भवति भवतिनिर्जरा च=तपसे संवर होता है निर्जरा भी होती है अर्थात् तपसा निर्जरा च=तपो संवर-कारणं भवति, निर्जराकारणमपि (=निर्जराकारणम्-अपि) भवति=तप संवरका कारण होता है, निर्जराका कारण भी होता है ॥

तपो धर्मेऽन्तर्भूतमपि पृथगुच्यते उभयसाधनत्वख्यापनार्थं संवरं प्रति प्राधान्यप्रतिपादनार्थं च ॥ ननु च तपोऽभ्युदयाङ्गमिष्टम् देवेन्द्रादिस्थानप्राप्तिहेतुत्वाभ्युपगमात्, कथं निर्जराङ्गं स्यादिति ॥ नैष दोषः-एकस्यानेककार्यदर्शनादग्निवत् । यथाऽग्निरेकोऽपि क्लेदनभस्मांगारादिप्रयोजन उपलभ्यते

शब्दानुवादः-तपः[1]''धर्मे[2] अन्तर्भूतम्[2]''अपि* =‘तप’ धर्ममें (देखो सूत्र ६ अध्याय ९) गर्भित है तो भी

पृथग्*उच्यते T उभयसाधनत्व-ख्यापन-अर्थम्[1]'' =भिन्न कहागयाहै और दोनों [संवरऔर निर्जरा]का कारणपना (=साधनत्व)जतावनेकेलिये

संवरम्[2] प्रति*प्राधान्य-प्रतिपादन-अर्थम्[1]''च* । =और (=च)संवर प्रति मुख्यता जतावनेके लिये(तप शब्दका सूत्रमें न्यारा प्रयोग किया)है

=भावार्थइसका यह है कि-धर्मको संवर होनेका कारण दूसरे सूत्रमें कहा है और छठवां सूत्रसे विदित है कि तप धर्ममें अन्तर्गत है तब फल अथवा परिणाम यह हुआ कि तप संवरके उत्पन्न होनेका कारण होगया फिर इस तीसरे सूत्रमें तपको संवरका कारण कहना निष्फल हुआ , उत्तरमें कहते हैं (क) यह कि तप संवर और निर्जरा दोनोंका कारण है (ख) यह कि तीन गुप्ति, पांच समिति, तप के अतिरिक्त अन्य नौ धर्म, बारह अनुप्रेक्षा और बाईस परीषहजय, और पांच चारित्र इन सर्व छप्पन (५६) संवरके कारणोंमेंसे तप संवरके होनेका सबसे मुख्य वा प्रधान कारण है इसलिये तपको न्यारा इस तीसरे सूत्र द्वारा कहा गया है ॥

ननु*च*देव-इन्द्र-आदि-स्थान-प्राप्ति-हेतुत्व-अभ्युपगमात्[5] =पुनि प्रश्न, देव इन्द्रादिक पदवियोंके प्राप्तिका कारणपना (तपको) माननेसे

तप-अभ्युदय-अंगम्[1]''इष्टम्[2]'',निर्जरा-अंगम्[1]'' =तपवृद्धिका प्रिय (=इष्ट)अंग वा उपायहुआ,(कर्मके)क्षयका(=निर्जरा)अंग वा उपाय

कथम्*स्यात्*इति* । न*एषः[1]दोषः[1]अग्निवत्* =कैसे हुआ,(उत्तर) यह दूषण नहीं है। अग्निके समान

एकस्य[6]''अनेक-कार्य-दर्शनात्[5]'' =एक(वस्तु)के बहुतकार्य देखनेसे (तपकर्मक्षय और इन्द्रादिक पदवियोंका कारण होताहै)

यथा*अग्नेः[6]एकः[1]अपि*क्लेदन-भस्म-अंग-आदि-प्रयोजनः[1] उपलभ्यते T =जैसे एक अग्निके भी(=अपि) वस्तुका पचाना अवयव(=अंग) आदिका भस्मकरना =कार्य प्राप्त किये जाते हैं। (प्रयोजन शब्द बहुव्रीहि समासमेंहै अतः पुल्लिंगमें है)।

तथातपोऽभ्युदयकर्मक्षयहेतुरित्यत्रकोविरोधःसंवरहेतुत्वादादावुद्दिष्टायागुप्तेःस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति ॥ ४ ॥

योगो व्याख्यातः कायवाङ्मनःकर्म योग इत्यत्र । तस्य स्वेच्छाप्रवृत्तिनिवर्तनं निग्रहः । विषय-सुखाभिलाषार्थप्रवृत्तिनिषेधार्थं सम्यग्विशेषणम् ॥ तस्मात् सम्यग्विशेषणविशिष्टात् ।

तथा*तपस्-अभ्युदय-कर्म-क्षय-हेतुः[1]इति*अत्र*कः[1] विरोधः[1]; संवर-हेतुत्वात्[5]''' आदौ[5] उद्दिष्टायाः[5]'' गुप्तेः[5]''स्वरूप-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1]''आह T

=तैसे तपकी वृद्धि और कर्मके क्षयका कारण है। ऐसे (कथनमें) यहां क्या =विरोध हुआ अर्थात् कुछ भी विरोध नहीं हुआ। संवरके कारणपनेमेंसे आदिमें =उपदेश कियागया गुप्तिका स्वरूप जतावनेके लिये (उत्तर सूत्रमें)कहते हैं कि

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

=सम्यग्-योग-निग्रहः गुप्तिः भवति ॥४॥

सूत्रार्थः—सम्यग् * योग-निग्रहः[1] गुप्तिः[1]'' भवति T ।

=भले प्रकार अर्थात् विषय सुखकी अभिलाषारहित मनवचन कायकी क्रियाका =रोकना वा वशमें करना अर्थात् मन वचन कायकी यथेष्ट प्रवृत्तिका रोकना =सो गुप्ति है (मनोगुप्ति-वचनगुप्ति-कायगुप्ति तीन हैं)

वृत्यानुवादः—काय-वाङ्मनः कर्म[1]''' योगः[1] इति * अत्र* योगः[1] व्याख्यातः[1]। तस्य[6] स्व-इच्छा-प्रवृत्ति-निवर्तनम्[6]''' निग्रहः[1]।

=शरीर, वचन, और मनकी क्रिया (है सो) योग है ऐसा =इस स्थानमें (अर्थात् छठवाँ अध्यायके प्रथम सूत्रमें) =योग कहागया है वा वर्णनाकिया गया है। तिस (योग) की =स्वाभिलाषाकी प्रवृत्तिका मेटना निग्रह है अर्थात् मनको वचनको और कायको अपने २ भिन्न २ विषयोंकी बुरी प्रवृत्तियोंसे रोकना सो निग्रह है

विषय-सुख-अभिलाष-अर्थ-प्रवृत्ति-निषेध-अर्थम्[1]''' =विषय सुखके वांछारूप प्रयोजन (=अर्थ) की प्रवृत्तिके अभावके लिये सम्यग्-विशेषणम्[1]''''॥तस्मात्[5]''' सम्यग्विशेषण-विशिष्टात्[5]''' =(इससूत्रमें)सम्यक् विशेषण वा गुणवाचक शब्द)हैतिस सम्यक् विशेषणयुक्तकरि

(१) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ एक है,श्वेताम्बर आम्नायके समाष्य०में सम्यग् शब्दको सम्यग् दर्शनके अर्थमें लेतेहुये निम्न भाष्य०दियाहै सम्यग्दर्शन पूर्वकं त्रिविधस्य योगस्य निग्रहोगुप्तिः = सम्यग्दर्शन पूर्वकंकाय वाग् तथा मनोरूपजो तीनप्रकारके योग पूर्व में कहेउनकानिरोध सोगुप्तिहै

संक्लेशाप्रादुर्भावपरात्कायादियोगनिरोधेसति तन्निमित्तं कर्म नास्रवतीतिसंवर प्रसिद्धिरवगन्तव्या सा त्रितयी कायगुप्तिर्वाग्गुप्तिर्मनोगुप्तिरिति। तत्राशक्तस्य मुनेर्निरवद्यप्रवृत्तिख्यापनार्थ माह—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

संक्लेश—अप्रादुर्भाव—परात्[५] =संक्लेशकी अधिकतासे(=परात्) रहित(=अप्रादुर्भाव) अर्थात् जिससे अधिक संक्लेशन हो।
काय—आदि—योग—निरोध[७]सति[७] तत्—निमित्तम्[७] =ऐसा काय आदिक योगोंके निरोध होनेपर उन (योगोंके निरोध) के कारण
कर्म[७] न*आस्रवति।इति*संवर-प्रसिद्धिः[१] अवगन्तव्या[१] =कर्म नहीं आता है ऐसे संवरकी विख्याति जानना चाहिये भावार्थ मन-वचनकायके योगोंके रोकनेमें इतना अधिक संक्लेश न हो कि शरीर छूट जाय सम्यक् विशेषणकी विलक्षणताकरिसंक्लेशकी अधिकतासे वर्जित काय आदि योगोंके निरोध होने पर उसके निमित्तसे कर्म नहीं आते हैं सो संवर जानो
सा[१] त्रितयी[१] कायगुप्तिः[१] वाग्गुप्तिः[१] मनोगुप्तिः[१] =सो गुप्ति तीन, काय गुप्ति—वचन गुप्ति—मनोगुप्ति
इति* तत्र* अशक्तस्य[६] मुनेः[६] निरवद्य- =ऐसे हैं॥ तहां (गुप्तिरूप रहनेमें) असमर्थ मुनिके निर्दोष
प्रवृत्ति—ख्यापन—अर्थम्[४] आह T। =प्रवृत्तिके प्रगट (करने) के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाःसमितयः=ईर्या-भाषा-एषणा-आदान-निक्षेप-उत्सर्गाःसमितयःभवन्ति

सम्यक् पदके लाने पर सूत्र ऐसे होगया कि सम्यगीर्या,सम्यग् भाषा,सम्यग् एषणा,सम्यग् आदाननिक्षेप,सम्यग् उत्सर्ग समितयः भवन्ति ॥

सूत्रार्थ:—सम्यग्*ईर्या[१] सम्यग्* भाषा[१] सम्यग्* एषणा[१] =यत्नसे चलना, यत्न से बोलना, यत्न तैं शुद्ध निर्दोष आहार लेना
सम्यग्*आदान—निक्षेपौ[२] सम्यग्*उत्सर्गः[१]समितयः[३]। =यत्नसे उपकरणादि उठावना धरना,यत्नसे मलमूत्रादि क्षेपण(पांच समितियें हैं
भावार्थ धर्मार्थ सूर्योदयके पश्चात् मनुष्य तिर्यंचोंके चलनेसे तुषारादि जिस मार्गमेंसे जातारहाहो ऐसे पथमें चार हाथ प्रमाण आगेकी भूमिको देखकर मुनि धीरे २ चलें कि जीवोंकी हिंसा न हो सो सम्यगीर्या समिति है।[ख]हित मित (=थोड़ा) संदेह रहित प्रिय वचनोंका बोलनासो सम्यग्भाषा समिति है [ग] दिनसे एकबार निर्दोष आहार लेना है सो सम्यगेषणासमिति है(घ)शरीर,पुस्तक,कमण्डल,पीछी आदिको नेत्रोंसे देखकर यत्नसे उठाना रखना सो सम्यगादान निक्षेपणसमिति है।(ङ)शुद्ध जंतु रहित भूमिपर मल मूत्र क्षेपनकरना सुक जलसे शौच क्रिया करना सो सम्यगुत्सर्गसमिति है

सम्यगित्यनुवर्तते तेनेर्यादयो विशेष्यन्ते । सम्यगीर्या सम्यग्भाषा सम्यगेषणा सम्यगादान-निक्षेपौ सम्यगुत्सर्ग इति । ता एताः पंच समितयो विदितजीवस्थानादिविधेर्मुनेः प्राणि-पीडापरिहाराभ्युपाया वेदितव्याः ॥ तथा प्रवर्तमानस्यासंयमपरिणामनिमित्तकर्मास्रवाभावात्संवरो भवति ॥ तृतीयस्य संवरहेतोर्धर्मस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपःत्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिधर्मः

वृत्त्यानुवादः—सम्यग्* इति*अनुवर्तते T तेन*ईर्या- आदयः ३ विशेष्यन्ते T ।

=सम्यग् ऐसा (शब्द चौथे सूत्रसे) आता है तिस (सम्यग् शब्दसे) ईर्या =आदिक (पांचों समितियें) विशेषणकी गई हैं अर्थात् प्रत्येकके प्रथम विशेषण वा गुणवाचक शब्द सम्यग् लगाया गया है ।

सम्यग्* ईर्या १॥ सम्यग्*भाषा १॥ सम्यग्* एषणा १॥ सम्यग्* आदान-निक्षेपौ २ सम्यग्* उत्सर्गः १॥ इति* । ताः १॥ एताः ३॥ पंच १॥ समितयः ३॥ विदित-जीवस्थानादि-विधेः ६॥ मुनेः ६॥ प्राणिन्-पीडा-परिहार-अभ्युपायाः ३॥ वेदितव्याः ३॥ तथा* प्रवर्तमानस्य ६॥ असंयम-परिणाम-निमित्त-कर्म-आस्रव-अभावात् ५॥ संवरः १॥ भवति T तृतीयस्य ६॥ संवर-हेतोः ६॥ धर्मस्य ६॥ भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ४॥॥ आह T

=तव) सम्यगीर्या, सम्यग् भाषा, सम्यग् एषणा =सम्यग् आदान (=उठावना) निक्षेप(=रखना) सम्यग् उत्सर्ग (ऐसे (५समिति) हुई =ते इतनी पांचसमितियें जीवके स्थान (योनि) आदिक भेदकी विधिके ज्ञाता =मुनिके प्राणियोंकी पीडादूर करनेका शुभ उपाय (=अभ्युपाय) जानना चाहिये =तथा (सम्यक्) प्रवर्तमानके असंयम परिणामके निमित्तसे कर्मका =आस्रव(= आगमन) होताथा तिस (असंयम परिणाम)के अभावसे संवरहोताहै =तीसरा संवरका कारण धर्मके भेदजाननेके लिये [अग्रिम सूत्रमें] कहते हैं कि

(२उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौच १) सत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाश्रयतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'उत्तमः क्षमा' उत्तमक्षमा के स्थानमें है। उक्त भाष्योंमें, मुद्रित सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें, तत्त्वार्थराजवार्तिकोंमें, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकों में " शौचसत्य " पाठ है. हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें और अन्य अन्य प्रतियोंमें कहीं कहीं पर ' शौचसत्य ' पाठ है, कहीं हींपर 'सत्यशौच' पाठ है, पूज्यपादस्वामीकी संस्कृतवृत्ति अथवा संस्कृत-भाष्यमें सर्वत्र 'शौचसत्य' है अतः हमने भी ' शौच सत्य ' पूज्यपादस्वामीके अनुसार पाठ लिया है ॥

सूत्रकापदच्छेद= (१) उत्तमक्षमा-उत्तममार्दव-उत्तमआर्जव-उत्तमशौच-उत्तमसत्य-उत्तमसंयम-उत्तमतपः-उत्तमत्याग-उत्तमआकिंचन्य-उत्तमब्रह्मचर्याणि $\frac{1}{3}^{111}$ धर्मः $\frac{1}{4}^{1}$

सूत्रार्थ :—उत्तमक्षमा $\frac{1}{4}^{11}$,=शरीरकी स्थितिके लिये आहारके निमित्त मुनिदूसरोंके घरोंमें जावें और दुष्टजन निंदा—हास्य-अनादर-मारन शरीरकाघात आदिक करैं तौभी मुनिके परिणामोंमें मलीनता का न होना सो उत्तमक्षमा है।

(२) उत्तममार्दवम् $\frac{1}{4}^{111}$, =(क) श्रेष्ठजाति (ख)प्रधानकुल (ग) रूप (सौन्दर्य),(घ)ऐश्वर्य (धनआदि विभूति),(ङ) विज्ञान अर्थात् अनेक पदार्थ विषयक आनुभविक ज्ञान (च) श्रुत अर्थात् शास्त्र सम्पत्ति, (छ) लाभ (ऐहिक वा पारलौकिक पदार्थ के लाभ) (ज) वीर्य इन आठमदके द्वारासे प्रभाव से, वा लीनतासे जो अभिमान तिसका अभाव (सो उत्तममार्दव है।) संक्षेपतः नम्रताका वर्तन तथा गर्व-राहित्य होना यह मार्दवका लक्षण है।

(३) उत्तमआर्जवम् $\frac{1}{4}^{111}$, =(मन—वचन—कायके) योगोंकी सरलता, सिधाई, कपट राहित्य, कुटिलता का अभाव अथवा वक्रता का अभाव (सो उत्तम आर्जव है) अर्थात् धोखा देना वा मिथ्या भाषण, कपटादि वा मायाचार व्यवहारोंसे दूसरेको ठगनेका अभाव ऐसा आर्जवधर्मका लक्षण है।

(४) उत्तमशौचम् $\frac{1}{4}^{111}$, =उत्कृष्टपनै लोभसे उपराम, निवृत्ति, हटना वा छुटकारा सो शौच वा पवित्रता है भावार्थ जो अन्यके धन स्त्री आदिकमें अभिलाषाका (लोभका) अभाव तथा षट् कायके जीवोंका हिंसाका अभाव सो शौच है, अथवा जीने का लोभ, पुत्र स्त्री पुत्र मित्रादिक के जीवितका लोभ,अर अपना आरोग्यपना चाहना तथा स्त्रीपुत्रादिक के आरोग्यता रहनेका लोभ, अपने इंद्रिय प्रबल रहनेका लोभ तथा स्त्री पुत्रादिकों की इंद्रियोंके प्रबलता रहने का लोभ अपने उपभोगकी सामग्री मिलनेका,स्थिर रहनेका लोभ ऐसेचार प्रकारके लोभका परिणाममें अभाव है और संतोष भावका प्रगट होना सो शौच है।

---

(१) इन धर्मोंमें 'उत्तम' शब्द लगा है सो अपनी ख्याति, लाभ,पूजा, प्रतिष्ठा आदिकके लिये ये धर्म धारण करै तो उत्तम धर्म नहीं है इसलिये ख्याति लाभादिककी इच्छा रहित धर्मोंका धारण करना ही उत्तम धर्म कहाजाता है। (२) नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ(=नीचैःवृत्ति-अनुत्सेकौ) मार्दव लक्षणम्=नम्रताका प्रवर्त्तन तथा गर्वराहित्य होना यह मार्दवका लक्षण है (सर्वार्थ० पृष्ठ १९५) मृदुका अर्थ कोमल है उस मृदु शब्दसे भाव वा कर्म अर्थमें तद्धित अण् प्रत्यय होनेसे मार्दव बनता है। मृदोर्भावः कर्म वा मार्दवम् अर्थात् मृदुका जो भाव वा कर्म है वह मार्दव है (३) सरल अर्थ वाचक "ऋजु"शब्दसे भाव वा कर्म अर्थमें अण् प्रत्यय होनेसे आर्जव बनता है (ऋजोर्भावः कर्म वा आर्जवम्) अर्थात् ऋजुका जो भाव वा कर्म है वह आर्जव है अथवा सरल भाव वा सरल कर्म यह आर्जव है(सर्वार्थ० पृष्ठ १९६)(४) अलोभःशौचलक्षणम् ।=लोभ का अभाव होना यह शौचका लक्षण है, शुचेर्भावः शुचि कर्म वा शौचम्=शुचिका भाव वा शुचि (=पवित्र कर्म शौच है (सर्वार्थ० पृष्ठ १९६)

उत्तमसत्यम्[१''', =अच्छे प्रशंसनीय जनोंमें यथार्थ ठीक ठीक ज्यों का त्यों (=साधु) वाक्यकहना सो उत्तम सत्य है(देखोपृष्ठ२०)

[१] उत्तमसंयम[२''', =संक्षेपतः संयम धर्म दो प्रकार है (क) (प्राणिसंयम) (ख) इन्द्रिय संयम, ईर्या समिति आदिकमें प्रवर्ततेहुए मुनिके जीवोंकी रक्षाके लिये एकेन्द्रियादि प्राणियोंकी पीड़ा करनेका त्याग सो प्राणि संयम है और शब्द रूप गंध रस और स्पर्शवाले इन्द्रियोंके विषयमें रागका अभाव सो इन्द्रिय संयम है।

(२) उत्तमतपः[३''', =कर्मके नाशके लिये तपाजाय(सो तप है) (वह बाह्य-अभ्यन्तर भेदोंसे बारह प्रकारका है(अध्याय ९सूत्र १९,२०)

(३) उत्तमत्यागः[४', =संयमीयोंके योग्य ज्ञानादिकका देना (सो त्याग धर्म है)अथवा चेतन अचेतनरूप परिग्रहका त्याग सो त्याग है, (परिग्रहनिवृतिस्त्यागः=परिग्रह-निवृत्तिः त्यागः=परिग्रहका छोड़ना सो त्याग हैराजवार्तिक पृष्ठ ३२५)

(४) उत्तमआकिंचन्यम्[५''',=विद्यमान शरीर तथा धर्म उपकरण (=धर्म साधन सामग्री) आदिमें भी कि मेरा यह है(=ममत्व) ऐसे अनुराग वा परिणामकी निवृत्ति (सो आकिंचन्य नवम धर्म है) अर्थात् आत्मस्वरूपसे भिन्न शरीरादिकमें ममत्वरूप परिणामोंका अभाव (सो उत्तमाकिंचन्य धर्म है)

(५) उत्तमब्रह्मचर्यम् ॥ =अपनी तथा परकी समस्त प्रकारकी स्त्रीयोंकी कथा वार्तालाप स्मरणादि रागादिका अभाव वा निषेध (=त्याग) और ब्रह्म (अपनी आत्मा)में ही रमण करना (सो ब्रह्मचर्य है। अथवा अपनी अपनी इच्छासे स्वछन्द प्रवृत्ति निवारणकरके गुरुके निकट रहना सो ब्रह्मचर्य है अर्थात् ब्रह्म कहिये गुरु तिन विषैं चरण कहिये तिनके अनुसार प्रवर्तना सो ब्रह्मचर्य है ब्रह्मचर्य=अस्वतन्त्रता गुरुकी आधीनता अब्रह्मसे निवृत्ति, मैथुनमें निवृत्ति और व्रतोंकी भावना ॥ (पूर्व स्त्रियोंके भोग किये थे तिनको स्मरण न करने करि, स्त्रियोंकी कथाके श्रवण न करनेसे स्त्रियोंकी संगति जहां न हो तहां शयन आसन करनेसे ब्रह्मचर्य परिपूर्ण ठहरता है।

---

(१) योगनिग्रहः संयमः =योगोंका जो निग्रह है अर्थात् काय वाक् तथा मनोरूप जो तीन प्रकारके योग हैं उनको अपने वशमें रखना (=निग्रहः)सो संयमः है(समाप्य पृष्ठ १९७(२)यह शब्द नपुसकलिंगमें है और इसकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पयस्-मनस् शब्दोंकी भांति तपस् वा तपः है जब पुलिंग होता है तब माघ महीने के अर्थ में आता है। जब पुलिंगनपुंसकलिंग होता है तब शिशिर वा हेमन्त वा ग्रीष्म ऋतुके अर्थमें आता है(३) तत्वार्थराजवार्तिकपृष्ठ ३२५में इसका लक्षण एसा कहा है कि "परिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः=चेतन अचेतनरूप परिग्रहसे हटना सो त्याग है॥(४) नहीं है कुछ जामें (=किंचन+अस्य) सो आकिंचन है तिसका भाव अथवा कर्म सो आकिंचन्य है॥(५) =ब्र(ब)ह्मचर्य्य(न०)=ब्रह्मणे(वेदलाभाय)चर्य्यते चर+यत्(वेद पढ़नेके लिये आचरण करता है)। स्त्री संभोगसे रहित होना।

किमर्थमिदमुच्यते ? आद्यं प्रवृत्तिनिग्रहार्थं, तत्रासमर्थानां प्रवृत्युपायप्रदर्शनार्थं द्वितीयम्। इदं पुनर्दशविधधर्माख्यानं समितिषु प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहारार्थं वेदितव्यम्। शरीरस्थितिहेतुमार्गणार्थं परकुलान्युपगच्छतो भिक्षो दुष्टजनाक्रोशप्रहसनावज्ञाताडनशरीरव्यापादनादीनां सन्निधाने॥ कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा॥ जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवं॥ माननिर्हरणम् योगस्यावक्रता

वृत्त्यनुवादः-किम्[1]''अर्थम्[2]''इदम्[3]''उच्यते ? ?=कौन अर्थ वा किसलिये यह (दश प्रकार धर्म) कहा गया है।

आद्यम्[1]''प्रवृत्ति-निग्रह-अर्थम्[2]''। तत्र* असमर्थानाम्[3] प्रवृत्ति-उपाय-प्रदर्शन-अर्थम्[4]'' द्वितीयम्[1]''।

=(उत्तर) प्रवृत्तिके रोकनेके लिये प्रथम (गुप्ति कही गई है) तहां (गुप्तिविषैं) =असमर्थों की प्रवृत्तिके उपायके प्रगट करनेके लिये =दूसरी (समिति) है अर्थात् पहिले तो गुप्ति कही सो तो सर्व प्रवृत्तिके रोकने को कही पश्चात् तिस गुप्ति विषैं असमर्थ होय तब प्रवृत्ति करी चाहिये तिस से भले प्रकार यत्नसे प्रवर्तनके लिये समिति कही।

इदम्[1]''पुनः* दशविधधर्म-आख्यानं[2]''समितिषु[3]'' प्रवर्तमानस्य[4]'प्रमाद-परिहार-अर्थम्[5]''वेदितव्यम्[1]'';

=बहुरि (=पुनः) यह दश प्रकारके धर्मका कथन समितियोंमें =प्रवर्तनेवाले मुनिके प्रमादके दूर करनेके लिये जानना चाहिये॥

शरीर-स्थिति-हेतु-मार्गणा-अर्थम्[1]''

=शरीरकी विद्यमानताके कारण आहार (=मार्गणा)के लिये

पर-कुलानि[2]''उपगच्छतः[3]' भिक्षोः[4]' दुष्टजन-आक्रोश-प्रहसन-अवज्ञा-ताडन-शरीर-व्यापाद-आदीनाम्[5]' सन्निधाने[6]''

=अन्यके घरोंको जाते हुये मुनिके दुष्ट मनुष्य करि =निंदा वा गाली(=आक्रोश) हास्य (=प्रहसन) अनादर (=अवज्ञा) मारन (=ताडन) =शरीरका घात (=व्यापादन) आदिकोंके निकटहोनेपर

कालुष्य-अनुत्पत्तिः[1]''क्षमा[1]'',जाति-आदि-मद-आवेशात्[2]अभिमान-अभावः[3]' मार्दवम्[1]''; मान-निर्हरणम्[2]''। योगस्य[3]'अवक्रता[4]।।

=मलीनताका [भावों में]अभाव होना (=अनुत्पत्ति)सो(उत्तम) क्षमा है, जाति आदि =(आठ)मदकी लीनतासे वा प्रवर्तनेसे अभिमानका अभाव (सो उत्तम मार्दव है। =अहंकारका जड़से उखाड़ना(मन-वचन-कायके) योगकी कुटिलता का अभाव, अथवा उपर्युक्त योगोंकी सरलता, सिधाई, अर्थात् मायाचार कपटसे रहितपना

आर्जवम् ॥ प्रकर्षप्राप्तलोभान्निवृत्तिः शौचम्॥ सत्सुप्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं सत्यमित्युच्यते॥ ननु चैतद्भाषासमितावन्तर्भवति ? नैष दोषः--समितौ प्रवर्तमानो मुनिः साधुष्वसाधुषु च भाषाव्यवहारं कुर्वन् हितं मितञ्च ब्रूयात् अन्यथा रागादनर्थदण्डदोषः स्यादितिवाक्समितिरित्यर्थः ॥इह पुनः सन्तः प्रव्रजितास्तद्भक्ता वा एतेषु साधु सत्यं ज्ञानचारित्रलक्षणादिषु बहुपि कर्तव्यमित्यनुज्ञायते, धर्मोपबृंहणार्थं ॥ समितिषु वर्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारःसंयमः ॥

आर्जवम्[१/१], प्रकर्षप्राप्त–लोभात्–निवृत्तिः[१/५]॥ =सो उत्तम आर्जव है उत्कृष्टपने लोभसे उपराम वा छुटकारा,हटना वा निवृत्ति
शौचम्[१/१]। सत्सु[७/३] प्रशंस्तेषु[७/३] जनेषु[७/३] साधु– =सो सौच अथवा पवित्रताहै। अच्छे प्रशंसनीय जनोंमें यथार्थ ठीकठीक(=साधु)
वचनम्[१/१]॥ सत्यम्[१/१]॥ इति* उच्यते। ननु *च* =वाक्य कहना सत्य (=उत्तम सत्य धर्म) ऐसा कहागया है। बहुरि तर्क
एतद्[१/१]॥ भाषासमितौ[७/१]॥ अन्तर्भवति। =यह (=एतद्[१/१]॥) (उत्तम सत्य धर्म) भाषा समितिमें गर्भित होता है
न*एषः[१/१] दोषः[१/१] समितौ[७/१]॥ प्रवर्तमानः[१/१] =(उत्तर) यह दूषण नहीं है समितिमें प्रवर्तने वाला
मुनिः[१/१] साधुषु[७/३] असाधुषु[७/३] च*भाषा-व्यवहार[२/१] =मुनि साधुपुरुषों में और (=च) असाधुपुरुषोंमें वचनका उच्चारण
कुर्वन हितम्[२/१]॥ मितम्[२/१]॥ च*ब्रूयात्[१] अन्यथा* =करते हुये हित और परिमित वा मर्यादा लिये हुये वचन बोले यदि ऐसा न करेतो
रागात्[५]॥ अनर्थ-दण्ड-दोषः[१/१] स्यात् इति वाक्समितिः[१/१]॥ इतिअर्थः[१/१]=रागसे अनर्थ दण्डका दूषण आवै ऐसा वचन समिति हैऐसा अभिप्राय हुआ
इह* पुनः* सन्तः[१/३] प्रव्रजिताः[१/३] =बहुरि यहां (=इह) अर्थात् सत्यधर्मविषैं मुनि शिष्यों वा शिष्यों(=प्रव्रजिताः[१/३])
तद्-भक्ताः[१/३] वा एतेषु[७/३] साधु[१/१]॥ सत्यं[१/१]॥ ज्ञान-चारित्र– =अथवा उनके भक्त अर्थात् श्रावक इनमें उत्तम (=साधु) सत्य ज्ञान-चारित्र
लक्षणादिषु[७/३] बहु–अपि*कर्तव्य[१/१]॥ =लक्षणादिक(कैसीखनेवा सिखाने)में बहुतभी (भाषा व्यवहार) किया जाना योग्यहोताहै
इति*अनुज्ञायते। धर्म-उपबृंहण–अर्थम्[१/१]॥, =इस प्रकार धर्मकी वृद्धिके लिये आज्ञा वा अनुमति दीगई हैअर्थात्भाषासमिति
का धारक मुनि सर्व प्रकारके मनुष्योंसे उनके हितरूप और सीमाको लिये हुये वचन बोलेगा परन्तु सत्य धर्ममें शास्त्र ज्ञान सीखने तथा निर्णयके लिये मुनि श्रावकों में बहुत भी वर्तालाप होता है॥

समितिषु[७/३] वर्तमानस्य[६/१] =(ईर्या-भाषा-एषणा-आदान-निक्षेप) समितियोंमें प्रवर्तक मुनिके
प्राण–इन्द्रिय–परिहारः[१/१] संयमः[१/१], =(एकेन्द्रियादिक) प्राणियोंकी पीड़ा करनेका त्याग वा परिहार है सो संयम है। ८

कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः॥ तदुत्तरत्र वक्ष्यमाणद्वादशविकल्पमवसेयम्॥ संयतस्ययोग्यं ज्ञानादिदानंत्यागः ॥ उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसन्धिनिवृत्तिराकिञ्चन्यम्॥ नास्ति किंचनास्याकिंचनः तस्य भावःकर्म वा आकिंचन्यम्॥ अनुभूताङ्गनास्मरणकथाश्रवणस्त्रीसंसक्तशयनासनादिवर्जनाद्ब्रह्मचर्यं परिपूर्णमवतिष्ठते॥स्वतन्त्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थो वा

कर्म–क्षय–अर्थः[1]''(१)तप्यते I इति(२)तपः[1]''तद्-उत्तर*अत्र*=कर्मके नाशके लिये तपाजाय ऐसा तप है, यहांसे(अत्र)आगे(उत्तर)उस(तप)के
वक्ष्यमाण–द्वादशविकल्पम्[1]''अवसेयम्[1]''; =बारह भेद कहे जावेंगे अथवा निश्चय किये जावेंगे ।
संयतस्य[1]योग्यम्[1]''ज्ञानादिदानम्[1]''त्यागः[1] ॥ =संयमीको योग्य ज्ञानादिकका देना सो त्याग है ।
उपात्तेषु[1]''अपि*शरीरादिषु[1]''संस्कार–अपोहाय[1] =विद्यमान (=उपात्तेषु)शरीरादिकमें भी(=अपि)संस्कारके त्यागके लिये
मम[1]इदम्[1]''इति*अभिसंधि–निवृत्तिः[1]॥आकिंचन्यम्[1]''; =मेरा(=मम)यह है(=इदं)ऐसे अनुरागकी(=अभिसंधि)निवृत्ति(सो)आकिंचन्यहै
न*अस्ति I किंचन*अस्य[1]आकिंचनः[1] तस्य[1]भावः[1] =नहीं कुछ जाके (अर्थात् कुछ जामें) सो आकिंचन है तिसका भाव
कर्म[1]''वा* आकिंचन्यम्[1]''; =अथवा कर्म सो आकिंचन्य है अर्थात् आत्म स्वरूपसे भिन्न शरीरादिकमें
ममत्वरूप परिणामोंका अभाव सो उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

अनुभूत–अंगना–स्मरण– =भोगी हुई(=अनुभूत) स्त्रियोंके(=अंगना)(भोगोंकीकलाकी गुणोंको)सुधि वर्जनेसे
(३) कथाश्रवण–स्त्रीसंसक्तशयन– =(उनकी) कथाके सुननेके त्यागसे (वर्जनात्) स्त्रियोंके पास सोना
आसनादि–वर्जनात्[1]''(४)ब्रह्मचर्यम्[1]''परिपूर्णम्[1]''अवतिष्ठते I =बैठने आदिकके निषे (=वासेवर्जनात्) ब्रह्मचर्य परिपूर्ण ठहरताहै
स्वतन्त्र– वृत्ति-निवृत्ति–अर्थः[1]''वा* = अथवा (=वा) स्वाधीन(=स्वतन्त्र) स्वछन्द(=स्वतन्त्र)प्रवर्तनके रोकनेके लिये

---

(१) तप् = दाह = जलाना, भ्वादि प्रथमगणका, उभय (आत्मने तथा परस्मैपद) सकर्मक, सेट् धातु है (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १८७) इसमें य (=यक्) और ते लगानेसे कर्मणि प्रयोग "तप्यते" बनता है ॥(२)तपः = प्रथमा विभक्ति, एक वचन, नपुंसकलिंग, तपस् शब्दका(पयस् शब्दके सदृश) है ॥ (३) तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३२५में "तत्कथा श्रवण" कथाश्रवणके स्थानमें है इसलिये उनकी कथाके सुननेके ऐसा अनुवाद किया गया है ॥ (४) ब्रह्मचर्य अथवा ब्रह्मचर्य दोनों प्रकारसे लिखा जाता है (देखो पद्मचन्द्रकोश, पृष्ठ २६७)

गुरुकुलावासो ब्रह्मचर्यम् ॥ दृष्टप्रयोजनपरिवर्जनार्थमुत्तमविशेषणम् ॥ तान्येवभाव्यमानानि धर्मव्यपदेशभाञ्जि स्वगुणप्रतिपक्षदोषसद्भावभावनाप्रणिहितानि संवर कारणानि भवन्ति ॥ आह क्रोधाद्यनुत्पत्तिः क्षमादिविशेषप्रत्यनीकालम्बनादित्युक्तं तत्रकस्मात्क्षमादीनयमवलम्बते नान्यथा प्रवर्तत इत्युच्यते । यस्मात्तप्तायःपिण्डवत्क्षमादि परिणतेनात्महितैषिणा कर्तव्याः—

गुरुकुल-आवासः[1]ब्रह्मचर्यम्[1]'' (१)दृष्ट-प्रयोजन-परिवर्जन-अर्थम्[1]'' उत्तम-विशेषणम्[1]''; तानि[1]''एव* (२)भाव्यमानानि[1]'' धर्म-व्यपदेशभांजि[1]'' स्वगुण-प्रतिपक्ष-दोष-सद्भाव-भावना-प्रणिहितानि[1]'' संवर-कारणानि[1]'' भवन्ति T ॥

=गुरुकुलमें रहना (सो) ब्रह्मचर्य है । लौकिक (=दृष्ट) मनोरथ (जैसे ख्याति लाभादिके) =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) उत्तम शब्द (क्षमा-मार्दव, आर्जव-शौच इत्यादिके साथ) =गुणवाचक (शब्द) है । ते (उत्तम क्षमादि) ही =विचारणीय वा भावनाके योग्य धर्म संज्ञक भेद (अर्थात् धर्मके भेद) =अपने (धर्मोंके) गुणकी और इनके प्रतिपक्षी (जे क्रोधादिक) निके दोषोंकी =विद्यमानता (=सद्भाव)की भावनामें प्राप्त वा स्थापित (=प्रणिहितानि) =संवरके कारण होते हैं अर्थात् उत्तम क्षमादिके गुण और उन उत्तम क्षमादि दश धर्मोंके विरुद्ध क्रोधादिक दोषोंका चिन्तवन किये क्रोधादिक दूषणोंका अभाव होते सन्ते तिनके-निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता था, तिस (आस्रव)की निवृत्ति होते संवर होता है।

आहT—क्रोध-आदि-अनुपपत्तिः[1]''क्षमादि-विशेष-प्रत्यनीक-आलम्बनात्[1]' इति* उक्तम्[1]'तत्र*कस्मात्*क्षमादीन्[1]'अयम्[1]'अवलम्बते न*अन्यथा* प्रवर्तते Tइति* उच्यते T । यस्मात्[1]'तप्त-अयस्-पिण्ड-वत्*क्षमादि-परिणतेन[1]'आत्महितैषिणा[1]' कर्तव्याः[1]॥

=प्रश्न करता है कि क्रोधादिकका न उपजना क्षमादिकके विशेषरूपकरि =जो क्रोधादिकोंके विरुद्ध हैं वा जो क्रोधादिकोंके शत्रु हैं (=प्रत्यनीक) आलम्बनसे होता है ऐसा वर्णित है तहां किस प्रकारसे (=कस्मात् क्षमादिकको यह (आत्मा) ग्रहण करता है कि =(यह आत्मा) अन्यथा वा उलटे प्रकारसे (अर्थात् क्रोधादिकरूप) न प्रवर्ते ऐसे (प्रश्न पर) =कहा जाता है कि जैसे (अग्निमें) तपाया हुआ (=तप्त) लोहेका (=अयस्) पिंड होता है उसके =सदृश (=वत्) क्षमादिकोंमें परिपक्व (=परिणतेन) आत्महितकी इच्छा करने वालेसे =(निम्न द्वादश अनुप्रेक्षा) किया जाना चाहिये अर्थात् लोहेका पिंड तपाये हुये अग्निसे

(१) दृष्ट = लौकिक (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६२ देखो) (२) भाव्यमान = विचारणीय, भावना किये जाने योग्य, बार बार चिन्तवन किये जाने योग्य।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधि-दुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

तन्मय होजाता है तैसे आत्मा क्षमादिकमें तन्मय होजाता है तब क्रोधादिक नहीं उत्पन्न होते हैं, वह आत्मा अनित्यादिक निम्नलिखित बारह अनुप्रेक्षाओंको चिंतवन करता रहताहै । वे बारह भावना निम्न लिखित सातवां सूत्रमें आचार्य वर्णन करते हैं॥

(१)सूत्रम्–अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यात-त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षा ॥ ७ ॥

पदच्छेदः–अनित्या-अशरण-संसार-एकत्व-अन्यत्व(२)अशुचि-आस्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वाख्यातत्व-अनुचिन्तनम्[१]॥ अनुप्रेक्षाः[१]॥ ॥ ७ ॥

(क) अनित्य–अनुचिंतनम्[१]॥ (ख)अशरण–अनुचिंतनम्[१]॥ =(क) अनित्य-अनुप्रेक्षा[१]॥ (ख) अशरण-अनुप्रेक्षा[१]॥
(ग) संसार-अनुचिंतनम्[१]॥ (घ) एकत्व-अनुचिंतनम्[१]॥ =(ग) संसार-अनुप्रेक्षा[१]॥ (घ) एकत्व-अनुप्रेक्षा[१]॥
(ङ) अन्यत्व-अनुचिंतनम्[१]॥ (च) अशुचि-अनुचिंतनम्[१]॥ =(ङ) अन्यत्व-अनुप्रेक्षा[१]॥ (च) अशुचि-अनुप्रेक्षा[१]॥
(छ) आस्रव-अनुचिंतनम्[१]॥ (ज)संवर-अनुचिंतनम्[१]॥ =(छ) आस्रव-अनुप्रेक्षा[१]॥ (ज) संवर-अनुप्रेक्षा[१]॥
(झ) निर्जरा-अनुचिंतनम्[१]॥ (ञ) लोक-अनुचिंतनम्[१]॥ =(झ)निर्जरा अनुप्रेक्षा[१]॥ (ञ) लोक-अनुप्रेक्षा[१]॥
(ट) बोधिदुर्लभ–अनुचिंतनम्[१]॥ (ठ)धर्मस्वाख्यातत्त्व-अनुचिंतनम्[१]॥=(ट)बोधिदुर्लभ-अनुप्रेक्षा[१]॥ (ठ) धर्मस्वाख्यातत्त्व-अनुप्रेक्षा[१]॥

(१) इस सूत्रका हमारे यहां एकसा पाठ है, कहीं कहीं पर निर्जरा-दुर्लभ पाठ है कहीं २ पर 'निर्ज्जरा-दुर्ल्लभ' पाठ है 'अवोरहाभ्यांह्रेवा' सूत्रसे दोनों पाठ ठीक हैं, कहीं पर 'तत्त्व' पाठ है कहीं पर 'तत्व' पाठ है दोनों ठीक है (देखो अध्याय १ पृष्ठ १२) (२) सभाष्यमें 'अशुचि'के स्थानमें 'अशुचित्व' पाठ है और 'धर्मस्वाख्यातत्त्व' के स्थानमें 'धर्मस्वाख्याततत्व' पाठ है हमारे यहां अर्थप्रकाशिकामें भी 'धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा' वाक्य है । अर्थ' ऐसे है कि "धर्मकू अरहंतदेव स्वाख्यात कहिये भले प्रकार बहुत सुंदर कह्या है अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ६४६ "अन्तरके लिये देखो पृष्ठ २६ 'अशुचि' शब्दमें प्रत्यय लगानेसे अशुचित्व बन जाता है । अशुचि = अपवित्र, अशुचित्व = अपवित्रता' अपवित्रपन, अपवित्र होना ॥

सूत्रार्थः-अनित्याद्यनुचिन्तनमनुप्रेक्षाः॥ =इस प्रकार बार बार चिन्तवन करना कि इन्द्रिय विषय, धन, यौवन, जीवितव्य जलके बुंद बुंदोंके समान अथिर हैं अनित्य हैं (सो अनित्यानुप्रेक्षा है)

अशरण-अनुचिन्तनमशरणानुप्रेक्षा॥, =ऐसे बार बार चिन्तवन करना कि जैसे बनके एकान्त स्थानमें सिंहकरि पकड़ेहुये मृगको कोई भी शरण नहीं है तैसे इस संसारमें इस जीवको संसार संबन्धी दुःखोंसे दूर करने वा कालके गालमें पड़ते हुयेको कोई भी रक्षा करनेवाला वा शरण नहीं है(सो अशरणानुप्रेक्षा है)

संसार-अनुचिंतनमसंसारानुप्रेक्षा॥, =संसार नाम नाना प्रकारके जन्म मरण करते हुये परिभ्रमणका है सो यह जीव कर्मके वशसे निरन्तर एक देहसे दूसरी देहमें जन्म लेते लेते चतुर्गतिमें परिभ्रमण करता रहता है। संसार दुःखमय है (इत्यादि संसारके स्वरूपका बारबार चिन्तवन करना सो संसारानुप्रेक्षा है)

एकत्व-अनुचिंतनमेकत्वानुप्रेक्षा॥, =इस प्रकार बारबार चिंतवन करना कि जन्म जरा मरण रोग वियोगादिक महा-दुःखोंमें मेरा कोई सहायक नहीं है, सुख दुःखको भोगनेवाला मैं ही हूं (सो एकत्वानुप्रेक्षा है)

अन्यत्व-अनुचिंतनमन्यत्वानुप्रेक्षा॥, =इस बातका बारबार चिंतवन करना कि संसारके जितने पदार्थ हैं और जितने जीव हैं वे सब मेरी आत्मासे भिन्न हैं न्यारे हैं पृथक् हैंयहां तकाकि शरीर जिसको प्रत्येक प्रकारसे पालन पोषण करते हैं वह भी साथ नहीं देता है तो अन्य पदार्थोंकातोकहना ही क्याहै(सोअन्यत्वअनुप्रेक्षा है)

अशुचि-अनुचिंतनमशुचित्वानुप्रेक्षा॥, =इस प्रकार बारबार चिंतवन करना कि यह शरीर अत्यन्त अशुचि है, अतिदुर्गंध रुधिर वीर्य से उत्पन्न हुआ है अशुचि आहारकरि वंध्या है, मलवत् अशुचिका भाजन है चामकरि ढका हुआ है अतिदुर्गंधरसको नवद्वारकरि निकालता है। आश्रित वस्तुओंकोभी अंगारेके समान आप सदृश अशुचि करता है स्नान अनुलेपन धूप पुष्प मालादिक इस शरीरका अशुचिपना दूर करने को समर्थ नहीं होते हैं॥

आस्रव-अनुचिंतनमास्रवानुप्रेक्षा॥, =मिथ्यात्व,अविरत, योग कषायादिकोंसे कर्मोंका आगमन सो आस्रव है,ऐसे बार२ चिंतवन कि आस्रव ही संसारमें परिभ्रमणका कारण है। आत्माके गुणका घातक है सो आस्रव भावना है

संवर-अनुचिंतनमसंवरानुप्रेक्षा॥ =आस्रवका निरोध अथवा रोकना संवर है जैसे महान् समुद्रमें प्रवेश करती हुई नावके छिद्रोंका बंद करनेसे जल उस नावके भीतर नहीं आता है,और नावमें तिष्ठे हुये स्त्रीपुरुषों का

नाश नहीं होता है और वे वांछित देशको प्राप्त होते हैं तैसे कर्मके आवनेके द्वार जो आस्रव तिनके रोकनेसे महत् संवर होता है ऐसे बारबार चिन्तवन करना सो संवर भावना है ।

निर्जरा–अनुचिंतनम्[१]॥ अनुप्रेक्षादि[२]

=कर्मका उदयमें आकर अपना तीव्र वा मन्दरस देकर आत्मासे पृथक् होजानेको निर्जरा कहते हैं । निर्जरा दो प्रकारकी है एक भाव निर्जरा दूसरी द्रव्य निर्जरा । भाव निर्जरा भी दो प्रकार की है एक सविपाक और दूसरी अविपाक । नियत स्थितिको पूरा करके कर्मोंका झड़ना होता है (कर्मत्व शक्ति रहित होकर वे कर्म उसी क्षेत्रमें रहें अथवा अन्यत्र चले जावें) वह सविपाक (फल देकर झड़ने वाली) निर्जरा है । यह समस्त संसारी जीवोंके होती है । और जो तपश्चरण द्वारा उन कर्मोंको उदय प्रणालीमें लाकर कर्मत्व शक्ति रहित कर देना है सो अविपाक निर्जरा है । कर्मोंकी निर्जरा किस प्रकार होती है इत्यादि निर्जराके स्वरूपको बारबार चिन्तवन करते रहना (सो निर्जरा भावना है) ॥

लोक–अनुचिंतनम्[१]॥ अनुप्रेक्षा[२]॥

=सर्व और अनंत अलोकाकाशके बीचाबीचमें विद्यमानलोकके संस्थानादि (=आकारादि) को कि यह (लोक) कितना बड़ा है इसकी क्या क्या अनादि रचना है इसमें कौन कौनजातिके जीवोंका कहां२ निवास है इत्यादि लोकके स्वरुपको चिंतवनकरना (सो लोकानुप्रेक्षा है)

बोधिदुर्लभ–अनुचिन्तनम्[१]॥अनुप्रेक्षा[२]॥

=सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रयको बोधि कहते हैं, इस बोधिकी प्राप्ति होना अतिशय दुर्लभ है क्योंकि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय,पंचेन्द्रिय,संज्ञी, पर्याप्त,मनुष्य, देश, कुल, रूप, इन्द्रियोंमें पटुता (=चतुरता वा निपुणता) निरोग आयु, उत्तमबुद्धि, उत्तम धर्मका सुनना, ग्रहण करना, धारणकरना, श्रद्धानकरना, संयम सहित होना, विषय सुखोंसे रहित होना, क्रोध आदि कषायोंका दूर होना, ये जो पूर्वोक्त सब हैं, इनमें पूर्व पूर्वकी अपेक्षा पर पर अर्थात् एकेन्द्रियताकी अपेक्षा विकलेन्द्रियता आदि दुर्लभ हैं । यदि कथंचित् काकतालीय न्यायसे(अर्थात् अकस्मात् वा दैवात्)इन सबकी प्राप्ति भी होजाय तो भीइनकी प्राप्तिरूप जो ज्ञानहै उसमें फलभूत जो निजशुद्धआत्माके ज्ञानस्वरूप निर्मलधर्मध्यानशुक्लध्यान रूप परमसमाधिहै वह दुर्लभहै। इसकी दुर्लभताका बारबार चिन्तवनकरना सो(२)बोधिदुर्लभ भावनाहै

काकतालीयन्याय = किसी समय तालका(= ताड़का)फल पककर गिरे और उसही समय काकका आगमन हो एवम् वह उस फलको आकाशमें में ही पाकर खाने लगे ॥(२) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामप्राप्तिप्रापणंबोधिः, निर्विघ्नेनभावान्तरप्रापणं समाधिरिति वृहद्द्रव्यसंग्रहगाथा३५से ॥

(क) धर्म–सु–आख्या–तत्व= =सम्यग् वा अच्छे (=सु) धर्मके (=धर्म) यथार्थ (=तत्व) ज्योंकात्यों(=तत्व) वास्तविक (=तत्व)
अनुचिन्तनम्[१]''अनुप्रेक्षा[१]''=बारबारचिंतवन करते रहना,बारबारमनन करते रहना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनभावना वाअनुप्रेक्षाहै
(ख)धर्म–सु–आख्यात–तत्व– =भले प्रकार (=सु) भाषित वा कहेहुये (=आख्यात)धर्मका यथार्थ (तत्व)ज्योंका त्यों(=तत्व)वा सार(=तत्व)
अनु–चिन्तनम्[१]''अनुप्रेक्षा[१]''=बारबार चिन्तवन करते रहना (=अनुचिन्तनम्) सो धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तन भावना है अर्थात् परमो-
पकारक धर्मके स्वरूपको जिसका भगवान् अरहंतदेवने अच्छे प्रकारसे और पूर्णरूपसे कथन किया है यथार्थ
बारबार विचार करते रहना अथवा मनन करते रहनासो धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनअनुप्रेक्षा है)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणाम् आप्राप्त – =पहिले नहीं मिले हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,सम्यक् चारित्रका
प्रापणम् बोधिः तेषाम् एव =मिलना (=प्रापण) सो बोधि है । तिन (सम्यग्दर्शनादिक) का ही
निर्विघ्नेन भावान्तर प्रापणम् समाधिःइति ॥ =निर्विघ्नतासे अन्यभवमें साथ लेजाना सो समाधि है, द्रव्य संग्रह३५वींगाथाकीसंस्कृतटीकासे

(१) धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनम्–अनुप्रेक्षा–इसभावनाके कई पाठ हैं,कई प्रकारसे पदच्छेद करके कई अर्थ किये गये हैं भावार्थ सबका एकसाहै सु आख्या.आख्यात,तत्व शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ लेकर अनुवाद किया गया है-अर्थ अनुवाद भावार्थ सब मनोरंजकहैं।पाठकध्यानसे कृपयापढ़ें
(क) 'धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनम्' =धर्म-सु-आख्या तत्व-अनुचिन्तनम् अथवा धर्म-सु-आख्यातत्व-अनुचिन्तनम्,हमारे यहां बहुधा यह पाठहै
(ख) 'धर्म-स्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा' =धर्म-सु-आख्यात-तत्व-अनुप्रेक्षा (अर्थ प्रकाशिकामें इस सूत्रके अर्थ केअंतमेंहैसूत्रपाठदोनोंटीकाओंमेंउपयुक्तहै
(ग) 'धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनम्' =धर्म-सु-आख्यात-तत्व'अनुचिन्तनम् यह पाठ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमेंपृष्ठ१६८परहै
परन्तु उनकी भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका(जिसमें बाईस सहस्र श्लोकसे अधिक हैं उस)के पत्र ६८४,६६५में पाठ हैकि
(घ) धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनम् =धर्म-सु-आख्या-तत्त्व-अनुचिंतनम्, हमारे यहां यह भी पाठ है क्योंकि तत्व और तत्त्वमें भेद नहीं है परन्तु
इस पाठके लेनेमें धर्म-सु-आख्यात-तत्व अनुचिन्तनम् पदच्छेद नहीं बन सका है क्योंकि 'आख्यात'में भाव
में प्रत्यय पन, ता,त्व हो सके है न कि'त्व' प्रथम इसके कि इस भावनाके भिन्न भिन्न अर्थ लिये जावें सु-

आख्या-आख्यात और तत्वके भिन्न २ अर्थ ये हैं कि सु–(अव्यय) (अ) अच्छा (आ) भले प्रकार (इ) सुंदर (ई) बहुत, अतिशय, (उ) सुखसे, सुगमतासे ऊ) सर्वशः, पूर्णरूपसे, पूर्णतया(वैद्यसंस्कृतअंगलकोश पृष्ठ ७८२)॥ आख्या-(स्त्री०) अ) आख्यायतेऽनया आ(+ख्या+अङ्) जिससे प्रसिद्ध हो। संज्ञा। नाम। (आ) "भावे अङ्" कहना (इ) किताबका नाम ॥धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तन = धर्म–सु–आख्या–तत्व–अनुचिंतन। आख्यात = (त्रिलिंगी) गणना किया गया,संख्या कियागया (आ) जतलाया गया, प्रगट किया गया (इ)कथित,कहा गया,वर्णन कियागया,अमर०में निम्नआर्याछंद है-उक्तंभाषितमुदितं जल्पितमाख्यातमभिहितंलपितम्=उक्त,भाषित,उदित, जल्पित,आख्यात,अभिहित,लपित ये सातनाम कहे हुये (कथित)कहैं॥(ई)व्याकरणमें प्रसिद्धतिङन्तपद। व्याकरणमें धातुओंके आगे तिङ् प्रत्यय लगानेसे जो पद प्रकाशित होते हैं । आख्यात शब्दको भाव अर्थमें त्व प्रत्यय लगानेसे आख्यातत्व बनता है॥ आख्यातत्व = "आख्यातपना(णा)"जयचन्द्रजी वचनिका पृष्ठ६८१ "ऐसे धर्मका स्वाख्यातत्व कहिये भले प्रकार प्रगटपना" पं० पन्नालाल न्यायदिवाकरकी राजवार्तिकसे उद्धृत॥ अतः आख्यातत्व = प्रगटपना ॥ तत्व =(न०)सद्भाव, स्वरूप, परमात्मा, ब्रह्मपन, नाचना, बजाना, गाना, चित्त, वस्तु, सांख्यके २५ पदार्थ।यथार्थ अवस्था।जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष ये सात तत्व(तत्त्व)हैं संज्ञाके पहिले आनेपर तत्त्व शब्द विशेषण होजाता है,यथार्थ,ज्योंकात्यों,सार अर्थोंका द्योतकहोता है।

इमानिशरीरेन्द्रियविषयोपभोगपरिभोगद्रव्याणिसमुदायरूपाणिजलबुद्बुदवदनवस्थितस्वभावानि

(ग)धर्म–स्व–आख्या–तत्व–अनुचिंतनम्$_{१}^{१११}$ अनुप्रेक्षा$_{१}^{११}$, =अपने (=स्व) नामकरिप्रसिद्ध (=आख्या) धर्मके तत्व अर्थात् धर्मोक्त तत्व जे हैं तिनका =बारबार चिंतवन करना, विचारते रहना, मनन करते रहना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतनभावना है

(घ)धर्म–सु–आख्यात–त्व–अनुचिंतनम्$_{१}^{१११}$ अनुप्रेक्षा$_{१}^{११}$, =धर्मका (=धर्म) भले प्रकार (=सु) आख्यात (=आख्यात) पणा (=त्व) है =तिनका चिंतवनकरै सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतन अनुप्रेक्षा है (पं०जयचन्दजीकृता वचनिका)अर्थात् धर्मका भले प्रकार प्रसिद्धत्व अथवा प्रगटपनो तिसे वीतरागने करदिया है)तिस धर्म) के स्वरूपको बारबार विचार करते रहना, मनन करते रहना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतन अनुप्रेक्षा है

(ङ)धर्म–सु–आख्यात–त्व–अनुचिंतनम्$_{१}^{१११}$ अनुप्रेक्षा$_{१}^{११}$, ="ऐसे"(अर्थात् भले–सम्यक्)"धर्मका स्वाख्यातत्व कहिते भलेप्रकार प्रगटपना जाकरि जानिये तिनका =चिंतवन करै सो स्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है"पं०पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक पत्र१४१६

(च)धर्म–सु–आख्यात–तत्व–अनुचिंतनम्$_{१}^{१११}$ अनुप्रेक्षा$_{१}^{११}$, =धर्मसे (=धर्म)भले प्रकार (=सु) कथित (=आख्यात) तत्त्वको (=तत्त्व) =बारबार चिंतवन करना सो धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तन अनुप्रेक्षा है(देखो समाध्य०पृष्ठ१९८,२०७)

(छ)स्व–आख्या–तत्व–अनुचिंतनम्$_{१}^{१११}$ अनुप्रेक्षा$_{१}^{११}$, ="अपने (=स्व) नामकरिप्रसिद्ध [=आख्या] तत्व जे हैं तिनका =अनुचिंतन जो है सो अनुप्रेक्षा है दूनीजी०अनुवादित राजवार्तिकसे,इसमें कोष्ठक मैंने लगा दिये हैं ॥

भावार्थ धर्म है सो वस्तुका स्वभाव है,आत्माका शुद्ध निर्मलस्वभाव ही अपना धर्म है तथा आत्माका दर्शनज्ञानचारित्र वा दश लक्षणरूप धर्म है अहिंसारूप धर्म है वा आत्माको इष्ट स्थानमें पहुंचावे वो धर्म है (=इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः) ॥ इस कारण धर्म ही परमरसका रसायन है। धर्म ही निधियोंका निधान(=भण्डार) है। धर्मही कल्पवृक्ष है,धर्म ही कामधेनु गाय है और धर्मही चिंतामणि रत्न है। धर्मही गुरु है। धर्मही मित्र और स्वामी है। धर्म हो बांधव हितू परलोकमें रक्षक है और साथ जानेवाला है ऐसे धर्मके स्वरूपका बारबार चिंतवन करना सो धर्मस्वाख्यातत्वानु०है।

इमानि$_{३}^{१११}$शरीर-इन्द्रिय-विषय-उपभोग- =ये शरीर इन्द्रियोंके विषयरूप उपभोग (=वस्तु जो एकबार भोगनेमें आवै)

परिभोग–द्रव्याणि$_{३}^{१११}$समुदाय-रूपाणि$_{३}^{१११}$=परिभोग (वह वस्तु जो बारबार भोगनेमें आवे) द्रव्य हैं ते संग्रह रूप हैं

जलबुद्बुदवत्*अनवस्थित-स्वभावानि$_{३}^{१११}$=पानीके बुलबुलेके सदृश चंचल स्वभाव वाले हैं अथवा प्रकृति वाले हैं।

गर्भादिष्ववस्थाविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि ॥ मोहादत्राज्ञो नित्यतां मन्यते ॥ न किञ्चित्संसारे समुदितं ध्रुवमस्ति आत्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तनमनित्यत्वानुप्रेक्षा । एवं ह्यस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वङ्गाभावाद्भुक्तोज्झितगन्धमाल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते ॥१॥ यथा—मृगशावस्यैकान्ते बलवता क्षुदितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिभूतस्य न किञ्चिच्छरणमस्ति—तथा जन्मजरामृत्युव्याधि-

गर्भादिषु[3]अवस्था—विशेषेषु[3]सदा* =गर्भादिक अवस्थाके विशेषोंमें नित्य(शरीरोंमें जो इन्द्रियोंके विषयरूप उपभोग परिभोग भोग हैं।
उपलभ्यमान—संयोग—विपर्ययाणि[3]''' । =(उनका) संयोग वियोग प्राप्यमान (=उपलभ्यमान) है अर्थात् पाया जाता है ।
मोहात्[5]अत्र*अज्ञः[1]नित्यताम्[2]''(१)मन्यते ।=मोह (के उदयके वश) से इनमें अज्ञानी (=अत्र) नित्यताको मानता है
आत्मनः[6]ज्ञान—दर्शन-उपयोग-स्वभावात्[5] =आत्माके ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग स्वभावसे
अन्यत्*न*किंचित्*संसारे[7]समुदितम्[4]''' =अतिरिक्त (=अन्यत्) संसारमें एकत्रित (=विद्यमान इकट्ठे हुये पदार्थों)में कुछ (=किंचित्)
ध्रुवम्[4]।।अस्ति T इति*चिन्तनम्[1]''' =थिर अथवा नित्य नहीं है ऐसा चिन्तवन वा विचार सो
अनित्यत्व—अनुप्रेक्षा[1]''। एवं*हि*अस्य[6]''' =अनित्यताअनुप्रेक्षा है । इस प्रकार ही (=हि। इस (अनुचिन्तन)के
चिन्तयतः[6]तेषु[3]अभिष्वंग—अभावात्[5]''' =विचार करनेवाले (जीव) के तिन (शरीरादिक)में प्रीतिके अभावसे
भुक्तोज्झित-गंधमाल्यादिषु[3]इव*वियोग-काले[7] =भोगकर छोड़े हुये गंधमालादिकके समान वियोग समयमें
अपि*विनिपातः[1]न*उत्पद्यते।।१।।यथा*मृग-=भी शोक उत्पन्न नहीं होता है ।।१।। जैसे हरिणके
शावस्य[6]एकान्ते[7]क्षुदितेन[3]आमिष(आमिष)=बच्चे (=शाव) को अकेले (उद्यान)में भूखे मांसके (=अमिष वा आमिष)
एषिणा[3]बलवता[3]व्याघ्रेण[3] =अभिलाषी (=एषिणा) बलवान (=बलवता) बाघद्वारा
अभिभूतस्य[6] न* किंचित् * =पकड़े हुये अथवा दबाये हुये का (=अभिभूतस्य) कुछ भी नहीं
शरणम्[1]'''अस्तितथा*जन्म-जरा-मृत्यु-व्याधि-=शरण है तैसे उत्पत्ति बुढ़ापा मरण, पीड़ा वा दुःख (=व्याधि)

मन्-यहांपर दिवादि चतुर्थगणका आत्मनेपदी सकर्मक अनिट्(रूपबनानेमें जिसके साथ इ न जोड़ा जावे)जानने अर्थमें धातु है।चतुर्थगणकेधातुओं का विकरण य है, मन्+य = मन्य,ते अन्यपुरुष(=प्रथम पुरुष)एक वचन आत्मनेपदी वर्तमानकालकी द्योतक क्रियाका चिन्ह लगानेसे मन्यते बना ।

प्रभृतिव्यसनमध्ये परिभ्रमतो जन्तोः शरणं न विद्यते ॥ परिपुष्टमपि शरीरं भोजनं प्रति सहायी भवति न व्यसनोपनिपाते ॥ यत्नेन संचितोऽर्थोऽपि न भवान्तरमनुगच्छति ॥ संविभक्तसुखदुःखाः सुहृदोऽपि न मरणकाले परित्रायन्ते ॥ बान्धवाः समुदिताश्चरुजा परीतं न परिपालयन्ति ॥ अस्ति चेत्सुचरितो धर्मो व्यसनमहार्णवे तरणोपायो भवति ॥ मृत्युना नीयमानस्य सहस्रनयनादयोऽपि न शरणम् ॥ तस्माद्भवव्यसनसङ्कटे धर्म एव शरणं सुहृदर्थोऽप्यनपायी, नान्यत्किंचिच्छरणमिति भावना अशरणानुप्रेक्षा ॥

प्रभृति–व्यसन–मध्ये$^{2}_{6}$'परिभ्रमतः$^{6}_{6}$'जन्तः$^{6}_{6}$' =इत्यादिक विपत्तिके बीचमें भ्रमते हुये जीवका
शरणम्$^{1}_{6}$'' न *विद्यते T । परि–पुष्टम्$^{1}_{6}$'' =रक्षक नहीं है । बारबार (=परि) पोषाहुआ (=पुष्ट)
शरीरम्$^{1}_{6}$'' अपि*भोजनम्$^{2}_{6}$'' प्रति*सहायी$^{2}_{6}$' भवति T,=शरीर भी भोजन करते ताईं (तक) सहाय करनेवाला होता है
न*व्यसन-उपनिपाते$^{2}_{6}$';यत्नेन$^{3}_{6}$' संचितः$^{1}_{6}$' अर्थः$^{1}_{6}$' अपि*=न कि कष्ट आने पर । जतनकरि इकट्ठा किया हुआ धन भी
न*भवान्तरम्$^{2}_{6}$' अनुगच्छति; संविभक्त-सुख–दुःखा$^{1}_{3}$'=परलोकको नहीं जाता है । जो सुख-दुःखमें भागीहोकरि(=संविभक्त) (भोगें भुगतें ऐसे)
सुहृदः$^{1}_{3}$' अपि*न*मरणकाले$^{2}_{6}$' परित्रायन्ते T ॥ =मित्र भी मरण समयमें रक्षा नहीं करते हैं भावार्थ रक्षा नहीं कर सकते हैं ।
बान्धवाः$^{1}_{3}$' समुदिताः$^{1}_{3}$' च*रुजा–परीतम्$^{2}_{6}$' =और (=च) इकट्ठे हुये कुटम्बी रोग ग्रसित को
न*परिपालयन्ति T ॥ चेत्*सुचरितः$^{1}_{6}$' =प्रतिपालना नहीं कर सकते हैं(शब्दार्थ नहीं करते है)।।यदि भलेप्रकार आचरण कियाहुआ
धर्मः$^{1}_{6}$' अस्ति,व्यसन-महार्णवे$^{2}_{6}$' तरण–उपायः$^{1}_{6}$' भवति=धर्म (विद्यमान) है, तो विपत्तिरूपी बड़े समुद्रमें तरणेका उपाय होता है ।
मृत्युना$^{3}_{6}$' नीयमानस्य$^{6}_{6}$' सहस्र-नयन–आदयः$^{1}_{3}$' =कालकरि ग्रहण किये हुए का इन्द्रादिक
अपि*न*शरणम्$^{1}_{6}$'' ;तस्मात्*भव-व्यसन-संकटे$^{2}_{6}$' =भी शरण नहीं होते हैं, जिससे भवरूपी विपत्तिमें वा कष्टमें
धर्मः$^{1}_{6}$' एव*शरणम्$^{1}_{6}$'' सुहृद्$^{1}_{6}$' अर्थः$^{1}_{6}$' =धर्म ही शरण है, (धर्म ही)मित्र है , (धर्म ही) धन है,
अपि*अनपायी$^{1}_{6}$' न*अन्यत्*किंचित्*शरणम्$^{1}_{6}$'' ,=अविनाशी भी (=अपि) है, अन्य कुछ भी शरण नहीं है,
इति*भावना$^{1}_{6}$'' अशरण–अनुप्रेक्षा$^{1}_{6}$'' ॥ =इस प्रकार बारबार चिंतवन करना(=भावना) सो अशरण अनुप्रेक्षा है ॥

एवं ह्यस्याध्यवस्यतो नित्यमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य संसारिकेषु भावेषु ममत्वनिरासो भवति॥ भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीत एव मार्गे प्रतिपन्नो भवति ॥२॥ कर्मविपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्तिः संसारः । स पुरस्तात्पंचविधपरिवर्तनरूपेण व्याख्यातः । तस्मिन्ननेकयोनिकुलकोटिबहुशतसहस्रसंकटे संसारे परिभ्रमन् जीवः कर्मयन्त्रानुप्रेरितः पिता भूत्वा भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति । माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति । स्वामी भूत्वा दासो भवति। दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवति नट इव रङ्गे ॥

एवम्*हि*अस्य[6]'''अध्यवस्यतः[6] =इसप्रकार ही इस(अशरण-अनुचिंतन)का अध्यवसाय करनेवालेके अर्थात् निश्चय करनेवालेको
नित्यम्*अशरणः[1]'अस्मि T इति* भृशम्[1]''' =कि (मैं) सर्वथा (=नित्य) शरण रहित हूं, इस प्रकार बहुत (=भृशम्)
उद्विग्नस्य[5]'संसारिकेषु[3] =घबराये हुये (प्राणी)के संसार संबंधी (=संसारिक) अथवा संसारके
भावेषु[3]'ममत्व-निरासः[1]'भवति T । भगवत्- =पदार्थोंमें (=भावेषु) ममत्वका अभाव होता है (तब) भगवान्
अर्हत्-सर्वज्ञ-प्रणीतः[1]'एव*मार्गे[3]'प्रतिपन्नः[1]'भवति=अर्हंत सर्वज्ञ कथित ही मार्गमें निश्चित (=प्रतिपन्न) होता है॥ २ ॥
कर्म-विपाक-वशात्[5]'आत्मनः[6] =कर्मके उदयके वशसे जीवका
भव-अन्तर[3]'आप्तिः[1]''संसारः[1]';सः[1]'पुरस्तात्*=अन्य भवमें प्राप्ति होना (सो) संसार है । वह(संसार)पहले (=पुरस्तात्)
पंच-विध-परिवर्तनरूपेण[3]''व्याख्यातः[1]'; =पांच प्रकार परिवर्तनरूपसे वर्णनकीगई है (अध्याय २ पृष्ठ ३२ से ४४ तक देखो)
तस्मिन्[7]'अनेकयोनि-कुलकोटी-बहुशतसहस्र-=तिस (संसार)में अनेक योनि-कुलकोटि लाखो (=बहुशतसहस्र)
संकटे[7]'संसारे[7]'परिभ्रमन्जीवः[1]'कर्म- =पीड़ा (कष्ट-दुःख) सहनेपर संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव. कर्मरूपी
यन्त्र-अनुप्रेरितः[1]'पिता[1]'भूत्वा÷भ्राता[1]' =यंत्रका प्रेराहुआ पिता होकर भाई होता है,
पुत्रः[1]'पौत्रः[1]'च*भवतिTमाता[1]''भूत्वा÷भगिनी[1]'' =और (=च) पुत्र होता है, पोता (नाती) होता है,मा होकर बहिन वा सहोदरा होता है,
भार्या[1]''दुहिता[1]''च*भवतिT,स्वामी[1]'भूत्वा÷=स्त्री वा पत्नी होता है और(=च) पुत्री होता है, स्वामी होकर
दासः[1]'भवतिT;दासः[1]'भूत्वा÷स्वामी[1]'अपि*भवतिT;=सेवक होता है, सेवक होकर स्वामी भी होता है,
नटः[1]'इव* रंगे[7]' =नट समान स्वांगमें रंगे हैं अर्थात् जैसे नटअनेक स्वांग धर नाचता है तैसे अनेक भव-धरता है।

अथवा किं बहुना स्वयमात्मनः पुत्रो भवतीत्येवमादिसंसारस्वभावचिन्तनं संसारानुप्रेक्षा॥ एवं ह्यस्य भावयतः संसारदुःखभयादुद्विग्नस्य ततो निर्वेदो भवति । निर्विण्णश्च संसारप्रहणाय प्रतियतते ॥३॥ जन्मजरामरणानुवृत्तिमहादुःखानुभवं प्रति एक एवाहं

अथवा* किम्* बहुना[1] =अथवा बहुतकरि क्या (कहना) है,

स्वयम्*(१)आत्मनः[6]पुत्रः[1]भवति[1]इति*एवम्आदि-=आपही (=स्वयम्) आपके पुत्र होता है, ऐसे (=इति) इत्यादिक (=एवमादि)

संसार-स्वभाव-चिन्तन[3]संसार-अनुप्रेक्षा[1]॥ । =संसारके स्वभावका विचारना (सो) संसारानुप्रेक्षा है ।

एवम्* हि*अस्य[6]भावयतः[6](२)संसारदुःखभयात्[5]॥=ऐसे ही (=हि) इस (संसार अनुचिंतन)के भावना करनेवालोंके संसारकेदुःखोंके भयसे

उद्विग्नस्य[6]ततो* निर्वेदः[1]भवति T । =घबराये हुये (प्राणी)के (=उद्विग्नस्य) तिस (संसार)से वैराग्य होता है,

निर्विण्णः[1]च*संसार-प्रहणाय[4]॥प्रतियतते T॥३॥ =और (=च) निर्वेद वा संसारसे ग्लानियुक्त होनेसे संसारके नाशके लिये जतन करता है

जन्म-जरा-मरण-अनुवृत्ति- =जन्म-बुढ़ापा-मृत्युके प्रवाहरूपसे पीछा करने वालेसे, बारबार आने वालेसे (=अनुवृत्ति)

महादुःख-अनुभवम्[2]प्रति*एक[1]एव*अहम्- =अत्यन्त दुःखोंके भोगनेको मैं एक ही हूं अर्थात् एकही अकेला हूं,

(१)आजकलके वैज्ञानिकोंका यह सिद्धान्त है कि आप ही आपके पुत्र नहीं हो सक्ता है क्योंकि उनका मत है कि पुरुषके वीर्यमें बहुत छोटे छोटे जन्तु होते हैं जो शीघ्रतासे हिलते जुलते रहते हैं उनमेंसे एक अथवा दो जब पुरुष स्त्रीका संभोग होता है स्त्री की योनिमें प्रवेश होजाते हैं औरबच्चे दानमें पलकर बढ़ते रहते हैं वही लगभग नौ मासमें पुत्र वा पुत्रीके रूपमें एक वा जुगलिया उत्पन्न होते हैं । हम जैनियोंका यह सिद्धान्त है कि स्त्रीके गर्भ रहनेके पश्चात् जीव पड़ता है अर्थात् जब वह गर्भमें फड़फड़ाता है तब उसमें जीव आता है ॥ एक वैज्ञानिकका वाक्य हैकि सूक्ष्म यन्त्रके द्वारा तुम वीर्यमें छोटे २ जन्तु जिनके अंडाकार सिर और लम्बी लम्बी पूछें होती हैं देख सकते हो ये जन्तु जल्दी जल्दी फड़फड़ातेहैं इनकी पूंछ जो आदमीका आदि और विशेष कारण है ध्यान देने योग्य है । ये जन्तु वायुमें १५ पलसे २५ पल तक अधिकसे अधिक जीवित रह सकते हैं । १५ पल घंटेका दसवां भाग और २५ पल घंटेका आठवां भाग होता है और पानीमें बहुत शीघ्र ही मरणको प्राप्ति होते हैं। कुछ स्त्रियां जिनको स्वच्छताकी टेव होती है भोगके पश्चात् ही तत्काल अपने गुप्त मागको जलसे धोती हैं जिससे ये जन्तु उनकी अज्ञानतासे मृत्युको प्राप्ति होजाते हैं और इस प्रकार उनका गर्भ रहनेसे प्रायः रुक जाता है ॥ (२) इस संसार भावना में ऐसा विशेष जानना चाहिये कि आत्माकी चार अवस्थायें हैं. संसार, असंसार,नो संसार तन्त्रितयव्यपेत(क)तहां चार गति विषै अनेक योनिमें भ्रमण करना सो तो संसार है, (ख)बहुरिचारिगतिसे रहित होना फिर न आवना मुक्त होना सो असंसार है,तहां शिवपद विषै परमआनंद अमृतरूप विषैलोन है(ग)सयोगकेवली नो संसारी है क्योंकि चतुर्गतिके भ्रमणका तो अभाव हुआ और मुक्त हुए नाहीं। प्रदेशोंका चलना पाया जाता है, तिससे ईषत् संसार है इसको नो (=ईषत्) संसार कहते हैं (घ) अयोगकेवली चौदहवां गुणस्थान वालोंके तन्त्रितयव्यपेत है क्योंकि उनकेअनुगतिका भ्रमण नहीं हैओ र मुक्त हुये नहीं है तिससे असंसारी नहीं है और प्रदेशोंका चलना नहीं तिससे तीनों अवस्थासे जुदीही अवस्था है तिसको तन्त्रितय-व्यपेत

न कश्चिन्मे स्वः परो वा विद्यते। एक एव जायेऽहम्। एक एव म्रिये। न मे कश्चित् स्वजनः परजनो वा व्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहरति बन्धुमित्राणि स्मशानं नातिवर्तन्ते। धर्म एव मे सहायः सदा अनपायीति चिन्तनमेकत्वानुप्रेक्षा एवं ह्यस्य भावयतः स्वजनेषु प्रीत्यनुबन्धो न भवति परजनेषु च द्वेषानुबन्धो नोपजायते। ततो निःसङ्गतामभ्युपगतो मोक्षायैवघटते

न*कश्चित्*मे[६]'स्वः[१]'परः[१]'वा*विद्यते T। =न मेरा कोई स्वकीय वा अपना है अथवा (न मेरा कोई) परकीय वा अन्य है,

एकः[१]'एव*जाये[१]'अहम्,एकः[१]'एव*म्रिये T,न०मे[६]' =मैं (=अहम्) एकही जन्मा हूं, एक ही मरता हूं, न मेरा

कश्चित्*स्वजनः[१]' परजनः[१]'वा* =कोई ज्ञाति (=स्वजन) नतैत (=स्वजन) है अथवा (न कोई मेरा) परजन है

व्याधि-जरा-मरणआदीनि[३]'''दुःखानि[३]''' =जो दुःख (=व्याधि) बुढ़ापा मृत्यु आदिक दुःखोंको

अपहरति Tबंधु-मित्राणि[१]''(१)स्मशानं[२]'न*अति-वर्तन्ते-=प्रेटसके मेरे, बांधव मित्र स्मशान लग (जाते हैं) आगे नहीं जाते हैं,

धर्मः[१]'एव*मे[६]'सहायः[१]'सदा*अन्-अपायी[१]' =धर्म ही मेरा सहाय है (=साथ जाता है सहचर है) सदा अविनाशी है

इति*चिन्तनम्[१]'''एकत्व-अनुप्रेक्षा[१]' =इस प्रकार विचारना सो एकत्व-अनुप्रेक्षा वा एकत्व भावना है।

एवम्*हि*अस्य[६]'''भावयतः[६]' =इस प्रकार ही इस (अनुचिंतन)का भावने वालाके

स्वजनेषु[७]' =स्वजन (जे मित्र-बांधव-कुटुम्बी,स्त्री, पुत्र, माता-भ्राता-दुहितादिक)में

प्रीति-अनुबंधः[१]'न*भवति Tपरजने षु[७]'च* =स्नेहका संबंध नहीं होता है और (=च) परजन (जो शत्रु आदिक)निमें

द्वेष-अनुबंधः[१]' न*उपजायते T। ततः* =द्वेषका अनुबन्ध उत्पन्न नहीं होता है तिस (प्रीतिद्वेषके अभाव से

निसङ्गताम्[२]''अभ्युगतः[१]'मोक्षायः[४]'एव*घटते T =निसङ्गताको प्राप्त [जीव] मोक्षके लिये ही यत्न करता है (=घटते)।। ४ ।।

ऐसा नाम कहा है। सो यह संसार अभव्यकी अपेक्षा तथा भव्य सामान्यकी अपेक्षा तो अनादि निधन है, और भव्य विशेषकी अपेक्षाकरि सादि-सनिधन है। जो संसार है सो सादिसनिधन है,बहुरि असंसार सादि अनिधन है, तत् त्रितयव्यपेत अयोग केवलीका अन्तर्मुहूर्तकाल है॥

द्रव्याणि भूमौपशवश्वः (=पशवः च) गोष्टे=(मृत्युके पश्चात् मरने वालेके भिन्न भिन्न प्रकारकी)द्रव्यें, वस्तुयें भूमिमें और पशु खूंटेपरबंधे रहजातेहैं

मार्या गृहद्वारि =स्त्री,गृहिणी (जब शव मृतक शरीर मरघटको लेजाया जाता है तब)घरके द्वारपर (रोती हुई)रहजाती है

(द्वार् स्त्रीलिंग और द्वार नपुंसकलिंगमें एकार्थवाचीहैं यहांपर द्वारि सप्तमी एकवचन स्त्रीलिंगहै, द्वारकी सप्तमी द्वारे होगी)

जनः श्मशाने =(बांधव, मित्र, कुटम्बीजन और)साधारण मनुष्य मरघट,श्मशान वा मुर्दाघाटमें (तक)जाते हैं,

शरीरादन्यत्वचिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा । तद्यथा बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादन्योऽहमैन्द्रियकं शरीरमनिन्द्रियोऽहमज्ञं शरीरं ज्ञोऽहमनित्यं शरीरं नित्योऽहमाद्यन्तवच्छरीरमनाद्यनन्तोऽहं बहूनि मे शरीरशतसहस्राण्यतीतानि संसारे परिभ्रमतः। स एवाहमन्यस्तेभ्य इत्येवं शरीरादप्यन्यत्वं मे किमङ्ग पुनर्बाह्येभ्यः परिग्रहेभ्य इत्येवं ह्यस्य मनःसमादधानस्य शरीरादिषुस्पृहानोत्पद्यते।

शरीरात्[5]अन्यत्व--चिन्तनम्[1]अन्यत्व-अनुप्रेक्षा[6] ॥ तद्यथा*बंधम्[2] प्रति*एकत्वे[7]सति[7]अपि*लक्षणभेदात्[5] अन्यः[1]अहम्[1]ऐंद्रियकम्[1]शरीरम्[1]।।।

अनिन्द्रियः[1]अहम्[1],अज्ञम्[1]शरीरम्[1]।।, ज्ञः[1]अहम्[1],अनित्यम्[1]शरीरम्[1]।।,नित्यः[1]अहम्[1] आदि-अन्त-वत्*शरीरम्[1]।।,अनादिअनन्तः[1]अहम्[1]।। बहूनि[3]।।मे[6]शरीरशतसहस्राणि[3]।।संसारे[7] अतीतानि[3]।। परिभ्रमतः[6]। सः[1]एव*अहम्[1]अन्यः[1]तेभ्यः[5]।। इत्येवम्* शरीरात्[5]।।अपि*अन्यत्वम्[1]।। मे[6]किं*अंगः[1]पुनः*बाह्येभ्यः[5]परिग्रहेभ्यः[5] इत्येवम्*हि*अस्य[6]।।मनःसमादधानस्य[6] शरीरादिषु[7]।।स्पृहा[1]।।न*उत्पद्यते T ।

=देहसे (आत्माका) पृथक्पनेका विचार करना सो अन्यत्व अथवा अन्यता =अनुप्रेक्षा वा भावना है । जैसे (=तद्यथा) बंधकी (=बंध को) =अपेक्षा (=प्रति) एकपना (आत्मा और शरीरके) होनेपर (=सति)भी, लक्षणभेदसे =मैं भिन्न हूं (=अन्यः अहम्), इन्द्रियगोचर वा इन्द्रिय गम्य शरीर है अर्थात् शरीर इन्द्रियोंका विषय है, अथवा इन्द्रियोंकरि जाना जाता है क्योंकि मूर्तीक है =मैं अतीन्द्रिय हूं (क्योंकिअमूर्तीक हूं) शरीर अज्ञानी है अर्थात् जड़ है (=अज्ञं) =मैं ज्ञानी हूं,अर्थात् मैं ज्ञानस्वरूप चेतन हूं,शरीर क्षणभंगुर है, मैं नित्य हूं, =शरीर आदि और अन्तवालाहै अर्थात् आदि अन्त सहित है,मैं अनादि अनंत हूं, =मेरे अनेक (=बहूनि) लक्ष (=शतसहस्राणि) शरीर संसारमें =परिभ्रमण करते व्यतीत होगये(=शरीर तो मेरे बहुत होगये मैं वही एकउनसेभिन्नस्वरूप हूं) =वह (=सः) ही (=एव) मैं तिन (शरीरों)से भिन्न हूं, इस प्रकार =शरीरसे भी जब मेरा न्यारापन है =(तो) पुनि बाह्य परिग्रहोंसे मेरा क्या संबंध (=अंग) है =इस प्रकार ही इस मनको समभावोंमें धारण करनेवाले (जीव)के(=मनस्समादधानस्य) =शरीरादिकमें वांछा उत्पन्न नहीं होती है ।

देहश्चितायां(=देहःचितायाम्)परलोक मार्गं = शरीर चितापर(वा चितामें जलकर)रह जाता है,परलोकके पथमें,अर्थात् अन्यभव धारणकरनेकेलिये कर्मानुगो गच्छति जीव एकः =कर्मके अनुसार अर्थात् जैसे कर्म किये है उनके अनुकुल (बुरी भलीगतिमें)अकेला जीवही जाताहै

ततस्तत्त्वज्ञानभावनापूर्वके वैराग्यप्रकर्षे सति आत्यन्तिकस्य मोक्षसुखस्याप्तिर्भवति ॥ ५ ॥ शरीरमिदमत्यन्ताशुचि शुक्रशोणितयोन्यशुचिसंवर्धितमवस्करवदशुचिभाजनं त्वङ्मात्रप्रच्छादितमतिपूतिरसनिष्यन्दिस्रोतोबिलमङ्गारवदात्मभावमाश्रितमप्याशवेवापादयति। स्नानानुलेपनधूपप्रघर्षवासमाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुमस्य । सम्यग्दर्शनादि पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यन्तिकीं शुद्धिमाविर्भावयतीतितत्त्वतो

ततः*तत्त्व–ज्ञान–भावना–पूर्वके[१] =तिस (शरीर और आत्माके अन्यत्वरूप समाधान)से यथार्थ ज्ञान भावना निमित्तक
वैराग्य-प्रकर्षे[२]।सति[३]।आत्यन्तिकस्य[४]।।।मोक्षसुखस्य[५]।।।= वैराग्यकी वृद्धि होने पर अतिशय जात मोक्ष सुखकी
प्राप्तिः[६]।।भवति।।शरीरम्[१]।।इदम्[२]।।।अत्यन्तअशुचि[३]।।।=प्राप्ति होती है ॥ यह शरीर बहुत अपवित्र
शुक्र–शोणित–यानि–अशुचि–संवर्धितम्[४]।।। =वीर्य(=शुक्र)और रुधिर(=शोणित)के उपजनेकास्थान औरअशुचिवस्तुओंकरि बंधाहुआहै
अवस्करवत्*अशुचि–भाजनम्[५]।।। =विष्टा (=अवस्कर)के समान अशुचिका स्थान है
त्वच्–मात्र–प्रच्छादितम्[१]।।।अतिपूति–रस - =चाम (=त्वच्) मात्रकरि ढका हुआ है, अति दुर्गंध (=पूति) रसकरि
निष्यन्दि–(निस्यन्दि)स्रोतस्–विलम्[२]।।।अंगारवत्*=झरते हुये (=निष्यन्दि वा निस्यन्दि)नीझरका (यह शरीर) विल है, अंगारेके समान
आत्मभावम्-आश्रितम्[३]।।।अपि*आशु*एव' अपादयतिT=आश्रित (वस्तु) कोभी अपनेसमान शीघ्रही (=आशु+एव=आश्वेव) अपवित्रकरता है
स्नान–अनुलेपन–धूप– =न्हानेकरि, अनुकूल अनुकूल वस्तुओंका लेपनकरि (=अनुलेपन) चंदन [=धूप]का
प्रघर्ष–वास =घिसघिसकरि लगावनेसे (=प्रघर्ष) मर्दनकरि(=प्रघर्ष) अन्यसुगंधित वस्तुओंकरि(=वास)
माल्यादिभिः[३]।अपि* =पुष्प आदिककरि (=माल्यादिभिः) अथवा पुष्पोंकी मालादिकरि (=माल्यादिभिः)
अस्य[४]।।।न*शक्यम्[१]।।अशुचित्वम्[२]।।।अपहर्तुम्[३]।।।=इस शरीरका(=अस्य) अशुचिपना नहीं हरा जा सक्ताहै अथवा नहींदूर किया जासक्ता है

"या शरीरके स्नान गंधका लेपन धूपकावास सुगंध माला आदिकरि भी याका अशुचि पना दूर न होय है" पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राज०पृष्ठ१४१०सेउद्धृत

सम्यग्दर्शनादि[१]।।।भाव्यमानम्[२]।पुनः जीवस्य[३]। =बहुरि (=पुनः) सम्यग्दर्शनादिक भावतेहुये अथवा बारबार विचारते हुये प्राणीके
आत्यन्तकीम्[१]।शुद्धिम्[२]।।आविर्भावयतिTइति*तत्त्वतः=अत्यन्त शुद्धताको प्रगट करता है, इस प्रकार यथार्थतासे (=तत्त्वतः)

भावनमशुचित्वानुप्रेक्षा॥ एवं ह्यस्य संस्मरतः शरीरनिर्वेदो भवति । निर्विण्णश्च जन्मोदधितरणाय चित्तं समाधत्ते॥६॥आस्रवसंवरनिर्जराः पूर्वोक्ता अपि इहोपन्यस्यन्ते तद्गुणदोषभावनार्थं । तद्यथा–आस्रवा इहामुत्रापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियकषायाव्रतादयः। तत्रेन्द्रियाणि तावत्स्पर्शनादीनि वनगजवायसपन्नगपतङ्गहरिणादीन् व्यसनार्णवमवगाहयन्ति

भावनम्[1]''अशुचित्व–अनुप्रेक्षा[1]'';एवम्*हि*अस्य[1]=विचारना अशुचित्व अनुप्रेक्षा वा अपवित्रत्व भावना है।इस प्रकारही इस(अनुचिन्तन)के
संस्मरतः[1]शरीर-निर्वेदः[1]भवति T । =विचार करनेवालेको शरीरसे वैराग्य वा ग्लानि होती है ।
निर्विण्णः[1]च*जन्म–उदधि–तरणाय[1] =और (=च)वैराग्य और ग्लानि सहित होनेसे भवोदधि तरनेके लिये अर्थात् जन्म मरण रूप संसार समुद्रके पार करनेके लिये
चित्तम्[1]''समाधत्ते T॥६॥आस्रव–संवर–निर्जराः[1]'' =चितको समाधान करता है ॥६॥आस्रव और संवर और निर्जरा
पूर्व–उक्ताः[1]'' =पहिले कहे गये हैं (देखो अध्याय प्रथम सूत्र ४, अध्याय ६ सूत्र १, २, अध्याय ९ सूत्र १, देखो'ततश्च निर्जरा'सूत्र २३ अध्याय८ और इस सूत्रपर संस्कृतवृत्ति वाभाष्य)
अपि*इह* तद्– =तौभी (=अपि) इस स्थानमें (=इह) उन (आस्रव–संवर–निर्जरा)के
गुण–दोष–भावना–अर्थम्[1]''उपन्यस्यन्ते T =गुण तथा दूषण विचारनेके लिये कहे जाते हैंकि
तद्यथा*–आस्रवाः[1]इह*अमुत्र* =जैसे–आस्रव इस लोकमें (=इह)और परलोकमें (=अमुत्र)
अपाययुक्ताः[1]'' =नाश (=अपाय) तथा दुःख (=अपाय) सहित हैं अर्थात् नाश तथा दुःखके कारण हैं
महानदी–स्रोतस्–वेग–तीक्ष्णाः[1]' =बड़ी बड़ी नदियोंके प्रवाह (=स्रोतस्) के वेगको ज्यों (ये आस्रव) तीखे हैं
इन्द्रिय–कषाय–अव्रत–आदयः[1];तत्र* =(वे आस्रव) इन्द्रिय, कषाय, अव्रत आदिक हैं, तहां (=तत्र)
इन्द्रियाणि[1]''तावत्* स्पर्शनादीनि[1]'' =इन्द्रियें तौं (=तावत्) स्पर्शन, रसन–घ्राण–चक्षु श्रोत्र हैं
वनगज–वायस–पन्नग– =(वे स्पर्शनादिक इन्द्रियें) वनके हाथीको,कागको(=वायस) सर्पको (=पन्नग)
पतंग–हरिणादीन्[1]व्यसन–अर्णव–अवगाहयन्ति T=शलभ वा पतंगको और हरिण आदिकोंको कष्टरूपी समुद्रमें प्रवेश करते हैं [शब्दार्थ कष्टरूपी समुद्रमें स्थान देते हैं वा कष्टरूपी समुद्रमें डुबकी देते हैं] भावार्थ ऐसेहै कि

तथा कषायादयोऽपीह वधबन्धपरिक्लेशादीन् जनयन्ति॥ अमुत्र च नानागतिषु बहुविधदुःख-प्रज्वलितासु भ्रमयन्तीत्येवमास्रवदोषानुचिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य चिन्तयतःक्षमादिषु श्रेयत्वबुद्धिर्न प्रच्यवते

भावार्थ [देखो!][१](क)स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत हुआ वनका हाथी बहुत बलवान है तो भी कामकरि पीड़ित कपटकी हथिनी को सांची हथिनी समझकरि खांदकमें जापड़ता है और वहां खांदकमें बंधन मार, पीट, अँकुश और भूख प्यासके दुःखको सहता है और अपने यूथमें स्वछन्द विहारको अपने वनवासको सदा स्मरण करता है और खेदको प्राप्त होता है।(ख)जिह्वा इन्द्रियके वशीभूत हुआ काक सो मरे हुये हाथीके शरीरके ऊपर तिष्ठता था सो नदीके प्रवाहमें हस्ती चला तब काक भी चला समुद्रमें गिर पड़ा और वहांसे उड़कर निकलनेमें असमर्थ होता हुआ वहां ही कष्टमें मर जाता है इस प्रकार मांस तथा रसके लोभी जालमें फंस कर मरणको प्राप्त होते हैं (ग) बहुरि घ्राण इन्द्रियके वशीभूत सर्प औषधिकी सुगंधसे कष्टके स्थानमें जाकर पड़ता है तथा भ्रमर कमलमें दब कर मर जाता है (घ) तथा नेत्र इन्द्रिय के वशीभूत हुआ पतंग [जीव] दीपक की लौपर मरता है। (ङ) बहुरि श्रोत्र इन्द्रियके वशीभूत हरिण बधिकके गानेकी ध्वनि सुनिकर खाना पीना विचरना विहार करना भूलकर बधिकसे पकड़ा जाता है और कष्टके समुद्रमें पड़कर प्राण खो बैठता है।

तथा*कषाय–आदय[1]अपि* इह*वध–बंधपरिक्लेश–आदीन्[2] जनयन्ति T ॥
=वैसेही [=तथा] कषाय आदिक भी [=अपि] यहां वा इस संसारमें =[इह] मारण =बन्धन अति [=परि] दुःखादिकको उत्पन्न करते हैं ॥

अमुत्र*च*नानागतिषु[3]''बहुविधिदुःख-प्रज्वलितासु[3]'' भ्रमयन्ति Iइत्येवम्*आस्रव-दोष–अनुचिंतनम्[4]''' आस्रवानुप्रेक्षा[4]''' ॥ एवम्*हि*अस्य [5]''' चिन्तयतः[5]क्षमादिषु[3]श्रेयत्व-बुद्धिः[4]'''न*प्रच्यवते।
=और [=च]परलोकविषैं [=अमुत्र]बहुतप्रकारके क्लेशोंकरि प्रज्वलित नानागतियोंमें =भ्रमण कराते हैं। इस प्रकारही आस्रवके दूषणोंको चिंतवन करना =[सो] आस्रवानुप्रेक्षा है. इस प्रकार ही [=हि] इस [आस्रवके अनुचिंतन]के =विचार करने वालेकें क्षमादि [दश] धर्मोंमें कल्याणपनाकी बुद्धि नहीं जाती रहती है,

[१] छत्तीस-रसनाके वश मीन प्राण पलमाहिं गमावै॥ अलिनासापरलंग रैनि बहु संकट पावै॥ मृगतुनि श्रवण सनेह देह दुर्जनको दीनी। दीपक देख पतंग दृष्टिहित कैसी कीनी॥ फरस इन्द्रिय वश गज फस्यो सो कौन २ संकट सहै॥ एक एक विषवेलिसम तू पांचों सेवे सुख कहै॥

सर्व एते आस्रवदोषाः कूर्मवत्संवृतात्मनो न भवन्ति ॥७॥ यथा महार्णवे नावो विवरापिधाने सति क्रमात्स्रुतजलाभिप्लवे सति तदाश्रयाणां विनाशोऽवश्यंभावी, छिद्रपिधाने च निरुपद्रवमभिलषितदेशान्तरप्रापणं, तथा कर्मास्रवद्वारसंवरणे सतिनास्ति श्रेयः प्रतिबन्ध इति संवरगुणानुचिन्तनं संवरानुप्रेक्षा ॥ एवं ह्यस्य चिन्तयतः संवरे नित्योद्युक्तता भवति। ततश्चनिःश्रेयसपदप्राप्तिरिति ॥८॥ निर्जरा वेदनाविपाकजा इत्युक्तम् ॥

सर्वः[1]एते[1]आस्रवदोषाः[3]कूर्मवत्* =सर्व ये आस्रवके दूषण कच्छप अथवा कछुवा के समान
संवृत–आत्मनः[6]न*भवन्ति T ॥७॥ =संवररूपकिया है आत्मा जिस (जीवने) तिसके नहीं होते हैं ॥ ७॥
यथा*महान्-अर्णवे[7] नावः[6]विवर-अपिधाने[7]॥ =जैसे बड़े समुद्रमें नावके छिद्रके बंद
सति[7]''क्रमात्[4] स्रुत-जल-अभिप्लवे[7] =होनेपर क्रमसे बहे हुए (=स्रुत) जलके भराउ
सति[7]तद्-आश्रयाणाम्[6]विनाशः[1] अवशम्* =होनेपर (=सति) उस (नाव) के आश्रयवालोंका अवश्य विनाश
भावी[1] छिद्र-पिधाने[7]॥च*निर्-उपद्रवम्[1]॥ =होतव्य है वा होने वाला है अर्थात् होजायगा और (=च) छेदके बंद होनेपर उपद्रवरहित
अभिलषित-देशान्तर–प्रापणं[1]'',तथा*कर्म-आगम=द्वा हुए दूसरे देशको प्राप्त होती है। तैसे कर्मके आनेके
द्वार-संवरणे[7]॥सति[7]॥न*अस्ति Tश्रेयस-प्रतिबंधः[1]=द्वारके रोक होनेपर (=संवरणे सति) मोक्ष(=श्रेयस्) के रोकने वाला(कर्म)नहीं आता है।
इति*संवर-गुण-अनुचिन्तनम्[1]॥संवर-अनुप्रेक्षा[1]॥,=इस प्रकार संवरके गुणोंका बारबार (=अनु वा वीप्सा) चिंतवन (सो) संवर अनुप्रेक्षा है
एवम्*हि*अस्य[6]॥चिन्तयतः[6] संवरे[7] =इस प्रकार ही (=हि) इस (संवर-अनुचिंतन) के विचार करनेवालेके संवरमें
नित्यउद्यमता[1]॥भवति ।। । ततः*च* निःश्रेयस-=नित्य उद्यमता होती है और (=च) तिस (मोक्ष पदकी संवर) से
प्राप्तिः[1] इति* ॥ ८ ॥ निर्जरा[1]॥ =लब्धि होती है ॥ ऐसे (संवर) आठवीं अनुप्रेक्षा हुई ॥ निर्जरा
वेदनाविपाकजा[1]''इति*उक्तम्[1]''' =वेदनाका विपाक है ऐसा (आठवें अध्याय के तेईसवां सूत्र में) कहा गया है

१ भाविन् शब्द पुल्लिंगका प्रथमा एक वचन "भावी" शब्द है। नपुंसकलिंग नकारान्त का प्रथमा एक वचन में न् का लोप होकर ह्रस्व इकार हो जाता है जैसे दण्डिन् से दण्डि, रूप बनगया ॥ (=भाविन् त्रि०–भाविनी स्त्री०)(क)भविष्यमें होना(ख)भविष्य (ग)होकर,होतेहुये(घ) होनहार जैसेयद्भाव्यि(=यद् भाविन्)तद्भवति नात्रविचार हेतुः=जो होनहार है सो होता है यहां विचारका कारण नहीं है,(ङ)अधिष्ठित(अ)सुन्दर,उत्तम॥

सा द्वेधा—अबुद्धिपूर्वा कुशलमूला चेति॥ तत्र नरकादिषु गतिषु कर्मफलविपाकजा अबुद्धि-पूर्वा सा अकुशलानुबन्धा ॥ परिषहजये कृते

सा[१]''द्वेधा*—अबुद्धिपूर्वा[१]''च*कुशल-	=वह (निर्जरा) दो प्रकार अबुद्धिपूर्वा वा अज्ञान पूर्वा तथा (=च) कुशल
मूला[१]''इति*॥तत्र*नरक-आदिषु[३]''गतिषु[३]''कर्मफल-	=मूला,वा बुद्धिपूर्वा वा ज्ञान पूर्वा इसप्रकारहैं(=इति)॥ तहां नरकादिगतियोंमें कर्मफलके
विपाकजा[१]''अबुद्धिपूर्वा[१]''सा[१]''अकुशल-	=विपाकसे(निरन्तर स्वयमेव निर्जराका)उत्पन्न होना सो अबुद्धिपूर्वक है सो अकुशल
अनुबंधा[१]''	=मूला(निर्जरा)है (क्योंकि इस अबुद्धि पूर्वानिर्जरासे कुछ आत्मकल्याण नहीं होता है)॥
परिषहजये[३]' कृते[३]'	=परिषहके जीतनेमें निर्जराका पूरा होना अर्थात् परिषह जीतकरि कर्मोंकी निर्जरा होना

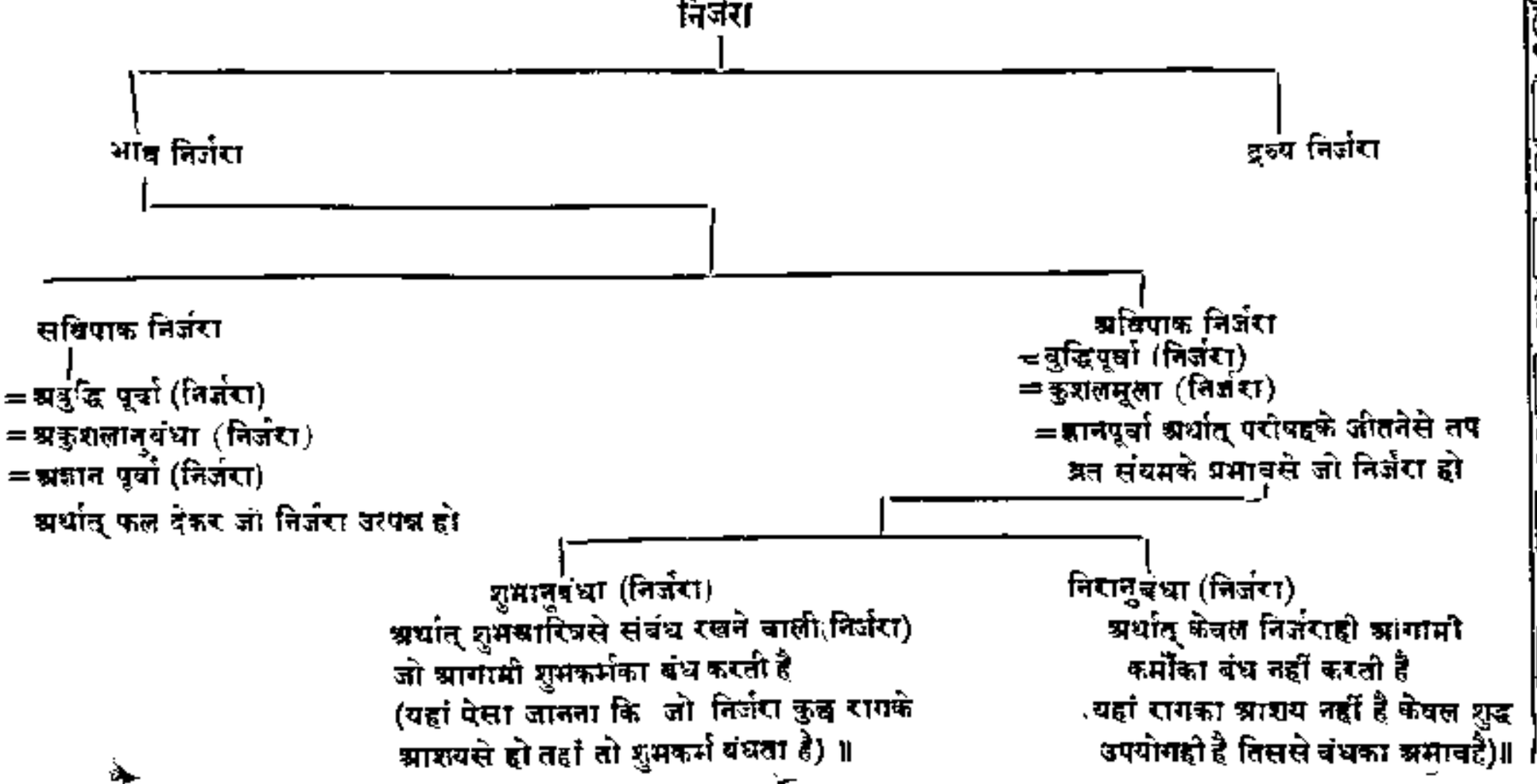

कुशलमूला सा शुभानुबन्धा निरनुबन्धा चेति॥ इत्येवं निर्जराया गुणदोषभावनं निर्जरानुप्रेक्षा एवं ह्यस्यानुस्मरतः कर्म निर्जरायै प्रवृत्तिर्भवति ॥९॥ लोकसंस्थानादिविधिर्व्याख्यातः ॥ समन्तादनन्तस्यालोकाकाशस्य बहुमध्यदेशभाविनो लोकस्य संस्थानादिविधिर्व्याख्यातः ॥ तत्स्वभावानुचिन्तनं लोकानुप्रेक्षाः ॥ एवं ह्यस्याध्यस्यतस्तत्त्वज्ञानविशुद्धिर्भवति ॥ १० ॥

कुशलमूलाᵈ¹¹सा¹¹ =कुशलमूला निर्जरा है सो (कुशलमूला निर्जरा, बुद्धिपूर्वा निर्जरा, ज्ञानपूर्वानिर्जरा)
शुभानुबंधा¹¹ =शुभानुबंधा निर्जरा अर्थात् आगामी शुभकर्मका बन्ध करनेवाली निर्जरा
निरनुबन्धा¹¹च* =और(=च)निरनुबंधा (निर्जरा) अर्थात् आगामी बंधन करनेवाली निर्जरा जहां केवल निर्जरा ही है क्योंकि आगामी बंध नहीं होता है ।
इति* ॥ =ऐसे (दो प्रकार) है । भावार्थ जहां कुछ रागके आशयसे निर्जरा हो तहां तो शुभकर्म बंधता है (=शुभानुबंधा निर्जरा) और जहां रागका आशय न हो केवल शुद्धोपयोग ही है तहां बंधका अभाव है (=निरनुबंधा निर्जरा) और जहां जहां रागका आशय हीन तथा अधिक हो तहां तहां तैसा जानना ॥
इत्येवम्*निर्जरायाः⁶¹गुण-दोष-भावनम्¹¹ =ऐसे अथवा इस प्रकार (=इत्येवम्) निर्जराके गुण दोषोंका चिंतवन
निर्जरा-अनुप्रेक्षा¹¹;एवम्*हि*अस्य⁶¹ =[तो] निर्जरानुप्रेक्षा है । इस प्रकार ही (=हि) इस [अनुचिन्तनम्]के
अनुस्मरतः⁶¹कर्म-निर्जरायै⁴¹प्रवृत्तिः¹¹भवति॥९॥=स्मरण करनेवालेके कर्मकी निर्जराके लिये प्रवृत्ति होती है ॥९॥
लोक-संस्थान-आदि-विधिः¹ =लोकका आकार वा आकृति(=संस्थान)आदिको विधि(अध्याय ३सूत्र १२,१३,१४,१५में)
व्याख्यातः¹¹ ॥ समन्तात्*अनन्तस्य⁶¹ =वर्णन की गई है सर्वओर [=समन्तात्) अनन्त
अलोकाकाशस्य⁶¹बहुमध्यदेश-भाविनः⁶¹ =अलोकाकाशके बीचबीचमें (=बहुमध्यदेश) विद्यमान
लोकस्य⁶¹संस्थान-आदि-विधिः¹¹व्याख्यातः¹¹ ॥ =लोकके आकारादिक विधि व्याख्यान कीगई ।
तत्-स्वभाव-अनुचिन्तनम्¹¹लोक-अनुप्रेक्षा¹¹ ॥ =उस(लोक)के संस्थानादि (विधि)का बारबार विचारकरना लोकानुप्रेक्षावालोकभावना है
एवंहिअस्य⁶¹अध्यवस्यतः⁶¹तत्त्वज्ञान-विशुद्धिः¹¹ भवति=ऐसे ही इस लोक (अनुचिन्तन)के अध्ययन करनेवालेके तत्त्वज्ञानकी शुद्धताहोती है

एकस्मिन्निगोतशरीरे जीवाः सिद्धानामनन्तगुणाः, एवं सर्वलोको निरन्तरं निचितः स्थावरैरतस्तत्र त्रसता वालुकासमुद्रे पतिता वज्रसिकताकणिकेव दुर्लभा । तत्र च विकलेन्द्रियाणां भूयिष्ठत्वात्पञ्चेन्द्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छ्रलभ्या । तत्र च तिर्यक्षु पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु बहुषु सत्सु मनुष्यभावश्चतुष्पथे रत्नराशिरिव दुरासदः । तत्प्रच्यवे च पुनस्तदुपपत्तिः

एकस्मिन्[७]''निगोत-शरीरे[७]''जीवाः[१]' सिद्धानाम्[६]'=एक निगोदियेकी देहमें जीव सिद्धराशिके
अनन्त-गुणाः[१]',एवम्*सर्व-लोकः[१]'निरन्तरम्* =अनन्तगुण हैं इस प्रकार समस्तलोक ठसाठस (=निरन्तरम्)वा गाढागाढ(=निरन्तरम्)
निचितः[१]'स्थावरैः[३]'अतः*तत्र*त्रसता[६]' =स्थावरोंकरि पूरित है अर्थात् भराहुआ है इसलिये वहां(अर्थात् लोकमें त्रसपनेका पावना
वालुका(वालुका समुद्रे[७]'पतिता[१]''वज्र-सिकता[१]'' =वा(वा,लूके समुद्रमें गिरी हुई हीरेकी लोप हुई (=सिकता)
कणिका[१]''इव*दुर्लभा[१]'' ॥ =कणोके समान दुर्लभ है । भावार्थ यह समस्त लोक स्थावरोंसे ठसाठस भरा हुआ है
इस स्थावर पर्यायसे त्रस पर्यायका पाना उतनाही कठिनतासे होता है जितनी कठिनतासे बालू (वालू)के समुद्रमें हीरेकी कणीका पाना (हीरेकी कणीका वर्ण लगभग वैसाही होता है जैसा कि वालूके कण का)

तत्र*च*विकलेन्द्रियाणाम्[६]' =तहां भी (=च) विकलेन्द्रिय(द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय)निके
भूयिष्ठत्वात्[७]''पंचेन्द्रियता[१]'गुणेषु[७]' =बहुत होने (के कारण) से पंचेन्द्रियका होना, गुणोंमें
कृतज्ञता[१]''इव*कृच्छ्र-लभ्या[१]'' । =परउपकारताका न भूलनेके सदृश (=इव) कष्ट प्राप्य है वा कठिन पावना है । अर्थात् इस संसारमें त्रस जीवोंमेंसे विकलत्रय बहुत हैं पंचेन्द्रिय इतने थोड़े हैं कि जीवके लिये पंचेन्द्रिय पर्यायका पावना अत्यन्त और अतिशय कठिन है ।

तत्र*च*तिर्यक्षु[७]'पशु-मृग-पक्षिन्- =तहां भी (=च) (पंचेन्द्रिय) तिर्यंचनिमें पशु, मृग, पक्षी,
सरीसृप-आदिषु[७]'बहुषु[७]'सत्सु[७]'मनुष्यभावः[१]' =सरीसृप आदिक बहुत (जीव) हैं; मनुष्य (अवस्था)का होना(=भाव)
चतुष्पथे[७]'रत्नराशिः[१]'इव*दुरासदः[१]' =चौहरायेमें रत्नकी ढेरी पावनाके समान दुर्लभ अथवा कठिन है
तत्-प्रच्यवे[७]''च*पुनः*तद्-उपपत्तिः[१]'' =और जिस मनुष्य पर्यायके चले जाने पर फिर उस (मनुष्य अवस्थाकी प्राप्ति)

दग्धतरुपुद्गलतद्भावोपपत्तिवद्दुर्लभा। तल्लाभे च देशकुलेन्द्रियसम्पन्नीरोगत्वान्युत्तरोत्तरतोऽतिदुर्लभानि॥सर्वेष्वपि तेषु लब्धेषु सद्धर्मप्रतिलाभोयदि न स्याद्व्यर्थं जन्म, वदनमिव दृष्टिविकलं। तमेवं कृच्छ्रलभ्यं धर्ममवाप्य विषयसुखे रञ्जनं भस्मार्थं चन्दनदहनमिव विफलम्॥ विरक्तविषयसुखस्य तु तपोभावनाधर्मप्रभावनासुखमरणादिलक्षणः समाधिर्दुर्वापः॥तस्मिन् सति बोधिलाभःफलवान् भवतीतिचिन्तनं बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा॥ एवंह्यस्य भावयतोबोधिप्राप्यप्रमादो न कदाचिदपि भवति॥

दग्ध–तरु–पुद्गल–तद्–भाव-उपपत्तिवत्*दुर्लभा॥; तत्–लाभे॒च*देश–कुल–इन्द्रिय–सम्पति-निरोगत्वानि॥उत्तरोत्तरतः*अति-दुर्लभानि॥ तेषु॥ सर्वेषु॥अपि*लब्धेषु॥सद्–धर्म–प्रतिलाभः॥यदि* न*स्यात् व्यर्थं॥जन्म॥वदनं॥इव दृष्टि-विकलं॥,=भस्म हुये पेड़के परमाणुओंका उसी अवस्था(पेड़कीके) उपजनेके समान दुर्लभ है। =उस (मनुष्य पर्याय)के प्राप्त होने पर भी (उत्तम) देश(उत्तम) कुल (परिपूर्ण) इन्द्रिय =सम्पदा निरोगता। अग्रिमसे अग्रिम (=एकसे दूसरा, क्रमानुसार) अतिदुर्लभ है। =तिन (पूर्वोक्त मनुष्य पर्याय-उत्तमदेश, उच्चकुल,परिपूर्ण इन्द्रिय सम्पति, निरोगत्व) =सबके प्राप्त होनेपर भी (=अपि) सच्चे धर्मकीलब्धि (=प्रतिलाभ) जो (=यदि) =न हो तो (मनुष्य) जन्म व्यर्थ है, जैसे नेत्रकरि रहित मुख,

तत्॥एवम्* कृच्छ्रलभ्यं॥धर्मं॥अवाप्य÷विषय-सुखे॥॥=इस प्रकार (=एवं) उस (=तत्) दुर्लभ(=कृच्छ्रलभ्य) धर्मको पाकरि विषय सुखमें रंजन॥॥भस्मार्थम्॥॥चन्दनदहनम्॥॥इव*विफलम्॥॥=आसक्तहोजायतौ(दुर्लभ धर्मकीपावना भी)राखके लिये चन्दनको जलानेके तुल्य व्यर्थहै विरक्त–विषयसुखस्य॥॥तु*तपोभावना– =विषय सुखका विरक्ति हो तो भी (=तु) तपकी भावना, धर्मप्रभावना–सुख–मरणादिलक्षणः॥समाधिः॥ =धर्मकी प्रभावना, सुखसे मरणादि लक्षणरूपसमाधि दुर्वापः॥॥ तस्मिन्॥सति॥बोधिलाभः॥ =सो दुर्लभ है॥ तिस(समाधि मरण)केहोनेपर स्वभावकी प्राप्तिरूपबोधका लाभ हो तो फलवान्॥भवति T इति*चिन्तनम्॥॥ =फलवान् होता है (=भवति) ऐसा चिन्तवन बोधि–दुर्लभ–अनुप्रेक्षा॥॥; एवम्* =बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा है वा बोधि दुर्लभ भावना है। इस प्रकार हि*अस्य॥॥भावयतः॥बोधिम्॥ =ही इस (बोधि दुर्लभ अनुचिन्तन) के भावने वाले [प्राणि]के बोधकी प्राप्य÷प्रमादः॥न*कदाचित्*अपि*भवति T ॥११॥=प्राप्त होकर प्रमाद कदाचित् भी नहीं होता है॥ ११ ॥

अयं जिनापदिष्टो धर्मोऽहिंसालक्षणः सत्याधिष्ठितो विनयमूलःक्षमाबलो ब्रह्मचर्यगुप्त उपशम-प्रधानो नियतिलक्षणो निष्परिग्रहतालम्बनःतस्यलाभादनादिसंसारे जीवाःपरिभ्रमन्ति दुष्क-र्मविपाकजं दुःखमनुभवन्ति ॥ अस्य पुनः प्रतिलम्भे विविधाभ्युदयप्राप्तिपूर्विका निःश्रेयसो-पलब्धिर्नियतेति चिन्तनं धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा । एवं ह्यस्य चिन्तयतो धर्मानुरागात्सदा प्रतियत्नपरोभवति ॥१२॥ वमनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षासन्निधाने उत्तमक्षमादिधारणान्महान्संवरोभवति

अयं[1]'जिन–उपदिष्टः[1]'धर्मः[1]'अहिंसा-लक्षणः[1]'=यह जिन भगवान्का उपदेश किया हुआ धर्म है,[वह] अहिंसा लक्षणकरि युक्त है
सत्य–अधिष्ठितः[1]'विनय–मूलः[1]'क्षमाबलः[1]'=सत्यके अधिकारसेप्रवर्तताहै,विनय जिस(जिनकथित धर्म)का मूल है,क्षमा जिस (धर्म)में बल है,
ब्रह्मचर्यगुप्तः[1]'उपशम–प्रधानः[1]' =ब्रह्मचर्य जाकरि रक्षित है, कषायका अभाव(=उपशम) जिस[धर्ममें] प्रधान है,
नियति–लक्षणः[1]' =नियम (अर्थात् निवृत्ति) जिस धर्मका स्वरूप है,
निष्परिग्रहता–आलम्बनः[1]', =ममत्व वा परिग्रहका त्याग वा निर्ग्रंथपना जिस [जिनभाषितधर्म]का अवलम्बन है,
तस्य[1]'लाभात्[1]'अनादि–संसारे[1]' =तिस (जिन वर्णित धर्म)की अलब्धिसे अनादिकालसे संसारमें
जीवाः[1]'परिभ्रमन्ति T। दुष्कर्म–विपाकजम्[1]'' =जीव परिभ्रमण करते हैं, अर्थात् नाना प्रकारके जन्म धारण करते हैं, पापकर्मके उदयसनित
दुःखम्[1]''अनुभवन्तिः T॥अस्य[1]'पुनः* =दुःखोंको अनुभव करते हैं, बहुरि इस (धर्म) के
प्रतिलम्भे[1]'विविध–अभ्युदयप्राप्तिपूर्विका[1]'' =लाभ होनेपर नाना प्रकारके (=विविध) स्वर्गादिककी प्राप्ति पूर्वक
निःश्रेयस्–उपलब्धिः[1]'नियता[1]'' =मोक्षकी प्राप्ति नियमकरि होती है वा निश्चयसे होती है
इति*चिन्तनम्[1]''धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा[1]' =इस प्रकार चिंतवन सो धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है ॥
एवम्*हि*अस्य[1]''चिन्तयतः[1]' =ऐसे ही (=हि)इस (धर्मस्वाख्यातत्वानचिन्तन)के विचारनेवाले (प्राणी)के
धर्म–अनुरागात्[1]'सदा * =धर्मविषैं बहुत (=अत्त) प्रीतिसे सर्वकाल विषैं (=सदा)
प्रतियत्नपरः[1]'भवतिT॥१२॥एवम्*अनित्यत्व =अच्छा प्रयत्न होता है ॥ १२॥ ऐसे अनित्यत्व
आदि-अनुप्रेक्षा–सन्निधाने[1]'' उत्तमक्षमादि-=आदिक भावनाके निकटमें उत्तम क्षमादिक (पूर्वोक्त दश धर्मके)
धारणात्[1]''महान्[1]'संवरः[1]'भवतिT ॥ =धारण करनेसे अतिशय वा बहुत संवर होता है।

मध्ये अनुप्रेक्षावचनमुभयार्थम् ॥ अनुप्रेक्षा हि भावयन्नुत्तमक्षमादींश्च प्रतिपालयति । परीषहांश्च जेतुमुत्सहते ॥ के पुनस्ते परिषहाः किमर्थं वा सह्यन्त इतीदमाह—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः ॥ ८ ॥

संवरस्यप्रकृतत्वातेनमार्गोविशिष्यते ।

मध्ये[२]अनुप्रेक्षा-वचनम्[१]'''उभय-अर्थम्[१]'''। हि*=बीचमें (बारह) भावनाओंका कथन (=वचन) दोनों अर्थके लिये है क्योंकि (=हि) अनुप्रेक्षां[२]'''भावयन्उत्तम-क्षमादीन्[३]च*प्रतिपालयति=भावनाको चिंतवन करता हुआ (पुरुष) उत्तम क्षमादिक(धर्मा)को भी पालता है च*परिषहान्[३]जेतुम्[३]उत्सहते पुन*के[१]ते[१]परिषहाः[१]=और(=च)परिषहाओंको जीतनेको उत्साह करता है, बहुरि ते परिषह क्या हैं (=के) किम्[१]'''अर्थम्[१]'''वा*सह्यन्तेऽइति*इदम्[१]'''आह T॥=वा किसलिये सही जाती हैं ऐसा (प्रश्न होनेपर)यह (अग्रिम सूत्रमें आचार्य)कहते हैं कि

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः-=मार्ग-अच्यवन-निजरा-अर्थम्[१]''' परिषोढव्याः[१] परिषहाः[१] ॥८॥

सूत्रार्थः-मार्ग-अच्यवन-निर्जरा- =संवरके मार्गसे न गिरनेके लिये, न चिगनेके लिये, वा न डिगनेके लिये कर्मोंके नाशके

अर्थम्[१]'''परिषहाः[१]''' परिषोढव्याः[१]=लिये परीषहायें(अनेक प्रकारके उपद्रवों वा पीड़ाओंको सहना) चाहिये, सहना योग्य है अर्थात् संवरके मार्गसे(क्योंकि यहां पर संवरका प्रकरण है) न गिरनेके अर्थ तथा कर्मों की निर्जरा(=एक देशीयनाश) के लिये वक्ष्यमाण (=कह जाने वाली)क्षुधा तृषादिक द्वाविंसति [२२ बाईस] परीषहोंको सहन करना चाहिये

वृत्त्यनुवादः-संवरस्य[१]प्रकृतत्वात्[१]'''तेन[१] =संवरका प्रकरण होने [के हेतु] से तिस [संवर शब्द] करि

मार्गः[१]विशिष्यते T । =मार्ग (शब्द)विशेषणयुक्त किया गया है अर्थात् संवर शब्दमार्गशब्दका विशेषणहै

१-दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ परिषहाः सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें परिषहःके स्थानमें है ॥

संवरमार्ग इति ॥ तदच्यवनार्थं निर्जरार्थं च परिषोढव्याः परिषहाः। क्षुत्पिपासादिसहनम्। जिनोपदिष्टान्मार्गादप्रच्यवमानास्तन्मार्गपरिक्रमणपरिचयेन कर्मागमद्वारं संवृण्वन्त औपक्रमिकं कर्मफलमनुभवन्तः क्रमेण निर्जीर्णकर्माणो मोक्षमाप्नुवन्ति ॥ तत्स्वरूपसंख्यासम्प्रतिपत्त्यर्थमाह

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि॥९॥

संवरमार्गः[1]इति* ॥ =संवरका मार्ग ऐसा है अर्थात् इस सूत्रमें मार्ग शब्द संवरका मार्ग अथवा संवररूपमार्ग इस अर्थमें आया है।

तद्-अच्यवन-अर्थम्[2]।।निर्जरा-अर्थम्[3]।।च* =उस (संवरके मार्ग)से न गिरनेके लिये और(=च) (कर्मोंके) झड़नेके लिये

परिषोढव्याः[3]परिषहाः[3] ।क्षुत्-पिपासा-दि-सहनम्[2]।।; =परिषहायें सहना योग्य है. क्षुधा तृषा आदिक (बाईस परिषहोंका) सहना

जिन-उपदिष्टात्[3]मार्गात्[5] अप्रच्यवमानाः[3]। =(तब) अर्हत् भगवानकरि भाषित (सत्) मार्गसे न डिगते हुये

तत्-मार्ग-परिक्रमण-परिचयेन[3]कर्म-आगम- =उस मार्गमें लगातार (=परिक्रमण) प्रवर्तनकरि कर्मके आवनेके

द्वारम्[2]।।संवृण्वन्तः[3] औपक्रमिकम्[1]।।। =द्वार (=आस्रव) को रोकतेसंते (औप) उद्यमकरि

कर्मफलम्[2]।।।अनुभवन्तः[3]क्रमेण[2]। =कर्मके विपाकको भोगते हुये अनुक्रमसे

निर्जीर्ण-कर्म-अणवः[5]।।।मोक्षम्[2]आप्नुवन्ति T ॥ =कर्मके अणुओंको निर्जरा करते हुए (वे मुनि) मोक्षको प्राप्त होते हैं

तत्स्वरूप-संख्या-सम्प्रतिपति-अर्थम्[2]।।।आह T-, =उन(परिषहों) के स्वरूप तथा गणनाके उत्तरके लिये(=सम्प्रतिपत्ति अर्थ)कहते हैं कि

(१ **क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥**

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा हमारे यहां एक पाठ और लगभग एकसा अर्थ है ॥

पदच्छेदः—क्षुत्-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-नाग्न्य-अरति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-आक्रोश-वध-याचना-अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शनानि ॥ एते ॥ द्वाविंशतिः ॥ परिषहाः ॥ परिषोढव्याः ॥ ॥ ९ ॥

(१) क्षुत्परिषहः परिषोढव्यः=क्षुधा परिषह सहने योग्य है अर्थात् प्रथम तो साधुओंका भोजन गृहस्थों पर ही निर्भर है,भोजनके लिये कोई वस्तु उनके पास नहीं है यहां लग कि शरीर पर वस्त्रादिक भी नहीं है और शरीर मात्र उपकरणकरि सन्तुष्ट हैं दूसरे यह कि अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान इत्यादिक तप करते दो दिन, चार दिन, आठ दिन, पक्ष मास व्यतीत होजाते हैं यदि शुद्ध आहार अन्तराय रहित योग्य-कालमें, योग्य क्षेत्रमें, न मिले तो भिक्षाको ग्रहण नहीं करते हैं, चित्तमें कुछ भी विषाद और खेद नहीं लाते हैं, धैर्य्य धारण करते हैं। यद्यपि मुनियोंके भूख तपसे हाड़-चाम-नख कलेवर मात्र देह रह गई हैं, तौ भी आवश्यक क्रियाओंको किंचिन्मात्र भी नहीं घटाते हैं। अत्यन्त क्षुधारूपी अग्निको प्रज्वलित होने पर धैर्य्यरूपी जलसे शांत करदेते हैं ऐसे मुनियोंका क्षुधा परीषहका सहन होता है॥

(२)पिपासापरिषहः परिषोढव्यः=प्यास परिषह, प्यासकी पीड़ा वा कष्ट सहने योग्य है अर्थात् तृषा वेदनीकी उदीरणा (=खिपाने)के कारण होते भी जो तृषाके वश नहीं होना, वरन उसको समभाव और धैर्य्यके साथ सहन करते रहना,

---

छन्दोंका उद्धृत करना इस ग्रंथका उद्देश नहीं है परन्तु कई मित्रोंके अनुरोधसे परीषहजयके निम्न मनोरंजक छन्द दिये जाते हैं॥

(१) सवैयाइकतीसा—(क) "जगतके जीव जिहं जेर जीत राखे अरु जाके बल आगे सब बलवान हारे हैं। मारत मरारे नहीं छोरे राजा रङ्क कहुं आंखन अंधेरो ज्वर सब दे पछारे हैं। दावाको (=वनकी आग) सी ज्वाला सी जराय डारे छाता क्षुधा देवनकों लागै, पशुपक्षी का विचारे हैं। ऐसी क्षुधा बलवान भैया कथित कहां लौं, ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारे हैं॥१॥ भैयाभगवतीदासकी२२ परि०सेउद्धृत॥

(ख)कवित्त छड़ा चाल—"अनशन ऊनोदर तप पोखत हैं पक्ष मास दिन बीत गये हैं। जो नहीं बने योग्य भिक्षा विधि सूखि अंग सब शिथल भये हैं॥ तब तहां दुस्सह भूखकी वेदन सहत साधु नहीं नेक नये हैं। तिनके चरण कमल प्रति प्रति दिन हाथ जोड़ हम शीश नमें हैं॥२॥

(२) सवैया इकतीसा—(क) धूपकी धखनि परै, आगसौ शरीर जरै, उपचार (=उपाय) कौन करै देहै द्वार आनकै॥ पानीकी पियास जेती कहैको बखान तेती, तीनौ जोग थिर सेती सहै कष्ट जान के॥ एक छिन चाहनाहिं पानीकी परीषहै माहिं प्राण किन नाशै जाहिं रहैं सुखमानकै॥ ऐसी प्यास मुनि सहैं तब जाय सुख लहैं भैया इस भांति कहैं बंदिये विज्ञान कै॥ भैया भगवतीदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत॥

(ख) पराधीन मुनिवरकी भिक्षा परघर लेय कहैं कछु नाहिं। प्रकृति (=स्वभाव) विरुद्ध पारणा(=आहार)भुजत(=खाते हुये) बढ़त प्यासको त्रास(=डर)तहांही॥ ग्रीष्म कालपित्त अतिकोपै लोचन(=आंख) दोय फिरै जब जाहीं। नीर न चहै सहै तिस ते मुनि जयवंतो वरतो जगमाहीं॥१॥

अथवा झेलते रहना भावार्थ इस प्रकार है कि वीतराग मुनिके स्नानका, अवगाहनका और शरीर के जलसे सींचनेका तो यावत् जीवन त्याग है और पक्षीके सदृश एक स्थानमें स्थिर वा ध्रुव प्रकारसे नहीं बसते हैं और परके घर अति क्षार, सचिक्कन, रूक्ष, प्रकृति विरुद्ध आहार मिलनेके कारणों से तथा ग्रीष्म ऋतुके आतपसे, पित्त वा ज्वरसे, अनशनादि तपसे महानताको प्राप्त हुई जो शरीर अर इन्द्रियमें मथन करनेवाली तृषा तिसके उपायमें अथवा तिसके बुझानेमें और सन्तुष्ट करनेमें अनादर रूप है मन जिनका और ग्रीष्मके तीक्ष्ण सूर्यकी किरणोंकरि संतपित वन भूमिमें तिष्ठते हैं ॥ निकट तिष्ठता जलका द्रह तिसओर मनको नहीं चलाते हैं, जलकायके जीवोंकी बाधाका परिहारकी इच्छासे जलकी इच्छासे रहित हैं । जैसे जलके संबन्ध रहित बेलि मलीनताको प्राप्त होती है, तैसे मलीनताको प्राप्त जो शरीर लता तिसकी ओर लक्ष्य न देकर तपके परिपालनमें तत्पर हैं और आहारके अवसरमें भी अपनी चेष्टा—आकार—तथा समस्यादिकरि अपने पीवने योग्य जलादिकके लिये प्रेरणा वा याचना नहीं करते हैं ॥ तृषारूपी अग्निकी शिखाको धैर्यरूप कुम्भमें भरा हुआ शीतल सुगन्ध, ध्यानरूप वा समाधिरूप जल डारि बुझाते हैं ॥ ऐसे साधुओंकी तृषापरीषहका सहन सराहने योग्य है ॥

(३) शीतपरीषहःऽ'परिषोढव्यःऽ'=शीतके कष्टको सह लेना (सो शीतपरीषह जय है) अर्थात् शीतके कारण निकट होते तिसके प्रतिकार वा उपचारकी वांछा रहित संयम पालना सो शीत परीषह है । भावार्थ—वस्त्रोंके पहिरनेका है परित्याग जिनके, और पक्षियोंके सदृश रहनेका स्थान नहीं है निश्चय जिनके, और शरीर मात्र ही है आधार जिनके और समस्त ही ऋतुमें वृक्षनिके नीचे तथा चौहटे तथा गुफादिक वा नदी जलाशय वा तडागके तटपर रात्रिको ध्यानादि सहित व्यतीत करनेकी है प्रतिज्ञा जिनके और शिशिर ऋतुमें पड़ते ओस,पालाके दूर करनेको अग्नि इत्यादिका चिन्तवन नहीं करते हैं ॥ शीतके भिन्न अथवा दूर करनेमें समर्थ विद्या

(३)सवैया इकतीसा—(क) "शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय हरे वृक्ष झाड़े हैं ॥ महा कारी निशा मांहि घोर घन गरजहि, चपलाहू चमकाहि तहां दृग गाढ़े हैं ॥ पौनकी झकोर चले पाथर हैं तेहू हिले ओरिनके ढेर लगे तामें ध्यान बाढ़े हैं ॥ कहालों बखान कहूं हेमाचल की समान तहां मुनिराय पांय जोर दृढ़ ठाढ़े हैं" ॥ १ ॥ (भैया भगवानदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत)

कवित्त खड़ीघाल—(ख) शीतकाल सब ही जनकंपै खड़े जहां बन वृक्ष रहे हैं । झंझा वायु चहे वर्षा ऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं ॥ तहां धीर तटनी तट चौपट ताल पाल पर कर्म दहे हैं ॥ सहैं सम्हाल शीतकी बाधा ते मुनि तारणतरण कहे हैं (भूधरदासकी२२परीषहपाठसे उद्धृत)

मन्त्र, औषध, पत्र, वल्कल, त्वचा, तृण, घामादिकनिके संबंधमें कदाचित् मनको नहीं चलाते हैं॥

(४) उष्णपरिषहःसहेत परिषोढव्यःसहेत — =ऊष्माका कष्ट वा पीड़ा सहन अर्थात् ग्रीष्मादि जनित दाहके प्रतिकारकी वांछाकी अभावसे चारित्रकी रक्षा करना सो उष्ण परिषह का सहन है।

(५) दंशमशकपरिषहःसहेत परिषोढव्यःसहेत — =डांस (=दंश) मच्छर (=मशक) इत्यादिक (के काटने) की पीड़ाका सहन करना योग्य है॥

(६) नाग्न्यपरिषहःसहेत परिषोढव्यःसहेत — =नंगे रहनेका कष्ट सहना चाहिये अर्थात् नग्न होते सबको लज्जा आती है सो नग्न होकर भी अपने अँगोंको विकाररूप न होनेदेना लज्जादिकको जीतलेना सो नाग्न्य परिषह सहना है।

(७) अरतिपरिषहःसहेत परिषोढव्यःसहेत — =संयममेंप्रीतिरूप कष्टको सहना चाहिये अर्थात् क्षुधा तृषाकी बाधासे संयममें अरति होने लगै तो उसको न होने देना, संयममें निरन्तर रति रखना, सो अरति परिषहका जीतना है॥

(४)सवैया इकतीसा—(क) 'ग्रीषमको ऋतु माँहि जल थल सूख जाहिं परत परचंड धूप आगिसी बलत है॥ दावा(=बनकी आग)कीसी ज्वाल माल बहत बयार अति लागत लपट कोऊ धीर न धरत है॥ धरती तपत मानोतवासी तपाय राखी बड़वा अनल(=बड़वा अनल=समुद्रकी आग) सम, शैल जो जरत हैं॥ ताके शृंग शिलापर जोर युग पांव धर, करत तपस्या मुनि कर्म हरत हैं॥

कवित्तखड़ीचाल—(ख)मुख प्यास पीड़े उर(=छाती)अन्तर प्रजवले(=बले)अंत देही सब दाझै॥ अग्नि स्वरूप धूप ग्रीषमकी तातो बाल झाल सी (=अग्निकी सीझौ) लागै॥ तपै पहाड़ तापतन उपजे कोपै पित्त दाह ज्वर जागे॥ इत्यादिक गर्मीकी बाधा सहैं साधु धैर्य्य नहीं त्यागैं॥

(५) (क)सवैया इकतीसा—सिंह, सांप, ससा, स्याल, सूअर ओ, स्वान, भालू, बाघ, बीछी, बानर सु बाजने सताये हैं। चीता चील चरख चिरैया चेंटी चैंटा; सूहा गज गोह गाह जो गिलहरी बताये हैं॥ मृग मोर मांकरी सु मच्छर जो मांखी मिल भौंरा भौंरी देखकैं खजूरा खरेधाये हैं॥ ऐसे डंस मसकादि जीव हैं अनेक दुष्ट तिनकी परिषह जीतें साधु जन कहाये हैं॥

(ख) दंशमशक माखी तनु काटे पीड़ैं बन पक्षी बहुतेरे। डसै व्याल विषहारे बिरछू लगे खजूरे आन घनेरे। सिंह स्याल सुण्डाल (=हाथी) सतावें रोक रोक दुख देय घनेरे॥ ऐसे कष्ट सहैं समभावन तेमुनि राज हरो अघ मेरे॥ (खजूरे=कानखजूरे)(स्याल=गीदड़)यहां दंशमशक (वाक्य)का ग्रहण उपलक्षण स्वरूपमें है जैसे कोई पुरुष कहै कि कागसे घृतको रक्षा करो इससे जानना चाहियेकि घृतकी रक्षा काग और सब पशुसे जो घी का नाश करने वाले हैं करना चाहिये तैसे यहां इस सूत्रमें दंशमशकसे"सिंह-सांप-ससा-स्याल-इत्यादिक सर्व ही जीवोंसे कृत परीषह मुनि महाराज सहते हैं। यह नहीं कि दंशमशक जनित परीषहोंको सहन करैं और अन्य दूसरे जीवों कृत परीषहोंसे अपनेको बचावैं॥

(६) अन्तर विषय वासनावर्त्तें बाहिर लोक लाज भय भारी। (विषय=कामादिक वासना)तातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नहीं सकें दीन संसारी।(मुद्रा=भेष)। ऐसी दुर्द्धर नग्न परीषह जीतें साधु शीलव्रत धारी॥ निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके पायन धोक हमारी॥

(७)(क)प्रकृति विरुद्ध अहार मिले मुनि जो दुःख पावै। सोहि अरति परिणाम तहां समता रस भावै॥ और हु परसंयोग होत दुःख उपजे तनमें। तहां अरतिपरिणाम त्याग थिरता धरै मनमें॥ इम सहत साधु दुखपुंज बहु, तबहु क्षमा नहीं उर टरत॥ भैया त्रिकालमुनिराजसो अरति जीतशिवपदधरत॥

(ख)आंखनकी रतिमान दीपक पतंग परै, नासिकाकी रति मान भ्रमर भुलाने हैं॥ कानकी रति मृग खोवतहैं प्राण निज, फरसकी रति गज

(८)स्त्री–परिषहः[1]परिषोढव्यः[2] =स्त्री (के अवलोकन–स्पर्शन) की पीड़ा सहने अर्थात् सुन्दर स्त्रियोंके हाव भावादिकसे विकृति (=चलायमान) न होना सो स्त्री परीषहका जीतना है ॥

(९) चर्या–परिषहः[1]परिषोढव्यः[2] =(साधुको) गमनके कष्टको सहना चाहिये अर्थात् मार्ग गमनके दोषोंका निग्रह वा परिहार करना जैसे मार्गमें चलते हुये कंकड़ चुभनेसे और सिंह इत्यादिके भयसे खेद खिन्न न होना। लगभग चार हाथ प्रमाण मार्गको देखकर इत उत दृष्टि न करते हुये गमन करना।

(१०) निषद्या–परिषहः[1]परिषोढव्यः[2] =(मुनि)को आसनकी पीड़ा सहना योग्य है अर्थात् ध्यानके लिये संकल्प किये हुये आसनसे कितने ही उपसर्ग–रोग–विकार–दोष–उसके आनेपर भी साधुका नियमित कालतक चलायमान न होना सो निषद्यापरिषहजय है ॥

भये जो दिवाने हैं ॥ रसनाकी रति सब जगत सहत दुख, जानत हैं वे (संसारी जीव) सुख वेसे भरमाने हैं। इन्द्रियनिको रति मान गति सब खोटी करैं ताहि मुनिराज जीतें आप सुख माने हैं ॥

(८)(क)"नारीके निहारत विसार सब भूलि जात नारीके निहारे परिणाम फिर जात हैं ॥ नारीके निहारत अज्ञान भाव आय भुके ,नारीके निहारत हरै शीलगुण घात है। नारीके निहारत न शूर वीर धीर धार लोहनके मार जे अडिग ठहरात हैं। ऐसी नारी नागिनके नैनन को निमेष (=कटाक्ष) जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत विख्यात हैं" ॥

(ख) "जे प्रधान केहरिकों पकड़ै पन्नग (=सांप) पकड़ पान (=हाथ)से चंपत (=उठाय लेना)। जिनकी तनक देख भौं (=भृकुटी) वांकी (=टेढ़ी) कोटिनसूर दीनता जंपत (=ग्रहण करते हैं) ॥ ऐसे पुरुष पहाड़ उठावन प्रलय पवन त्रिय [=स्त्री] वेद(=जानते ही) पर्यंत (=आधीन हो जाते हैं) धन्य धन्य ते साधु साहसी मन सुमेरु जिनको नहीं कम्पत" ॥

९-(क) [छप्पय] "जब मुनि करहिं विहार, पंथ पग धरहिं परक्खत। ऊंट हाथ ,(=साढ़े तीन हाथ)परवान, दृष्टि युग भूमि परक्खत ॥ चलत ईर्या समिति, पंचइन्द्रिय वश कीने। दशदु दिशा मन रोक, एक करुणारस भीने, इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद संकट विकट, तिहं सहहिं भाव थिर राखके, तब धावे भव उदधितट" ॥

(ख) "चार हाथ परिमाण निरख पथ चलत दृष्टि इतउत नहीं ताने। कोमल पाय कठिन धरती पर धरत धीर बाधा नहिं माने ॥ नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते तै स्वाद उर यादग आवें। यो मुनिराज सहे चर्य्या दुःख तब दृढ़ कर्म कुलाचल भानें ॥"

१०(क)"जब थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ़ धरई। जब थिर होहिं मुनिंद अङ्ग एको नहिं टरई ॥ जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहि केते। जब थिर होहिं मुनिंद,भावसों लहै जुतेते॥ इम सहत कष्ट मुनिराज अति,राग द्वेष नहिं धरत मन। उत्कृष्ट होहिं एक वेर जो सब उनईस परीसहन॥" गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसें जहां शुद्ध भू हेरैं। परमित काल रहें निश्चल तन बारबार आसन नहिं फेरैं ॥ मानुष देव अचेतन पशु कृत बैठे विपति आन जब घेरैं। ठौर न तजै भजै थिरतापद ते गुरु सदा बसो उर मेरे ॥"

(११)शय्या-परिषहःजयःपरिषोढव्यःजयः =(मुनिको) शयन–नींद वा सोनेका कष्ट सहना चाहिये, अर्थात् शास्त्रकी आज्ञानुसार शयनसेन चिगना, जिस करवटसे सोये उसीसे सोते रहना भूमि चाहे ऊंची नीची कठोर सकड़ी कंकड़याई इत्यादि हो।

(१२)आक्रोश-परिषहःजयःपरिषोढव्यःजयः=अनिष्ट वचन वा दुर्वचनकी पीड़ा (मुनिको) सहना चाहिये अर्थात् समपरिणामसे दुर्वचन सहना।

(१३) वध–परिषहःजयःपरिषोढव्यःजयः =मारनेकी पीड़ा (मुनिको) सहना योग्य है अर्थात् मुनिको अपने मारने वालेमें रोष नहीं करना, मारनेकी पीड़ाको समभावसे सहलेना सो वध परिषहका जीतना है।इसको वधबंधन परीषह भी कहतेहैं।

(१४) याचना–परिषहःजयःपरिषोढव्यःजयः=मांगनेके कष्टको [मुनिको] सहना चाहिये अर्थात् प्राण जाते भी आहारादिकके लिये दीनतारूप प्रवृत्तिको नहीं करना सो याचना परीषहका जीतना है।

(१५) अलाभ–परिषहःजयःपरिषोढव्यःजयः=(मुनिको आहारादिककी) प्राप्तिके अभावकी पीड़ा सहना चाहिये अर्थात् आहारादिके न मिलने पर

---

(११)—शय्या शब्दके दो अर्थ हैं (अ) खाट वा खटूवा (आ) नींद-निद्रा-सोना–शयन पिछला अर्थ यहां पर लिया गया है॥

कवित्त चालखड़ी—जेमहान सोनेके महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवें। ते अब अचल अंग एकासन कोमल कठिन भूमिपर सोवें पाहन (=पत्थर) खंड कठोर कांकरी गड़त कोर कायर नहीं होवें। ऐसी शयन(सोनेकी–नींदकी)परिषह जीतत ते मुनि कर्म कालिमा धोवें।

(१२)कवित्त चाल खड़ी—जगत जीव यावन्ता (=जितने)चराचर सबके हित सबकों सुखदानी। तिन्हें देख दुर्वचन कहें शठ पाखंडी ठग यह अभिमानी॥ मारो याहि पकड़ पापीको, तपसो भेष चोर है छानो। ऐसे वचन बाणकी बरियां क्षमा ढाल ओढ़ें मुनि ज्ञानी॥२॥

(१३)सवैया इकतीसा—(क)कोऊ बांधो कोऊमारो कोऊ किन गह,डारो,सबनके संकट सुबोधतैं सहतु है,(गह=हथकड़ी)।कोऊ शिर आगधरो कोऊ पील प्राणहरो,कोऊकाट डूंक करो देव न गहतु है(पील=पीड़ा)। कोऊ जल मांहि बोरो कोऊ लेके अंग तोरो,कोऊ कह चोर मारो दुःखदे दहतु है। ऐसे वध बंधन परीषहको जीते साधु भैया ताहि बारबार वंदन करतु हैं॥ (भैयाभगवतीदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत)

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारें।कोई खैंच खम्भसे बांधे कोई पावकमें परिजारें। तहां कोप नहीं करें कदाचित् पूरव कर्मोदिपाक विचारें। समरथ होय सहे वध बन्धन ते गुरु सदा सहाय हमारे॥ (भैया भगवतीदासकी २२ परीषह पाठसे उद्धृत)॥

१४—घोर घोर तप करत तपोधन भये छीण सूखो गल बाही,(तपोधन=जिनका तप ही धन है)।अस्थि (=हड्डी) चाम अवशेष[=बचेहुये] रहे तनु नसा जाल झलके जिस मांही॥ (नसा नाड़ियां)॥ औषधि अशन [=भोजन] पान [=जल] इत्यादिक प्राप्त जाय पर याचित नाहीं। दुर्द्धर अयाचिक व्रतको धारै करहिं न मलिन धर्म्म परछाहीं॥

(१५)(क)अन्तराय [=विघ्न] कर्मके उदयतैं जो अलाभ होय, ताके भेद होय कहै निश्चय व्यवहार है। निश्चय तो स्वरूपमें न थिरता विशेष रहै, वह अन्तराय जो रहै, न एकसार [=एक जैसा] है॥ व्यवहार अन्तराय मिले न अहार योग औरहु अनेक भेद अकथ अपार हैं ऐसे तो अलाभकी परीषह को जीत साधु भये हैं अतीत भैया वंद निर्धार हैं॥ (भैयाभगवतीदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत)

(ख)एकबार भोजनकी बरियां मौनसाध वस्ती में आवें। जो नहीं बने योग भिक्षा विधि तो महन्त मन खेद न लावें॥ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतें तब तप वृद्ध भावना भावै। यों अलाभको परम परीषह सहें साधु सो ही शिव पावै॥ (भैया भगवतीदासकी बाईस परीषहपाठसे उद्धृत)

भी लाभके समान संतुष्ट रहना, एक दिनमें एककाल भोजनके लिये एक ही नगर वा ग्राममें जाना-याचना नहीं करना-अयोग्य वचन नहीं कहना-अलाभ परिषहजय है ॥

(१६)रोग-परिषहः सहः परिषोढव्यः सहः=रोग जनित पीड़ा (मुनिको) सहना योग्य है अर्थात् नाना प्रकारके रोग अथवा व्याधि होनेपर भी उपाय वा उपचार वा प्रतीकार की इच्छा नहीं करना-रोगको पूर्वकृत फल जानि समभावसे सहना

(१७)तृणस्पर्श-परिषहः सहः परिषोढव्यः सहः=तिनका आदि लगने वा छूनेके कष्ट(मुनिको) सहना चाहिये अर्थात् मार्ग चलते तृण कंटक कंकरी आदि पांवोंमें चुभनेसे उत्पन्न हुई पीड़ाको सहलेना सो तृणस्पर्श वा तृणफासस्पर्श परिषहकाजय है,

(१८)मल-परिषहः सहः परिषोढव्यः सहः =(साधुको)मैल जनित कष्ट सहना योग्य है,अर्थात् अपने शरीरके मल(जैसे विष्टा-पसीना-श्लेष्मादि) के पृथक् करनेमें और परके मल देखि अपना मन मैला करने विषैं चित्त न लगाना ॥

(१६)छप्पय-(क)वात पित्त कफ कुष्ठ स्पर्श अरु आस लेख गनि, शीत ताप शिरवाय, पेट पीड़ा जु शूल भनि। अतीसार (=संग्रहणी आंवका रोग) अथसीस, अरश (=बवासीर) जो होय जलन्धर ॥ एकांतर अरु रुधिर बहुत फोड़ा जु भगंदर (=फोड़ेकी प्रकार)। इम रोग अनेक शरीर महिं कहत पार नहीं पाइये,मुनिराज सबन जीतत रहैं औषधभाव न भाईये ॥ १ ॥

कवित्त खड़ीचाल—(ख)वात (=वायु) पित्त कफ शोणित(=लोहू)चारों ये जब घटे बढ़ें तनुमायीं। रोग संयोग शोक तब उपजत जगत जीव कायर ह्वा जायीं। ऐसी व्याधि (=रोग) वेदना दारुण सहैं सूर उपचार (=उपाय, प्रतीकार) नचाहीं । आत्मलीन विरक्त देहसे जैनयती निजनेम निबाहीं ॥ २ ॥

(१७)यहां तृण शब्दका ग्रहण उपलक्षण रूप है कोई वस्तु जो शरीरमें चुभे और वेदना उपजावे सो लेना अतः 'तिनकाआदि'शब्द अनुवादमें लायेहैं

छप्पय(क)परत आंखि यह कछुक काढ़ि नहिं डारत तिनको, चुभत फांस तनमाहिं सार नहीं करते जिनको। लागत चोट प्रचण्ड खेद नहीं कहूं जनावत। बाणादिक बहु शस्त्र कहत कहुं पार न पावत। इम सहत सकल दुःख देहदमि, रागादिक नहीं धरत मन। मैया त्रिकाल वंदत चरण। धन्य धन्य जग साधु धन (=धन्य=उत्तम) ॥ १ ॥

कवित्तखड़ाचाल—सूखे तृण और तीक्ष्ण कांटे कठिन कांकरी पाव विदारैं। रज उड़ आन बड़े लोचनमें तीर फांस तनु (=तन) पीर विथारैं॥ तापर परसहाय नहीं वांछत अपने करसों काढि न डारैं। यों तृणफास परीषह विजयी ते गुरुभवभव शरण हमारे ॥

(१८)छप्पय लगत देहमें मैल, धोय नहीं तिनको झारत। देहादिकसे भिन्न शुद्ध निज रूप विचारत ॥ जल थल सब जिय जंत, संतहै काहि सताऊं। सबही मोहि समान, देत दुख में दुख पाऊं। इम जान सहत दुर्गंध दुख, तब गिलान विजयी भवत। मैया त्रिकाल तिहिं, साधु के, इन्द्रादिक चरणन नमत ॥

कवित्तखड़ीचाल—(ख)यावज्जीव जल न्हौन तजो, जिन नगनरूप बन थान खड़े हैं। चले पसेव धूपको बरियां उड़त धूल सब अंग भरे हैं ॥ मलिन देहको देख महामुनि मलिन भाव उरमाहिं करैं हैं। यों मलजनित परीषह जीतें तिन्हें पाद हम शीश धरे हैं ॥

(१९) सत्कारपुरस्कार—परिषहः[१९]'परिषोढव्यः[१९]' =प्रशंसा (=सत्कार) तथा अग्रेसर करण (=पुरस्कार) वा निमन्त्रण(=पुरस्कार)की पीड़ा-वेदना (मुनिको) सहना योग्य है अर्थात् मुनि सन्मान, अपमान विषैं समबुद्धि सम-रूप वा समभाव होकर सत्कार पुरस्कारकी अभिलाषा नहीं करे सो सत्कार पुरस्कार विजय है भावार्थ ऐसा है कि साधु ऐसे परिणाम कदाचित् नहीं करते हैंकि मैंने चिरकाल से ब्रह्मचर्यका सेवन किया है, महा तपस्वी हूं, स्वमत परमतके निश्चयका ज्ञाता हूं, हितकारी उपदेशके देनेमें तत्पर हूं, रत्नत्रय मार्गमें प्रवीण हूं, और बहुत बार वादि-यों पर विजय प्राप्त चुका हूं, तो भी लोग मेरी भक्ति नहीं करते हैं, हर्षसे खड़े होकर उच्च आसनादि मुझे नहीं देते हैं मेरा आदर और वन्दना नहीं करते हैं।

(२०) प्रज्ञा—परिषहः[२०]'परिषोढव्यः[२०]' =(मुनिको) विद्वता वा विज्ञान (के मद) की पीड़ा सहना चाहिये अर्थात् बुद्धि अथवा विज्ञानका मद न करना सो प्रज्ञा परिषहका विजय है॥

(२१) अज्ञान—परिषहः[२१]'परिषोढव्यः[२१]' =(मुनिको) ज्ञानके अभाव (=अज्ञान) जनित कष्ट अथवा पीड़ा सहना योग्य है अर्थात्

(१९)कवित्त इकतीसासवैया(क)"जहां हाथ मान तहां मानत महान सुख अपमान होय तहां मृत्युके समान है। मानके गुमान आप महाराज मान रहे होत अपमान मान हरे दशो प्राण हैं॥ मान ही की लाज जग सहत अनेक दुःख, अपमान होत धरै नरक निदान हैं। ऐसे मान अपमान दोऊ दुष्ट भाव तजि, गनत समान मुनि रहै सावधान हैं"॥

कवित्तखड़ीचाल—(ख)" जे महान विद्या निधि विजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं। तिनको विनय वचनसौं अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करे हैं॥ तौ मुनि तहां खेद नहीं माने उर मलीनता भाव हरे हैं। ऐसे परम साधुके अहो निशि हाथ जोड़ हम पाय परे हैं"॥

(२०)छप्पय(क)"प्रज्ञाबल(=वृद्धि)नहीं होय, तहां विद्या नहीं आवै। प्रज्ञाबल नहीं होय तहां नहीं पढ़े पढ़ावै। प्रज्ञाबल नहींहोय तहां चर्चा नहींसूझै प्रज्ञाबल नहीं होय, तहांकछु अर्थ न बूझै॥इमबुद्धिविशेष न होय जित,तित अनेक परीषह सहता"भैया"त्रिकाल मुनिराज तिहं जीत शुद्धअनुभवलहत"

कवित्त खड़ीचाल—"तर्क छन्द व्याकरण कलानिधि आगम अलङ्कार पढ़े जानैं। जाकी सुमति देख परवादी बिलखैं होय लाज उर आनै। जैसे सुनत नादकेहरिको बनगय द मानत भय मानैं ऐसी महा बुद्धिके भाजन ये मुनीश, मद रंचत ठानैं"॥

(२१)छप्पय (क) "सम्यक् ज्ञान प्रमाण होहिं मुनिकोय तुच्छ मति। सुनहिं जिनेश्वर बैन याद नहिं रहे हृदय प्रति॥ ज्ञानावरण प्रसाद बुद्धिनहीं प्रगटे जाकी। पूरब भवथिति बन्ध यहां कछु चलत न ताकी। इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानका, होहिं परीषह प्रबल जिय। तिहँ जीत प्रीति निज रूप सो लहत शुद्ध अनुभव हिय"॥

कवित्तखड़ीचाल—(ख)"सावधान वर्ते निशिवासर संयम सूर परम वैरागी। पालत गुप्ति गये दोरघ दिन सकल संग ममतापर त्यागी॥अवधि ज्ञान अथवा मनःपर्यय्य केवल ऋद्धि अजहुं नहीं जागी। यों विकल्प नहीं करैं तपोधन सो अज्ञान विजयी बड़भागी"॥

क्षुदादयो वेदनाविशेषा द्वाविंशतिः। एतेषां सहनं मोक्षार्थिना कर्तव्यम्॥ तद्यथा–भिक्षोर्नि-रवद्याहारगवेषणस्तदलाभे ईषल्लाभे च अनिवृत्तवेदनस्याकाले

(क)अपनी अज्ञानतासे अपना तिरस्कार अन्य द्वारा कियेहुयेको सहना जैसे यह मुनि-वा साधु अज्ञानी है कुछ नहीं जानता है,पशुसमान है,
(ख) ज्ञानकी अभिलाषा, अध्ययनका प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो इन दुःखोंको सहना सो अज्ञान परीषहका जीतना है॥

[२२] अदर्शन-परिषहः ९/९ परिषोढव्यः ९/९ =श्रद्धानके अभावकी (=अदर्शन) पीड़ा(मुनिको)सहना योग्य है अर्थात् दीक्षा लियेहुये बहुत दिन होगये तप करनेवालोंमें मुख्य हूं तथापि मेरे ऋद्धि वा अवधिज्ञान आदिककी प्राप्ति नहीं हुई-ऐसी इच्छाको नहीं करना सो अदर्शन परीषहका जीतना है।

ते ९/९ एते ९/९ द्वाविंशति ९/९ परिषहाः ९/९ भवन्ति॥ =ते इतनी बाईस परीषह हैं॥

वृत्त्यनुवादः—क्षुधा-आदयः ९/९ वेदना-विशेषाः ९/९ =भूख आदिक पीड़ाके भेद

द्वा-विंशतिः ९/९, एतेषाम् ६/३ सहनम् १/१ मोक्ष-अर्थिना ३/१ =बाईस हैं। इन[बाईस परीषहों]का सहन मोक्षके इच्छुक द्वारा
कर्तव्यम् १/१; तद्यथा*–भिक्षोः ६/१ निरवद्य–आहार- =अवश्य कियाजाता है। जैसे मुनि निर्दोष आहार
गवेषणः ६/१ तद्–अलाभे ७/१ च* =अन्वेषण करनेवालेके उस[आहार]की प्राप्ति न होनेपर,और [अन्तराय आदिकारणोंसे]
ईषत्* लाभे ७/१ अनिवृत्त–वेदनस्य ६/१ अकाले ७/१ =किंचित् मिलने पर नहीं मिटी है[=अनिवृत्त]भूखकी वेदना जिसकी तो असमयमें

२२-(छप्पय) (क)समयप्रकृति मिथ्यातजासु डरतैं नहिं टरई। सो जियहै गुनवंत तथा वेदक पद धरई। दर्शन निर्मल नाहिं, मोहकी प्रकृति लखावै।सहै अदर्शन कष्ट कहत कैसे बन आवै। परिणाम खेद बहु विधि करत तोहू निर्मल होयनहीं। भैया त्रिकाल मुनिराज तिह जीतरहे निज आपमहिं॥१॥ (कवित्तखड़ीचाल)(ख)-मैं चिरकालघोर तप कीना। अजहूं ऋद्धि अतिशय नहीं जागी। तपबल सिद्धि होय सब सुनिये सो कुछबात झूठसी लागै। यों कदापि चितमें नाहिं चिन्तत समकित शुद्ध शान्ति रस पागे। सोई साधु अदर्शन विजयी, ताके दर्शनसे अघ भागे॥

२- भिक्षु शब्दका भिक्षोः, षष्ठी एक वचन पुल्लिंग है। भिक्षा वृत्तिकरि परके घर आहार लेते हैं इसलिये मुनिको साधुका नाम भिक्षु है। ३-गवेषणः-वेदनस्य-निवृत्तोच्चैस्तु-असहमानस्य परस्य-अवमोदर्यस्य-नीरसआहारस्य-पानस्य-वेदनस्य-मन्यमान्यस्य-भिक्षु शब्दके विशेषण सगुणवाचकशब्द हैं॥

अदेशे च भिक्षां प्रति निवृत्तेच्छस्यावश्यकपरिहाणिं मनागप्यसहमानस्य स्वाध्यायध्यानभावनापरस्य बहुकृत्वः स्वकृतपरकृतानशनावमोदर्यस्य नीरसाहारस्य तप्तभ्राष्ट्रपतितजलबिन्दुकतिपयवत्सहसा परिशुष्कपानस्य दीर्णक्षुद्वेदनस्यापि सतो भिक्षालाभादलाभमधिकगुणं

अदेशे[7]-च-भिक्षाम्[2]-प्रति-निवृत्त-इच्छस्य[6] =तथा(=च) अयोग्य क्षेत्रविषैं आहार लेनेकी (=भिक्षां प्रति) नहीं है(=निवृत्त)वांछा जिनकी अर्थात् मुनि ऐसा नहीं करते हैं कि जिस समय भूख लगे उसीकाल आहार को दौड़े जावैं और अयोग्यकालमें और अयोग्य क्षेत्रमें आहार ग्रहण करलें ॥

आवश्यक-परिहाणिम्[2]-मनाक्-अपि-असहमानस्य[6] =आवश्यक क्रियाओंका घटाउ वा न्यूनता किंचित् भी
=सहन न करनेवाले अर्थात् क्षुधाके कारण चित्त न लगनेसे मुनि सामायिक आदि क्रियाओं को जैसे तैसे नहीं कर डालते और न वे ऐसा करते हैं कि क्रियायें जो दो वार तीनवार करना योग्य है उनको एकही वार भूखकी वेदनासे करे वा छोटीसी सामायिक करे अथवा और किसी प्रकारकी न्यूनता आवश्यक क्रियाओंमें करे।

स्वाध्याय-ध्यान-भावना-परस्य[6] =स्वाध्याय और ध्यानकी भावनामें तत्पर रहनेवाले

बहुकृत्वः-स्वकृत-परकृत-अनशन-अवमोदर्यस्य[6]-नीरस-आहारस्य[6] =बहुतवार अपने थापेहुये तथा दूसरे(जे आचार्य तथा गुरु आदिक)निके कियेहुये नियत उपवास, अवमोदर्य (तथा) नीरस आहारकरि युक्त है

तप्त-भ्राष्ट्रपतितजल-बिन्दु-कतिपय-वत्-सहसा-परिशुष्क-पानस्य[6] =तपाये हुये भूननेके पात्र(जैसे तवा-कड़ाहो)में कितनी पानीकी बूंदोंके गिरनेके समान तत्काल =सूखगया है (ग्रहण किया हुआ)अन्नपान जिसका अर्थात् अनशन अवमोदर्य,नीरस आहार इन तपोंके निमित्तसे भूख प्यासकी ऐसी दाह उत्पन्न होती है कि जैसे तपाये हुयेपात्रमें पानी की बूंद तत्काल ही सूख जाती है तैसे आहार पानी मुनि ले तो तत्काल सूख जाता है।

दीर्ण-क्षुद्-वेदनस्य[6]-अपि-सतः[6] =बढ़ी हुई क्षुधाकी पीड़ा होनेपर भी

भिक्षा-लाभात्[5]-अलाभम्[2]-अधिक-गुणम्[2] =भिक्षाके लाभसे अलाभको अधिक गुणा

मन्यमानस्य क्षुद्बाधां प्रत्यचिन्तनं क्षुद्विजयः ॥ १ ॥ जलस्नानावगाहनपरिषेकपरित्यागिनः पतत्रिवदनियतासनावसथस्यातिलवणस्निग्धरूक्षविरुद्धाहारग्रीष्मातपपित्तज्वरानशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रियोन्माथिनीं पिपासां प्रत्यनादृियमाणप्रतिकारस्य पिपासानलशिखां धृतिनवमृद्घटपूरितशीतलसुगन्धिसमाधिवारिणा प्रशमयतः पिपासासहनं प्रशस्यते ॥२॥ परित्यक्तप्रच्छादनस्य पक्षिवदनवधारितालयस्य वृक्षमूलपथिशिलातलादिषु हिमानीपतनशीतलानिल-

मन्य–मानस्य[1] क्षुद्–बाधाम्[2] प्रति*	=पूज्य (=मन्य) अर्थात् आनंद माननेवाले (=मानस्य) (मुनि)के भूखकी बाधाके लिये
अचिन्तनम्[1] क्षुत्–विजयः[1] ॥ १ ॥	=चिन्तवन नहीं है सो क्षुधापर विजय है वा भूखका जीतना है ॥ १ ॥
जलस्नान–अवगाहन–	=पानीमें न्हान, (पानी में) प्रवेशन (=जल–अवगाहन), वा (पानीमें) पैठन (=जल–अवगाहन)
परिषेक–परित्यागिनः[1] पतत्रि–वत्*	=(और पानीके) छिड़कनेका (जल–परिषेक) है त्याग जिसके, पक्षीके समान (=पतत्रि–वत्)
अनियत–आसन–आवसथस्य[1]	=अनियत है बैठना, वसना जिसका,
अतिलवण–स्निग्ध–रूक्ष–विरुद्ध–	=बहुत नुनखरा, चिकने, रूखे, प्रकृति विरुद्ध
आहार–ग्रैष्म–आतप–पित्त–ज्वर–अनशन–	=आहारकरि, ग्रीष्मके आतापकरि, पित्त, ज्वर, उपवास
आदिभिः[3] उदीर्ण[2]म्[2] शरीर–इन्द्रिय–	=आदिक (तप) करि उपजी [जो] शरीर इन्द्रियोमें महान् (=उदीर्णाम्)
उन्माथिनीम्[2] पिपासाम्[2] प्रति*	=मथन करनेवाली वा घबरा देनेवाली जल पीनेकी इच्छा (=पिपासा)के लिये
अन्–आद्रियमाण–प्रतिकारस्य[1] पिपासा–अनल–	=नहीं आदर कियागया है उपाय जिसके, तृष्णारूपी अग्निको
शिखाम्[2] धृति नव–मृद्–घट–पूरित–शीतल–	=शिखाको धैर्यरूपी नवीन मिट्टीके घटमें भराहुआ [=पूरित] शीतल
सुगन्धि–समाधि–वारिणा[3] प्रशमयतः[5]	=सुरभि समाधिरूपी जलसे शमन करनेवाले [मुनि]का
पिपासा–सहनम्[1] प्रशस्यते T ॥ २ ॥	=तृष्णाका सहना अथवा झेलना सराहा जाता है अर्थात् प्रशंसा की जाती है ।
परित्यक्त–प्रच्छादनस्य[1] पक्षि–वत्*	=वस्त्रोंका है परित्याग (जिसके) पक्षीके समान
अन्–अवधारित–आलयस्य[1] वृक्षमूल–पथि–शिलातल–आदिषु[7] हिमानी–पतन–शीतल–अनिल–	=वसनेके स्थानका निश्चय नहीं है जिसका, पेड़की जड़ घोड़ मार्ग [=पथिन्] शिलातल आदिकोंमें पालेके देर (हिमानी=हिमानी) पड़नेपर शीतल पवनके (=अनिल)

सम्पाते तत्प्रतिकारप्राप्तिं प्रति निवृत्तेच्छस्य पूर्वानुभूतशीतप्रतिकारहेतुवस्तूनामस्मरतो ज्ञान-भावनागर्भागारे वसतः शीतवेदनासहनं परिकीर्त्यते।३।निवाते निर्जले ग्रीष्मरविकिरणपरिशुष्क-पतितपर्णव्यपेतच्छायातरुण्यटव्यन्तरे यदृच्छयोपनिपतितस्यानशनाद्यभ्यन्तरसाधनोत्पादित-दाहस्यदवाग्निदाहपरुषवातातपजनितगलतालुशोषस्यतत्प्रतिकारहेतून् बहूननुभूतानचिन्तयतः प्राणिपीडापरिहारावहितचेतसश्चारित्ररक्षणमुष्णसहनमित्युपवर्ण्यते ॥ ४ ॥ दंशमशकग्रहणम्

सम्पाते[७] तत्-प्रतिकार-प्राप्ति[२]-प्रति[१]
निवृत्त-इच्छस्य[६] पूर्वे-
अनुभूत-शीत-प्रतिकार--हेतु–वस्तूनाम्[६]
अस्मरतः[६]ज्ञान-भावना-गर्भ-आगारे[७]वसतः[६]
शीत-वेदना-सहनम्[१] परिकीर्त्यते ॥ ३ ॥
निपाते[७] निर्जले[७] ग्रीष्मरवि-किरण-परिशुष्क-
पतितपर्ण-व्यपेतच्छाया-तरुणि[७] अटव्यां-[वा अटवि]
अन्तरे[७] यदा-ऋच्छय-उपनिपतितस्य[६]
अनशनादि–अभ्यन्तर-साधन-
उत्पादित-दाहस्य[६] दव-अग्नि-दाह-परुष-
वात-आतप-जनित- गल- तालु-शोषस्य[६]
तत्- प्रतिकार-हेतून्[२] बहून्[२] अनुभूतान्[२]
अचिन्तयतः[६] प्राणिन्–पीडा–परिहार–अवहित-
चेतसः[६] चारित्र–रक्षण[१] उष्ण-सहनम्[१]
इति•उपवर्ण्यते ॥ ४ ॥ दंश-मशक-ग्रहणम्[१]

=चलनेपर उन (पालेके पड़ने और ठंडी वायुके चलने) के उपायकी प्राप्तिके लिये
=जाती रही है इच्छा जिसकी, पूर्वकाल (गृहस्थ अवस्था) में
=शीतके उपचारके (अर्थात् दवानेके) कारण जो पदार्थ भोगे थे तिनकी
=नहीं है सुधि जिसके ज्ञानभावनारूपी गर्भ गृहमें बसने वाले(मुनि)के
=शीत परीषहका सहना वा टण्ड वेदनाकी जय प्रशंसा कीजाती है ॥ ३ ॥
=वायु रहित, (=निपाते) जल रहित (वनीमें), उष्ण सूर्यकी किरणों द्वारा सूखकरि
=गिरगये हैं पत्ते जिनके ऐसे छाया रहित पेड़ों सहित वनीके
=अन्तरमें जहां इच्छा है [=यदा-ऋच्छय] तहां तिष्ठनेवाले मुनिके (तथा)
=अनशन आदि (तप) रूप अन्तरंग कारण [साधन] करि
=उपजा है दाह जिस[मुनि]के,बहुरि जलकी (=दव) अग्निरूप जलती हुई [=दाह]कठोर
=वायुके उष्णता [=आतप]से सूख गये हैं कंठ [=गल] और तालु जिस [मुनि]के
=उस [आतप]के उपचार, वा उपायके कारण (पूर्वमें) बहुत भोगे हुये (भोगों)को
=स्मरण न करनेवाले (मुनि) के, प्राणियोंके कष्टके निवारणमें लगा हुआ है(=अवहित)
=चित्त जिस (मुनि)के, चारित्रकी रक्षाके लिये उष्णका सहना
=इस प्रकार वर्णन किया गया है॥४॥(इस सूत्रमें)दंश (=डांस) मशक(=मच्छर)का लाना

उपलक्षणं। यथा काकेभ्यो रक्ष्यतां सर्पिरिति उपघातोपलक्षणं काकग्रहणं, तेन दंशमशक-मक्षिकापिकशुकपुत्तिकामत्कुणकीटपिपीलिकावृश्चिकादयो गृह्यन्ते ॥ तत्कृतां बाधामप्रतिकारां सहमानस्य तेषां बाधां त्रिधाऽप्यकुर्वाणस्य निर्वाणप्राप्तिमात्रसंकल्पप्रावरणस्य तद्वेदनासहनं दंशमशकपरिषहक्षमेत्युच्यते ॥ ५ ॥ जातरूपवन्निष्कलङ्कजातरूपधारणम्

उपलक्षणम्[1''']
=उदाहरणरूपसे अथवा वानिगीरूपसे अथवा दृष्टान्तरूपसे है ।

यथा*काकेभ्यः[5]रक्ष्यताम् T सर्पिः[1''']
=जैसे काकोंसे घी (=सर्पिस्) रक्षित कियाजाय

इति*काकग्रहणम्[1''] उपघात-उपलक्षणम्[1''']
=इस प्रकार काकका ग्रहण (घीके) नाशमें दृष्टान्तरूप, उदाहरण वा वानगी रूपमें है अर्थात् घीकी नष्टता काक, कुत्ता, बन्दर, बिल्ली, चील, गिद्ध, इत्यादिक सबसे बचाई जाय

तेन[2]दंश-मशक-मक्षिका-पिक-शुक-पुत्तिका-मत्कुण-कीट-पिपीलिका-वृश्चिक-आदयः[3]गृह्यन्ते॥
=तिस (दंश-मशक-ग्रहण) करि डांस (=दंश) मच्छर (=मशक)मकखी (मक्षिका-मक्षीका) कोयल-कोकिल[=पिक]तोता वा सुगा=शुक)छोटी मकखी वा कीड़ा(=पुत्तिका)खटमल(=मत्कुण) कीड़ा (=कीट) चिउंटी(=पिपीलिका)बीछी आदि ग्रहण कियेजाते हैं वा लिये जाते हैं

तत्-कृताम्[2]बाधाम्[2] अप्रतिकाराम्[2]
=तिन (दंश-मशक आदि) की कीहुई बाधाको बिना उपचार वा बिना उपाय किये हुये

सहमानस्य[6]तेषाम्[6]बाधाम्[2]
=सहनेवाले (साधु) के तिन (=दंश-मशक)की पीड़ाको

त्रिधा*अपि* अकुर्वाणस्य[6]
=तीन प्रकार [मन-वचन-काय] के भी नहीं है विकार जिसके [और]

निर्वाण-प्राप्तिमात्र-संकल्प-प्रावरणस्य[6]
=मोक्ष प्राप्ति की जो संकल्प तिस मात्र है [शरीर पर] आवरण जिसके

तद्-वेदना-सहनम्[1''']दंश-मशक-परिषह-क्षमा[1'']इति*उच्यते T ॥ ५ ॥
=उन [पूर्व कथित दंशमशक आदिक] की पीड़ाका सहना दंशमशक
=परिषहका सहना (क्षमा) ऐसा वर्णित है ॥ ५ ॥

जातरूपवत् * निष्कलंक-जात-रूप-धारणम्[1''']
=जन्मित स्वरूपके सदृश अर्थात् जैसे बच्चा नंगाउपजता है वैसो नग्नता कलक रहित वा निर्दोष
=[मुनिका]नग्नपनेका धारण करना है भावार्थ जब बालक उत्पन्न होता है तब वह नग्नहोता है उसको जातरूप जन्मित स्वरूप वा नाग्न्य कहते हैं वह[=नग्नता किसी संसस्कारसे नहीं]स्वतः सिद्धहै, बालककी नग्नता निर्दोष होती है उसको नंगे रहनेमें राग,द्वेष,संकोच और हया नहीं होतीहै ॥

अशक्यप्रार्थनीयं याचनरक्षणाहिंसनादिदोषविनिर्मुक्तं निष्परिग्रहत्वान्निर्वाणप्राप्तिप्रत्येकंसाधनमन्यबाधनं नाग्न्यं बिभ्रतोमनोविक्रियाविप्लुतिविरहान् स्त्रीरूपाण्यत्यन्ताशुचिकुणपरूपेणभावयतो

और न वह (बालक) स्त्री भोग इत्यादि जानता है, उसी बालकके समान दोष, कलंक, संकोच, विषय वासना इत्यादिक रहित मुनि अवस्थामें (की) धारण की हुई नग्नता होती है,

अशक्य-प्रार्थनीयम्[१][१] =(नग्नता) इच्छाकियेजानेयोग्य (=प्रार्थनीय वैद्यकोश पृष्ठ ४९१) नहीं हो सक्ती है (=अशक्यम्) अर्थात् नग्न होनेका कोई इच्छुक नहीं होता अथवा नग्नपना प्रार्थना किये जाने योग्य(=प्रार्थनीय) नहीं हो सक्ता है (=अशक्यम्) अर्थात् नंगा होनेके लिये कोई प्रार्थना नहीं करता। यदि 'अ' को शक्य और प्रार्थनीय दोनों पर लगावें तो निम्न अनुवाद भी हो सक्ता है।

अशक्यम्[१][१] =(नग्नता वा जातिरूप अन्यकरि)नहीं धारणकी जासक्ती है भावार्थ ऐसे जान पड़ता हैकि नग्नताको धारण वही मनुष्य कर सक्ता है जिसके विचार शुद्ध पवित्र निर्दोष और निष्कलंक होवें और बालकके सदृश संकोच और विकार रहित होवें और स्त्रीके रूपको महाअशुचि और दुर्गन्ध देखै, ऊपरके कहे हुये पुरुषके अतिरिक्त दूसरे ऐसीनग्नताके रखनेमें असमर्थ हैं अशक्य हैं॥

अप्रार्थनीयम्[१][१] =(नग्नता) प्रार्थना किये जाने योग्य नहीं है, अथवा वांछा किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् नग्न होनेकी कोई भी प्रार्थना नहीं करता है और कोई भी नग्न रहना नहीं चाहता है

यावन-रक्षण-हिंसन-आदि-दोष-विनिर्मुक्तम्[१][१] =पालन, पोषण (जीवकी) हिंसा आदिक दोषोंसे (नग्नपना)

निष्परिग्रहत्वात्[१][१] =वर्जित है, निर्ग्रन्थपनासे अर्थात् बाह्य अभ्यन्तरको परिग्रहके त्यागपनासे

निर्वाण-प्राप्तिम्[१][१] प्रति*एकम्[१][१] =मोक्षके प्राप्तिके लिये (=प्राप्तिम्-प्रति) एक अथवा अद्वैत (नग्नपना)

साधनम्[१][१] अन्-अन्य-बाधनम्[१][१] =कारण,उपाय वा साधन है,अन्यकी बाधासे रहित है अर्थात् "यामें किछु बाधा नाहीं है" वचनिका०

नाग्न्यम्[१][१] बिभ्रतः[६] मनो-विक्रिया-विप्लुति-विरहात्[५] स्त्री-रूपाणि[१][१] अत्यन्त-अशुचि-कुणप-रूपेण[३][१] भावयतः[६] =नग्नपनाको प्राप्त होनेवाले वा धारण करनेवाले (मुनिके) मनो विकारका =व्यसन (=विप्लुति) न होनेके हेतुसे स्त्रियोंके वा नारियोंके =रूपोंको अत्यन्त अपवित्र शुद्धतासे रहित =तथा (अत्यन्त) दुर्गन्ध रूपकरि भावने वाले मुनिके तथा

रात्रिन्दिवं ब्रह्मचर्यमखण्डमातिष्ठमानस्याचेलव्रतधारणमनवद्यमवगन्तव्यम्॥६॥ संयतस्येन्द्रिय-येष्टविषयसम्बधं प्रति निरुत्सुकस्य गीतनृत्यवादित्रादिविरहितेषु शून्यागारदेवकुलतरुकोटर-शिलागुहादिषु स्वाध्यायध्यानभावनारतिमास्कन्दतो दृष्टश्रुतानुभूतरतिस्मरणतत्कथाश्रवण-कामशरप्रवेशनिर्विवरहृदयस्य प्राणिषु सदासदयस्यारतिपरिषहजयोऽवसेयः॥७॥एकान्तेष्वारा-मभवनादिप्रदेशेषु नवयावनमदविभ्रममदिरापानप्रमत्तासुप्रमदासु बाधमानासु कूर्मवत्संहृतेन्द्रिय-हृदयविकारस्य ललितस्मितमृदुकथितसविलासवीक्षणप्रहसनमदमन्थरगमनमन्मथशर व्यापार-

---

रात्रिम्-दिवम्*ब्रह्मचर्यम्[2]'''अखंडम्[2]'''आतिष्ठमानस्य[2]'=निशिदिन [रात्रिदिवम्=रात्रिदिवा अव्यय है'] ब्रह्मचर्य अखंड पालनेवाले(मुनि)के अचेल-व्रत-धारणम्[1]'''अनवद्य[1]'।'अवगन्तव्यम्[1]'''॥६॥=नाग्न्य (=अचेल)व्रतका पाप रहित धारण जानना चाहिये ॥६॥

संयतस्य[1]'इन्द्रिय–इष्ट–विषय–संबंधम्[2]' =संयमी [मुनि] इन्द्रियोंके इष्ट भोगोंके सम्बन्धकी

प्रति–निरुत्सुकस्य[1]',गीत–नृत्य–वादित्र– =ओर (=प्रति) उत्साह रहित है, गीत, नृत्य, बाजे

आदि–विरहितेषु[3]'शून्य–आगार देवकुल–तरु–कोटर–शिला=आदिक वर्जित जे सूने स्थानमें मंदिर (=देवकुल)वृक्षोंके समूह (=कोटर) शिला

गुहादिषु[3]'स्वाध्याय–ध्यान–भावना–अरतिम्[2]'' =गुफा आदिकमें स्वाध्याय ध्यानकी भावनामें लगा है

आस्कन्दतः[1]'दृष्ट– =चित्तजिसका[शब्दार्थ स्वाध्याय और ध्यान भावनामें अरतिका कियाहैनिरादर जिसने]

श्रुत–अनुभूत–रतिस्मरण–तत्कथाश्रवण–काम–शर– =सुनीहुई भोगी हुई प्रीतिकी स्मृति,उस[रति]की कहानीका सुनना तथा कामबानके

प्रवेश–निर्विवर–हृदयस्य[1]'प्राणिषु[3]'सदा–सदयस्य[1]' =प्रवेशकरि नहीं छेदा गया है हृदय जिसका,जीवोंमें सदा दयान्वित [सदय](मुनि)के

अरति–परिषह–जयः[1]'अवसेयः[1]';७।एकांतेषु[3]'आरामभवन=अरति परिषहका जीतना जानना चाहिये॥एकान्त उद्यान वा उपवन(=आरामभवन)

आदि–प्रदेशेषु[3]'नवयौवन–मद–विभ्रम–मदिरापानप्रमत्तासु=आदिस्थानोंमें(=प्रदेशेषु)तारुण्य, अहंकार(=मद)विभ्रम,सुरापीकरउन्मत्त [=प्रमत्त]

प्रमदासु[3]'बाधामानासु[3]'कूर्मवत्*संहृत–इन्द्रिय– =सुन्दर स्त्रियोंके(=प्रमदासु)बाधाकरनेपरकछवेके सदृशसंकोचरूप हुई हैं इन्द्रियऔर

हृदय–विकारस्य[1]'ललित–स्मित–मृदु–कथित–सविलास– =हृदयके विकार जिस(मुनि)के, मनोहर मंदहास्य(=स्मित) कोमल वर्णित विलास सहित

वीक्षण–प्रहसन–मद–मन्थर–गमन–मन्मथ–शर–व्यापार– =देखना (=वीक्षण) हसना मदमाती धीमी चाल कामके बाणरूप व्यापारको

विफलीकरणस्य स्त्रीबाधापरिषहसहनमवगन्तव्यम् ॥८॥ दीर्घकालमुषितगुरुकुलब्रह्मचर्यस्याधिगतबन्धमोक्षपदार्थतत्त्वस्य संयमायतनभक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेर्गुरुणाऽभ्यनुज्ञातस्य पवनवन्निःसङ्गतामङ्गीकुर्वतो बहुशोऽनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागादिबाधापरिक्रान्तकायस्य देशकालप्रमाणोपेतमध्वगमनं संयमविरोधिपरिहरतो निराकृतपादावरणस्य परुषशर्कराकण्टकादिव्यथनजातचरणखेदस्यापि सतः पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमस्मरतो यथाकालमावश्यकापरिहाणिमास्कन्दतश्चर्यापरिषहसहनमवसेयम् ॥ ९ ॥

विफली-करणस्य[6]'स्त्रीबाधा-परिषहसहनम्[1]''अवगन्तव्यम्=विफल करनेवाले(मुनि)के स्त्री जनितपीड़ा वा परिषहका सहना जानना चाहिये। ८।

दीर्घ-कालम्[2]'उषित-गुरुकुलब्रह्मचर्यस्य[6]' =बहुत काल रहे हुये (=उषित) गुरुकुलमें ब्रह्मचर्य धारक(मुनि)के

अधिगत-बंध-मोक्षपदार्थ-तत्त्वस्य[6]'संयम- =बंधमोक्ष पदार्थोंके यथार्थ स्वरूप (=तत्त्व)का ज्ञानहुआ जिस [मुनि]के संयमके

आयतन-भक्ति-हेतोः[4]'देशान्तर-अतिथेः[5]' =मंदिर वा तीर्थस्थानकी भक्तिके कारणसे अन्यदेशमें(गमन करनेवाले) अतिथि(मुनि)के

गुरुणा[3]'अभ्यनुज्ञातस्य[6]' =गुरुद्वारा (=गुरुणा) आदेश कियेगये (मुनि)के अर्थात् गुरुके आज्ञाकारी(मुनि)के

पवनवत्*निःसंगतां[2]''अंगीकुर्वतः[6]'बहुशस्* =वायुके सदृश निःसंगपनेका स्वीकारकरनेवाले (मुनि)के बहुतबार (=बहुशस्)

अनशन-अवमोदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-आदि=अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्यागादिक (तप) की

बाधा-परिक्रान्त-कायस्य[6]'देश-काल-प्रमाण-उपेतम्[2]''=पीडाकरि क्षीण हुआ है काय जिस(मुनि)का, क्षेत्रकालके प्रमाण सहित

अध्वन्-गमनं[2]''संयम-विरोधिन्-परिहरतः[6]'निराकृत- =गमनको मार्गमें (ऐसा)कि संयम न विराधाजाय जिस (मुनि)का, त्याग हुआ है

पाद-आवरणस्य[6]'परुष-शर्करा-कण्टक-आदि- =पादोंके(जोडे आदि)आवरण जिस(मुनि)के, कठोर कंकडकी भूमि तथा कांटे आदि

व्यथनजात-चरणखेदस्य[6]'अपि*सतः[6]'पूर्व-उचित- =छिदिकर पावोंको खेद हुआ है जिस(मुनि)के, तौभी (गृहस्थावस्थामें) योग्य

यान-वाहन-आदि-गमनम्[2]''अस्मरतः[6]' =शिविका [=यान], रथ,मझोली[=वाहन]आदिमें गमनको सुधि न करनेवाले(मुनि)के

यथाकालम्*आवश्यका-परिहाणिम्[2]''आस्कन्दतः[6]' =समयानुसार आवश्यक क्रियाओंके घटाव वा हीनतामें निरादर करनेवाले(मुनि)के

चर्या-परिषह-सहनम्[1]''अवसेयम्[1]'' ॥ ९ ॥ =चर्या परिषहका सहन जानना चाहिये ॥ ९ ॥

श्मशानोद्यानशून्यायतनगिरिगुहागव्हरादिष्वनभ्यस्तपूर्वेषु निवसत आदित्यस्वेन्द्रियज्ञानप्रकाशपरीक्षितप्रदेशे प्रकृतनियमक्रियस्य निषद्यां नियमितकालामास्थितवतः सिंहव्याघ्रादिविविधभीषणध्वनिश्रवणान्निवृत्तभयस्य चतुर्विधोपसर्गसहनादप्रच्युतमोक्षमार्गस्य वीरासनोत्कुटिकाद्यासनादविचलितविग्रहस्य तत्कृतबाधासहनं निषद्यापरिषहविजय इति निश्चीयते॥१०॥ स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य मौहूर्तिकीं खरविषमप्रचुरशर्कराकपालसङ्कटातिशीतोष्णेषु भूमिप्रदेशेषु निद्रामनुभवतो

श्मशान-उद्यान-शून्य-आयतन-गिरिगुहा-गव्हरादि[७]-अनु-अभ्यस्त-पूर्वेषु[७] =मरघट (=श्मशान) उपवन (=उद्यान) सूनी बैठक वा स्थान (=आयतन) =पर्वतकी गुफा वा कंदरा, कुंज वा बेलोंके मंडप आदिमें जो प्रथम अभ्यासमें नहीं आये वा परिचय नहीं कियेगये अर्थात् जिनमें पहिले नहीं रहे

निवसतः[७]-आदित्य-स्व-इन्द्रियज्ञान-प्रकाश-परीक्षित-प्रदेशे[७]-प्रकृत-नियम-क्रियस्य[७] निषद्याम्[२]॥-नियमित-कालाम्[२]॥-आस्थितवतः[७]-सिंह-व्याघ्र-आदि-विविध-भीषण-ध्वनि-श्रवणात्[५]॥-निवृत्त-भयस्य[७]-चतुर्विध-उपसर्ग-सहनात्[५]॥-अप्रच्युत-मोक्ष-मार्गस्य[७]-वीरासन-उत्कुटिक-आदि-आसनात्[५]॥-अविचलितविग्रहस्य[७] तत्-कृतबाधा-सहनम्[२]॥-निषद्या-परिषह-विजयः[१] इति*-निश्चीयते ॥१०॥-स्वाध्याय-ध्यान-अध्वन्-श्रम-परिखेदितस्य[७]-मौहूर्तिकीम्[२]॥-खर-विषम-प्रचुर-शर्करा-कपाल-संकट-अतिशीत-उष्णेषु[७] भूमिप्रदेशेषु[७] निद्रां[२]-अनुभवतः[७]

=(उनमें) निवास हुआ है जिस (मुनि) का, सूर्य तथा अपनी ज्ञान इन्द्रियके प्रकाशसे =परीक्षा किये हुये स्थानमें आरम्भ हुई है नियमकी क्रिया जिस मुनि) की =आसनको नियमित समयके लिये मांडनेवाले (मुनि)को सिंह =बघेरा आदिके नाना प्रकारके भयानक शब्द सुननेसे =जाता रहा है भय जिस (मुनि)का, चार प्रकार (देव, मनुष्य, पशु, अचेतनकृत) =उपद्रवके सहनेसे नहीं छुटा है मोक्ष मार्ग जिसका, वीरासन, =उत्कुटिक, आदि आसनसे अविचलित है काय (=विग्रह) जिस (मुनि)का =उन(शूरासन,उत्कुटिकादि आसन)को कीहुई पीड़ाका सहन,निषद्या परिषहका विजय =इस प्रकार निश्चय किया गया है ॥१०॥स्वाध्यायके,ध्यानके (तथा) मार्गके(=अध्वन्) =श्रम वा कष्टसेथकेहुये(मुनि)के मुहूर्त मात्र कठोर(=खर)ऊंची नीची वा असमान(विषम) =बहुत ककरारही(=शर्करा)ठिकरियाई(=कपाल) सिकड़ी हुई अर्थात् जहां शरीर पसरनसके =बहुत ठंडी तथा बहुत उष्णभूमि प्रदेशोंमें नींदका अनुभव करनेवाले(मुनि)के-

यथाकृतैकपार्श्वदण्डायितादिशायिनः प्राणिबाधापरिहाराय पतितदारुवद्व्यपगतासुवदपरिवर्तमानस्य ज्ञानपरिभावनावहितचेतसोऽनुष्ठितव्यन्तरादिविविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकालां तत्कृतबाधां क्षममाणस्य शय्यापरिषहक्षमा कथ्यते ॥ ११ ॥

यथाकृत- =कियेहुयेके अनुसार अर्थात् आरम्भमें द्रव्य,क्षेत्र,काल,भावको विचारकर मुनि जैसा कुछ लेटनेका आसन वा अवस्था धारण करले उसके अनुसार

एक-पार्श्व-दण्डायित-आदि-शायिनः[६] प्राणिन्-बाधा-परिहाराय[६] पतितदारुवत्*व्यपगत-असुवत्*अपरिवर्तमानस्य[६] ज्ञान-परिभावना- =एक करवट (सीधा-टेढ़ा) (अथवा)सीधे डंडाकार आदि सोनेवाले(मुनि)के, प्राणियोंकी =पीड़ा निवारणके लिये गिरेहुये वा पड़ेहुये काठ सदृश (अथवा)छूट गये हैं [=विपगत] =प्राण[=असु]जिसके तिस समान परिवर्तन रहित (=अ-परिवर्तमानस्य) वा निश्चल-लेटे हुये (अ-परिवर्तमानस्य) (मुनि)के ज्ञानके बारबार विचारनेमें (=परिभावना)

अवहित-चेतसः[६] (१)अनुष्ठित-व्यन्तरादि-विविध-उपसर्गात्[५] अपि*अचलित-विग्रहस्य[६] आ-नियमित-कालाम्[२] तत्-कृत-बाधां[२] क्षममाणस्य[६] शय्या-परिषह-क्षमा[१] कथ्यते ॥ ११ ॥ =लगा है(=अवहित)चित्त जिस(मुनि)का,कियेहुये(=अनुष्ठित)व्यन्तरादिदेवोंके कई प्रकारके =उपद्रवोंसे भी नहीं चलायमान हुआ है शरीर (=विग्रह) जिस (मुनि)का, नियमित =समय तक [=आ] उस [काल] में कीगई पीड़ा को सहते हुये (मुनि)के =शयन पीड़ाका सहारना कहागया है ॥ ११ ॥

(१)"अनुष्ठितव्यन्तरादिविविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकालात्तत्कृतबाधां क्षममाणस्य"यहपाठमुद्रितसर्वार्थसिद्धिवृत्तिकेप्रथमा वृत्तिमें है "अनुष्ठितव्यन्तरादिविविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकालां तत्कृतबाधांक्षममाणस्य"यह पाठ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके द्वितीयावृत्तिका है, यह पाठ तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पत्र ८२,९९, १३९ पर क्रमसे है"विग्रहस्य । अनियमितकालां" "विग्रहस्यानियमितकालां"के स्थानमें उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियोंमें है ॥ प्रथम पाठके'आ-नियमित-कालात् तत्कृतबाधाम् क्षममाणस्य = निश्चितकाल तक(=आ)उन(व्यन्तरादि)की बाधाको सहन करते हुये(मुनि)के॥'अनियमितकालांतत्कृतबाधाम् क्षममाणस्य' = अनिश्चितकालमें(को)उन(व्यन्तरादि)की बाधाको सहन करते हुये(मुनि)के॥ 'आ-नियमित-कालाम् तत्कृतबाधाम् क्षममाणस्य' = निश्चितकाल तक (=आ) उन(व्यन्तरादि)की बाधाको सहन करते हुये (मुनि)के क्योंकि भूयुत पाणिनिजीको अष्टाध्यायी अध्याय२ पाद१ सूत्र १३से द्वितीया विभक्ति और पंचमी अपादान विभक्ति दोनों आङ् उसर्गके साथअभिविधि और मर्यादा अर्थमें आती हैं॥ पं० जयचन्दरायजीने प्रथम अर्थ ग्रहण किया है कि"व्यंतरादिके उपसर्ग होतैं भी नहीं चलाया है शरीर ज्यां, जेतैं काल नियम कीया तेतैं काल जेती बाधा आवै तेती सहै हैं" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकमें यह तथा इसके सदृश कोई वाक्य नहीं है इसलिये हमको पं० पन्नालालदूनीजीके अनुवादमें कुछ भी नहीं मिला है, पं० पन्नालालन्यायदिवाकरजीने मूलमें संस्कृत वाक्य न होते हुये भी निम्नवाक्य पृष्ठ १४२९पर दिया है "व्यंतरादिकके उपसर्ग होतैं भी नहीं चलाया है शरीर जिन जेतेकाल नियम किया तेते

मिथ्यादर्शनोद्दामर्षपरुषावज्ञानिन्दासभ्यवचनानि क्रोधाग्निशिखाप्रवर्धनानि शृण्वतोऽपि तद्दर्थेष्वसमाहितचेतसः सहसा तत्प्रतिकारं कर्तुमपि शक्नुवतःपापकर्मविपाकमभिचिन्तयतस्ताच्याकर्ण्य तपश्चरणभावनापरस्य कषायविषलवमात्रस्याप्यनवकाशमात्महृदयं कुर्वत आक्रोशपरिषहसहनमवधार्यते। १२।निशितविशसनमुशलमुद्गरादिप्रहरणताडनपीडनादिभिर्व्यापाद्यमानशरीरस्य व्यापादकेषु

मिथ्यादर्शन–उद्दाम–आमर्ष–परुष–अवज्ञा–निन्दा–असभ्य–वचनानि[३]।।।
क्रोध-अग्नि-शिखा-प्रवर्धनानि[३]।।।शृण्वतः[६]अपि*
तद्-अर्थेषु[७]असमाहित–चेतसः[६],

सहसा*तत्–प्रतिकारम्[२]कर्तुम्[२]अपि*शक्नुवतः[६]
पाप–कर्म–विपाकम्[२]अभिचिन्तयतः[६]तानि[३]।।।
आकर्ण्य÷तपश्चरण–भावना-परस्य[६]कषाय–विष-
लवमात्रस्य[६]।।।अपि*अनु-अवकाशम्[२]आत्महृदयम्[२]।।।
कुर्वतः[६],आक्रोश-परिषह–सहनम्[१]।।।अवधार्यते ॥१२॥
निशित–विशसन-मुशल-मुद्गरादि-प्रहरण-ताडन–
पीडन-आदिभिः[३]व्यापाद्यमान–शरीरस्य[६]व्यापादकेषु[७]

=मिथ्यादर्शनसे गर्वित(=उद्दाम)(जीव)के क्रोधकेभरेहुये(=आमर्ष)कठोर(परुष)अनादर
=निंदारूप,सभ्यतासे रहित(=असभ्य)अपात्र(=असभ्य)वा नीच (=असभ्य) वचनको
=जो सुननेवाले(=शृणवतः)के भी क्रोधरूपी अग्निकोज्वालाको बढ़ानेवाले होते हैं
=उनकेप्रयोजन वा हेतुओंमेंचित्तको नहीं लगानेवाले (मुनि)के[अर्थात् उपर्युक्तशूल
समान वचनोंको श्रवण करनेपर भी मुनिके शुद्ध परिणाम (=समाहित) रहते हैं]
=तत्काल उन(वचनों)का उपचार वा उपाय करनेकी सामर्थ्ययुक्त होते हुये भी
=[अपने] पापकर्मके उदय [=विपाक]के विचार युक्त [मुनि]के, तिन [वचनों]को
=सुनकर तपश्चरणकी भावनामें लवीण वा तत्पर (मुनि)के, क्रोध रूपी विषको
=तनिकमात्र भी अवकाश अपने (=आत्म)हृदयको नहीं करनेवाले (मुनि)के,
=आक्रोश पीड़ाका सहना निश्चय किया जाता है ॥ १२ ॥
=तीक्ष्ण खड्ग(=विशसन) मूसल मोगरी वा मुगरा आदिक अस्त्र(प्रहरण)कर ताड़नेसे
=पीड़ने आदिकसे वाध्या है शरीर जिस (मुनि)का घात करनेवालोंमें

काल जेतो बाधा आवै तेतोसहै" अब हमको देखना यह है कि अनियमित कालका क्या अर्थ है कोशोंमें अनियमितका अर्थ अमित, अपरमित, मापा हुआ जो न होवे,बिना मर्यादा ऐसा है। श्रुतसागरी टीकाके पत्र २४० पर इस शब्दके स्थानमें अमितकाल लिया है जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है "भूत प्रेतादि विहित नानोपसर्गोऽपि अविलिनांग(अविलीनांग)अमितकाल तद्विहितबाधां क्षमते"।

भूत-प्रेतादि-विहित-नाना-उपसर्गः-अपिअमितकाल–अवलिनांग-तद्-विहित-बाधाम् क्षमते।

= व्यंतरादिकोंसे कियेहुये भांति २ के उपद्रव आनेपर भी अपरिमित, अनिश्चित समय लग
=नहीं चलायमान हुआ है(=अचलित)शरीर(=अंग)जिसका उन(भूत-प्रेतादिकों)की कीहुई
=बाधाको सहताहै नियमित कालसे विरुद्ध अमित कालहै,हमारा अर्थ जयचन्द्रजीकेअनुकूल है

मनागपि मनोविकारमकुर्वतो ममपुराकृतदुष्कर्मफलमिदमिमे वराकाः किं कुर्वन्ति, शरीरमिदं जलबुद्बुदवद्विशरणस्वभावं व्यसनकारणमेतैर्व्याबाध्यते, संज्ञानदर्शनचारित्राणि मम न केनचिदुपहन्यन्ते इति चिन्तयतो वासितक्षणचन्दनानुलेपनसमदर्शिनो वधपरिषहक्षमा मन्यते ।१३। बाह्याभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानपरस्य तद्भावनावशेन निस्सारीकृतमूर्तेः पटुतपनतापनिष्पीतसारतरोरिव विरहितच्छायस्य त्वगस्थिशिराजालमात्रतनुयन्त्रस्य प्राणवियोगे सत्यप्याहारवसतिभेषजादीनि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्याङ्गसंज्ञादिभिरयाचमानस्य भिक्षाकालेऽपि विद्युद्योतवत्

मनाक्*आपि*मनस्-विकारम्[२]अकुर्वतः[६]ममः[६]पुरा-कृत=किंचित्भी चित्तमें विकारको न करनेवाले (मुनि)के {जो ऐसा विचारे हैंकि}मेरे पूर्व दुष्कर्म-फलं[१]'''इदं[१]''',इमे[३]वराकाः[३]किं*कुर्वन्ति T।=खोटे कर्मोंका यह फल है, ये (घात करनेवाले) रंक क्या करसकते हैं।

शरीर'[१]'''इदं[१]'''जलबुद्बुदवत्*विशरण-स्वभावम्[१]'''=यह शरीर पानीके बुल्बुलेके समान विनाशीक (=विशरण) स्वभाव वाला है।

व्यसन-कारणं[१]'''एतैः[३]व्याबाध्यते T, =कष्ट वा(=व्यसन)कारण है,(सो यह शरीर)इन(दुष्ट मारनेवाले जीवों)करि बाधाजाताहै

संज्ञान-दर्शन-चारित्राणि[१]'''ममः[६]न*केनः[३]चित्* =सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन,सम्यक्चारित्र मेरे किसीकरि नहीं

उपहन्यन्तेT इति*चिन्तयतः[६] =हने जाते हैं, इस प्रकार विचार करनेवाले (मुनि)के

वासित-क्षण-चन्दन-अनुलेपन-समदर्शिनः[६]वध-परिषह-=खड्गसे काटने,(=वासित) चन्दनके लेपनके,समान देखनेवाले(मुनि)के वध परिषहका

क्षमाः[१]'''मन्यते॥१३॥ बाह्य-अभ्यन्तर-तपस्-अनुष्ठान=सहना जाना जाता है वा माना जाता है ॥१३॥बाहिर और अंतरंगके तपकरने में

परस्यः[६]तद्-भावना-वशेनः[३]निस्सारी-कृत-मूर्तेः[६] =तत्पर वा प्रवीण(मुनि)के [तप]के अनुचिंतनके वशसे साररहितहुई हैमूर्तिजिस(मुनि)की

पटु-तपन-ताप-निष्पीत-सार-तरोः[६]इव*विरहितच्छायस्यः[६] =तीव्र(=पटु)सूर्यके (=तपन)तापकरि साररहित छाया वर्जित अर्थात्सूखे वृक्षसम

त्वक्-अस्थि-शिरा-सिरा)-जालमात्र-तनु-यन्त्रस्यः[६]=चाम(=त्वक)हाड(=अस्थि)नसा(=सिरा)जालमात्ररहगया है देहरूपीयन्त्रजिस(मुनि)का

[जैसे सूर्यकी उष्णतासे वृक्ष सूखजाते हैं तैसे तपसे मुनिके चाम,हाड, नशा रह जाते हैं।]

प्राण-वियोगेः[७]सतिः[७]अपि*आहार-वसति-भेषज- =प्राणके वियोग वा विच्छेद होनेपर(=सति)भी भोजन-रहनेका स्थान(=वसति) औषध,

आदीनि[१]'''दीन-अभिधान-मुखवैवर्ण्य-अंगसंज्ञादिभिः=आदिदीनवचनकरि-मुखकोविलखावनेकरि वा मुखकीविवर्णताकरिअंगकीसमस्याआदिसे

अ-याचमानस्यः[६]भिक्षा-कालेः[७]अपि*विद्युत-उद्योतवत्*=याचना न करनेवाले(मुनि)के भिक्षाके समयमें भी बिजलीके उद्योत शदृश

दुरुपलक्ष्यमूर्तेर्याचनापरिषहसहनमवसीयते ॥१४॥ वायुवदसङ्गादनेकदेशचारिणोऽभ्युपगतैक-कालसम्भोजनस्य वाचंयमस्य तत्समितस्य वा सकृत्स्वतनुदर्शनमात्रतन्त्रस्य पाणिपुटमात्र-पात्रस्य बहुषु दिवसेषु बहुषु च गृहेषु भिक्षामनवाप्याप्यसंक्लिष्टचेतसो दातृविशेषपरीक्षा-निरुत्सुकस्य लाभादप्यलाभो मे परमं तप इति सन्तुष्टस्यालाभविजयोऽवसेयः ॥ १५ ॥

दुर्-उपलक्ष्य-मूर्तेः[६]'याचना-परिषह-सहनम्[१]'' =कठिनतासे देखनेमें आया है शरीर जिस(मुनि)का,याचना पीड़ाका सहना अथवा झेलना अवसीयते[T]॥१४॥ वायुवत्*असंगात्[६]'अनेक-देश-=निश्चय किया जाता है ॥१४॥ पवनके सदृश निर्लेपतासे बहुत स्थानोंमें
चारिणः[६]'एककाल-अभ्युपगत-सम्-भोजनस्य[६]' =विहरनेवाला (मुनि)के, (दिनमें) एककाल विषै शुद्ध(=सम्) भोजनका अंगीकार
वाचंयमस्य[६]'वा*तत्-समितस्य[६]' =मौनावलम्बित (मुनि)के अथवा उस (वाचा) समित वाले (मुनि)के
सकृत्-स्व-तनु-दर्शनमात्र-तंत्रस्य[६]' =(भोजनके लिये)एकबार अपना शरीरको दिखावने मात्रहै सिद्धांत (तन्त्र)हैजिस (मुनि)का अर्थात् एक दो तीन चार पांच आदिक उपवास करनेके परचात् नगर वा गांवमें दिनमें एकबार आहारके वास्ते मुनि आते हैं और अपने शरीरको एकबार दिखाकर फिर लौट जाते हैं और फिर उस दिन मुनि भोजनको नहीं जाते हैं।
पाणि-पुट-मात्र-पात्रस्य[६]'बहुषु[३]'दिवसेषु[३]' =दोनों (=पुट) हाथ मात्र हैं भाजन वा वासन जिस (मुनि)का बहुत दिनोंमें
बहुषु[३]'च*[१ गृहेषु[३]'भिक्षाम्[६]''अनवाप्य÷अपि*=तथा [च] बहुत घरों में आहारको न पाकर भी
असंक्लिष्ट-चेतसः[६]'दातृ-विशेष-परीक्षा-निरुत्सुकस्य[६]' =क्लेश रहितहै चित्त जिस[मुनि]का,दाताके विशेष जानकारमें नहींहै उत्साह जिस मुनिका अर्थात् मुनि ऐसा नहीं विचार करते हैं कि अमुक पुरुष किसी अन्य पुरुषसे उदार वा श्रेष्ठ दातार है उसके यहां चलना चाहिये तो भोजन अवश्य मिलेगा ॥
लाभात्[५]'अपि*अलाभः[१]'मे[६]'परमम्[१]''तपः[१]''=लाभसे भी अलाभ मेरा उत्कृष्ट तप है अर्थात् आहारके न मिलनेमें परम आनंद मानते हैं कि यह आहारके न मिलनेसे हमारे तप हुआ ॥
इति *संतुष्टस्य[६]'अलाभ-विजयः[१]'अवसेयः[३]'॥१५॥=इस प्रकार संतोष मुनिके अलाभ [परीषह]का विजय जानना चाहिये ॥१५॥

(१)(क) ईंट मिट्टी आदिसे बना हुआ घर (ख)पत्नी, स्त्री (ग) घरके निवासी (घ) मेष आदि राशिका मंदिर (ङ) नाम ॥ एक घरके अर्थमें नपुंसक,बहुत घरोंके अर्थमें पुंलिङ्ग होता है,"इमे नो गृहाः""तत्रागारं धनपतिगृहान्"स्त्रीके अर्थमें भी दारशब्दके समान बहुवचनान्त होता है ॥

सर्वाशुचिनिधानमिदमनित्यमपरित्राणमिति शरीरे निःसङ्कल्पत्वाद्विगतसंस्कारस्य गुणरत्नभाण्डसञ्चयप्रवर्धनसंरक्षणसन्धारणकारणत्वादभ्युपगतस्थितिविधानस्याक्षम्रक्षणवद् व्रणालेपनवद्वा बहूपकारमाहारमभ्युपगच्छतो विरुद्धाहारपानसेवनवैषम्यजनितवातादिविकाररोगस्य युगपदनेकशतसंख्यव्याधिप्रकोपे सत्यपि तद्वशवर्तितां विजहतो जल्लौषधिप्राप्त्याद्यनेकतपोविशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिस्स्पृहत्वात्तत्प्रतिकारानपेक्षिणो रोगपरिषहसहनमवगन्तव्यम्

सर्व-अशुचि-निधानम्[1]''इदम्[2]''
अनित्यम्[3]''अपरित्राणम्[4]''इति*शरीरे[5]''
निःसंकल्पत्वात्[6]''विगत-संस्कारस्य[7]'

=(यह शरीर) समस्त अपवित्रताका भण्डार (=निधानं) वा भाजन [=निधानं]है
=अनित्य है, रक्षण (=परित्राण)नहीं किया जासक्ता है, इस प्रकार देहमें
=निःसंदेहपनेसे संस्कारका (मुनि)के निषेध है अर्थात् मुनि शरीरको अशुचि,अनित्य अरक्ष्य जानकर संभालते नहीं हैं वा संस्कार नहीं किया करते हैं,

गुणरत्न-भाण्ड-संचय-
प्रवर्धन-संरक्षण-संधारण-कारणत्वात्[8]''
अभ्युपगत-स्थिति-विधानस्य[9]'अक्ष-
म्रक्षणवत्*व्रण-आलेपनवत्*वा*बहु-उपकार[10]'आहारं[11]'
अभ्युपगच्छतः[12]'

=(सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र) गुणरत्नरूप संचय भण्डारको (=भांड)
=बढावने रक्षा करने तथा स्थिति [=संधारण]के हेतुसे
=[शरीरको] मानते हुए [इस शरीरके]स्थिति विधान[जे आहारादिक]पहिया(=अक्ष)के
=ओंगनेके सदृश अथवा गूमड़ाके लेपन सदृश आहारको बहुत उपकारी
=माननेवाला(=अभ्युपगच्छतः)(मुनि)के सारांश-शरीर रत्नत्रयके संचय का भाजन है रत्नत्रयकी वृद्धि रक्षा स्थितिके लिये मुनि शुद्ध आहार लेकर शरीरकी रक्षा करते हैं॥

विरुद्ध-आहार-पान-सेवन-वैषम्य-जनित-वातादि-
विकार-रोगस्य[13]'युगपत्*अनेक-शत-संख्या-व्याधि-
प्रकोपे[14]'सति[15]'अपि*तद्-वश-वर्तितामु[16]''विजहतः[17]'

=प्रतिकूल आहार पानी मिलनेपर विलक्षणतासे उत्पन्न हुये वातादिक
=रोगोंके विकार जिस[मुनि]के,एककाल अनेक सैकड़ों रोगोंके
=विशेष (=प्र) कोप होनेपर [=सति] भी तिन (रोगों)के वशमें न होनेवाले [मुनि]के

जल-औषधि-प्राप्ति-आदि-अनेक-तपस्-विशेष-ऋद्धि-
योगे[18]'सति[19]'अपि*शरीर-निस्स्पृहत्वात्[20]''तत्-प्रतिकार
अनपेक्षिणः[21]'रोग-परिषह-सहनम्[22]'अवगन्तव्यम्

=जल औषध प्राप्ति आदि नाना प्रकारके तपके विशेषसे ऋद्धिके
=संयोगहोनेपर भी शरीरकी निर्लोभतासे उन(रोगों)काउपचार वा उपायकी
=थोड़ीभी आकांक्षा न करनेवाले(मुनि)के रोग परीषहका सहना जानना चाहिये ॥१६॥

तृणग्रहणमुपलक्षणं कस्यचिद्व्यथनदुःखकारणस्य । तेनशुष्कतृणपरुषशर्कराकण्टकनिशित-मृत्तिकाशूलादिव्यथनकृतपादवेदनाप्रादुर्भावे सत्यां तत्राप्रणिहितचेतसश्चर्याशय्यानिषद्यासु प्राणि-पीडापरिहारे नित्यमप्रमत्तचेतसस्तृणादिस्पर्शबाधापरिषहविजयो वेदितव्यः॥१७॥ अप्कायिक-जन्तुपीडापरिहारायामरणादस्नानव्रतधारिणः पटुरविकिरणप्रतापजनितप्रस्वेदाक्तपवनानीतपां-सुनिचयस्य सिध्मकच्छूदद्रूदीर्णकण्डूयायामुत्पन्नायामपि कण्डूयनविमर्दनसङ्घट्टनविवर्जितमूर्तेः

तृण-ग्रहणम्[1]॥ उपलक्षणम्[2]।
कस्यचित्*व्यथन-दुःख-कारणस्य[3],
तेन[4]॥ शुष्क-तृण-परुष-शर्करा-कण्टक-निशित-मृत्तिका-शूलादि-व्यथन-कृत-पाद-वेदना-प्रादुर्भावे[5]॥
सत्याम्[6]॥ तत्र*अप्रणिहित-चेतसः[7]
चर्या-शय्या-निषद्यासु[8]॥ प्राणिपीडा-परिहारे[9] नित्यम्[10]॥ अप्रमत्तचेतसः[11], तृणादि-स्पर्श-बाधा-परिषह-विजयः[12]॥ वेदितव्यः[13]॥ अप्कायिकजन्तु-पीडा-परिहारायम्[14] आ-मरणात्[15]॥
अस्नान-व्रत-धारिणः[16], पटु-रवि-किरण-प्रताप-जनित-प्रस्वेद-आक्त-पवन-आनीत-पांसु-निचयस्य[17]
सिध्म-कच्छू-दद्रु-उदीर्ण-कण्डूयायाम्[18]॥ उत्पन्नायाम्[19]॥
अपि*कण्डूयन-विमर्दन-संघट्टन-विवर्जित-मूर्तेः[20]

=[इस सूत्रमें] तृण शब्दका लाना बानिगी, उदाहरण अथवा दृष्टान्त रूपमें है
=जो कुछ (=कस्यचित्) सुभकर दुःखका कारण हो [उससे यहांपर प्रयोजन है]
=तिस[तृण]करि सूखा तिनका कठोर[परुष]कंकड़ी,कांटा तीखी[=निशित वा निशात]
=माटी शूलादिकके चुभनेकर पगोंमें पीड़ाके प्राप्त
=होनेपर(=सत्यां)वहां (=तत्र) नहीं लगा है चित्त जिस [मुनि]का अर्थात् पूर्वोक्त दुःखोंकीकुछ भी चिन्ता वा शोच न करतेहुये उन दुःखोंको कुछ भी नहीं मानते हैं
=चलने, सोने, बैठनेमें प्राणियोंका कष्ट दूर करनेमें सदा (=नित्यम्)
=अप्रमादरहितहैचित्त जिस(मुनि)का तिनका आदिके लगजानेकी बाधा परिषहका जीतना
=जानना चाहिये। जलके जीवोंका कष्ट निवारणके लियेमृत्युकेअंतलग(=आ)
=स्नान त्याग व्रतके धारण करनेवाले[मुनि]के,तीव्र सूर्यकी किरणोंके प्रभाव(=प्रताप)
=जनित पसेवमें ग्रहणकी हुई (=आक्त) पवनसे प्राप्त (=आनीत) रज (=पांशु=पांसु)
=संचय होगया है (शरीरपर) जिस (मुनि)केअर्थात् उष्णतासे उत्पन्न हुआ मुनिके शरीरमें पसेव तिसपर पवन द्वारा उड़कर रज इकट्ठी हो जाती है,
=कोढ(=सिध्म) खाज(=कच्छू)दाद (=दद्रु)महान् खुजली(=कण्डूया)के उत्पन्नहोनेपर
=भी खुजावना(=कण्डूयन)मलना व घिसने(की क्रिया)से रहित है मूर्ति जिस मुनि)की

स्वगतमलोपचयपरमलापचययोरसंकल्पितमनसः संज्ञानचारित्रविमलसलिलप्रक्षालेन कर्ममलपङ्कजालानराकरणाय नित्यमुद्यतमतेर्मलपीडासहनमाख्यायते ॥ १८ ॥

केशलुञ्चासंस्काराभ्यामुत्पन्नखेदसहनं मलसामान्यसहनेऽन्तर्भवतीति न पृथगुक्तम् सत्कारः पूजाप्रशंसात्मकः । पुरस्कारो नाम क्रियारम्भादिष्वग्रतः करणमामन्त्रणं वा, तत्रानादरोमयि क्रियते ! चिरोषितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनः स्वपरसमयनिर्णयज्ञस्य बहुकृत्वः परवादिविजयिनः प्रणामभक्तिसम्भ्रमासनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोति ! मिथ्यादृष्टय

स्व गत-मल-उपचय-पर-मल-अपचययोः३।असंकल्पितमनसः५। संज्ञान-चारित्र-विमल-सलिल-प्रक्षालेन३।''कर्मम-ल-पंक-जाल-निराकरणाय४।''नित्यम्१।''उद्यतमतेः५। मल-पीडा-सहनम्१।''आख्यायते ॥१८॥ केशलुंच-असंस्काराभ्याम्३।उत्पन्न-खेद-सहनम्१।''मल-सामान्य-सहने७।''अन्तर्भवति।इति*न*पृथक्-उक्तम्१॥, सत्कारः१।पूजा-प्रशंसा-आत्मकः१।,क्रिया-आरम्भादिषु७।अग्रतः*करणम्१।'' आमन्त्रणम्१।''वा*पुरस्कारः१।नाम१॥, तत्र* अनादरः१।मयि७।क्रियते।चिरोषित-ब्रह्मचर्यस्य६।महान्-तपस्विनः६।स्व-परसमय-निर्णयज्ञस्य६।बहुकृत्वः*पर-वादिन्-विजयिनः६। प्रणाम-भक्ति-सम्भ्रम-आसन-प्रदान—आदीनि३।''मे६।न*कश्चित्*करोति।मिथ्यादृष्टयः१।

=अपने लगे हुए मलकी वृद्धिमें अर्थात् मेरी देही अधिक मैली है अन्यके लगे हुए मैलकी =हीनतामें (अर्थात् दूसरे मुनिकी देहोंमें मैल अल्प है)नहीं लगा है चित्तजिस(मुनि)का =सम्यक्ज्ञान-सम्यक् चारित्ररूप निर्मल जलसे प्रक्षालनकरि कर्ममलरूपी =कीच जालको दूरकरनेके लिये सदा उपस्थित है मन जिस(मुनि)का, =(ऐसे मुनिके) मल पीड़ाका सहन वर्णन किया गया है ॥१८॥बालोंके उखेड़नेसे =और न समालनेसे उत्पन्न हुई पीड़ाका सहना, मल सामान्य (परिषह)के =सहनेमें गर्भित है ऐसे (केश लुंचन इत्यादि)व्याधिसे न्यारी परिषह वर्णन नहीं कीगई है =सत्कार पूजा तथा प्रशंसा स्वरूप है क्रियाके आरम्भादिकमें =अग्रेसर करना वा आगे करना अथवा (क्रियाके आरम्भमें) =निमन्त्रणदेनावाबुलावना सो पुरस्कारनामहै तहां,(मुनि ऐसा विचारनहीं करतेहैंकि) =मुझमें (अर्थात् मेरा) अनादर किया जाता है, बहुतकालसे अथवा चिरकालसे =ब्रह्मचर्य युक्त हूं, बड़ा तप करनेवाला हूं अपने तथा परके सिद्धान्तका =निर्णय करनेवाला हूं, बहुतबार अन्यवादियोंका जीतने वाला हूं और =नमस्कार सेवा (=भक्ति) आदर (=सम्भ्रम) उच्च आसन वा बैठक देना =आदिक मेरा कोई नहीं करता है (इनसे तो)मिथ्या दृष्टी

एवातीवभक्तिमन्तः किञ्चिदजानन्तमपि सर्वज्ञसम्भावनया सम्मान्य स्वसमयप्रभावनं कुर्वंति! व्यन्तरादयः पुरा अत्युग्रतपसां प्रत्यग्रपूजां निर्वर्तयन्तीति मिथ्याश्रुतिर्यदि न स्यादिदानीं कस्मान्मादृशां न कुर्वन्तीति दुष्प्रणिधानविरहितचित्तस्य सत्कारपुरस्कारपरिषहविजयः प्रतिज्ञायते॥ १९॥अङ्गपूर्वप्रकीर्णकविशारदस्य शब्दन्यायाध्यात्मनिपुणस्य ममपुरस्तादितरे भास्करप्रभाभिभूतखद्योतोद्योतवन्नितरां नावभासन्त इति विज्ञानमदनिरासःप्रज्ञापरिषहजयःप्रत्येतव्यः

एव*अतीव-भक्तिमन्तः[1] किंचित्*अजानन्तम्[2] अपि* =ही (=एव) अतिशय भक्ति करनेवाले वा सेवा करनेवाले हैं कुछ न जानने वाले भी
सर्वज्ञ-सम्भावनया[3] सम्मान्य-स्व-समय- =सर्वज्ञके (तुल्य) अभिप्रायसे (=सम्भावनया)सम्मानकर अपने मतका
प्रभावनं[4] कुर्वन्ति।व्यंतर-आदयः[1] पुरा*अति-उग्र- =उद्योत वा प्रकाशन करते हैं। व्यंतरादि देव पूर्वकालमें बहुत उत्कट वा कड़े
तपसां[6] प्रति-अग्र-पूजां[2] निर्वर्तयन्तिइतिमिथ्याश्रुतिः[1] =तपकरनेवालेके आगेहोकर(=प्रत्यग्र)पूजा करते हैं ऐसी झूठी श्रुति है (सुननेमें आयाहै)
यदि*न*स्यात्इदानीम्*कस्मात्(१)मादृशाम्[2] (प्रभावन)=जो यदि) (झूठी) न हो तो अब किस कारणसे (वे देव) मेरे सदृशोंकी(=प्रभावना)
न*कुर्वन्ति।इति*दुष्-प्रणिधान-विरहितचित्तस्य[1] सत्कार-=नहीं करते हैं, ऐसे खोटा(=दुष्)चिन्तवनसे रहित है चित्त जिस (मुनि) के-सत्कार
पुरस्कार-परिषह-विजयः[1]प्रतिज्ञायते।।१९॥अंग-पूर्व- =पुरस्कार पीड़ाका विजय जाना जाता है ॥१९॥(ग्यारह)अंग (चौदह) पूर्व
प्रकीर्णक-विशारदस्य[1] शब्द- =(चौदह) प्रकीर्णकोंके(देखो अ० १ पृष्ट ४०६से ४२७ तक)प्रवीण (मुनि)का,कोशमें
न्याय-अध्यात्म-निपुणस्य[1] =न्याय शास्त्रमें, अध्यात्म शास्त्रमें,अर्थात् आत्मतत्त्व विधानमें निपुण (मुनि)के,
नितराम्*न*अवभासन्तः[1] मम[1] पुरस्तात्*इतरे[1] =कभी (=नितरां)नहीं विचारते (न-अवभासतः)कि मेरे आगे (=पुरस्तात्)दूसरे(=इतरे)
भास्कर-प्रभा-अभिभूत- =सूर्यके(=भास्कर) प्रकाशसे तिरस्कृत (=अभिभूत)
खद्योत-उद्योत-वत्*इति*विज्ञान-मद(२) निरासः[1] =पटवोजना(=खद्योत)के उद्योतके सदृश,ऐसे विज्ञान मदसे निराशा होनेवाले (मुनि)के
प्रज्ञा-परिषह-जयः[1]प्रत्येतव्यः[1] ॥२०॥ =प्रज्ञा परिषहका विजय जानना चाहिये ॥ २० ॥

(१)'मादृशाम्' यह 'मादृश' शब्दसे षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुंलिंगमें बना है। मादृश (=स्त्री०) मादृशी, मादृक्ष (स्त्री०) मादृक्षी'मेरे समान'अर्थहै
(२)"इति विज्ञान मदनिरासः प्रज्ञापरिषहजयःप्रत्येतव्यः" यह वाक्य तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २३७में भी आयाहै इसवाक्यमें प्रश्नयहहै कि निरासः (=निराकरण,परित्याग,हटाना,छोड़ना,निवारण)भाष्यमें षष्ठी विभक्ति एक वचन पुलिंग निरास् शब्दकीहै जिस (विभक्ति)को पूज्यपाद स्वामीने

अज्ञोऽयं न वेत्ति पशुसम इत्येवमाद्यवक्षेपवचनं सहमानस्य परमदुश्चरतपोऽनुष्ठायिनो

अयम्[१]अज्ञः[१]न*वेत्तिT पशुसमः[१]इति*एवम्*आदि– =यह अज्ञानहै,पशुसम है,(कुछ)नहीं जानता है,ऐसे (=इति)इत्यादि(=एवमादि)
अवक्षेप-वचनं[१]''सहमानस्य[१]परम-दुश्चर-तपस्-अनुष्ठायिनः[१]=निंदाके वचन सहन करनेवाले(मुनि,के परम दुर्द्धर तपकरनेवाले(मुनि)के

निम्न २० परीषहोंमें लिखा है अथवा 'निरासः' प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिग निरास शब्दको है॥नीचे 'निरासः' का(न)अधिकत संख्या छह(६)है।
(क) मन्यमानस्य = आनंदमानने वाले (मुनि)के (ख) प्रशमयतः = अतिशमन करनेवाले (मुनि)के (ग) वसतः वसनेवाले (मुनि)के
(घ)अवहित-चेतसः = लगा हुआहैचित्त जिस(मुनि)का(ङ)प्रावरणस्य = (अङ्गों)आवरणजिस(मुनि)के (च)अतिष्ठमानस्य = पालते हुये मुनि,के
(छ) सदासद्स्य = सदा दया संयुक्त (मुनि)के (ज)विफलीकरणस्य = विफलकरनेवाले(मुनि)के(झ)आस्कन्दतः = निरादरकरनेवाले(मुनि,के
(ञ) अवलितविग्रहस्य = नहींडिगी है देहजिस(मुनि)को(ट) क्षममाणस्य = सहन करते हुये (मुनि)के (ठ) न कुर्वतः = नहीं करनेवाले(मुनि)के
(ड)समदर्शिनः = समान देखनेवाले(मुनि)के (ढ) दुरुपलक्ष्यमूर्तेः = कठिनसेदेख्याहैअङ्गजिसका (ण) संतुष्टस्य = संतोषी (मुनि)के
(त) अनपेक्षिणः = आकांक्षा न करनेवाले(मुनि)के (थ)अप्रमत्त-चेतसः = प्रमादरहितहै चित्तजिसका (द)उद्यतमतेः = उपस्थितहैमनजिसमुनिका
(ध) विरहितचित्तस्य = रहित है चित्त जिस [मुनि]का (प) अनभिसन्दधतः = अभिप्राय न रखनेवालेके (फ) असमाधानस्य = न विचारने वालेके

यह शब्द हमको अमरकोश, पद्यचन्द्रकोश इत्यादिमें नहीं मिला, वैद्यसंस्कृतआङ्गलकोशके पृष्ठ ३८६ पर पुल्लिगमें तीन [अ] हटाना [अ] थूकना [इ] खंडन करना, निरसन अर्थोंमें मिलता है हमने बहुत प्रयत्न किया परन्तु हमको 'निरास्' शब्द कहीं मिला कि निरास्+अस् =निरासः षष्ठी विभक्तिमें हो जाता,हमको राजवार्तिक तथा छह प्रति सर्वार्थसिद्धिमें उपयुक्त कहीं पाठ मिला है, राजवार्तिकको वार्तिक संख्या२८ "प्रज्ञोपकार्यावलेपनिरासः प्रज्ञाविजयः" = विज्ञान कियेहुये अहंकारका [=अवलेप] निराकरण वा परित्याग [=निरासः] सो प्रज्ञाविजयहै और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके "प्रज्ञोत्कर्षापवेप निरासः प्रज्ञाविजयः" = प्रज्ञा-उत्कर्ष-अपवेप-निरासःप्रज्ञा-विजयः" = विज्ञानके अतिशय अहंकार वा मदका छोड़ना सो प्रज्ञाविजय परीषह है, इन वाक्योंसे प्रगट है कि 'निरास' प्रथमा विभक्ति एक वचन पुंलिंग है॥श्रुतसागरटीकामें इसके संबन्ध में कुछभी प्राप्त नहीं हुआहै। पं०जयचन्द्रायजीने प्रथमा विभक्ति में उक्त वाक्यका "ऐसा विज्ञानका मद न करै, सो प्रज्ञापरीषहका जीतना कहिये" अनुवाद किया है ॥ दूनीजी जिनका विभक्त्यर्थ और शब्दशः अनुवाद है 'निरासः' को षष्ठी विभक्ति मानकर निम्न अनुवाद किया है॥"इति विज्ञान मद निरासः प्रज्ञापरिषहजयःप्रत्येतव्यः" = "ऐसा विज्ञान मदको है निराश जाके ताके प्रज्ञा परिषहको जय जानने योग्य है" न्यायदिवाकरजीने "प्रज्ञोपकार्यावलेपनिरासःप्रज्ञाविजयः" वार्तिकमें 'निरासः' को प्रथमाविभक्तिमें यह अनुवाद किया है "तहां प्रज्ञाकहिये विज्ञान ताका मद न करनासो प्रज्ञा परिषहका जीतनाहै परन्तु "इति विज्ञानमदनिरासःप्रज्ञापरिषहजयः" = 'ऐसाविज्ञानकामदका है निरास जिनके तिन मुनिराजके प्रज्ञापरीषह का जीतना जानना" अनुवादसे स्पष्ट है कि निरासः को षष्ठी विभक्ति एक वचन पुंलिंग माना है। यदि निरास (हलन्त)निरास (स्वरान्त) दिश् [स्त्री०]दिशा(स्त्री०)की भांति दोनों शब्द हों तो षष्ठी विभक्ति और प्रथमा विभक्ति विकल्पसे दोनों हो सक्तीहैं,यदि निरास्(हलन्त)नहीं हैतो प्रथमा विभक्तिमें ही 'निरासः' का ग्रहण होता है ॥ हमने यह देखकर कि पूज्यपाद स्वामीने इक्कीस परीषहोंके उक्त उपान्त्य वाक्योंमें स्पष्टतया षष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया है सब परीषहोंके उपान्त्य वाक्योंमें षष्ठी विभक्तियोंकी समानता व तुल्यता रखनेके लिये 'निरासः'को निरास्[हलन्त] शब्दकी षष्ठी विभक्ति एक वचन (पुंलिंग) [नपुंसकलिंगमें भी यही रूप होगा] ऐसे विज्ञानमदसे निराश होनेवाले जिस [मुनि]के, ऐसा अनुवाद किया है ॥ ऐसे विज्ञानमदका,हुआ है त्याग वा निवारण जिस[मुनि]केपाठकगण इस शब्दपर अधिक प्रकाश डालकर हमको सूचित करेंगे॥

नित्यमप्रमत्तचेतसो मेऽद्यत्वेऽपि विज्ञानातिशयो नोत्पद्यत इति अनभिसन्दधतोऽज्ञानपरिषहजयोऽवगन्तव्यः ॥२१॥ परमवैराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदार्थतत्त्वस्यार्हदायतनसाधुधर्मपूजकस्य चिरन्तनप्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते! महोपवासाद्यनुष्ठायिनां प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमनर्थकेयं प्रव्रज्या ! विफलं व्रतपरिपालनमित्येवमसमादधानस्य दर्शनविशुद्धियोगाददर्शनपरिषहसहनमवसातव्यम्॥२२॥ एवं परिषहान् सहमानस्यासंक्लिष्टचेतसो रागादिपरिणामास्रवनिरोधान्महान्संवरो भवति॥ आह

नित्यम्*अप्रमत्त–चेतसः[6]मे[6]अद्यत्वे*अपि*विज्ञान– =तथा सदा प्रमाद रहित है चित्त जिस(मुनि)के,मेरे लिये अब (=अद्यत्वे) भी विज्ञानका
अतिशयः[1]न*उत्पद्यतेΓइति*अनु–अभि–संदधतः[6] =अतिशय नहीं उपजता है ऐसा अभिप्राय रखनेवाले (मुनि)के
अज्ञान–परिषह–जयः[1]अवगन्तव्यः[3] ॥२१॥ =अज्ञान परिषहका जीतना जानना चाहिये ॥२१॥
परम–वैराग्य-भावना–शुद्ध-हृदयस्य[6]विदित–सकल– =परम वैराग्य भावनाकरि शुद्ध है मन जिसका जिसके प्रगट हुआ है समस्त
पदार्थ–तत्त्वस्य[6]आर्हत–आयतन– =द्रव्योंका यथार्थस्वरूप (=तत्त्व),अर्हंतके(=आर्हत) जिनमंदिर के (=आयतन)
साधु–धर्म–पूजकस्य[6]चिरन्तन–प्रव्रजितस्य[6]अद्य* =साधुके तथा धर्मके पूजनेवाले (मुनि)के, जिसके सन्यास बहुतकालसेलेकर आज तक है
अपि*मे[6]ज्ञान– =तौ भी (=अपि) [जिसका विचार नहीं है कि] मेरे ज्ञानका
अतिशयः[1]न*उत्पद्यतेΓ,महान्–उपवास–आदि– =विस्तार वा अधिकाई [=अतिशयः]नहीं उपजी है, महा अनशन आदिक
अनुष्ठायिनाम्[6]प्रातिहार्य–विशेषाः[1]प्रादुर्*अभूवन्Γ =करनेवालेके प्रातिहार्यके विशेष प्रकाश होते हैं(अभूवन् लुङ् क्रिया है),
इति*प्रलापमात्रम्[1]इयम्[1]प्रव्रज्या[1]अनर्थका[1] =ऐसा कहने मात्र है, यह [=इयम्] सन्यास (=प्रव्रज्या) निष्प्रयोज (=अनर्थका) है
विफलम्[1]व्रत–परिपालनं[1]इत्येवंअसमाद्ध्यानस्य[6] =व्रतका धारण निष्फल है इत्यादि नहीं है विचार जिस(मुनि)के
दर्शन–विशुद्धि-योगात्[5]अदर्शन-परिषह–सहनम्[1] =दर्शन विशुद्धिके संयोगसे अदर्शन परिषहका सहन
अवसातव्यम्[1] ॥२१॥ एवम्*परिषहान्[2] जानना चाहिये ॥२१॥ ऐसे [बाईस] परिषहोंका
सहमानस्य[6]असंक्लिष्ट–चेतसः[6]रागादि-परिणाम– =चित्तके बिना संक्लेश कियेहुये सहनेवालेके, रागादिक परिणाम जनित
आस्रव–निरोधात्[5]महान्[1]संवरः[1]भवतिΓ। आहΓ =आस्रवके अभावसे महान् संवर होता है। प्रश्न है (=आह=पूछता है) कि

किमिमे परिषहाःसर्वे संसारमहाटवीमतिक्रमितुमभ्युद्यतमभिद्रवन्ति उत कश्चित्प्रतिविशेषइत्य-
त्रोच्यतेअभिव्याख्यातलक्षणाःक्षुदादयश्चारित्रान्तराणि प्रतिभाज्या नियमेन पुनरनयोःप्रत्येतव्याः

॥सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश॥१०॥

किम्*इमे[1] परिषहाः[1] सर्वे[1] संसार-महा-अटवीं[2] =क्या(=किम्)समस्त ये(=इमे)परीषहायें संसाररूप महाबनीको
अतिक्रमितुम्[2] अभि-उद्यतम्[2] अभि-द्रवन्ति T उत*कश्चित्*=हरनेको उद्यमी पुरुषको आती हैं अथवा कुछ
प्रतिविशेषः[1] इति*अत्र*उच्यते T =विशेष है, इस प्रकार (प्रश्न होनेपर यहां(=अत्र)वा इस स्थानमें कहा जाता है कि
अमी[1] व्याख्यात-लक्षणाः[1] क्षुदादयः[1] =ये वर्णित स्वरूपवाली (=लक्षणाः) क्षुधादिक [बाईस परीषह]
चारित्र-अंतराणि[2] प्रतिभाज्याः[1] =अन्यचारित्रों[सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि]को भेदरूपआती हैं
नियमेन[2] पुनः*अनयोः[2] =और[बधेइये]दो चारित्र(सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात]में(निम्नसूत्रद्वारा)नियमकरि
प्रत्येतव्याः[1] =प्रतीत करनी चाहिये अथवा जानना योग्य है ॥

सूत्रम्–[1]सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

पदच्छेद—सूक्ष्मसाम्पराय- छद्मस्थवीतरागयोः[2] चतुर्दशः[1] परिषहाः[1] भवन्ति ॥१०॥

सूत्रार्थः—सूक्ष्मसाम्पराय–वीतरागे[2] =सूक्ष्मसाम्परायवीतरागमें अर्थात् दशवां गुणस्थानवर्तीमें तथा
छद्मस्थवीतरागे[2] =छद्मस्थवीतरागमें अर्थात् उपशांतकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्तीमें,तथाक्षीणकषाय
बारहवां गुणस्थान वर्तीमें
चतुर्दश[1] परिषहाः[1] भवन्ति T =चौदह परिषहायें होतीं हैं भावार्थ क्षुधा-तृषा-शीत-उष्ण-दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-
अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-प्रज्ञा-अज्ञान ये दशसे बारह गुणस्थानवर्तियोंतकमें होती हैं

[1]हमारी आम्नायके ग्रन्थोंमें बहुधा 'साम्पराय' पाठ है कहीं कहीं पर 'सांपराय' है दोनों पाठ ठीक हैं। श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य-तत्वार्थाधिगमसूत्रमें सांपराय वा साम्परायकेस्थानमें 'संपराय' है, सम्पराय शब्दभी हो सक्ता है संपराय तथा सम्पराय दोनोंही ठीक हैं॥ ध्यान रहे कि सांपराय, संपराय निम्नलिखित पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४१२,४२१ के अनुसार एक हैं "सम्पराय[पु०]सम्+परा+इण्+अच्। युद्ध, जंग, लड़ाई,आपदा। सम्परायिक [न०]सम्परायाय[=आपदे) हितं, ठन् (इक),आपत्तिके लिये, हितकारी, युद्ध,जंग,लड़ाई,साम्परायिक भीइसी अर्थमें आता है(पद्म०कोश पृष्ठ ४१२),४२१में साम्परायिक [न०]सम्परायाय[आपदे]परलोकाय वा हितम्। ठञ्[इक],द्वुः क वा परलोककेलियेहितकारी।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधालाभरोगतृणस्पर्शमलप्रज्ञाज्ञानानि । चतुर्दश इति वचनादन्येषां परिषहाणामभावो वेदितव्यः ॥ आह युक्तं तावद्वीतरागच्छद्मस्थे मोहनीयाभावाद्वक्ष्यमाणनाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारादर्शनानि तत्कृताष्टपरिषहाभावाच्चतुर्दशनियमवचनम् । सूक्ष्मसाम्पराये तु मोहोदयसद्भावाच्चतुर्दशेति नियमो नोपपद्यत इति । तदयुक्तम् । सन्मात्रत्वात् ॥

वृत्त्यनुवाद—क्षुत्-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-प्रज्ञा-अज्ञानानि[२२], चतुर्दश[१] इति*वचनात्[२२] अन्येषां[६] परिषहणाम्[६] अभावः[६] वेदितव्यः[१]; आह T तावत्[१] वीतराग-छद्मस्थे[७] मोहनीय-अभावात्[५] वक्ष्यमाण-नाग्न्य-अरति-स्त्री-निषद्या-आक्रोश-याचना-सत्कार(१)पुरस्कार-अदर्शनानि[२२] तत्कृत-अष्ट-परिषह-अभावात्[५] चतुर्दश-नियम-वचनम्[१] युक्तम्[१]; सूक्ष्मसाम्पराये[७] तु* मोह-उदय-सद्भावात्[५] चतुर्दश[१] इति*नियमः[१] न*उपपद्यते T इति* । तद्[१] ॥ अयुक्तम्[१] ॥ सत्-मात्रत्वात्[५] ॥

=क्षुधा, तृषा अथवा तृष्णा, हिम, उष्ण, डांस (दंश)मच्छर(=मशक)(इत्यादिकीड़े)
=गति,शयन, मारन, प्राप्तिका अभाव, व्याधि, तिनुका आदिका लगना,छूना,वाधुभना
=मैल, विद्वत्ता वा विज्ञानका मद, ज्ञानकी अप्राप्ति ऐसे (सूत्रमें) चतुर्दश वचनसे
=अन्य वा बची हुई (आठ)परीषहोंका अभाव जानना चाहिये । (शिष्य) पूछता है कि
=वीतराग छद्मस्थ (ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, बारहवां गुणस्थानवर्तीमें) तो(=तावत्)
=मोहनीय कर्मकी अविद्यमानतासे (इस अध्यायके पन्द्रहवां सूत्रमें) कहे जानेवाली
=(सात)नग्नता, (संयममें) अप्रीति, स्त्रियका अवलोकन वा स्पर्शन, स्थिति वा आसन
=दुर्वचन, मांगना, मान, अपमान(परीषह),ऋद्धि वा अवधिज्ञानकी अलब्धि(सूत्र १४)
=उस (मोहनीयकर्म) जनित आठ परीषहों के न होनेसे चौदह (परिषहों) का
=नियमित वा निश्चित वाक्य युक्त है,पर तु(=तु)सूक्ष्मसांपराय दशवां गुणस्थानवर्तीमें
=मोहके उदय होनेसे चौदह (परिषहका होना) ऐसा नियम
=नहीं उत्पन्न होता है ऐसे वह अर्थात्(सूक्ष्मसांपरायमें १४परिषहों का होनेका नियम)
=ठीक नहीं है।(उत्तर) (मोह)के सत् मात्रपनेसे वा[मोहनीयकर्मकी] केवल विद्यमानतासे अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें मोहका उदय अत्यन्त अल्प है नाममात्र है तिससे उपर्युक्त चौदह परीषहोंकी विद्यमानताका(और शेष आठ परिषहोंके अभावका)वचनयुक्त है।

(१)पुरस्कार = (क)आगे करना(ख)आदर, विनय (ग) साथ साथ रहना (घ) पारितोषिक[ङ] निंदा, आक्षेप,अपमान अर्थोंमेंसे अंतके अर्थमें है ।

तत्र हि केवललोभसञ्ज्वलनकषायोदयः सोऽप्यतिसूक्ष्मः ॥ ततो वीतरागछद्मस्थकल्पत्वा-च्चतुर्दशेति नियमस्तत्रापि युज्यते॥ ननु मोहोदयसहायाभावान्मन्दोदयत्वाच्च क्षुदादिवेदना-भावात्तत्सहनकृतपरिषह्व्यपदेशो न युक्तिमवतरति ॥ तन्न किं कारणम् । शक्तिमात्रस्य विवक्षितत्वात् । सर्वार्थसिद्धिदेवस्य सप्तमपृथिवीगमनसामर्थ्यव्यपदेशवत् ॥

तत्र*हि*केवल–लोभसञ्ज्वलन–कषाय–उदयः[1]सः[1]अपि*अतिसूक्ष्मः[1];
ततः*वीतराग–छद्मस्थ(१)कल्पत्वात्[2]'''चतुर्दश[1]
इति*नियमः[1]तत्र*अपि*युज्यते T ॥
ननु*मोह–उदय–सहाय–अभावात्[2]
मन्द-उदयत्वात्[2]'''च*(२)क्षुत्–आदि-वेदना–अभावात्[2]
तत्–सहन–कृत–परिषह–व्यपदेशः[1]
न*युक्तिम्[2]''अवतरति T ॥

=क्योंकि [=हि]वहां(सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें) अकेले लोभ संज्वलनकषायका
=उदय है वह(=संज्वलन लोभ कषाय)भी बहुत ही अल्प हैअर्थात् कहने मात्र है।
=तिससे(सूक्ष्मसाम्परायके)वीतराग छद्मस्थको तुल्यतासे चौदह
=ऐसा नियम तहां (सूक्ष्मसाम्परायमें)भी लगाया जाता है ।
=प्रश्न(सूक्ष्मसाम्पराय तथा छद्मस्थवीतरागमें)मोहकर्मकेउदयके सहायके न होनेसे
=तथावीमें उदय होनेसे च धादि (उक्त चोदह)वेदनाका अभावहैतिससे[=अभावात्]
=उन[क्षुधादि]की की हुई (=कृत)वेदना (=सहन) परीषह नामकी
=उचितता वा योग्यता को नहीं पहुंचती है। प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि
छद्मस्थ ग्यारहवां गुणस्थान तथा बारहवां गुणस्थानवर्तियोंके मोहके उदयका
अभावहैऔर सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थानवालेके मोहका उदय बहुतही मंद है
इसलिये उपर्युक्त गुणस्थानमें चौदह वेदना नहीं हैं, तबयहकहना उचित नहीं है
कि पूर्वकथितगुणस्थानोंमें परिषह्यें विद्यमान हैं क्योंकिपरिषह नामतोवेदनाकाहै

तद्(तत्)[1]'''न*किम्[1]'''कारणम्[1]'''शक्तिमात्रस्य[1]
विवक्षितत्वात्[2]'''सर्वार्थसिद्धिदेवस्य[1]सप्तमपृथिवी–
गमन–सामर्थ्य–व्यपदेशवत्* ।

=(उत्तर)सो [=तद्] नहीं है क्योंकि (=किंकारणम्)केवल सामर्थ्यकी
=अपेक्षासे (पूर्वोक्त कथनयुक्त है),सर्वार्थसिद्धिके देवके सातवें नरक =पृथिवी के
=गमनकी सामर्थ्यके कथनके समान(यहां)है अर्थात् जिस प्रकार सर्वार्थसिद्धिदेवके

(१) सादृश्य अर्थमें कल्पप् प्रत्यय होता है जिसकी समानता देवें उसके पश्चात् आता है जैसे पितृकल्पः=पिताके समान गुरुकल्पः=गुरुके समान, इसलिये छद्मस्थ कल्पत्वात् छद्मस्थकी तुल्यतासे ऐसा अनुवाद किया गया है। भूखके अर्थमें क्षुध्,क्षुधा स्त्रीलिंगमें आतेहैं[पद्म०कोश१ २२]

आह यदि शरीरवत्यात्मान परिषहसन्निधानं प्रतिज्ञायते अथ भगवति उत्पन्नकेवलज्ञाने कर्मचतुष्टयफलानुभवनवशवर्तिनि कियन्त उपनिपतन्तीत्यत्रोच्यते ॥ तस्मिन्पुनः-

एकादश जिने ॥ ११ ॥

सातवें नरक (=पृथिवी)के गमनकी सामर्थ्यका कथन है परन्तु उन देवोंको कहीं जानेका प्रयोजन नहीं है और राग भाव भी नहीं है जिससे गमन नहीं है तिस प्रकार इन(दशवां ग्यारहवां,बारहवां)गुणस्थानोंमें भी चौदह परिषहका कथन उपचारसे वा कल्पनामात्र है

आह=यदि-शरीरवति=आत्मनि=परिषह-सन्निधानम्=प्रतिज्ञायते= अथ-भगवति= उत्पन्न-केवलज्ञाने= कर्म-चतुष्टय-फल-अनुभवन-वश-वर्तिनि= कियन्तः= उपनिपतन्ति=इति-अत्र-उच्यते=तस्मिन्= पुनः-

=(शिष्य) पूछता है कि जो शरीरवान् आत्मामें परिषहका =निकट होना नियम कीजिये है तौ अब [=अथ] भगवान् विषैं =केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर और चार अघातिया कर्मके फल भोगने वालेमें कितने[परिषहायें]आती हैं ऐसे(प्रश्न पर)यहां कहा जाता है और तिसमें

एकादशजिने=एकादश(परिषहाः)जिनेसन्ति वा एकादश(परिषहाः)जिने(न सन्तिइतिवाक्यशेषः)

सूत्रार्थः-एकादश=परिषहाः=जिने=सन्ति=ग्यारह परिषहायें जिन(भगवान्-केवलज्ञानी)में हैं अर्थात् छद्मस्थ जीवोंके वेदनीयकर्म के उदयसे क्षुधा तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक,चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषहा होती हैं सो केवली भगवानके भी वेदनीय कर्मका उदय है इस कारण केवलीके भी प्रदेश उदय अपेक्षासे ग्यारह परिषहका होना कहा गया है परन्तु मोहनीयकर्मके नष्ट होनेसे वेदनीयकर्मका उदय बल नहीं कर सकता है, ये ग्यारह परिषहा केवलीके फलोदय रूपमें नहीं होतीं वेदनीयकर्मके सद्भाव होनेसे नाममात्र कही गई हैंवा कहनेमात्र कही गई हैं अथवा फलोदयकी अपेक्षा कथन किया जाय तो

अथवा=एकादश=परिषहाः=जिने=न=सन्ति T=ग्यारह परिषहा जिन[केवली-भगवान]में नही होतो हैं (क्योंकि यहां तेरहवां गुणस्थान वाले जिनेन्द्रके मोहके उदयके अभावसे क्षुधादि परिषहाओंका अभाव) है।

निरस्तघातिकर्मचतुष्टयेजिने वेदनीयसद्भावात्तदाश्रया एकादशपरिषहाः सन्ति ॥ ननु मोहनीयोदयसहायाभावात्क्षुदादिवेदनाभावे परिषह्व्यपदेशो न युक्तः । सत्यमेवमेतत्-वेदनाभावेऽपि द्रव्यकर्मसद्भावापेक्षया परिषहोपचारः क्रियते। निरवशेषनिरस्तज्ञानावरणे युगपत्सकलपदार्थावभासिकेवलज्ञानातिशये चिन्तानिरोधाभावेऽपि तत्फलकर्मनिर्हरणफलापेक्षया ध्यानोपचारवत् । अथवा एकादश जिने न सन्तीति वाक्यशेषः कल्पनीयः सोपस्कारत्वात्सूत्राणां ।

वृत्त्युनुवादः—निरस्त–घातिकर्म–चतुष्टयेऽ[3]जिनेऽ[7] =चार प्रकारके (=चतुष्टय) घातियाकर्मके नष्ट होनेपर जिन (तेरहवा गुणस्थानवर्ती)विषै
वेदनीय–सद्भावात्[5]तद्-आश्रयाः[1]एकादशपरिषहाः[1] =वेदनीय (कर्म)की विद्यमानतासे, उस(वेदनीय)के आश्रयीभूत ग्यारह परिषहायें
सन्ति[T] । ननु*मोहनीय-उदय-सहाय-अभावात्[5] =होती है । प्रश्न-मोहनीय कर्मके उदयके सहायके अभावसे
क्षुद्-आदि-वेदना–अभावे[7]परिषह-व्यपदेशः[1] =भूख आदि-वेदनाके निषेध होनेपर परिषहका कथन(कि जिन भगवानमें ११परिषहा होतेहैं)
न*युक्तः[1]।सत्यं[1]''वेदना-अभावे[7]अपि*एवं*एतत्[1]'' =ठीक नहीं है । हां (=एवम्)यह (=एतत्)सत्य है, वेदना वा पीड़ाके न होनेपर भी
द्रव्यकर्म-सद्भाव-अपेक्षया[3]''परिषह-उपचारः[1]क्रियते[T]=द्रव्यकर्मके विद्यमानताकी विवक्षाकरि परिषहाओंकी कल्पना कीगई है ।
निर्–अवशेष–निरस्त–ज्ञानावरणे[7]'' =समस्त (=निरवशेष) ज्ञानावरणीयकर्मके नष्ट (=निरस्त) होनेपर
युगपत्*सकल–पदार्थ–अवभासिन्-केवलज्ञान– =एककाल (=युगपत्) समस्त वस्तुओंके जाननेवाले केवलज्ञानके
अतिशये[7]चिन्ता–निरोध–अभावे[7]अपि*तत्– =प्रभावमें चिन्ताका निरोध न होनेपर भी उस (चिंता निरोध वा ध्यान) का
फल–कर्म-निर्हरण-फल-अपेक्षया[3]''ध्यान-उपचार– =फल जो कर्मका नाशकी सिद्धि (=फल)के विवक्षाकरि ध्यानकी कल्पनाके
वत्* =सम(ग्यारह परिषहकी कल्पना)है। सारांश जैसे घातिया कर्मोंका नाश होनेपर केवलज्ञानमें युगपत् सर्वपदार्थ भासते हैं और चिंता निरोध(अर्थात् ध्यान) केवल ज्ञानकी अवस्थामें असम्भव है तौभी ध्यानका फल शेषकर्मोंके खिपानेकाहै इससे ध्यानकी वहां भी कल्पना है तैसे केवल ज्ञानीके भी मोहके उदयके होनेसे ११परिषह कल्पनामात्रहैं

अथवा*सोपस्कारत्वात्[5]।।सूत्राणाम्[6]''एकादश[1]' =वा (अन्य अक्षर वा शब्दों द्वारा) सूत्रोंका उपकार किये जाने से ग्यारह परिषहायें
जिने[7]'न सन्ति[T] इति*वाक्य–शेषः[1]कल्पनीयः[1]' । =जिन (भगवान्)में नहीं हैं,"न सन्ति" वाक्यका (सूत्रमें)छोड़देना मानलेना चाहिये;

विकल्प्यो हि वाक्यशेषो वाक्याधीन इत्युपगमात्। मोहोदयसहायीकृतक्षुदादिवेदनाभावात्। आह यदि सूक्ष्मसाम्परायादिषु व्यस्ताः परिषहाः अथ समस्ताः क्वेति—

अर्थात् सूत्रोंकी पूर्णता अन्य शब्दोंकरि होती है इसलिये 'नसंति' वाक्यको 'एकादश जिने' में लगावनेसे अर्थ होता है कि जिन भगवानमें ग्यारह परिषहा भी फलोदय अपेक्षासे नहीं है।

वाक्य-आधीनः इति*उपगमात् विकल्प्यः हि*=वाक्य (वक्ताके) आधीन है ऐसा माननेसे दूसरे प्रकारका ही (=विकल्प्यः हि) अर्थात् उल्टे प्रकार वा निषेध 'रूप न संति'

वाक्य-शेषः;मोह-उदय-सहायीकृत-क्षुत्-आदि-वेदना-अभावात्

=वाक्य शेष वा शुभ वाक्य[सूत्रमें]आता है। मोहनीयकर्मके उदयके सहायसे उत्पन्न हुई =क्षुदादिवेदनाके अभाव होनेसे(जिन भगवान्में ग्यारह परीषह भी नहीं है)ऐसा अर्थ भीहै।

आहायदि*सूक्ष्मसाम्पराय-आदिषु व्यस्ताः=[प्रश्न करता है] जो सूक्ष्मसाम्पराय आदिक में भेद रूप (अर्थात् किसी गुणस्थानमें कोई और,अन्य अन्य गुणस्थानमें और और भिन्नभिन्न प्रकारकी)

परिषहाः अथ*समस्ताः क्व*इति*

=परिषहायें होती हैं तौ अब सर्व (परिषहायें) कहां होती हैंऐसे [प्रश्नपर कहा जाता] है कि

१—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इसी सूत्रके आधारपर ग्यारह परिषहका जिन भगवान्में होना यथार्थरूपसे माना है इसलिये उनका कथन है कि महावीर स्वामी केवल ज्ञानकी अवस्थामें भी कवलाहार करते थे और रोगसे भी पीड़ित हुये इत्यादिक अनेक प्रकारसे कथन है ॥सदासुखजीने अर्थप्रकाशिकामें इस सूत्रके अर्थके नीचे इस प्रकार लिखा है(और रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोकछहमें भी)केवली जिनके ह्न वेदनीय कर्मका उदय है तातै कर्मकूं कारण देख केवलीके ग्यारह परीषह कहैं। परन्तु मोहनीय कर्मके बलतैं वेदनीय कर्म प्रबल होई आहारादिककी इच्छारूप क्षुधादिक परीषह उपजावै था अब वेदनीयके मोहनीय कर्मके सहायका अभावतैं वेदना देनै रूप शक्ति नहीं रही तब क्षुधादिक वेदना कैसे उपजावे। और असाता वेदनीयकी उदीरणा होय तदि क्षुधा उपजे है॥ सो वेदनीय कर्मकी उदीरणा छठा गुणस्थान पर्यंत ही है उपरि नहीं है। तदि वेदनीयकी उदीरणा विना केवलीके क्षुधादिक बाधाको कैसे होय अर्थात् केवलीके क्षुधादिक बाधा नहीं होय है। "जैसे मन्त्र औषधादिकके बलतैं क्षीण भई है मारण शक्ति जामें ऐसा विष द्रव्य मरणके अर्थि नहीं कल्पना करिये हैं, तैसे ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध किये हैं घाति कर्मरूप ईंधन जाने और प्रगट भया है अनंत ज्ञानादिक चतुष्टय जाके ऐसे केवली जिनके अंतराय कर्मका अत्यन्त अभाव तैं निरन्तर शुभ नोकर्म पुद्गलनिका सचय होनेतैं प्रक्षीण भया है सहायबल जाके ऐसा वेदनीय कर्म अपना वेदना रूप प्रयोजन उपजावनेकूं असमर्थ है। यातैं भगवान् जिनके वेदनीयका उदय होतेहू क्षुधाका अभाव निश्चय करना इस विषयको सदासुखजीने अर्थप्रकाशिकाके इसीसूत्रकी वचनिकामें और रत्नकरण्ड श्रावकाचार्यके छठवां श्लोक क्षुत्पिपासा इत्यादिमें प्रमाण दिया है कि केवलीके ११ परिषहा कहने मात्र हैं

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

साम्परायः कषायः बादरः साम्परायो यस्य स बादरसाम्पराय इति॥ नेदं गुणस्थानविशेषग्रहणम् । किं तर्हि अर्थनिर्देशः॥ तेन प्रमत्तादीनां संयतानां ग्रहणं॥ तेषु हि अक्षीणकषायदोषत्वात्सर्वे सम्भवन्ति ॥ कस्मिन् पुनश्चारित्रे सर्वेषां सम्भवः ?

---

(१)बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः-बादर-साम्पराये[७] सर्वे[१] द्वाविंशतिः[१] परिषहाः[१] संभवन्ति T ॥

=बादर-साम्पराये सर्वे(द्वाविंशति-परिषहाः संभवन्ति)

=स्थूल (=बादर) कषायवालेमें (=साम्पराये) सकल बाईस परीषहा

=हो सकती हैं अर्थात् प्रमत्त छठवां गुणस्थानवर्तीमें, अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्तीमें, अपूर्वकरण आठवां गुणस्थानधारकमें,अनिवृत्तकरण नवमां गुणस्थानवर्तीमें सब बाईस परिषहोंका होना संभव है ॥

वृत्त्यनुवादः—साम्परायः[१] कषायः[१] (२)बादरः[१] साम्परायः[१] यस्य[६] =साम्पराय है सो कषाय है,स्थूल(=बादर)कषाय(=साम्पराय)जिसके है

सः[१] बादर-साम्परायः[१] इति *न *इदम्[१] गुणस्थान-विशेष-ग्रहणम्[१] =सो बादर साम्पराय है,यहां(=इदम्)गुणस्थान विशेषका आदान नहीं है

अर्थात् बादरसाम्पराय वाक्यसेकिसीगुणस्थानका विशेषतासे ग्रहण नहीं है,

किम् *तर्हि *अर्थ-निर्देशः[१] ॥ =परन्तु [=किन्तर्हि] प्रयोजन (मात्र)का कथन अथवा उपदेश है ।

तेन[३] प्रमत्त- =तिस (बादर साम्पराय वाक्य)करि प्रमत्त (छटवां गुणस्थानवर्ती)

आदीनाम्[६] संयतानाम्[६] ग्रहणम्[१] ॥ तेषु[७] हि * =आदि संयमीयोंकाग्रहण है,क्योंकि(=हि)तिन(प्रमत्त आदि संयमीयों)में

अक्षीण-कषाय-दोषत्वात्[५] (३)सर्वे[१] सम्भवन्ति T ॥ =कषायके विद्यमानताके दोषतासे समस्त(परिषहा) हो सकते हैं,

कस्मिन्[७] पुनः *चारित्रे[७] सर्वेषाम्[६] संभवः[१] ? =बहुरि किस चारित्रमें सब (परिषहों) का होना संभव है ?

---

(१) इस सूत्रका अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है (२) बादर अथवा बादर दोनों शब्द ठीक और शुद्ध हैं बहुधा पुस्तकोंमें "बादर" पाठ है कहीं कहीं पर "वादर" पाठ भीहै । (३) सर्वे शब्द प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, पुंलिंग सर्व शब्दका है और यह इसका सर्वत्र एकसा रूप है ॥

सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमेष्वन्यतमे सर्वेषां सम्भवः॥ आह गृहीतमेतत्परिषहाणां स्थानविशेषावधारणं, इदं तु न विद्मः कस्याः प्रकृतेः कः कार्य इत्यत्रोच्यते

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने॥१३॥

इदमयुक्तं वर्तते। किमत्रायुक्तं ज्ञानावरणे सत्यज्ञानपरिषह उपपद्यते, प्रज्ञापरिषहः पुनस्तदपायेभवतीति,

सामायिक—च्छेदोपस्थापन—परिहारविशुद्धि—संयमेषु अन्यतमे सर्वेषाम् सम्भवः, आह T एतत् परिषहाणाम् स्थानविशेष—अवधारणम् गृहीतम् इदम् तु*न*विद्मः—कस्याः प्रकृतेः॥कः कार्यः इति*अत्र*उच्यते T

=सामायिक, च्छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि संयमोंमें (तीनोंमें)से =कोई एक (संयम)विषै समस्त(परिषहों)का[होना]सम्भव है,(शिष्य)पूछता है कि यह =परिषहोंके स्थान विशेषका(अर्थात् किस किस गुणस्थानोंको कौनकौन परिषहकाहोना) =निश्चय(=अवधारण)किया गया है(=गृहीतं)परन्तु (=तु)यह हम नहीं जानते हैंकि =किस (कर्म) प्रकृतिका (परिषहोंके संबंधमें) क्या कार्य है ऐसे यहां कहाजाता है कि

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने॥१३॥

=ज्ञान-आवरणे उदये, प्रज्ञा-अज्ञाने-परिषहौ भवतः॥१३॥

ज्ञान-आवरणे उदये प्रज्ञा-अज्ञाने परिषहौ भवतः T=ज्ञानावरणके उदयमें प्रज्ञा तथा अज्ञान दो परिषहायें होती हैं

वृत्त्यनुवादः-इदम् अयुक्तम् वर्ततेकिंअत्र*अयुक्तम्—=(प्रश्न)यह ठीक नहीं है,(=वर्तते)यहां क्या अयुक्त अर्थात् इसमें क्याअयुक्त है।

ज्ञान-आवरणे सति अज्ञान-परिषहः उपपद्यते T=ज्ञानावरणके (उदय) होनेपर (=सति) अज्ञान परिषह उपजती है,

प्रज्ञा-परिषहः पुनः*तद्-अपाये भवति। इति*

=बहुरि(=पुनः)प्रज्ञा परिषहउस(*ज्ञानावरण कर्म)के अभावमें होती है अर्थात् ज्ञानके आच्छादन करनेवाले कर्मके उदय होते संते अज्ञान परिषह प्रगटहोती है,परन्तु विशेष ज्ञान वा बुद्धि (=प्रज्ञा) की प्रगटता ज्ञानके आच्छादन करनेवाले कर्मके अभावमें होती है,

(१) विद् द्वितीया अदादि गणका धातु है इसका अर्थ जानना है इसमें कोई विकरण क्रियाके प्रत्ययसे पहिले नहीं लगाया जाता है चरन् क्रियाका चिन्ह लगा दिया जाता है, सो यहां पर 'मस' उत्तम पुरुष बहुवचन वर्तमानकालकी द्योतक क्रियाका चिन्ह है, जानते हैं(हम) =विद्मः ऐसा अर्थ है॥ (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है॥

कथं ज्ञानावरणे स्यादित्यत्रोच्यते-क्षायोपशमिकीप्रज्ञा अन्यस्मिन् ज्ञानावरणे सति मदं जनयति न सकलावरणक्षये इति ज्ञानावरणे सतीत्युपपद्यते॥ पुनरपरयोःपरिषह्योःप्रकृतिविशेषनिर्देशार्थमाह-

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

कथम्*ज्ञान-आवरणे^{७}'''स्यात्^{१}इति*अत्र*उच्यते^{१}। =ज्ञानावरण (के उदय)में कैसे[प्रज्ञा परिषह] होती है ऐसे(प्रश्न पर) यहां कहाजाता है कि

क्षायोपशमिकी^{१}'''प्रज्ञा^{१}'''अन्यस्मिन्^{७}'''ज्ञानावरणे^{७}''' =क्षायोपशजनित प्रज्ञा अन्यमें वा परमें ज्ञानावरण कर्मके

सति^{७}'''मदम्^{२}जनयति^{१}न*सकल-आवरण-क्षये^{७}' =होनेपर मदको वा अहंकारको उत्पन्न करती है न कि समस्त (ज्ञान) आवरणके

=क्षयमें (प्रज्ञा मदको उपजाती है) अर्थात् जहां मद प्रज्ञा है सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे होती है और मदको उत्पन्न करती है ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम वालेके ज्ञानावरणकर्मकी विद्यमानता अवश्य ही होती है परन्तु वह प्रज्ञा विद्वत्ता वा विज्ञानकला जो समस्तज्ञानावरणकर्मके नाश होनेपर होतीहै केवलज्ञानीके उपजती है वहां मद वा अहंकार किंचित् भी नहीं होता है ॥

इति*ज्ञानावरणे^{७}'''सति^{७}'''इति*उपपद्यते^{१}। =ऐसे ज्ञानावरण कर्मके हानेमें(=सति)ऐसी(मंद प्रज्ञा) उत्पन्न होती है, इस समस्तका भावार्थ यह है कि ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई मंद प्रज्ञा से ही अहंकार उपजाती है जिसके (अर्थात् तेरहवां वा चौदहवां गुणस्थानवर्तियोंके)सकल ज्ञानावरण का नाश होजावैगा, वहां प्रज्ञाका मद नहीं उपजेगा,प्रज्ञा वा विद्वताका मद क्षयोपशमज्ञानीके होता है और क्षयोपशमज्ञानीके ज्ञानावरणका उदय विद्यमान है ही। इस लिये प्रज्ञा (परीषह) ज्ञानावरणकर्मके उदयमें होती है।

पुनः*अपरयोः^{२}परिषह्योः^{२}प्रकृति-विशेष-निर्देश-अर्थम्^{२}'''आह^{१}। =पुनि अन्य दो परिषहोंकी [कर्म] प्रकृतिके

=विशेष कथनके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ = दर्शनमोह-अन्तरायोः अदर्शन-अलाभौ क्रमेण भवतः॥ १४॥

यथासंख्यमभिसम्बन्धः । दर्शनमोहे अदर्शनपरिषहः । लाभान्तराये अलाभपरिषह इति ॥

आह यद्याद्ये मोहनीयभेदे एकः परिषहः अथ द्वितीयस्मिन् कति भवन्तीत्यत्रोच्यते—

चरित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः॥१५॥

सूत्रार्थः—दर्शनमोह-अन्तरायय:[2]अदर्शन-अलाभौ[2]क्रमेण[1]भवतः T ॥

=दर्शनमोह और अन्तराय दोनों [कर्मों] [के उदय]में अदर्शन [परिषह] =और अलाभ(परिषह) (क्रमसे) होती हैं अर्थात् दर्शन मोहनीयकर्मके उदय होनेपर अदर्शन परिषह होती है और अन्तरायकर्मके उदयमें अलाभ परिषह होती है ॥

वृत्यनुवादः—यथा—संख्यम्*
अभिसम्बन्धः[1],दर्शनमोहे[2]अदर्शनपरिषहः[1],
लाभ-अन्तराये[2]अलाभपरिषहः[1] इति*;
आह T यदि*आद्ये[2]मोहनीय-भेदे[2]एकः[1]
परिषहः[1]अथ*द्वितीयस्मिन्[2]कति[1]भवन्ति T
इति*अत्र*उच्यते T

=(दर्शन मोह और अन्तरायका अदर्शन और अलाभके साथ) क्रमानुसार वा अनुक्रमसे =सम्बन्ध है, दर्शनमोह कर्म (के उदय)में अदर्शन परिषह वा दर्शनाभाव परिषह होती है, =और लाभान्तराय[कर्मके उदय]में अलाभ परिषह होती है ऐसे [सम्बन्ध] है, =प्रश्न करता है कि जो [=यदि] प्रथम वा आदिमें मोहनीय (कर्म)के भेदमें (अदर्शन)एक =परिषह होती है, अब (=अथ) दूसरे [मोहनीय कर्मके भेद]में कितनी (परिषहा) होती हैं =ऐसे [प्रश्न होनेपर] इस स्थानमें (=अत्र) [अग्रिम सूत्रमें] कहाजाता है कि

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः। [दोनों समाजोंमें पाठ,अर्थ एक है]

= चारित्रमोहे-नाग्न्य-अरति-स्त्री-निषद्या-आक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः (परिषहाः भवन्ति)

सूत्रार्थः—चारित्रमोहे—नाग्न्य—अरति—स्त्री—निषद्या—आक्रोश—याचना—सत्कारपुरस्काराः[3]परिषहाः[1]भवन्ति T ॥

=चारित्र मोहनीयकर्म [के उदय होने]में निरावरणतन वा नग्नता, (संयममें) अप्रीति =स्त्रीका अवलोकन वा स्पर्शन, आसन, अनिष्ट वचन वा दुर्वचन, मांगना वा प्रार्थना, =मानअपमान वा सत्कारतिरस्कार (ये सात)परिषहायें होती हैं अर्थात् चारित्रमोहनीय प्रकृति जब उदयको प्राप्त होती है तब(१)निरावरण तन परिषह (२)संयममें मुनिकी अप्रीति परिषह[३]स्त्रीकाअवलोकन वा स्पर्शन परिषह(४) आसनपरिषह[५] अनिष्टवचन वा दुर्वचन परिषह[६]मांगनेकीपरिषह [७]मानअपमान परिषह वा सत्कारतिरस्कार होती हैं।

पुंवेदोदयादिनिमित्तत्वान्नाग्न्यादिपरिषहाणां मोहोदयनिमित्तत्वं प्रतिपद्यामहे । निषद्यापरिषहस्य कथम् ? तत्रापि प्राणिपीडापरिहारार्थत्वात् । मोहोदये सति प्राणिपीडापरिणामः सञ्जायत इति ॥ अवशिष्टपरिषहप्रकृतिविशेषप्रतिपादनार्थमाह—**वेदनीये शेषाः॥ १६॥**

पुंवेद–उदय–आदि–निमित्तत्वात्[५]'''नाग्न्य–आदि–=पुरुषवेदके उदय आदिके कारणपनेसे नाग्न्य अरति-स्त्री-आक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कार परिषहाणाम्[६]'मोह उदय-निमित्तत्वं[६]'''(१)प्रतिपद्यामहे=परिषहोंके मोहनीय कर्मके उदयका निमित्तपनाको (हम) मानते हैं(=प्रतिपद्यामहे),

निषद्या–परिषहस्य[६]'कथम्* ?

=निषद्या परिषहके कैसे (मोह उदयका निमित्तपणा) है अर्थात् प्रश्नका आशय ऐसा है कि चारित्र मोहनीय कर्मके उदय होनेपर सात परिषहायें होती हैं उनमें पूर्वोक्त छह परिषहायें तो पुरुषवेद आदि चारित्र मोहनीयकर्मके भेदोंसे होती हैं परन्तु निषद्या परिषहा तो आसनकी परिषहा है इसके चारित्र मोहनीयकर्मके उदयका कारण कैसे है।

तत्र*अपि*प्राणिन्–पीडा–परिहार–अर्थत्वात्[५]'''मोह–उदये[६]'सति[७]'प्राणिन्–पीडा–परिणामः[१]'सञ्जायते T इति * ॥

=(उत्तर)वहां (निषद्या वा आसन परिषहमें) भी प्राणियोंके कष्टके निवारणका =प्रयोजनहोनेसे(=अर्थत्वात्) मोहनीयकर्मके उदय होनेपर प्राणियोंको कष्ट देनेका =भाव उत्पन्न होता है भावार्थ प्राणियोंको कष्ट देनेके परिणाम मोहके उदयसे होते हैं, आसनसे चिगना मोहके उदयके कारणसे है,अतः मोहनीय कर्मको यहां मुख्यता है।

अवशिष्ट-परिषह-प्रकृतिविशेष-प्रतिपादन-अर्थम्[१]'''आह=बची हुई (ग्यारह) परिषहोंके विशेष निमित्त(=प्रकृति)कहनेकेलिये (आगे)कहते हैं कि

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

वेदनीये[७]'''शेषाः[१]'एकादश[१]'परिषहाः[१]'भवन्ति T

=वेदनीये[७]॥ शेषाः[१](एकादश[१]परिषहाः[१]) भवन्ति ॥१६॥

=वेदनीय (कर्मके उदय)में बचीहुई ग्यारह परिषहाये होती हैं अर्थात् क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश, मशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषहायें वेदनीय कर्मके उदय होनेपर होती हैं ॥ १६ ॥

(१)पद् दिवादि चौथेगणका धातु है। पद् धातुका जानाअर्थ है परन्तु प्रतिके लगानेसे प्रतिपद्=मानना वा स्वीकार करना अर्थ होजाता है; 'य' चौथेगणका विकरणहै, महे उत्तम पुरुष बहुवचन, आत्मनेपद वर्तमान क्रियाका चिन्ह है,प्रति+प्रय+महे=प्रतिपद्यामहे क्योंकि उत्तम पुरुषके वे प्रत्यय जो म्-व्से प्रारंभ हों,इनके पहिले आया हुआ अकार दीर्घ होजाता है अतः प्रति+पद्+य+महे=प्रति+पद्या+महे=प्रतिपद्यामहे।

उक्ता एकादश परिषहाः । तेभ्योऽन्ये शेषा वेदनीये सति भवन्तीति वाक्यशेषः ॥ के पुनस्ते ? क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलपरिषहाः ॥ आह— क्याख्यातनिमित्तलक्षणविकल्पाः प्रत्यात्मनि प्रादुर्भवन्तः कति युगपदवतिष्ठन्त इत्यत्रोच्यते—

(प्रथम पाठ)एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥१७॥

वृत्त्यनुवादः—एकादश[1]

परिषहाः[1]उक्ताः[1],तेभ्यः[1]अन्ये[1]शेषाः[1] वेदनीये[1]सति[1]भवन्ति T इति* वाक्यशेषः[1];

=ग्यारह(प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शन-अलाभ-नाग्न्य-अरति-स्त्री-निषद्या-आक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कार/ =परिषहायें कही गईं, तिन(ग्यारह परिषहाओं)से भिन्न बचे हुये वा अवशेष(परिषहायें) =वेदनीय (कर्मकी प्रकृतिके उदय)के होनेपर (=सति)होती हैं,] =ऐसा (अर्थात् तेभ्यो अन्ये सति भवन्ति)गुप्त वाक्य वा छिपा हुआ वाक्य(वेदनीये शेषाः— १६वां सूत्रमें)है अर्थात्"वेदनीय शेषा"इससूत्रमें"तेभ्यो ऽन्ये सति भवन्ति"जोड़ना चाहिये

के[1]पुनः* ते[1]?क्षुत्-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-रोग-तृणस्पर्श-मल-परिषहाः[1] ॥ आह T—

=और (=पुनः)ते (ग्यारह परिषहायें)कौन हैं (उत्तर) क्षुधा वा भूख, प्यास, हिम,धूप वा उष्ण =डांस मच्छर आदिका काटना, गमन, शयन, मारन, रोग, तिनका आदिकका चुभना, =मल परिषहायें हैं॥ (शिष्य वा वादी) प्रश्न करता है कि (परिषहाओंके ज्ञानावरणादिक)

व्याख्यात-निमित्त-लक्षण-विकल्पाः[1]

=निमित्त लक्षण और भेद कहे गये हैं अर्थात् कौनकौन परिषह किनकिन कर्मों की प्रकृतियों के निमित्त वा हेतुसे होती हैं, इसके स्वरूप [=लक्षण] तथा भेद[विकल्पाः]कहे गये

प्रति*आत्मनि[1]प्रादुर्भवन्तः[1]कति[1]युगपद्* अवतिष्ठन्ते T इति* अत्र* उच्यते T—

=[परन्तु हमने यह नहीं जाना कि]एक जीवमें कितने [परिषह] एकसाथ वा एक कालमें प्रगट =हो(रुक)ते हैं ऐसा [प्रश्न होनेपर]इस स्थानमें [अगले सूत्रमें]कहा जाता है कि

(१)(प्रथम पाठ) एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥ १७ ॥

[१]इस सूत्रके पाठ भिन्न भिन्न प्रतियोंमें पृथक् पृथक् हैं कुछ व्याकरणकी रीतिसे शुद्ध हैं कुछ अशुद्ध हैं,प्रथम इसके कि हम उन पाठोंकोलिखकर उनपर समालोचनाकरें एकस्मिन्नैकोन विंशतेः(=एकस्मिन् + ऐकोनविंशतेः) = एकस्मिन् + आ + एकान विंशतेः = एकस्मिन् + आ + एक + ऊनविंशतेः पर कस्मिन्नैकाऽविंशतेः(=एकस्मिन् + ऐकाऽविंशतेः) = एकस्मिन + आ + एकाऽविंशतेःवाक्योंपर टिप्पणी लिखदें कि सूत्रसरलतासे समझमें आजावे

=एक-आदयःभाज्याःयुगपद् एकस्मिन् आत्मनि ऐकौन(आ–एकोन)विंशतेःपरिषहाःसम्भवन्ति।

अर्थात् एकस्मिन्(इस दुहरे हलन्त न् का पदच्छेदमें एक हलन्त न् कैसे रह गया)आ,एकोन,एकात्र, और एकात्रविंशति,किस २ अर्थकेद्योतकहैं (अ) जब ङ्-ण-न् मेंसेकोई शब्द अथवा पदके अन्तमें हो और उसके पहले कोई ह्रस्व स्वर आवे और उक्त ङ्-ण्-न्के पश्चात् कोई स्वर होतो ङ्-ण्-न् दुहरा हो जाता है इसलिये एकस्मिन्+ऐकोन और एकस्मिन्+ऐकात्रके, एकस्मिन्नैकोन और एकस्मिन्नैकात्र क्रमसे होगये। (आ) आ-सामान्यरूपमें अव्यय है( )वर्णमालाका दूसरा स्वर ( )अनुकम्पा,दया( )वाक्य ( ), संशय[ ]मेल [ ]अंगीकार [ ] कष्ट, शोक [ ] स्मृति, स्मरण [पुंलिंगमें इसका अर्थ महादेव है]॥ वाक्य और स्मरणसे भिन्न वह ङित् होता है अर्थात् वाक्य और स्मरण अर्थमें ङित् नहीं होता है वरन् इसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है। ङित् वह है जिसके अंतमें ङ् हो, आ जब ङित् होता है तब 'आङ्' ऐसा रूपहोता है, इस ङ् को अनुबन्ध कहते हैं, धातु,प्रत्यय, आगम और आदेशमें गुण, वृद्धि आदि कार्य विशेषके लिये लगाया गया कोई वर्ण अक्षर जो कि पदकी सिद्धिकालमें इत् होकर लोप होजाता है इसीको अनुबन्ध कहते हैं, पदकी सिद्धिमें इत्(=सूत्र शब्द, अथवा वाक्यका अंतिम केवल व्यंजन, अकेला व्यंजनमात्र)का लोप हो जाता है॥ व्याकरणमें स्वर सन्धि न होने योग्य पदको प्रगृह्य कहते हैं अर्थात् सन्धिके नियमोंको विना पालन किये हुये किसी शब्दको लिखना अथवा उच्चारण कर देना, सारांश वे स्वर जिनकी संधि न होवे॥ उपर्युक्तसे प्रगट है कि उक्त अव्यय वा निपात जो कि प्रगृह्य नहीं है आङ् रूपमें है और जो प्रगृह्य है आ रूप में शोच, शोक, स्मरण इत्यादि प्रगट करनेमें आता है॥ हमारा संबंध यहां आङ्से है अर्थात् जो प्रगृह्य नहीं है और जिस पर स्वरसंधिके नियम लागू हैं इसका प्रयोग निम्न चार अर्थोंमें होता है॥

(क) जब ईषा,गुण वाचक इत्यादि शब्दोंके साथ जोड़ा जाताहै तब थोड़ा,अल्प,ईषत् वा किंचित् अर्थमेंआताहै॥जैसे कम्प=कपकपी,थरथराहट आकम्प=थोड़ी कपकपी,अल्प थरथराहट,पाण्डु=श्वेत,आपाण्डु=किंचित् शुक्ल,उष्ण=तपा हुआ,आ+उष्ण=आष्ण=थोड़ातप्त, ईषत्तपा हुआ,

(ख) क्रिया वा धातुके पहिले लगाया जाय तो पास,समीप, और सबओरसे का अर्थ देता है, जैसे-आमेन्द्रैरिन्द्रयेतु=आ-मेन्द्रैः इन्द्रःयेतु=इन्द्र चारोंओरसे योद्धोंद्वारा(यज्ञमें)प्राप्त हो अर्थात् इन्द्र यज्ञमें जो चाहे तिसओरसे आसक्ता है,जब उन धातुओंके प्रथम लगाया जाय जो जाना,देना, लेना, लेजाना अर्थोंमें आते हैं तो क्रियाके अर्थको उलट देता है जैसे याति=वह जाता है आयाति=वहआता है, गच्छति=वह जाता है, आगच्छति=वह आता है दत्ते=वह देता है, आदत्ते=वह लेता है, वह ग्रहण करता है, गृह्णते=वह पकड़ता है, आगृह्णते=वह छोड़ता है

(ग-घ) आङ् मर्यादाभिविध्योः=आङ् मर्यादा-अभिविध्योः(समास अव्ययीभाव विभाषा ङसिभ्या सह)अष्टाध्यायी २-१-१३ सूत्र=मर्यादा(अर्थात् उसके बाहर बाहर और अभिविधि अर्थात् जो सीमा कहें उसको मिलाकर, अभिव्याप्ति करके, गर्भित करके, अन्तर्गतकरके,) अर्थों में वर्तमान जो आङ्(=आ)वह पंचमी अपादान विभक्तिके साथ विकल्पसे (=विभाषा) समासको प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो, पञ्चमी विभक्तिके साथ समास न करे तो द्वितीया विभक्तिके साथ अव्ययीभाव समास हो॥ प्रथमा तृतीया आदि आङ्के साथ नहीं आसक्ती।

(ग) मर्यादा अर्थमें जैसे आमुक्तेःसंसारः मुक्तिकी सीमासे (बाहर) संसार है अर्थात् मुक्तिकी सीमाके बाहर संसार है, एक मुक्तिकी सीमा मानलो और एक संसारकी दोनों सीमायें एक दूसरेसे चिपटी हुई हैं यहां आङ् अव्ययका यह प्रभाव हैकि मुक्तिकी सीमासे संसारकी सीमाको बाहर बाहर रखता है जिस शब्दके पहले यह मर्यादाका अर्थमें आता है तो उस वस्तुकोनिकाल देता है छोड़देता है, उस वस्तुसे बाहर बाहर अन्य वस्तुयें प्रगट करता है उस वस्तुके इधर किसीकी विद्यमानताको प्रगट करता है॥ अतः अर्थ हुआ कि मोक्षसे बाहर संसार है, [मोक्षको छोड़कर संसार है, मोक्षके इधर इधर संसार है,मोक्षसे हटकर संसार है सारांश मोक्षसे पहिले संसार है।द्वितीया विभक्तिके साथ"आमुक्तिम् संसारः" का भी यही अर्थ है। मर्यादा, अभिविधिके अर्थमें पंचमी वा द्वितीयाविभक्तिके अतिरिक्त आङ्के साथ और विभक्ति नहीं आसक्ती है।

(द्वितीय पाठ)एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकान्नविंशतिः ॥१७॥

(द्वितीय पाठ) एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकान्नविंशतेः ॥ १७ ॥

=पदच्छेद–एक-आदयः भाज्याः युगपद् एकस्मिन्(आत्मनि)एकान्नविंशतेः(परिषहाःसम्भवन्ति)

दूसरा उदाहरण—आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः =पटनासे निकट वर्षा हुई अर्थात् पटनाकी सीमाको छोड़कर पटनासे बाहर, पटनाके इधर इधर वर्षा हुई ॥ द्वितीया विभक्तिके साथ 'आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः' वाक्यका भी यही अर्थ है ॥

(ब)अभिविधि वा अभिव्याप्ति अर्थमें अर्थात् जिसके पहिले आङ्(आ)शब्द आता है उसको अपनेमें सम्मिलित करलेता है अपनेमें अन्तर्गतकरता है, जैसे आकुमारं (द्वितीया विभक्ति) आकुमारेभ्यो (पञ्चमी विभक्ति) यशः पाणिनेः=(मनुष्योंसे) बालकों तक पाणिनि मुनिका यश वा नाम है जैसे आबालं (द्वितीया विभक्ति) आबालेभ्यो (पञ्चमी विभक्ति) हरिभक्तिः =(पुरुषोंसे) छोकरे तक वा छोकरे पर्यन्त हरिकीभक्तिमें(लगेहुये) हैं हमारा प्रयोजन आङ के अभिविधि अर्थसे (तत्त्वार्थ सूत्रके समस्त सूत्रोंमें) है और श्री उमास्वामीने सब सूत्रोंमें जहां आङ का प्रयोगकिया है तथा पूज्यपाद स्वामीनेभी समस्त सर्वार्थसिद्धिकीवृत्ति(भाष्य)में जहां आङ्का प्रयोग किया है इसी अभिविधि अर्थमें लिया है जैसाकि निम्नमेंहै

( )एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः(=युगपद्एकस्मिन्आचतुर्भ्यः) =एकज्ञानको आदि लेकरभाज्यरूपएकसाथएकजीवमें चारज्ञानतकहों

( )तैजसानि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः(=युगपद्एकस्मिन्आचतुर्भ्यः) =उन(तैजस, कार्मण)को आदि लेकर विकल्परूप कियेहुये वा विभाजित किये हुये एककालमें एक [जीव]में चार[शरीर] तक (चार शरीर पर्यन्त) होते हैं

( ) आ आकाशादेकद्रव्याणि (अध्याय५ सूत्र६) =(प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर)आकाश पर्यन्त अर्थात् धर्म अधर्म आकाश एकएकद्रव्य हैं

( ) एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः(एकस्मिन् आ + एकोनविंशतेः) =एकको आदि लेकर एककालमें वाएकसाथ एक(जीव)मेंएकन्यून बीस (परिषहायें)तक,(=आ)पर्यंत(=आ)अर्थात् उन्नीस परिषहायें तक भाज्यरूप करना चाहिये

( ) उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात् (आ'अन्तर्मुहूर्तात्)' =उत्तमसंहनन (वज्रवृषभनाराच-वज्रनाराच-नाराच)वालेका ध्यान अर्थात् अन्य पदार्थोंसे चित्तको रोककर एक ही विषयमें मनका लगाउ है सो अन्तर्मुहूर्त तक है

( ) तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् [`गच्छति आ-लोकान्तात्] =उन(सबकर्मों के नाश)के पीछे मुक्तजीव ऊपरको लोकके अंततक जाता है

जब निपात 'आ' चार पूर्वोक्त अर्थोंमेंसे किसीमें न आये हो और जब उसका प्रयोग शोक,शोच, स्मरण इत्यादि प्रकाश करनेमें किया जाता है तब वह प्रगृह्य है जैसे आ एवं किलासीत् =आ-एवम्-किल-आसीत् =ओहो एकवार[वहां]ऐसा था (=आसीत्)यहां स्मरणमेंआकोङित् संज्ञा नहीं हुई अतः(निपातएकाजनाङ् अष्टाध्यायी १-१-१४सूत्रसे)प्रगृह्य संज्ञा हुई और'आ'की'एवं के साथ संधि नहीं हुई क्योंकात्योंही बना रहा (अष्टाध्यायी ६-१-१२५)। वाक्यमें आङ्को ङित् संज्ञा नहीं होती जैसे आ एव नु मन्यसे =ओहो[=आ]क्या[=नु=प्रश्न]ऐसा (=एवम्)आपमानते हैं, यहां वाक्यमें आङ् कीङित् संज्ञा न हुई तो १-१-१४ सूत्रसे प्रगृह्य संज्ञा हुई और अष्टाध्यायी ६-१-१२५सूत्रसे वैसाही रूप बना रहा अर्थात् आ की एवम्के साथ संधि नहीं हुई [इ]एकोन=एक–ऊन=एक न्यून एक घाटि [ई]एकाङ्ग–त्रिलिंगी है=एककालमेंवाङ्ग भक्ष्यं यत्र=जहां एक वार ही भोजन किया जाता है, इकट्ठा खाने हारा, एकभक्त व्रत, एकवार खानेका व्रत, [पञ्चचन्द्रकोश पृष्ठ ८५] [ऊ] परन्तु एकान्नविंशतिः [स्त्री लिंग है]=एकेन न विंशतिःएक+न–आदुक् दस्य वा न। एकन्यूनबीस। उन्नीसकी संख्या[पञ्चचन्द्रकोश पृष्ठ १८५ देखो]

सूत्रार्थः—एक—आदयः[1]युगपद्*एकस्मिन्[2]आत्मनि[3]=एकको आदिलेकर [=एक आदयः] एककालमें वा एकसाथ एक जीव वा आत्मामें
आ+एक+ऊन विंशतेः(=ऐकोनविंशतेः) परिषहाः[3] =एक हीन बीस (परिषह)तक (=आ] अर्थात् उन्नीस परिषह तक-उन्नीसपरिषह पर्यन्त
भाज्याः[1] सम्भवन्ति T ॥ =भाज्यरूप सम्भव है अर्थात् इनबाईस परिषहोंके मध्यमें एकही कालमें किसी मुनिमें एक परिषह होती है, किसीमें दो, किसीमें तीन, इस क्रमसे उन्नीस पर्यंत हो सक्ती हैं परन्तु यहांपर यह भी जानना योग्य है कि एककालमें एकही ऋषिमें शीत परिषह तथा उष्ण परिषह ये दोनों नहीं हो सक्ते हैं क्योंकि शीत तथा उष्णका परस्पर अत्यन्त विरोध है। ऐसे ही चर्या, शय्या, तथा निषद्या इन तीन परिषहोंमेंसे जब एकका अस्तित्व होता है तब शेष दोनोंका अभाव ही रहता है क्योंकि चर्या [गति]शय्या (शयन) और निषद्या (स्थिति) इनमें भी विरोध होनेसे, गमन होगा तब शयन तथा स्थिति वा निषद्या (खड़ा होना)नहीं हो सक्ता, इसी प्रकार जब शय्या होगी तब निषद्या तथा चर्या न होगी, जब चर्या होगी तब निषद्या तथा शय्या न होगी ॥

(द्वितीया पाठकाअर्थ,एकआदयः[1]भाज्याः[1]युगपद्*=एकको आदि लेकर अर्थात् एकको,दोको, तीन इत्यादिको लेकर विभाग रूप एकसाथ एकस्मिन्[2]आत्मनि[3]आएकान्नविंशतेः[4]परिषहाः[1]=एक जीवमें बीस [में]से केवल एक नहीं (=एकान्नविंशतेः) अर्थात् उन्नीस परिषह तक सम्भवन्ति T ॥ =संभव है अर्थात् एक आत्मामें एक, दो, तीन,आदि एककालमें उन्नीसपरिषहा तक होसक्ती हैं।

(१) हमारी सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें शुद्ध और अशुद्ध इस सूत्रके इतने पाठ हैं कि प्रत्येकके संबंधमें उल्लेख करना हमारी शक्तिसे बाहर है टिप्पणियोंसे विदित है कि दो पाठ जो हमने दिये हैं, वे शुद्ध हैं प्रथम पाठ प्राचीन बड़े बड़े भाष्य जैसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिये' (हस्तलिखित), तत्त्वार्थराजवार्तिक और श्लोकवार्तिक मुद्रित और हस्तलिखित. श्रुतसागरीटीका इत्यादिमेंसे लेकर दिया है,अन्य पुस्तकोंमें भी प्रायः यही पाठ है. द्वितीय पाठ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके दोनों मुद्रित संस्करणोंसे और एक हस्तलिखित प्रति जो लगभग तीनसो पचास वर्षकी लिखी हुई है उसके पत्र ८५ से और दूसरी पुस्तक जो सम्वत् १८७५को लिखी हुई है उसके पत्र १०१ परसे लिया है ॥

भाषाके बड़े २ टीकाओंमें भी "युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः" है यहां विंशतिःप्रथमा विभक्तिके स्थानमें 'विंशतेः'पंचमी होना चाहिये क्योंकि आङ् अव्ययके साथ अष्टाध्यायी २-१-१३ उक्त सूत्रानुसार पञ्चमी विभक्ति अथवा द्वितीया विभक्ति होना चाहिये, प्रथमा इत्यादि अन्य विभक्तियें लाना अशुद्ध है, द्वितीया विभक्ति उमास्वामीके रचनाशैलीके अनुसार नहीं हो सक्ता है क्योंकि हमने पृष्ठ ८४में इस सूत्रके अतिरिक्त पांच सूत्र दिये हैं जिनमें आङ् का प्रयोगहै,सबमें उमास्वामीने पञ्चमी विभक्तिका प्रयोग किया है इसलिये उक्त पाठमें'विंशतिःव्याकरणके अनुसार ठीकनहींहै

( ) भाषाके किन्हीं किन्हीं टीकाओंमें 'युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः' पाठ है, विंशतिःके स्थानमें विंशतेः होना चाहिये जैसा कि हम अभी सिद्ध कर चुके हैं, और 'एकोन'के स्थानमें ऐकोन चाहिये, क्योंकि एकोन = एक + ऊन अर्थात् एकन्यून, और ऐकोन = आ + एक + ऊन अर्थात् एकन्यूनतक वा एकन्यून पर्यन्त भावार्थ प्रथम पदच्छेदमें आङ् अव्यय नहीं निकलता है दूसरे ऐकोनके पदच्छेदमें आङ् निपात निकलता है और आङ्का लाना आवश्यक है क्योंकि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायके बड़े २ सब भाष्योंमें आङ् उपसर्गका अस्तित्व सूत्रमें स्वीकार कियाहै,और दूसरा हेतु यह भी हैकि बिना आङ् अव्ययके सूत्रका अर्थ ठीक ठीक नहीं बनता है,आङ्के लानेसे अर्थ होता हैकि उन्नीस परिषहायें तक एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आदिको लेकर एक साथ वा एककालमें मुनिको हो सक्ती हैं, बिना आङ्के अर्थ होता है कि उन्नीस परिषहायें एक साथ होती है हीनादिक नहीं होती हैं यह आशय सूत्रकारका नहीं है, सूत्रकारका तो यह आशय है कि बाईस परिषहोंमेंसे एक कालमें एक मुनिके एक परिषह हो, दोहो, तीनहो, चारहो, पांचहो, इत्यादि क्रमसे होती हुई अधिकसे अधिक उन्नीस परिषह तक होना संभव है ॥

आङभिविध्यर्थः।तेन एकोनविंशतिरपि क्वचित् युगपत्सम्भवतीत्यवगम्यते।तत्कथमितिचेदुच्यते

वृत्त्यनुवादः—आङ्[1]अभिविधि-अर्थः[2];तेन[3] =(सूत्रमें) आङ् (उपसर्ग)अभिविधि अर्थमें है, तिस [आङ् उपसर्ग] करि
एक-ऊन-विंशतिः[4]अपि*क्वचित्*युगपत्*सम्भवति[5]=उन्नीस परिषह भी कहीं कहीं एक साथ हो सक्ती हैं
इति*अवगम्यते[6]। तत्[7]*कथम्*इति*चेत्*उच्यते[8]=ऐसा जताया गया है, सो कैसे है ? ऐसा संशय(=चेत्)होनेपर कहाजाता है कि

श्वेताम्बर आम्नायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें इस सूत्रके पाठमें 'एकस्मिन्' शब्द नहीं है और ऐकोनविंशतेः के स्थानमें एकोनविंशतेः वाक्य है परन्तु सभाष्य०में इस सूत्रका अर्थ जो संस्कृतमें किया है उसमें'आएकोनविंशतेः' जो ऐकोनविंशतेः के तुल्य है लिखा है क्योंकि आ+ए=ऐ, इससे जान पड़ता है कि छापेकी भूलसे"युगपदैकोनविंशतेः" वाक्यके स्थानमें "युगपदेकोनविंशतेः" छप गया है इसलिये सभाष्यका पाठ यह होता है, "एकादयोभाज्या युगपदैकोनविंशतेः" और प्रथम पाठ जो हमने दिया है ऐसा है "एकादयोभाज्यायुगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः"दोनों पाठोंको मिलानसे प्रगट है कि समा य०के पाठमें एकस्मिन् शब्द नहीं है शेष पाठएक है परन्तु अर्थ करनेमें सभा य०के कर्ताने, एकस्मिन् तावे,वाक्य मिलायाहै हमारे यहां आत्मनि शब्दजोड़कर अर्थ कियाहै अतःअर्थभी दोनों सम्प्रदायोंमेंएकहै।
"एषांद्वाविंशतेः परीषहाणामेकादयो भजनीया युगपदेकस्मिन् जीवे आ एकोन विंशतेः"सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २१०से उद्धृत ॥

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २१०से उद्धृत

एषाम् द्वाविंशतेः परीषहाणाम्=इन बाईस परीषहोंके
एक-आदयः भजनीयाः =एक आदिका विभाग करना उचित है(तब)
युगपद् एकस्मिन् जीवे =एककालमें एक जीव वा एक आत्मामें
आ-एकोन(=एक+ऊन)विंशतेः=उन्नीस(परीषहा)तक(=आ)हो सक्ते हैं

"तात्पर्य यह कि किसीमें एक परीषह होता है किसीमें दो,किसीमें तीन, इस क्रमसे उन्नीस पर्य्यंत हो सकते हैं""एककालमें एकही पुरुषमें शीत परीषह तथा उष्ण परिषह ये दोनों नहीं होते "एक होगा" चर्या,शय्या, निषद्या इन तीन परीषहमें से जब एककी सत्ताको सम्भव होता है तब शेषदोनोंका अभाव ही रहता है ॥

दिगम्बर आम्नायका प्रथम पाठ अर्थ सहित नीचे लिखा है

एकादयः भाज्याः =एक आदि(परिषह)लेकर विभाग करना चाहिये
युगपद् एकस्मिन्आत्मनि=(तब)एककालमें एकआत्मा वा एक जीवमें
आ-एकोन(=एक+ऊन)विंशतेः=उन्नीस(परिषहायें)तक(=आ) हों

तात्पर्य यह कि एक जीवके एक साथ उन्नीस परीषह हो सक्ती हैं, क्योंकि शीत उष्णमेंसे एककालमें एकही परीषह होगी, शय्या चर्या, निषद्या,इन तीनोंमेंसे एक साथ एकही हो सक्ती है इसलिये बाईस परीषहोंमेंसे तीन परीषहोंका ऐककाल जीवोंके अभाव होनेसे उन्नीस परीषह ही एक साथ उदय हो सक्ती हैं ॥

श्वेताम्बर समाजकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका, भीसिद्धसेनसूरिरचित जिसमें बाईस सहस्र श्लोकसे भी अधिक हैं उसका पाठ हमारे द्वितीय पाठसे मिलता है उसके सूत्र पाठमें 'एकस्मिन्' शब्द नहीं है, 'एकस्मिन्' शब्दके स्थानमें भाष्यकारने भाष्यके पत्र ७०२में 'एकस्मिन्यतौ' (=एक यतिमें)दियाहै जैसा कि निम्न पाठोंसे प्रगट है"ऐकादयो भाज्या युगपदैकान्नविंशतेः"युगपदैकान्नविंशतेः=युगपद्+आएकान्नविंशतेः= एक साथ ऐक घाटिबीस तक। 'युगपदेकस्मिन्यतौ तत्र कस्यचिदेक कस्यचिद्वौ ·····"=युगपद् एकस्मिन् यतौ तत्र कस्यचित्एकः कस्यचिद्वौ एक साथ ऐक मुनिमें किसीके एक किसीके दो। उपर्युक्त सब टिप्पणी सूत्र पाठों और भाष्योंमें स्पष्ट हैकि दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रका पाठएकसाहै

शीतोष्णपरिषहयोरेकः शय्यानिषद्याचर्याणामन्यतमः एव भवति एकस्मिन्नात्मनि ॥ कुतः? विरोधात्॥ तत्त्रयाणामपगमे युगपदेकात्मनीतरेषां सम्भवादेकोनविंशतिविकल्पा बोध्यव्याः॥ ननु प्रज्ञाज्ञानयोरपि विरोधाद्युगपदसम्भवः ?। श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञापरिषहः अवधिज्ञानापेक्षया अज्ञानपरिषह इति नास्ति विरोधः ॥ आह उक्ता गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयाःसंवरहेतवः पञ्च । संवरहेतुश्चारित्रसंज्ञो वक्तव्य इति तद्भेदप्रदर्शनार्थमुच्यते–

शीत–उष्ण–परिषहयोः[२]एकः[१]शय्या–निषद्या–चर्याणाम्[६]अन्यतमः[१]एव*भवति।एकस्मिन्[७]आत्मनि[७],
=हिम, उष्ण,[इन]दो परिषहोंमेंसे एक [सम्भव] है, शयन,स्थिति=गमनके बहुतोंमेंसे एक ही [अर्थात् तीनोंमेंसे एकही] एक आत्मामें होती है।

कुतः* ?
=(प्रश्न) क्योंकर[शीत-उष्णके आपसमें तथा शय्या निषद्या चर्याके आपसमें]

विरोधात्[५],तत्-त्रयाणाम्[६]अपगमे[७]युगपद्*एक–
=विरोध होनेसे (दोका पांचोंमेंसे होना सम्भव है) उन(शीत–उष्णमेंसे एक तथा शय्या निषद्या–चर्यामेंसे दो) तीनकी हीनतामें[=अपगमे]एकसाथ एक

आत्मनि[७]इतरेषां[६]सम्भवात्[५]एकोन–विंशति-विकल्पाः[१]
=जीवमें[शेष]अन्य[परिषहों]के सम्भव होनेसे उन्नीस भेद[अर्थात् जहां एक परिषह है वहां एक विकल्प हुआ,जहां दो परिषहायें हैं वहांदो विकल्प हुये,जहां तीन परिषहायें एकसाथ हैं वहां तीन विकल्प हुये इत्यादि ऐसे उन्नीस विकल्प

बोध्यव्याः[१];ननु*प्रज्ञा–अज्ञानयोः[७]अपि*विरोधात्[५]
=ज्ञात किये जाने योग्य हैं प्रश्न–प्रज्ञा और अज्ञानमें भी (आपसमें) विरोध होनेसे

युगपद्*असम्भवः[१]?श्रुतज्ञान-अपेक्षया[५]प्रज्ञा-परिषहः[१]
=एक साथ(आना)सम्भव नहीं है(उत्तर)श्रुत ज्ञानकी विवक्षासे प्रज्ञा परिषह होतीहै,

अवधिज्ञान-अपेक्षया[५]।अज्ञान-परिषहः[१]
=अवधिज्ञानकी अपेक्षासे (अर्थात् अवधिज्ञानावरणोदय जनित) अज्ञान परीषह है,

इति*न*अस्ति।विरोधः[१];आह T गुप्ति–समिति-
=ऐसे (एक दूसरेके साथ २ होनेमें) विरोध नहीं है[कोई] पूछता है कि गुप्ति समिति,

धर्म-अनुप्रेक्षा-परिषह-जयाः[१]संवरहेतवः[१]पञ्च[१],उक्ताः=धर्म,भावना, परिषहजय, पांच संवरके कारण कहे गये

संवरहेतुः[१]चारित्र–संज्ञः[१]वक्तव्यः[१]इति *,
=चारित्रनामा संवरका कारण कहना चाहिये ऐसा (प्रश्न होनेपर)

तद्–भेद–प्रदर्शन–अर्थम्[४]उच्यते T–
=उस (चारित्र)के भेद प्रगट करनेके लिये [अग्रिम सूत्रमें]कहा जाता है कि

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथा-ख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥

सूत्रम्–[१]सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातमितिचारित्रम् ॥१८॥

पदच्छेदः–सामायिक–च्छेदोपस्थापना–परिहारविशुद्धि–सूक्ष्मसाम्पराय–यथाख्यातम्[1]"इति* चारित्रम्[1]" ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः–(क) [२]सामायिक(ख)च्छेदोपस्थापना (ग) परिहारविशुद्धि (घ) सूक्ष्मसाम्पराय(ङ) यथाख्यात ऐसे[ये पांच]चारित्र हैं अर्थात

(१)श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें च्छेदोपस्थापनाके स्थानमें च्छेदोपस्थाप्य है,सूक्ष्मसाम्परायके स्थानमें'सूक्ष्मसंपराय,'यथाख्यातमितिके स्थानमें 'यथाख्याताति'है शेष पाठ और अर्थ एकसा है॥ च्छेदोपस्थाप्य शब्द नपुंसक लिंगी है। हमारी समाजकी पुस्तकोंमें बहुधा च्छेदोपस्थापना मिलता है, कहीं कहीं छेदोस्थापना भी पाठ है दोनों शब्द शुद्ध हैं। कहीं २ छेदोपस्थापन (संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ४३५)कहीं च्छेदोपस्थापन भी पाठ है। स्थापना और स्थापन दोनों पाठ शुद्ध हैं। (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४३८) अतः च्छेदोपस्थापना, छेदोपस्थापना, च्छेदोपस्थापन, छेदोपस्थापन चारोंशब्द ठीक हैं, स्थापन शब्द नपुंसकलिंगी है और स्थापना शब्द स्त्री लिंग है॥ चारित्र और संयम एक हैं क्योंकि"दशविधे धर्मे संयम उक्तः स एव चारित्रमिति॥""चारित्रं संयम इत्यनेकम्"(भाष्यानु० पत्र ७०३)

व्रतोंका धारण, समितिका पालन, कषायोंका निग्रह, मन वचन, कायकी अशुभप्रवृत्तिरूप अनर्थ दण्डोंका त्याग करना, इन्द्रियोंका विजय सो संयम है॥ सामायिक दो प्रकार है (अ) नियत काल (आ) अनियतकाल (अ) तहां निश्चित वा नित्य समयमें स्वाध्याय आदिक करना सो नियतकाल (सामायिक) है (आ) ईर्यापथ आदिकमें अनियतकाल (सामायिक) है॥ सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो चारित्र प्रमत्त छठवां गुणस्थानमें, अप्रमत्त सातवां गुणस्थानमें, अपूर्वकरण आठवां गुणस्थानमें, अनिवृत्ति करण नवमा गुणस्थानमें होते हैं॥ परिहारविशुद्धि चारित्र छठवां और सातवां गुणस्थानमें ही होता है। सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र दशवें गुणस्थानमें होता है, और यथाख्यातचारित्र उपशांत मोह ग्यारहवां गुणस्थानमें, क्षीण मोह बारहवां गुणस्थानमें, सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थानमें अयोग केवली चौदहवां गुणस्थानमें होता है, चारित्रके भेदशब्दकी अपेक्षासे तो संख्यात हैं, बुद्धिके विचारसे असंख्यात हैं और अर्थसे अनन्त भेद हैं॥

(क)(२)सामायिक चारित्रम्—हमको निम्न वाक्योंमें 'समयिक''सामयिक' 'सामायिक'तीन शब्द'सम्'अव्ययसे बने हुये मिलते हैं॥ (अ०६सूत्र४०में) साम्प्रतिकस्यैक समयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समया अनन्ताः = साम्प्रतिकस्य-एकसमयिकत्वे अपि अतीताः च अनागताः समयाःअनन्ताः

(ख)"एकत्वेन अयनं गमनं समयः समय एव सामयिकं,समयः प्रयोजनमस्येति वा विगृह्य सामयिकम्" (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति अध्याय ७ सूत्र २१)

सामायिक-चारित्रम्।''' =समस्त सावद्ययोगका भेद रहित जिसमें त्याग हो वह सामायिक चारित्र है

(ग) सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥ (सर्वार्थसिद्धि अध्याय ९ सूत्र १८) बोलचालमें सामायिक शब्दका प्रयोग किया जाता है, उससे ध्यून सामयिक और समयिक नहीं बोला जाता है, सम् (अव्यय) = साथ, इकट्ठा, एकता, इण् = जाना धातुके साथ अच् प्रत्यय लगाने पर सम् + इण् + अच् = सम् + इ + अ = समि + अ = समे + अ = समय् + अ = समय बना, वैद्यकोश पृष्ठ ७५८पर समयके उन्नीस अर्थ दिये है उनमेंसे हमारासंबंध काल,(अर्थात् क्षण घडी आदिसमय)आचार,धर्मक्रिया,नियम अर्थोंसे है। (क) साम्प्रतिकस्य एक समयिकत्वे = वर्तमानकालका(= साम्प्रतिकस्य) एक समय(= छोटेसे छोटाकालके विभाग) पनमें अर्थात्कालकेहोने पर अपि अतीता: च अनागता: समया: अनन्ता: = भी भूत अर्थात् बीते हुये और भविष्यत् अर्थात् आगामीकालमें आनेवाले अनंत सूक्ष्मतमक्षण हैं, उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि 'समयिक' शब्द समयके लिये अर्थात् सूक्ष्मतम क्षणके लिये आया है, दो मुद्रित तथा तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंमें, मुद्रित तथा हस्तलिखित तत्त्वार्थ राजवार्तिक की तीन प्रतियोंमें हमको यही पाठ मिला । समयिक शब्द व्याकरणकी रीतिसे ठीक नहीं है, क्योंकि स्वार्थमें अथवा प्रयोजन अर्थमें इक प्रत्यय लानेसे समय + इक = सामयिक शब्द स्व वा प्रयोजन अर्थमें बन जाताहै अर्थात् समय है प्रयोजन जिसका ,संभव है कि 'समयिक' शब्द आर्ष प्रयोगमें आता हो क्योंकि बहुतसे शब्द ऐसे भी हैं जो व्याकरणके किसी नियमसे नहीं बने परन्तु बोल चालमें आते हैं । कहा भी है-पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् = पृषोदर-आदीनि यथा उपदिष्टम् = पृषोदर = (पृषत् + उदर) जिसके पेट पर बिंदियां हों ॥ यह शब्द वैयाकरणोंने पृषत् और उदरसे निकाला है पृषत् का त् समासमें गिरा दिया गया है यह शब्द व्याकरणके नियमोंसे विरुद्ध बताया गया है ॥ अर्थ-पृषोदर आदिक जैसे पढ़े गये (वैसे शुद्ध हैं), जैसे-हिंस् धातुसे सिंह शब्द भी व्याकरणके नियमसे प्रतिकूल है, ऐसेही समय शब्दसे 'समयिक' बना है ॥ 'समयिकत्वे'के,स्थानमें 'समयत्वे शब्द का प्रयोगहो तौ भी यही अर्थ निकल आता॥

(ख) सातवें अध्यायके इक्कीसवें सूत्रमें सामायिक शब्दका उमास्वामीने प्रयोग किया है परन्तु हमको इस शब्दकी व्युत्पत्तिके सिद्धि करनेमें सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'कहीं पर सामायिक शब्द पाया जाता है कहीं पर सामयिक, मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २८१ पर सामायिक दो स्थानोंमें हैं परन्तु शुद्धा शुद्ध विवरणमें उल्लेख है कि सामायिकके स्थानमें सामयिक शुद्ध है, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक हस्तलिखित तथा मुद्रितमें हमको सामयिक शब्द मिला है और इसकी व्युत्पत्तिके उल्लेखसे जो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और तत्त्वार्थराजवार्तिकमें लगभग एकसे शब्दों द्वारा की गई है और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें जो व्युत्पत्ति दी है उससे सामयिक सिद्ध होता है न सामायिक जैसा कि निम्नसे प्रगट है "समेकीभावे वर्तते । तद्यथा संगतं घृतं संगतं तैलमित्युच्यते एकीभूतमिति गम्यते । एकत्वेन अयनं गमनं समयः, समय एव सामयिकं समयः प्रयोजनमस्येति वा विगृह्य सामायिकम् ॥ सर्वार्थसिद्धि अध्याय ७ सूत्र २१से) "समेकीभावे वर्तते तद्यथा संगतं घृतं संगतं तैलं इत्युक्ते एकीभूत मिति गम्यते एकत्वेन गमनं समयः । समय एव सामयिकं, समयः प्रयोजनं अस्येति वा सामयिकं" (तत्त्वार्थराजवार्तिकसे उद्धृत) "समय एव सामयिकं समयः प्रयोजनमस्येति वा" (श्लोकवार्तिक अध्याय ७ सूत्र इक्कीससे उद्धृत)

सम्—एकीभावे वर्तते । तद्यथा = सम् (अव्यय)एकताके भावमें वा एकताके अर्थमें प्रवर्तता है अर्थात् आता है जैसे(किसीवस्तुमें)
संगतम् घृतम् = घीकी एकता हो, घीका साथ हो, अर्थात् उसमें घी मिलाकर नीरजीवके सदृश एकमेक होजाय सो संगतघृतहै
संगतम् तैलम् = (वस्तुमें)तेलकी एकता हो, तेलका इकट्ठापन हो अर्थात् उसमें तेलमिलाकर एकमेक होजाय सो संगत तैल है
इतिउच्यते एकीभूतम् इति गम्यते = ऐसा कहा जाता है,एक हुआ ऐसा जाना जाता है
एकत्वेन अयनम्गमनम्समयःसमय एव = एकपनकरि लीन(= अयनम्) गमन (= अयनम्) सो समय है, समय ही हो अर्थात् एकत्वकरिलीनहीहो
सामयिकं वा समयः प्रयोजनं अस्य इति विगृह्य सामयिकं = सो सामयिक है वा समय है प्रयोजन जिसका ऐसे विग्रहसे सामयिकशब्दबनालिया

समय एव 'सामयिक' में स्वार्थ में इक प्रत्यय हुआ अर्थात् शब्दका बिना तात्पर्य पलटे हुये, उसी अर्थको रखतेहुये इक प्रत्यय जोड़ देते हैं, (दूसरे वाक्यमें) वा समयः प्रयोजनं अस्य इति विगृह्य सामयिकं अर्थात् समय शब्दमें प्रयोजन अर्थमें इकप्रत्यय लगा, ('इक' ठक्, ठञ्, ठञ्, ठञ्के स्थानमें होता है)। व्याकरणमें इक प्रत्ययका प्रभाव है कि शब्दके प्रथम स्वरको वृद्धि करता है और स्वयम् शब्दमें प्रवेश भी करजाता है जैसे समय + इक = सामयिक, अतःसमय एव सामयिक = (किसी वस्तुमें–यहांपर जैसे निजस्वरूपमें वा धर्म क्रियामें) एकताकरि वा क्षीर नीर सदृश एकमेक होकर लीन हो जाना, सो सामयिकहै, समय है प्रयोजन जिसका सो सामयिक है अर्थात् किसीवस्तुमें जैसे आत्म स्वभाव में वा धर्मक्रियामें, एकत्वकरि वा एकमेक होकर लीन हो जाना तन्मय होजाना, रचिजाना, लिप्त हो जाना नियुक्त कालपर भावार्थ उचित और नियुक्त कालपर आत्मस्वरूप वा शुभ क्रियामें चित्तकी एकताकरि निमग्न होजाना, तन्मय होजाना, डूबजाना ॥ हमने समयका अर्थ आचार, धर्मक्रिया और नियम भी वैजकोशसे दिये हैं, यदि हम समयमें इक प्रत्यय प्रयोजन अर्थमें लगा देवें तौ भी समय + इक = सामयिक रूप होगा और आचार, वा धर्मक्रिया अथवा नियम है प्रयोजन जिसका यह तात्पर्य सामयिक शब्दका होगा ॥ अष्टाध्यायी, जैनेन्द्र व्याकरण और शाकटायन व्याकरणोंके निम्नसूत्रों द्वारा भी सामयिक रूपहोता, सम् + अय (= समय) इक प्रत्यय जोड़नेसे बनैगा (न कि समयिक रूप बनैगा) जैसे

( ) समय स्तदस्य प्राप्तम् (= ठञ्) = समयःतद् अस्य प्राप्तम् (ठञ् = इक) = इक (प्रत्यय) प्रथमा समयं (= तद् वह अर्थात् अर्थ द्योतक प्रथमा विभक्ति समय (शब्द) के पश्चात् जो षष्ठ्यर्थमें (= अस्य) प्राप्त हुआ है, उपस्थित हुआ है वा आनपहुँचा है लगाया जाता है जैसे समय + इक = सामयिक = अर्थात् किसी (कार्य)के लिये उचित समय आन पहुँचा है, उपस्थित हुआ है ॥ अष्टाध्यायी अध्याय ५ पाद १ सूत्र १०४

( ) समयात् प्राप्तात् । = समयात् प्राप्त विशिष्टात् ठञ् स्यात्, विशेष समयसे प्राप्त अर्थमें ठञ् (= इक) प्रत्यय हो अर्थात् विशेष समयमें जिसकी प्राप्त हो इस अर्थमें समय शब्दके पश्चात् ठञ् (= इक) प्रत्यय लगाया जावै जैसे समयः प्राप्तो यस्य सामयिकंकार्यं समय आन पहुंचा है (= प्राप्त) समय उचित है जिस (वस्तु)के लिये सो सामयिक कार्य है अर्थात् जिसके करनेके लिये योग्य समय आन पहुँचा है सो सामयिक कार्य है (जैनेन्द्र व्याकरण ३ अ० ४ पाद १२० सूत्र)

समयात्प्राप्तात् = समयादस्य प्राप्त इत्यस्मिन्नर्थे ठण् भवति = समयसे जिसकी प्राप्त है ऐसे इस अर्थमें ठण् (= इक) प्रत्यय होता है अर्थात् जिसकी प्राप्तिके लिये अनुकूल समय हो इस तात्पर्यमें समय शब्दके पीछे इक प्रत्यय हो जैसे समयः प्राप्तो यस्य सामयिकं कार्यम् = समय योग्य आन पहुँचा है जिस (कार्य)को सो सामयिक कार्य है। (देखो शाकटायन व्याकरण अध्याय ३ पाद २ सूत्र ११३) ॥ उपर्युक्त से सिद्ध है कि सामयिक शब्द बनता है न कि समयिक ॥

(ग) अब प्रश्न है कि उमास्वामीने और अन्य अन्य आचार्योंने सामायिक शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है वह व्याकरणकी रीतिसेकैसे शुद्ध है? "अयंतीत्यायाः अनर्थाः, सत्वव्यपरोपणहेतवः, संगता आयाः समायाः, सम्यग्वा आयाः समायास्तेषु भवं, ते वा प्रयोजनमस्येति सामायिकमवस्थानं। सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानपरं (राजवार्तिकसे)" "अयंतीत्यायाः सत्त्वघातहेतवोऽनर्थाःसंगता आयाः समायाःसम्यग्वा आयाःसमायास्तेषु भवं सामायिकं, समायाः प्रयोजनमस्येति च सामायिकमिति समासविषयत्वं सामायिकस्यावश्यस्य। तच्च सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानपरं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६४से उद्धृत ॥ दोनों ग्रन्थोंका लगभग एक पाठ है। निम्न भागमें श्लोकवार्तिकका अनुवाद दिया गया है॥

अयंतिइति आयाःसत्त्वघातहेतवःअनर्थाः = प्राप्त होते हैं (= अयंति) ऐसे आयाहैं, प्राणियोंके घातके कारण जे अनर्थ वा अनुचितकार्य वे आया हैं,

संगताः आयाः समायाः = आया जे प्राणियोंके घातके कारणरूपअनर्थ तिनसे सकोच, भय, डर (= संगताः) समाया हैं

(वैद्यसंस्कृत आंगलकोशके पृष्ठ ७३७में संगतके दश अर्थोंमेंसेएक अर्थ संकोच, सिकुड़ना, डरका भीदिया है)

वा सम्यग् आयाः समायाः = अथवा उक्त अनर्थोंसे (=आयाः) विभिन्न (=सम्यग्) पृथक् (=सम्यग्) सो समाय है, (उक्त कोशके पृष्ठ ७६५ पर सम्यक्के बारह अर्थोंमेंसे एक अर्थ पृथक्, विभिन्न भी लिखा है)

तेषु समयम् = तिन (समायाः अर्थात् प्राणियोंके घातके कारण अनर्थोंसे संकोच, पृथक्, वा विभिन्न) में होना, रहना

सामायिकं, च समायाः अस्य प्रयोजनंसामायिकं = सो सामायिक है व समाया(अर्थात् अनर्थोंसे संकोच, पृथक्,)है प्रयोजन जिसकासोसामायिकहै

इति सामायिकस्य अवस्थानस्य समासविषयत्वम् = ऐसे सामायिक(शब्द) की स्थिति वा ठहराव अथवा अवस्थान समास विषयमें है।

तत् च सर्व-सावद्य-योग-प्रत्याख्यानरूपम् = बहुरि यह(सामायिक)समस्त पापरूपयोगका त्याग है॥श्वेताम्बरआम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें भी 'समाय'शब्दके स्वार्थमें ठक्(इक)प्रत्यय और प्रयोजन अर्थमें यही प्रत्यय लगाकर सामायिक शब्दकी व्युत्पत्तिकीहैकि "रागद्वेष विरहितः समः अयो गमन सकलक्रियोपलक्षणमेतत्सर्वं च क्रियासाधारणस्कन्धिस्य निर्जरा फलासमस्याय समाय समाय एव सामायिकमिति स्वार्थिकः ठक् समये चऽऽर्त्तव्यं सामायिकं सामायेन निर्वर्तितं समायस्य व्यतिकारस्तन्मय समाय स प्रयोजनमस्येति वा सर्वत्र यथाप्रतेर्यं ठक्" (भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकाके पत्र ७०३से उद्धृत)॥ सामायिक शब्दकी व्युत्पत्ति वि.र्थियों को लाभदायक और उपयोगी है अतः प०जयचन्द्रायजीकी व्युत्पत्ति, पन्नालालबूनीजी, पन्नालाल न्यायदिवाकरके उक्त वाक्यके अनुवादोंको शब्दशः उद्धृत करते हैं॥

"प्राणीनिके घातके कारण जे अनर्थ तिनकूं आय ऐसा नाम कहिये सम् ऐसा उपसर्ग देने तैं एकीभूत अर्थ भया। तातैं अनर्थ इकट्ठे भये हाय तिनकूं समाय ऐसा कहिये, ते समाय जाका प्रयोजन होय सो सामायिक कहिये, तातैं ऐसा अर्थ सिद्धि होय है, सो सर्व पापका सामान्य इकट्ठा ही त्याग जहां होय सो सामायिक चारित्र है।" यह समझमें नहीं आया त्याग शब्द कैसे और कहांसे लेआये क्योंकि उक्त व्युत्पत्तिसे सामायिक काअर्थ यह हुआ कि अनर्थोंके समूह हों प्रयोजन जिसका सो सामायिक है। क्योंकि "सामायिक चारित्रं" अंतमें वाक्य दियाहै, चारित्र और संयम एक हैं और संयमका अर्थ है रोकना अर्थात् मन और इन्द्रियोंको निग्रहकरना है इसलिये सामायिक संयमका(अर्थात् सामायिकका)अर्थ हुआकि अनर्थोंके समूहकेनिग्रह(=संयम)वात्याग(=संयम) का है प्रयोजन जिसका सो सामायिकसंयम है॥

'अयंति कहिए प्राप्त होय' ते आय कहिये अर्थात् प्राणिनिका विनाशका कारण अनर्थ, अर भले प्रकार प्राप्त भया जे आय ते समाय कहिये अथवा सम्यक् आय ते समाय कहिये अथवा तिनके दूर करने निमित्त होय सो सामायिक कहिये, ऐसैं सामायिक पद का अर्थ तिष्ठै है" उपर्युक्तसे स्पष्ट है कि 'संगताः'का अर्थ भले प्रकार लिया है और सम्यग्का अर्थ सम्यक्, तब 'दूरि' शब्द संस्कृतके किस शब्दका अनुवाद हुआ समझमें नहीं आया है॥

"अथवा सत्त्वजे प्राणी तिनके व्यपरोपणमें कारण ऐसे रागादिक परिणाम तिनके त्यागतैं शुद्ध चेतनाके स्वरूपमें उपयोगकी प्राप्ति सो आय कहिये ऐसे उपयोगाकार परिणमनका चेतनारूप परिणमनतैं अभेदरूप परिणमना तहां बाह्य पदार्थनितैं राग द्वेषके त्यागतैं साम्य भावका अवलंबनकरि अपने चेतनामें उपयोगका प्रवर्तावना, ताके विषैं जो प्रवृत्ति होय अथवा सोई प्रयोजन जाका होय ताकूं सामायिक कहिये ऐसे उपयोगकी चेतना परणतिमें अवस्थान है सो सामायिक है" उक्त अनुवाद राजवार्तिकके भाष्यका नहीं है सामायिकका विशेषरूपमें अभिप्राय देदिया है, निम्न वाक्यके लगभग वे शब्द हैं जो जयचन्दजीके हैं अर्थात् "अथवा प्राणिनिके घातके कारणजे अनर्थ तिनकूं (आयाः) ऐसा कहिये बहुरि सम् ऐसा उपसर्ग देनेतैं एकीभूत अर्थ भया। तातैं अनर्थ इकट्ठे भय होय तिनकूं समाय ऐसा कहिये ते समाय जाका प्रयोजनहोय सो सामायिक कहिये, या व्युत्पत्तितैं ऐसा अर्थ सिद्धि होय है जो सर्व पापका सामान्य इकट्ठा ही त्याग जहांहोय सो सामायिक चारित्रहै'

(ख) छेदोपस्थापनाचारित्रम्[१११]=प्रमादके वशसे अनर्थ सावद्यकर्मके होनेसे निरवद्य क्रियाके रुकजानेपर प्रायश्चित्त लेकर सावद्य व्यापारसे उत्पन्न हुये दोषको छेदकर फिरसे आत्माको व्रत धारणादिरूप संयममें धारण करनेकी प्रतिक्रिया (छेदोपस्थापना चारित्र है) अथवा हिंसादिक सावद्य कर्मोंका विभाग करके त्याग करना (सो छेदोपस्थापनाचारित्र है)वा व्रत समिति गुप्तिआदिका भेदरूपचारित्र (सो छेदोपस्थापना चारित्रहै)

(ग) परिहारविशुद्धिचारित्रम्[११२]=जीवोंकी पीड़ाका परित्याग करनेसे विशेष विशुद्धिका होना परिहार विशुद्धिचारित्र है अर्थात् जिससंयममें परिहारके साथ विशुद्धि हो उसको परिहारविशुद्धिसंयम कहते हैं, प्राणि पीड़ाके त्यागको परिहार कहते हैं। इस संयमवाला जीव जीवराशिमें विहार करता हुआ भी जलसे कमलके सदृश हिंसासे लिप्त नहींहोता है, भावार्थ जन्मसे तीस वर्ष तक सुखी रहकर दीक्षा ग्रहण करके श्री तीर्थंकरके पाद मूलमें आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नौमें पूर्वका अध्ययन करनेवाले जीवके यह संयम होता है, जीवोंकी उत्पत्ति, मरणके ठिकाने, कालकी मर्यादा, जन्म योनिके भेद द्रव्य-क्षेत्रके स्वभाव, विधान वा विधिका जाननहारा प्रमाद रहित महावीर्यवान् हो,जाके विशुद्धता के बलसे कर्मकी प्रचुर निर्जरा होती हो,अति कठिन आचरणका धारणे वाला हो उसके यह संयम होता है, इस संयमवाला जीव तीनकाल सन्ध्या कालोंको छोड़कर दो कोस पर्यन्त गमन करता है किन्तु रात्रिको गमन नहीं करता है और वर्षाकालमें गमन करनेका नियम नहीं है, वर्षाकालमें समर्थानुसार गमन करे अथवा गमन नहीं भी करे,इनके शरीरसे जीवकी विराधना नहीं होती है, ऐसे साधुके परिहार विशुद्धि होती है अन्यके नहीं होती है, परिहार विशुद्धि संयमका वा चारित्रका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है, प्रमत्त छठवां गुणस्थानमें और अप्रमत्त सातवां गुणस्थानमें यह संयम होता है जो अन्तर्मुहूर्तमें गुणस्थान पलटि जाय तौ संयम छूटिजाय और उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष घाटि एक करोड़ पूर्व है, किस प्रकारसे है सो कहते हैं कि मनुष्यकी उत्पत्तिके दिवससे तीस वर्षका दीक्षित होकर आठ वर्ष तीर्थंकरके निकट रहनेके पश्चात् यह परिहारविशुद्धि संयम उपजता है। एक कोटि (=करोड़) पूर्वकी आयु होती है उसमेंसे अड़तीस वर्ष निकालनेसे उत्कृष्ट काल एक करोड़ पूर्व अड़तीस वर्ष घाटि परिहार विशुद्धि संयम अवशेष रहता है ॥

(घ) सूक्ष्मसाम्परायचारित्रम्[११३]=उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणीमें अतिसूक्ष्म (लोभ) कषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थान में जो संयम हो वह सूक्ष्म साम्पराय चारित्र है। इस संयममें यथाख्यातचारित्र परिणामोंसे कुछ हीन परिणाम होते हैं क्योंकि यह संयम दशवां गुणस्थानमें होता है, और किसी गुणस्थानमें सूक्ष्म साम्पराय

अत्र चोद्यते—दशविधे धर्मे संयम उक्तः स एवं चारित्रमिति पुनर्ग्रहणमनर्थकमिति ॥ नानर्थकम्-धर्मेऽन्तर्भूतमपि चारित्रमन्ते गृह्यते मोक्षप्राप्तेः साक्षात्कारणमिति ज्ञापनार्थम् ॥ सामायिकमुक्तं । क ? दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकमित्यत्र ॥ तद्द्विविधम्-नियतकालम्-नियतकालञ्च । स्वाध्यायादि नियतकालम् । ईर्यापथाद्यनियतकालम् ॥प्रमादकृतानर्थ प्रबन्ध-

---

(४) सूक्ष्मसाम्परागचारित्रम्[1]''

अत्र*चोद्यते[1]दशविधे[2]धर्मे[3]संयमः[4]उक्तः[5] स[1]एव*चारित्रम्[2]''इति*पुनः*ग्रहणम्[3]'' अनर्थकम्[4]''इति*;न*अनर्थकम्[1]''धर्मे[2] अन्तर-भूतम्[3]''अपि*चारित्रम्[4]''अन्ते[5]गृह्यते[1] मोक्षप्राप्तेः[2]साक्षात्*कारणम्[3]''इति*ज्ञापन-अर्थम्[4] सामायिकं[1]''उक्तं[2]'',क*? दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिकम्[3]'' इति*अत्र*॥तद्[1]'' द्वि-विधम्[2]''नियतकालम्[3]''अनियतकालम्[4]''च*॥ स्वाध्याय-आदि[1]''नियतकालम्[2]''ईर्यापथ-आदि-अनियतकालम्[3]''प्रमाद-कृत-अनर्थ-प्रबन्ध-

चारित्र नहीं होता है और यथाख्यात चारित्र ग्यारहवां गुणस्थानमें आरम्भ होता है ॥

=चारित्र मोहनीय कर्मके सर्वथा उपशम होजानेसे ग्यारहवें गुणस्थानमें अथवा चारित्र मोहनीयकर्मके सर्वथा क्षीण होजानेसे बारहमें,तेरहमें तथा चौदह(गुणस्थान)में यथावस्थित वीतराग निर्विकार आत्म स्वभावकी उपलब्धि वा प्रगटता सो यथाख्यातचारित्र वा संयम है।

=यहां तर्क की जाती है कि दश प्रकार धर्ममें संयम कहा गया है (देखो अध्याय६ सूत्र ६) =सो (संयम) ही (=एव)चारित्र है इसप्रकार फिर (इस सूत्रमें चारित्रका)ग्रहण अर्थात् कथन =निष्प्रयोजन है(उत्तर)[इस सूत्रमें चारित्रका कथन]निरर्थक नहीं है,धर्ममें(संयम वा चारित्र) अन्तरगत है तो भी अन्तमें चारित्र ग्रहण किया गया है कि मोक्षप्राप्तिका प्रत्यक्षहेतु है ऐसा जतावनेके लियेहै अर्थात् चौदहवां गुणस्थानके अंत चारित्रकी पूर्णता हुये, लगताही मोक्ष होती है, तिससे मोक्षकी लब्धिके लिये प्रत्यक्ष निमित्त है ऐसा जतावनेके लिये (इस सूत्रमें) चारित्र न्यारा कहा गया है।

सामायिक वर्णित हुआ (प्रश्न)कहां (उत्तर) "दिग्देशानर्थदण्ड-विरतिसामायिकम्" ऐसा इस स्थानमें(अर्थात् सातवां अध्यायका २१वां सूत्र) है। वह सामायिक दो प्रकार है, नियतकाल और (=च) अनियतकाल, =(तहांनिश्चितवानियतकालमें)स्वाध्यायआदिक[करना]सो नियतकाल(सामायिक)है ।ईर्यापथ आदि-अनियतकाल (सामायिक)है,प्रमाद(के वश)से उत्पन्न हुये (=कृत) दोष [=अनर्थ]द्वारा =[संयमका] प्रबन्ध वा संदर्भ (सार वचन श्रेष्ठता-अच्छापन इत्यादिक)

विलोपे सम्यक्प्रतिक्रिया च्छेदोपस्थापना, विकल्पनिवृत्तिर्वा ॥ परिहरणं परिहारः प्राणिवधान्निवृत्तिः। तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिंस्तत्परिहारविशुद्धिचारित्रम् ॥ अतिसूक्ष्मकषायत्वात्सूक्ष्मसाम्परायचारित्रम् ॥ मोहनीयस्य निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्च आत्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं यथाख्यातचारित्रमित्याख्यायते ॥ पूर्व-

---

विलोपे[२]सम्यक्-प्रतिक्रिया[१] — =लोप होनेपर भली प्रतिक्रिया वा शुभ उपाय (जैसे प्रायश्चित्त आदिक) करना

च्छेदोपस्थापना[२], वा*विकल्प- — =सो च्छेदोपस्थापना है अथवा [=वा] विभाग करके (=विकल्प)

निवृत्तिः[२]; — =(हिंसादि सावद्य कर्मों का) त्याग करना (=निवृत्तिः)(सो च्छेदोपस्थापना है),

परिहरणम्[१]परिहारः[२]प्राणिवधात्[३]निवृत्तिः[१]; — =जीवकी पीड़ासे परित्याग सो परिहरण वा परिहार है,

तेन[३]विशिष्टा[१]शुद्धिः[१]यस्मिन्[७]तत्[१] — =तिस (प्राणिवधात् निवृत्ति) से विशेषरूप विशुद्धता जिसमें हो वह (=तत्)

परिहारविशुद्धि-चारित्रम्[१], — =परिहारविशुद्धिचारित्रहै अर्थात् जीवोंकी पीड़ाका परित्याग करनेसे विशेष विशुद्धिका होना सो परिहारविशुद्धिचारित्र है।[यह चारित्र तीर्थंकरके समीप रहनेसे होता है]

अतिसूक्ष्मकषायत्वात्[५]सूक्ष्मसाम्पराय-चारित्रम्[१]; — =बहुत हीन वा अस्थूल कषाय होनेसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र है अर्थात् अतिसूक्ष्म [लोभ] कषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थानमें जो चारित्र है उसको सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं।यहां यथाख्यातचारित्रके लगभग विशुद्धता है।

मोहनीयस्य[६]निर्-अवशेषस्य[६]उपशमात्[५]क्षयात्[५]च* — =मोहनीय कर्मके समस्त वा सम्पूर्ण उपशमसे तथा (=च) नाशसे अर्थात् द्रव्य कर्मका सत्तामेंसे चलेजानेसे अथवा उठजानेसे और सम्पूर्णतया दबजानेसे

आत्म-स्वभाव-अवस्था-अपेक्षा- — =जिस(उपशम वा क्षय)से आत्माके (वीतराग-निर्विकार शुद्ध स्वभावकी अपेक्षासे दशा

लक्षणम्[१]।।यथाख्यातचारित्रम्[१]।।इति*आख्यायते। — =जतलाई जाती है अर्थात् प्रगट होती है सो यथाख्यात चारित्र है, ऐसा प्रसिद्ध है संक्षेपतः सम्पूर्ण मोहनीय कर्मके उपशम तथा नाशसे यथावस्थित आत्मस्वभावकी उपलब्धि वा प्राप्ति है सो यथाख्यात चारित्र है।

पूर्व- — =पहिले (सामायिक-च्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय)

चारित्रानुष्ठायिभिराख्यातं न तत्प्राप्तं प्राङ्मोहक्षयोपशमाभ्यामित्यथाख्यातम् ॥ अथशब्दस्यानन्तरार्थवर्तित्वान्निरवशेषमोहक्षयोपशमानन्तरमाविर्भवतीत्यर्थः ॥ अथाऽऽख्यातमिति वा यथात्मस्वभावोऽवस्थितस्तथैवाख्यातत्वात् ॥ इतिशब्दः परिसमाप्तौ द्रष्टव्यः ॥ ततोयथाख्यातचारित्रात्सकलकर्मक्षयपरिसमाप्तिर्भवतीति ज्ञाप्यते ॥ सामायिकादीनामानुपूर्व्यवचनमुत्तरोत्तरगुणप्रकर्षज्ञापनार्थम् ॥

चारित्र–अनुष्ठायिभिः[३]आख्यातम्[१]।।। =चारित्रके [आचरण] करनेवालों करि [इसका] व्याख्यान किया गया
प्राक्–मोहक्षय–(मोह)उपशमाभ्याम्[३] =(परन्तु) मोहकर्मके नाश तथा [मोहकर्मके] उपशमसे प्रथम वा पहिले
न*तत्[१]''प्राप्तम्[१]।।इति*अथ– =वह [–तत्–अथाख्यातचारित्र] प्राप्त नहीं हुआ इस प्रकार अब
आख्यातम्[१]।।;अथ*शब्दस्य[६]अनन्तर–अर्थ– =कहा गया है (=आख्यातम्), अथ शब्दका लगताही अर्थ
वर्तित्वात्[५]।।निर्–अवशेष-मोहक्षय-उपशम-अनन्तरं-=होनेसे [=वर्तित्वात्]समस्त मोहके नाश तथा उपशमके लगताही (=अनन्तर)
आविर्भवति।इति*अर्थः[१]अथ–आख्यातम्[१]''इति*=प्रगट होता है ऐसा अभिप्राय है (तातें) अथाख्यातचारित्र ऐसा [नाम सार्थक] है
(१)वा*यथा*आत्मस्वभावः[१]अवस्थितः[१]तथा*एव=अथवा जैसा आत्माका स्वभाव विद्यमान [अवस्थित] है वैसा ही
आख्यातत्वात्[५]''; =कथन किये जानेसे (=आख्यातत्वात्) (यथाख्यात ऐसा व्याख्यान किया गया है)
इति*शब्दः[१]परिसमाप्तौ[७]'' =(सूत्रमें) इति शब्द परिपूर्णताके अर्थमें
द्रष्टव्यः[१],ततः*यथाख्यात–चारित्रात्[५]''' =देखना चाहिये अर्थात् जानना चाहिये अथवा लेना चाहिये, तिस यथाख्यात चारित्रसे
सकल–कर्म–क्षय-परिसमाप्तिः[१]।।भवतिइति*ज्ञाप्यते;=समस्त कर्मके नाशकी परिपूर्णता होती है ऐसा (इति शब्द करि)बताया गया है
सामायिक-आदीनाम्[६]आनुपूर्व्य-वचनम्[१]।।' =सामायिक,च्छेदोपस्थापना,परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसाम्पराय,यथाख्यातकाक्रमसेकथनहै सो
उत्तर–उत्तर–गुण–प्रकर्ष–ज्ञापन-अर्थम्[१]''', =अगले अगले चारित्रमें एक (दूसरेसे अग्रिममें) गुणकी वृद्धिके जतावनेके लिये है,

''वा यथात्मस्वभावोऽवस्थितस्तथैवाख्यातत्वात्'' इस वाक्यके पश्चात् "यथाख्यातम् इति आख्यायते"इतना वाक्यशेष है अर्थात् ऊपरके वाक्यमें जब नीचेका वाक्य जोड़ देवेंगे तब वाक्य पूरा होगा और अर्थ भी पूरा प्राप्त होगा जैसा कि तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३४१की पंक्ति २५, २६,के निम्नलेखसे विदित है "अथवा यथात्मस्वभावोऽवस्थितः। तथैवाख्यातत्वाद्यथाख्यातमित्याख्यायते" ॥

आह उक्तं चारित्रं तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् तपसा निर्जरा चेति तस्येदानीं तपसो विधानंकर्तव्यमित्यत्रोच्यते। तत् द्विविधम् बाह्यमभ्यन्तरं च॥ तत्प्रत्येकं षड्विधिम्॥तत्रबाह्यभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह

(प्रथमपाठ)अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः॥१९॥(द्वितीयपाठ)अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसंङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः॥१९॥

आह T उक्तम्[1]''चारित्रम्[2]''तद्-अनन्तरम्[3]''उद्दिष्टम्[4]''यत्[5]''तपसा[6]''निर्जरा[7]''च*इति» तस्य[8]''इदानीम्*तपसः[9]''विधानम्[10]''कर्तव्यम्[11]'' इति*अत्र*उच्यते T। तत्[12]''द्वि-विधम्[13]'' बाह्यम्[14]''अभ्यन्तरम्[15]''च*तत्प्रत्येकम्[16]''षड्विधम्[17]''तत्र-बाह्य-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम्[18]''आह T

=(कोई) पूछता है कि चारित्र कहा गया उस[चारित्र] के लगताही (=अनन्तर) =उपदेश किया गया जो(=यत्)"तपसा निर्जरा च"ऐसा(अध्याय ९ का तीसरासूत्र) =तिस तप का अब विधान प्रकार अथवा भेद किया जाना चाहिये, =इस प्रकार [प्रश्न होने पर] यहां कहा जाता है कि वह (तप) दो प्रकार है, =बाह्य और [=च] अन्तरंग, वह प्रत्येक (तप) छह प्रकार है, =तहां बाह्यके भेद कहनेके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(प्रथमपाठ)अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यम् तपः

=अनशन-आवमोदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशाः बाह्यम्-तपः।**अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यमृतपः**=अनशन-अवमौदर्य्य(आवमौदर्य्य)-वृत्तिपरिसङ्ख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यमृतपः

(१) श्वेताम्बर आम्नायको भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र ७०६पर हमारे यहांका प्रथम पाठ है और उनके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके

पृष्ठ २१० पर हमारे यहांका द्वितीय पाठ है॥ अर्थात् दोनों समाजोंमें स्थूलरूपसे एकसा है॥ हमारे यहां प्रथम पाठ मुद्रित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति की दोनों आवृत्तियोंका है, यही पाठ दो हस्तलिखित प्राचीन प्रतियोंके पत्र ८५ और १०२ पर क्रमसे है, तीसरी हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ १८५पर द्वितीय पाठ मिलता है, राजवा०में प्रथम, श्लोकवा०में द्वितीयपाठहै, हस्तलिखित प्रतियोंमें किसीमें प्रथम पाठ है, किसीमें द्वितीय पाठ है, भाषाके बड़े बड़े टीकाओंमें और साधारण टीकाओंमें इस सूत्रके द्वितीय तपके संबंधमें शुद्ध और अशुद्ध इतने भिन्न भिन्न पाठ हैं कि उन सबका उल्लेख करना हमारी शक्तिसे बाहर है अब प्रश्न यह है कि अवमोदर्य, आवमोदर्य, और आवमौदर्य अवमौदर्य, भिन्न भिन्न प्रतियों में ये चार शब्द मिलते हैं इनमेंसे कौन कौन शुद्ध हैं और क्यों। इन चारों शब्दोंमें कहीं कहीं एक 'व' है कहीं कहीं दुहरा 'व्य' है जैसे अवमौदर्य और अवमौदर्य इत्यादि यह एक साधारण बात है क्योंकि "अचोरहाभ्यां द्वे वा" सूत्रसे (जिसको हम कई वार लिख चुके हैं) दोनों ही रूप 'व' के संबंधमें ठीक हैं॥ अवमोदर्य शब्द व्याकरणके नियम विरुद्ध है और आवमोदर्य और आवमौदर्य और अवमौदर्य शब्द निम्न हेतुओंसे ठीक हैं॥ अष्टाध्यायी अध्याय ५ पाद १ सूत्र १२३ ऐसा है कि गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च = गुणवचन—ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (= भाव जिसकी अनुवृत्ति सूत्र ११९ तस्यभावस्त्वतलौ से आती है और ष्यञ्—इस शब्दकी अनुवृत्ति १२३ सूत्रसे आती है) इसलिये सूत्र = गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणिभावे ष्यञ् हुआ

गुणवचन- = गुणवाचक शब्दोंसे (अर्थात् वे शब्द जो किसीके गुणोंको कहने वालेहों उनके पीछे)

ब्राह्मणादिभ्यः = और ब्राह्मण आदि (एकसौ छह शब्द जो आकृतिगणमें गिनाये गये हैं और अन्य भी जिनकी आकृति, रूप अथवा आकार इन शब्दोंसे मेल करते हों, कौन शब्द आकृतिगणमें सम्मिलित करना चाहिये? (उत्तर) ऐसे जाना जाता है कि किसी प्रमाणीक लेखकके लेखमें अमुकरूपमें वा आकारमें उस शब्दका प्रयोग हुआ हो) शब्दोंसे (परे-पीछे-पश्चात्)

कर्मणिभावे ष्यञ् = (ये सब शब्द षष्ठ्यन्त समर्थ हों तो) कर्म अर्थ और भाव अर्थमें भी (= च) ष्यञ् (= य) प्रत्यय हो जैसे जड़स्य (गुणवाचक शब्दमें) कर्म वा भाव = जाड्यम् (= मूर्खका कर्म अथवा मूर्खका भाव), (मूढ़स्य गुणवाचक शब्दमें) कर्म वा भाव = मौढ्यम् (मूर्खका भाव अथवा आचरण) अर्थात् ष्यञ् (= य) का यह प्रभाव है कि शब्दके प्रथम स्वरकी वृद्धि कर देताहै, ऐसे ही ब्राह्मण + य = ब्राह्मण्यम् (ब्राह्मणका कर्म वा भाव)॥ अवम (गुणवाचक शब्द है) = न्यून अर्थात् खाली उदर = पेट अवम + उदर = अवमोदर अर्थात् खाली है पेट जिसका वह अवमोदर है, और अवमोदरका जो भाव है वह आवमोदर्य है भाषार्थ अवमोदरमें उक्त सूत्र द्वारा ष्यञ् (= य) प्रत्यय लगानेसे अवमोदर + ष्यञ् = आवमोदर + य, अ गिरजाता है इसलिये आवमोदर्य बना स्मरण रहे कि सूत्रके प्रथम पाठ में 'अनशनावमोदर्य' का पदच्छेद अनशन = आवमोदर्य है (न कि अनशन-अवमोदर्य)। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३४२ तथा दो हस्तलिखित प्रतियोंमें तीसरी वार्तिक तथा उसकी वृत्तिमें और ग्यारहवीं वार्तिककी वृत्तिके अंतिम वाक्यमें स्पष्टरूपसे आवमोदर्य शब्द का ग्रहण इस प्रकारसे है कि संयमप्रजागरदोषप्रशमसंतोषस्वाध्यायसुखसिद्धय्या अवमोदर्यम्॥ तीसरी वार्तिक॥अवममूनं उदरमस्याऽवमोदरः अवमोदरस्य भावः, कर्म वा आवमोदर्यम्॥ संयम-प्रजागरदोष = संयमकी वृद्धिके लिये, निद्राके अभावके लिये, (= प्रजागर) वात-पित्त-रुधिरके (= दोष) प्रशम संतोष-स्वाध्याय-सुखसिद्धि-अर्थम् आवमोदर्यम् = दबानेके लिये, संतोषस्वाध्याय = सुखसिद्धिके लिये, न्यूनआहारता सो (सम्यग्) आवमोदर्यहै शब्दशः यही वाक्य सर्वार्थसिद्धिवृत्ति में है परन्तु मुद्रित और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें अंतमें अवमोदर्य है सो अशुद्ध है॥

अवमम्-ऊनम्-उदर-अस्य असौ अवमोदरः अवमोदरस्य = खाली है न्यून है पेट जिसका सो (= असौ) अवमोदर है, अवमोदरका

भाव वा कर्म आवमोदर्यम् = भाव है अथवा अवमोदरका कर्म है अर्थात् उदरका भारीपन न होना सो आवमोदर्य है

आवमोदर्यरसपरित्यागावग्रहार्थैकदेशनिवृत्तिपरीतिमहान्भेदः = आवमोदर्य—रसपरित्याग-अवग्रहार्थ्य-एकदेशनिवृत्तिपरीति महान्भेदः

आवमोदर्य-रसपरित्याग-अवग्रवहर्तव्य-एकदेश-निवृत्ति-परौ = आवमोदर्य रसपरित्याग है सो भक्षण करने योग्यकाही एक देशकी निवृत्तिमेंतत्परहै

पं० पन्नालाल दूनीजीने और न्यायदिवाकरजीने इसी सूत्रके अनुवाद करनेमें कई स्थानोंपर 'आवमोदर्य' शब्दका प्रयोग किया है अतः व्याकरणके उक्त सूत्रानुसार, पूज्यपादस्वामी तथा राजवार्तिकके कर्ताके प्रयोगोंसे 'आवमोदर्य' शब्द शुद्ध है और 'अनशनावमोदर्यका' पदच्छेद अनशन आवमोदर्यहै

( ) आवमौदर्य—हमको कई स्थानोंपर 'आवमौदर्य' शब्दका प्रयोग मिला है जैसे पं० पन्नालालजीन्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिककी नवमीं वार्तिककी वृत्ति का भाष्यका अनुवाद करनेमें पत्र १४४३ की पंक्ति ३०में लिखते हैं "यानें अनशनआवमौदर्य्य रसपरित्याग इन तीनिका वृत्तिपरिसंख्यानकरिही गर्भितपना है इत्यादि। आवमौदर्य में अवम (गुणवाचक) शब्दके प्रथमस्वर और उदरके 'उ' की वृद्धिकी है इसको 'द्विपदवृद्धि' कहते हैं, अष्टाध्यायीके उक्त सूत्र अर्थात् अष्टाध्यायी,अध्यायपादपाद १ सूत्र१२४ और अध्याय ७ पाद ३ सूत्र ३०से यह ठीक है क्योंकि अनुशतिकादीनां च = अनुशतिकादीनाम्, च (वृद्धिः-पाद २ सूत्र ११४से,-अण्-पाद २ सूत्र११५से-क् पाद २ सूत्र ११८से, उत्तर पदस्य-पाद ३ सूत्र १०, पूर्वपदस्य-पाद ३ सूत्र १९से अनुवृत्तियां लेकर सूत्र इस रूपमें हो जाता है कि)

= अनुशतिकादीनाम् पूर्व पदस्य च उत्तर पदस्य वृद्धिः भवति ञ् ण् क् परे

= ञित् णित् कित् तद्धित परे हों तो गणपठित अनुशतकादि शब्दोंके पूर्वपद उत्तर पदोंके अचोंके (=स्वरोंके)आदि स्वरकोवृद्धि हो॥ अनुशतिकसे आनुशतिकम्, सर्वलोकसे सार्वलौकिक अर्थात् सर्व + लोक + ठञ् (इक) = सार्वलौकिक भावार्थ वृद्धि दोनोंपदकी परन्तु इक प्रत्यय समासके अंत भागमें लगा, अर्थ है सब लोकोंमें जाना हुआ, अनुशतकादिमें यह १६वां शब्द है॥ इहलोक = इहलोक + ठञ् (= इक) = ऐहलौकिक = इस लोकका, यह चौदहवां शब्द है परलोक - परलोक + ठक् (= इक) - पारलौकिक – दूसरे लोकके लिये हितकारी काम यह १५वां शब्द है इत्यादि २१ शब्द हैं, तात्पर्य ऐसा है कि अनुशतकादीनि सूत्रसे उभयपद वृद्धि होताहै अनुशतकादीनिकी गणना दी है वहाँ सब शब्द नहीं हैं जहां उभयपद वृद्धिरूप शब्द मिलें वहांमानलो कि अनुशतिकादीनिका आकृतिवाला वा स्वरूपवाला शब्द है अतःअवमोदरमें ष्यञ् (य)प्रत्यय लगानेसे आवमौदर्य बना, और उक्त सूत्रोंसे ठीक है॥

( ) अवमौदर्य - मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें चारस्थानोंमें और हस्तलिखित प्रतिमें एक स्थानपर आया है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २१०पर दो स्थानोंपर और पृष्ठ २११ पर चौदह स्थानोंपर यह शब्द आया है, भाष्यकारने व्युत्पत्ति,पं० ठाकुरप्रसाद व्याकरणाचार्यने अर्थ दियाहै कि "अवमौदर्यम् अवममित्यूननाम । अवमकुदरमस्य अवमोदरः अवमौदरस्यभावः अवमौदर्यम्॥" अवमौदर्य अवम यह न्यून(कम) वाचीनाम अर्थात् अवम इसकाअर्थन्यून है इसलिये अवम(न्यून)अर्थात् खाली हैं उदर पेट जिसका वह अवमोदर है और अवमोदरका जो भाव है वह अवमौदर्य है अर्थात् उदरका भारीपन न होना" जब भाव अर्थमें ष्यञ् (=य)तद्धित प्रत्यय 'अवमोदर' समासमें लगाया तब उक्त सूत्र ५-१-१२४से गुणवचन शब्द 'अवम'की वृद्धि होनी चाहिये उदर शब्दके उ की वृद्धि व्याकरणके किस नियमसे कीगई समझमें नहीं आया, यदि इस समासको 'अनुशतकादीनाम् च'के आकृति वाला समास मानलें तो उभयपद वृद्धिहोना चाहिये तब 'आवमौदर्य'रूप बनेगा जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, परन्तु चूंकि यह आर्ष प्रयोगमें आया है इसलिये हम भी इसको ठीक माने लेते हैं॥ अब रहा 'अवमोदर्य शब्द वह व्याकरणके किसी सूत्रसे सिद्धि नहीं होता है ऐसा जान पड़ता है और हमारा भी अनुभव है कि 'अवमोदर्य' का उच्चारण सरल और सुगम है अतः बोल-चालमें अवमोदर्य अधिक आने लगा है अतः बहुतसी पुस्तकोंमें बिना विचारे हुये इसी शब्दको लेखकोंने भी लिखमारा है और मुद्रित होता चला आता है॥ पाठकगण इस शब्द पर अवश्य ही अधिक प्रकाश डाल कर अनुगृहीत करेंगे॥

दृष्टफलानपेक्षं संयमप्रसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानागमावाप्त्यर्थमनशनम् ॥ संयमप्रजागरदोषप्रशमसन्तोषस्वाध्यायादिसुखसिध्यर्थमावमोदर्यम्॥ भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारादिविषयसङ्कल्पचित्तावरोधो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगन्तव्यम् ॥

"सम्यग्योगनिग्रहोगुप्तिः" अ०६सूत्र४ से,इस सूत्रमें अनुवृत्ति आती है,राजवा०३४३ श्लोकवा० ४६५,समाष्य०२१४ अतः छहों तपोंमें'सम्यग्'जोड़ा है,आवमोदर्यका प्रयोग सर्वत्र किया है॥

सूत्रार्थः-सम्यग्-अनशनम्[१]।
सम्यग्-आवमोदर्यम्[२]।
सम्यग्-वृत्तिपरिसङ्ख्यानम्[३]।
सम्यग्-रसपरित्यागः[४]।
सम्यग्-विविक्तशय्यासनम्[५]।
सम्यक्-काय-क्लेशः[६]। बाह्यम्[७]। तपः[८]॥

=(अवम=न्यून, ऊनो, उदर=पेट,सो=अवमोदरहै उदरकाखालीपना=आवमोदर्य) उत्तमरीतिसे अल्पआहरत।
=श्रेष्ठ विधिसे जीविकाका[=वृत्ति]नियम[=परिसंख्यान]सम्यग् भोजनकी विधिको परिमितकरन,
=स्वादिष्ट वा रसरूपपदार्थोंका उत्तमरीतिसे त्याग अर्थात्उत्तमतासे घृत,दुग्ध,तेल,गुड-लवण-दही-इनछह रसोंका वा इन छह रस संयुक्तवस्तुओंका त्याग(सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिकासे)
=निरुपद्रव एकान्त,वा संसर्गरहित शून्य स्थानमें भलेप्रकारशयन और आसन और स्थिति करन,
=शरीरमें ममत्वको त्यागकर(=सम्यक्)शरीरको क्लेश देना [ये छह]बाह्यतप है[विशेष नीचेहैं]

वृत्त्यनुवादः-दृष्ट-फल-अनपेक्षम्[१]॥संयम-प्रसिद्धि-राग-उच्छेद-कर्म-विनाश-ध्यान-आगम-अवाप्ति-अर्थम्[२]॥ अनशनम्[३]॥,संयम-प्रजागर-दोष-प्रशम-संतोष-स्वाध्याय-आदि-सुखसिद्धि-अर्थम्[४]॥आवमोदर्यम्[५]॥,भिक्षा-अर्थिनः[६] मुनेः[७] एक-आगार आदि-विषय-संकल्प-चित्त-अवरोधः[८] वृत्तिपरिसंख्यानम्[९]॥ आशा-निवृत्ति-अर्थम्[१०]॥ अवगन्तव्यम्[११]॥

=इच्छा रहित[=अनपेक्ष] संयमकी सिद्धिके लिये रागभावोंके विनाशके अर्थ,
=कर्मोंके क्षयके लिये ध्यान और स्वाध्यायकी प्राप्तिके लिये(भोजनाभाव वा उपवास) सो
=(सम्यग्)अनशन (तप) है। संयम (की वृद्धि)के लिये, निद्राके अभावके लिये(=प्रजागर]
=वात-पित्त-खखार (=दोष)के प्रशमनके लिये, संतोष स्वाध्याय आदिकी,
=सुखसे सिद्धिके लिये, न्यून आहारता सो (सम्यग्) आवमोदर्य है आहारके
=इच्छुक साधुके एक गृह [=आगार] वा स्थान आदि [=आगार] विषय
=संकल्पकरि [अन्यसे] चित्तको रोक लेना सो [सम्यग्] वृत्तिपरिसंख्यान
=आशाके अभावके लिये जानना चाहिये भावार्थ यह है कि जब मुनि आहारके लिये वनसे

इन्द्रियदर्पनिग्रहनिद्राविजयस्वाध्यायसुखसिद्ध्यर्था घृतादिवृष्यरसपरित्यागश्चतुर्थं तपः॥ शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडाविरहितेषु संयतस्य शय्यासनमाबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानाद्यप्रसिध्यर्थं कर्तव्यमिति पञ्चमं तपः॥आतपस्थानं वृक्षमूलनिवासो निरावरणशयनं

चलें तो ऐसी प्रतिज्ञा करे कि एक वा दो वा पांच घरमेंही भोजनके लिये जाना वा एक वा दो ही पाड़ामें जाना रस्ते तथा चौहटेमें ही भोजन मिले तो लैना नगरमें नहीं जाना विशेष प्रकारके भोजन वा भाजनका नियम करना, विशेष दातार जैसे स्त्री अथवा पुरुषके हाथसे ही भोजन मिलैगा तो करेंगे नहीं तो नहीं इत्यादि ऐसे नियमकरे और नियमानुसार आहारकी विधि नहीं मिले तो वनमें आकर उपवास धारणकरैसो वृत्तिपरिसंख्यानतप है ॥

इन्द्रिय-दर्प-निग्रह-निद्राविजय-स्वाध्याय-सुखसिद्धि-अर्थः घृत-आदि-वृष्यरस-परित्यागः चतुर्थम् तपः॥ विविक्तेषु॥ जन्तु-पीडा-विरहितेषु॥ शून्य-आगारादिषु॥ संयतस्य शय्या-आसनम्॥ आबाधा-अत्यय-ब्रह्मचर्य-स्वाध्याय-ध्यानादि-प्रसिद्धि-अर्थम्-कर्तव्यम्॥ इति पञ्चमं॥ तपः॥, आतप-स्थानम्॥ वृक्षमूलनिवासः॥ निरावरण-शयनम्॥

=इन्द्रियका उद्धतपना वा अभिमानके रोकनेके लिये नींद न आवनेके लिये
=स्वाध्यायका सुखसे होनेके लिये, घी आदिक पुष्ट रसोंका
=छोड़ना सो चौथा (सम्यग् रस परित्याग) तप है, एकान्त [=विविक्तेषु]
=प्राणियोंकी पीड़ासे वर्जित, संसर्ग रहित [=शून्य] गुप्तस्थानादिकोंमें (=आगरादिषु)
=संयमीका शयन तथा आसन बाधाके अभावके लिये (आबाधा अत्यय)
=ब्रह्मचर्य स्वाध्याय तथा ध्यानादिककी सिद्धिके लिये
=ऐसा (=इति) कर्तव्य पांचवां (सम्यग् विविक्तशय्यासन) तप है आतपके
=स्थान, तथा वृक्षकी जडमें निवास वा वसना, छाया रहित चौहटे स्थानमें शयन

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३४२में तथा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६४में इस विविक्तशय्यासन तपको इसप्रकार लिखा है कि "आबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादि प्रसिध्यर्थं विविक्तशय्यासनं" और ऊपरकी पंक्तिका अर्थ वा विवरण तत्त्वार्थराजवार्तिकमेंयह दिया है कि 'शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडा विरहितेषु संयतस्य शय्यासनं वेदितव्य। तत्किमर्थं ? आबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्याय ध्यानादि प्रसिद्धयर्थं',

शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडाविरहितेषु =संसर्गरहित गुप्त स्थानादिकमें एकान्त प्राणियोंकी पीड़ासे रहित
संयतस्य शय्यासनम् वेदितव्यम् तत्किम्-अर्थम् =संयमीका शयन आसन जानना चाहिये । वह (शयन-आसन) किस लिये है ?
आबाधा-अत्यय-ब्रह्मचर्य-स्वाध्याय-ध्यानादि प्रसिद्धयर्थम् =बाधाके अभावके लिए ब्रह्मचर्य स्वाध्याय तथा ध्यानादिककी सिद्धिके लिये जानो

बहुविधप्रतिमास्थानमित्येवमादिः कायक्लेशः षष्ठं तपः ॥ तत्किमर्थम्? देहदुःखतितिक्षा-सुखानभिष्वङ्गप्रवचनप्रभावनाद्यर्थम् ॥ परिषहस्यास्य च को विशेषः—यदृच्छयोपनिपतितः परिषहः । स्वयंकृतः कायक्लेशः ॥ बाह्यत्वमस्य कुतः-बाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्परप्रत्यक्षत्वाच्च बाह्यत्वम् ॥ अभ्यन्तरतपोभेदप्रदर्शनार्थमाह-

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

बहुविध-प्रतिमास्थानम्[१]'''इत्येवम्*आदिः[१]' =बहुत प्रकारके पद्मासनोंको (पलट पलटकर तप) करना इत्येवम् आदि
कायक्लेशः[१]'षष्ठम्[१]'''तपः[१]''',तत्[१]'''किम्[१]'''अर्थम्[१]'''?=(सम्यक्) कायक्लेश छठा तप है, (प्रश्न) वह (कायक्लेश तप) किसलिये है ?
देहदुःख-तितिक्षा-सुख-
अनभिष्वङ्ग[१]' अङ्ग-
प्रवचन-प्रभावना-
आदि-अर्थम्[१]''';परिषहस्य[१]'अस्य[१]'च*
कः[१]'विशेषः[१]'-यदृच्छया[१]''
उपनिपतितः[१]'परिषहः[१]'स्वयंकृतः[१]'कायक्लेशः[१]',
बाह्यत्वम्[१]'''अस्य[१]'''कुतः*बाह्यद्रव्य-अपेक्षत्वात्[१]'''
पर-प्रत्यक्षत्वात्[१]'''च* बाह्यत्वम्[१]'''

=(उत्तर) शरीरको दुःख देने, क्षमा करने(=तितिक्षा)अर्थात् परिषहके सहने, सुखकी
=अभिलाषा मेटने निमित्त(=अनभिष्वङ्ग), (मोक्षके) उपाय (=अंग) अर्थात् मोक्ष मार्गकी
=[प्रभावना] तथा प्रवचन प्रभावना अर्थात् सर्वज्ञ कथित आगमकी प्रभावना
=आदिके लिये (यह कायक्लेश तप) है, परिषहके तथा (=च) इस (कायक्लेश)के
=क्या अन्तर वा भेद है (=विशेषः)(उत्तर) स्वयमेव वा अचानक (=यदृच्छया)
=आजाय सो परिषह है, आप द्वाराकी हुई कायक्लेश है ॥
=बाह्यपना इस (तप)के कहांसे है; बाह्यद्रव्यके सम्बन्ध होनेसे
=तथा (=च) अन्यको ज्योंका त्यों दीखनेके (हेतुसे)बाह्यपना है अर्थात् अनशनादि बाह्य तपकी अपेक्षासे ये तप हैं तथा बाह्य इन्द्रियोंके ग्रहणमें आते हैं तथा गृहस्थ भी इनको करते हैं तथा बाह्य लोगोंको ये प्रत्यक्ष दीखते हैं तिससे इनके बाह्यपना है

अभ्यन्तर-तपः-भेद-प्रदर्शन-अर्थम्[१]'''आह T =अन्तरंग तपके प्रगट करनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें)कहते हैं कि

प्रायश्चित्तविनय वैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें सूत्र पाठ और अर्थभी एकसा है। क्या सूत्र ४ से इसमें भी 'सम्यक्' अनुवर्तता है? नहीं तो नाटकादिका पढ़नाभी स्वाध्याय होगा

कथमस्याभ्यन्तरत्वम् । मनोनियमनार्थत्वात् ॥ प्रमाददोषपरिहारः प्रायश्चित्तम् ॥ पूज्येष्वादरो विनयः ॥ कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण चोपासनं वैयावृत्यम्॥ ज्ञानभावनाऽऽलस्यत्यागः स्वाध्यायः॥ आत्माऽऽत्मीयसङ्कल्पत्यागो व्युत्सर्गः॥चित्तविक्षेपत्यागोध्यानम्॥तद्भेदप्रतिपादनार्थमाह

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः—प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानानि उत्तरम्(तपः)उच्यते ॥२१॥

सूत्रार्थः—प्रायः चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानानि[1] उत्तरम्[2] तपः[3] उच्यते T

=अपराधकी (=प्रायस्) शुद्धि (=चित्त) नम्रता वा शिष्टाचार, सेवा वा टहल, ज्ञानका अध्ययन, =(परिग्रहमें ममत्वका) त्याग, एक विषयको ग्रहणकरि दूसरोंसे चिन्ता वा विचारोंको निरोध =(ये छह) बचाइआ, शेष तप कहा गया है अर्थात् १९वां सूत्रके क्रमानुसार अभ्यन्तर तप है

वृत्त्यनुवादः—कथम्*अस्य[4] अभ्यन्तरत्वम्[5], =(अरन) कैसे इस (तप) के अन्तरङ्गपना है ?

मनस्-नियम-न-अर्थत्वात्[6]; =अन्तःकरणके नियमसे नकि बाह्य पदार्थकेप्रवर्तनसे [=(अर्थत्वात्) इस तपके अंतरंगपना है]

प्रमाद-दोष-परिहारः[1] प्रायश्चित्तम्[2]; =प्रमादद्वारा (व्रतमें लगेहुये) दूषणका निवारण सो प्रायश्चित (तप) है ॥

पूज्येषु[1] आदरः[2] विनयः[3];काय-चेष्टया[4] =पूजने योग्य(पुरुषों)में सन्मान अथवा प्रतिष्ठा सो विनय है । शरीरके यत्नसे वा उद्योगसे

द्रव्यान्तरेण[5] च*उपासनं[6] वैयावृत्यम्[7]; =और (=च) द्रव्यान्तर वा अन्य द्रव्यसे सेवा वा टहल (करना) सो वैयावृत्त्य है ।

ज्ञान-भावना-आलस्य[8] त्यागः[9] स्वाध्यायः[10];=ज्ञानके आराधनमें आलसका परिहार सो स्वाध्याय है ।

आत्मा[1] आत्मीय-संकल्प-त्यागः[2] =मैइं (=आत्मा) ये अपना है (=आत्मीय) (ऐसे) मनके व्यापार (=संकल्प)की निवृत्ति

व्युत्सर्गः[3]; =सो व्युत्सर्ग तप है अर्थात् पर द्रव्यविषैं यह मेरा है, यह मैं हूं, ऐसे संकल्पका निवारणसोहै

चित्त-विक्षेप-त्यागः[1] ध्यानम्[2],तद्-भेद- =चित्तके चलाचलपनका वा व्याकुलता का त्याग सो ध्यान है उस(अभ्यन्तर तप)के भेद

प्रतिपादन-अर्थम्[3] आह T =कहने को (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

*श्वेताम्बर आम्नायमें तथा हमारेयहांके २ भाष्योंमें भी कहीं पञ्च भेदा पाठ है कहीं पञ्चभेदं पाठ है॥अतः दोनोंसमाजमें पाठभेद है अर्थ भी एकसाहै

यथाक्रममिति वचनान्नवभेदं प्रायश्चित्तम् ॥ विनयश्चतुर्विधः ॥ वैयावृत्यं दशविधम् ॥ स्वाध्यायः पञ्चविधः ॥ द्विविधो व्युत्सर्ग इत्यभिसम्बध्यते ॥ प्राग्ध्यानादितिवचनं ध्यानस्य बहुवक्तव्यत्वात्पश्चाद्वक्ष्यत इति ॥ आद्यस्य भेदस्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह—

पदच्छेदः—नव-चतुर्-दश-पञ्च-द्वि-भेदाः भवन्ति यथाक्रमम् प्राग्-ध्यानात् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—नव-चतुर्-दश-पञ्च-द्वि-भेदाः[1] भवन्ति =नौ, चार, दश, पांच दो भेद हैं (=भवन्ति) जिनके ऐसे
यथाक्रमम्* प्राग्ध्यानात्[2] =क्रमसे ध्यानसे पहिले पांच तप हैं अर्थात् प्रायश्चित्त तपके नौ, विनय तपके चार, वैयावृत्यतपके दश, स्वाध्यायतपके पांच, व्युत्सर्गतपके दो भेद क्रमसे हैं ॥[सूत्र २७में ध्यान है]

वृत्त्यनुवादः—यथाक्रमम्* इति वचनात्[3] नवभेदः =[इस सूत्रमें] यथाक्रमम् ऐसे वाक्यसे नौ भेदरूप
प्रायश्चित्तम्[4], विनयः चतुर्विधः, वैयावृत्यं[5] दश- =प्रायश्चित्त[तप] है, विनय [तप] चार प्रकार है, वैयावृत्य [तप] दश
विधम्[6] स्वाध्यायः पञ्चविधः द्विविधः व्युत्सर्गः इति =प्रकार है, स्वाध्याय [तप] पांच प्रकार है, दो भेदरूप व्युत्सर्ग [तप] है ऐसे,
(२०वांसूत्रकेध्यानकेपहिलेवालेपांचतपोंका२१वां सूत्रके नव, चतुर् दश, पञ्च, द्वि, गणनाके साथ यथासंख्य अर्थात् पहिले तपका नवके साथ, दूसरे तपका चतुर्के साथ, तीसरे तपका दशके साथ, चौथे तपका पञ्चके साथ, पांचवां तपका द्विके साथ]
अभिसम्बध्यते[7] प्राग्-ध्यानात्[8] इति* वचनम्[9] ॥ =सम्बन्ध किया जाता है वा जोड़ा जाता है, [इस सूत्रमें] प्राग् वाक्य ऐसा
ध्यानस्य[10] बहुवक्तव्यत्वात्[11] पश्चात्* वक्ष्यते इति*, =ध्यान [तप] की बहुत कथनीय होने [के हेतु] से पीछे (अट्ठाईसवां सूत्रमें) कहेंगे,
आद्यस्य[12] भेद-स्वरूप-निर्ज्ञान-अर्थम्[13] आह T =आदिके (प्रायश्चित तप)के विकल्प तथा स्वरूपके निर्णयके लिये कहते हैं कि

(१) प्राग्-यह शब्द यथार्थमें "प्राच् [त्रिलिंगी है] प्र + अच् + ङिन् । पहिला समय और देश" यह देश अर्थात् स्थानके अर्थमें आया है॥[पा०को०३५७] च् घोष अक्षर अर्थात् ग्-घ्-ङ् । ज्-झ्-ञ् । ड्-ढ्-ण् । द्-ध्-न्, ब्-भ्-म् । य्-र् ल्-व्-ह् । के पहिले ग् में और अघोष अक्षर अर्थात् क्-ख्-च्-छ् । ट्-ठ्-त्-थ् । प्-फ् । श्-ष्-स् ।) के प्रथम क में परिवर्तन होजाता है, इसलिये च् ध्यानके घ् अक्षरके पहिले ग्में पलटकर प्राग् होगया, और "विग्रहवती च सं संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः" सूत्रमें प्राच् का च् चतुर्भ्यः के च् अघोष अक्षरके पहिले है, अतः च्का परिवर्तन क्में होकर 'प्राक्' होगया ॥

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेक[१]व्युत्सर्ग[२]तपश्छेद[३]परिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ:—आलोचन-प्रतिक्रमण-तदुभय-=अपराधोंको प्रगट करना, कृत अपराध मिथ्या होउ,वे दोनों(आलोचन और प्रतिक्रमण) करना विवेक-व्युत्सर्ग-तपः-छेद-परिहार- =आहारादिका त्यागकरादेना,कायोत्सर्गादिक करना,तप करना,दिक्षाका विच्छेद,संघसे निकालना उपस्थापना:ऽ''प्रायश्चित्तस्यऽ''नव-भेदाः=दिक्षाको छेदकर फिरसे देना, प्रायश्चित्त तपके (ये) नौ भेद हैं अर्थात् (क) दश दोष रहित गुरुके निकट जाकर लगेहुए अपराधोंको प्रगट करना सो आलोचन है (दश दोषका विवरण वृत्तिके अर्थमें देखो) (ख) मैंने जो अपराध किये हैं, सो मिथ्या होउ, निष्फल होहु इत्यादि प्रगट करना सो दूसरा प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त है॥(ग)कोई दोषतो आलोचनमात्रसे शुद्ध होजाता है और कोई दोष प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होजाता है, कोई दोष दोनों आलोचना तथा प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होता है उसको तदुभय [तद्=वो, उभय=दोनों वो दोनोंकरि]प्रायश्चित्त कहते हैं (घ) दोषकरि सहित जो आहार—पानी उपकरण तिनका संसर्ग हुआ होय तो तिनका त्याग करना भावार्थ किसी वस्तुका सदोषका संदेह हो, सदोष वस्तु विषै निर्दोषका ज्ञान भया,जिस वस्तुका त्याग किया था उसका पुनि ग्रहण होजाय, तिस वस्तु वा तिन वस्तुओंका फिर त्याग करना सो विवेक प्रायश्चित्त है (ङ) जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंकी भावना सहित शरीरमें ममत्वका त्याग सो कायोत्सर्ग है (मूलचार गाथा २७) कायोत्सर्गादिकाल का नियमकरि करना सो व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है ॥ (च) अनशन-आवमोदर्य,आदिक तप वेला पंचोपवासादि करना सो तप प्रायश्चित्त है (देखो इस अध्यायका सूत्र १९,२०तपके सम्बन्धमें) (छ) दिन, मास संवत्सरकी दीक्षाका छेदकरना सो छेदनामका प्रायश्चित्तहै[ज]पक्ष मासादिकके नियमसेमुनिकोसंघसे निकाल देना सो परिहार है [झ] समस्त दीक्षाको छेदकर फिरसे दीक्षा देना सो उपस्थापना प्रायश्चित्त है ॥

(१) प्रायः प्रतियोंमें 'व्युत्सर्ग'है कहीं व्युत्सर्ग है दोनों शुद्ध हैं क्योंकि'अचोरहाभ्याम् द्वे वा' सूत्रसेविकल्पकरि तुहरा ग् होजाता है।(२)'तपश्छेद'शुद्धहै जहां 'तपश्च्छेद'है अशुद्ध है वो यदि विसर्गको स्वर न माने तो अशुद्ध है,क्योंकि छ् मेंच् तबआता है जब छ् से पहिले कोई स्वर हो,छ् सेपहिले विसर्ग है [३] श्वेताम्बर आम्नायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'परिहारोपस्थापना'के स्थानमें 'परिहारोपस्थापनाभि है

तत्र गुरवे प्रमादनिवेदनं दशदोषविवर्जितमालोचनम् ॥ आकम्पियमणुमणियं जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च ॥ छण्णं सद्दाउलयं बहुजणमव्वत्तसस्सेवि ॥ १ ॥

तत्र=गुरवे[1]दशदोषविवर्जितम् [1]॥
प्रमाद-निवेदनम्[1]॥ आलोचनम्[1]॥

=तहां गुरुको दशदूषण रहित
=प्रमाद(द्वारा लागे दोषों)का सविनय कहना(=निवेदन)सो आलोचना(१)प्रायश्चित्तहै॥

आकम्पियमणुमणियं जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च
=(आकंपितं अनुमानितं यद्दृष्टं बादरं च सूक्ष्मं च
छण्णं सद्दाउलयं बहुजणमव्वत्तसस्सेवि ॥१॥
=छन्नं शब्दाकुलितं बहुजनं अव्यक्तसस्सेवि

=आकंपित, अनुमानित, दृष्ट और (=च) बादर और (=च) सूक्ष्म

=प्रच्छन, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त, सस्सेवि वा तत्सेवी (दोष) हैं ॥

अर्थात् हमारे यहां 'उपस्थापना' स्त्री लिंगमें है उसका बहुवचन स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्तिमें 'उपस्थापनाः' है, श्वेताम्बर समाजके भाष्योंमें उपस्थापन नपुंसकलिंगमें है, जिसका बहुवचन'उपस्थापनानि' हुआ उप अव्यय है,स्थापन और स्थापना दोनों शब्द शुद्ध और ठीक हैं (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४३८)शेष पाठ और अर्थ एक है, हमारे यहां की बहुधा प्रतिओंमें आलोचन शब्द पाया जाता है कहीं कहीं पर आलोचना शब्द भी है ॥ दोनों शब्दोंका प्रयोग ठीक है । 'आलोचन'' का प्रयोग प्रथमा विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग में है, 'अलोचना' प्रथमा विभक्ति स्त्रीलिंग में है ॥ (१) आलोचन, प्रकटन (लोगों को अपना कृत्य प्रगट करदेना) प्रकाशन, आख्यान, प्रादुष्करण एकार्थवाचक शब्द हैं । (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ२१३(क) प्रायः कहिये साधु लोकका समूह, तिनकाचित्त जिस कार्यमें प्रवर्त सो प्रायश्चित्त कहिये (राजवार्तिकसे) (ख)प्रायः कहिये अपराध उसकी चित्त कहिये शुद्धि करना, अपराध की शुद्धि करना सो प्रायश्चित्त है अथवा अपराधो वा प्रायस्तेन विशुद्ध्यते इति=तिसकरि अपराध वा दोष (=प्रायस्) शुद्ध किया जाता है सो प्रायश्चित्त है (ग) प्रायश्चेतयति येन तत्प्रायश्चित्तम्=जिससे वा जिस द्वारा (=येन) अपराधसे चेत जाता है वा सावधान हो आता है वा दोष को जान जाता है वह प्रायश्चित्त है (और जानकर अपराध वा निषिद्ध आचरण को नहीं करता है ऐसा भाव झलकता है) अथवा चिती संज्ञानविशुद्धयोः=चिती सम्यग्ज्ञान और विशुद्ध अर्थोंमें धातु है, उस (चिती) धातुसे निष्ठा क्त (=त) प्रत्यय करनेसे अथवा उणादि 'त' प्रत्यय करने से (चि+त) चित्त यह शब्द सिद्ध होता है तो इससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है कि इन पूर्वोक्त आलोचन आदि नौ प्रकारके क्लेशरूप प्रायश्चित्त नामक विशेष तपोंसे जिसको अप्रमाद अर्थात् सावधानता प्राप्त हुई ऐसा पुरुष जिस व्यतिक्रम वा निषिद्धाचरण (=प्रायः) को जानजाय और जानकर पुनः उन(=निषिद्धाचरण, अपराध, प्रमाद, असावधानता दोष) जिसके द्वारा नहीं करता उसको प्रायश्चित्त कहते हैं। (घ) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २५८ में प्रायश्चित्त शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसे हैं"प्रायश्चित्त, (न०)प्रायस्+चित्+क । प्रायस्=तपस्या, चित्त=निश्चय है, निश्चय संयुक्त तपस्या को प्रायश्चित्त कहतेहैं" ॥ प्रायश्चित्त के पर्याय वाचक शब्द मूलाचारग्रन्थ की ३६३ गाथामें ऐसे हैं कि' पुराने कर्मों का नाश,क्षेपण, निर्जरा,शोधन, धावन (=शोधन), पुच्छन,[निराकरण] उत्क्षेपण, छेदन [द्वैधी करण] ॥ "

अर्थात् गुरु वा आचार्य अनुग्रह रूप होकर अल्प प्रायश्चित्त देवेंगे,उनकी भेट पीछी कमंडल अथवा अन्य उपकरण करके इस लोभको प्राप्त हुआ(=आकम्पित-पद्मचन्द्र कोशपृष्ठ ५२ के अनुसार)आलोचना करै सो प्रथम आकम्पित दोष सहित आलोचना है (२) मैं दुर्बल हूं-रोगी हूं- उपवासादिक करने को असमर्थ हूं, मुझको अल्प प्रायश्चित्त देदेवेंगे तो मैं भी दोषों की आलोचना वा प्रकटन करूं इस प्रकार आचार्य वा गुरु को अपने स्वरूप का वा अवस्थाका अनुमान कराय आलोचना करना सो दूसरा अनुमानित (=अनुमान कराया गया) दोष सहित आलोचना है (३) अन्य करि नहीं देखेहुये दोष को तो मायाचार करि छिपावना और प्रत्यक्ष वा प्रकट हुये (=दृष्ट) दोष की आलोचना वा प्रकाशन करना सो तीसरा दृष्ट (=प्रत्यक्ष वा देखे हुये) दोष सहित आलोचना है (४) आलस्यसे और प्रमादसे अल्प दोष को न गिने और उसके जतावनेका उत्साह न करै स्थूल दोष की आलोचना करै सो चौथा बादर (=स्थूल) दोष सहित आलोचना है (५) महान् दुस्तर प्रायश्चित्त देनेके भयसे बड़े दोषको छिपावना और अल्प दोषकी आलोचना करना सो पांचवा सूक्ष्म(=अल्प) दोष सहित आलोचना है (६) अमुक व्रतके अतीचार होते क्या प्रायश्चित्त होता है इस अभिप्रायसे प्रायश्चित्त को जाननेके लिये गुरु वा आचार्यकी उपासना वा टहल करनी दोष न कहना सो छठवां प्रच्छन्न (=गुप्त) दोष सहित आलोचना वा प्रकाशन है (७) पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिकादि प्रतिक्रमणके दिवसमें जब बहुत मुनि इकट्ठे होवें और आलोचनाके शब्द बहुत होवैं तब आपभी अपना दोष इस आशय वा अभिप्रायसे कि बहुतसे शब्दोंके होनेसे कुछ सुनाई पड़ेगा कुछ नहीं(सुनाई पड़ैगा) कहै सो सातवां शब्दाकुलित (ध्वनिव्याकुलित, ध्वनि में गड़ बड़ाये हुये वा ध्वनिमें घबरायेहुये) दोष सहित आलोचना वा आख्यान है (८) गुरु वा आचार्यका दिया हुआ प्रायश्चित्त है सो योग्य है कि नहीं तथा आगममें है कि नहीं इसप्रकार शंकाकरि अन्य मुनियों वा साधुओं से पूछना सो आठवां बहुजन (=जनता=मनुष्यगण वा अनेक व्यक्ति) दोष सहित आलोचना अथवा प्रायुष्करण है (९) कुछ प्रयोजन विचार आपसमान हो उसको अपना अपराध वा दोष कहै गुरु वा आचार्य से न कहै और प्रायश्चित्त आपही लेलेवै सो नवमा अव्यक्त(अप्रगट वा अप्रकाशित)दोष सहित आलोचना है। इसमें बड़ा प्रायश्चित्त भी लेलेवे वा धारण करै सो भी फलकारी नहीं है॥ (१०) गुरुके सामने आलोचना न करै किसी मुनिने वैसाही दोषरूप आचारण किया हो जैसा अब स्वयम् ने कियाहै तो यह विचारकर कि जैसा अमुक मुनिको प्रायश्चित्त दियाहै वैसाही मुझको भी लेलैना चाहिये ऐसे अपने दोषको छिपावना सो दशवां तत्सेवी वा तत्सम दोष सहित आलोचना है॥

इति दस दोसा ॥ मिथ्यादुष्कृताभिधानादभिव्यक्तप्रतिक्रियं प्रतिक्रमणम् ॥ संसर्गे सति विशोधनात्तदुभयम् ॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः ॥ कायोत्सर्गादिकरणं व्युत्सर्गः॥ अनशनावमोदर्यादिलक्षणं तपः॥ दिवसपक्षमासादीनां प्रव्रज्याहापनं छेदः॥पक्षमासादिविभागेन

इति*दस^{३} दोषा^{३}, मिथ्या*दुष्कृत-अभिधानात् ^{३} अभिव्यक्त-प्रतिक्रियम् ^{३}॥ प्रतिक्रमणम्^{३}॥, संसर्गे^{३} सति ^{३} विशोधनात् ^{३}॥ तद्-उभयम् ^{३}॥,

=इस प्रकार (=इति) दश दूषण हैं, (मेरे) खोटे कियेहुये काम (=दुष्कृत)असत्य(=मिथ्या) होहु, निष्फल (=मिथ्या) होहु अथवा निष्परिणाम (=मिथ्या)होहु
=(ऐसे) कहनेकरि प्रत्यक्ष वा प्रगट रूपसे प्रतिकार वा शोधन (दोषका हटाना)
=सो प्रतिक्रमण है, (आलोचना तथा प्रतिक्रमण के) सम्बन्ध होनेपर
=दोष वा अपराध के जाते रहनेसे तद्-उभय (प्रायश्चित्त होता) है अर्थात् कोई दोष तो आलोचना मात्रसे शुद्ध होजाता है और कोई दोष प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होजाता है कोई दोष दोनों आलोचना तथा प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होजाता है उसको तदुभय (=तद्-उभय) प्रायश्चित्त कहते हैं ।

संसक्त-अन्न-पान-उपकरण-आदि-विभजनम् ^{३}॥ विवेकः^{३},

=मिलित अर्थात् दोषकरि संयुक्त अन्न-पान सामिग्री (=उपकरण) आदिका
=(संसर्ग होनेपर) पृथक् करना सो विवेक(प्रायश्चित्त)है यहां तात्पर्य ऐसाहै कि किसी वस्तुमें सदोषका संदेह पड़ता हो,सदोष वस्तुविषैं निर्दोषका ज्ञानहुआ हो,जिस वस्तुका त्याग किया था उसकाफिर ग्रहणहोजाय तिस वस्तु वा तिन वस्तुओंको फिरत्यागकरना सो विवेकप्रायश्चित्तहै।

काय-उत्सर्ग-आदि-करणम्^{३}॥ व्युतसर्गः^{३},

=कायोत्सर्गादिका अनुष्ठान सो व्युतसर्ग है अर्थात् कालका नियमकरि जिन भगवान्के गुणोंकी भावना सहित देहमें ममत्वका छोड़ना [=कायोत्सर्ग]सो कायोत्सर्ग है इस प्रकार कायोत्सर्गादिक का करना सो व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है ।

अनशन-आवमोदर्य-आदि-लक्षणम्^{३}॥ तपः^{३}॥,=[सम्यग्]उपवास तथा न्यून आहारता आदिक स्वरूप संयुक्त(=लक्षण)तप[प्रायश्चित्त]है

दिवस-पक्ष-मास-आदीनां^{३}प्रव्रज्या-हापनम् ^{३}॥=दिन,पाख, महीने आदिक की दीक्षा [=प्रव्रज्या] घटाना[=हापन]

छेदः ^{३}, पक्ष-मास-आदि-विभागेन ^{३}।

=सो छेद [प्रायश्चित्त] है । पाख महीने आदिका विभागकरि

दूरतः परिवर्जनं परिहारः ॥ पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना ॥ विनयविकल्पप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

विनय इत्यधिकारेणाभिसम्बन्धः क्रियते ॥ ज्ञानविनयोदर्शनविनयश्चारित्रविनय उपचारविनयश्चेति ॥ सबहुमानं मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः। शङ्कादिदोषविरहितं तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनविनयः। तद्वतश्चारित्रसमाहितचित्तता चारित्रविनयः। प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिषु

दूरतः*परिवर्जनम् १॥ परिहारः १, =दूरसे वर्जना सो परिहार(प्रायश्चित्त)है अर्थात् संघसे निकालदेना सो परिहार प्रायश्चित्त है।
पुनर्*दीक्षा-प्रापणम् १॥उपस्थापना १, =फिर दीक्षाका ग्रहण (=प्रापण)सो उपस्थापना (प्रायश्चित्त) है अर्थात् गुरु पहिलेकी दीक्षा छेदकर नवीन दीक्षा को देते हैं सो उपस्थापना (प्रायश्चित्त) है।
विनय-विकल्प-प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥ आह T— =विनय (तप) के भेद कहनेके लिए (आचार्य अग्रिम वा अगला सूत्रमें) कहते हैं कि

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥२३॥ =ज्ञान-दर्शन-चारित्र-उपचाराः ३(विनयस्यचतुर्भेदाः ३)॥२३॥

सूत्रार्थः-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-उपचाराः ३ विनयस्यः १=ज्ञान-दर्शन-चारित्र-उपचार विनय (तप) के
चतुर्भेदाः ३ भवन्ति T =चार भेद हैं अर्थात् ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारि त्रविनय, उपचार विनय हैं।
वृत्यनुवादः-विनयः १ इति*अधिकारेण १ =(इस सूत्रमें)विनय शब्द ऐसा प्रकरण होनेसे(प्रत्येक ज्ञान,दर्शन,चारित्र,उपचार के साथ)
अभिसंबन्धः १ क्रियते T ॥ =संयोग किया जाता है ॥
ज्ञानविनयः १ दर्शनविनयः १ चारित्रविनयः च उपचार =(तब) ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय तथा उपचार
विनयः १ इति*सबहुमानं १॥मोक्षार्थं १॥ज्ञान-ग्रहण— =विनयऐसा(परिपूर्णवाक्य) हुआ ॥ बहुतमानसहित मोक्षकेलिए ज्ञानका ग्रहण
अभ्यास-स्मरण-आदिः १ ज्ञानविनयः १, =(ज्ञानका)चिन्तन वा साधन(=अभ्यास) तथा(ज्ञानकी)सुधि वा स्मृति आदि ज्ञान विनय है
शङ्का-आदि-दोष-विरहितं १॥तत्त्वार्थश्रद्धानं १॥दर्शन- =शङ्काआदिक (आठ) दोष वर्जित तत्त्वार्थश्रद्धान सो दर्शन
विनयः १, तद्वतः १ चारित्र—समाहित- =विनयहेउन(ज्ञान,दर्शन)वाला होकर अर्थात् ज्ञानदर्शन सहित होकर,चारित्र में समाधान रूप
चित्तता १॥चारित्रविनयः १॥प्रत्यक्षेषु २॥आचार्यादिषु २॥ =चित्तको करना सो चारित्रविनय है। प्रत्यक्ष आचार्यादिकोंके होने पर

अभ्युत्थानाभिगमनाञ्जलिकरणादिरुपचारविनयः । परोक्षेष्वपि कायवाङ्मनोभिरञ्जलिक्रिया गुणसंकीर्तनानुस्मरणादिः ॥ वैयावृत्यभेदप्रतिपादनार्थमाह—

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥

अभ्युत्थान–अभिगमन–अञ्जलिकरणादिः[१] उपचार–=उठ खड़ा होना,सन्मुख जाना अंजुली करना (अर्थात् हाथ जोड़ना)आदि उपचार
विनयः[१] ॥ परोक्षेषु[२] अपि* काय-वाङ्-मनोभिः[३]॥ =विनय है ॥ उन आचार्यादिकके) परोक्षमें भी मन वचन कायकरि
अञ्जलि-क्रिया[१]॥गुणसंकीर्तन-अनुस्मरणादिः[१]; =हाथ जोड़ना, गुणोंका स्तवन करना, बारबार स्मरणादि (करना उपचार विनय है)
वैयावृत्य-भेद–प्रतिपादन–अर्थम्[१]॥आह । =वैयावृत्य (तीसरे अभ्यन्तर तप)के भेद जतलानेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसङ्घसाधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः—[१]आचार्य-उपाध्याय-[२]तपस्विन्[३]शैक्ष-ग्लान-गण-कुल[४]सङ्घ-साधु[५]मनोज्ञानाम् इति वैयावृत्यम् दशविधम् उच्यते ॥ २४ ॥

(१) बहुधा पुस्तकोंमें "आचार्य" पाठ है कहीं कहीं पर "आचार्य्य" भी पठन है "अवोरह्याम् ढ्वेवा"८-४-३६वां सूत्रसे दोनों शब्द ठीक हैं ॥
(२) बहुतसी प्रतियोंमें "तपस्वि" शब्द आया है कहीं कहीं पर (जैसे सदासुखजी लघुटीका तथा ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित प्रतिमें "तपस्वी" शब्द है वह अशुद्ध है, क्योंकि समस्त सूत्र एक समासमें है और यथार्थ शब्द 'तपस्विन्' है समासमें 'न्' का लोप होजाता है 'तपस्वि' रह गया। परन्तु 'तपस्वी' प्रथमा एक वचन पुल्लिंग 'तपस्विन्'का है, समासमें बीचमें विभक्ति नहीं होना चाहिये ॥(३) 'शैक्ष' अधिकतर पुस्तकोंमें पाठ मिलता है, शैक्षसे कुछ न्यून पुस्तकोंमें शैक्ष्य मिलता है दोनों ठीक हैं। श्वेताम्बर आम्नायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'शैक्ष' शब्दके स्थानमें शैक्षक है और 'मनोज्ञानाम्'के स्थानमें 'समनोज्ञानाम्' है शेष पाठ एक है और अर्थ भी एकसा है ॥
(४) अधिकतर प्रतियोंमें 'संघ' पाठ है इससे कुछ यादि 'सङ्घ' पाठ है। 'संघ' और 'सङ्घ' दोनों ठीक हैं (टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५४०,५४१) संघ समूहके अर्थमें पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ३१६में आया है॥ कहीं कहीं पर संग, और सङ्ग पाठ भी देखनेमें आया है। 'मेलके सङ्गसंगमौ' अमरकोश संकीर्ण २२ वर्ग श्लोक २६वां अर्थात् 'मेलक, संग, संगम ये तीन (पु०) नाम संगम (मेल) के हैं इसलिए संघ, संग-सङ्ग और सङ्ग चारों ही पाठ ठीक है।इसके लिए कि सङ्ग वा संग और सङ्ग और संघ दोनों दोनों रूपसे लिखे जाते हैं(देखो टिप्पणी, अध्याय१ पृष्ठ ५४०, ५४१)
(५) अधिकतर प्रतियोंमें"मनोज्ञानाम्'पाठ आया है इससे कुछ हीन पुस्तकोंमें 'मनोज्ञानां'पाठ है यह पाठ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनुसार शुद्ध है (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ६) परन्तु अष्टाध्यायीके अनुसार अशुद्ध है (देखो अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१) ॥

वैयावृत्यं दशधा भिद्यते । कुतः ?। विषयभेदात्॥आचार्यवैयावृत्यमुपाध्यायवैयावृत्यमित्यादि ॥ तत्र आचरन्ति तस्मादव्रतानीत्याचार्यः। मोक्षार्थं शास्त्रमुपेत्य तस्मादधीयत(ते)इत्युपाध्यायः। महोपवासाद्यनुष्ठायी तपस्वी॥शिक्षाशीलः शैक्षः॥ रुजादिक्लिष्टशरीरो ग्लानः॥ गणः स्थविरसन्ततिः।

सूत्रार्थः—आचार्यवैयावृत्यं[1]॥उपाध्यायवैयावृत्यं[1]॥तपस्वि —=आचार्यकी वैयावृत्य,उपाध्यायकी टहल,तपस्वीकी उपासना (=टहल,सेवा), वैयावृत्यं[1]॥शैक्षवैयावृत्यं[1]॥,ग्लानवैयावृत्यं[1]॥गणवैयावृत्यं[1]॥=शैक्षकी सेवा, रोगी यतीकी वैयावृत्य, वृद्ध मुनियोंके समुदायकी सेवा, कुलवैयावृत्यम्[1]॥संघवैयावृत्यम्[1]॥साधुवैयावृत्यम्[1]॥मनोज्ञ—=कुलकी वैयावृत्य, संघकी उपासना, साधुकी टहल, मनोज्ञकी वैयावृत्यम्[1]॥इति*वैयावृत्यम्[1]॥दशविधम्[1]॥उच्यते T, =सेवा ऐसे वैयावृत्य दशप्रकार कही गई है[विशेषके लिये देखो वृत्तिअनुवादमें]

वृत्त्यनुवादः—वैयावृत्यम्[1]॥दशधा* भिद्यते T, =वैयावृत्य दश प्रकारसे भेदरूप किया गया है अर्थात् वैयावृत्यके दश भेद हैं

कुतः* ? विषय–भेदात्[1]॥, =[प्रश्न] क्योंकर ?[उत्तर]प्रकरणके भेदसे(वैयावृत्यके दश विकल्प हैं जैसे)

आचार्यवैयावृत्यम्[1]॥उपाध्यायवैयावृत्यम्[1]॥ =आचार्यकी सुश्रूषा–उपाध्यायकी वैयावृत्य,

इत्यादि[1]॥ =तपस्वीकी सेवा,शैक्षकी उपासना, ग्लानकी सेवा, गणकी टहल, कुलकी वैयावृत्य, संघकी शुश्रूषा, साधुकी उपासना, मनोज्ञकी सेवा वा टहल ऐसे है

तत्र*आचरन्ति–तस्मात्*व्रतानि[2]॥इति*आचार्यः[1]; =जहां जिससे (आर्णी) व्रतोंको आचरण करते हैं ऐसा आचार्य है

[१]उपेत्य÷मोक्ष–अर्थं[2]॥शास्त्रम्[1]॥तस्मात्*अधीयते[1]इति* =(जिसके) निकट जाकर(=उपेत्य)मोक्षके लिये शास्त्र जिससे पढ़ा जाताहै ऐसा

उपाध्यायः[1]। महान्-उपवासादि–अनुष्ठायी[1]तपस्वी[1] =उपाध्याय है। महान् अनशन आदिक तप करने वाला तपस्वी है,

शिक्षाशीलः[1] शैक्षः[1] ॥ =विद्या(=शिक्षा) की है बान वा अभ्यास(=शील) जिसको सो शैक्ष है अर्थात् विद्या(=शिक्षा)के पढ़ने वाला वा सीखने वाला सो शैक्ष, शैक्षक वा शैक्ष्य है, 'जो श्रुतज्ञानके सीखनेमें तत्पर अर निरन्तर प्रभावनामें निपुण है सो शिष्य है,

[२]रुज्–आदि (रुजा-आदि) क्लिष्टशरीरः[1]ग्लानः[1],गणः[1] =रोग आदिक कर (असित) क्लेशरूप देह संयुक्त सो ग्लान है ॥

स्थविरसन्ततिः[1] =बूढ़े (=स्थविर) मुनिका गोत्र (=सन्तति) वा परिपाटीका नाम सो (गण) है,

(१)उप = निकट, पास, इत्य = जाकर,प्राप्तहोकर उपेत्य = पास प्राप्त होकर, निकट जाकर । [२] रुज् वा रुजा,दोनों शब्द स्त्री लिंगी हैं और

दीक्षकाचार्यशिष्यसन्ततयः कुलम् चातुर्वर्ण्यश्रमणनिवहः सङ्घः ॥ चिरप्रव्रजितः साधुः। मनोज्ञो लोकसम्मतः ॥ तेषां व्याधिपरिषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण वा तत्प्रतिकारो वैयावृत्यं समाध्याध्यानविचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थं॥स्वाध्याय विकल्प विज्ञापनार्थमाह—

दीक्षक-आचार्य-शिष्य-सन्ततयः[1] कुलम्[1] =दीक्षा देनेवाले आचार्यका शिष्यसमूह [=(१)सन्ततयः]सो कुल है,

चातुर्वर्ण्य-श्रमण-निवहः[1] सङ्घः[1], =चार जातिका सन्यासी (=श्रमण) समूह (=निवह) सो संघ है ; ऋषि(ऋद्धि-धारी संन्यासी)(ख)यति इन्द्रियोंका वश करने वाला सन्यासी(ग)मुनि अवधिज्ञानी, मनः पर्ययःज्ञानी सन्यासी (घ) अनागार सामान्य घरके त्यागी, ये सब संघमें आगये।

चिर-प्रव्रजितः[1] साधुः[1], =बहुत काल (=चिरम्) का दीक्षित(=प्रव्रजित) सो साधु है।

मनोज्ञः[1] लोकसम्मतः[1], =मनोज्ञ वो है जो लोकमान्य वा लोक स्वीकृत हो-तात्पर्य ऐसा है कि जिसका उपदेश लोकमान्य हो वा उपदेश बिना ही स्वयं लोकनिमें पूज्य हो प्रशंसावान् हो,सो मनोज्ञ है वा समस्तलोक जिसको महा विद्यवान कहै,प्रशस्त वक्ता कहै,महाकुलवंत कहै ऐसा लो कमान्यहो, जिन मारगके गौरवकी उत्पादनका कारणहो सो मनोज्ञ है वा असंयत सम्यग्दृष्टि भी मनोज्ञ है,

तेषाम्[1] व्याधि-परिषह-मिथ्यात्व-आदि- =तिन (दश प्रकारके पूर्वोक्त मुनियों)के रोग वेदना (=परिषह) मिथ्यात्व आदिकके

उपनिपाते[1] कायचेष्टया[1] द्रव्य-अन्तरेण[1] वा* =आपड़ने पर शरीरके प्रयत्नसे अथवा अन्य वस्तुओंकरि

तत्-प्रतिकारः[1] वैयावृत्यम्[1] समाधि- =उस (=व्याधि-परिषह-मिथ्यात्वादिका) उपाय वा उपचार सो वैयावृत्य है। समाधिका

आध्यान-विचिकित्सा-अभाव-प्रवचन- =धारण वा स्मरण (=आध्यान)ग्लानिका अभाव, आगममें

वात्सल्य-आदि-अभिव्यक्ति-अर्थम्[1]; =प्रीति आदि प्रगट वा प्रत्यक्ष प्रयोजन [इस वैयावृत्यके]हैं ॥

स्वाध्याय-विकल्प-विज्ञापन-अर्थम्[1] आह=स्वाध्यायके भेद प्रदर्शन करनेके लिये (आचार्य अग्रिम वा उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

दोनोंका अर्थ 'रोग' है, (देखोपद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३२३),इसलिये रुजादिका पदच्छेद रुज्+आदि अथवा रुजा+आदि,दोनों ही हो सकते हैं, तिससे ऊपर दोनों प्रकारके पदच्छेद दियेगये है। वृत्ति वा भाष्यका पाठ केवल "रुजादि" है। (२) सन्ततिका स्त्री लिङ्गबहुवचन "सन्ततयः" है

वाचनाप्रच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

निरवद्यग्रन्थार्थोभयप्रदानं वाचना। संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानायवा परानुयोगः प्रच्छना। अधिगतार्थस्य मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा । घोषशुद्धं परिवर्तनमाम्नायः ॥ धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः । स एष पञ्चविधः स्वाध्यायः किमर्थः । ?

वाचनाप्रच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्म्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

पदच्छेदः—वाचना-प्रच्छना-अनुप्रेक्षा-आम्नाय-धर्मोपदेशाः ¹/₁ (इति*स्वाध्यायः¹/₁) पञ्चविधः¹/₁ उच्यते)

सूत्रार्थः—वाचना-प्रच्छना-अनुप्रेक्षा-आम्नाय- =[शास्त्रका] पढ़ाना वा अध्यापन, अर्थ वा पाठका पूछना, मनन करना, शुद्ध घोकना

धर्म्मोपदेशाः¹/₁ इति*स्वाध्यायः¹/₁ पञ्चविधः¹/₁ उच्यते†=धर्मका उपदेश ऐसे स्वाध्याय (तप) पांच प्रकार कहागया है ॥

वृत्त्यनुवादः—निरवद्य-ग्रन्थ-अर्थ-उभय- =निर्दोष (=निरवद्य) शास्त्र और (उसके) अर्थ दोनों,(प्राणियों को)

प्रदानम्¹/₁''वाचना¹/₁, =पढ़ाना, सिखाना(=प्रदानं), सुनाना (=प्रदानं) सो वाचना (स्वाध्यायनामातप) है॥

संशय-च्छेदाय¹/₁ निश्चित-बलाधानाय¹/₁वा* =संदेहके दूर करनेको अथवा (=वा)निश्चय कियेहुये समर्थन वा दृढ़ करनेके लिये

पर-अनुयोगः¹/₁प्रच्छना¹/₁, =दूसरेसे प्रश्न (=अनुयोग) करना सो प्रच्छना है, भावार्थ—यदि अपनीउच्चता प्रगट करनेकेलिए, अन्यको ठगनेके लिए, किसीको पराजय करनेके लिये दूसरेकी हास्य करनेके अर्थ इत्यादि खोटे परिणामोंसे प्रश्न किया जावै तो वह प्रच्छना स्वाध्याय नामा तप नहीं है वरन् अपने संशयके दूर करनेको ज्ञानीसे प्रश्नकरना सो प्रच्छना स्वाध्याय है॥

अधिगत-अर्थस्य¹/₁ मनसा¹/₁''अभ्यासः¹/₁अनुप्रेक्षा¹/₁'',=जानेहुये अर्थका वा पदार्थका मनकरि बारम्बार चिन्तवन सो अनुप्रेक्षा [स्वाध्यायतप है]

घोषशुद्धम्¹/₁''परिवर्तनम्¹/₁॥आम्नायः¹/₁', =(शब्द वा पाठको) शुद्ध घोकना, बोलना, फेरना [=परिवर्तन] सो आम्नाय है।

धर्म-कथा-आदि-अनुष्ठानम्¹/₁''धर्मोपदेशः¹/₁, =धर्मकी कथा आदिका करना अर्थात् उपदेश करना सो धर्मोपदेश[स्वाध्याय तप] है

सः¹/₁एषः¹/₁पञ्चविधः¹/₁स्वाध्यायः¹/₁किम्¹/₁॥अर्थः¹/₁ ? =[प्रश्न] सो यह [=एषः] पांच प्रकार स्वाध्याय किस लिए है ? [उत्तर]

(१) इस सूत्रका पाठ, अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है। हमारी सम्प्रदायकी पुस्तकोंमें अधिकतर 'पृच्छना' पाठ है 'इसपाठसे गद्यभागमें कुछ हीन प्रच्छना है दोनों ठीक हैं क्योंकि पृच्छा(स्त्री०)पृच्छन (न०)वैद्यकोश पृष्ठ ४५१, और आंगलकोश पृष्ठ२१२,२१३,प्रच्छन(न०) प्रच्छना(स्त्री०)सब ठीक हैं॥

प्रज्ञातिशयः प्रशस्ताध्यवसायः परमसंवेगस्तपोवृद्धिरतिचारविशुद्धिरित्येवमाद्यर्थः॥व्युत्सर्ग-भेदनिर्ज्ञानार्थमाह—

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

प्रज्ञा–अतिशयः[1]'प्रशस्त–अध्यवसायः[1]'परम–संवेगः[1]', तपो–वृद्धिः[1]''अतिचार-विशुद्धिः[1]''एवम्*इत्यादि[1]''अर्थः[1]'=बुद्धिकी अधिकाई, प्रशंसनीय अभिप्राय वा आशय, उत्कृष्ट उदासीनता, तपकी बढ़ती, अतीचार शोधने, इसप्रकार[=एवम्]इत्यादिके लिये [=अर्थः] है =व्युत्सर्ग [तप]के भेद निर्णयके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि व्युत्सर्ग-भेद–निर्ज्ञान–अर्थ[1]'' आह T'

(१)बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

=बाह्याभ्यन्तरोपध्योः व्युत्सर्गो द्विविधः भवति ॥२६॥

सूत्रार्थः—बाह्य–अभ्यन्तर–उपध्योः[2]'व्युत्सर्गः[1]' द्विविध[1]' भवति T'

=बहिरङ्ग तथा अंतरंग परिग्रह(=उपधि)में व्युत्सर्ग वा त्याग[नामक अभ्यन्तरतप] =दो प्रकार है। अर्थात् दश प्रकार (क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी दास, कुप्य, भांड) बहिरंग परिग्रहका त्याग (=व्युत्सर्ग) और चौदहप्रकार [मिथ्यात्व,स्त्री-पुरुष- नपुंसक-वेद,राग, द्वेष,हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा,मान,माया,लोभ,अन्तरंग परिग्रह वा उपधिका परित्याग (=व्युत्सर्ग) ऐसे दो प्रकार है॥ संक्षेपतः–बाह्य तथा अभ्यन्तर[परिग्रहका त्याग]सो व्युत्सर्ग तपहै

(१)दोनों जैन सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ तथा पाठ एक है। केवल इतना अन्तर है कि हमारे यहां बाह्य परिग्रहके दश भेद हैं (देखो इस सूत्रके अर्थको) परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यमें बाह्य "द्वादशरूपक उपधिसंबंधी है" ॥ देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २१६। उत्सर्ग वा व्युत्सर्गका अर्थ त्याग, छोड़ना क्षेपण करना है और इन सर्व शब्दोंका अर्थ एकसा है। जहां कहीं किसी सूत्रमें ये शब्द आय हैं, वहां उसीप्रकरणसे संबंध रखने वाली किसीवस्तुका त्याग, छोड़नेके अर्थमें आते हैं। जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणोंसे प्रगट है॥

(क) मोक्षशास्त्रमें पहिले ही पहले"उत्सर्ग शब्द सातवें अध्यायके ३४वां सूत्रके प्रोषधोपवासके अतीचारोंमें आया है, वहांपर इस शब्दका अर्थ मल-मूत्र-खखार-थूक-नाक आदिके मैलका त्याग वा क्षेपण करना था फैंकना उत्सर्ग है॥(ख)दूसरी बार समितिके सम्बन्धमें अध्याय९ सूत्र ५में मल-मूत्र-खखार-थूक-नाक कान इत्यादिके मैलका क्षेपण करना, फैंकना वा त्यागना (=उत्सर्ग) इस अर्थमें उत्सर्ग है ॥

(ग) इस अध्यायके २०वें तथा २६वें सूत्रमें तपके संबंधमें आया है-२०में परिग्रहमें ममत्वका त्याग (=व्युत्सर्ग) सामान्य रीतिसे है तथा २६वें में बहिरंग उपधिका त्याग (=व्युत्सर्ग) और अंतरंग उपधि (=परिग्रह)का त्याग (=व्युत्सर्ग) अर्थमें आया है। (घ) इसी अध्यायके बाईसवां सूत्रमें (व्युत्सर्ग शब्द प्रायश्चित्तके नौ भेदोंमेंसे पांचवां भेद है, कायोत्सर्ग=काय+उत्सर्ग, वि जोड़नेसे=काय व्युत्सर्ग=शरीरमें ममत्वका त्याग, अतः सब स्थानोंमें उत्सर्ग वा व्युत्सर्ग=(किसी अधिकृत वस्तुके)त्याग, छोड़ना, परित्याग, क्षेपण अर्थोंमें आया है॥

व्युत्सर्जनं व्युत्सर्गस्त्यागः। स द्विविधः—बाह्योपधित्यागोऽभ्यन्तरोपधित्यागश्चेति॥ अनुपात्तं वास्तुधनधान्यादि बाह्योपधिः। क्रोधादिरात्मभावोऽभ्यन्तरोपधिः। कायत्यागश्च नियतकालो यावज्जीवं वा ऽभ्यन्तरोपधित्याग इत्युच्यते। स किमर्थः? निस्सङ्गत्वनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थः॥ यद्बहुवक्तव्यं ध्यानमिति पृथग्व्यवस्थापितं तस्येदानीं भेदाभिधानं प्राप्तकालं। तदुल्लंघ्य तस्य प्रयोक्तृस्वरूपकालनिर्द्धारणार्थमुच्यते—

वृत्त्यनुवादः—व्युत्सर्जन[१]''व्युत्सर्गः[१]त्यागः,[१]सः[१] = वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद व्युत्सर्जन, व्युत्सर्ग है सो त्याग है, वह
द्विविधः[१]बाह्य-उपधि-त्यागः[१]अभ्यन्तर-उपधि-त्यागः[१]च*=दो प्रकार है, बहिरंग परिग्रह[=उपधि]का त्याग और अन्तरंग परिग्रहका त्याग
इति*। अनु-उपात्तम्[१]''वास्तु-धन-धान्य- =ऐसे है, अग्रहीत वा अप्राप्त अर्थात् आपसे पृथग् वास्तु, धन, धान्य,
आदि[१]''बाह्य-उपधिः[१],क्रोध- =क्षेत्र, हिरण्य, सुवर्ण, दासी, दास, कुप्य, भांड(=आदि) बहिरङ्ग परिग्रह हैं॥ क्रोध
आदिः[१] =मिथ्यात्व, स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय,
जुगुप्सा, मान, माया, लोभ (=आदि) [कर्मके निमित्तसे]
आत्म-भावः[१]अभ्यन्तर-उपधिः[१],काय-त्यागः[१]च* =आत्माके परिणाम अंतरङ्ग परिग्रह है। शरीरका त्याग भी (=च)जो
नियतकालः[१]याव ज्जीवम्*वा*अभ्यन्तर- =कालका नियमकरि अथवा [=वा] जीवन पर्यन्त होता है। अन्तरङ्ग
उपधि-त्यागः[१]इति*उच्यते। T सः[१]किम्[१]''अर्थः[१]? =परिग्रहका त्याग है ऐसा वर्णित है। वह व्युत्सर्ग किस लिए है?
निस्सङ्गत्व-निर्भयत्व-जीवित-आशा-व्युदास-आदि- =निस्सङ्गपना, निडरता, जीवितकी आशाका अभाव आदिक [प्रयोजनों]
अर्थः[१],यद्[१]''बहु-वक्तव्यम्[१]''ध्यानम्[१]''इति* =के लिये (व्युत्सर्ग) है॥ जो (=यद्) बहुत (भेद) कहे जाने योग्य ऐसा ध्यान
पृथग्-व्यवस्थापितं[१]''तस्य[१]''इदानीं*भेद-अभिधानं[१]'' =न्यारा रक्खा गया था, अब तिस (ध्यान)के भेदोंके कहनेका
प्राप्तकालम्[१]'',तद्-उल्लंघ्य-तस्य[१]॥' =समय प्राप्त है, तिस कालको उलंघकरि वा लांघकरि अर्थात् छोड़कर तिस(ध्यान)के
प्रयोक्तृ-[निर्द्धारण]स्वरूप-[निर्द्धारण]काल- =करने वालेका[निश्चय] तथा (ध्यानके) स्वरूपका (निर्द्धारण)और(ध्यानके) कालके
निर्द्धारण-अर्थम्[१]॥'उच्यतेT— =निश्चय (करने)के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥

=उत्तम-संहननस्य-एकाग्-चिन्ता-निरोधः-ध्यानम्-(१)आ-अन्तर्मुहूर्तात् भवति ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—(२)उत्तमसंहननस्य[1] =उत्कृष्ट (वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच) संहनन वालेका
आ-अन्तर्मुहूर्तात्[2] =अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अर्थात् मुहूर्त $\frac{8}{9}$ घंटेके समयसे न्यून समय तक
(३) एक-अग्र- =(अन्य क्रियाओंसे खींचकर वा हटाकर) एक (विषय वा पदार्थ) को अवलम्बन वा ग्रहण (=अग्र) करि
चिन्ता-निरोधः[3] =चित्तकी वृत्तिका (इस एकमें) निरोध वा ठहराव

(१) अन्तर्मुहूर्तात् तथा अन्तर्मुहूर्तात् (अवोरद्राभ्याम् द्वेवा) (अष्टाध्यायी ८-४-४८)सूत्र से दोनों ही पाठ ठीक हैं ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें तथा हमारे यहां 'उत्तम'''ध्यानम्'तक एक पाठ है पश्चात् 'आन्तर्मुहूर्तात्' वाक्यके स्थानमें 'आमुहूर्तात्'है और समाप्य-तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस एक सूत्रके दोसूत्र करदिये हैं परन्तु आङ्(=आ)उपसर्गके अर्थकी विचित्रतासे दोनों आम्नायोंमें अभिप्राय एकसा है। आङ् के सम्बन्धमें हम पहले पृष्ठ ७३,७४ पर देचुके हैं और विशेषरूपसे अध्याय ७ पृष्ठ ८३, ८४पर, उक्त टिप्पणियोंमें क्रमसे हमने 'आकुमारेभ्यो यशः सीतायाःआकुमारं यशः सीतायाः' =(मनुष्योंसे लेकर) छोकरों तक सीताका यश (प्रसिद्ध) है और आकुमारेभ्यो यशः पाणिनेः आकुमारं यशः पाणिनेः =(मनुष्योंसे लेकर) लड़कोंतक पाणिनिका यश (प्रसिद्ध) है दृष्टान्त दिये हैं उक्त उदाहरणोंमें 'आकुमार''का एक वचनमें क्यों प्रयोग है और 'आकुमारेभ्यः'में बहुवचन क्यों हैं ॥ निम्न सूत्रके अनुसार अपादान पंचमी विभक्तिको छोड़कर अव्ययीभाव समासके अन्तमें म् आता है('नाव्ययीभावादतोऽत्वपञ्चम्याः। २-४-८३ ।=न,अव्ययीभावात् अतः अम् तु अपञ्चम्याः (सुपः लुक्) =अत् (=अ) हो अन्तमें जिसके ऐसे अव्ययीभाव(समास)से परे सुप्का लुक् न हो और पञ्चमीभिन्न सुप्को अम्आदेशहो अब यहां पाठकोंको विशेष ध्यान आकर्षण करता हूं कि हमारे यहां आ+अन्तर्मुहूर्तात् वाक्यको लाये हैं उसमें आ शब्दको अभिविधि अर्थमें लिया है अर्थात् 'से'''तक' चिन्ताका निरोध करने (के आरम्भके समय)के अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और श्वेताम्बर आम्नायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ''आमुहूर्तात्''जो २८वां सूत्र भिन्न किया है उसमें 'आङ्'को मर्यादा अर्थमें लिया है अर्थात् चिन्ताका निरोध मुहूर्तके इधर इधर न कि मुहूर्त पर्यन्त वा मुहूर्त तक और मुहूर्तसे परे भी नहीं ऐसा अर्थ हुआ और ऐसा ही अर्थ अनुवादक समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रने किया है वह अक्षरशः यह है "वह ध्यान अन्तर्मुहूर्तके अभ्यन्तरमेंही होता है न कि परे" (समाप्य० पृष्ठ २८७) अतः दोनों आम्नायोंमें एकसा अर्थ हुआ।
(३)एकाग्रः—'स्वार्थेऽण्' ऐकाग्र्य इसी अर्थमें होता है (पद्मवन्द्रकोश पृष्ठ ८५) एकं अग्रं विषयो यस्य =जिसका विषय एक हो (पद्मवन्द्रकोश८५) =और विषयको छोड़कर एकही ओर मन वाले,एकाग्र शब्दमें उसी अर्थमें अण् (=अ)प्रत्यय लगादेवें अर्थात् एकाग्र+अण् करदें तो एकी वृद्धि होकर ऐकाग्र्य बन जाता है और अर्थ एकाग्रका ही देता है ॥ एकाग्र=एकाग्रतासे वा एकरूपसे (समाप्य०पृष्ठ २८७) एकको आगे [रख]करि, मुख्य वा प्रधानकरि अर्थात् एकको ग्रहणकरि भावार्थ एक विषयको ग्रहणकरि । अग्र=प्रधान, आश्रय, सहारा, ग्रहण, अवलम्बन, मुख्य, सन्मुख॥

आद्यं त्रितयं संहननमुत्तमं वज्रर्षभनाराचसंहननं वज्रनाराचसंहननं नाराचसंहननमिति ॥ तत्त्रितयमपि ध्यानस्य साधनं भवति॥ मोक्षस्य तु आद्यमेव॥तदुत्तमसंहननं यस्य सोऽय-मुत्तमसंहननस्तस्योत्तमसंहननस्येत्यनेन प्रयोक्तृनिर्देशःकृतः॥

ध्यानम्=सो ध्यान है, संक्षेप तथा स्पष्टतया अर्थ यह है कि उत्तम संहनन वालेका $\frac{1}{2}$ घंटेसे कुछहीन काल तक एक (विषयको) आगे रखकर वा एक (विषय) को ग्रहण करि चित्तको (उस ही में) लगाना है सो ध्यान है ॥ भावार्थ—छह संहननोंमेसे पहिलेके वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, और नाराचसंहनन ये तीन उत्तम वा श्रेष्ठ संहनन हैं, ये ही तीन संहनन ध्यानके कारण हैं। उत्तम संहनन वालोंके ही मुख्यपनाकरि चिन्ताका रुकना होसक्ता है,या संसारमें गमन,भोजन, शयन, अध्यायन (=अध्ययन), अध्यापन आदिक अनेक क्रिया हैं तिनमें नियम सहित वर्ते है तहां ध्याननहीं जानना, जहां एकके सन्मुख होय चिन्ताका रुकना वा चित्तकी वृत्तिको अन्य क्रियाओंसे खींचकर वा हटाकर एक विषयमें ही रोकना सो एकाग्र चिन्तानिरोध है, सो ही ध्यान है और जहां एकाग्रता नहीं तहां भावना है ऐसे ध्यान नामक अभ्यन्तर छठवां तप है सो उत्कृष्टपनेसे अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है और मोक्ष होनेके कारणभूत एक वज्र वृषभनाराच संहनन ही है, अन्य संहननसे मोक्ष प्राप्त नहीं होसक्ती है ॥ सूत्रमें ध्याता, ध्यान, ध्येय, ध्यानकाकाल चार वर्णित हैं ॥

वृत्त्यर्थः—आद्यं[१]त्रितयं[१]संहननं[१]उत्तमं[१]वज्रर्षभ-=आदिके वा प्रथमके (तीनों)संहनन उत्तम हैं। वज्रवृषभ नाराच-संहननं[१]वज्रनाराचसंहननं[१]नाराचसंहननं[१]इति*=नाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन नाराचसंहनन ऐसे [ये तीन] हैं तत्[१]त्रितयम्[१]अपि*ध्यानस्य[१]साधनम्[१]भवति T ॥ =वह तीनों (=त्रितयम्)ही (=अपि) [संहनन] ध्यानके कारण होते हैं। मोक्षस्य[१]तु*आद्यम्[१]एव*, =परन्तु(=तु) मोक्षका(साधन) आदिका (वज्रर्षभनाराचसंहनन) ही होता है तद्[१]उत्तमसंहननम्[१]यस्य[१]सः[१]अयम्[१]उत्तमसंहननः[१] =वह उत्तम संहनन जिसके है सो यह (=अयम्) उत्तमसंहनन है ॥ तस्य[१]उत्तमसंहननस्य[१]इति*अनेन[१]प्रयोक्तृ-निर्देशः[१]कृतः[१] । =तस्य उत्तम संहननस्य ऐसे इस [वाक्य] करि (ध्यानका) प्रयोग करने वालेका =(अर्थात् ध्याता, ध्यानी, वा ध्यानकरने वालेका)उपदेश वा कथन कियागया है

(१) एक विषयको ग्रहणकरि (अन्यसे) चिन्ताका निरोध सो ध्यान है॥ एक पदार्थके सन्मुख चिन्तवनका रुकना सो ध्यान है, जो संसारमें गमन भोजन शयन अध्ययन अध्यापनआदि अनेक क्रिया है तिनमें नियम रहित वर्ते है तहां ध्यान नहीं जानना चाहिये। जहां एकके सन्मुख होय चिन्ताका रुकना, और जहां एकाग्रता नहीं तहां भावना होती है॥ एकाग्र चिन्तवनका रुकजाना अन्तर्मुहूर्ततें अधिक काल उत्तम संहनन वालेकेभी नहीं रहता है। उसके ही मुख्यपनाकरि चिन्ताका रुकना होता है॥ (अवशेष)

अग्रंमुखम् । एकमग्रमस्येत्येकाग्रः (ग्रं)। नानार्थावलम्बनेन चिन्ता परिस्पन्दवती, तस्या अन्याशेषमुखेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्नग्रे नियम एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते । अनेन ध्यानस्वरूपमुक्तं भवति ॥ मुहूर्त इति कालपरिमाणम् । अन्तर्गतो मुहूर्तोऽन्तर्मुहूर्तः॥आ अन्तर्मुहूर्तादित्यनेन कालावधिः कृतः॥ ततःपरं दुर्धरत्वादेकाग्रचिन्तायाः॥ चिन्ताया निरोधो यदि ध्यानंनिरोधश्चाभावस्तेन ध्यानमसत्खरविषाणवत्स्यात् ॥ नैष दोषः—अन्यचिन्तानिवृत्यपेक्षयाऽसदिति

अग्रम् [1]॥ मुखम्[1]॥, =(इस सूत्रमें) अग्र है सो (ही) मुख है अर्थात् अग्र [शब्द] का मुख, सहारा, अवलंबन, आश्रय, प्रधान, वा सन्मुख अर्थ है ॥

एकम्[1]॥अग्रं[1]॥अस्य[1]इति*एकाग्रः[1](ग्रे)[1]॥,नाना-अर्थ--एक है अवलम्बनमें इसके ऐसा एकाग्र है, अनेक प्रकारके विषयोंको (=अर्थ) अवलम्बनेन [3] चिन्ता [1]॥ परिस्पन्दवती [1]॥ तस्याः [6]॥ =अवलम्बनकरि अथवा आश्रयकरि विचार चलायमान होता है। तिस(चिंता) का अन्य-अशेष-मुखेभ्यः[1]॥व्यावर्त्य÷ एकस्मिन् [7]॥ =इतर समस्त (=अशेष) अवलम्बनोंसे छुड़ाय कर एक (वस्तु, विषय वा पदार्थ) के अग्रे[7]॥नियमः[1]एक-अग्र-चिंता-निरोधः[1]इति*उच्यतेT, =ग्रहणमें (=अग्रे) रोक [=नियम] सो एकाग्रचिन्ता निरोध ऐसा वर्णित है ॥ अनेन[3] ध्यान-स्वरूपम्[1]॥ उक्तम् [1]॥ भवति T। =इस [एकाग्र चिन्ता निरोध] करि ध्यानका स्वरूप कथन (=उक्तम्) होता है ॥ मुहूर्तः[1]इति*कालपरिमाणम्[2]॥ अन्तर्गतः[1] मुहूर्तः[1] =मुहूर्त ऐसा [शब्द] कालका परिमाण वा माप है। अधूरी मुहूर्त है सो अन्तर्मुहूर्तः [1]; =अन्तर्मुहूर्त है अर्थात् मुहूर्तके भीतर भीतर समय सो अन्तर्मुहूर्त है, आ-अन्तर्मुहूर्तात् [5] इति*अनेन [3]॥ काल- =अन्तर्मुहूर्त पर्यंत अथवा अंतर्मुहूर्ततक इस(वाक्य) करि कालकी अवधिः[1] कृतः [1]; ततः*परम् * =सीमा कीजाती है, क्यों कि उस [आ+अन्तर्मुहूर्तात्] से परे वा अधिक दुर्धरत्वात्[5]॥एकाग्र-चिन्तायाः[6]॥;चिन्तायाः[6]निरोधः[1]॥=एकाग्र चिन्ताका निरोध दुर्द्धर है अर्थात् नहीं हो सक्ताहै [प्रश्न] चिंताका रोकना यदि*ध्यानं[1]॥निरोधः[1]च*अभावः[1]तेन[3]ध्यानम्[1]॥ =जो ध्यान है और (=च) निरोध है सो अभाव है। तिस (अभाव) करि ध्यान असत्[1]खर-विषाणवत्*स्यात् T॥ न*एषः[1]दोषः[1] =असत् है गधे के सींग सदृश है ॥ [उत्तर] यह दूषण नहीं है, अन्य-चिन्ता-निवृत्ति-अपेक्षया[3]॥ असत्[1]॥ इति* =दूसरे विचारों की निवृत्ति वा उपरम की अपेक्षा से अभाव है, इस प्रकार

चोच्यते, स्वविषयाकारप्रवृत्तेः सदिति च । अभावस्य भावान्तरत्वाद्धेत्वङ्गत्वादिभिरभावस्य वस्तुधर्मत्वसिद्धेश्च ॥ अथवा, नायं भावसाधनः "निरोधनं निरोध इति" । किं तर्हि ? कर्मसाधनः "निरुध्यत इति निरोधः" ॥ चिन्ता चासौ निरोधश्च चिन्तानिरोध इति ॥ एतदुक्तं भवति—ज्ञानमेवापरिस्पन्दमानमपरिस्पन्दाग्निशिखावदवभासमानं ध्यानमिति ॥

च* उच्यते T,	=भी (=च) कहा गया है। (यहां चकारका प्रयोग प्रकार अर्थमें किया गयाहै)।
च* स्व-विषय-आकार-प्रवृत्तेः $\frac{1}{4}$॥ सद् $\frac{1}{2}$ इति*,	=बहुरि(=च)अपने (=स्व)विषयके आकार वा स्वरूपकी प्रवृत्तिसे सद्भाव रूपहै अर्थात् चितानेजिस विषयका अवलम्बन कियाहै तिसके स्वरूपकी अपेक्षासे ध्यान विद्यमानतारूपहै
अभावस्य $\frac{1}{2}$ भावान्तरत्वात् $\frac{1}{4}$॥।	=अभावके प्रकारान्तरतासे वा अन्यभांतिपनसे
हेतु-अङ्गत्व-आदिभिः $\frac{1}{2}$।-(१) अभावस्य $\frac{1}{2}$ च*	=(विद्यमानता वा स्वभाव रूपता) हेतु के अंगादि करि है। क्योंकि अभावके भी (=च)
वस्तु-धर्मत्व-सिद्धेः $\frac{1}{4}$॥,	=वस्तुका धर्मत्व सधता है ॥ संक्षेपतः—अभाव है सो प्रकारान्तर से स्वभावरूप है तिस से वस्तुका धर्म्म है, हेतु का अंग है, अभावसे भी वस्तु ही सधती है ॥
अथवा* 'निरोधनम् $\frac{1}{2}$॥ निरोधः $\frac{1}{2}$ इति*' अयम् $\frac{1}{2}$॥।	=अथवा निरोध है सो निरोधन है ऐसा (=इति) यह (निरोध शब्द)
न* भावसाधनः $\frac{1}{2}$,	=भाव साधन न हो अर्थात् सूत्रमें निरोध शब्द जो आयाहै उसका प्रयोग भावमें न मानैं भावार्थ इस प्रकार है कि निरोध शब्दका अर्थ निरोधन न मानैं
किम्* तर्हि * ? कर्म-साधनः $\frac{1}{2}$ "निरुध्यते T	=(प्रश्न) तौ क्या (मानैं वा मानना चाहिये) (उत्तर) कर्मवें प्रयोग (मानैं) निरोध्याजाय
इति* निरोधः $\frac{1}{2}$", चिन्ता $\frac{1}{2}$॥च* असौ $\frac{1}{2}$॥ निरोधः $\frac{1}{2}$ च*	=ऐसा निरोध है, और (=च) वह (=असौ) चिन्ता ही (=च) निरोधी जाय
चिंतानिरोधः $\frac{1}{2}$ इति*। एतद् $\frac{1}{2}$॥ उक्तम् $\frac{1}{2}$॥ भवति T-	=ऐसा चिंता निरोध (का कर्म प्रयोगमें- कर्मसाधनमें अर्थ) हुआ (अतः) यहअर्थ होताहै कि
ज्ञानम् $\frac{1}{2}$॥। एव* अ-परिस्पन्दमानम् $\frac{1}{2}$॥। -अग्निशिखावत्*	=ज्ञान ही चलाचलपनासे रहित (=अ) आगकी शिखाके समान
अपरिस्पन्द अवभासमानम् $\frac{1}{2}$॥ इति* ध्यानम् $\frac{1}{2}$॥;	=अचल प्रकाश मान वा दैदीप्यमान (=अवभासमानम्) होता है ऐसा (=इति) ध्यानहै,

११८

(१) सपक्ष-सत्व-आदि-रूपैः विपक्ष- = (ध्यान है सो) समान पक्षमें सद्भावादिरूप करि है, विरुद्ध वा प्रतिकूल पक्षमें
असत्वादिभिः अभावैः = अविद्यमानता करि अभाव (रूप) से है अर्थात् चिंता वा विचार जिस पदार्थको ग्रहण करताहै उसकी अपेक्षासे सद्भावरूप है और अन्य समस्त अवशेष विषय वा पदार्थोंकी अपेक्षासे अभावरूप है क्योंकि ध्येयके अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थोंसे वा विषयोंसे ध्यान अवस्थामें निरोध किया जाता है ॥

तद्भेदप्रदर्शनार्थमाह— ॥ आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

ऋतं दुःखं, अर्दनमर्तिर्वा, तत्र भवमार्तम् । रुद्रः क्रूराशयस्तस्य कर्म तत्र भवं वा रौद्रम् ।

तद्-भेद-प्रदर्शन-अर्थम् ॥ आह । =उस (ध्यान) के भेद प्रगट करनेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ =आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि(चत्वारि विधानि)ध्यानानिभवन्ति।२८।

सूत्रार्थः--आर्त-रौद्र (२)धर्म्य-शुक्लानि ॥ =(इस सूत्रका हिंदी तात्पर्य) आर्त, रौद्र, धर्म्य, शुक्ल

चत्वारि ॥ विधानि ॥ ध्यानानि ॥ भवन्ति । =चार प्रकार ध्यान होते हैं अर्थात् (क) अर्ति जो दुःख, पीड़ा तादिष जो चिंतवन (=ध्यान) उपजे सो आर्त्त ध्यानहै, (ख) रुद्र जो निर्दय अभिप्राय तिसमें जो चिंतवन (=ध्यान) उत्पन्नहो सो रौद्र ध्यान है, (ग) धर्म सहित जो चिंतवन (ध्यान) सो धर्म्य ध्यान है (घ) कषाय मल रहित उज्ज्वल शुद्ध परिणाम रूप अथवा विशुद्ध भाव रूप चिंतवन (=ध्यान) सो शुक्ल ध्यानहै ॥

वृत्त्यनुवादः-ऋतं ॥ दुःखं ॥ वा अर्दनं ॥ =(सर्वार्थ सिद्धिके संस्कृत वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) ऋतहै सो दुःखहै अथवा (=वा) अर्दनहै

अर्तिः ॥, तत्र* भवम् ॥; =सो पीड़ा (=अर्ति) है । तिसमें (=तत्र) उत्पत्ति (=भवम्) वा होना (=भवम्) उपजना (=भवम्)

(३)आर्तम् ॥; =सो आर्तहै भावार्थ ऐसाहै कि ऋत-अर्ति जो पीड़ा तिसमें जो उत्पन्न हो सो आर्त है ॥

रुद्रः ॥ क्रूर-आशयः ॥ तस्य ॥ कर्म ॥ ॥ वा*तत्र*=रुद्र जो निर्दय (=क्रूर) अभिप्राय तिसकी क्रिया (=कर्म) अथवा (=वा) तिसमें

भवम् ॥ (१) रौद्रम् ॥ ॥; =उत्पत्ति सो रौद्र है भावार्थ निर्दय (=क्रूर) अभिप्रायवाली क्रिया वा उक्तक्रियामें उत्पत्ति सो रौद्रहै

(१) इस सूत्रमें ध्यान शब्दकी अनुवृत्ति सत्ताईसवां सूत्र से आती है, और 'चत्वारि विधानि' तथा 'भवन्ति' वाक्योंका सूत्रमें अध्याहार किया गया है ॥ आर्त-आर्त्त, धर्म-धर्म्म पाठ "अचो रहाभ्याम् द्वे वा" पाणिनिकृता अष्टाध्यायी अध्याय ८, पाद ४, ४६ सूत्रसे शुद्ध हैं ।

(२) हमारे यहां प्रतियोंमें प्रायः 'धर्म्य' शब्द है कहीं कहीं धर्म, धर्म्म है, तीनों पाठ ठीक हैं ॥

(३) श्वेताम्बर आम्नायके संभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "आर्तरौद्रधर्मशुक्लानि" पाठ है उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "आर्त्त-रौद्रधर्म्यशुक्लानि पृष्ठ ७२८ पर पाठ है अतः दोनों समाजोंमें एकसा पाठ हुआ अर्थ भी एकसा है । "इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः"(सर्वार्थ-सिद्धि अध्याय ६ सूत्र २) =(स्वर्ग-मोक्षादि) वांछित वा सुख स्थानमें आत्माको धरताहै ऐसा धर्महै । धर्म्यम् = " धर्मादनपेतं धर्म्यम् " (सर्वार्थसिद्धि अध्याय ६ सूत्र २८) = धर्मात् अनपेतम् धर्म्यम् = धर्मसे वर्जित (= अपेत) न (= अन्) हो अर्थात् "धर्म सहित होय" जय-चंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७३६ भावार्थ धर्म वाला हो, सो धर्म्यम् है ॥

धर्मो व्याख्यातो धर्मादनपेतं धर्म्यम् । शुचिगुणयोगाच्छुक्लम् ॥ तदेतच्चतुर्विधं ध्यानं द्वैविध्यमश्नुते । कुतः? । प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् ॥ अप्रशस्तमपुण्यास्रवकारणत्वात् । कर्मनिर्दहनसामर्थ्यात्प्रशस्तम् ॥ किं पुनस्तदिति चेदुच्यते— **॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥**

परमुत्तरमन्त्यं तत्सामीप्याद्धर्म्यमपि परमित्युपचर्यते ।

धर्मः+व्याख्यातः+धर्मात्+अन-अपेतम्+ =धर्म वर्णन किया गया (अध्याय ६ सूत्र २) धर्मसे वर्जित (=अपेत)न(=अन)हो, धर्मसहितहो
धर्म्यम्+;शुचि-गुण-योगात्+शुक्लम् +; =सो धर्म्य है। शुद्ध पवित्र वा उज्ज्वल गुणके संयोगसे शुक्ल (कहा जाता) है अर्थात् कषाय मल रहित उज्ज्वल परिणाम संयुक्तको शुक्ल कहते हैं ॥
तद्+एतद्+चतुर्विधं+ध्यान+द्वै-विध्यं+ =सो[=तद्] यह[एतद्] चार प्रकार ध्यान, दो विधको
अश्नुते T। कुतः*?प्रशस्त-अप्रशस्त-भेदात् +, =प्राप्त होता है। [प्रश्न] क्योंकर ? [उत्तर] शुभ और अशुभ भेद से अर्थात् आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान अप्रशस्त हैं तथा धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान प्रशस्त हैं।
अप्रशस्तम्+अपुण्य-आस्रव-कारणत्वात् +, =पाप आस्रवका हेतुहोनेसे अप्रशस्त वा अशुभ [ध्यान] है,
कर्म-निर्दहन-सामर्थ्यात्+प्रशस्तम्+;पुनः* =कर्मोंकी विनाशकी शक्ति होने (के निमित्त) से शुभ है। बहुरि [=पुनः]
किम्+तद्+इति* चेत्* उच्यते T— =सो [=तद्] [प्रशस्त] क्या है, ऐसे प्रश्न वा शंका होने पर कहा जाता है कि

[१]परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ **=परे (धर्म्यशुक्ले ध्याने) मोक्षहेतू (भवतः) ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थःपरे+धर्म्यशुक्ले+ध्याने+मोक्षहेतू+ **सूत्रका अर्थ** अगले दो (=परे) धर्म्य ध्यान तथा शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं भावार्थ ऐसा है कि उक्त चार ध्यानोंमेंसे अगले दो धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं और अवशेष प्रथम दो आर्त्त ध्यान और रौद्रध्यान संसारके कारण हैं।

वृत्त्यनुवादःपरम्+उत्तरम्+अन्त्यम्+ =(संस्कृतवृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) पर है सो अग्रिम वा अंतका (=अन्त्यम्) (एक) है
तत्+सामीप्यात्+धर्म्यम्+अपि परं+इति+उपचर्यते=उस [शुक्लध्यान]के निकट होनेसे धर्म्य (ध्यान) भी पर है ऐसी कल्पना की जाती है।

(१) श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें तथा हमारेयहां इससूत्रका सर्वत्र एकपाठ और एकसा अर्थ है॥

द्विवचनसामर्थ्याद्गौणमपि गृह्यते ॥ परे मोक्षहेतू इति वचनात्पूर्वे आर्तरौद्रे संसारहेतू इत्युक्तं भवति॥ कुतः?। तृतीयस्य साध्यस्याभावात् ॥ तत्रार्तं चतुर्विधम् ॥ तत्रादिविकल्प-लक्षणनिर्देशार्थमाह—

आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३०॥

द्वि–वचन–सामर्थ्यात्[१]''गौणम्[२]॥अपि*गृह्यते T=(इस सूत्रमें)दो वचनकी शक्तिसे गौण(जो धर्म्म ध्यान) भी ग्रहण कियागया है
परे[३]मोक्ष–हेतू[४]इति*वचनात्[५]॥ =''परे मोक्षहेतू''ऐसे वाक्यसे(=दो पीछेके अर्थात् धर्मध्यान,शुक्ल ध्यान मोक्षके कारणहैं)
पूर्वे[६]''आर्त्त–रौद्रे[७]॥संसार–हेतू[८]इति*उक्तम्[९]॥ =पहिले,आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान संसारके कारण हैं। ऐसा कथन वा आशय वा अर्थ
भवति T । कुतः ? तृतीयस्य[१०]''साध्यस्य[११]'' =होता है । (प्रश्न) क्योंकर ? क्योंकि (संसार, मोक्षके बीचमें) तीसरा साधने योग्य
अभावात्[१२], =(पदार्थ) नहीं है भावार्थ मोक्ष तथा संसारके अतिरिक्त कोई साधनीय तीसरा पदार्थ
नहीं है अतः 'परेमोक्षहेतू' ज्ञापक है कि शेष दो आर्त्त रौद्र ध्यान संसारके कारण हैं,

तत्र*आर्तम्[१]''चतुर्विधम्[२]'',तत्र*आदि- =जिसमें (=तत्र) आर्त्तध्यान चार प्रकार है । तहां आदिके अर्थात् आर्त्तध्यानके
विकल्प–लक्षण–निर्देश–अर्थम्[३]''आह T =भेदोंके स्वरूपके कहनेके (आचार्य अगले सूत्रमें)कहते हैं कि

आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति समन्वाहारः ॥ ३० ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें''आर्तममनोज्ञस्य''के स्थानमें'आर्तममनोज्ञानाम्' है अर्थात् "अमनोज्ञस्य" षष्ठी एक वचनके स्थानमें 'अमनोज्ञानाम्' षष्ठी बहुवचन है शेष पाठ एक है,अर्थ भी सामान्य रूपसे दोनों समाजोंमें एक है ॥ आर्त, आर्त्त दोनों पाठअष्टा०८-४-४८ सूत्रसे शुद्ध हैं संप्रयोगे और सम्प्रयोगे दोनों पाठ ठीक हैं [देखो अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१)॥ सम्प्रयोगे वा संप्रयोगेके स्थानमें हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें [जैसे जयचन्दजीहता वचनिका मुद्रित तथा हस्तलिखित]में सम्प्रयोगाय वा संप्रयोगाय है सो अशुद्ध है क्योंकि संप्रयोगायके पाठमें सूत्रका तात्पर्य नहीं निकलता जैसे आर्तम् अमनोज्ञस्य सम्प्रयोगाय तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः =अप्रिय (वस्तु)के संयोग होनेके लिये [वा संयोग होनेको] उसके अभावके लिये=बारम्बार चिन्तवन करना सो [अनिष्ट संयोगज प्रथम भेद] आर्त (ध्यानका] है ॥ ''विपरीतं मनोज्ञस्य'' ३१वां सूत्रमें 'सम्प्रयोगाय' का ऐसे अध्याहार किया है 'मनोज्ञस्य विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः" ॥ सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्राचीन प्रतियोंके पत्र १८८, १०४, ८६ पर क्रमसे और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियोंमें तथा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियोंमें संप्रयोगे (सम्प्रयोगे) पाठ है ॥

अमनोज्ञमप्रियं विषकण्टकशत्रुशस्त्रादि, तद्बाधाकारणत्वादमनोज्ञमित्युच्यते ।

पदच्छेदः—अमनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्-विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः आर्तम् भवति ॥३०॥

सूत्रार्थः—(१)अमनोज्ञस्य[६]॥१॥ (२)सम्प्रयोगे[७] =अप्रिय, अनिष्ट वा बुरी (वस्तु)के संयोग होजाने पर, आजानेपर

तद्-(३)विप्रयोगाय[८]स्मृति- =उस(अप्रिय,असुहावने पदार्थ)के,पृथक् होजानेके लिये,अभावके लिये,चिन्ताका(=स्मृति)

सम्-अनु-आहारः[९](=समन्वाहारः) =एकसा (=सम्) बारम्बार (=अनु=बीप्सा) ग्रहण करना [=आहार]

आर्तम्[१०]॥१॥ भवति [१] =सो(अनिष्टसंयोगज)आर्त(ध्यान) है भावार्थ अनिष्टके संयोगपर निवारणको बार२ चिंतन।

वृत्त्यनुवादः—अमनोज्ञम्[१]॥१॥अप्रियम्[२]॥ =(संस्कृतवृत्ति वा भाष्यका अनुवाद)अमनोज्ञ है सो अनिष्ट [=अप्रिय]

विष-कण्टक-शत्रु-शस्त्र-आदि[३]॥१॥तद्- =हलाहल (=विष) कांटा, वैरी, आयुध और प्रहरण आदिक हैं उन(विष-कंटकआदि) की

बाधा-कारणत्वात्[४]॥१॥अमनोज्ञम्[५]॥१॥इति उच्यते [१] =पीड़ाके निमित्तपनासे अमनोज्ञ है ऐसा कथन किया गया है।[अमनोज्ञपु०न०]दोनोंहै

अमनोज्ञ = अप्रिय, अनिष्ट, अरमणीय, असुंदर, अप्यारी, अमनोहर, । सम्प्रयोगे = संयोग होनेपर, मिलजाने पर, आप्त होने पर आजाने पर ॥ (३) तद्विप्रयोगाय = उसके वियोग होनेके लिये, उसके जाते रहनेके लिये, उसके अभावके लिये, उसके पृथक् होनेके लिये, उसके आनेके लिये "तस्य सम्प्रयोगे स कथं नाम मे न स्यादिति संकल्पश्चिन्ता प्रबन्धः स्मृति समन्वाहार" संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति (भाष्य)से उद्धृत ॥ तस्य सम्प्रयोगे सः कथम् नाम मे न स्यात् इति = तिस (अमनोज्ञ)के संयोग होने पर सो किसी प्रकार (= कथं) मेरे (= मे)नाम न हो ऐसा सङ्कल्पः चिन्ता प्रबन्धः स्मृति-समन्वाहारः = "संकल्प होय सो ही चिंताका प्रबन्ध ताकूं स्मृतिसमन्वाहार कहिये" जयचन्दजी वचनिका ॥ दृशमर्थान्तरचिंतनादाहरणं समन्वाहारः॥२॥अर्थान्तरचिंतनादाधिक्येनाहरणमेकत्रावरोधःसमन्वाहारः॥स्मृतेःसमन्वाहारः स्मृतिसमन्वाहारः। अमनोज्ञस्योपनिपाते स कथं नाम मे न स्यादिति संकल्पश्चिंता प्रबंधः आर्तमित्याख्यायते।(तत्त्वार्थराजवार्तिक तथा श्लोकवार्तिकसे उद्धृत) ॥ भृशम्=अर्थान्तर-चिन्तनात् आहरणम् समन्वाहारः॥२॥ = अन्य पदार्थका (= अर्थान्तर)चिन्तवनसे बहुतायतसे रोक, निरोधसो समन्वाहारहै।२

अर्थान्तर चिन्तनात् आधिक्येन आहरणम् एकत्र — =अन्य वस्तुके चिंतवनसे अधिकाईकरि पृथका और एक स्थानमें(= एकत्र)अर्थात्विषयमें

अवरोधः समन्वाहारः । स्मृतेः समन्वाहारः =रोकना, ठहराव, लगाव (=अवरोध) समन्वाहार है, चिन्ताका एकत्र अवरोध सो

स्मृतिसमन्वाहारः।अमनोज्ञस्य उपनिपाते सःकथं नाममे = स्मृति समन्वाहार है।अमनोज्ञ वस्तुके आजानेपर किसी प्रकारसे मेरे नाम (मात्रको)

न स्यात् इति संकल्पः चिंता प्रबन्धः आर्तम् =न हो ऐसा सङ्कल्प है सो चिन्ताका प्रबन्ध आर्त (ध्यानका अनिष्टसंयोगज भेद) है

इति आख्यायते =ऐसा कथित है॥ उपर्युक्त प्रगटहै कि स्मृतिसमन्वाहारका अर्थ चिन्ताका पुनि पुनि प्रबन्ध,

एकत्र अवरोध अर्थात् (विशेषरूपसे अन्य वस्तुओंसे चित्तको हटाकर) एक विषयमें (चित्तका) ठहराव वा लगाव है ॥ एकत्र अवरोध, एकाग्रता समानार्थक हैं, स्मृतिसमन्वाहारका अर्थ समाधान के समान है और तीन श्लोकोंमें (सिद्धान्तसार दीपक

तस्य सम्प्रयोगे स कथं नाम मे न स्यादिति सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धः स्मृतिसमन्वाहारःप्रथम-मार्तमित्याख्यायते॥द्वितीयस्य विकल्पस्य लक्षणनिर्देशार्थमाह **विपरीतं मनोज्ञस्य ३१**

कुतो विपरीतं? पूर्वोक्तात् ॥ तेनैतदुक्तं भवति-मनोज्ञस्येष्टस्य स्वपुत्रदारधनादेर्विप्रयोगे

तस्य॥सम्प्रयोगे॥ सः॥ कथम्*नाम॥ मे॥ न*स्यात्।,=तिस [अमनोज्ञ]के संयोग होनेपर सो किसी प्रकार=कथम्) मेरे[=मे]नाम न हो
इति*संकल्पः॥ चिन्ता-प्रबन्धः॥ स्मृति-समन्वाहारः॥, =ऐसा संकल्प है सो चिन्ताका प्रबन्ध अर्थात्चित्तकी एकाग्रता स्मृतिसमन्वाहार
प्रथमम्॥॥आर्तम्॥॥इति*आख्यायते।— =पहिला(अनिष्ट संयोगज)आर्त[ध्यान]है, ऐसा विवरण कियागया है
द्वितीयस्य॥विकल्पस्य॥लक्षण-निर्देश-अर्थम्॥॥आह।=[आर्तध्यानके]दूसरे पदके लक्षण कहनेके लिये[आचार्य अग्रिम सूत्रमें]कहते हैं कि

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥ =मनोज्ञस्य (विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय)स्मृतिसमन्वाहारः आर्तम्

सूत्रार्थः—पूर्वोक्तात्॥॥विपरीतम्॥॥ =पहिले (तीसवां सूत्रमें) कहे हुयेसे प्रतिकूल (अर्थात्)
मनोज्ञस्य॥विप्रयोगे॥तत्सम्प्रयोगाय॥ =मनोज्ञ पदार्थके चले जानेपर, उसके संयोगके लिये वा उसके मिलजानेके लिये
स्मृति-समन्वाहारः॥ आर्तम्॥ भवति। =चिन्ताका प्रबन्ध, चिन्ताका वारवार करना सो आर्त[दूसरा ध्यान इष्टवियोगज]

वृत्त्यनुवादः—कुतः*विपरीतम्॥॥? पूर्वोक्तात्॥॥ =(प्रश्न)कहांसे प्रतिकूल है वा क्योंकर विरुद्ध है?(उत्तर)प्रथम कहेहुयेसे[प्रतिकूल] है,
तेन॥॥एतत्॥॥उक्तम्॥॥भवति।— =तिस (पहिले कहे हुएसे विपरीत) करि यह कथन वा तात्पर्य वा अर्थ होता है कि
मनोज्ञस्य॥इष्टस्य॥स्वपुत्रदार-धनआदेः॥विप्रयोगे॥ =प्रिय इच्छित अपना पुत्र स्त्री धन आदिके वियोग होनेपर अर्थात् न रहनेपर

इससूत्रका पाठ हमारे यहांके ग्रन्थोंमें सर्वत्र एकहै।श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य०में,भाष्यानुसारिणी०मेंहमारे यहांके तीसवां[३०]सूत्रमें(आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्धि प्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः) और इकतीसवां [विपरीतं मनोज्ञस्य]सूत्रकेमध्यमें "वेदनायाश्च" सूत्र है इसके पश्चात् विपरीतं मनोज्ञानाम्"सूत्र है अर्थात् पाठ भेद केवल इतना है कि मनोज्ञस्य षष्ठी विभक्ति एक वचन पुंलिंगके स्थानमें षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुंलिंग मनोज्ञानाम् शब्दकाप्रयोग है। इसप्रकार सूत्रक्रमसे उक्त समाजने यह लाभ समझा है कि वेदनायाः अर्थात् अप्रिय अमनोज्ञ वेदनाकी भी अनुवृत्ति विपरीतं 'मनोज्ञानाम्'सूत्रमेंआजाताहैजैसाकि'मनोज्ञानां विषयाणां मनोज्ञायाश्च वेदनाया विप्रयोगे तत्संप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहार आर्तम्'सेप्रगटहै मनोज्ञानाम् विषयाणाम् मनोज्ञायाः च वेदनायाः =मनोज्ञ अर्थात् सुन्दर रमणीय तथा प्रिय विषयोंके मनोज्ञ प्रिय वेदनाके भी (च=) विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय-स्मृतिसमन्वाहारः आर्तम् = वियोग होनेपर उनको संयोगकेलिये जो चित्तकीएकाग्रतारूप ध्यान है वह आर्त ध्यान है२३॥

तत्सम्प्रयोगाय सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धो द्वितीयमार्तमवगन्तव्यम् ॥ तृतीयस्य विकल्पस्य लक्षणप्रतिपादनार्थमाह—

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

वेदनाशब्दः सुखे दुःखे च वर्तमानोऽपि, आर्तस्य प्रकृतत्वात् दुःखवेदनायां प्रवर्तते, तस्या वातादिविकारजनितवेदनाया उपनिपाते तस्या अपायः कथं नाम मे स्यादितिवि(सं)कल्पश्चिन्ताप्रबन्धस्तृतीयमार्तमुच्यते ॥ तुरीयस्यार्तस्य लक्षणनिर्देशार्थमाह—

तत्-सम्प्रयोगाय सङ्कल्पः चिन्ताप्रबन्धः द्वितीयम् ॥ आर्तम् अवगन्तव्यम् ; तृतीयस्य विकल्पस्य लक्षण-प्रतिपादन-अर्थम् आह ।

=उस [मनोज्ञ वस्तु]के संयोगके लिये, संकल्प हो सो निरन्तर चिंता दूसरा =(इष्ट वियोगज) आर्त (ध्यान) जानना चाहिये ॥ तीसरे =भेदका लक्षण वा विशेषस्वरूप (=लक्षण) कहनेके लिये(अगले सूत्रमें)कहते हैंकि

वेदनायाश्च=वेदनायाश्च(अमनोज्ञायाः,सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारःआर्तम्)भवति

सूत्रार्थः—वेदनायाः च *अमनोज्ञायाः सम्प्रयोगे तत्— =और[=च]अप्रिय वेदनाके अर्थात् पीड़ाके संयोग होनेपर उस(अमनोज्ञ वेदना)के

विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः च आर्तम् भवति । =अभावके लिये बारबार चिन्तवन सो (वेदना जनित) आर्त ध्यान है ॥

वृत्त्यर्थःवेदनाशब्दः सुखे दुःखे च *वर्तमानः अपि* =वेदना शब्द सुख (अर्थ)में तथा दुःख अर्थमें विद्यमान होता है तौ भी [=अपि]

आर्तस्य प्रकृतत्वात् दुःख-वेदनायाम् प्रवर्तते । =आर्त (ध्यान)का प्रकरण होनेसे दुःख रूप वेदना (अर्थ) में प्रवर्तता है ॥

तस्याः वात-आदि-विकार-जनित-वेदनायाः उपनिपाते =तिस - वातादिक रोग (=विकार) जनित वेदनाके आजाने पर

तस्याः अपायः कथम् नाम मे स्यात् इति* =तिस (रोग जनित वेदना)का किसी प्रकार मेरे नाम नाश [=अपाय]हो ऐसा

वि (सं)कल्पः चिन्ताप्रबन्धः तृतीयम् ॥ आर्तम् =विकल्प वा संकल्प हो सो चिन्ता का प्रबन्ध तीसरा (पीड़ा जनित) आर्त ध्यान

उच्यते तुरीयस्य आर्तस्य ॥ लक्षण-निर्देश-अर्थम् आह =कहाजाताहै ॥ चौथे आर्त (ध्यान)के लक्षण कहनेके लिये कहते हैं कि

---

(१) सूत्र पाठ दोनों समाजोंमें एक है, अर्थके संबंधमें देखो टिप्पणी पृष्ठ १२३, तीसवां सूत्र इसमें सब आता है जैसा कि पंक्ति दशसे प्रगट है ॥

निदानं च ॥ ३३ ॥

भोगकाङ्क्षातुरस्यानागतविषयप्राप्तिं प्रति मनःप्रणिधानं सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धस्तुरीयमार्तं निदानमित्युच्यते ॥ तदेतच्चतुर्विधमार्तं किंस्वामिकमिति चेदुच्यते—

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् । ३४ ॥

निदानं च ॥ ३३ ॥ =निदान आर्तं च =निदानविषयः स्मृतिसमन्वाहारः आर्तं च उच्यते ॥

सूत्रार्थः—निदान–विषयः¹ स्मृतिसमन्वाहारः² आर्तम्³ च*=और निदानविषय चिंताका बारबार प्रबन्ध सो (चौथा) आर्त[ध्यान]है

अर्थात् भोगोंकी वाञ्छाकरि आतुर (=व्याकुल–अस्थिर) पुरुषके भविष्यत्-कालमें विषयोंकीप्राप्तिकेलिये बारबार चिंतवन सो निदानचौथाआर्त ध्यान है

वृत्त्यनुवादः–भोग–कांक्षा–आतुरस्य¹ अनागत–

=भोगोंकी वांछाकरि पीड़ित अथवा व्याकुल (चित्त, पुरुष)के आगामी

विषय–प्राप्तिम्² मनःप्रणिधानम्³ संकल्पः⁴

=विषयोंकी प्राप्तिके लिये मनका प्रयत्न वा दुलाउ (ऐसा) संकल्प

चिंता–प्रबन्धः¹ तुरीयम्² आर्तं³ निदानम्⁴ इति* उच्यते T=चिन्ताका प्रबन्ध चौथा आर्त (ध्यान) निदान ऐसा वर्णित है ।

तत्¹ एतत्² चतुर्विधम्³ आर्तम्⁴ किम्* स्वामिकम्⁵

=सो(=तत्)वह(=एतत्)चार प्रकार आर्त(ध्यान)का कौन स्वामी होता है ।

इति* चेत्* उच्यते T—

=ऐसा प्रश्न होनेपर (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्॥३४॥(दोनों समाजोंमें इन दोनों सूत्रोंके पाठ.अर्थएकहैं)

सूत्रार्थः–तद्¹ अविरत–

=वह(आर्त ध्यान) अविरतियोंके अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्तियोंके, द्वितीय गुणस्थान वालोंके मिश्र तृतीय गुणस्थान धारियोंके, चौथे गुणस्थानवर्तियोंके

देशविरत–प्रमत्त–संयतानाम्⁴

=देशविरत पांचवांगुणस्थान वालोंके और प्रमत्त संयमी छठवांगुणस्थानधारकोंके

भवति T ॥ ३४ ॥

=होता है । (किन्तु प्रमत्त संयमियोंके निदान नामका आर्त ध्यान नहींहोताहै)॥

अविरता असंयतसम्यग्दृष्टयन्ताः देशविरताः संयतासंयताः। प्रमत्तसंयताः पञ्चदशप्रमादोपेताः क्रियानुष्ठयानिः॥ तत्राविरतदेशविरतानां चतुर्विधमार्तं भवति। असंयमपरिणामोपेतत्वात्॥ प्रमत्तसंयतानां तु निदानवर्ज्यमन्यदार्तत्रयं प्रमादोदयोद्रेकात्कदाचित्स्यात्॥ व्याख्यातमार्तं संज्ञादिभिः॥ द्वितीयस्यसंज्ञाहेतुस्वामिनिर्द्धारणार्थमाह—

हिंसाऽनृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः॥३५॥

वृत्यनुवाद अविरताः[1]असंयत-सम्यग्दृष्टि- =अविरत[मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे] अविरत सम्यग्दृष्टी [चौथागुणस्थानके रहने वाले]
अन्ताः[1] देशविरताः[1]संयतासंयताः[1], =पर्यन्त हैं। देशविरत संयमासंयम वाले [श्रावक] हैं
प्रमत्तसंयताः[1], पञ्चदश-प्रमाद-उपेताः[1] =प्रमत्तसंयमी पन्द्रह प्रमाद सहित[आचार्यादकी तथा मुनिपनाकी आहार विहारादि]
क्रिया-अनुष्ठायिनः[1], तत्र* अविरत- =क्रियाके आचरण वाले हैं, तहां पहिले गुणस्थानसे चौथा गुणस्थानवर्तियोंके
देश-विरतानाम्[6] चतुर्विधम्[1] =[तथा]संयमासंयमी पांचवां गुणस्थान धारकोंके, चारप्रकार
[अनिष्टयोगज-इष्टवियोगज-वेदनाजनित-तथा निदान नामके]
आर्तम्[1] असंयम-परिणाम-उपेतत्वात्[5] भवति[1], =आर्त (ध्यान) असंयम परिणामके विद्यमानता (के कारण)से होता है [=भवति]
प्रमत्त-संयतानाम्[6] तु* निदान-वर्ज्यम्[1] =परन्तु(=तु) प्रमत्तसंयमी[छठवां गुणस्थानवाले] निके निदानको छोड़कर अन्य तथा
आर्तत्रयम्[1] प्रमाद-उदय-उद्रेकात्[5] कदाचित्* स्यात्- =शेषतीन(अनिष्टयोगजइष्टवियोगजवेदनाजनितआर्त)प्रमादकेउदयकीतीव्रतासेकभीकभीहोतेहै
व्याख्यातम्[1] आर्तम्[1] संज्ञादिभिः[3], द्वितीयस्य =आर्तम्[ध्यान]संज्ञादि करि कहागया है,दूसरे[ध्यान] के
संज्ञा-हेतु-स्वामिन्-निर्द्धारण- अर्थम्[4] आह[1]- =नाम और कारण तथा स्वामीके निर्णयके लिये [आचार्य उत्तर सूत्रमें]कहते हैं कि

हिंसाऽनृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यः रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥

=हिंसा-अनृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यः (स्मृतिसमन्वाहारः) रौद्रम्-अविरत-देशविरतयोःभवति॥

इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है॥ (२) अविरत-देशविरतयोः-पुंलिंगषष्ठी-दोषवनमें भी लिया जासका है तब अर्थहोगा कि अविरत तथा देशविरत गुणस्थानवालोंके, षष्ठीके अर्थमें जयचन्द्रजी तथा समाप्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके अनुवादकने उक्त पाठको लिया है

हिंसादिन्युक्तलक्षणानि, तानि रौद्रध्यानोत्पत्तेर्निमित्तीभवन्तीति हेतुनिर्देशो विज्ञायते। तेन हेतुनिर्देशेनानुवर्तमानः स्मृतिसमन्वाहारोऽभिसम्बध्यते। हिंसायाः स्मृतिसमन्वाहार इत्यादि ॥ तद्रौद्रध्यानमविरतदेशविरतयोर्वेदितव्यम् ॥

सूत्रार्थः—हिंसा—अनृत—स्तेय— =हिंसा (के निमित्त)से असत्य,झूठ वा मिथ्या भाषण (के कारण)से चोरी(के हेतु)से

विषय—संरक्षणेभ्यः३ स्मृति—समन्वाहारः१ रौद्रम्१ =विषय(परिग्रह)के संरक्षण(के निमित्त)सेचिन्ताका बारबार प्रबन्ध सो रौद्र(ध्यान)है,

अविरत—देशविरतयोः३। =(वह रौद्रध्यान)प्रथम गुणस्थानसे चतुर्थगुणस्थान तकमें, संयतासंयत गुणस्थानमें है

अर्थात् हिंसा करनेमें आनन्द मानकर उसके साधनेका चिंतनकरता रहै सो हिंसानन्दी रौद्रध्यान है, झूठ बोलनेमें आनंदमानें और झूठका चिंतवन करे वह मृषानन्दी रौद्र ध्यान है, चोरी करनेमें आनन्द मानैं उसीका चिन्तवनादिक करे तहां चौर्यानन्दी रौद्र ध्यान है, परिग्रहकी रक्षाका चिन्तवन करता रहै सो परिग्रहानन्दी रौद्र ध्यान है॥

शब्दार्थः—हिंसादीनि३ उक्त—लक्षणानि३ तानि३ =हिंसादिक [पूर्व] कहेहुये लक्षण संयुक्त है, वे [हिंसादिक]

रौद्र—ध्यान—उत्पत्तेः४ निमित्ती—भवन्ती३ इति* =रौद्र ध्यानके उपजनेके कारण होते है, इस प्रकार

हेतु—निर्देशः१ विज्ञायते ८। =(इस सूत्रमें पंचमीअपादान विभक्ति—भ्यस्करि) हेतुका कथन जनायागया है।

तेन३ हेतु—निर्देशेन३ अनुवर्तमानः१ =तिस (हेतुका कथन)करि (इस अध्यायके तीसरा सूत्र से) अनुवृत्ति रूपमें आने वाला

स्मृति—समन्वाहारः१ =स्मृति समन्वाहारः(वाक्य इस सूत्रकेविषय संरक्षणेभ्यो और रौद्रम् शब्दके बीचमें)

अभिसम्बध्यते। हिंसायाः१ स्मृतिसमन्वाहारः१ इत्यादि=जोड़ा जाता है,[तब]हिंसाका स्मृति समन्वाहार इत्यादि चार भाग होजाते हैं अर्थात् हिंसायाः स्मृतिसमन्वाहारः रौद्रमविरत देशविरतयोः, अनृतात् स्मृतिसमन्वाहारः रौद्रमविरत-देशविरतयोः, स्तेयात् स्मृति समन्वाहारः रौद्रमविरतदेशविरतयोः विषय संरक्षणात् स्मृतिसमन्वाहारः रौद्रमविरतदेशविरतयोः, चार सूत्र एक सूत्रसे विभागकी रीतिसे हुये।

तद्—रौद्र—ध्यानंअविरत-देश विरतयोः२ वेदितव्यं=वह रौद्रध्यान अविरतगुणस्थानोंमें तथा देशविरत पांचवां गुणस्थानमेंजानना चाहियो।

अविरतस्य भवतु रौद्रध्यानं देशविरतस्य कथम् ?। तस्यापि हिंसाद्यावेशाद्वित्तादिसंरक्षणतन्त्रत्वाच्चकदाचिद्भवितुमर्हति । तत्पुनर्नारकादीनामकारणं सम्यग्दर्शनसामर्थ्यात्संयतस्य तु न भवत्येव । तदारम्भे संयमप्रच्युतेः ॥ आह परे मोक्षहेतू उपदिष्टे । तत्राद्यस्य मोक्षहेतोर्ध्यानस्य भेदस्वरूपस्वामिनिर्देशः कर्तव्य इत्यत आह—

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

अविरतस्य[६]भवतु[T]रौद्र-ध्यानम्[६]''' =मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत-सम्यग्दृष्टीके रौद्रध्यान होने योग्य है,होय(=भवतु)
देश-विरतस्य[६]कथम्* ?, तस्य[६]अपि*हिंसादि- =संयतासंयत पाचवां गुणस्थानवर्तीके कैसे (होय),तिस (देशविरत)के भी हिंसादिकके
आवेशात्[५]वित्त-आदि-संरक्षण-तन्त्रत्वात्[५]''च*कदाचित्* =आविर्भवसे तथा (=च) धन आदिककी रक्षाके प्रबन्धसे कभी कभी (रौद्र ध्यान)
भवितुम्[७]''अर्हति T । तत्[६]''पुनः*नारकादीनाम्[६] =होनेको योग्य है । बहुरि वह (रौद्र ध्यान) नरकादिक (दुर्गति) का
अ-कारणम्[१]''सम्यग्दर्शन-सामर्थ्यात्[५]'',संयतस्य[६] =कारण,साधन सम्यग्दर्शनकी शक्तिसे नहीं होता है । संयमी (छठवांगुणस्थान वाले)के
तु* न* भवति T एव*,तत्- =तो (रौद्र ध्यान) होता ही नहीं है क्योंकि उस (रौद्र ध्यान)के
आरम्भे[७]संयम-प्रच्युतेः[५]'', =प्रारम्भ होनेपर संयम नहीं रहता(वा उसके प्रारम्भ होनेपर संयम के चले जानेसे)
अर्थात् रौद्र ध्यान के प्रारम्भ होनेपर संयमके न रहने के कारणसे प्रमत्त छठवांगुण-
स्थानवर्तीके रौद्र ध्यान होता ही नहीं है ॥

आहT परे[१]मोक्षहेतू[१] =प्रश्न करता है कि (२८वां सूत्रमें)अगले दो (धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान)मोक्षके कारण
उपदिष्टे[२]तत्र*आद्यस्य[६]मोक्षहेतोः[६]ध्यानस्य[६]''भेद- =उपदेशे तहां आदिके मोक्ष कारण (धर्म्य) ध्यानका भेद लक्षण,
स्वरूप-स्वामिन्-निर्देशः[१]कर्तव्यः[१]इति*अतः*आह =स्वामीका कथन करना चाहिये ।ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये कहते हैं कि

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचायधर्म्यम् ॥ ३६ ॥

(१) हमारे यहां कहीं धर्म्यम् धर्म्यं, कहीं धर्मम्, धर्मं,कहीं धर्म्मम्,धर्म्मं पाठ हैं धर्म्यं-धर्मं-धर्म्मं भी ठीक हैं[देखोअध्याय१पृष्ठ६,पृष्ठ५४०,५४१]

विचयनंविचयोववेकोविचारणमित्यर्थःआज्ञापायविपाकसंस्थानानांविचयआज्ञापायविपाकसंस्थान

पदच्छेदः-आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान-विचयाय (स्मृतिसमन्वाहारः) धर्म्यम्ध्यानम्॥३६॥

=आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः धर्म्यं ध्यानम्, अपायविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः धर्म्यं ध्यानम्, विपाक विचयाय स्मृतिसमन्वाहारः धर्म्यं ध्यानम्, संस्थानविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः धर्म्यं ध्यानम्॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः-(क)आज्ञाविचयाय[4] स्मृति-समन्वाहारः[1] =आगमकी प्रमाणतासे अर्थके विचारके लिये चिंताका पुनः पुनः बारबार प्रबन्ध

धर्म्यम्[1] ध्यानम्[1]: =सो (आज्ञाविचयाय) धर्म्यध्यान है ॥

(ख)अपाय-विचयाय[4] स्मृतिसमन्वाहारः[1]=(सन्मार्गके)अभावके विचारके निमित्त चिन्ताका बारबार प्रबन्ध सो(अपायविचयाय)

धर्म्यम्[1] ध्यानम्[1]॥ =धर्म्यध्यान है अर्थात् मिथ्यादृष्टियोंके कहेहुये उन्मार्गसे ये प्राणी कैसे फिरेंगे,इनके अनायतन सेवाका कैसे अभाव होगा, ये कब सन्मार्गमें आवेंगे, समीचीन मार्गका तो प्रायः अभावसा होगया है इत्यादि सन्मार्गके अभावका चिंतवन करना सो अपायविचयधर्म्यध्यान है ॥

(ग)विपाक-विचयाय[4] स्मृति-समन्वाहारः[1]=(कर्मके) फलानुभवके लिये चिन्ताका बारबार प्रबंध सो (विपाकविचयाय)

धर्म्यम्[1] ध्यानम्[1] =धर्म्य ध्यान है अर्थात् कर्मके फलानुभवनको गुणस्थान और मार्गणाके स्थानोंमें चिंतवन करना तथा उदीरणाको चिंतवन करना सो विपाकविचय धर्म्यध्यान है

(घ)संस्थानविचयाय[4] स्मृति-समन्वाहारः[1]=आकार तथा स्वभावोंके विचारार्थ चिंताका फिर फिर प्रबन्ध सो (संस्थानविचयाय)

धर्म्यम्[1] ध्यानम्[1] =धर्म ध्यान है, अर्थात् लोकके संस्थानोंका, द्रव्योंके स्वभावों का तथा द्वादश भावनाओंका चिंतवन करना सो संस्थानविचयधर्म्यध्यान है

वृत्यनुशादः-विचय नम्[1] विचयः[1] विवेकः[1] =(इस सूत्रमें) विचय है सो विचयन, विचार (=विवेक) वा

विचारणम्[1] इति*अर्थः[1], आज्ञा-अपाय-विपाक-=विचारण ऐसा अभिप्राय (में है आज्ञाका विचय, अपायका विचय, विपाकका विचय

संस्थानां[6] विचयः[1] आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान-=संस्थानका विचय है सो आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान-

---

श्वेताम्बरसम्प्रदायके समाष्य०में 'धर्म्यम्'के स्थानमें 'धर्मम्' पाठ है परन्तु उनकी भाष्यानुसारिणी०में 'धर्मम्' है, उन दोनों भाष्योंमें 'अप्रमत्तसंयतस्य' (=अप्रमत्त संयमीके धर्म ध्यान होताहै) वाक्य अधिक है और इस सूत्रके पश्चात् और 'शुक्लेचाद्ये' सूत्रके पहिले 'उपशान्तक्षीणकषायोश्च [=उपशांतकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानवालोंके भी (=च) धर्म ध्यान होता है],हमारे यहांसे समाष्य०में अधिक सूत्र है, भाष्यानुसारिणी०में इसका पृष्ठ ७२८ पर भाष्यरूपमें लेख है, अतः फल यह हुआ कि उनके यहां धर्म ध्यान अप्रमत्त, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें होता है, हमारे यहां अविरत संयत, देशविरत, प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत गुणस्थानोंमें होता है अर्थात् हमारे यहां उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणीके आरम्भ होने पर शुक्ल ध्यान होता है, इन श्रेणियोंसे पहिले सातवां, छठवां, पांचवां, चौथे गुणस्थानों तक धर्म ध्यान होता है ॥

विचयःस्मृतिसमन्वाहार इत्यनुवर्तते,स प्रत्येकं सम्बध्यते आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहार इत्यादि तद्यथा–उपदेष्टुरभावान्मन्दबुद्धित्वात्कर्मोदयात्सूक्ष्मत्वाच्च पदार्थानां हेतुदृष्टान्तोपरमे सति सर्वज्ञप्रणीतमागमं प्रमाणीकृत्य इत्थमेवेदं नान्यथावादिनो जिना इति गहनपदार्थश्रद्धानमर्थावधारणमाज्ञाविचयः । अथवा–स्वयं विदितपदार्थतत्त्वस्य सतःपरंप्रति पिपादयिषोः स्वसिद्धान्ताविरोधेन तत्त्वसमर्थनार्थं तर्कनयप्रमाणयोजनपरः स्मृतिसमन्वाहारः सर्वज्ञाज्ञाप्रकाशनार्थत्वादाज्ञाविचयः इत्युच्यते ॥

विषयः[1],स्मृतिसमन्वाहारः[2]इति*अनुवर्तते। =विषय(समासरूपमें)है (तीसवांसूत्रसे)स्मृतिसमन्वाहारःऐसा वाक्यइससूत्रमें)आता है

सः[3]प्रत्येकम्[4]सम्बध्यते। =वह(स्मृतिसमन्वाहार)प्रत्येक[आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान]को जोड़ाजाता है

आज्ञाविचयाय[5]स्मृतिसमन्वाहारः[6]इत्यादि[7]॥ =(तब) आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः अपायविचयायस्मृतिसमन्वाहारः विपाकविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः, संस्थानविचयायस्मृतिसमन्वाहारः ऐसे हुये ॥

तद्यथा*उपदेष्टुः[1]अभावात्[2]मंदबुद्धित्वात्[3] =जैसे उपदेशदाताके न होनेसे (अपनी) मंदबुद्धिपनासे

कर्म-उदयात्[4]सूक्ष्मत्वात्[5]च*पदार्थानां[6]हेतुदृष्टान्तः=कर्मके उदय(के वश)से तथा(=च) सूक्ष्मता[के निमित्त]से पदार्थोंका हेतु और दृष्टान्त

उपरमे[7]सति[8]सर्वज्ञ–प्रणीत–आगमं[9]प्रमाणीकृत्य÷=न जानते संते सर्वज्ञके कहेहुये आगमको प्रमाण करके अर्थात् प्रमाण मानकर

इत्थं*एव*इदम्[1]न*अन्यथा*वादिनः[2]जिनाः[3]इति*=यह ऐसे(=इत्थं) ही [=एव] है, जिन भगवान् अन्यथा वादी नहीं हैं इस प्रकार

गहन–पदार्थ–श्रद्धानम्[1]अर्थ–अवधारणम्[2] =दुष्प्रवेश वा दुर्गम पदार्थका श्रद्धान, अर्थका निश्चय करण

आज्ञाविचयः[1],अथवा*स्वयम्*विदितपदार्थतत्त्वस्य[1] =सो आज्ञा विचय है, अथवा आपको प्रकट हुआ है पदार्थका यथार्थ (=तत्त्वस्य)

सतः[1],परम्[2]प्रति*पिपादयिषः[1] =स्वरूप जै । परको (=पर प्रति) वैसा ही कहने की है इच्छा जिसकी (ऐसे पुरुषके)

स्व–सिद्धान्त–अविरोधेन[1]तत्त्वसमर्थनअर्थम्[2]॥ =अपने सिद्धांन्तके अनुसार तत्त्वके समर्थनका है प्रयोजन जिस (पुरुष) में (वा जिसके)

तर्क–नय–प्रमाण–योजन–परः[1] =वहुरि तर्क नय प्रमाणकी योजनाके विषैं प्रवीण

स्मृतिसमन्वाहारः[1],सर्वज्ञ–आज्ञा– =(ऐसा जो) स्मृतिसमन्वाहार वा वारवार चिन्तवन सो सर्वज्ञ की आज्ञाके

प्रकाशन–अर्थत्वात्[2]॥आज्ञाविचयः[1]इति*उच्यते। ।=प्रकाशनेके हेतुपनासे "आज्ञाविचय" ऐसा वर्णित है ॥

जात्यन्धवन्मिथ्यादृष्टयः सर्वज्ञप्रणीतमार्गाद्विमुखा मोक्षार्थिनः सम्यङ्मार्गापरिज्ञानात्सुदूरमेवापयन्तीति सन्मार्गापायचिन्तनमपायविचयः अथवा मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः कथं नाम इमे प्राणिनोऽपेयुरिति स्मृतिसमन्वाहारोऽपायविचयः। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकालभवभावप्रत्ययफलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः॥ लोकसंस्थानस्वभावविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः संस्थानविचयः॥ उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्म उक्तः। तस्मादनपेतं धर्म्यं ध्यानं चतुर्विकल्पमवसेयम्॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां भवति॥

जाति-अन्धवत्*मिथ्यादृष्टयः$\frac{1}{3}$|सर्वज्ञ-प्रणीत-मार्गात्$\frac{2}{3}$ विमुखाः$\frac{1}{3}$|मोक्षअर्थिनः$\frac{1}{3}$|सम्यङ्मार्ग-अपरिज्ञानात्$\frac{2}{3}$|| सुदूरम्$\frac{1}{3}$||एव*अपयन्ति T इति*सत्-मार्ग-अपाय-चिन्तनम्$\frac{2}{3}$||अपायविचयः$\frac{1}{3}$|,अथवा* मिथ्यादर्शन-ज्ञानचारित्रेभ्यः$\frac{1}{3}$||कथम्*इमे$\frac{1}{3}$|प्राणिनः$\frac{1}{3}$| नाम$\frac{1}{3}$||अपेयुःTइति*स्मृति-समन्वाहारः$\frac{1}{3}$|अपाय-विचयः$\frac{1}{3}$| कर्मणां$\frac{1}{3}$||ज्ञानावरणादीनां$\frac{1}{3}$||द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव-प्रत्यय-फल-अनुभवनम्$\frac{2}{3}$| प्रति* प्रणिधानम्$\frac{1}{3}$||विपाक-विचयः$\frac{1}{3}$|, लोक-संस्थान-स्वभाव-विचयाय$\frac{2}{3}$|स्मृतिसमन्वाहारः$\frac{1}{3}$| संस्थान-विचयः$\frac{1}{3}$|,उत्तम-क्षमा-आदि-लक्षणः$\frac{1}{3}$|धर्मः$\frac{1}{3}$|उक्तः$\frac{1}{3}$|| तस्मात्$\frac{2}{3}$|अनपेतम्$\frac{1}{3}$||धर्म्यम्$\frac{1}{3}$||ध्यानं$\frac{1}{3}$||चतुर्विकल्पम्$\frac{1}{3}$||| अवसेयम्$\frac{1}{3}$||,तद्-अविरत-देशविरत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम्$\frac{1}{3}$|भवति T ॥

=जन्मसे अन्धेके सदृश मिथ्यादृष्टी सर्वज्ञभाषित मोक्ष मार्गसे
=विमुख और मोक्ष अर्थी हैं,(परन्तु)सम्यग्ज्ञानकेपरिज्ञानसे रहित (=अपरिज्ञानात्)
=बहुत दूर (=सुदूर) ही (=एव) प्रवर्तते हैं(=अपयन्ति), ऐसे समीचीन
=मार्गका अभाव[=अपाय] चिन्तवन सो अपाय विचय है॥ अथवा
=मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रसे कैसे ये प्राणी
=नाम रहित हों। ऐसा चिन्ताका बारबार प्रबन्ध सो अपायविचय है
=ज्ञानावरणादिक कर्मोंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके
=निमित्तसे (उत्पन्न हुये) परिणाम वा फलके अनुभवका (=प्रति)
=चिन्तवन (=प्रणिधान) वा ध्यान [=प्रणिधान]सो विपाक विचय है॥
=लोकके आकार तथा(लोकका)स्वभाव विचारनेके लिये चिन्ताका पुनः पुनः प्रबन्ध
=सो संस्थान विचय है। उत्तम क्षमा आदि लक्षण संयुक्त धर्म कहा गया
=तिस (उत्तम, क्षमादि लक्षण युक्त धर्म) से लगा हुआ धर्म्य ध्यान चार प्रकार
=जानना चाहिये,वह(धर्मध्यान)चौथे गुणस्थानवालोंके,देशविरत वा संयमासंयमीके
=प्रमत्त संयमी छठवांगुणस्थानवर्ती तथा अप्रमत्तसंयमी सातवां गुणस्थानवर्ती मुनियोंके होता है॥

त्रयाणां ध्यानानां निरूपणं कृतम् । इदानीं शुक्लध्यानं निरूपयितव्यम्। तद्वक्ष्यमाणचतुर्विकल्पम् ॥तत्राद्ययोःस्वामिनिर्देशार्थमिदमुच्यते—

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

त्रयाणां=तीन ध्यानानां=ध्यानोंका निरूपणम्=वर्णन कृतम्=किया गया, इदानीं=अब शुक्लध्यानम्=शुक्ल ध्यान निरूपयितव्यम्=कहा जाना चाहिये ॥ तत्-वक्ष्यमाण-चतुर्विकल्पम्=उस [शुक्ल ध्यान]के (भविष्यमें) कहेजाने वाले चार भेद हैं, तत्र*आद्ययोः=वहां आदिके दो [पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क]के स्वामिन्-निर्देश-अर्थम्=अधिकारी वा स्वामीके कहनेके लिये इदम्=यह [अग्रिम सूत्रमें] उच्यते T=कहा जाता है कि

(१)शुक्ले चाद्ये (२)पूर्वविदः॥३७॥=शुक्ले आद्ये (द्वे ध्याने पृथक्त्ववितर्के एकत्ववितर्के) च पूर्वविदः (भवतः)

सूत्रार्थः-पृथक्त्ववितर्क-एकत्ववितर्के=पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क आदिके दो आद्ये=आदिके द्वे=दो शुक्ले=शुक्ल ध्याने=ध्यान च*पूर्वविदः=पूर्वके ज्ञाता अर्थात् श्रुतकेवलीके भवतः T=होते हैं

भावार्थ:-शुक्लध्यानके चार भेद आगे (अध्याय ९ सूत्र ४१)कहेंगे, उनमेंसे पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्व वितर्क जो आदिके भेद हैं वे च=और शुक्ले चाद्ये ध्याने=शुक्ल ध्यानके आदिके दो भेद पृथक्त्ववितर्के एकत्ववितर्के (पृथक्त्ववितर्क-एकत्ववितर्क) पूर्वविदः=पूर्वके ज्ञाता अर्थात् श्रुतकेवलीके भवतः=होते हैं

उपशान्तक्षीणकषाययोश्चतुर्दशपूर्वधरस्य भगवतः (-उपशान्तकषाय-क्षीणकषाययोः भवतः) = उपशांतकषाय और क्षीणकषाय पुरुषोंको होतेहैं॥(सभाष्य०२१९से)

भावार्थ ऐसा है कि आदिके दो शुक्ल ध्यान पूर्वके वेत्ता अर्थात् श्रुतकेवलीके होते हैं और उपशांतकषाय ग्यारहवांगुणस्थानवर्तीके और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्तीके ये दोशुक्ल ध्यान भी होते हैं,कुछ और भी होता है वह क्या है ? उक्त गुणस्थानवर्तियोंके धर्मध्यान भी होता है ॥

---

(१) दिगम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ।श्वेताम्बर समाजके ग्रन्थोंमें "शुक्ले चाद्ये" पाठ है(अर्थ भेदके लिये देखो टिप्पणी२)

(२)पूर्वविदः-इसवाक्यका अर्थ दोनों समाजोंके ग्रन्थोंमें जैसे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र, भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका, सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक,तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, श्रुतसागरीटीका, सर्वार्थसिद्धिवचनिका, अर्थप्रकाशिका इत्यादिमें "श्रुतकेवली' लिखा है, इसपद का अर्थ प्रत्यक्षरूपसे पूर्वके जानने वाला, पूर्वकावेत्ता, पूर्वकाज्ञाता,पूर्वका विज्ञ है॥ समस्त द्रव्यश्रुतज्ञान बोस अक्षर प्रमाण है अर्थात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान अंगप्रविष्ट (=बारह अंग, द्वादशांग)और अंग बाह्य (अर्थात् चौदह प्रकीर्णक)रूप है॥ ग्यारह अंग चौदह पूर्वके ज्ञाताओंसे द्वादशांग में चूलिका छूट जाती है, और अंग बाह्य छूट जाते हैं, तब प्रश्न यह है कि पूर्वके वेत्ताका अर्थ श्रुतकेवली कैसे होगया ? ॥ (बोस अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान क्यों और कैसे है? देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ३९९से ४२४ तक । पूर्वविदः=श्रुतकेवली, देखो अध्याय १ पृष्ठ ४२५से ४२८ तक ॥ श्वेताम्बर समाजमें हमारे यहांके'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः'सूत्रके स्थानमें'शुक्ले चाद्ये'पाठ है और इस सूत्रका भाष्य और भावार्थ ऐसे किया है कि शुक्ले आद्ये = "आद्ये शुक्ले ध्याने पृथक्त्ववितर्के एकत्ववितर्के पूर्वविदो भवतः" = 'आद्य अर्थात् आदिके जो पृथक्त्ववितर्क और एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यानके भेद हैं वे पूर्वविद् अर्थात् श्रुतकेवलीको होते हैं" ॥

पूर्वके वेत्ताके आदिके दो शुक्ल ध्यान होतेहैं औरभी[=च] कुछ होता है, वह कुछ क्या है जो होता है पूर्वकथित धर्मध्यान होता है सूत्रमें 'च'के प्रभावसे धर्मध्यान पूर्वविद्के औरसमुच्चय कियागया है, अधिक लियागया है वा ग्रहण कियागया है जैसाकि सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ७४८से प्रगट है, "तातैं चशब्दकरि श्रुत केवलीके प्रमत्तअप्रमत्त विषैं धर्मध्यान होय है, ऐसा समुच्चय कीजिये ॥

इस प्रकार भिन्न अर्थ करनेका कारण यह है कि 'आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय' सूत्रके पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदायमें 'उपशान्तक्षीणकषायोश्च' यह सूत्र हमारे यहांसे अधिक है अर्थात् आज्ञापायविपाक इत्यादि तथा "शुक्लेचाद्ये" इस सूत्रके मध्यमें "उपशान्तक्षीणकषायोश्च" हमारे यहांसे अधिक सूत्र हैं और इस 'उपशान्तक्षीणकषायोश्च' सूत्रका अर्थ 'आज्ञापायविपाकसंस्थानविचायधर्मंमप्रमत्तसंयतस्य" सूत्रमें से 'धर्मंमप्रमत्तसंयतस्य' वाक्यकी अनुवृत्तिरूपमें लेकर यह अर्थ किया है कि उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी धर्म ध्यान होता है ॥ इस समस्तका फल वा परिणाम यह हुआ कि श्वेताम्बरसम्प्रदायके अनुकूल धर्मध्यान, अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती, उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंको होता है और प्रथकत्ववितर्क शुक्लध्यान तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती, क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीवोंमें तथा श्रुतकेवलीको होते है संक्षेपतः-अप्रमत्तसंयमी, उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषायवर्तियोंको धर्मध्यान होता है। उपशान्तकषाय ,क्षीणकषायगुणस्थानवर्तियोंके तथा श्रुतकेवलीको पृथक्त्ववितर्क-एकत्ववितर्क शुक्लध्यान होते हैं ॥ (प्रश्न) इस सम्प्रदायमें पूर्वविद् वा श्रुत केवली किन किन गुणस्थानवर्ती जीव होते हैं ? ॥ हमारी सम्प्रदायके अनुसार धर्म ध्यान तथा आदिके दो पृथक्त्व वितर्क एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और पूर्णार्थ तज्ञान निम्नलिखित गुणस्थानोंमें होता है (क) 'तद्-अविरत-देशविरत-प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतानां भवति(सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ४५२) वह (धर्म्यध्यान) चौथे अविरतसेअप्रमत्तके होताहै (ख) 'यह' (अर्थात् धर्म्यध्यान) 'अविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-प्रमत्तसंयत और अप्रमतसंयतइनके होय है (जयचन्दवचनिका मुद्रित पृष्ट ७४६] (ग) 'सो' (अर्थात् धर्म्यध्यान) "असंयत-संयतासंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त संयत इन चारि गुणस्थानमें होय है' । (अर्थप्रकाशिका अ०८सूत्र ३६) 'धर्म्यध्यान" मिथ्या दृष्टिके नहीं होय है चौथेसे सातवें गुणस्थान तक धर्म्यध्यान होता है (सदासुखदासजी अनुवादित रत्नकर० पृष्ठ २१६) पूर्वविद्,श्रुतकेवली, पूर्वकेवेत्ता-परिपूर्ण श्रुतज्ञानी, पूर्वकेज्ञाता, द्वादशांगऔर अंग बाह्यके ज्ञाता एकार्थवाची हैं प्रमत्त अप्रमत गुणस्थानवर्ती मुनि भी पूर्वकेवेत्ता होय है" अर्थात् श्रुतकेवली होते है तिनके धर्म्यध्यान भी होता है, जातै श्रेणीके चढ़नेके पहिले तो धर्म ध्यान है और श्रेणी चढ़े तब शुक्ल ध्यान होय है ॥ जयचन्दजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४८ तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृष्ठ ३५४ मुद्रितकी १४वीं वार्तिकसे तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ट मुद्रित ५०४ पंक्ति ४से भी यह प्रकट होता है कि असंयत, संयत,प्रमत्तसंयत अप्रमत्त संयत पर्यन्त धर्म्यध्यान होता है ॥

"श्रेणीके चढने पहले तो धर्म्य ध्यान है। और श्रेणी चढै तब शुक्ल ध्यान होय है, ऐसा व्याख्यान है।" [जयचन्दजीवचनिकापृष्ठ ७४८] आठवां अपूर्व कर्णगुणस्थान, नववां अनिवृत्तिकर्ण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय, ग्यारहवां उपशांत कषाय गुणस्थानमें प्रथकत्व वितर्क शुक्लध्यान है और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानमें एकत्ववितर्क (विचार रहित) शुक्लध्यान है, संयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान में सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान और अयोगकेवली चौदहवां गुणस्थानमें व्युपरतक्रियानिर्वाति चौथा शुक्लध्यान है, (देखो चौबीसठाना ग्रन्थ) प्रथम कहचुके हैं कि प्रमत्तअप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि भी पूर्वकेवेत्ता होय है अर्थात् श्रुतकेवली होते है(जयचन्दजी वचनिका पृष्ट७४८) उपर्युक्त दोनोंवाक्योंसे झलकता है कि प्रमत्त छठवां गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान पर्यन्त श्रुतकेवली हो सकते हैं ॥

वक्ष्यमाणेषु शुक्लध्यानविकल्पेषु आद्ये शुक्लध्याने पूर्वविदो भवतः श्रुतकेवलिन इत्यर्थः॥ चशब्देन धर्म्यमपि समुच्चीयते ॥

परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें "शुक्लेचाद्ये" सूत्रमें चकारसे पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितक आदिके दो शुक्लध्यानका उपशांतकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें अस्तित्व समुच्चय किया है क्योंकि उक्त समाजमें "शुक्लेचाद्ये" सूत्रके पहिले "उपशान्तक्षीणकषाययोश्च" सूत्र है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २१६ सूत्र ३८, ३९)

वृत्यनुवादः—वक्ष्यमाणेषु शुक्लध्यान- =[इस अध्यायके ३९वां सूत्रमें] कहेजानेवाले शुक्लध्यानके

विकल्पेषु आद्ये शुक्लध्याने पूर्वविदः (चार प्रथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति तथा व्युपरतक्रियानिवर्ति) =भेदोंमें(से)आदिके दो(पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क) शुक्लध्यान पूर्वके जाननेवालेके

भवतः T श्रुतकेवलिनः इति*अर्थः =होते हैं, (यहां पूर्वविदु शब्दकरि) श्रुतकेवलीके [होते हैं] ऐसा अभिप्राय है ॥

चशब्देन धर्म्यम् अपि*समुच्चीयते T ॥ =(इस सूत्रमें) चशब्दकरि धर्म्य(ध्यान) भी (=अपि)संग्रह वा समुच्चय किया गया है ॥

अब प्रश्न यह है कि गृहस्थअवस्थामें तीर्थंकरके पूर्ण श्रुतज्ञान है वा नहीं(उत्तर) "मतिश्रुतअवधिविराजत जिन जबजन्मियो" यह वाक्य इस अपेक्षासे है कि तीर्थंकरोंके जन्मनिमित्तक अथवा भवप्रत्यय अर्थात् जन्मके साथ ही अवधिज्ञान होता है, वैसे तो मनुष्यगतिके समस्तजीवों के न्यूनाधिक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अपने २ मतिज्ञानावरणकर्मके,श्रुतज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी मर्यादाके अनुकूल होता है,तीर्थंकरोंके दशगुण जो जन्मकेसाथ उत्पन्न होते हैं, उनमें श्रुतज्ञानके सम्बन्धमें कोई गुण नहीं है, इसपर कई विद्वानोंकी सम्मति भी ली गई है और कई शास्त्रोंमें अन्वेषन कियागया हमको "प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिभी पूर्वकेवेत्ता होय है" जयधवलजीवचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४८ सूत्र३७के अतिरिक्त कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ, इससे प्रगट है कि श्रुतकेवली प्रमत्त छठवांगुणस्थानसे नीचेका जीव नहीं हो सक्ता है, तीर्थंकरोंके चौथा और पांचवां गुणस्थान गृहस्थ अवस्थामें होते हैं इसलिये पूर्ण द्रव्य श्रुतज्ञान तीर्थंकरोंके गृहस्थ अवस्थामें नहीं होता है,भूल होतो कृपया शुद्ध करलें॥

( ) उपर्युक्तसे दोनों आम्नायोंके सूत्रोंके अंतरका सारांश यह है कि दिगम्बरआम्नायके अनुकूल धर्मध्यान चोथे गुणस्थानसे सातवें तक है, श्रेणीके आरम्भसे शुक्लध्यान होता है,धर्मध्यान नहीं रहता है, श्रुतकेवली (जो छठवांगुणस्थानसे बारहवां गुणस्थान तक होते हैं) के ही आठवां, नववां,दशवां, ग्यारहवांगुणस्थानोंमें पहला शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्क होता है,और श्रुतकेवलीके ही बारहवां गुणस्थानमें एकत्ववितर्क शुक्लध्यान होताहै,श्वेताम्बर आम्नायके अनुकूल धर्मध्यान सातवां, उपशांतकषाय ग्यारहवां, क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानोंमें होता है, आदिके दो शुक्लध्यान अर्थात् पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवालोंके होते है तथा येही दो ध्यान पूर्वविदु अर्थात् श्रुतकेवलीके होते हैं परन्तु हमको यह ज्ञात नहीं है कि श्रुतकेवली किस गुणस्थानसे किस गुणस्थान तकके मनुष्य उक्तसमाजकेसिद्धान्तमेंहोतेहैं॥

क्योंकि प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि भी श्रुतकेवली वा पूर्ववेत्ता होते हैं, उन (श्रुतकेवली)के प्रमत्त अप्रमत्त विषै धर्मध्यान भी होता है। चशब्द करि ऐसा समुच्चय कीजिये। [जयचन्द्रजीवचनिकासूत्र३७]

तत्र*व्याख्यानतः*विशेष-प्रतिपत्तिः*॥"
=तहां(सूत्रके वा गूढ़ वाक्यके)व्याख्यानसे, विवरणसे,अर्थसे, व्याख्यासे,भाष्य करनेसे अथवा टीका करनेसे
=विशेष वा ज्योंके त्यों वा यथार्थ तात्पर्यकी प्रवृत्ति (=प्रतिपत्ति) वा प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) होती है॥

(१)"धर्म्यमप्रमत्तस्येतिचेन्न पूर्वेषां विनिवृत्तिप्रसंगात् ॥"राजवार्तिक १४,"धर्म्यमप्रमत्तस्येति चेन्न पूर्वेषां निर्वृत्ति प्रसंगात्"श्लोकवार्तिक सूत्र३६से

धर्म्यम् अप्रमत्तस्य
इति*चेत्*न*
पूर्वेषाम् विनिवृत्ति-प्रसंगात्
=धर्म्यध्यान अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्तीके होता है।
=ऐसा प्रश्न होनेपर (=चेत्)वा संदेह होनेपर (=चेत्) (उत्तर है कि धर्म्यध्यान अप्रमत्तमें ही)नहीं[होता]
=क्योंकि पहिले (कहे हुये चौथे, पांचवें, छठे गुणस्थानवर्ति)निकें निवृत्ति का प्रसंग आता है भावार्थऐसेहैकि असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती, संयमासंयमी सम्यग्दृष्टि पांचवां गुणस्थानवर्ती, प्रमत्तसंयमी छठवां गुणस्थान धारकके भी सम्यक्दर्शनके प्रभावसे धर्मध्यान होता है,यदि धर्मध्यान अप्रमत्तसंयमी सातवें गुणस्थानवालेकें ही कहा जाय तो तिन चौथा गुणस्थानवालोंसे छठवां गुणस्थानवर्तियोंकें निरेध होजाता है॥ इसलिये धर्मध्यान असंयत चौथे गुणस्थानसे आठवां गुणस्थानमें उपशम वा क्षपक श्रेणी चढ़नेसे पहिले हुवा है वा होता है। उपशम श्रेणी वा क्षपकश्रेणीके प्रारम्भमें शुक्लध्यान होता है और धर्मध्यान नहीं होताहै॥

"उपशांतक्षीणकषाययोश्चेति तन्नशुक्लाभाव प्रसंगात् ॥"राजवार्तिक॥१५॥'उपशांतक्षीणकषाययोश्चेति चेन्न शुक्लाभाव प्रसंगात्'श्लो०॥

उपशांत-क्षीणकषाययोः अ*
इति*चेत्*तत्
न*शुक्ल-अभाव-प्रसंगात्
=उपशान्तकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्तियोंके (धर्मध्यान) होता है [और असंयत सम्यग्दृष्टिके, संयतासंयतके, प्रमत्त संयतके, अप्रमत्तसंयतके, धर्म्यध्यान नहीं होता है]
=ऐसा प्रश्न (=चेत्) होनेपर (उत्तर है कि) वह (धर्म्यध्यान=तत्-उपशान्त और क्षीणकषाय वालोंके)
=नहीं होता है,क्योंकि शुक्लध्यानके अभावका प्रसंग आता है और उपशान्त कषाय ग्यारहवांगुणस्थानवर्तीकेतथा क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थान वालोंके शुक्ल ध्यानका होना इष्ट है॥

'तदुभयं तत्रेति चेन्न, पूर्वस्यानिष्टत्वात्' तत्त्वार्थराजवार्तिक, वार्तिक ॥१६॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक सूत्र३६मुद्रित पृष्ठ ५०४

तत्र
तद्-उभयम इति*चेत्*
न
पूर्वस्य अनिष्टत्वात्
=तहां (=तत्र) अर्थात् उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तियोंकें
=वे दोनों (धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यान) होते हैं ऐसा संदेह (=चेत्) होने पर
=(उत्तर है) कि (उपशान्त तथा क्षीण कषायमें धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यान दोनों) नहीं होते हैं॥
=क्योंकि पूर्व (अर्थात् धर्म्यध्यान) का (उपशान्त तथा क्षीणकषायमें) होना अनिष्ट है॥
धर्म्यध्यान उपशम वा क्षपक श्रेणीके चढ़नेसे पहिले पहिले होता है। ऐसा ऋषि प्रणीत शास्त्रोंमें भी देखा गया है

इति श्रेण्यारोहणात्प्राग्धर्म्यंश्रेण्योः शुक्ले इात व्याख्यायते॥अवशिष्टे कस्य भवत इत्यत्रोच्यते-

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

(१) इति* =इस प्रकारसे (अर्थात् पूर्वोक्त–वैयाकरणों तथा शास्त्रकारों द्वारा दी हुई परिभाषासे)

(२) श्रेणी–आरोहणात्[5]'''प्राग्*धर्म्यम्[1]''' =(उपशम वा क्षपक) श्रेणीके चढ़नेसे पहिले धर्म्य (ध्यान) होता है ॥

श्रेण्योः[3]''शुक्ले[3]''' =श्रेणी चढ़नेपर दो शुक्ल ध्यान होते हैं अर्थात् आठवां अपूर्वकरण गुणस्थानमें श्रेणीके प्रारम्भसे उपशान्तकषाय ग्यारहवांगुणस्थानपर्यन्त तो पृथक्त्ववितर्क(विचार) शुक्ल ध्यान होता है और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानमें एकत्ववितर्क(अवीचार)दूसरा शुक्लध्यानहै॥

इति*व्याख्यायतेT। अवशिष्टे[3]''' =ऐसे सूत्रकी व्याख्या की गई है। बचे हुये दो [शुक्ल ध्यान]

कस्य[6]''भवतःTइति*अत्र•उच्यते T ॥ =किसके होते हैं ? ऐसा (प्रश्न होनेपर) यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥=परे (द्वे शुक्ले ध्याने) केवलिनः भवतः॥ ३८ ॥

सूत्रार्थ:—परे[1]'''शुक्ले[3]''द्वे[5]'''ध्याने[3]''' =(इस सूत्रका पाठ औरअर्थ दोनों समाजोंमें एक है)अगले वा उत्तरके दो शुक्ल ध्यान

केवलिनः[6]'भवतः T ॥ केवलीके होते हैंअर्थात् सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति तीसरा शुक्लध्यान सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानवर्तीके होता है और व्युपरतिक्रियानिवर्ति चौथा शुक्ल ध्यान अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवर्तीके होता है। इनमेंसे कोई भी ध्यान छद्मस्थके नहीं होता है

(१) इति—यह परिभाषा पूर्णरूपसे इस प्रकार है 'व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम्'(श्रीशचन्द्र अनुवादितअष्टा०पृष्ठ२से) व्याख्यानतः*विशेष–प्रतिपत्तिः = (सूत्र वा गूढ वाक्यकी)व्याख्या करनेसे अथवा भाष्य करनेसे, यथार्थ अर्थ वा ठीकर तात्पर्यकी प्राप्तिहोती है न हिसंदेहात् अलक्षणम् =क्योंकि (=हि) सूत्र वा गूढ वाक्यसे अलक्षणकी प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् किसी नियममें कोई शब्द संदेहात्मक हो तौ भी वह [नियम] किसी निश्चित वा परिमित वस्तुका बोधक होता है न किअपरमित वा निरर्थकका।

[२] "बहुरि जब श्रेणी चढै, तब अष्टम अपूर्व करण गुणस्थान हो है। तहां मोहके अतिमंद उदय होनेतैं इच्छा भी अव्यक्त होय जाय है ॥तहां शुक्लध्यानका पहिला भेद प्रवर्ते है। इच्छाके अव्यक्त होनेतैं कषायका मल अनुभवमें रहै नाहीं उज्ज्वल होय याहीतैं याकानाम शुक्लैकाग्र(जय०७।८=)

प्रक्षीणसकलज्ञानावरणस्य केवलिनः सयोगस्यायोगस्य च परे उत्तरे शुक्लध्याने भवतः यथासंख्यम् ॥ तद्विकल्पप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥

पृथक्त्ववितर्कमेकत्ववितर्कं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिवर्ति चेति चतुर्विधं शुक्लध्यानं

वृत्त्यनुवादः—प्रक्षीण—सकल—
=पूर्णरूपसे (=प्र)वा प्रकर्षतासे (=प्र) नाश हुये हैं (=क्षीण) समस्त

ज्ञानावरणस्य[६]'केवलिनः[६]'सयोगस्य[६]'अयोगस्य[६]' च*
=ज्ञानावरणीय कर्म जिनके ऐसे सयोग तथा (=च)अयोग केवली (भगवान्)के

परे[१]'''उत्तरे[१]'''शुक्लध्याने[१]'''यथासंख्यम्*
=अगले दो(=परे)वा अग्रिम दो(=उत्तरे)शुक्लध्यान अनुक्रमसे हैं अर्थात् तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति सयोगकेवलीके तथा व्युपरतिक्रियानिवर्ति अयोगकेवलीके

भवतः[T],तद्—विकल्प—प्रतिपादन—अर्थम्[१]'''इदम्[१]'''उच्यते[T]।=होते हैं।उस(शुक्लध्यान)के भेद कहनेकेलिये यह(अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

=पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि चतुर्विधं शुक्लध्यानम्॥३९॥

सूत्रार्थः—पृथक्त्ववितर्क[१]'''एकत्ववितर्क[१]'''सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति[१]'''=पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति,

व्युपरत—क्रियानिवर्ति[१]'''च*चतुर्विधम्[१]'''शुक्लध्यानम्[१]'''भवति[T] =और (=च) व्युपरतिक्रियानिवर्ति, चार प्रकार शुक्लध्यान है ॥

वृत्त्यनुवादः—पृथक्त्ववितर्क[१]'''एकत्ववितर्क[१]'''सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति=पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति,

व्युपरतक्रियानिवर्ति[१]'''च*इति*चतुर्विधम्[१]'''शुक्लध्यानम्[१]''' =और (=च) व्युपरतक्रियानिवर्ति ऐसे चार प्रकार शुक्लध्यान है।

(१) दिगम्बर आम्नायमें कहीं कहीं 'निवर्तीनि' के स्थानमें "निवर्तीनि" है अचोरहाभ्यामद्वेचा अष्टाध्यायी८-४-४६ सूत्रसे दोनों शब्द ठीक है॥
(२) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी०में निवर्तीनिके स्थानमें 'निवृत्तीनि' ऐसा पाठ है। शेषपाठ एकहै "निवर्तीनि और निवृत्तीनि" दोनों नपुंसकलिंग बहुवचनमें हैं और दोनोंका अर्थभी एक है। इसलिये दोनों सम्प्रदायमें अर्थभेद कुछभी नहीं है, और यदि 'ताडपत्र पुस्तकका (जो दिगम्बर आम्नायकी है)पाठ "निवृत्तीनि" को ग्रहण करें तो दोनों सम्प्रदायोंका पाठभी एक होजाता॥

वक्ष्यमाणलक्षणमुपेत्य सर्वेषामन्वर्थमवसेयम्॥ तस्यालम्बनविशेषनिर्धारणार्थमाह—

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्॥४०॥

वक्ष्यमाण-लक्षणम्+उपेत्य÷ =आगे कहेजानेवाले स्वरूपोंको प्राप्तकर[अर्थात् कहेजानेवाले स्वरूपोंकी अपेक्षाकर]
सर्वेषाम्+अन्वर्थम्+अवसेयम्+, =सब[शुक्लध्यानों]के सार्थकपना जानना चाहिये अर्थात् जैसा जैसा इन शुक्लध्यानोंकानाम है वैसा वैसाही इनका अर्थ है॥

तस्य+आलम्बन-विशेष-निर्धारण-अर्थम्+आह=तिस(शुक्लध्यान)के अवलम्बन वा आश्रयकी भिन्नता निर्णयके लिये कहते हैं कि

(१)त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्=(पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि)त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् (यथाक्रमम् भवति)

=प्रथक्त्ववितर्कम्-एकत्ववितर्कम्-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्ति च त्रियोग-एकयोग-काययोग-अयोगानाम्-यथाक्रमम् भवति ॥४०॥

सूत्रार्थः—पृथक्त्ववितर्क+एकत्ववितर्क+=पृथक्त्ववितर्कश्वेतध्यान, एकत्ववितर्कश्वेतध्यान,

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति+च*व्युपरतक्रियानिवर्ति+॥=सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति श्वेतध्यान, और (=च) व्युपरतक्रियानिवर्ति श्वेतध्यान

त्रि-योगस्य+एकयोगस्य+ =तीन योगवालेके, एकयोग प्रवर्तने वालेके
अर्थात् तीनों मन, वचन, कायकेयोगोंमेंसे कोई एक योग प्रवर्तनेवालेके

काययोगस्य+अयोगस्य+च* =काययोग प्रवर्तने वालेके और योगरहित (केवली भगवान्)के

यथाक्रमम्* भवतिT =क्रमसे अर्थात् पहिलेको पहिला, दूसरेको दूसरा,तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा होताहै

(१)इस सूत्रमें ३९वां सूत्र समस्त की तथा २१ वां सूत्रसे यथाक्रमम् वाक्यकी अनुवृत्ति आती है। हमारी सम्प्रदायमें सर्वत्र एकसा पाठ है कहीं कहीं पर "योगानाम्"के स्थानमें (अंतमें) 'योगानां' है वह भी कातंत्रमालारूपव्याकरणसे शुद्ध है(देखो अध्याय १ प्रष्ठ६) [२]श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें,तत् शब्द इस सूत्रसे अधिक है। और 'योग'शब्द नहीं है शेष पाठ एक है, अर्थात् सूत्र ऐसे हैं कि तत्त्रयेककाययोगायोगानाम्=तत्-त्रि-एक-काययोग-अयोगानाम्-" इसमें 'एकयोग'के स्थानमें "एक" है, इस तत् शब्दके अधिक होनेपर भी तथा योग शब्दके न होनेपर अर्थ सर्वत्र एक है तत्शब्दके आदिमें लानेसे समस्त ३९वां सूत्रकी अनुवृत्ति लानेकी आवश्यक्ता नहीं रहती है । इन दोनों अर्थात् 'तत्-योग' शब्दोंके न होनेसे सूत्र लघुतररूपमें होजाताहै अर्थात्सूत्रऐसा होजाता है कि "त्र्येककाययोगायोगानाम्" ॥

योगशब्दो व्याख्यातार्थः कायवाङ्मनःकर्म योग इत्यत्र ॥ उक्तैश्चतुर्भिःशुक्लध्यानविकल्पैस्त्रियोगादीनां चतुर्णां यथासंख्येनाभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ त्रियोगस्य पृथक्त्ववितर्कं, त्रिषु योगेष्वेकयोगस्यैकत्ववितर्कं काययोगस्य सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, अयोगस्यव्युपरतक्रियानिवर्तीति ॥ तत्राद्ययोर्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

एकाश्रये सवितर्कविचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

उक्त शुक्लध्यानके चारों भेदोंमेंसे पृथक्त्ववितर्क नामका प्रथम शुक्लध्यान सो मनवचनकाय इन तीनों योगोंके धारकके होता है । दूसरा एकत्ववितर्क नामका शुक्लध्यान तीनोंमें से किसी एक योग वालेके होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामका शुक्लध्यान काययोग वालेके ही होता है और चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति नामका शुक्लध्यान अयोगकेवलीके होता है॥

शब्दानुवादः—काय-वाङ्-मनःकर्म[1] योगः[1] इति* अत्र*=काय, वचन, मनकी क्रिया है सो योग है । ऐसे इस स्थानमें(=अत्र-अर्थात्)

योगशब्दः[1] व्याख्यात-अर्थः[1],	=(छठे अध्यायके "कायवाङ्मनःकर्मयोग" सूत्रमें)योग शब्दका अर्थ कहागया
उक्तैः[3] चतुर्भिः[3] शुक्लध्यानविकल्पैः[3] त्रियोग-आदीनां[6]	=(पूर्व) कहेहुये चार शुक्लध्यानके भेदोंसे तीनयोग,एकयोग, काययोग, अयोग
चतुर्णाम्[6] यथासंख्येन[3] अभिसम्बन्धः[1] वेदितव्यः[1],	=(इन) चारोंका अनुक्रमसे सम्बन्ध वा लगाउ जानना चाहिये [तब]
त्रियोगस्य[6] पृथक्त्ववितर्कम्[1], त्रिषु[7] योगेषु[7]	=तीन योगवालेके पृथक्त्ववितर्क (श्वेतध्यान) होता है । तीन योगोंमेंसे
एकयोगस्य[6] एकत्ववितर्कम्[1]	=किसी एकयोग वालेके एकत्ववितर्क (श्वेतध्यान) होता है।
काययोगस्य[6] सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति[1],	=काय योगवाले (सयोगकेवली)के सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति (शुक्लध्यान)होता है।
अयोगस्य[6] व्युपरतक्रिया-निवर्ति[1] इति* । तत्र*	=अयोगवाले(केवली)के व्युपरतक्रियानिवर्ति ऐसे [चौथा शुक्लध्यान] होता है तहां
आद्ययोः[6] विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1] इदम्[1] उच्यते	=आदिके दो (श्वेतध्यानके) विशेष कथनके लिये यहकहा जाता है कि

एकाश्रये सवितर्कविचारे पूर्वे=एकाश्रये सवितर्कविचारेपूर्वे(पृथक्त्वैकत्ववितर्कंशुक्लेध्याने)

एक आश्रयो ययोस्ते एकाश्रये। उभे अपि परिप्राप्तश्रुतज्ञाननिष्ठेनारभ्येते इत्यर्थ ॥

सूत्रार्थः—एक-आश्रये[1] पूर्वे[2] पृथक्त्व-एकत्ववितर्के[3] स-वितर्क-विचारे[4] प्रवर्तते T

=एक है आश्रय जिन (दोनों) को ते वा एक आसरे में रहनेवाले वा आश्रयीभूत =पहिले दो पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान, वितर्क सहित =तथा विचार सहित प्रवर्ते हैं, अर्थात् अकेले परिपूर्ण श्रुतज्ञानी वा श्रुतकेवलीके आश्रयीभूत पहिले दो पृक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वितर्क तथा विचार सहित प्रवर्ते हैं भावार्थ पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यानोंको श्रुतकेवलीही आरम्भ करसक्ता है और वितर्क, विचार करि सहित हैं (४२वां सूत्र अपवाद है)

वृत्त्यनुवादः एकः[1] आश्रयः[2] ययोः[3] तेे[4] एकाश्रये[5] =एक है आश्रय जिन दोनोंका(=ययोः) ते एकाश्रय हैं,

उभे[1] अपि* परिप्राप्त-श्रुतज्ञान-निष्ठेन[2] आरभ्येते[3] इति* अर्थः[4] =दोनों (शुक्लध्यान पृथक्त्व वितर्क तथा एकत्ववितर्क) भी [=अपि] सम्पूर्ण (परिप्राप्त) =श्रुतज्ञानमें तत्पर द्वारा (=निष्ठेन) आरम्भे जाते हैं अर्थात् इनदोनों शुक्लध्यानोंको (परिपूर्ण श्रुतज्ञानी ही आरम्भ कर सकता है) ऐसा तात्पर्य हुआ ॥

दिगम्बर आम्नायके ग्रन्थोंमें सर्वत्र एकसा पाठ है कहीं कहीं पर 'विचारे' शब्द है और कहीं २ पर 'वीचारे' शब्द है दोनों ठीक हैं ॥ कहीं कहीं पर पूर्वे शब्द है और कहीं२पर पूर्व्वे शब्द है "अवोरह्याव्यां द्वेवा" अष्टाध्यायी ८-४-४६ सूत्रसे दोनों रूप ठीक और शुद्ध हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थटीकामें "एकाश्रये सवितर्के पूर्वे" पाठ है और दोनों सम्प्रदायोंमें इससूत्रके पश्चात् "अविचारं द्वितीयम्" यह सूत्र है जिसका अर्थ 'दूसरा एकत्ववितर्क ध्यानविचार रहित है होता है और एकाश्रयेसवितर्के पूर्वेका अर्थ एकके आश्रयीभूत पहिले दो (शुक्ल ध्यान वितर्क सहित होते हैं ऐसा है, दोनों सम्प्रदायोंमें प्रथम सूत्रमें पाठ भेद होनेपर भी दोनों सूत्रोंका भाव और एकसाथ पढ़कर लिया जाय तो एक ही है क्योंकि दोनों सूत्रोंको मिलाकर अर्थ ऐसा है कि-एकहीके आश्रयीभूत प्रथम शुक्लध्यान वितर्क और विचारसहित है, द्वितीय शुक्लध्यान वितर्क सहित है पर विचार रहितहै हमारे यहां यह अर्थ ऐसे निकाला हैकि पहिले दो वितर्कसहित और विचार सहित हैं, द्वितीय शुक्ल ध्यान विचार रहित है अर्थात् केवलवितर्क सहित है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस अर्थको इसप्रकार निकाला है कि पहिले दो वितर्क सहित हैं, परन्तु दूसरा विचार रहित है यह सूत्र इस बातका द्योतक है कि प्रथम ध्यान विचार सहित है अन्यथा 'अविचारं द्वितीयम्' सूत्र व्यर्थ हुआ जाता है जब दोनों सम्प्रदायमें दोनों २ सूत्रोंका अर्थ एक ही आता है और समाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके युगलसूत्रोंमें तीन अक्षरका लाघव है तो क्या यह लघु पाठवाला सूत्र उमास्वामीका पाठ होना चाहिये ? अथवा दीर्घ पाठवाला

वितर्कश्च विचारश्च वितर्कविचारौ सह वितर्कविचाराभ्यां वर्तेते इति सवितर्कविचारे ॥ पूर्वे पृथक्त्वैकत्ववितर्के इत्यर्थः ॥ तत्र यथासंख्यप्रयो(सं)गेऽनिष्टनिवृत्यर्थमिदमुच्यते-

अविचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

वितर्कः[1]च*विचार:[2]च*
=बहुरि (=च) वितर्क तथा (=च) विचार मिलकर (वा समासरूपमें)

वितर्कविचारौ[3] सह*वितर्कविचाराभ्यां[3] वर्तेते T
=वितर्कविचारौ होजाते हैं, वितर्क तथा विचारकरि सहित (=सह) (ये दोनों) प्रवर्तते हैं,

इति*सवितर्कविचारे[1]''';पूर्वे[1]'''
=ऐसा सवितर्क विचार है, पूर्वे अथवा पहिलेके दो हैं सो(चार शुक्लध्यानोंमेंसे)

पृथक्त्व-एकत्ववितर्के[1]'''इति*अर्थः[1];
=पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क हैं, ऐसा तात्पर्य [पूर्वे शब्दका] हुआ,

तत्र*
=तहां (सवितर्क तथा सविचारका पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्कके साथ)

यथासंख्य-प्र [सं] योगे[1]अनिष्ट-
=क्रमानुसार अभिसम्बन्धमें (=प्रयोगे-संयोगे) अनिष्टताके

निवृत्ति-अर्थम्[1]''इदम्[1]'''उच्यते T
=विषेधके लिये यह (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है अर्थात् सवितर्कका सम्बन्ध पृथक्त्व-वितर्कके साथ हुआ जाता है और सविचारका सम्बन्ध एकत्ववितर्कके साथ हुआ जाता है, इस अनिष्ट संबन्धके रोकनेके लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं यहां भावार्थ ऐसा जानना कि पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान वितर्क सहित है, और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान विचार सहित है ऐसा यथासंख्य सम्बन्ध निवारणके लिये उत्तर सूत्रमें कहते हैंकि

अविचारं द्वितीयम=अविचारं(सवितर्के)द्वितीयम् एकत्ववितर्के शुक्लध्यानं प्रवर्तते॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ:-अविचारम्[1]'''
=विचाररहितअर्थात्अर्थ,वचन योगका पलटाउ,वा परिवर्तनसे वर्जित मणिके दीपकसमअचल

सवितर्कम्[1]'''द्वितीयम्[1]'''एकत्ववितर्कम्[1]'''
=और वितर्क सहित दूसरा एकत्ववितर्क

शुक्लम्[1]'''ध्यानम्[1]'''प्रवर्तते T
=शुक्लध्यान प्रवर्तता है, ४१-४२ सूत्रोंका भावार्थ ऐसा है कि जिसमें वितर्क और विचार दोनोंहों वह पृथक्त्ववितक प्रथम शुक्लध्यान है,विचार[=पलटाउसे]रहित और वितर्क सहित दूसरा एकत्ववितर्क मणिके दीपकके समान अचल दूसरा शुक्लध्यान है और इन दोनों शुक्लध्यानोंको परिपूर्ण श्रुतज्ञानीही आरम्भ करसक्ता है ॥

पूर्वयोर्यत् द्वितीयं तदविचारं प्रत्येतव्यम् ॥ एतदुक्तं भवति, आद्यं सवितर्कं सविचारं च भवति द्वितीयं सवितर्कमविचारं चेति॥अथ वितर्कविचारयोः कः प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

विशेषेण तर्कणमूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः ॥ अथ को विचारः ?

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

सूत्र्यनुवादः—पूर्वयोः[३]'''यत्[१]'''
द्वितीयम्[१]'''तद्—अविचारम्[१]'''
प्रत्येतव्यम्[१]''',एतद्[१]'''उक्तम्[१]'''भवति T
आद्यम्[१]'''सवितर्कम्[१]'''सविचारम्[१]'''च*भवति T
द्वितीयम्[१]'''सवितर्कम्[१]'''अविचारम्[१]'''च*इति*

=पहिलेके दो (पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यानों)मेंसे जो
=दूसरा (शुक्लध्यान) है उस (शुक्लध्यान)के अविचार अर्थात् परिवर्तनका निषेध
=प्रतीति करना वा जानना चाहिये, (तब) यह कथन (अर्थात् तात्पर्य) होता है कि
=आदिका (पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान) वितर्क और [=घ] विचार सहित होता है,
=दूसरा [एकत्ववितर्क शुक्लध्यान] वितर्क सहित और पलटाव वा परिभ्रमण वा संक्रान्ति रहित मणिके दीपकके समान अचल (अर्थात् दूर भया है अर्थ—वचन—योगका पलटना जहां और मणिके दीपके सदृश निश्चलता लिये हुये) ऐसा है,

अथ*वितर्क-विचारयोः[२]'कः[१]'प्रतिविशेषः[१]'इति*अत्र*उच्यते=अब वितर्क और विचार दोनोंमें क्या विशेष है ऐसे(प्रश्नपर) यहां कहाजाता है कि

वितर्कः श्रुतम् ॥४३ ॥=वितर्कःश्रुतम् (भवति)॥दोनोंसमाजोंमें दोनोंसूत्रोंका पाठ अर्थ एकसाहै

सूत्रार्थः—वितर्कः[१]श्रुतम्[१]''' भवति T
विशेषेण[१][१] तर्कणम्[१]'''ऊहनम्[१]'''वितर्कः[१]'
श्रुतज्ञानम्[१]'''इति*अर्थः[१]'अथ*कः[१]'विचारः[१]।

=विशेष प्रकारसे तर्क सो वितर्क है वही श्रुतज्ञान है अर्थात् वितर्कनाम श्रुतज्ञानका है
=(वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) विशेषकरि अथवा स्पष्टतासे तर्कण है ऊहन है सो वितर्क है,[१]
=(वही) श्रुतज्ञान है ऐसा अर्थ हुआ, अब विचार अथवा वीचार क्या है ?

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः=अर्थसंक्रान्तिः-व्यञ्जनसंक्रान्तिः योगसंक्रान्तिःविचारःउच्यते।

(१)"यहां श्रुतज्ञान शब्द अथवा पृथक् ज्ञानका ग्रहण है। अर मतिज्ञानका भेदस्मिताका नामभी तर्क है,ताका ग्रहणनाहीं है"सर्वार्थसिद्धिवचनिकासूत्र४३

अर्थो ध्येयः द्रव्यं पर्यायो वा। व्यञ्जनं वचनम्। योगः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणः। संक्रान्तिः परिवर्तनम्॥ द्रव्यं विहाय पर्यायमुपैति पर्यायं त्यक्त्वा द्रव्यमित्यर्थसंक्रान्तिः॥ एकं श्रुतवचनमुपादाय वचनान्तरमालम्बते तदपि विहायान्यदिति व्यंजनसंक्रान्तिः॥काययोगं त्यक्त्वा

वृत्त्यनुवादः अर्थ-संक्रान्तिः, =(ध्यानमें ध्येय) पदार्थको छोड़कर उसकी पर्यायको ध्यावना तथा पर्यायको छोड़कर द्रव्यको ध्यावना सो अर्थसंक्रान्ति यथदा अर्थपरिवर्तन है,

व्यञ्जन-सक्रान्तिः, =श्रुतके एकवचन वा शब्दको अवलम्बन करके अन्यका अवलम्बन करना और उसको छोड़कर दूसरे श्रुतके वचनको ग्रहणकरना सो व्यञ्जनपरिभ्रमण अर्थात् व्यंजनसंक्रान्ति है,

योग-संक्रान्तिः, =काय योगको छोड़कर मनोयोग वा वाग्योगको अवलम्बन करना और मनोयोग वा वाग्योगको छोड़कर काययोगको ग्रहण करना सो योगोंकी पलटन वा संक्रमण है,
(इस प्रकारके पदार्थ श्रुतवचन -मनवचनकायकी क्रियाओंका परिवर्तन वा पलटना है)

विचारः भवति T =सो विचार वा वीचार है

वृत्त्यनुवादः अर्थः ध्येयः द्रव्यम् पर्यायः वा*, =ध्यानकरने योग्य (=ध्येय) द्रव्य वा पर्याय है सो अर्थ है,

व्यञ्जनम्॥ वचनम्॥, काय- =व्यञ्जन है सो [श्रुतका] वचन वा शब्द है, काय

वाग्-मनःकर्म-लक्षणः योगः, संक्रान्तिः॥ =वचनमनकी क्रिया स्वरूप [=लक्षण] है सो योग है। संक्रान्ति पलटना

परिवर्तनम्॥, द्रव्यम्॥ विहाय ÷ पर्यायम् उपैति T =परिवर्तन वा संक्रमण है, द्रव्यको छोड़कर पर्यायको प्राप्तकरता है,

पर्यायं त्यक्त्वा ÷ द्रव्यम्॥ इति* अर्थ-संक्रान्तिः॥ =पर्यायको छोड़कर द्रव्यको [प्राप्त करता है] ऐसा अर्थसंक्रान्ति है,

एकम् श्रुतवचनम्॥ उपादाय ÷ वचनान्तरम्॥ =एक श्रुत वचनको ग्रहण कर ["फिरताकु छोड़"]दूसरे वचनको

आलम्बते T तद्॥ अपि* विहाय ÷ =अवलम्बन करताहै, उस(दूसरे ग्रहणकियेहुये श्रुतवचन' को भी (=अपि) छोड़कर

अन्यत्॥ इति* व्यञ्जन- =अन्य (श्रुत वचन) को (अवलम्बन करता है) इस प्रकार व्यंजन

संक्रान्तिः, काययोगम् त्यक्त्वा ÷ =संक्रान्ति (=श्रुत चनकी पलटना) है, काययोगको परित्यागकर

योगान्तरं गृह्णाति योगान्तरं त्यक्त्वा काययोगमिति योगसंक्रान्तिः ॥ एवं परिवर्तनं विचार इत्युच्यते ॥ संक्रान्तौ सत्यां कथं ध्यानमिति चेत्–ध्यानसन्तानमपि ध्यानमुच्यते इति न दोषः ॥ तदेतत्सामान्यविशेषनिर्दिष्टं चतुर्विधं धर्म्यं शुक्लं च पूर्वोदितगुप्त्यादि-बहुप्रकारोपायं संसारनिवृत्तये मुनिर्ध्यातुमर्हति कृतपरिकर्मा ॥

योगान्तरम्[१]गृह्णातिT,योगान्तरम्[२]	=अन्य(मनो अथवा वाग्) योगको ग्रहण करता है,(अन्य मनो अथवा वाग्)योगका
त्यक्त्वा÷काय–योगम्[३]इति*योग–संक्रान्तिः[४],	=छोड़कर काययोगको(ग्रहण करता हैगृह्णाति)ऐसे योगोंका संक्रमण वा योगसंक्रान्तिहै
एवम्*परिवर्तनम्[१]विचारः[२]	=ऐसे(पूर्वमें विशेषरूपसे कहा हुआ) संक्रमण है वा संक्रान्ति है सो विचार
इति*उच्यते T संक्रान्तौ[३]सत्यां[३]	=ऐसा वर्णित वा भाषित है । संक्रमण वा परिवर्तन होनेपर (=सत्यां)
कथम्*ध्यानम्[१]इति*चेत्*	=कैसा ध्यान है (अर्थात् ध्यान तो एकाग्र कहा है) ऐसा संदेह वा संशय[=चेत्]होनेपर
ध्यान–सन्तानम्[१]अपि*ध्यानम्[१]उच्यते T	=(उत्तर है कि) ध्यानकी सन्तान भी ध्यान कहलाती है
इति* न* दोषः[१]	=इस प्रकार [संक्रान्ति होने पर भी ध्यान कहनेमें] दोष नहीं अर्थात् ऐसा प्रश्न होनेपर कि संक्रमण वा पलटाउ वा परिवर्तन होते संते कैसे ध्यान हो सक्ता है क्योंकि २७वां सूत्रमें कहा है कि एकाग्र चिन्ताका निरोध सो ध्यान है उत्तरमें कहते हैं कि एकको अवलम्बन एकवार ठहरा हुआ, पश्चात् दूसरेको ग्रहण कर तहां ठहरा हुआ ध्यान तो ठहरनेको कहते हैं, यहां प्रथम वार ठहराव हुआ पश्चात् द्वितीयवार ठहराव हुआ इस प्रकार ध्यानकी सन्तान है,सो भी ध्यान ही है ॥
तद्[१]एतद्[१]सामान्य–विशेष–निर्दिष्टम्[१]	=सो [=तद्] यह [=एतद्] संक्षेपरूप तथा प्रभेद रूप कहा हुआ
चतुर्विधम्[१]धर्म्यम्[१]शुक्लम्[१]च* पूर्व–	=चार प्रकार धर्म्यध्यान और [=च] (चार प्रकार) शुक्ल ध्यान और पहिले
उदित–गुप्ति–आदि–बहु–प्रकार–उपायम्[१]	=कहे हुये (=उदित) गुप्ति आदि (तिन स्वरूप जो) बहुत प्रकार ध्यानके उपाय
कृत–परिकर्मा[१]मुनिः[१]	=(तिनकरि)अन्तःकरण(हृदय-मन)को संस्कार(शुद्ध) करता हुआ मुनि[वैद्यकोशपृष्ठ४१५]
संसार–निवृत्तये[१]ध्यातुम्[१]अर्हतिT	=संसारके नाशके अर्थ ध्यान करनेको समर्थ वा योग्य होता है ॥

(१) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित, दो मुद्रित प्रतियोंमें 'कृतपरिकर्मा' मुनिका विशेषण है. कृतपरिकर्म पाठ अशुद्ध है(२)ध्यातुम-हेत्वर्थकृदन्त

तत्र द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यायन्नाहितवितर्कसामर्थ्यादर्थव्यंजने कायवचसी च पृथक्त्वेन संक्रामता मनसाऽपर्याप्तबालोत्साहवदव्यवस्थितेनानिशितेनापि शस्त्रेण चिरात्तरुं छिन्दन्निव मोहप्रकृतीरुपशमयन्क्षपयंश्च पृथक्त्ववितर्कविचारध्यानभाग्भवति ।

तत्र*द्रव्यपरमाणुं[२]'भावपरमाणुं[२]'वा[२]ध्यायन्[१]'वितर्क-समर्थ्यात्[५]'''पृथक्त्वेन[१]'''संक्रामता[३]''' (१)मनसा[३]'''अपर्याप्त-बाल-उत्साहवद* आहित-अर्थ-व्यंजने[३]'''काय-वचसी[३]'''च* अव्यवस्थितेन[३]'''अनिशितेन[३]'''अपि*शस्त्रेण[३]''' चिरात्* तरुं[२]'(२)छिन्दन्[१]'इव*मोहप्रकृतीः[२]''' (२)उपशमयन्[१]'(२)क्षपयन्[१]'च*पृथक्त्ववितर्क-विचार-ध्यानभाग्[१]'भवति[१]' ।

=तहां द्रव्य परमाणुओंको अथवा भावपरमाणुओंको ध्यावताहुआ
=श्रुतज्ञानकी सामर्थ्यसे भिन्नभिन्नपनाकरि पलटते वा परिवर्तन करते
=मनद्वारा नहीं पूर्ण हुआ है बलकाउत्साह वा उद्योग जिसका तिस(पुरुष)के सदृश
=ग्रहण कियेगये हैं अर्थ-व्यंजन तथा (=च) काय-वचन
=और अनिश्चल तथा मुथरे वा अतीक्ष्ण भी (=अपि) शस्त्रद्वारा
=बहुतकालमें छेदेगये अथवा काटेगये वृक्षके समान मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंको
=उपशम करताहुआ तथा (=च) क्षय करता हुआ (मुनि) पृथक्त्ववितर्क
=वीचार (शुक्ल) ध्यानका भजनेवाला वा धारक होता है अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर
द्रव्य पर्यायोंको ध्यावताहुआ ग्रहणकिया है वा अंगीकारकी है श्रुतज्ञानकी वचनस्वरूप
वितर्ककी सामर्थ्य जाने ऐसे अर्थ और अक्षर=(व्यंजन) तथा काय और वचनकी भिन्न रूपनाकरि
पलटता जो मन सो कैसा है मन? जैसे कोई पुरुष कार्यकरनेको उत्साह करे सो जितना अपनाबल

(२)ध्यै, शम, भ्वादि प्रथम,छिद् रुधादि सातवां, क्षप् चुरादि दशवें गणोंके धातुओंके ध्यायत् शमयत् छिन्दत्, क्षपयत् वर्तमान कृदन्तोंसे ध्यायन्, शमयन्,छिन्दन् क्षपयन्,प्रथमा एकवचन पुल्लिंगरूप क्रमसे हुये ॥वर्तमान कृदन्त,उनसे पुंलिंगमें प्रथम विभक्ति बनानेके लिये देखो भांडारकर३१,६८

(१)"मनसाऽपर्याप्तबालोत्साहवत्"यह पाठ एकहस्तलिखित प्राचीन प्रतिके पत्र १०५ पर, दोमुद्रितस्वार्थराजवार्तिक तथा मुद्रित राजवार्तिकमेंहै है, इसी पाठके अनुकूल पं० सदासुखजी, पन्नालालजी दूनो, न्यायदिवाकरजीने अनुवाद किया है इसी पाठको हृदय भी स्वीकार करता है, अतः हमने भी इसी पाठके अनुसार अनुवाद किया है। दो मुद्रित सर्वार्थसिद्धि प्रतियोंका पाठ "मनसा पर्याप्तबालोत्साहवत्" है जिसका अनुवाद 'मन द्वारा बालकके उत्साह वा उद्योगकी योग्यता (=पर्याप्त) को लिये हुयेके सदृश' हो सक्ता है॥दो अन्य लिखित प्रतियोंके पत्र८८ और १६१ पर क्रमसे'मनसा अपर्याप्तबालोत्साहवत्' पाठ है 'मन द्वारा उस बालकके सदृश जिसका उत्साह पूर्ण नहीं हुआ है अर्थात् जिस बालक में अभी उद्योग करनेका उत्साह अवशेष है उसके सदृश मनकरि ऐसा अनुवाद हो सक्ता है । जयचन्दजीका अनुवाद हैकि 'मन सो कैसाहै मन? जैसे कोई पुरुष कार्य करनेको उत्साह करै सो जेता अपना बल होय तेतैं किया ही करे बैठि नरहै तैसे मनका बल होय तेतैं ध्यानकी पलटनी होवो करै बैठि नरहै ॥ (५)ध्यानभाज् यह जो ध्यानको भजता है, वा धरता है अर्थात् ध्यानी, जैसो सुखभाज् =सुख भोक्ता, सुख भोगनेवाला

स एव पुनः समूलतलं मोहनीयं निर्दिधक्षन्ननन्तगुणविशुद्धियोगविशेषमाश्रित्य बहुतराणां ज्ञानावरणसहायीभूतानां प्रकृतीनां बन्धं निरुन्धन् स्थितिह्रासक्षयौ च कुर्वन् श्रुतज्ञानोपयोगे निवृत्तार्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिरविचलितमनाःक्षीणकषायो वैडूर्यमणिरिव निरुपलेपो ध्यात्वा

होय तितना काय कियाही करै बैठ न रहै तैसे जितना मनका बल होय तितना ध्यानकी पलटनि होवेही करै बैठि नरहै और जैसे कोई वृक्षको काटनेलगा तिसके पास शस्त्र[कुल्हाड़ी आरा इत्यादि]तीक्ष्ण नहीं तब थोड़ार अनुक्रमसे काटै तैसे इस ध्यानमें मनकी पलटनि वा परिवर्तन है सो धोरे धीरे अनुक्रमसे है सो इस प्रकारके मनकरि ध्यावता संता मुनि मोहकी प्रकृतियोंको क्रमसे उपशम करता संता और क्षय करता संता पृथक्त्ववितर्कविचार ध्यानका धारी होता है भावार्थ बाह्य अभ्यन्तर द्रव्य,पर्यायोंको ध्यावता श्रुत ज्ञानकी सामर्थ्यको अंगीकार करता साधु है सो अर्थका और व्यंजनको और कायको और वचनको पृथक् पृथक् रूपकरि परिभ्रमण वा परिवर्तन करता मनकरिकै जैसे कोई पुरुष परिपूर्ण बलका उत्साह रहित और निश्चलतारहित हुआ मन तोकरि जैसे तीक्ष्णता रहित मोथरे शस्त्र[कुल्हाड़ी-आरा इत्यादि]करिकै बहुत कालमें सघिकन काष्ठको छेदता है तैसे अष्टम नवम दशम गुण-स्थानके भावका धारक साधु भी संज्वलन कषायका उदयसे परिपूर्ण परिणामोंके बलके उत्साहको नहीं प्राप्त हुआ भावोंके कषायके उदयके धक्कासे दृढ़ निश्चलता को प्राप्त नहीं होनेसे अर मोहनीयकर्मके सब उदयके नाश न होनेसे धीरे२ करणरूप परिणामनकी सामर्थ्यसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंको अनुक्रमसे धीरे२ उपशम करता वा क्षय करता संता पृथक्त्ववितर्क विचारका धारक होता है

सः[1] एव*पुनः*समूल-तलम्[2]''मोहनीयम्[2]'' =बहुरि[=पुनः]सो[=सः]ही[एव-ध्यानी]मूलतलसहित[अर्थात्समस्त] मोहनीयकर्मको

(१)निर्दिधक्षन्[1]' =दग्ध करनेका इच्छुक होकर वा नहिं धारण करनेका उत्साहित होकर

अनन्त-गुण-विशुद्धि-योग-विशेषम्[2]आश्रित्य÷बहुतराणां=अनन्तगुण विशुद्धियोग विशेषको आश्रयकर अधिकतर अथवा विपुलतर

ज्ञानावरण-सहायीभूतानाम्[6]''प्रकृतीनाम्[6]''बन्धम्[2]' =ज्ञानावरणीय कर्मको सहायता करनेवाली प्रकृतियोंका बन्ध

निरुन्धन्[1]''स्थिति-ह्रास-क्षयौ[2]'' च*कुर्वन्[1]''श्रुतज्ञान- =रोकता हुआ और स्थितिको घटावता हुआ तथा क्षय करताहुआ श्रुतज्ञानके

उपयोगे[7]''निवृत्त-अर्थव्यंजन- =उपयोगरूप हुआसंता वा श्रुतज्ञानके उपयोगमें(लीन),दूरभया है अर्थ व्यंजन

योग-संक्रान्तिः[1]''अविचलितमनाः[1]''क्षीण- =योगका पलटना[जिसके निश्चल वा अचल हुआ है मन जिसका क्षीणभया है

कषायः[1]''वैडूर्य-मणिः[1]''इव*निर्-उपलेपः[1]''ध्यात्वा÷=कषाय,जिसका वैडूर्य मणिके सदृश कर्मरूपीलेपसे रहित हुआ, ध्यानकरि

[१]निर्दिधक्षन् शुद्ध है न कि निर्दिधिक्षन् क्योंकि इसका सन्नन्त अर्थात् इच्छार्थकरूप दिधक्षति=[वह जलाना चाहता है, नाश करना चाहता है] बनता है,दिधक्षत् वर्तमान कृदन्त है दिधक्षन् प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग दह् धातुसे है,निस् निषेध,निश्चय,साकल्य,पूरापूरा,व्यतीत अर्थों मेंसे

पुनर्न निवर्तत इत्युक्तमेकत्ववितर्कम्। एवमेकत्ववितर्कशुक्लध्यानवैश्वानरनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनःप्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमण्डलो मेघपञ्जरनिरोधनिर्गत इव घर्मरश्मिर्वा भासमानो भगवांस्तीर्थकर इतरो वा केवली लोकेश्वराणामभिगमनियोऽर्चनीयश्चोत्कर्षेणायुषः पूर्वकोटीं देशोनां विहरति। स यदाऽन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्तत्तुल्यस्थितिवेद्यनामगोत्रश्च भवति तदा सर्वं वाङ्मानसयोगं बादरकाययोगं च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगमवलम्बनः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमास्कन्दितुमर्हतीति ॥ यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्ततोऽधिक-

---

पुन*न*निवर्तते I इति*
=फिर(तिससे)पलटते नहीं हैं ऐसे (मणिके दीपक समान अचल वा निश्चल)

उक्तम्[१]''[१]एकत्ववितर्कम्[२]''[१],
=एकत्ववितर्क (अवीचार) शुक्लध्यान कहा गया है,

एवम्*एकत्ववितर्क-शुक्लध्यान-वैश्वानर-निर्दग्ध-
=ऐसे एकत्ववितर्क शुक्लध्यानरूप अग्निद्वारा (=वैश्वानर) नाश किया है

घातिकर्म-इन्धनः[१]प्रज्वलित-केवलज्ञान-
=(घाति) घातियाकर्मरूपी ईंधन जानें, दैदीप्यमान हुआ है केवलज्ञानरूप

गभस्ति-मण्डलः[१]
=किरणोंका[=गभस्ति] मण्डल जिसके (अर्थात् केवलज्ञानरूप सूर्य जिसके)

मेघपञ्जर-निरोध-निर्गतः[१]इव*घर्म-रश्मिः[१]वा*
=बादलके पींजरेकी रोक निकली हुई, घाम अथवा किरणके सदृश

भासमानः[१]भगवान्[१]तीर्थकरः[१]इतरः[१]वा*केवली[१]
=दीप्तिमान वा प्रकाशमान भगवान् तीर्थंकरकेवली अथवा अन्यसामान्य केवली

लोकेश्वराणाम्[३]अभिगमनीयः[१]अर्चनीयः[१]च*
=इन्द्रोंके आवने योग्य तथा (=च) पूजने योग्य

उत्कर्षेण[१]आयुषः[१]''[१]पूर्वकोटीं[१]''देशोनां[१]''विहरति I सः[१]
=उत्कृष्टकरि आयुके कुछ हीन कोटि पूर्व (तक) विहार करता है ॥

यदा*अन्तर्मुहूर्त-शेष-आयुष्कः[१]च*
=(तीर्थंकरकेवली वा अन्य सामान्यकेवली) जब अन्तर्मुहूर्त आयु बचरहे और

तत्-तुल्य-स्थिति-वेद्य-नाम-गोत्रः[१]भवति I,
=उस(अन्तर्मुहूर्त अवशिष्टआयु)के सम स्थितिवाला वेदनीयनामगोत्रकर्म होताहै,

तदा*सर्वम्[१]वाग्-मानसयोगम्[१]बादरकाययोगं[१]च परिहाप्य÷
=तब समस्त वचन योग,मनयोग, तथा (=च) बादरकाय योगको निरोधकर

सूक्ष्म-काय-योग-अवलम्बनः[१]सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानम्[१]''
=सूक्ष्मकाययोगको अवलम्बनकर ऐसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिशुक्लध्यानको

आस्कन्दितुम्[१]''अर्हतिइति,यदापुनः*अन्तर्मुहूर्त-शेष-आयुष्कः[१]ततःअधिक-
=प्राप्तकरनेयोग्यहोता है,जब अन्तमुहूर्त अवशिष्ट आयु है,उससेअधिक

निश्चय अर्थमें है ॥ कुवत् वर्तमान कृदन्तका कुर्वन् प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग है ॥ भांडारकर प्रथम पुस्तक ६१,६७,६८ अष्टा० ३-१-७

स्थितिशेषकर्मत्रयो भवति सयोगी तदाऽऽत्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्टकरणस्य महासंवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्याशेषकर्मरेणुपरिसातनशक्तिस्वाभावाव्याहतदण्डकवाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसर्पणतश्चतुर्भिः समयैःकृत्वा समुपहतप्रदेशविसरणः समीकृतस्थितिशेषकर्मचतुष्टय पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं ध्यायते। ततस्तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानमारभते। समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्वप्रदेशपरिस्पन्दक्रियाव्यापारत्वात्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तीत्युच्यते

स्थिति-शेष-कर्म-त्रयः[1]भवति।सयोगी[2]तदा* =स्थितिवाले अवशेष तीन(वेदनीय-नाम-गोत्र)कर्म होतेहैं,तब सयोगी(भगवान्)
आत्मन्-उपयोग-अतिशयस्य[3]सामायिकसहायस्य[4]विशिष्ट-=अपनाउपयोगका अतिशययुक्त(कैसाहै उपयोग)सामायिक सहायहैजिसके,विशेष
करणस्य[5]महान्-संवरस्य[6]लघुकर्मपरिपाचनस्य[7]अशेषकर्म-=है परिणमन जिसका, महासंवररूप है, शीघ्र कर्मपचावनेकी समस्त कर्म-
रेणु-परिसातन-शक्ति-स्वाभाव्यात्[8]दण्ड-कवाट- =रजके झाड़न वा विनाशनकी(सातन=शातन)सामर्थ्यकेस्वभावसे दंड कपाट
प्रतर-लोकपूरणानि[9]स्व-आत्म-प्रदेश-विसर्पणतः* =प्रतर(बिछौनो ईंटका फूल सम)लोकपूर्ण अपने आत्माके प्रदेशोंके फैलानेसे
चतुर्भिः[3]समयैः[3]कृत्वा÷ =[चारक्रियारूप]चार समय द्वारा करकर(=कृत्वा)फिरभीउतनेही चारसमयद्वारा
समुपहत-प्रदेश-विसरणः[1]समीकृत-स्थिति-शेष-कर्म-चतुष्टयः[1] =संकोची है प्रदेशोंकी फैलावट जिसने,समानकीहै स्थिति शेष चारकर्मोंकी जिसने
अर्थात् वेदनीय-नाम-गोत्र-कर्मोंकीस्थितिको अन्तर्मुहूर्त आयुकी स्थितिकेतुल्यकर
पूर्व-शरीर-प्रमाणः[1]भूत्वा÷सूक्ष्मकाययोगेन[2] =पहिलेके शरीरके प्रमाण होकर (=भूत्वा) सूक्ष्मकाय योगकरि
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानम्[2]ध्यायते T। =सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानको ध्यावे है अर्थात्(उक्तध्यान)को प्राप्त होता है
ततः*तद्-अनन्तरं[1]समुच्छिन्नक्रिया-निवर्तिध्यानम्[2] =तहांसेउस(केवलसमुद्घात)केलगताही,अत्यन्तनिकट समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानको
आरभते।,प्राण-अपान-प्रचार-सर्व-काय-वाग्- =प्रारम्भ करता है, श्वासोश्वासके प्रवर्तनसे सब काय वचन
मनोयोग-सर्व-प्रदेश-परिस्पन्दक्रिया-व्यापारत्वात्[3] =मन योगका तथा समस्त प्रदेशोंका हलन चलन रूप क्रियाके व्यापार पनासे
सम्-उच्छिन्नम्[1]समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिः[1]इति*उच्यते T=अत्यन्त वा पूर्णरूपसे दूर है सो समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति शुक्लध्यान ऐसाकहागयाहै

तस्मिन्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि ध्याने सर्वबन्धास्रवनिरोधः सर्वाशेषकर्मसातनसामर्थ्योपपत्तेरयोगिनः केवलिनः सम्पूर्णयथाख्यातचारित्रज्ञानदर्शनं सर्वसंसारदुःखजालपरिष्वङ्गोच्छेदजननं साक्षान्मोक्षकारणमुपजायतेऽस पुनरयोगकेवलीभगवांस्तदाध्यानातिशयाग्निनिर्दग्धसर्वमलकलङ्कबन्धनो निरस्तकिट्टधातुपाषाणजात्यकनकवल्लब्धात्मा परिनिर्वाति॥ तदेतद् द्विविधं तपोऽभिनवकर्मास्रवनिरोधहेतुत्वात्संवरकारणं, प्राक्तनकर्मरजोविधूननिमित्तत्वान्निर्जराहेतुरपि भवति॥अत्राह सम्यग्दृष्टयःकिं सर्वे समनिर्जरा आहोस्वित्कश्चिदस्तिप्रतिविशेषइत्यत्रोच्यते—

तस्मिन्[7]''समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि[7]''ध्याने[7]॥ =उस समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यानमें
सर्व-बन्ध-आस्रव-निरोधः[1]सर्व-अशेष-कर्म-सातन- =सर्वबन्ध तथा सर्व आस्रवका निरोधहोताहै और समस्तअवशेषकर्मकीविनाश(=सातन)
सामर्थ्य-उपपत्तेः[4]''अयोगिनः[4]केवलिनः[4]''सम्पूर्ण- =शक्तिके उत्पत्तिहोनेसे अयोगकेवलीके परिपूर्ण-
यथाख्यातचारित्र-ज्ञान-दर्शनं[1]''सर्व-संसार-दुःख- =यथाख्यातचारित्र ज्ञानदर्शन हुआ है, (वो ज्ञानदर्शनचारित्र)सब संसारके दुःखके
जालपरिष्वङ्ग-उच्छेद-जननं[1]''साक्षात्*मोक्ष-कारणम्[2]''=जालके सम्बन्धका नाश करनेवाला है, साक्षात् मोक्षके कारणको
उपजायतेऽसः[1]पुनः*अयोगकेवली[1]भगवान्[1]तदा* =उपजाता है, बहुरि सो अयोगकेवली भगवान् तिस अवसरमें वा तिसकालमें
ध्यान-अतिशय-अग्नि-निर्दग्ध-सर्व-मल- =(समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति)ध्यानके प्रभावरूपी अग्निकरि दाधकियेहैंसबकर्मरूपीमल
कलङ्क-बन्धनः[1]निरस्त-किट्ट-धातु-पाषाण-जात्य- =कलंकका बन्धनजाने,नष्ट भएहैंकीट-धातुऔरपाषाण जिससे ऐसे जातिवान्वाश्रेष्ठ
कनकवत्*लब्ध-आत्मा[1]परिनिर्वाति T ॥ =स्वर्णके सदृश आत्मा[की शुद्धता]प्राप्तकरि निर्वाणको प्राप्त होता है,
तद्[1]''एतद्[1]''द्विविधम्[1]''तपस्-अभिनव- =सो [=तद्] यह [=एतद्] दो [बाह्य तथा अंतरंग] प्रकार तप नवीन
कर्म-आस्रव-निरोध-हेतुत्वात्[1]''संवर-कारणं[1]''प्राक्तन- =कर्मके आगमनके निरोधका कारण होनेसे संवरका निमित्त होता है, पहिले
कर्म-रजः-विधूनन-निमित्तत्वात्[1]''निर्जरा-हेतु-अपि*भवति=कर्मरूपी धूलिके उड़ावनेके हेतुतासे निर्जराका कारण भी (=अपि)होता है।
अत्र-आह-सम्यग्दृष्टयः[3]किंसर्वे[3]समनिर्जराः[3]आहोस्वित्* =यहां प्रश्न है कि क्या सब सम्यग्दृष्टि समान निर्जरा वाले हैं अथवा
कश्चित्*अस्तिप्रतिविशेषः[1]इति*अत्र*उच्यते T ॥ =असाधारण भेद है, ऐसा प्रश्न (होनेपर) यहां (अग्रिमसूत्र) कहाजाता है कि

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः॥४५॥

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोह-जिनाःक्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः॥४५॥(इस सूत्रका दे नों समाजोंमें पाठ तथा अर्थ एकसाहै)

=सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरत-अनन्तवियोजक-दर्शनमोहक्षपक-उपशमक-उपशान्तमोह-क्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशः असंख्येयगुण-निर्जराःभवन्ति॥

सूत्रार्थ: सम्यग्दृष्टि-श्रावक-=अविरतसम्यग्दृष्टिकें अर्थात् चौथे गुणस्थानवर्तीकें, देशव्रतीकें अथवा पंचमगुणस्थानवर्तीकें अर्थात् श्रावककें,

विरत-अनन्तवियोजक- =सकलसंयमी महाव्रतीमुनिकें, अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजनकरनेवालेकें अर्थात् अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबंधीमान, अनन्तानुबंधीमाया, अनन्तानुबन्धी लोभ जिनका अविरतसम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान, देशविरत पांचवा गुणस्थान, प्रमत्त विरत वा प्रमत्त संयत छठवां गुणस्थान, और अप्रमत्तविरत वा अप्रमत्त संयत सातवां गुणस्थानोंमेंही विसंयोजन वा घात होता है ऐसा घात करनेवालेकें[अर्थप्रकाशिका सूत्र ४५]

दर्शनमोहक्षपक- =दर्शनमोहनीय कर्मकी तीन मिथ्यात्व, मिश्रमिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका (जिनकी क्षपणाकरणत्रयकी सामर्थ्यसे केवली वा श्रुतकेवलीके निकट मनुष्यहीकें अविरत-देशविरत-प्रमत्तविरत-अप्रमत्त विरत गुणस्थानोंमें होती है) छपावनेवाले अथवा नष्टकरनेवालेकें

उपशमक- =अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण- सूक्ष्मसाम्पराय तीन गुणस्थानीय कषायके उपशम करनेवालेकें अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणीकोचढ़नेको सन्मुख होय तब चारित्र मोहको उक्ततीन गुणस्थानोंमें उपशम करनेवालेकें

उपशान्तमोह- =उपशान्तमोह ग्यारवां गुणस्थानवर्तीकें अर्थात् समस्तचारित्रमोहनीयकर्मके उपशमकरनेवाले, उपशान्तकषायकके

क्षपक- =अपूर्वकरण आठवां, अनिवृत्तिकरण नववां, सूक्ष्मसाम्परायदशवां गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणी चढ़नेवाले मुनिकें

क्षीणमोह- =क्षीणमोह बारहवां गुणस्थानवर्तीकें अर्थात् समस्त मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंको नाश करनेवालेकें

जिनाः॥ =जिनेन्द्र भगवान्-केवलीकें अर्थात् समस्त घातिया कर्म ईन्धनको एकत्ववितर्कअवीचार द्वितीय शुक्लध्यानरूपी

त एते दश सम्यग्दृष्ट्यादयः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः॥ तद्यथा-भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी पर्याप्तकः पूर्वोक्तकाललब्ध्यादिसहायः परिणामविशुद्धया वर्द्धमानः क्रमेणापूर्वकरणादिसोपान-पंक्त्योत्प्लवमानो बहुतरकर्मनिर्जरो भवति। स एव पुनः प्रथमसम्यक्त्वप्राप्ति निमित्तसन्निधाने सति सम्यग्दृष्टिर्भवन्नसंख्येयगुणनिर्जरो भवति।

क्रमशः* — अग्निद्वारा दग्धकरनेवाले जिनेन्द्र भगवान् केवलज्ञानीके,
=अनुक्रमसे(अर्थात् एकसे दूसरेके दूसरेसे तीसरेके इत्यादि जिनेन्द्र भगवान् तक दश स्थानोंमें आयुकर्मके अतिरिक्त प्रति समय अवशेष सातकर्मोंका)

असंख्येयगुण-निर्जराः भवन्ति T ॥ — =असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं (जैसे अविरत सम्यग्दृष्टिसे असंख्यातगुणी निर्जरा देशविरत पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकके और उक्त पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकसे असंख्यातगुणी निजरा समयसमयप्रति प्रमत्तविरतमुनिके इत्यादि ऐसे प्रत्येकके उत्तरत्र बढ़ती हुई जिनेन्द्र भगवान् तक दशस्थानोंमें असंख्यातगुणी निर्जरा होती है)॥

वृत्त्यनुवादः—ते एते दश सम्यग्दृष्टि-आदयः — =(संस्कृत वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) वे इतने दश सम्यग्दृष्टि आदिक

क्रमशः*असंख्येय-गुण-निर्जराः ॥ — =अनुक्रमसे असंख्यातगुणी निर्जरावाले होते हैं अर्थात् अविरतसम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थानवर्ती से जिनेन्द्र भगवान् केवली पर्यन्त इन दशोंके एकसेदूसरेके और दूसरेसे तीसरे इत्यादिकके(आयुकर्मके अतिरिक्त वा आयुकर्मको छोड़कर प्रति समय अवशेष सात कर्मोंकी) प्रत्येकके उत्तरत्र बढ़ती हुई असंख्यातगुणी निर्जरा क्रमानुसार होती है,

तद्यथा*भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी पर्याप्तकः पूर्व- =जैसे (=तद्यथा) भव्य पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तक पहिले
उक्त-काल-लब्धिआदि-सहायः परिणाम-विशुद्धया ॥=वर्णित काललब्धि आदिक हैं सहाय जिसके परिणामकी निर्मलताकरि
वर्द्धमानः क्रमेण अपूर्वकरण-आदि-सोपान-पंक्ति-=बढ़ताहुआ अनुक्रमसे अपूर्वकरण आदिकके परिणामरूप सीढ़ीकी[=सोपान]पंक्तिद्वारा
उत्प्लवमानः बहुतर-कर्म-निर्जरः भवति;पुनः*सः=चढ़तेहुयेके अधिकतर कर्मोंकी निर्जरा होती है, बहुरि सो [जीव]
एव*प्रथम-सम्यक्त्व-प्राप्ति-निमित्त-सन्निधाने सति=ही [=एव] प्रथमसम्यक्त्वकी लब्धिके कारण निकट होते संते
सम्यग्दृष्टिः भवन् असंख्येय-गुण-निर्जरः भवति।=सम्यग्दृष्टि होकर असंख्यातगुण निर्जरावान् होता है,

स एव पुनश्चारित्रमोहकर्मविकल्पाप्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमनिमित्तपरिणामप्राप्तिकाले विशुद्धिप्रकर्षयोगात् श्रावको भवन् ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति । स एव पुनः प्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमकारणपरिणामविशुद्धियोगाद्विरतव्यपदेशभाक् सन् ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति । स एव पुनरनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभानां विसंयोजनपरो भवति यदा तदा परिणामविशुद्धिप्रकर्षयोगात्ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनर्दर्शनमोहप्रकृतित्रयतृणनिचयं निर्दिधक्षन् परिणामविशुद्ध्यतिशययोगाद्–

सः[1]एव*पुनः*चारित्र-मोह-कर्म-विकल्प-अप्रत्याख्यान-आवरण-क्षयोपशम-निमित्त-परिणाम-प्राप्ति-काले[2]विशुद्धि-प्रकर्ष-योगात्[3]श्रावकः[4]भवन्[5]ततः*असंख्येय-गुण-निर्जरः[6]भवति।सः[7]एव*पुनः*प्रत्याख्यान-आवरण-क्षयोपशम-कारण-परिणाम-विशुद्धि-योगात्[8]विरत-व्यपदेश-भाज्[9]सन्[10]ततः*असंख्येय-गुण-निर्जरः[11]भवति।सः[12]एव*पुनर*अनन्तानुबन्धिन्-क्रोध-मान-माया-लोभानां[13][१]वियोजनपरः[14]भवतियदा*तदा*परिणामविशुद्धि-प्रकर्ष-योगात्[15]ततः*असंख्येय-गुण-निर्जरः[16]भवति।सः[17]एव*पुनः*दर्शनमोह-प्रकृतित्रय-तृण-निचयम्[18]निर्दिधक्षन्[19]परिणाम-विशुद्धि-अतिशय-योगात्[20]

=और सो(चेतन)ही चारित्र मोहनीयकर्मकेभेदअप्रत्याख्यानावरणीय(क्रोधादि)के =क्षयोपशमकारणक परिणामोंकी प्राप्तिके कालविषैं अतिशय विशुद्धिताके =संयोगसे श्रावक होता हुआ उस (सम्यग्दृष्टि)से असंख्येयगुणी =निर्जरावाला होता है, बहुरि सो (जीव) ह प्रत्याख्यानावरणीय(क्रोधादि)के =क्षयोपशम–निमित्तक भावोंकी निर्मलताके योगसे विरत अर्थात् प्रमत्तसंयमी =नामका धारक होता संता उस (श्रावक)से असंख्येयगुण =निर्जरावाला होता है, फिर सो [जीव] ही (=एव) अनन्तानुबन्धी– =क्रोध–मान– माया–लोभके घात वा विसंयोजनमें तत्पर जब (=यदा)(अविरत–देशविरत–प्रमत्तसंयत–अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमेंवा इनमेंसेकिन्हीं गुणस्थानोंमें) =होताहै तब(=तदा)परिणामकी निर्मलताके अतिशय योगसेउस(अप्रमत्तविरत)से =असंख्येयगुणी निर्जरावान् होता है, फिर सो (जीव) ही(=एव)दर्शनमोहसे =तीन (मिथ्यात्व-मिश्रमिथ्यात्व-सम्यग्प्रकृतिमिथ्यात्व) प्रकृतिरूपी तिनकोंके =समूहको दग्ध करताहुआ परिणामकी पवित्रता वा निर्मलताके प्रकर्षयोगसे

(१)"अविरतादिचतुषु" इत्यधिकःपाठस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥ अविरत-आदि-चतुर्षु इति अधिकः = अविरत आदि चार(गुणस्थानों)में ऐसा अधिक पाठः ताल-पत्र-पुस्तके वर्तते = पाठ ताड़के पत्तोंपरलिखीहुईपुस्तकमेंविद्यमानहै।

दर्शनमोहक्षपकव्यपदेशभाक् तेष्वेव पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति । एवं सः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा श्रेण्यारोहणाभिमुखश्चारित्रमोहोपशमं प्रति व्याप्रियमाणो विशुद्धिप्रकर्षयोगादुपशमकव्यपदेशमनुभवन् पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति । स एव पुनरशेषचारित्रमोहोपशमनिमित्तसन्निधाने परिप्राप्तोपशान्तकषायव्यपदेशः पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति स एव पुनश्चारित्रमोहक्षपणं प्रत्यभिमुखःपरिणामविशुद्ध्या वर्द्धमानः क्षपकव्यपदेशमनुभवन्पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति।स यदा निःशेषचारित्रमोहक्षपणकारणपरिणामाभिमुखः क्षीणकषायव्यपदेशमास्कन्दन्पूर्वोक्तात्

दर्शनमोहक्षपक-व्यपदेशभाज्[1]तेषु[2]
एव*पूर्व-उक्तात्[3]असंख्येय-गुण-निर्जरः[4]भवतिT,
एवम्*सः[1]क्षायिक-सम्यग्दृष्टिः[2]भूत्वा÷श्रेण्य-आरोहण-
अभिमुखः[3]चारित्रमोह-उपशमे[4]प्रति*व्याप्रियमाणः[5]
विशुद्धि-प्रकर्ष-योगात्[6]उपशमक-व्यपदेशम्[7]अनुभवन्[8]
पूर्व-उक्तात्[9]असंख्येय-गुण-निर्जरः[10]भवतिT ।
सः[1]एव*पुनः*अशेष-चारित्र-मोह-उपशमनिमित्त-
सन्निधाने[2]परिप्राप्त-उपशान्तकषाय-व्यपदेशः[3]पूर्व-
उक्तात्[4]असंख्येय-गुण-निर्जरः[5]भवतिT । सः[1]एव*पुनः*
चारित्रमोह-क्षपणं[2]प्रति*अभिमुखः[3]परिणाम-
विशुद्ध्या[4]वर्द्धमानः[5]क्षपक-व्यपदेशम्[6]अनुभवन्[7]
पूर्व-उक्तात्[8]असंख्येय-गुण-निर्जरःभवतिT ।
सः[1]यदा*निःशेष-चारित्र-मोह-क्षपण-कारण-परिणाम-
अभिमुखः[2]क्षीणकषाय-व्यपदेशम्[3]आसकन्दन्[4]पूर्व*उक्तात्[5]

=दर्शनमोह क्षपकनामका धारक तिन[उक्त तीन प्रकृतियोंके नाशकरने] में
=ही पहिले भाषित[अप्रमत्त विरत] से असंख्यातगुणा निर्जरावान् होता है,
=इस प्रकार सो[जीव] क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणीके चढ़नेके
=सन्मुख हो चारित्र मोहनीयकर्मके उपशमावे प्रति व्यापाररूप होताहुआ
=[परिणामोंकी]निर्मलताके अतिशय योगसे उपशम करनेवाला नाम पावताहुआ
=पहिले कथित[दर्शनमोह क्षपक]से असंख्येयगुण निर्जरावान् होता है
=बहुरि सो[जीव]ही समस्त चारित्रमोहनीय कर्मके उपशम करनेके हेतुके
=निकट होनेपर उपशान्तकषाय नामको प्राप्तहोकर पहिले
=वर्णित[उपशमक]से असंख्येयगुण निर्जरावान् होता है, सो[जीव]ही पुनि
=चारित्र मोहनीयकर्मके क्षपणके लिये अर्थात् नाशकरनेकेलिये सन्मुखहो भावोंकी
=निर्मलता पवित्रताकरि वृद्धिशील वा बढ़ाहुआ क्षपक नामको अनुभवकरताहुआ
=पहिले वर्णित (उपशान्तकषाय)से असंख्येयगुण निर्जरावान् होताहै,
=सो[जीव]जब समस्त चारित्र मोहनीय कर्मके विनाशके कारणरूप परिणामके
=सन्मुख हो क्षीणकषाय अभिधानको प्राप्त होकर पूर्व वर्णित(क्षपक)से

असंख्येयगुणनिर्जरो भवति स एव द्वितीयशुक्लध्यानानलनिर्दग्धघातिकर्मनिचयः सन् जिनव्यपदेशभाक् पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति ॥ आह सम्यग्दर्शनसन्निधानेऽपि यद्यसंख्येयगुणनिर्जरत्वात्परस्परतो न साम्यमेषां, किं तर्हि श्रावकवदमी विरतादयो गुणभेदान्न निर्ग्रन्थतामर्हन्तीत्युच्यते ॥ नैतदेवम् । कुतः ?। यस्माद्गुणभेदादन्योऽन्यविशेषेऽपि नैगमादिनयव्यापारात्सर्वेऽपि हि भवन्ति—

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६॥

असंख्येय-गुण-निर्जराः[1]भवति T सः[1]एव*	=असंख्येयगुण निर्जरावाला होता है, सो(जीव)ही(क्षीणकषायके व्यपदेशवाला)
द्वितीय-शुक्लध्यान-अनल-	=दूसरा (एकत्ववितर्क अवीचार) शुक्लध्यानरूपी अग्नि द्वारा
निर्दग्ध-घातिकर्म-निचयः[1]	=[घार,ज्ञान-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तराय]घातियाकर्मोंके समूहको विनाशकरता
सन्[1]जिन-व्यपदेशभाक्[1]पूर्व-उक्तात्[1]	=संता (=सन्) जिन नामको धारक पूर्वभाषित [क्षीणकषाय वा क्षीणमोह] से
असंख्येय-गुण-निर्जराः[1]भवति T ॥ आह T	=असंख्यातगुणा निर्जरावान्' होता है ॥ प्रश्न करता है कि
सम्यग्दर्शन-सन्निधाने[1]'''अपि*यदि*असंख्येय-गुण-निर्जरत्वात्[1]'''परस्परतः*न*साम्यम्[1]'''एषाम्[1]किं*तर्हि*श्रावकवत्*	=सम्यग्दर्शनके सामीप्य वा निकट होनेपर भी यदि असंख्येयगुण कर्मोंकीनिर्जरा =होनेसे परस्परकरि समानता न हुई तो [=तर्हि] क्या श्रावकके समान
अमी[1]विरत-आदयः[1]	=ये विरत आदिक(अर्थात् प्रमत्तविरत वा प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तविरत इत्यादि)
गुण-भेदात्[1]न*निर्ग्रन्थताम्[1]'''अर्हन्ति T,	=गुणोंमें अन्तर (एक दूसरेके) होने [के निमित्त]से निर्ग्रन्थता के योग्य नहीं है
इति*उच्यतेTन*एतद्[1]'''एवम्*कुतः* ?	=ऐसा(सन्देह होनेपर)कहाजाता है कि ऐसे(=एवम्)यह नहीं है[प्रश्न क्योंकर ?]
यस्मात्*गुण-भेदात्[1]अन्योऽन्य-विशेषे[1]	=(उत्तर) इस कारणसे कि गुणके भेदसे परस्पर विशेष होनेपर भी
अपि*नैगम-आदि-नय-व्यापारात्[1]सर्वे[1]अपि* हि*भवन्ति-	=नैगमादिक नयके व्यवहारसे सबही (=अपि)(=संयमीमुनि-निर्ग्रन्थ)ही हैं [जैसे]

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः॥४६॥इस सूत्रका दोनोंसमाजोंमें एक पाठ है।

=पुलाकनिर्ग्रन्थः बकुशनिर्ग्रन्थः कुशीलनिर्ग्रन्थःनिर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थःस्नातकनिर्ग्रन्थः च भवन्ति।

सूत्रार्थः—पुलाकनिर्ग्रन्थः[१],=[सूत्रका अर्थ] जैसे पाल वा पराल संयुक्त धानको वा शालिको (अधम वस्तु घास वा परालके मेलसे) पुलाक कहते हैंतैसे उत्तरगुणोंके चिन्तवन वा विचार रहित तथा किसीकाल वा क्षेत्रमें मूलगुणमें विराधना स्वरूप पराल सहित तथा अल्प विशुद्धता (=अ-विशुद्धता) युक्त सम्यग्दृष्टि निष्परिग्रही(=निर्ग्रन्थ)कोपुलाक निर्ग्रन्थ कहते हैं,

बकुशनिर्ग्रन्थः[२], =वह साधु है जो निष्परिग्रह होनेमें उद्यमी रहै, मूलगुणकरि परिपूर्ण हो, शरीर उपकरण (जैसे पीछी कमण्डल शास्त्र आदि)की सुन्दरताका अनुरागी हो,मुनिरूपी परिवारकरि संयुक्त हो ऐसे मोह वा अनुमोदरूपी रंगविरंग [=बकुश]वा कर्बुरित(=बकुश आचरण)(अर्थात् उज्वल वा निर्मलमें किंचित् मलिनआचरण) करि संयुक्त हो,

कुशीलनिर्ग्रन्थः[३], =प्रति सेवना कुशील निर्ग्रन्थ (२) कषाय कुशील निर्ग्रन्थ दो प्रकार हैं अर्थात् (१) प्रतिसेवना कुशील जो (शरीर—पीछी—कमण्डल—पुस्तक—उसके बन्धन और शिष्यरूपी) परिग्रहसे अविरक्त दोनों मूलगुण तथा उत्तरगुण करि परिपूर्ण कथंचित् उत्तरगुणके विराधना करनेवाला होता है (२) कषायकुशील=वह है जिसने संज्वलन-कषायके अतिरिक्त अन्य कषायोंको जीत लिया हो,

(१)निर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थः[४]च*,=वह निर्ग्रन्थ निस्परिग्रही (=निर्ग्रन्थ) है जिसके मोह कर्मका अभाव हो और जैसे जलमें दण्ड ताड़नेसे लहरि उत्पन्न होती है और शीघ्र ही विलयमान हो जाती है तैसे अन्य अवशेष कर्मोंका उदयमंद हो जो (=उदय) अप्रगट है और अनुभव गोचर नहीं है, और (=च)

(२)स्नातकनिर्ग्रन्थः[५]भवन्ति,=वह निर्ग्रन्थ है जो परिपूर्णज्ञानी(=स्नातक)निष्परिग्रही मुनि हो अर्थात् जिसके चार(ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय अन्तराय) घातिया कर्म अत्यन्त नाशको प्राप्त हुये हों ऐसे तेरहवां गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली सर्वज्ञ वीतराग जिन तथा चौदहवां गुणस्थानका धारक अयोगकेवली सर्वज्ञ वीतराग से तात्पर्य है ॥

(१)निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थः इसमें पहिला निर्ग्रन्थ शब्द जातिवाचक नाम है अर्थात् निर्ग्रन्थ जाति(उपशान्तकषाय ग्यारहवांगुणस्थानवर्ती तथा क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थानवर्ती)समस्त मुनियोंका द्योतक है और दूसरा निर्ग्रन्थः शब्दका अर्थ निष्परिग्रही है, निर्ग्रन्थ जातिके मुनियोंका विशेषण है अर्थात् वे निर्ग्रन्थ जातिके मुनि(=प्रथम शब्द निर्ग्रन्थ)जो परिग्रह रहित हैं वा निर्ग्रन्थता युक्त हैं(=दूसरा निर्ग्रन्थ)॥(२)स्नातकः—स्नातंवेदसमाप्तौ ज्ञानमैपूर्ण्ये होजाय अर्थात् सर्वज्ञ होजाय उससे स्नातक शब्दसे प्रयोजन है॥'स्नातक'शब्दकी व्युत्पत्ति पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ४३८में ऐसे है स्नातक(पु०) स्ना+भावेक । स्नानं अस्य, अस्ति कन् वेद पढ़नेके अनन्तर गृहस्थाश्रममें लौटनेके लिये अंगभूत स्नान (न्हाना) करने हारा ॥ गुरुके पास विद्यासमाप्त करके घरमें आनेके लिये स्नान करने वाला ॥"इससे भी यही भाव झलकता है कि जैसे विद्यार्थी विद्या समाप्त करनेके पश्चात् घरके लिये उपस्थित होता है वैसे ही मुनि परिपूर्ण ज्ञानको प्राप्तकर मोक्षरूपी घरको जानेके लिये उपस्थित होता है ॥

उत्तरगुणभावनाऽपेत मनसो व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवन्तो ऽविशुद्धाः पुलाकसादृश्यात्पुलाका इत्युच्यन्ते । नैर्ग्रन्थ्यं प्रतिस्थिता अखण्डितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनोऽविवक्तपरिवारा मोहशबलयुक्ता बकुशाः ।

(क)उत्तर-गुण-भावना-अपेत-मनसः[ष]'व्रतेषु[स]''अपि"=उत्तरगुणका चिन्तवन (=भावना)करि रहित हैं मन जिनके व्रतोंमें वा मूलगुणोंमें
क्वचित्*कदाचित्*परिपूर्णतां[द्वि]''अपरिप्राप्नुवन्तः[प्र]' =भी कहीं (=क्वचित्) किसीकालमें (=कदाचित्) निष्पन्नता वा समाप्तताको नहीं पावनेवाला
(१)अविशुद्धाः[प्र]'पुलाक-सादृश्यात्[प]''पुलाकाः[प्र]' इति*उच्यते T ।
=ईषत् (वा थोड़ी वा अल्प)विशुद्धताकरि सहित, पराल(प्याल वा घास)सहित शालि वा धानकी =समानता वा तुल्यता (के हेतु) से (=सादृश्यात्), पुलाक (निर्ग्रन्थ)
=ऐसे कहेजाते हैं अर्थात् जैसे पलाल वा न्यार संयुक्त धानको पुलाक कहते हैं तैसे उत्तरगुणके चिन्तवन वा विचार रहित तथा किसी देश वा कालमें मूल गुणमें विराधना मलरूप पराल सहित तथा अल्प विशुद्धता सहित सम्यग्दृष्टि निष्परिग्रहीको (=निर्ग्रन्थ) पुलाक कहते हैं

(ख)नैर्ग्रन्थ्यम्[व]'''प्रति*स्थिताः[प्र]' =(बहिरंग तथा अन्तररूप)निष्परिग्रहता वा निर्ग्रन्थताके प्रति उद्यमी, उद्योगी वा परिश्रमी हैं अर्थात् परिग्रहके अभावके लिये तो निरन्तर उद्यमी हैं [और]
अखण्डित-व्रताः[प्र]'शरीर-उपकरण-विभूषा-अनुवर्तिनः[प्र]'अविविक्त-परिवाराः[प्र]'मोह-शबल-युक्ताः[प्र]' बकुशाः[प्र]'
=अदूषित व्रती हैं अर्थात् मूलगुण खंडितनहीं करते हैं, शरीर तथा =प्रधान साधन वा सामिग्री(जैसे कमण्डलपिच्छिका-पुस्तक तिसकेपथापरे और बन्धन इत्यादि)की =शोभा वा सुन्दरताके अनुरागी (संघके मुनि शिष्य-उपाध्याय-आचार्यरूपी)परिवारकरि संयुक्त =हर्ष वा अनुमोदरूपी (=मोह) चितैलावर्ण वा रंगविरंगवर्ण(=शबलमें किंचित् मलिन)आचरणवाले =सो बकुश [निर्ग्रन्थ मुनि] हैं अर्थात् वीतरागता सरागतारूपी चित्रलावर्ण वा चितकबरावर्ण आचरणकरि संयुक्त सो बकुश(निर्ग्रन्थ साधु) हैं भावार्थ ऐसा है जैसे चित्रवर्ण,कर्बुरवर्ण, वा कर्बुरित वस्तु (शबल वस्तु) भांति भांतिके उज्वल मलिन रंगोंकरि संयुक्त होती हैं तैसे ही

(१)अविशुद्धाः-तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ५०३में अविशुद्धका अर्थ विशुद्धता रहित नहीं किया, वरन् कषायशब्दमें जैसे 'अ'ईषद्-अल्प वा थोड़े के अर्थमें आया है तैसे अविशुद्धाःके अकारको ईषद् अर्थमें लिया है "ईषद्विशुद्धिपुलाकसादृश्यात्" श्लोकवार्तिक ॥"स्यात्पुलाकस्तुच्छधान्ये" यह अमरकोश वर्ग २३वां (नानार्थवर्ग)के पांचवें श्लोकसे लिया है-पुलाक (पु०) =तुच्छधान्य अर्थात् भूसीसहित धानके है ॥

शवलपर्यायवाची बकुशशब्दः ॥ कुशीला द्विविधाः । प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीला इति ॥ अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथञ्चिदुत्तरगुणविरोधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः । वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतन्त्राः कषायकुशीलाः ॥ उदकदण्डराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्ध्वं मुहूर्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रन्थाः ॥

शवल-पर्यायवाची[१] बकुशशब्दः[१], कुशीलाः[१] द्विविधाः[१], प्रतिसेवना-कुशीलाः[१] कषायकुशीलाः[१] इति*, अविविक्त (१) परिग्रहाः[१] परिपूर्ण-उभयाः[१] कथञ्चित्* उत्तर-गुण-विरोधनः[१] प्रतिसेवना-कुशीलाः[१], वशीकृत-अन्य-कषाय-उदयाः[१] संज्वलनमात्र-तन्त्राः[१] कषाय-कुशीलाः[१], (२) उदक-दण्ड-राजिवत्* अनभिव्यक्त-उदय-कर्माणः[१] ऊर्ध्वं[१] मुहूर्तात्[१] उद्भिद्यमान-केवलज्ञानदर्शनभाजः[१] निर्ग्रन्थाः[१]

=शवल (शब्द)का एकार्थवाची वा समानार्थक बकुश शब्द है, कुशील (निर्ग्रन्थमुनि)
=दो प्रकार प्रतिसेवनाकुशील (निर्ग्रन्थ) कषायकुशील (निर्ग्रन्थ)
=ऐसेहैं(शरीर-पीछी-कमण्डल-पुस्तक शिष्य-उपाध्याय-आचार्यादि संघरूप)परिग्रहसेअविरक्त
=दोनों(मूलगुण तथा उत्तरगुण)करि निष्पन्न वा परिपूर्ण किसी प्रकारसे(=कथञ्चित्)
=उत्तरगुणके विराधनेवाले हैं [सो] प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थमुनि) हैं,
=जीत लिये हैं अन्य कषायोंके उदय जिनने अर्थात् अन्यकषायके उदयको वश करनेवाले हों
=और केवल संज्वलन कषायके आधीन हों अर्थात् जिन्होंने संज्वलनकषायके अतिरिक्त अन्य समस्त कषायोंको जीत लिया हो(और जिनके"संज्वलनकषायके स्थानक जिनकरि प्रमाद व्यक्त होय ऐसा जाके उदय न होय"-जय०वचनिका)वे कषायकुशील (निर्ग्रन्थ मुनि)हैं
=जलदण्डद्वारा रेखा वा लहरिके (=राजि) सदृश अव्यक्त वा अप्रगट है (अवशेष) कर्मोंका उदय जिनके [अर्थात् जिनके मोह कर्मके उदयका अभाव हो और जैसे जलमें दण्ड ताड़नेसे लहरि उत्पन्न होती है और शीघ्रही विलयमान होजातीहै तैसे अन्य अवशेष कर्मोंका उदय मंद और अव्यक्त होताहै तथा अनुभवमें नहीं आता है और आत्मा के प्रदेशोंका तथा उपयोगका चलना मंदर होता है जो व्यक्त अनुभव गोचर नहीं है]
=(और)मुहूर्तसे ऊपर प्रगट होनेवाले (=उद्भिद्यमान) केवलज्ञानदर्शनके जो धारक हों
=वे निर्ग्रन्थ(निर्ग्रन्थमुनि)हैं अर्थात् जिनके मुहूर्तके पश्चात् केवलज्ञानदर्शन होंगे वे हैं॥

(१) यहां परिग्रह शब्दका अर्थ गृहत्यवत् नहीं लेना चाहिये, मुनियोंके कमण्डल-पीछी-पुस्तकका अवलम्बन है, गुरु शिष्यपनाका सम्बन्ध है सो यही परिग्रह है, इससे पृथक्पना नहीं होय, इससे परिग्रह सहित ही कहिये (२) उपशान्तकषाय वर्ती तथा क्षीणकषायवर्ती मुनियोंसे प्रयोजन है॥

प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिनो द्विविधाः स्नातकाः ॥ त एते पञ्चापि निर्ग्रन्थाः ॥ चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षाप्रकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रन्था इत्युच्यन्ते ॥ तेषां पुलाकादीनां भूयोऽपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

सँयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतःसाध्याः॥४७॥

प्रक्षीण–घाति–कर्माणः[१]केवलिनः[२]द्विविधाः[३] स्नातकाः[१],ते[२]एते[३]पञ्च[४]अपि*निर्ग्रन्थाः[५],

=(ज्ञानदर्शनावरण मोहअन्तराय)घातियाकर्मों केअत्यन्त नाशकरनेवाले केवली दो प्रकार =से। स्नातक (निर्ग्रन्थ) हैं, वे (=ते) इतरे (=एते) पांचों भी निष्परिग्रही निर्ग्रन्थहैं, भावार्थ यद्यपि पूर्वोक्त पांच प्रकारके मुनि वस्त्र,आवरण, आयुध,गृह,कंटक,धन धान्यादिके रहितपनासे सर्व निर्ग्रन्थही हैं तथापि मोहनीयकर्मके सद्भावसे समस्तमुनि निर्ग्रन्थ नहीं है व्यवहारकरि निर्ग्रन्थ हैं परमार्थकी अपेक्षासे तो समस्तमोहनीयकर्मका नाश होते संते क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थानवर्ती ही निर्ग्रन्थ वा निष्परिग्रही है और घार घातियाकर्मोंके नाश करने पर सयोगकेवली तथा अयोगकेवली स्नातक निर्ग्रन्थ होते हैं ॥

चारित्र-परिणामस्य[१]प्रकर्ष-अप्रकर्ष–भेदे[२]सति[३]अपि*=चारित्र परिणामकी वृद्धि हानिके भेद होनेपर भी
नैगम–संग्रह–आदि–नय-अपेक्षया[४]सर्वे[१]अपि*ते[२] =नैगम संग्रह आदिक नयोंकी अपेक्षाकरि सब ही वे
निर्ग्रन्थाः[३]इति*उच्यन्तेT।तेषां[४]पुलाकादीनां[५]भूयस्*=निर्ग्रन्थ हैं ऐसे कहे गये हैं, तिन पुलाकादिककी फिर (=भूयस्)
अपि*विशेष*प्रतिपत्ति–अर्थम्[१]आह T ॥ =भी विशेष 'प्रवृत्ति वा प्राप्तिके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

सं यम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ–लिङ्ग--लेश्या-उपपाद-स्थान-विकल्पतःपुलाकादयः साध्याः भवन्ति॥

सूत्रार्थः—संयम–श्रुत–प्रतिसेवना–तीर्थ–लिङ्ग– =संयम,श्रुत वा श्रुतज्ञान,प्रतिसेवना वा विराधना,तीर्थ वा हितशासनकाल,लिङ्गवा चिन्ह,
लेश्या–उपपाद–स्थान–विकल्पतः* =लेश्या, (मृत्युकेपीछे) उत्पत्ति वा जन्म और [संयमके]स्थान भेदसे (=विकल्पतः)
पुलाक–आदयः[१]साध्याः[२]भवन्ति T ॥४७॥ =पुलाकादिमुनि साधने योग्य हैं अर्थात उक्त आठ अनुयोगसे पुलाकादिके विशेष भेदहैं

त एते पुलाकादयः संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैः साध्या व्याख्येयाः॥तद्यथा-पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्वर्तन्ते। कषायकुशीला द्वयोः संयमयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायपोः पूर्वयोश्च। निर्ग्रन्थस्नातका एकस्मिन्नेवयथाख्यात संयमे सन्ति॥श्रुतं-पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराःकषायकुशीलाः

चत्यनुवादः—ते॥१॥एते॥१॥पुलाक-आदयः॥३॥संयम-आदिभिः॥३॥अष्टाभिः॥३॥अनुयोगैः॥३॥साध्याः॥१॥व्याख्येयाः॥१॥

=वे (=ते) इतने पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक (मुनि) संयम, =श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद, (=संयमके) स्थान आठ कथनोंकरि =साधनेयोग्य हैं सिद्ध कियेजानेयोग्य हैं, वा व्याख्यान कियेजाने योग्य हैं (=व्याख्येय)

तद्यथा*—पुलाक-बकुश-प्रतिसेवनाकुशीलाः॥१॥द्वयोः॥२॥संयमयोः॥२॥सामायिक-च्छेदोपस्थापनयोः॥२॥वर्तन्ते T, कषायकुशीलाः॥१॥द्वयोः॥२॥संयमयोः॥२॥परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्परायोः॥२॥(१)पूर्वयोः॥२॥च*

=जैसे पुलाक[निर्ग्रन्थमुनि]बकुश[निर्ग्रन्थमुनि]प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थ) साधु दो =संयम सामायिक तथा छेदोपस्थापनमें प्रवर्तते हैं, =कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनि दो संयम परिहारविशुद्धि, =सूक्ष्मसाम्परायमें और पहिलेके दो(सामायिक,छेदोपस्थापन)में भी (=च)(प्रवर्तते हैं) अर्थात् कषायकुशील निर्ग्रन्थ मुनिके सामायिक-छेदोस्थापन, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्पराय चारों संयम होते हैं।

निर्ग्रन्थ-स्नातकाः॥१॥एकस्मिन्॥७॥एव*

=निर्ग्रन्थ (निर्ग्रन्थमुनि) और स्नातक (पूर्णतया निष्परिग्रहीमुनि) एक ही [=एव]

यथाख्यातसंयमे॥७॥सन्ति॥श्रुतम्॥१॥''पुलाक-बकुश-प्रतिसेवनाकुशीलाः॥१॥उत्कर्षेण॥३॥

=यथाख्यातसंयममें प्रवर्तते हैं॥श्रुतज्ञान है सो पुलाक निर्ग्रन्थमुनि बकुशनिर्ग्रन्थमुनि =प्रतिसेवनाकुशील [निर्ग्रन्थमुनि] उत्कृष्टतासे वा अधिक से अधिक

अभिन्न-अक्षर-दशपूर्वधराः॥१॥कषायकुशीलाः॥१॥

=अभिन्न अक्षर (जिसमेंसे एक अक्षर भी पृथक् नहीं) अर्थात् समस्त वा सम्पूर्ण =दश पूर्वकेधारी वा ज्ञाता होते हैं। (=उत्कृष्टकर) कषायकुशील(निर्ग्रन्थमुनि)

(१) पूर्वयोः-श्वेताम्बरआम्नायके समाष्य०में "पूर्वयोः" नहीं है उसकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र७४८के अनुसार कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनिके"भाष्यकारकेमतानुकूल सामायिक-छेदोपस्थापन दो संयमी वर्तते हैं।"श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे दोनों सम्प्रदायोंमें अर्थ भेद नहीं है॥

निर्ग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः । जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु। बकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः । स्नातका अपगतश्रुताः केवलिनः ॥ प्रतिसेवना—पञ्चानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति॥बकुशो द्विविधः उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥ तत्रोपकरणबकुशो बहुविशेषयुक्तोपकरणाकांक्षी शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥ प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविराधयन्नुत्तरगुणेषु काञ्चिद्

निर्ग्रन्थाः[1]'चतुर्दश–पूर्वधराः[1]';जघन्येन[2]'पुलाकस्य[1]'
श्रुतम्[1]''आचार–वस्तु[1]'',
बकुश–कुशील–निर्ग्रन्थानाम्[6]'श्रुतम्[1]''
अष्टौ[1]'प्रवचन–मातरः[1]''

स्नातकाः[1]'अपगतश्रुताः[1]'केवलिनः[1]';प्रतिसेवना[1]''
पञ्चानाम्[6]'मूलगुणानाम्[6]'च*रात्रि–भोजन–
वर्जनस्य[6]''पर–अभियोगात्[5]'बलात्[2]'
अन्यतमम्[2]'
प्रतिसेवमानः[1]'पुलाकः[1]'भवति T ॥
बकुशः[1]'द्विविधः[1]'उपकरण–बकुशः[1]'शरीरबकुशः[1]'
च*इति* । तत्र*उपकरणबकुश–बहु–विशेषयुक्त–
उपकरण–आकांक्षी[1]'
शरीर–संस्कार–सेवी[1]'शरीर–बकुशः[1]';
प्रतिसेवनाकुशीलः[1]'मूलगुणान्[2]'अविराधयन्[2]'
उत्तर गुणेषु[2]'।काञ्चित्*

=[और] निर्ग्रन्थ[निर्ग्रन्थमुनि]चौदह पूर्वके ज्ञाता होते हैं, न्यूनतासे पुलाकमुनिका
=श्रुतज्ञान (द्वादशांगवाणीका पहिला अंग आचारांगमें) आचार वस्तु तक है,
=[जघन्यकर]बकुश (निर्ग्रन्थमुनि)का,कुशील[निर्ग्रन्थमुनि]का औरनिर्ग्रन्थ२मुनिकाश्रुत
=आठ प्रवचन मातृका है अर्थात् द्वादशांगवाणीमें प्रथम आचारांग १८०००पदोंकाहै
उसमें इन साधुओंका ज्ञान पांच समिति औरतीनिगुप्तिके व्याख्यान पर्यन्त होताहै॥
=स्नातक [निर्ग्रन्थमुनि] केवलीभगवान् श्रुतज्ञानसे रहित हैं । प्रतिसेवना है सो
=पांच[अहिंसा-झूठ वा सत्य-अस्तेय-ब्रह्म-अपरिग्रह)महाव्रतोंके और रात्रिके भोजनका
=त्याग वा निषेधका अन्यकी प्रेरणासे[=पर-अभियोगात्](अन्य)के शरीरकी सामर्थ्यसे
=इन छह (=पांचमहाव्रत तथा रात्रिभोजननिषेध) में से किसी एक की [=अन्यतम]
=विराधना करनेवाला वा उल्लंघन करनेवाला पुलाक होता है,
=बकुश (निर्ग्रन्थमुनि) दो प्रकार है उपकरण बकुश और [=च] शरीर बकुश
=ऐसे हैं । तहां उपकरणबकुश बहुत प्रकारकी (=विशेषयुक्त) वा बहुत प्रकार वाली
=सामग्रीका इच्छुक है अर्थात् भांति२की सामिग्रीकी रखनेकी इच्छा यही विराधना है
=देहके सजाउकासेवकसोशरीर बकुशहै अर्थात् शरीरके सजाउका भाव सो विराधनाहै॥
=प्रतिसेवना कुशील(निर्ग्रन्थमुनि)[पांच]महाव्रतोंको न विराधताहुआ घात न करताहुआ
=उत्तरगुणोंमें कोई एक–किसी एक [=काञ्चित] की

विराधनां प्रतिसेवते ॥ कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानां प्रतिसेवना नास्ति ॥ तीर्थमिति सर्वे सर्वेषां तीर्थंकराणां तीर्थेषु भवन्ति ॥ लिङ्गं द्विविधम् द्रव्यलिंगं भावलिङ्गं चेति ॥ भावलिङ्गं प्रतीत्य पञ्च निर्ग्रन्था लिंगिनो भवन्ति । द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः ॥ लेश्याः- पुलाकस्योत्तरास्तिस्रः । बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः षडपि । कृष्णलेश्यादि-

विराधनाम्[२]''प्रतिसेवते T । =विराधनाको प्रतिसेवता है अर्थात् उत्तरगुणोंमें किसी एक गुणको उल्लंघन करता है,

कषायकुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकानां[३] प्रतिसेवना[४]''न*=कषायकुशील,निर्ग्रन्थ(=निर्ग्रन्थमुनि), तथा स्नातक(निर्ग्रन्थमुनि)के विराधना नहीं

अस्ति T । तीर्थम्[१]''इति*सर्वे[३] सर्वेषाम्[६] =है, तीर्थ ऐसा है कि सब (पुलाक,बकुश, कुशील,निर्ग्रन्थ,स्नातकमुनि) समस्त

तीर्थकराणाम्[६]तीर्थेषु[७]''भवन्ति T,लिङ्गम्[१]'' =तीर्थंकरोंकेतीर्थोंमें अर्थात् उनके धर्मशासन कालमें होते हैं,लिंग,लक्षण,गुण, वा चिन्ह

द्वि-विधम्[१]''द्रव्यलिङ्गम्[१]''भावलिङ्गम्[१]''च*इति*=दो प्रकार ऐसे हैंकि द्रव्यलिंग अर्थात् सम्यक्त्व रहित और भावलिंग सम्यक्त्व सहितहैं

भावलिंगम्[२]''प्रतीत्य÷पञ्च[५] =भावलिंगको निमित्तमानकर(=प्रतीत्य)पांचों(पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकमुनि)

निर्ग्रन्थाः[३]लिङ्गिनः[३]भवन्ति T । =निष्परिग्रही(भाव) लिंगी होते हैं अर्थात् पांचों ही सम्यग्दर्शन सहित हैं

और मुनिपनामें पांचों निर्ग्रन्थमुनियोंमेंसे किसीके निरादर भाव नहीं है,

द्रव्य-लिंगम्[१]प्रतीत्य÷भाज्याः[३] =द्रव्य लिंगको निमित्त मानकर (=प्रतीत्य) (पांचोंही) भेद रूप हैं अर्थात् जैसे कोई आहार करते हैं, कोई अनशनादिक तप करते हैं, कोई उपदेश करते हैं, कोई अध्ययन करते हैं, कोई तीर्थमें विहार करते हैं, कोई अनेक आसनरूप ध्यान करते हैं, कोईको दूषण लगता है सो प्रायश्चित लेते हैं, कोई दूषण नहीं लगाते है, कोई आचार्य हैं, कोई उपाध्याय हैं, कोई प्रवर्तक हैं (काममें लगानेवाले),कोई निर्यापक हैं, कोई वैयावृत्य करते हैं, कोई ध्यानमें श्रेणीका प्रारम्भ करते हैं, कोईके केवलज्ञान उपजता है, इत्यादि मुनिगणमें बाह्य प्रवृत्तिकी अपेक्षा लिंग भेद है ॥

लेश्याः[३]पुलाकस्य[६]उत्तराः[३]''तिस्रः[३]'' =लेश्या है सो पुलाक(निर्ग्रन्थमुनि)के अग्रिम(पीतलेश्या-पद्मलेश्या-शुक्ललेश्या) तीन हैं, १६१

बकुश-प्रतिसेवनाकुशीलयोः[६] =बकुश(निर्ग्रन्थ मुनि) तथा प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थ) [इन दोनों] मुनिके,

षड्[१]''अपि*,कृष्णलेश्या-आदि- =छह(कृष्णलेश्या,नीललेश्या,कापोतलेश्या,पीत-पद्म-शुक्ललेश्या)भी हैं,कृष्णलेश्यादिकका

त्रितयं तयोः कथमिति चेदुच्यते तयोरुपकरणासक्तिसंभवादार्तध्यानं कदाचित्सम्भवति, आर्तध्यानेन च कृष्णादिलेश्यात्रितयं सम्भवतीति। कषायकुशीलस्य चतस्र उत्तराः। सूक्ष्मसाम्परायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला। अयोगा अलेश्याः॥ उपपादः—पुलाकस्योत्कृष्ट उपपाद उत्कृष्टस्थितिदेवेषु सहस्रारे। बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिषु आरणाच्युतकल्पयोः। कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ। सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु स्नातकस्य निर्वाणमिति

त्रितयम्[१] तयोः[२] कथम्*इति*चेत्* उच्यते T तयोः[३] उपकरण-आसक्ति-सम्भवात्[४] आर्तध्यानम्[५] कदाचित्* सम्भवतिTआर्तध्यानेन[६] च*कृष्ण-आदि-लेश्या-त्रितयम्[७] सम्भवति इति*कषायकुशीलस्य[८] चतस्रः[९] उत्तराः[१०], सूक्ष्मसाम्परायस्य[११] निर्ग्रन्थ-स्नातकयोः[१२] च*शुक्ला[१३] एव*केवला[१४], अयोगाः[१५] अलेश्याः[१६], उपपादः[१७]—पुलाकस्य[१८] उत्कृष्टः[१९] उपपादः[२०] उत्कृष्ट-स्थिति-देवेषु[२१] सहस्रारे[२२], बकुश-प्रतिसेवनाकुशीलयोः[२३] द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिषु[२४] आरण-अच्युत-कल्पयोः[२५] कषाय-कुशील-निर्ग्रन्थयोः[२६] त्रयस्त्रिंशत्सागरोपम-स्थितिषु[२७] सर्वार्थसिद्धौ[२८], सर्वेषाम्[२९] अपि*जघन्यः[३०] सौधर्म-कल्पे[३१] द्वि-सागरोपमस्थितिषु[३२], स्नातकस्य[३३] निर्वाणम्[३४] इति*

=त्रिसमूह (=त्रितयं) दोनों (बकुश-प्रतिसेवनाकुशील)के कैसेहैं ऐसा संदेह होनेपर
=(उत्तरमें)कहाजाता है कि दोनों(बकुश-प्रतिसेवनाकुशील)के उपकरण वा सामिग्रीकी
=उगन(=आसक्ति)के सम्भव होनेसे(=सम्भवात्)आर्तध्यान किसीसमयमें(=कदाचित्)
=हो सक्ता है और (=च) आर्तध्यानसे कृष्ण आदि लेश्याओंका,[कृष्ण-नील-कापोत]
=त्रिसमूह होसक्ताहै, कषायकुशील (निर्ग्रन्थमुनिके) चार(कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल)
=अगली(लेश्या) हैं, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्तीके और निर्ग्रन्थस्नातक(मुनियों)के
=केवल(=केवला) अर्थात् अकेली शुक्ल(लेश्या)ही है, अयोगकेवली लेश्या रहित हैं॥
=उपपाद, उत्पत्ति वा जन्म है सो पुलाक (निर्ग्रन्थ मुनि)का उत्कर्ष जन्म वा उत्पत्ति
=सहस्रार बारहवांकल्पमें उत्कर्ष[अठारह सागर] आयुके धारक देवोंमें होती है।
=बकुश (निर्ग्रन्थमुनि) और प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थमुनि) का(उत्कृष्ट उपपाद)
=बाईस सागर प्रमाण स्थितिमें आरण(पन्द्रहवां)अच्युत (सोलहवां)स्वर्गोंमें होता है,
=कषायकुशील और निर्ग्रन्थ[निर्ग्रन्थमुनि]का(उत्कृष्ट उपपाद)तेतीस सागर प्रमाण
=आयुमें सर्वार्थसिद्धिमें होता है,समस्त(छहोंप्रकारके मुनियों)का भी जघन्य(उपपाद)
=सौधर्मस्वर्गमें दो सागरप्रमाण आयुमें होता है, स्नातक(निर्ग्रन्थमुनि)का[उपपाद]
=अर्थात् केवली भगवान्का(उपपाद),निर्वारण वा मोक्ष है, ऐसा [वर्णनकियागया] है

स्थानम्-असंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति । तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोस्तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतस्ततः पुलाको व्युच्छिद्यते। कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि स्थानानि गच्छत्येकाकी । ततःकषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलबकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति । ततो बकुशो व्युच्छिद्यते । ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते

स्थानम्$^{1}_{1}$ ''असंख्येयानि$^{1}_{2}$ ''संयमस्थानानि$^{1}_{3}$ '' कषाय-निमित्तानि$^{1}_{5}$ ''भवन्ति T,

=(संयमकी लब्धिका) स्थान है सो असंख्यात संयम(की लब्धिके)स्थान =कषाय के मंद तथा तीव्र होने)के कारणक हैं अर्थात् उन कषायोंके निमित्तसे होते हैं

तत्र*सर्व-जघन्यानि$^{2}_{2}$ ''लब्धिस्थानानि$^{2}_{3}$ ''पुलाक-कषायकुशीलयोः$^{2}_{5}$ 'तौ$^{2}_{6}$'

=जहां सबसे निकृष्ट वा न्यून संयमके लब्धि स्थान पुलाक (निर्ग्रन्थमुनि)के =और कषायकुशील [निर्ग्रन्थमुनि]के होते हैं, वे दोनों (पुलाक और कषायकुशील)

युगपद्*असंख्येयानि$^{3}_{2}$ ''स्थानानि$^{3}_{3}$ ''गच्छतः$^{3}_{4}$'

=एक कालमें असंख्यात संयमलब्धि स्थानोंको जानेवाले हैं अर्थात् प्राप्त करनेवाले हैं,

ततः*

=वहांसे (अर्थात् संयमकी लब्धिके असंख्यात स्थानोंमें पहुंचकर वहांसे)

पुलाकः$^{4}_{1}$ 'व्युच्छिद्यते T,

=पुलाक (निर्ग्रन्थमुनि) व्युच्छित्तिको प्राप्तहोता है अर्थात् इन असंख्यात स्थानोंके आगेके संयमलब्धिस्थान पुलाकके नहीं होते है,वा पुलाक उनकोप्राप्तनहीं करसक्ताहै

कषायकुशीलः$^{4}_{2}$ ततः*

=कषाय कुशील (निर्ग्रन्थमुनि) वहां (ऊपर कहेहुये असंख्यात संयम स्थानों)से

असंख्येयानि$^{4}_{3}$ ''स्थानानि$^{4}_{4}$ ''गच्छति T एकाकी$^{4}_{6}$',

=असंख्यात संयमलब्धि स्थानोंको अकेला जाता है, अर्थात् अन्य मुनिके नहीं होतेहैं

ततः*

=वहां (अर्थात् दूसरी बार कहेहुये असंख्यात संयमलब्धि स्थानों)से

कषाय-कुशील-प्रतिसेवनाकुशील-बकुशाः$^{5}_{1}$।

=कषायकुशील(निर्ग्रन्थमुनि)प्रतिसेवना कुशील(निर्ग्रन्थमुनि)और बकुश(निर्ग्रन्थमुनि)

युगपद्*असंख्येयानि$^{5}_{2}$ ''स्थानानि$^{5}_{3}$ ''गच्छन्ति T

=साथ साथ असंख्यात संयमलब्धिस्थानोंको जाते हैं अर्थातउक्तस्थानोंको प्राप्त करते हैं

ततः*बकुशः$^{6}_{1}$ 'व्युच्छिद्यते T ।

=वहां (तीसरी बार कहेहुये संयमलब्धि स्थानों)से बकुशमुनि पृथक् कियाजाता है

ततः*अपि*असंख्येयानि$^{7}_{2}$ ''स्थानानि$^{7}_{3}$ ''गत्वा÷प्रतिसेवना कुशीलः$^{7}_{4}$ 'व्युच्छिद्यते T ।

=वहांसे भी असंख्यात संयमलब्धि स्थानों [=में] जाकर प्रतिसेवना =कुशील[निर्ग्रन्थमुनि]व्युच्छित्तिको प्राप्त होताहै अर्थात्अगले स्थान उसके नहीं होतेहैं

ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते । अत ऊर्ध्वमकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते। सोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते । अत ऊर्ध्वमेकं स्थानं गत्वा स्नातको निर्वाणं प्राप्नोति । तेषां संयमलब्धिरनन्तगुणा भवति ॥

॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसाञ्ज्ञकायां नवमोऽध्यायः॥

ततः*अपि*
असंख्येयानि३''स्थानानि३''गत्वा ÷
कषायकुशीलः१'व्युच्छिद्यतेT, अतः*ऊर्ध्वम३''

=वह (अर्थात् चौथीवार कहेहुये असंख्येय संयमलब्धि स्थानोंसे भी
=(कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनि)असंख्यात संयमलब्धि स्थानोंको जाकर,अर्थात् प्राप्त होकर
=(बोही) कषायकुशील मुनि व्युच्छित्तिको प्राप्त होता है । इससे ऊपर [अर्थात् उन संयमलब्धि स्थानोंके आगे जहां कि कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनिकी व्युच्छित्तिहुई है)

अकषाय–स्थानानि३''निर्ग्रन्थः१'प्रतिपद्यते T ।
सः१'अपि*असंख्येयानि३''स्थानानि३''गत्वा÷
व्युछिद्यते T ॥
अतः*
ऊर्ध्वं३'' एकं३''स्थानम३'॥गत्वा÷स्नातकः१'निर्वाणं३''
प्राप्नोति T तेषाम१''संयमलब्धिः१''अनन्तगुणा१''
भवति T॥

=कषायरहित संयमलब्धिस्थानोंको निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थमुनि प्राप्त होता है
=वह [निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ मुनि] भी असंख्यात[कषाय रहित]संयमलब्धि स्थानोंकोजाकर
=पृथक् किया जाता है वा रोका जाता है वा व्युच्छित्तिताको प्राप्त होता है,
=इन[कषाय रहित निर्ग्रन्थ मुनिद्वारा प्राप्त कियेहुये असंख्यात संयमलब्धिस्थानों)से
=ऊपर एक(संयमलब्धि) स्थान को प्राप्त होकर(=गत्वा)स्नातक मुनि निर्वाणको
=प्राप्तहोताहै॥तिन(स्थानों=संयमकी लब्धिके स्थानों)के संयमकी प्राप्ति अनन्तगुणी
=है अर्थात् उपर्युक्त असंख्यात संयमकी लब्धिके स्थानोंमेंसे(=तेषाम)प्रत्येक उक्तस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे संयमकी प्राप्ति अनन्तगुणी होती है॥ "अर इनिके संयमकी लब्धि अनन्तगुणी अनन्तगुणी है"(दूनीजी अनुवादित राजवार्तिकसे उद्धृत) ॥

इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ सर्वार्थसिद्धि=ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि-संज्ञिकानाम्नवमःअध्यायः=नामाटीकाकानवमाअध्याय(समाप्त)हुआ

सर्वार्थ-सिद्धि १

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

अध्याय १० सूत्र १

आह—अन्ते निर्दिष्टस्य मोक्षस्येदानीं स्वरूपाभिधानं प्राप्तकालमिति । सत्यमेवं। मोक्षप्राप्तिः केवलज्ञानावाप्तिपूर्विकेति केवलज्ञानोत्पत्तिकारणमुच्यते—

मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥

अथ*दशमः[१।१] अध्याय[१।१]=दशवां अध्याय आरम्भ (=अथ) है॥

आह T =(कोई) पूछता है कि (जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्)

अन्ते[२।१]निर्दिष्टस्य[२।१]मोक्षस्य[६।१] इदानीम्*स्वरूप- =(इस सूत्रके) अन्तमें उपदेश कियाहुआ मोक्षके स्वरूपके अब (=इदानीम्)

अभिधानम्[१।१]प्राप्तकालम्[१।१]इति*। सत्यम्[१।१]एवं* =कहनेका अवसर वा समय मिला है (उत्तर) सत्य ही है (परन्तु)

मोक्ष-प्राप्तिः[१।१]केवलज्ञान-अवाप्ति-पूर्विका[१।१]। =मोक्षकी लब्धि केवलज्ञानकी प्राप्ति निमित्तक है अर्थात् केवल ज्ञान है निमित्त मोक्षकी प्राप्तिके लिये भावार्थ पहिले केवलज्ञान हो तौ मोक्षकी प्राप्ति होती है॥

इति*केवल-ज्ञान-उत्पत्ति-कारणम्[१।१]। उच्यते T =ऐसे केवलज्ञानके उपजनेका हेतु(निम्नलिखित सूत्रमें)कहा जाता है कि

मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—मोह-क्षयात्[५।१] च*ज्ञान-दर्शन-आवरण- =मोहनीय कर्मके नाश होने(के)हेतुसे और उसके(२)पश्चात्ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय,

अन्तराय-क्षयात्[५।१]केवलम्[१।१]। भवति T =अन्तराय (कर्मों)के क्षय होने (के निमित्त)से केवल ज्ञान होता है।

---

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तकोंमें और श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्' पाठ है, उनके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें और कहीं कहीं पर हमारे यहां भी जहां प्रथम और द्वितीय वाक्यकी सन्धि करदीगई है वहां "मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्" पाठ है। 'मोहक्षयात्'के त् का परिवर्तन द् में होगया (देखो अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ १५ की) पश्चात् द् पलट जाता है ज में अर्थात् जब तु वर्ग(=त्-थ्-द्-ध्-न्)चु वर्ग के किसी अक्षरके साथ आवै तो वह अक्षर च वर्ग के यथासंख्य अक्षरमें पलट जावै। अतः द् का ज्। ज्ञ=ज+ञ॥(२)अनुवादमें 'पश्चात्' शब्द इस कारणसे लायागया है कि पदच्छेदके पीछे यहसूत्र ऐसा होजाता है कि

इह वृत्तिकरणं न्याय्यम्। कुतः। लघुत्वात्। कथम्। क्षयशब्दस्याकरणात्। विभक्त्यन्तर-निर्देशस्य चाभावाच्चशब्दस्य चाप्रयोगाल्लघुसूत्रं भवति मोहज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षया-त्केवलम्" इति ॥ सत्यमेतत् ॥ क्षयक्रमप्रतिपादनार्थो वाक्यभेदेन निर्देशः क्रियते—

अर्थात् मोहनीय कर्मके क्षय होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें क्षपकश्रेणी चढ़ाहुआ जीव क्षीणकषाय नामका बारहवां गुणस्थान पाकर दर्शनावरणीय कर्मकी बारहवां गुणस्थानके उपांत्य समयमें (=अन्त्य समय तिससे पहिले समयमें) निद्रा, प्रचला दो प्रकृतियोंका क्षयकरि और बारहवां गुणस्थानके अन्त्य समयमें पांच ज्ञानावरणीय कर्म, चारदर्शनावरणीय कर्म, पांचअन्तराय कर्मकी प्रकृतियोंको क्षयकरि तिसके अनन्तर ही केवल ज्ञानरूपी आत्माकी अचिन्त्य विभूतवाली पर्य्यायको प्राप्त करता है ॥

वृत्यनुवादः-इह*वृत्तिकरणम्[1]॥न्याय्यम्[1]॥,=इस स्थानमें (अर्थात् इस सूत्रमें) समास करना उचित था।

कुतः *। लघुत्वात्[3]॥, कथम्*, =क्योंकर ? (उत्तर) (सूत्र) छोटा होजाने (के हेतु)से (प्रश्न)कैसे ? (सूत्र छोटा होजाता)

क्षयशब्दस्य[5] अकरणात्[5]॥,च*विभक्ति-अन्तर- =(मोहक्षयात् इस वाक्यके) 'क्षय' शब्दके न लानेसे और (=च) बीचकी (=अंतर)

निर्देशस्य[5] अभावात्[5] =(पंचमी विभक्ति वा अपादान कारकके) निर्देश वा उपदेशके अभावसे

च*शब्दस्य[5] च*अप्रयोगात्[5] =और (=च) चशब्दके प्रयोग न करनेसे अर्थात् (सूत्रमें) चशब्दके न लानेसे

लघुसूत्रम्[1]॥भवति I इति[1] "मोहज्ञानदर्शनावरणा- =छोटा सूत्र हो जाता है ॥ इस प्रकार कि "मोहज्ञानदर्शनावरणा-

न्तरायक्षयात्केवलम्" । सत्यम्[1]॥एतत्[1]॥, =न्तराय क्षयात्केवलम्"-(उत्तर) यह (=एतत्) सत्य है (परन्तु)

क्षय-क्रम-प्रतिपादन-अर्थः[1] वाक्यभेदेन[1] =(इस सूत्रमें क्षय(शब्द)क्रम जतावनेके लिये पथक् २ वा भिन्न २ वाक्य भेदकरि

निर्देशः[1] क्रियते I— =उपदेश किया गयाहै अर्थात् दो होनेवाली बातोंको कि एक होनेके पश्चात् दूसरी होगी यह अनुक्रम जतावनेके लिये सूत्रमें क्षयशब्द दोबार भिन्न २ दो वाक्योंमें लायागया है

"मोहक्षयात् च ज्ञानदर्शनावरणांतराय क्षयात् केवलम्" यह पथक २ दो स्थानों में तो पंचमी अपादान विभक्तिको हेतु अर्थमें निर्देश किया है सो उस कर्मकी प्रसिद्धिके अर्थ किया है, कि जिससे यह अर्थ स्पष्ट रूपसे भान हो कि प्रथम सम्पूर्ण मोहनीय कर्मका क्षय होता है उसके पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तराय इन तीनों प्रकृतियों का क्षय होता है। नहीं तो सूत्र ऐसे होता "मोहज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयात्केवलम्"

प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयान्तर्मुहूर्तं क्षीणकषायव्यपदेशमवाप्य ततो युगपत् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां क्षयं कृत्वा केवलमवाप्नोतीति ॥ तत्क्षयहेतुः केवलोत्पत्तिरिति हेतुलक्षणो विभक्तिनिर्देशः कृतः ॥ कथं प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयते इति चेदुच्यते—

प्राग्*एव*मोहम्[द्वि] क्षयम्[द्वि] उपनीय÷अन्तर्मुहूर्तम्[द्वि]	=पहिले ही (=एव) मोहनीय कर्मको विनाश प्राप्तकरि अन्तर्मुहूर्तमें
क्षीणकषाय–व्यपदेशम्[द्वि] अवाप्य÷	=क्षीण कषाय नामको प्राप्तकरि अर्थात् बारहवां क्षीण कषाय गुणस्थानको प्राप्तकरि
ततः* [१]युगपत्*	=वहां (बारहवां गुण स्थान) से [२]एक साथ (एक काल–एक बार–एकदा)
ज्ञान–दर्शन–आवरण–अन्तरायाणाम्[ष]	=ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अंतराय कर्मों के
क्षयम्[द्वि] कृत्वा÷केवलम्[द्वि] आप्नोति T इति * ॥	=क्षयको करि (=कृत्वा) केवलज्ञानको प्राप्त करता है–ऐसे–(दो बारक्षयात् शब्द वा दो बार पंचमी विभक्ति तथा चकार का प्रयोग वा निर्देश किया है)
तत्–	=उन (मोहका क्षय–पश्चात् ज्ञानदर्शनावरण तथा अंतराय) के
क्षय–हेतुः[प्र] केवल–उत्पत्तिः[प्र]॥	=विनाशका कारण केवलज्ञानका उद्भव वा उपजना है।
इति* हेतुलक्षण–	=ऐसे हेतु लक्षण संयुक्त (अर्थात् हेतु द्योतक–पंचमी अपादान)
विभक्ति–निर्देशः[प्र] कृतः[प्र] ॥ कथम्* ? प्राग्*एव*	=विभक्तिकरि उपदेश अथवा कथन किया गया है। कैसे ? प्रथम ही
मोहम्[द्वि] क्षयम्[द्वि] उपनीयते T इति* चेत्* उच्यते T	=मोहनीय कर्म्म विनाशको पहुंचाया जाताहै ऐसे संशय होने पर कहा जाताहै कि

(१) युगपत्–यहां यह स्पष्टरूपसे समझ में नहीं आता है कि ज्ञानावरण–दर्शनावरण–तथा अंतराय कर्मोंको एक साथ वा एक काल में कैसे क्षय किया क्योंकि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला–स्त्यानगृद्धि-ये तीन दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियोंका नाश तो नवमें गुणस्थानमें ही हो जाताहै। पश्चात् भी बारहवां गुणस्थानमें जो सोलह प्रकृतियों का नाश होता है-वह भी युगपद् (एक साथ) नहीं होता-वरन् बारहवें गुण स्थान में जब दो समय अवशेष रह जाते हैं तब अंतसमयमेंसे एक समयमें निद्रा और प्रचला ये दो दर्शनावरण कर्म की प्रकृतियों का नाश होता है और (क्षीणमोह बारहवें–गुणस्थानके) अंतसमयमें मतिज्ञानावरण–श्रुतज्ञानावरण–अवधिज्ञानावरण-मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण और चक्षुर्दर्शनावरण–अचक्षुर्दर्शनावरण–अवधिदर्शनावरण– केवलदर्शनावरण तथा दानअंतराय-लाभअंतराय-भोगअंतराय-उपभोगअंतराय—वीर्यअंतराय ऐसे चौदह दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियोंका नाश होता है। जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है कि क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानके "उपान्त्य एकसमये निद्राप्रचले प्रलयमुनीय पञ्चानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पञ्चानामन्तरायाणामन्तमन्ते समुपगमय्य तदनन्तरं ज्ञानदर्शनस्वभावं केवलपर्यायमप्रतर्क्यविभूतिविशेषमवाप्नोति ॥" युगपत्, युगपद् अव्ययहै, = एककाल, एकबार ही (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३६०), एकदाएककाल (अमरकोश), एक कालमें (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १८७) उसी समय (वैद्यकोश पृष्ठ ५६८)

भव्यः सम्यग्दृष्टिः परिणामविशुध्या वर्धमानो असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानेषु कस्मिंश्चिन्मोहस्य सप्त प्रकृतीः क्षयमुपनीय क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा क्षपकश्रेण्यारोहणाभिमुखोऽधःप्रवृत्तिकरणमप्रमत्तस्थाने प्रतिपद्यापूर्वकरणप्रयोगेणापूर्वकरणक्षपकगुणस्थानव्यपदेशमनुभूय तत्राभिनवशुभाभिसन्धितनूकृतपापप्रकृतिस्थित्यनुभागो विवर्धितशुभकर्मानुभवोऽनिवृत्तिकरणप्राप्त्यानिवृत्तिबादरसाम्परायक्षपकगुणस्थानमधिरुह्य तत्र कषायाष्टक

भव्यः सम्यग्दृष्टिः परिणाम-विशुद्धया वर्द्धमानः असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थानेषु कस्मिन्चित् मोहस्य सप्त-

=भव्य हो सम्यग्दृष्टि हो भावोंकी विशुद्धता करि
=वृद्धिशील हो वा बढ़ा हुआ हो। अविरतिसम्यग्दृष्टि(चौथा)देशविरत(पाँचवां)
=प्रमत्तविरत(छठवां)अप्रमत्त विरत(सातवां)गुणस्थानोंमेंसे किसी एक(गुणस्थान)में
=मोहकर्मकी सात (मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्व-सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान, अनन्तानुबन्धीमाया, अनन्तानुबन्धीलोभ)

प्रकृतीः क्षयं उपनीय क्षायकसम्यग्दृष्टिः भूत्वा क्षपकश्रेणि-आरोहण-अभिमुखः अधःप्रवृत्तिकरणम्।। अप्रमत्त-स्थाने।। प्रतिपद्य ÷ अपूर्वकरण-प्रयोगेण। अपूर्वकरण-क्षपकगुणस्थान-व्यपदेशम्। अनुभूय ÷ तत्र*अभिनव-शुभ-अभिसन्धि-तनूकृत-पापप्रकृति-स्थिति-अनुभागः। विवर्धित-शुभ-कर्म-अनुभवः। अनिवृत्तिकरण-प्राप्त्या।। अनिवृत्तिबादरसांपराय-क्षपक-गुणस्थानम्।। अधिरुह्य ÷ तत्र* कषाय—अष्टकम्।।

=प्रकृतियोंको विनाश प्राप्तकरि क्षायकसम्यग्दृष्टि होकर क्षपकश्रेणीके
=चढ़नेको सन्मुख होनेवाला अधःप्रवृत्तिकरणको, अप्रमत्त (सातवें)
=गुणस्थानमें पाकरि अपूर्वकरण प्रयोगका परिणामकरि
=अपूर्वकरणनाम (=व्यपदेश) (आठवां)क्षपक श्रेणीके गुणस्थानको
=भोगकरि तहां (आठवां गुणस्थानमें) नवीन शुभ परिणामोंसे(=अभिसंधि)
=क्षीण किये हैं (=तनूकृत) पाप प्रकृतियोंके स्थिति अनुभाग जिसने
=बढ़ाया है शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग जिसने (ऐसा होय)
=अनिवृत्तिकरण (परिणामोंको) प्राप्तकरि अनिवृत्तिबादरसांपराय
=[नवमा]क्षपक श्रेणीगुणस्थानको चढ़करतहां (नवमें क्षपकश्रेणीगुणस्थानमें)
=आठ कषाय (अप्रत्याख्यानक्रोध-अप्रत्याख्यानमान-अप्रत्याख्यानमाया अप्रत्याख्यानलोभ-प्रत्याख्यानक्रोध-प्रत्याख्यानमान-प्रत्याख्यानमाया प्रत्याख्यानलोभ)को

नष्टं कृत्वा, नपुंसकं वेदनाशं समापाद्य, स्त्रीवेदमुन्मूल्य, नोकषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य(१), क्षपयित्वा पुंवेदं क्रोधसंज्वलने, क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलने, मानसंज्वलनं मायासंज्वलने, मायासंज्वलनं लोभ संज्वलने

नष्टं[१]।।कृत्वा,नपुंसकं[२]वेदनाशं[३]समापाद्य÷स्त्रीवेदम्[४] =नाशकरि (=कृत्वा), नपुंसक वेदको नाशको प्राप्तकरि,स्त्रीवेदको
उन्मूल्य÷नो-कषाय-षट्कम्[५]।। =निर्मूलकरि वा उखाड़करि, ईषत् छह(हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा)कषायको
पुंवेदे[६]प्रक्षिप्य÷,क्षपयित्वा÷पुंवेदं[७]क्रोधसंज्वलने[८], =पुरुषवेदमेंप्रक्षेपणकरि, पुरुषवेदको क्रोधसंज्वलनमें क्षेपणकरि(=क्षपयित्वा)
(क्षपयित्वा) क्रोधसंज्वलनम्[९]मानसंज्वलने[१०] =क्रोधसंज्वलनको मानसंज्वलनमें(क्षेपण करता हुआ=क्षपयित्वा)
(क्षपयित्वा) मानसंज्वलनम्[११]मायासंज्वलने[१२] =मानसंज्वलनको मायासंज्वलनमें (क्षेपणकरता हुआ=क्षपयित्वा)
(क्षपयित्वा) मायासंज्वलनम्[१३]लोभसंज्वलने[१४] =मायासंज्वलनको लोभसंज्वलनमें (क्षेपणकरता हुआ=क्षपयित्वा)

(१)प्रक्षिप्य –क्षिप् तुदादि छठवांगणका उभय (परस्मै और आत्मने) पदी सकर्मक अनिट् (=जिस धातुके रूप बनानेमें इ न जोड़ा जावै) धातुमें प्र उपसर्ग लगाकर प्र+क्षिप्+य सम्बंध सूचकभूत कृदन्त प्रक्षिप्य=किसी चीजमें क्षेपण करना, किसी चीजमें डालना वा फेंकना बनालिया परन्तु क्षपयित्वा--चुरादि दशवांगणका उभय (परस्मै और आत्मने) पदी सकर्मक सेट् (=जिस धातुके रूप बनानेमें इ जोड़ा जावै)क्षप् धातुमें उसका विकरण अय् जोड़कर क्षप्+अय् बना लिया, पश्चात् त लगाकर,क्षपयि हुआ. त्वा सम्बन्धकभूत कृदन्तका चिन्ह लगाकर क्षपयित्वा बना, क्षपयित्वा=क्षेपणकर, क्षेपता हुआ, प्रक्षिप्य, और क्षपयित्वा दोनोंका एकसा अर्थ है। (संबंधक भूत कृदन्तके बनानेके नियमके लिये देखो पृष्ठ ७) प्रक्षिप्यका अन्वय वा संबंध 'नो कषाय षट्कके साथ है, क्षपयित्वाका संबंध पुंवेद, क्रोध संज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलनके साथ है, अर्थात् नोकषायषट्कंप्रक्षिप्यका कर्म (कारक)है और शेष पुंवेद आदिचार क्षपयित्वाके कर्म (कारक)हैइन पांचों वाक्योंका 'विलयम्उपनीय=विलय को प्राप्तकरि के साथ अन्वय वा संबंध है अर्थात् क्षयकरि, क्षय प्राप्तकरि ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका "नो कषाय षट्कंसे विलयमुपनीय तक" शब्दशः एक पाठ है राजवार्तिकमें क्रमेणके स्थानमें संक्रमक्रमेण है ॥ पं० जयचन्दरायजीने तथा पन्नालालजी न्यायदिवाकरने 'नो कषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य' के अनुवाद करनेमें 'विलयम् उपनीय' अर्थात् क्षयकरै' शब्दको लगादिया है और शेष चार वाक्यों के साथ न्यारा क्षय शब्द लगाकर अनुवाद किया है परन्तु पं० पन्नालाल दूनीजीने और हमने उक्त पांचों वाक्योंके साथ एक वार ही 'विलयमुपनीय' को लगाकर अनुवाद किया है जैसा कि निम्न उद्धृत वाक्योंसे प्रगट है। 'नोकषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य = "नो कषायका षट्कं हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा इनकूं पुरुषवेदविषं क्षेपणकरि क्षय करै" ॥ जयचंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७७५॥ "नोकषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य" 'नो कषाय षट्कं कहिये हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा इनकूं पुरुष वेद विषै क्षेपनकरि क्षयकरै" पं० पन्नालालजी अनुवादित राजवार्तिक पत्र १४८१ ॥ "नो कषायका षट्कनैं पुरुष वेदकैविषं क्षेपकरि क्षपायकरि पुरुषवेदनैं क्रोध संज्वलनकै विषं अर क्रोधसंज्वलननैं मान संज्वलनकै विषैं अर मान संज्वलननैं माया संज्वलनकै विषैं अर मायासंज्वलननैं लोभ संज्वलनकै विषैं संक्रमणका क्रमकरि बादरकृष्टि विभाग जो अनुकृष्ट रचना गोम्मटसार आदि ग्रंथनिमें प्रसिद्ध है ताकरि विभागकरि विलयनैं प्राप्तकरि" दूनीजी अनुवादित राज०क० १०पत्र३॥

क्रमेण बादरकृष्टिविभागेन विलयमुपनीय लोभसंज्वलनं तनूकृत्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वमनुभूय

क्रमेण[१]॥(१) बादरकृष्टिविभागेन[२]। विलयम्[३] उपनीय ÷ (अनिवृत्तिबादरसांपरायक्षपकभावम्[३] अवाप्य ÷) लोभसंज्वलनम्[३] तनूकृत्य ÷ सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वम्[३]॥ अनुभूय ÷

=अनुक्रमसे बादरकृष्टिका विभागकरि क्षयको प्राप्तकरि (=उपनीय) अर्थात् क्षयकरि
=(अनिवृत्ति बादरसांपरायके भावको प्राप्त होकर– राजवार्तिकसे उद्धृत)
=लोभसंज्वलनकोसूक्ष्मकरि, सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकभावको (=क्षपकत्वम्)
=अनुभवकरि अर्थात् सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें क्षपक परिणामका धारक होकर

'क्रमेण'के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिकमें किसी किसी प्रतिमें 'सक्रमक्रमेण' है किसी किसीमें 'संक्रमणक्रमेण' है। संक्रम (पु०) =परिवर्तन (वैद्य कोश पृष्ठ३४६में ५ अर्थ और भी हैं। संक्रमण (न०) एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें परिवर्तन(वैद्यकोशमें चार अर्थ और भी दिये हैं) परन्तु यहाँ पर संक्रम और संक्रमण एकार्थवाची है॥ संक्रमण पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ "संक्रमण पररूप, उदीरण विन उपशम मत" अर्थात् जो प्रकृति बांधी तिसका परिणाम निमित्त पाय दूसरे प्रकृतिमें मिलावै" सो संक्रमण है और जो प्रकृति बांधी तिसकी उदीरणा(=तपादिकेबलसे खिपना)न हो सो उपशमवन्त है॥ अतः संक्रमणक्रमेण='संक्रमण विधानकरि अनुक्रमतै॥(१)कृष्टिअर्थ-अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरणकेकालमेंसे आदि वा मध्य वा अन्तके एक समयवर्ती अनेक जीवोंमें जिस प्रकार शरीरकी अवगाहन आदि बाह्य कारणोंसे तथा ज्ञानावरणादिककर्मके क्षयोपशमादि अन्तरङ्ग कारणोंसे परस्परमें भेद पाया जाता है, उस प्रकार जिन परिणामोंके निमित्तसे परस्परमें भेद नहीं पाया जाता उनको अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं। और अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतने ही उसके परिणाम हैं इसलिये उसके कालके प्रत्येक समयमें अनिवृत्तिकरणका एक २ ही परिणाम होता है। तथा ये परिणाम अत्यन्तनिर्मल ध्यानरूप अग्निकी शिखाओंकी सहायतासे कर्म-वनको भस्म करदेते हैं। भावार्थ—अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतने ही उसके परिणाम हैं, इसलिये प्रत्येक समयमें एक ही परिणाम होता है। अतएव यहांपर भिन्न समयवर्ती परिणामोंमें सर्वथा विसदृशता और एक समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सर्वथा सदृशता ही होती है। इन परिणामोंसेही आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंको गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिकाण्डकखण्डन, अनुभागकाण्डकखण्डन होता है और मोहनीय कर्मकी बादरकृष्टि सूक्ष्मकृष्टि आदि होती हैं। नवमें गुणस्थानके संख्यात भागोंमेंसे अन्तके भागमें होनेवाले कार्योंको कहते हैं।

पूर्वस्पर्धकसे अपूर्वस्पर्धकके और अपूर्वस्पर्धकसे बादरकृष्टिके तथा बादरकृष्टिसे सूक्ष्मकृष्टिके अनुभाग क्रमसे अनन्तगुणे २ हीन हैं। और ऊपरके (पूर्वपूर्वके)जघन्यसे नीचेका(उत्तरोत्तरका)उत्कृष्ट और अपने २ उत्कृष्टसे अपना २ जघन्य अनन्तगुणा २ हीन है। भावार्थः–अनेक प्रकार की अनुभाग शक्तिसे युक्त कार्मण वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं। जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरणके पूर्वमें पाये जांय उनको पूर्वस्पर्धक कहते हैं। जिनका अनिवृत्तिकरणके निमित्तसे अनुभाग क्षीण हो जाता है उनको अपूर्वस्पर्धक कहते हैं। तथा जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्धकसे भी क्षीण हो जाय उनको बादरकृष्टि, और जिनका अनुभाग बादरकृष्टिकी अपेक्षा भी क्षीण हो जाय उनको सूक्ष्मकृष्टि कहते हैं। पूर्वस्पर्धकके जघन्य अनुभागसे अपूर्वस्पर्धकका उत्कृष्ट अनुभाग भी अनन्तगुणाहीन है। इसी प्रकार अपूर्वस्पर्धकके जघन्यसे बादरकृष्टिका उत्कृष्ट और बादरकृष्टिके जघन्यसे सूक्ष्मकृष्टिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणाहीन है। और जिस प्रकार पूर्वस्पर्धकके उत्कृष्टसे पूर्वस्पर्धकका जघन्य अनन्तगुणा हीन है उसी प्रकार अपूर्व स्पर्धक आदिमें भी अपने अपने उत्कृष्टसे अपना अपना जघन्यअनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणा हीन है।

निरवशेषंमोहनीयं निर्मूलकाषंकर्षित्वा क्षीणकषायतामधिरुह्यावतारितमोहनीयभारउपांतिमेसमये-निद्राप्रचलेप्रलयमुपनीयपञ्चानांज्ञानावरणांचतुर्णांदर्शनावरणांपञ्चानांचान्तरायाणामंतर्मंतेसमुपनीय

निरवशेषम्[१] मोहनीयम्[१] निर्मूलकाषम्[१] कर्षित्वा (१)	= तहां समस्त मोहनीयको मूलतक(=निर्मूल)घर्षण करताहुआ नाशकरि(=कर्षित्वा)
क्षीणकषायताम्[२]॥ अधिरुह्य ÷ अवतारित-मोहनीयभारः[२]	= क्षीणकषाय परिणामको(में)चढ़करि उतारा है मोहनीयकर्मका भार जिसने अर्थात् सूक्ष्म सांपराय दशवांगुणस्थानवर्ती क्षपकभावका धारक मुनि समस्त मोहनीयकर्मको नाश करके क्षीणकषाय भावमें चढ़करि वा क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थानको चढ़करि
उपांतिमे[२] समये[२] निद्राप्रचले[२] प्रलयम्[२]	= (उसबारहवां गुणस्थानके)अंत(=चरम)से पहिले समयमें निद्रा और प्रचलाको क्षय
उपनीय ÷ पञ्चानाम्[३]॥	= पहुंचाकरि पाँच (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल)
ज्ञानावरणानाम्[३]॥ चतुर्णाम्[३]॥ दर्शनावरणानाम्[३]॥	= ज्ञानावरणीयकर्मकी, चार(चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल)दर्शनावरणीयकर्मकी
पञ्चानाम्[३] च * अन्तरायाणाम्[३] अन्तम्[२]	= और(=च)पांच (दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य)अन्तराय कर्मकानाश(=अन्तम्)
अन्ते[२] समुपनीय ÷	= अन्त (समय)में एक साथ प्राप्तकरि (=समुपनीय)

(१-(क)"निर्मूलकाषं कर्षित्वा" यह पाठ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें है। (ख) "निर्मूलकाषं कर्षित्वा" यह पाठ तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें है दोनों ठीक हैं क्योंकि (क) निर्मूल (स्त्रीलिंगमें निर्मूला)=जड़ तक, जड़ पर्यंत जैसे निर्मूलकाषं कर्षति=(वह) जड़तक घर्षणकर (=काषं)मर्दनकर(=काषं)चूर्णकर(=काषं)मारता है(वैद्य कोश पृष्ठ ३८१), काषं (चु०)=चूर्ण करना, मर्दन करना, रगड़ना, जिस पर कोई वस्तु रगड़ी जाती है, यहां प्रथम अर्थमें ग्रहण है [वैद्यकोश पृष्ठ १८७] कर्षित्वा यह सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त, कष् भ्वादि प्रथमगणके सकर्मक परस्मैपद सेट् [जिसमें इ जोड़ाजाता है] धातुसे निम्न नियमसे बनाया गया है, नाशकरि अर्थ है धातुमें त्वा लगानेसे, सेट् धातुओंमें त्वा, इ जोड़नेके पीछे जैसे यहां] बनता है जैसे श्रु=सुनना, श्रुत्वा=सुनकर, कषमें इ जोड़नेसे कर्षि हुआ, त्वा से कर्षित्वा बना लिया धातुके पहिले उपसर्ग लाया जावै तो त्वाके स्थानमें य आता है जैसे अनु+भू+य=अनुभूय=अनुभव करके, यदि धातुके अंतमें, ह्रस्व स्वर हो तो य के पहिले त लाते हैं जैसे अनु+वृ+त्+य=अनुवृत्य=अनुकरण करके, विजित्य=विजय करके, जीत करके, विस्मृत्य=विस्मरण करके इत्यादि अन्य उदाहरण हैं, अतः निर्मूलकाषं कर्षित्वा=जड़पर्यंत [=निर्मूल] मर्दन वा घर्षणकरकरि विनाशकर, [ख] निर्मूलका अर्थ है जड़से इसलिये निरवशेषं मोहनीयं निर्मूलकाषं कर्षित्वा=समस्तमोहनीय[कर्म]को जड़से घर्षण अथवा घिस घिसकरि नाशकरके[=कर्षित्वा),प्रथम पाठ लियाहै (२)उपान्त्य-(त्रि०)उपान्त भवः यत्=अन्तसे पहला(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७६)अन्त्य (त्रि०) अंते भवःयत्=अन्तमें होनेहारा, आन्तम। उपान्तिम अन्तिमका भी अर्थ क्रमसे अन्तसे पहले होने वाला और अन्तमें होनेहारा है॥ आठदश हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियां देखी गई किसीमें उपांत्ये-अन्त्ये, किसीमें उपान्ते-अन्ते और किसीमें उपान्तिमे, अन्तिमे देखा गया छहो शब्द एकसे तात्पर्यको प्रगटकर सकते हैं हमने कई विद्वानोंकी

तदनन्तरं ज्ञानदर्शनस्वभावं केवलपर्यायमप्रतर्क्यविभूतिविशेषमवाप्नोति॥आह कस्माद्धेतोर्मोक्षः किंलक्षणश्चेत्यत्रोच्यते-**बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षोमोक्षः**

मिथ्यादर्शनादिहेत्वभावादभिनवकर्माभावः पूर्वोदितनिर्जराहेतुसन्निधाने चार्जितकर्मनिरासः।

तद्—	=उस (क्षय अर्थात् अन्तिम अन्तराय कर्मकी प्रकृतियोंके क्षय)के
अनन्तम्[1] ज्ञानदर्शनस्वभावम्[2] अप्रतर्क्य-	=अनन्तर वा लगताही ज्ञानदर्शनरूपलक्षणसंयुक्त, अचिंत्य(=अप्रतर्क्य)
विभूतिविशेषम्[3] केवल-पर्यायम्[4]	=ऐश्वर्य, विभूति वा विभव युक्तवाला केवलनामा (आत्माका) पर्यायको
अवाप्नोति T। आह T कस्मात्[5] हेतोः[6] मोक्षः[7]	=प्राप्त होता है वा प्राप्त करता है(शिष्य)प्रश्न करता है कि किस निमित्तसे मोक्षहोती है
किंल्लक्षणः[8] चेतिअत्रउच्यते T —	=और (=च) क्या लक्षण है (ऐसा प्रश्न होनेपर)यहां(अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता हैकि

(१)बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—बन्धहेतु-	=बन्धके निमित्त (मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय- योग)निका
अभाव-निर्जराभ्यां[9] कृत्स्नकर्म-विप्रमोक्षः[10] मोक्षः[11]	=अभाव होनेसे और निर्जरा(केहेतु)से समस्त कर्मकाअत्यन्तनाश(=विप्रमोक्षः)सो मोक्षहै
वृत्त्यनुवादः—मिथ्यादर्शन-आदिहेतु-अभावात्[12]	=मिथ्यादर्शन-अविरति-प्रमाद-कषाय-योग(बन्ध)हेतुके अभावसे अथवा निषेधसे
अभिनवकर्म-अभावः[13] च *	=नवीन कर्मके (आगमन)का निराकरण होता है और (=च)
पूर्व-उदित-निर्जरा-हेतु-सन्निधाने[14]	=प्रथम कहेहुये निर्जराके कारण (जे तप और विपाक)के निकट होने पर
अर्जित-कर्म-निरासः[15]	=(पहिले) उपार्जित कियेहुये अथवा बंधेहुये कर्मका अभाव होजाता है।

सम्मतिसे उपर्युक्त पाठ लिया है॥ दो मुद्रित प्रतियोंका पाठ 'उपांत्य प्रथमे' समये वाक्यमें प्रथमे शब्द क्यों है समझमें नहीं आया है इसका शब्दार्थ होगा अंतसे पहिले होने वाला पहिला समय कुछ भी तात्पर्य नहीं हुआ, किसी भी पुस्तकमें 'प्रथमे' शब्द नहीं है, हां उपांत्यसमये का अर्थ स्पष्ट है कि 'अंतसे पहिले होने वाला समये'॥एक बहुत कालीन प्रतिके पृष्ठ ६०से हमने निम्नपाठलिया है।"उपांतिमे समये निद्रापंचले प्रलय-मुपनीय पंचानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पंचानां चांतरायाणां मन्तमन्ते समुपनीय॥"चार प्रतियोंमें समुपनीय"है तीनमें समुपगमय्य है है एकमें'समुपगम्य' है। (१)श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्य०में इससूत्रको दो सूत्रोंमें न्यारा न्यारा ऐसे लिखा है कि"बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां॥२॥ कृत्स्न कर्मक्षयोमोक्षः"॥३॥इस तीसरे सूत्रमें"क्षयो"शब्द है हमारे यहां इसके स्थानमें "विप्रमोक्षो"है'क्षयो'का अर्थ नाश है और 'विप्रमोक्षो'का अर्थ अत्यन्तनाश वा अत्यन्त अभावका है सो व्याकरणरीतिसे अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एक है॥ उनको भाष्यानुसारिणी०में ३ सूत्रको भाष्यमाना है जैसा कि निम्नपंक्तियोंसे प्रगट है "कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणो मोक्षोभवतीत्यादिभाष्यं कृत्स्नकर्मक्षयोलक्षणं यस्य मोक्षस्य कृत्स्नकर्मविप्रमुक्त्योआत्मा मुक्तइति

ताभ्यां बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यामितिहेतुलक्षणविभक्तिर्निर्देशः। ततो भवस्थितिहेतुसमीकृतशेषकर्मावस्थितिस्य युगपदात्यन्तीकृतकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः प्रत्येतव्यः ॥ कर्माभावो द्विविधः-यत्नसाध्योऽयत्नसाध्यश्चेति। तत्र चरमदेहस्य नारकतिर्यग्देवायुषामभावो न यत्नसाध्यः असत्त्वात्॥ यत्नसाध्य इत ऊर्ध्वमुच्यते-असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषुचतुर्षु गुणस्थानेषु कस्मिंश्चित्सप्तप्रकृतिप्रक्षयःक्रियते॥

ताभ्याम्[३]॥बन्ध-हेतु-अभाव-निर्जराभ्याम्[३]॥इति*
हेतु-लक्षण-विभक्ति-
निर्देशः[१];
ततः *
भव-स्थिति-हेतु-समीकृत-
शेष-कर्म-अवस्थितिस्य[६]
युगपद्[अ]*आत्यन्तीकृत-कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षः[१]मोक्षः[१]।
प्रत्येतव्यः[१]। ॥ कर्म-अभावः[१]द्विविधः[१]यत्नसाध्यः[१]
अयत्नसाध्यः[१]। च* इति* । तत्र*चरम-देहस्य[६]

=तिन दोनों बन्धके कारणका अभाव तथा कर्मकी निर्जरा होनेसे ऐसी
=निमित्तलक्षणवाली वा हेतुद्योतक (अपादान पांचवी) विभक्तिकरि
=(सूत्र में)कथन है अर्थात्'बन्धहेत्वभाव'और'निर्जरा'शब्दके पीछे'भ्याम्'लायेहैं
=वहांसे अर्थात् बन्धके हेतुका अभाव तथा निर्जरा होनेसे वा होनेके पश्चात्
=पर्याय (=भव)के स्थितिके कारणके(अर्थात् आयु कर्मके) समान किये हैं
=अवशेष (नाम-गोत्र-वेदनीय)कर्मकी अवस्था जाने(ऐसे केवली भगवानने)
=एकसाथ अत्यन्ततासे किया है समस्तकर्मका अतिशयअभाव सो मोक्ष
=जानना चाहिये ॥ कर्मका अभाव दो प्रकार, यत्न साध्य
=और(=च)अयत्नसाध्य ऐसे है। तहां अन्त(=चरम)शरीरी आत्माके अर्थात् वह पुरुष जिसका वर्तमानशरीर संसारमें अन्तिमशरीर है, विद्यमान शरीरके पश्चात् कोई अन्यशरीर जगतमें धारण नहीं करेगा,भावार्थ तद्भव मोक्षगामी होनेके हेतुसे

नारक-तिर्यग्-देव-आयुषाम्[६]॥असत्त्वात्[५]॥
अभावः[१] न* यत्नसाध्यः[१]। ॥
यत्नसाध्यः[१] इतः* ऊर्ध्वम्* उच्यते I-
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदिषु[७]॥ चतुर्षु[७]॥

=नरक-तिर्यंच-देव-आयुओंके सत्तामें न होने (के हेतु)से
=अभाव है सो अयत्नसाध्य (=न यत्न साध्य) (कर्म अभाव है) ।
=यत्न साध्य वा जतन साध्य(कर्म अभाव)यहांसे(=इतस्)आगेकहाजाता है कि
=अविरत सम्यग्दृष्टि आदिक चार अर्थात् अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत-सम्यग्दृष्टि, प्रमत्तविरतसम्यग्दृष्टि, अप्रमत्तविरतसम्यग्दृष्टि

गुणस्थानेषु[७]॥कस्मिंश्चित्*सप्त-प्रकृति-प्रक्षयः[१]क्रियते I=गुणस्थानोंमेंसे किसी एकमें सात कर्मप्रकृतियोंका विनाश कियाजाता है

निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनरकगतितिर्यग्गत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरकगतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणसंज्ञिकानां षोडशानां कर्मप्रकृतीनामनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने युगपत्क्षयः क्रियते ॥ ततः परं तत्रैव कषायाष्टकं नष्टं क्रियते। नपुंसकवेदः स्त्रीवेदश्च तत्रैव क्षयम्

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ये तीन दर्शनमोहनीयकर्मकी प्रकृतियें हुई, अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान, अनन्तानुबन्धीमाया, अनंतानुबंधी लोभ ये चार चारित्र मोहनीयकर्मकी प्रकृतियें हुई सब मिलकर ये सातप्रकृतियें हुई।

निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि-नरकगति-तिर्यंगति-एक-द्वि-त्रि-चतुर्-इन्द्रियजाति-नरकगतितिर्यंग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-आतप-उद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारण-संज्ञिकानाम्[१]॥ षोडशानाम्[१]॥ कर्मप्रकृतीनाम्[१]॥ अनिवृत्तिबादरसाम्पराय-स्थाने[१]॥ युगपत्[*] क्षयः[१] क्रियते T। ततः * परम्[१]॥

=निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि (दर्शनावरणकी ये तीन)
=नरकगति-तिर्यंचगति-एकेन्द्रियजाति, द्विइन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति,
=चतुरिन्द्रियजाति। नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी
=आतप-उद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणनामा (=संज्ञिकानां)
=सोलह कर्मप्रकृतियोंका अनिवृत्तिबादरसाम्पराय
=(नवमा गुण) स्थानमें एकसाथ नाश किया जाता है। तहां (नवमागुणस्थानमें)
=(उपर्युक्त १६ प्रकृतियोंके नाशहोने) से आगे (=परम्)

तत्र[*] एव[*] कषाय-अष्टकम्[१]॥

=वहां(नवमें गुणस्थानके दूसरे भागमें)ही आठ कषायका समूह अर्थात् अप्रत्याख्यान-क्रोध-अप्रत्याख्यानमान-अप्रत्याख्यानमाया-अप्रत्याख्यानलोभ-प्रत्याख्यानक्रोध-प्रत्याख्यानमान-प्रत्याख्यानमाया-प्रत्याख्यानलोभ

नष्टम्[१]॥ क्रियते T। नपुंसकवेदः[१] स्त्रीवेदः[१] च[*] तत्र[*] एव[*] क्षयम्[१]

=नाश कियाजाता है। नपुंसकवेद और (=च) स्त्रीवेद
=तहां (नवमां गुणस्थानके तीसरे और चौथे भागमें यथासंख्य) ही क्षयको

(१) अनिवृत्तिबादरसांपराय नवमां गुणस्थानके नवभाग हैं इसके प्रथम भागमें निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि ये तीन दर्शनावरणकर्म और ऊपर कहीं हुई १२ नामकर्मकी प्रकृतियें ऐसे १६ प्रकृतियोंका नाश होता है (२) शब्दशः अनुवाद होगा "क्षयको प्राप्त होता" है।

उपयाति । नोकषायषट्कं च सहैकेनैव प्रहारेण विनिपातयति । ततः पुंवेदसंज्वलनक्रोध-मानमायाः क्रमेण तत्रैवात्यन्तिकं ध्वंसमास्कन्दन्ति । लोभसंज्वलनः सूक्ष्मसाम्परायान्ते यात्य-न्तं । निद्राप्रचले क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थस्योपान्त्यसमये प्रलयमुपव्रजतः ॥ पञ्चानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पंचानामन्तरायाणां च तस्यैवान्त्यसमये प्रक्षयो भवति।

उपयाति । । नो-कषाय षट्कम्[1] च* सह*एकेन[2] एव*प्रहारेण[2] विनिपातयति । ।

ततः*पुंवेद-संज्वलनक्रोधमानमायाः[3]।क्रमेण[2]

तत्र*एव*आत्यन्तिकम्[2] (१) ध्वंसम्[2]।
आस्कन्दन्ति T,लोभसंज्वलनः[1]सूक्ष्मसांपराय-
अन्ते[2]याति[1] अन्तम्[2]।,निद्राप्रचले[2]।
क्षीणकषाय-वीतरागच्छद्मस्थस्य[6] उपान्त्य-
समये[2]प्रलयं[2]उपव्रजतःपञ्चानां[3]।।ज्ञानावरणानां[3]।।
चतुर्णां[3]।।दर्शनावरणानां[3]।।च*पञ्चानाम्[3]
अन्तरायाणाम्[3]तस्य[6]एव*अन्त्यसमये[2] प्रक्षयः[1]
भवति T

=प्राप्त होते हैं । और (=च) छह(हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा)कषायकासमूह
=एकबारही(=सह)एकही प्रहार द्वारा(एकेन एव प्रहारेण)निपात वा पतनको प्राप्तहोताहै
अर्थात् नवमगुणस्थानके पांचवां भागमें छह नो कषायका नाश होता है
=वहांसे पुरुषवेद संज्वलनक्रोध-संज्वलनमान-संज्वलनमाया क्रमानुसार
(अर्थात् नवम गुणस्थानके छटवां भागमें पुरुषवेद, सातवांभागमें संज्वलनक्रोध, आठवां
भागमें संज्वलनमान, नवमां भागमें संज्वलनमाया)
=वहीं ही अत्यन्त ध्वंस वा नाश को
=प्राप्त होते हैं । लोभसंज्वलन, सूक्ष्मसाम्पराय (दशवां गुणस्थान)के
=अन्तमें नाश वा क्षयको(=अंतम्)प्राप्त होताहै,निद्रा, प्रचला(दर्शनमोहकी दो प्रकृतियें)
=क्षीण कषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती) वीतराग छद्मस्थके अन्तसे पहिला(उपान्त्य)
=समयमें विनाशको प्राप्त होतीहैं पांच(मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय केवल)ज्ञानावरणीय कर्मकी
=चार(चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल)दर्शनावरणीयकर्मकी औरपांच(दान,लाभ,भोग,उपभोग,वीर्य
=अन्तरायकर्मकी तिस(क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान) के ही अन्त्य समयमें विनाश
=होती है अर्थात् यहाँ तक ६३ प्रकृतियोंका विनाश कर केवल ज्ञान प्रगट हुआ है ।

(१) ऐसे चार अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और चार प्रत्याख्यान क्रोध, मान,माया, लोभ नपुंसकवेद-स्त्रीवेद-छह नोकषाय-पुरुषवेद-संज्वलन क्रोध मान-माया ऐसे बीसचारित्र मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां नवमें गुणस्थानके दूसरे भागसे नवमें भागतक पूर्वोक्तक्रमसे नाशको प्राप्तहोताहैं

अन्यतरवेदनीयदेवगत्यौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरपंचबंधनपंचसंघात संस्थान-षट्कौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गषट्संहननपञ्चप्रशस्तवर्णपञ्चाप्रशस्तवर्णगन्धद्वय-

अन्यतर-वेदनीय-देवगति-	=दोनोंमेंसेएक (=अन्यतर) वेदनीयकर्मकी प्रकृति-देवगतिनामकर्म-
औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-	=औदारिकशरीरनामकर्म, वैक्रियिकशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म,
तैजस-कार्मणशरीर-पञ्चबन्धन-	=तैजसशरीरनामकर्म, कार्मणशरीरनामकर्म-शरीरके बंधन पांच (औदारिकबंधन-नामकर्म, वैक्रियिकबन्धननामकर्म, आहारकबन्धननामकर्म, तैजसबन्धननामकर्म, और कार्म्मणबन्धननामकर्म)
पञ्चसंघात—	=(शरीरके) संघात पांच (औदारिकसंघातनामकर्म्म, वैक्रियिकसंघातनामकर्म, आहारकसंघातनामकर्म, तैजससंघातनामकर्म,कार्मणसंघातनामकर्म)
संस्थानषट्क—	= (शरीरके) संस्थान छह अर्थात् (समचतुरस्रसंस्याननामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननामकर्म, स्वातिसंस्थाननामकर्म,कुब्जकसंस्थाननामकर्म, वामनसंस्थाननामकर्म, हुंडकसंस्थाननामकर्म)
औदारिक-वैक्रियिक--	=औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्गनामकर्म, वैक्रियिकशरीरआंगोपांगनामकर्म,
आहारकशरीरआंगोपांग-षट्संहनन-	=आहारकशरीरआंगोपांगनामकर्म । (शरीर)के संहनन छह अर्थात् (वज्रवृषभनाराच-संहननामकर्म, वज्रनाराचसंहननामकर्म, नाराचसंहननामकर्म, अर्द्धनाराच-संहननामकर्म, कीलकसंहननामकर्म -असंप्राप्तसृपाटिकासंहननामकर्म,
पञ्च-प्रशस्तवर्ण-	=पांच अच्छे वर्ण अर्थात् प्रशस्त शुक्लवर्णनामकर्म, अच्छापीतवर्णनामकर्म, भलाकृष्ण-वर्णनामकर्म, चोखानीलवर्णनामकर्म, प्रशस्तरक्तवर्णनामकर्म,
पञ्च-अप्रशस्तवर्ण—	=पांचअप्रशस्तवर्ण अर्थात् अप्रशस्तशुक्लवर्णनामकर्म, बुरापीतवर्णनामकर्म, बोधाकृष्ण-वर्णनामकर्म, अप्रशंसनीयनीलवर्णनामकर्म, अप्रशस्तरक्तवर्णनामकर्म,
गन्धद्वय	=दो गन्ध नामकर्म अर्थात् सुरभिगन्ध नामकर्म और असुरभिगन्ध नामकर्म,

पञ्चप्रशस्तरसपञ्चाप्रशस्तरसस्पर्शाष्टकदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वास-प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तकप्रत्येकशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगसुस्वरदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनिर्माणनामनीचैर्गोत्राख्याद्वासप्ततिप्रकृतयोऽयोगकेवलिन उपान्त्यसमये विनाशमुपयान्ति । अन्यतरवेदनीयमनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजाति-

पञ्च-प्रशस्तरस- =पांच प्रशस्तरसनामकर्म अर्थात् प्रशंसनीय तिक्तरसनामकर्म, अच्छा कटुरसनामकर्म, भला कषायलारसनामकर्म, चोखा आम्लरसनामकर्म, प्रशस्त मधुररसनामकर्म,

पञ्च-अप्रशस्तरस- =पांच अप्रशस्तरसनामकर्म अर्थात् अप्रशंसनीय तिक्तरसनामकर्म, बुरा कटुरसनामकर्म, अप्रशस्त कषायलारसनामकर्म, अप्रशंसनीय आम्लरसनामकर्म, बुरामधुररसनामकर्म,

स्पर्श-अष्टक- =स्पर्शके आठ भेद अर्थात् कर्कश स्पर्शनामकर्म, मृदु स्पर्शनामकर्म, गुरु स्पर्शनामकर्म, लघुस्पर्शनामकर्म, स्निग्ध स्पर्शनामकर्म, रूक्ष स्पर्शनामकर्म, शीतस्पर्शनामकर्म, उष्णस्पर्शनामकर्म,

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-अगुरुलघु-उपघात- =देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनामकर्म, अगुरुलघुनामकर्म, उपघातनामकर्म,

परघात-उच्छ्वास-प्रशस्त- =परघातनामकर्म, उच्छ्वासनामकर्म, प्रशस्त विहायोगतिनामकर्म,

अप्रशस्तविहायोगति-अपर्याप्तक- =अप्रशस्त विहायोगतिनामकर्म, अपर्याप्तकनामकर्म-

प्रत्येकशरीर-स्थिर-अस्थिर- =प्रत्येकशरीरनामकर्म-स्थिरनामकर्म, अस्थिरनामकर्म,

शुभ-अशुभ-दुर्भग-सुस्वर- =शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, दुर्भगनामकर्म, सुस्वरनामकर्म,

दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति- =दुःस्वर नामकर्म, अनादेयनामकर्म, अयशःकीर्तिनामकर्म-

(१)निर्माणनाम-नीचैर्गोत्र-आख्या[३]॥ (२) =निर्माणनामकर्म, नीचगोत्रनामकर्म नामा वा नामक वा संज्ञिक [अर्थात् नीचगोत्र

द्वासप्तति-प्रकृतयः[३]॥ =इत्यादिक दियेगये हैं नाम जिनको ऐसी] बहत्तर प्रकृतियें [नामकर्म की] हैं

अयोग केवलिनः[४] उपान्त्यसमये[२] विनाशम्[३] =अयोगकेवलीके अंतसे पहिले [=उपांत्य] समयमें प्रक्षय वा प्रलय को

उपयान्ति T । अन्यतर-वेदनीय- =प्राप्त होती हैं ? दोमेंसेएक [=अन्यतर] वेदनीय कर्मकी प्रकृति

मनुष्य-आयुस्-मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजाति- =मनुष्यआयुः नामकर्म-मनुष्यगति नामकर्म, पञ्चेंद्रियजाति नामकर्म-

(१) नाम = नामकर्म अर्थात् देवगतिसे निर्माणतक वृत्तिमेंप्रत्येक प्रकृतिपर "नाम" शब्दलगेगा, जिसका अर्थ है "नामकर्म" जैसा कि हमने प्रत्येक प्रकृति पर अनुवादमें "नामकर्म" ऐसाशब्द जोड़ा है। (२) आख्या = नामासंज्ञाकी गई-नाम रक्खागया-आख्या शब्द प्रत्येक प्रकृति

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यत्रसबादरपर्याप्तकसुभगादेययशःकीर्तितीर्थकरनामोच्चैर्गोत्रसञ्ज्ञिकानां त्रयोदशानां प्रकृतीनामयोगकेवलिनश्चरमसमये विच्छेदो भवति ॥ आह किमासां पौद्गलिकीनामेव द्रव्यकर्मप्रकृतीनां निरासान्मोक्षोऽवसीयते उत भावकर्मणोऽपीत्यत्रोच्यते—

॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-त्रस- =मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनामकर्म, त्रसनामकर्म,
बादर-पर्याप्तक-सुभग-आदेय- =बादरनामकर्म, पर्याप्तकनामकर्म, सुभगनामकर्म, आदेयनामकर्म,
यशःकीर्ति-तीर्थकरनाम- =यशःकीर्तिनामकर्म, तीर्थकरनामकर्म अथवा तीर्थकरनामकर्म,
उच्चैः*गोत्रसञ्ज्ञिकानाम्।त्रयोदशानाम्।प्रकृतीनाम्॥ =ऊंचगोत्रनामवाली, (=संज्ञिकानाम्) (ये) तेरह प्रकृतियोंका
अयोगकेवलिनः।चरम-समये।विच्छेदः। भवति T॥ =अयोगकेवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) के अन्तसमयमें विनाश होता है
आह T किम्*आसाम्।पौद्गलिकीनाम्।एव* =प्रश्न करता है कि (=आह) क्या इन पुद्गलमयी ही
द्रव्यकर्मप्रकृतीनाम्।निरासात्।मोक्षः।अवसीयते T =द्रव्यकर्म प्रकृतियोंके अभाव वा विनाशसे मोक्ष निश्चय वा प्रतीति की गई है
उत*भावकर्मणः।अपि*? इति*अत्र*उच्यते T =अथवा भाव कर्मके(विनाश से) भी ? ऐसा(प्रश्न होने पर) यहां कहाजाताहै कि

औपशमिकादि भव्यत्वानां च॥३॥(१) =औपशमिकादिभव्यत्वानांच (भावानामभावान्मोक्षोभवति)
=औपशमिकादिभव्यत्वानांच भावानाम् अभावात् मोक्षःभवति।

पर लगेगा बहत्तर स्थानोंमें हमने अनुवादमें केवल अंतमें लगाया है जिससे बहत्तर पर भी समझलेना चाहिए जैसे देवगति=देवगतिनामानाम-कर्म वा देवगतिनामक नामकर्म। नीचैर्गोत्र=नीचगोत्रसंज्ञिक नामकर्म (कोप्रकृति)। निर्माण=निर्माणनामानामकर्म ऐसे अन्यमें भी लगावना॥

[१] इस सूत्रका तथा चौथे सूत्रका पाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है,परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके तीसरे और चौथे सूत्रका जो पाठ है उनके यहांका वह पाठ चौथे सूत्रका ऐसे है कि "औपशमिकादिभव्यत्वाभावाच्चान्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन-सिद्धत्वेभ्यः॥ ४॥" = औपशमिक-आदि- भव्यत्व-अभावात्-च-अन्यत्र केवल-सम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः॥ ४॥ हमारे यहांका चौथा सूत्र इस प्रकार है कि "अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन सिद्धत्वेभ्यः॥ ७॥ दोनों सम्प्रदायोंके पाठ मिलानेसे जान पड़ता है कि सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पाठ में "अभावात्" शब्द अधिक है। हमारे यहां 'अभावात्' की अनुवृत्ति "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः सूत्रसे

सूत्रार्थः-औपशमिकादि-भव्यत्वानाम्[३]॥"च* =और (=च) औपशमिकादि भव्यत्व

भावानाम्[१]अभावात्-[५] मोक्षः [१] भवति T ॥ =भावोंके अभावसे मोक्ष होती है। अर्थात् औपशमिकादि भावोंका (अध्याय २ सूत्र १) पारिणामिक भावोंमेंसे भव्यत्व भावका (अध्याय २ सूत्र७) और पुद्गल कर्मोंकी समस्त प्रकृतियोंके अत्यन्त नाशहोने पर (अध्याय १० सूत्र २)किन्तु अग्रिम सूत्रमेंकहेजानेवाले भावों सहित (देखो अध्याय १० सूत्र ४) मोक्ष होती है॥

लेली है। इसलिये हमारे यहांके तीसरे और चौथे सूत्रोंका और सभाष्य० के केवल चौथे सूत्रका पाठ विशेषतासे लगभग एक है। जैसे [औपशमिक-आदि-भव्यत्व-अभावात् च अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन सिद्धत्वेभ्यःमोक्षो भवति।(सभाष्य० के ३ सूत्रसे"मोक्षो भवति"लिया है। औपशमिक-आदि-भव्यत्वानांच-अभावात् (की अनुवृत्ति २ सूत्र से लीगई है)अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः 'मोक्षो भवति,' 'मोक्षो भवति'कीअनुवृत्तिहमारे यहांके दूसरे सूत्रसे लीगईहै प्रथम इसके कि हम दोनों सम्प्रदायोंके सूत्रोंके क्रम तथा अर्थों के सम्बन्ध में कुछ लिखें और सूत्रोंके तात्पर्यके विषयमें अपने कुछ विचार प्रगट करें यह आवश्यक जान पड़ताहै कि औपशमिकादि भावोंके विषयमें जो दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्रों द्वारा प्रगट किये गये है कुछ निवेदन करदें (क) दोनों सम्प्रदायोंमें दूसरे अध्यायके १ सूत्रसे ४ तक का पाठ तथा अर्थ एक है। (ख) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो ५ वां सूत्र है उसमें हमारे यहां के पांचवें सूत्रसे "ज्ञानाज्ञानदर्शन" वाक्य के लगताहीं "दानादि" शब्द अधिक है, शेष सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक ही है परन्तु अर्थ में भेद किंचित् भी नहीं है क्योंकि हमारे यहां "लब्धयः" शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि-क्षायोपशमिकलाभलब्धि-क्षायोपशमिकभोगलब्धि-क्षायोपशमिकउपभोगलब्धि-क्षायोपशमिकवीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायमें दानादि लब्धयः वाक्य का यही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहां लब्धयः शब्दका इसलिये दोनोंमें अर्थ भेद कुछ भी नहीं है॥ (ग) छठवां सूत्रमें दोनों सम्प्रदायके २१ औदयिकभावोंका कथन है "संयतासिद्ध" हमारे यहां पाठ है "संयतासिद्धत्व" सभाष्य० में है। परन्तु अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है, क्योंकि हमारे यहां "असिद्ध" का अर्थ "असिद्धत्व" किया है अतः इस सूत्रके अर्थमें भी कुछ भेद नहीं हुआ। (घ) "जीवभव्याभव्यात्वानिच" (सर्वार्थसिद्धि सूत्र ७ अध्याय २) "जीवभव्याभव्यत्वादीनिच" (सभाष्य० अध्याय २ सूत्र ७) इस सातवां सूत्रमें "आदि" हमारे यहांसे अधिक है परन्तु इस पर भी अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य० के पाठमें आदि शब्द करि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंको ग्रहण किया है हमारे यहां साधारण वा सामान्य पारिणामिक भावोंको"च" शब्द करि ग्रहण किया है। असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव वे हैं जो केवल जीवमें ही पाये जावें और किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही भव्यत्व-अभव्यत्व-तथा जीवत्व हैं अधिक नहीं हैं वे अनादि काल सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिक भाव वा सामान्य पारिणामिक भाव वा विशेष रहित पारिणामिक भाव वे हैं जो जीवमें भी होते हैं और अन्य अचेतन धर्मादिक द्रव्यों में भी होते हैं वे [सामान्य गुण] अनेक हैं। और ये भी अनादि काल सिद्ध हैं [सभाष्य० पृष्ठ ४० देखो]॥ साधारण पारिणामिक भावोंमें कितने ही के नाम इस प्रकार हैं कि [१] अस्तित्व=जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो। [२] वस्तुत्व-अर्थात् जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थ क्रिया हो जैसे:— "घड़े" की अर्थ क्रिया "जलआदिकाधारण" है॥

(३) द्रव्यत्व अर्थात् जिसशक्तिके निमित्तसे सर्वदा एकसा न रहै और जिसकी पर्यायें (अवस्थायें) सदा पलटती रहें।
(४) प्रमेयत्व-अर्थात् जिस शक्ति के निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो॥
(५) अगुरुलघुत्व अर्थात् जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता दृढ़ रहै-एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमै और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर पृथक् पृथक् न हो जावें॥
(६) प्रदेशवत्व-अर्थात् जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो (७) मूर्तत्वम् (=) अमूर्तत्वम् (देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १५३ अध्याय २ सूत्र ७) अस्तित्व-अन्यत्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व-पर्यायवत्व-असर्वगतत्व-अनादि संततिबन्धनबद्धत्व-प्रदेशवत्व-अरूपत्व-नित्यत्व-(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ७७ तथा ७८) वहाँ पर प्रत्येक इन साधारण पारिणामिक भावोंकी परिभाषा दीगई है॥
(चशब्द समुच्चितास्तु साधारणाः असाधारणाश्च) अस्तित्व अन्यत्व-कर्तृत्व-इतरत्व-पर्यायवत्व-असर्वगतत्व-अनादिसंततिबंधत्व-प्रदेशवत्व अरूपत्व-नित्यत्व आदिक, इन के विवरण के लिए देखो तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३१६, ३१७, ॥
अस्तित्व-अन्यत्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व-गुणवत्व-असर्वगतत्व-अनादि कर्म संतान बद्धत्व-प्रदेशत्व-अरूपत्व-तथा नित्यत्व इत्यादि और भी अनादि कालसिद्ध पारिणामिक (साधारण) भाव जीव के हैं (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ४०)।
इस समस्तका निचोड़ यह है कि दोनों सम्प्रदायमें दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे सातवां सूत्र तकके अर्थोंमें कुछ भेद नहीं है श्वेतांबर सम्प्रदायके किसी किसी सूत्रके पाठमें दो एक अक्षर अधिक हैं॥ जैसा कि अध्याय दोमें जहां सातों सूत्रका कथन है भिन्न भिन्न लिख चुके हैं॥
☞हमारे यहांके ३ और ४ सूत्रको एक सूत्र मानें वा एक सूत्र समझें जैसाकि सभाष्य० में इन दोनों सूत्रों को एक ही नियत किया है तो (क) मोक्षके स्वरूपके समझनेमें सुगमता होती है (ख) अर्थके करनेमें सुगमता होती है (ग) पुद्गल कर्मोंका समस्त प्रकृतियोंके नाशका द्योतक इस अध्याय का दूसरा सूत्र होता है और भावोंके अभाव तथा विद्यमानताके सम्बन्धमें यह सूत्र हो जाता है। फिर हमको इस सूत्रके अर्थ करनेमें इस बात पर बाध्य नहीं होना पड़ता कि हम इसी सूत्रके अर्थ करनेमें यह भी लिखदें कि क्षायक भावोंका मोक्षमें नाश नहीं होता है जैसा कि किसी किसी टीका कारने किया है। इन तीनोंकी पुष्टता नीचे के अर्थ से होती है :—

बन्ध-हेतु-अभाव-निर्जराभ्याम्-कृत्स्नकर्म-	=बन्धके हेतुके अभावसे और निर्जराके द्वारा समस्त पुद्गल कर्मोंकी प्रकृतियोंका
विप्रमोक्षः च अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-	=अत्यन्तनाश (सूत्र २ अध्याय १०) और (=च) पूरा (=केवल) सम्यक्त्व-
ज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः,	=सर्व (=केवल) ज्ञान,पूर्ण (=केवल) दर्शन, केवल सिद्धत्व (अकेलाजीवत्व) केविना
औपशमिक आदि-भव्यत्वानां अभावः	=औपशमिक, क्षायिक-मिश्र-औदयिक (=आदि) भव्यत्वका अभाव
मोक्षः	=सो मोक्ष है (अध्याय १० सूत्र ३-४) भावार्थ—बन्ध के कारण मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय-योगनिका अभाव होनेसे और निर्जरा (के हेतु) से समस्त कर्मका अत्यन्त नाश और (=च) पूरा (=केवल) सम्यक्त्व, सर्व (=केवल) ज्ञान, पूर्ण (=केवल) दर्शन-इन ज्ञानदर्शनके अविनाभावी अनंत वीर्य, अनंत सुख, अकेला (=केवल) सिद्धत्व वा जीवत्व के विना वा अतिरिक्त औपशमिक,क्षायिक, मिश्र-औदयिक (=आदि) तथा(अनेक साधारण पारिणामिक जैसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्व इत्यादि भावोंमेंसे बहुरि तीन असाधारण पारिणामिक भावों में से) केवल भव्यत्व का (क्योंकि अभव्यत्व तो मोक्षगामी के है ही नहीं) विनाश सो मोक्ष है॥ सारांशः—मोक्ष जीवके समस्त पुद्गल कर्म प्रकृतियोंका विनाश

किं, मोक्ष इत्यनुवर्तते । भव्यत्वग्रहणम्

इस वृत्ति वा भाष्यको समझनेके लिये इस सूत्रकी टिप्पणी पृष्ठ १४से १८ तक अवश्य २ समझलो

वृत्त्यनुवादः—किम्[1]''मोक्षः[1]इति[1] =(प्रश्न) क्या(बात) ? (उत्तर) मोक्ष ऐसा (शब्द इस सूत्रमें ऊपरके द्वितीय सूत्रसे)

अनुवर्तते[1] । भव्यत्व-ग्रहणम्[1]'' =आता है अथवा अनुवर्तमान है ।। (इस सूत्रमें) भव्यत्वका लाना

होता है और सिद्धत्व वा जीवत्व तथा अनेक साधारण पारिणामिक भावोंके बिना और केवल सम्यक्त्व-केवल ज्ञान,केवल दर्शन-इनके अविनाभावी अनंतसुख-अनंतवीर्यके बिना अवशेष समस्त भावोंका मोक्ष जीवके अभाव होता है ॥ (प्रश्न) नौ क्षायिक भावोंमेंसे मोक्षजीव अर्थात् सिद्धके कौन २ भाव होते हैं और कैसे?(उत्तर)क्षायिकज्ञान,क्षायिकदर्शन,अर्थात्क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकवीर्य,जो क्षायिकज्ञान तथा क्षायिकदर्शनके अविनाभावी हैं सूत्र ४ अध्याय १० के अनुसार हैं। "दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य-लब्धिका प्रतिपक्षी जो अंतराय कर्मताके अभाव तैं शक्ति तो प्रगट है ही परंतु शरीरविना तिनकी प्रवृत्ति होय नहीं,तातैं ऐसा जानना जो परम उत्कृष्ट अनंतवीर्य अव्याबाध स्वरूपकरिही तिनकी तहां प्रवृत्ति है। जैसैं केवलज्ञानरूपकरि तीनलोक तीनकालके अनंत द्रव्य गुण पर्यायनिके युगपत् ग्रहण करनेका सामर्थ्यकरि ही अनंत वीर्यकी प्रवृत्ति होयहै तैसे यह भी जानना''अर्थ प्रकाशिका अध्याय २ सूत्र ४ की व्याख्या से उद्धृत ॥ चारित्र मोहनीय कर्मके नाशसे क्षायिक चारित्र होताहै इसको क्षायिक यथाख्याय चारित्र भी कह सक्ते हैं जो "पूर्व बारमें गुणस्थान ही में होगया ॥ परंतु चारित्रकी परिपूर्णता जो चौरासी लाख उत्तरगुण और अठारह हजार शील इनकी परिपूर्णता चोदमा गुणस्थानके ही अंतमें होय है । तातैं यथाख्यातचारित्रकी इहां लिखिये है ॥ और यथाख्यात चारित्ररूप ज्ञानदर्शन ही का परिणमन हुवा है ॥ और जो पहलो ही रत्नत्रय परिपूर्ण होगया होय तो मोक्ष उसही कालमें क्या चाहिए ॥ तातैं इहां रत्नत्रयकी पूर्णता भई तिसही समयमें मोक्षहोय ऐसे जानना" ऐसे सिद्धोंके क्षायिक चारित्र है ॥ अर्थ प्रकाशिका अध्याय ६ सूत्र ४२ की व्याख्यासे उद्धृत ॥ सयोगकेवलीके क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन,क्षायिकदान,क्षायिकलाभ,क्षायिकभोग,क्षायिकउपभोग क्षायिकवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र इस प्रकार हैं कि ज्ञानावरणकर्मके, अत्यन्त क्षय होनेसे केवल ज्ञान अर्थात् क्षायिकज्ञान उत्पन्न होताहै इसी प्रकार दर्शनावरणकर्मके अत्यन्त क्षय होनेसे केवल दर्शन अर्थात् क्षायिक दर्शनकी प्राप्ति होती है अथवा उपलब्धि होती है । "अर दानांतराय नामकर्मके अत्यंतक्षयतैं अनंतप्राणीनिकैं उपकार करने वाला दिव्यध्वनिकूं आदि लेय क्षायिक अभयदान होय है ॥ बहुरि लाभांतरायका अत्यंतक्षयतैं कवलाहारक्रियाकरि रहित भगवान् केवलीके शरीरमें धलाधालका कारण अर अन्य मनुष्यनितैं असाधारण परम शुभ सूक्ष्म नोकर्मपुद्गल समयसमयप्रति सम्बन्धकूं प्राप्त होय हैं ॥ तिन पुद्गलनितैं औदारिक शरीर की किंचित् ऊन कोटीपूर्ववर्षनिकी स्थिति रहे है ॥ सो ही क्षायिक लाभ है ॥ बहुरि भोगांतरायके अत्यंत अभावतैं अतिशयवान् पंचवर्णके सुगंधपुष्पनिकी वर्षा तथा चरणारविंदके नीचे होयसे पचीस कमलनिकी रचना तथा सुगंध धूप मंद सुगंध पवन इत्यादिक अनेक विशेषनिकौं लीए क्षायिक भोग है ॥ बहुरि उपभोगांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतैं सिंहासन छत्रत्रय चौंजना अशोकवृक्ष प्रभामंडल अतिगंभीर देवदुंदभी इत्यादि विभूति प्रकट होय, ते क्षायिक उपभोग है ॥ बहुरि वीर्यांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतैं अनंतवीर्य प्रकट होय है ॥ बहुरि मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व , सम्यक्त्व अर

अन्यपारिणामिकनिवृत्त्यर्थम ॥ तेन पारिणामिकेषु भव्यत्वस्यौपशमिकादीनां च भावानामभावान्मोक्षो भवतीत्यवगम्यते ॥ आह यद्यपवर्गो भावोपरतेः प्रतिज्ञायते नत्वौपशमिकादिभावनिवृत्तिवत्सर्वक्षायिकभावनिवृत्तावपि व्यपदेशो मुक्तस्य प्राप्नोतीति । स्यादेतदेवं, यदि विशेषो नोच्यते अस्त्यत्र विशेष इत्यपवादविधानार्थमिदमुच्यते-

अन्य-
=दूसरे (साधारण अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्त्व इत्यादि अनेक और जीवत्व असाधारण—क्योंकि अभव्यत्व तो मोक्षगामीके होता ही नहीं है)

पारिणामिक-निवृत्ति-अर्थम्[१।१।] ;तेन[३।१।]
=पारिणामिक (भावों)के निषेधके लिये है । तिस (भव्यत्वके ग्रहण)से (सामान्य अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्त्व इत्यादि अनेक औरतीनविशेष वा असाधारण

पारिणामिकेषु[७।१] भव्यत्वस्य[६।१।]
=पारिणामिक भावोंमेंसे भव्यत्वका (क्योंकि अभव्यत्व असाधारण पारिणामिक भाव तो मोक्षगामीके होता ही नहीं)

औपशमिक-आदीनाम्[६।३] च* भावानाम्[६।३]
=और (=च) औपशमिक क्षायिक-मिश्र-औदयिक भावोंके

अभावात्[५।१]मोक्षः[१।१]भवतिIइति*अवगम्यते । आहT=अभावसे मोक्ष होती है ऐसा जताया गया है ॥ पूछता है कि

यदि* अपवर्गः[१।१]भावः[१।१]उपरतेः[५।१]
=यदि मोक्ष (=अपवर्गः) परिणामोंके हटनेसे (=उपरतेः) वा अभावसे (=उपरतेः)

प्रतिज्ञायतेT तु*औपशमिक-आदि-भाव-
=प्रण कीगई वा स्वीकार की गई है तो (=तु) क्या औपशमिकादि भावोंके

निवृत्तिवत्*सर्व-क्षायिकभाव-निवृत्तौ[७।१]अपि*
=अभावके समान सब क्षायिक भावोंके अभावमें भी

व्यपदेशः[१।१]मुक्तस्य[६।१]न* प्राप्नोतिT इति* ।
=मोक्षका कथन प्राप्त नहीं (=न) होता है ॥

स्यात्[३।१]एतद्[१।१] एवम् *
=(उत्तर) यह इसप्रकार होजाता अर्थात् सर्व क्षायिकभावोंका भी अभाव (मोक्षमें) होजाता

यदि*विशेषः[१।१]न*उच्यतेTअस्ति अत्र विशेषः[१।१]इति=यदि विशेष न कहा जाता, यहां विशेष कथन है ।

अपवाद-विधान-अर्थम्[४।१]इदम्[१।१]उच्यते T—
=(सामान्य तीसरे सूत्रपर)विशेष नियम(=अपवाद)नियत करनेके लिये यह कहाजाता है कि

अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनि सात प्रकृतिनका अत्यंत अभावतैं क्षायिकसम्यक्त्व प्रकट होयहै॥बहुरि समस्त चारित्रमोहके अभावतैं क्षायिकचारित्र प्रकट होयहै॥ ऐसे अरहंत नाम परमात्माकै क्षायिकदानादि कहैं ते शरीरनामकर्म वा तीर्थंकरप्रकृतिकी सापेक्षातैं कहनाजानना॥"

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

अन्यत्रशब्दापेक्षया को निर्देशः केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यो अन्यत्रान्यस्मिन्नयं विधिरिति॥यदि चत्वार एवावशिष्यन्ते अनन्तवीर्यादीनां निवृत्तिः प्राप्नोति-नैष दोषःज्ञानदर्शन

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

=[१]केवल-सम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः अन्यत्र(अभावान्मोक्षो भवति) ॥४॥

सूत्रार्थः—[२]केवलसम्यक्त्व-[३]केवलज्ञान- =पूरा (=केवल) सम्यग्दर्शन, संपूर्ण (=केवल) ज्ञान,

[४]केवलदर्शन-[५]केवल सिद्धत्वेभ्यः[५]''अन्यत्र* =समस्त(=केवल)दर्शन और शुद्ध(=केवल)सिद्धत्व(भावों)से अतिरिक्त वा भिन्न(=अन्यत्र)

अभावात्[५]' मोक्षः [१]' भवति T =(भावों)के अभावसे मोक्षहोती है ज्ञानदर्शनके अविनाभावी अनंतवीर्यऔरअनंतसुखभी हैं।

वृत्यानुवादः—अन्यत्र-शब्द-अपेक्षया[३]''कः[१]' =(प्रश्न) अन्यत्र शब्दकी अपेक्षासे (इस सूत्रमें) क्या

निर्देशः[१]' ? केवल-सम्यक्त्व- =उपदेश कथन, वा निरूपण अथवा वर्णन है ? (उत्तर) केवलसम्यक्त्व

केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसिद्धत्वेभ्यः[५]'' =केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसिद्धत्व अर्थात् शुद्धजीवत्वसे

अन्यत्र* अन्यस्मिन्[७]' अयम्[१]' विधिः[१]' इति * ॥ =अतिरिक्त(=अन्यत्र)अन्यमें यह(अर्थात् पूर्व सूत्रकी)व्यवस्था, विधान, वा स्वीकारता है अर्थात् सूत्रमें कहेहुए चार भावोंको छोड़कर अन्य(स्वतत्त्व) भावोंके अभावसे मोक्ष होती है॥

यदि * चत्वार[१]' =(प्रश्न) जो (=यदि) चार (केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसिद्धत्व)

एव* अवशिष्यन्ते T अनंतवीर्य-आदीनाम्[६]' =ही (मोक्षमें) अवशेष रहते हैं तो अनंत शक्ति आदिक का (मोक्ष जीवके)

निवृत्तिः[१]'' प्राप्नोति T न*एषः[१]'दोषः[१]' ज्ञानदर्शन-=निषेध प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है। ज्ञानदर्शनके

(१) इस सूत्रका हमारी सम्प्रदायमें सर्वत्र एक पाठ है। यही सूत्र शब्दशः श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अध्याय १० के सूत्र ४में गर्भित है। जैसा कि पूर्वमें तीसरे सूत्रकी टिप्पणीमें हम लिख चुके हैं॥ इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे "अभावात्" और 'मोक्ष'शब्द की अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है॥ (२) केवल=पूरा (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ११६(३)केवल=सम्पूर्ण-कृत्स्न (अमरकोश नानार्थवर्ग २०३ श्लोक) (४) केवल=सर्व (अमरसार श्लोक ४७४) (५) केवल=शुद्ध (वैद्यकोश पृष्ठ २०८)ऐसे केवल शब्द चारोंपर पृथक् पृथक् लगाना चाहिये॥

अविनाभावित्वादनन्तवीर्यादीनामविशेषः। अनन्तसामर्थ्यहीनस्यानन्तावबोधवृत्त्यभावाज्ज्ञानमय-पर्यायत्वाच्च सुखस्येति॥ अनाकारत्वान्मुक्तानामभाव इति चेन्न—अतीतानन्तरशरीराकारत्वात्।

अविनाभावित्वात्[५।१।१]
अनंतवीर्य—आदीनाम्[६।३] अविशेषः[१],
अनंत—सामर्थ्य—हीनस्य[६।१] अनन्त अवबोध - वृत्ति—
अभावात्[५।१] ज्ञानमयपर्यायत्वात्[५।१।१] च*सुखस्य[६।१।१] इति*
अनाकारत्वात्[५।१।१] मुक्तानाम्[६।३] अभावः[१]
इति* चेत्* न*
अतीत—अनन्तर—शरीर—
आकारत्वात्[५।१।१]

=अविनाभावी होनेसे अथवा व्याप्ति होनेसे वा एकमेक होनेके हेतुसे
=(इस सूत्रमें) अनंत वीर्यादिकका विशेषनहींहै अर्थात् अनंतवीर्यादिकका निर्देशनहींकियाहै
=क्योंकि अनंतवीर्य हीनके अनंत ज्ञानकी प्रवृत्तिका
=अभाव है। और(=च)सुखकी ज्ञानमय पर्याय है(सुखमें और ज्ञानमें भिन्नता नहीं है)।
=मोक्ष गये हुए(जीव)निकें आकार न होने (केनिमित्त)से अभाव वा अविद्यमानता होतीहै
=ऐसा संशय होने पर (कहते हैं कि) नहीं
=क्योंकि अत्यन्त समीपवर्ती (=अनन्तर) व्यतीत गतिका (मोक्षमें)
=आकारहोनेसे(उक्त अभाव)नहीं है(=न)अर्थात् क्योंकि व्यवधान,बीच अथवा अन्तर रहित मोक्षगये हुये समयमें (=चौदहवें गुणस्थानकी द्वितीय समये में) जो शरीर विद्यमान रहगया है उस शरीरका आकार मोक्षमें है। अयोग केवली चौदहवां गुणस्थानवर्तीके द्वितीय (=अंतसमयमें) जो शरीर भूमिपर रहगया है उस शरीरका मोक्षमें आकार है अतः मोक्षमें जीवका अभाव नहीं है भावार्थ यह प्रश्न होने पर कि मुक्त जीवका कोई आकार नहीं है इसलिये मोक्ष गयेहुए जीवका कोई अस्तित्व नहीं है उत्तरमें कहते हैंकि मोक्ष जीवके अस्तित्वका नाश (मोक्षमें) नहीं होता है क्योंकि चौदहमें गुणस्थान के द्वितीय समयमें जिस शरीरको छोड़कर जीव मोक्ष हुआ है उस शरीरके आकार आत्माके असंख्यात अमूर्तीक प्रदेशोंको लिये हुए शुद्ध जीव मोक्षमें तिष्ठता है

"जिस शरीरतैं मुक्त होय है तिस शरीरके आकार जीवके अमूर्तीक प्रदेशनिका आकार है॥" पं०पन्नालाल न्याय० चरमशरीर="अतीत अनन्तर शरीर" पं०पन्नालाल दूनी॥ राजवार्तिक, वार्तिक११, सर्वार्थसिद्धिकी दोनों मुद्रित प्रतियोंमें अतीतानन्तशरीराकार पाठ है, राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्त लिखित तीन प्रतियोंकी और हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ५०६ में अतीतानंतर शरीर" पाठ है॥ यत्र चरम शरीराकारास्तेवर्तन्ते श्रुत० पत्र २६२, अतीतानन्त पाठ अशुद्ध है, अतीतान्त पाठ होसका है तब अर्थ होगा पिछले कालमें अन्तका स्थितिरूप शरीर अर्थात् चोदहवें गुणस्थानकी दूसरी समय जो मोक्षमें जानेकी अंतिम समय है उस समयमें जो शरीर विद्यमान पृथिवीपर रहगया है सोहै॥

स्यान्मतं यदि शरीरानुविधायी जीवः तदभावात्स्वस्वाभाविकलोकाकाशप्रदेशपरिमाणत्वात्तावद्विसर्पणं प्राप्नोतीतिनैष दोषः ॥ कुतः—कारणाभावात् ॥ नामकर्मसम्बन्धो हि संहरणविसर्पणकारणं तदभावात्पुनः संहरणविसर्पणाभावः ॥ यदि कारणाभावान्न संहरणं न विसर्पणं तर्हि गमनकारणाभावादूर्ध्वगमनमपि न प्राप्नोति अधस्तिर्यग्गमनाभाववत् । ततो यत्र मुक्तस्त त्रैवावस्थानं प्राप्नोतीत्यत्रोच्यते—**तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥**

स्यात्[1] मतम्[1] यदि* शरीर–अनुविधायी[1] जीवः[1]	=यदि ऐसा मत है कि जीव शरीरकी रचनाकेआकारकेअनुसार (=अनुविधायिन्) था अर्थात् जीव शरीरके बन्धनमें था तब शरीरके आकारके अनुकूल था
तद्–अभावात्[5] स्वाभाविक–	=तो उस (शरीर)के नाश होनेसे स्वभावसिद्ध (=स्वाभाविक)
लोकाकाश–प्रदेश–परिमाणत्वात्[5]'	=लोकाकाशके प्रदेशोंके बराबर (जीवके प्रदेश) होने (क हेतु) से
तावत्*विसर्पणम्[1]' प्राप्नोति T इति*	=उस (लोक)के बराबर (=तावत्) (जीवकी) फैलावट प्राप्त होती है,ऐसा(प्रश्न)है
न*एषः[1] दोषः[1] । कुतः*? कारण–	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है (प्रश्न) क्योंकर ? (उत्तर) (विसर्पणके) कारणके
अभावात्[5]' नामकर्म–सम्बन्धः[1] हि*संहरण–	=अभावसे क्योंकि (=हि) नाम कर्मका (जीवके साथ) संयोग, संकोच और
विसर्पण–कारणम्[1]' तद्–अभावात्[5]	=फैलावटका कारण था उस (नामकर्मरूपी कारण)के विनाशसे
पुनः* संहरण–विसर्पण–अभावः[1]; यदि*	=फिर (=पुनः) संकोच विस्तारका अभाव होगया, जो (=यदि)
कारण–अभावात्[5]' न*संहरणम्[1]' न*विसर्पणं[1]' तर्हि*	=कारणके अभावसे न संकोच रहा न विस्तार तो (=तर्हि)
गमन-कारण-अभावात्[5]'	=गमनके कारण (यह नामकर्म) के नाशसे (कर्म रहित जीवों) के
ऊर्ध्वम्[2]' गमनम्[2]' अपि*अधस्*तिर्यग्*गमन-अभाव-	=ऊपरको गमन भी नीचे इधर उधर (=तिर्यग्) गमनके निषेधके
वत्*न* प्राप्नोति T ततः* यत्र *	=समान प्राप्त नहीं होता । तिस [कारण]से [=ततः] जहां [=यत्र]
मुक्तः[1]' तत्र *	=मोक्ष हुआ अर्थात् जिस स्थान पर जीवने कर्मोंका विनाश किया तहां
एव* अवस्थानम्[1]' प्राप्नोति T इति*अत्र*उच्यते T—	=ही स्थिति वा ठहराव प्राप्त होता है ऐसे (प्रश्न पर) यहां कहा जाता है कि

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्=तद् अनन्तरम् (मुक्तः जीवः) ऊर्ध्वम् गच्छति आ-लोकान्तात्

तस्यानन्तरं । कस्य? सर्वकर्मविप्रमोक्षस्य । आङभिविध्यर्थः । ऊर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् । अनुपदिष्टहेतुकमिदमूर्ध्वगमनं कथमध्यवसातुं शक्यमित्यत्रोच्यते—

(१)सूत्रार्थः-(२) तद्- =उन (समस्त पुद्गलकर्म प्रकृतियोंके अत्यन्त विनाश तथा औपशमिक आदि भव्यत्व भावोंके अत्यन्त विनाश(सम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्व स्वतत्त्व भावों को छोड़ कर-)के

अन्तरम्॥ ऊर्ध्वम्॥(मुक्तःजीवः वा मुक्तजीवः) =लगताही वा अत्यन्त समीप (=अनन्तर) ऊपरको (मुक्तजीव)

गच्छति T आ-लोकान्तात्॥ =लोकके अन्ततक (=आ) गमन करता है वा चला जाता है।

वृत्त्यनुवादः-तस्य॥ अनन्तरम्॥॥ कस्य॥ ? =(२)उसके पश्चात् वा अत्यन्त निकट (प्रश्न) किसके (पश्चात् वा लगता ही)

सर्व-कर्म-विप्रमोक्षस्य॥ =(उत्तर) समस्त पुद्गलकर्मकी प्रकृतियोंके अत्यन्त नाशके (पश्चात्) ॥

आङ्॥ अभिविधि-अर्थः॥; =(इस सूत्रमें) आङ् (=आ उपसर्ग) का अभिविधि अर्थात् तक-पर्यन्त अर्थ है

ऊर्ध्वम्॥ गच्छति T आ- लोकान्तात्॥ अन-उपदिष्ट- =(मुक्तजीव) लोकके अन्ततक (=आ) ऊपरको जाता है-बिना कहा हुआ है

हेतुकम्॥॥इदम्॥॥ ऊर्ध्वगमनम्॥॥॥कथम्॥ =कारण जिसका ऐसा यह ऊर्ध्वगमन कैसे

अध्यवसातुम्॥॥॥शक्यम्॥॥॥इति॥अत्र॥उच्यते T— =[बिना ऊर्ध्वगमन हेतुके कहें] निश्चय कियाजासक्ता है अतःयहांकहा जाता है कि

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। जैननित्य सोलह पाठ संग्रह मुम्बई गुटकामें "गच्छन्ति" पाठ भी है यह भी ठीक है, 'मुक्तजीवः' के स्थानमें "मुक्तजीवाः" ऐसा बहुवचन में कर्ता होगा॥ (२)—तद् पूज्यपाद स्वामीने इस वृत्तिमें तथा अकलंक देव स्वामीने तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३६४ में तथा श्रुत सागरी टीकामें "तद्" का अर्थ एक वचन में "उसके" ऐसा लिया है "उसके" इस शब्द का अर्थ "सर्वकर्म विप्र मोक्षस्य" "कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षस्य"="सब कर्म का अत्यन्त छुटकारेका" लिया है-इसीलिए मैंने वृत्तिके अनुवाद करने में यही अर्थ लिया है। परन्तु तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५१० में "तद् ग्रहणं मोक्षस्य प्रति-निर्देशार्थं:"=तद् शब्द का ग्रहण मोक्ष के प्रति कथन के लिए है ऐसा अर्थ किया है अर्थात् "तद्" शब्द का अर्थ "मोक्ष" ऐसा लिया है, और मोक्ष कब होती है जब "सब पुद्गलकर्म प्रकृतियों का अत्यन्त विनाश तथा केवल सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्व भावोंके बिना अवशेष भावोंका औपशमिकादि भव्यत्वका अभाव हो जाताहै। श्री उमास्वामीने जो सूत्रों का क्रम दिया है उससे भी मुझको श्लोकवार्तिककारका अर्थ श्रेष्ठ प्रतीत होता है क्योंकि दूसरा सूत्र सब पुद्गल कर्मोंके नाशके संबन्धमें है। तीसरा चौथा भावोंके नाश और विद्यमानताके सम्बन्धमें यथा संख्य हैं उसके पश्चात् यह सूत्र इस बात का द्योतक है कि ऊर्ध्वगमन कब होता है जब पहले केवल ज्ञान हो लेता है-पश्चात्-अवशेष समस्त पुद्गल कर्म नाश होते हैं और कुछ भावोंको छोड़कर सब भावोंका भी नाश हो जाता है तब ऊर्ध्वगमन होता है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "तदनन्तरमिति" का अर्थ इस प्रकार है 'कृत्स्नकर्मक्षयानन्तरमौपशमिकाद्यभावाननन्तरं चेत्यर्थः" "उन सब कर्मोंके क्षयके अनन्तर और औपसमिकादि भावोंके नाशके अनंतर" इसलिये

॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६॥

आह—हेत्वर्थः पुष्कलोऽपि दृष्टान्तसमर्थनमन्तरेणाभिप्रेतार्थसाधनाय नालमित्यत्रोच्यते—**आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च**

[१] सूत्रः—

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६॥

पदच्छेदः-

सूत्रार्थः -पूर्व-प्रयोगात्[५।१] असङ्गत्वात् [५।१]।।

=पूर्वप्रयोगात्-असङ्गत्वात्- बन्धच्छेदात्-तथा-गतिपरिणामात्-च (ऊर्ध्वम् गच्छति)

=पहले प्रयत्न वा उद्योग(केहेतु) से, संबन्ध वा संयोग के न रहने (केहेतु) से

बन्धच्छेदात् [५।१]।

=वेष्टन वा बन्धनके टूट जाने वा नष्ट हो जाने (केहेतु) से

तथा*गति-परिणामात्[५।१]च*

=और (=च) वैसेही वा उसी प्रकार [=तथा] गमनका स्वभाव होने (केहेतु) से अर्थात् ऊर्ध्व गमनका स्वाभाविक गुणहोने (के हेतु) से

ऊर्ध्वम्*गच्छति।

=(मुक्त जीव) ऊपरको जाता है ॥

वृत्त्यनुवादः-आह।हेतु-अर्थः[१।१]पुष्कलः[१।१]अपि*=पूछता है कि [ऊर्ध्वगमनके] हेतुका विषय पुष्ट है तौ भी [=अपि]

दृष्टान्त-समर्थन-अन्तरेण*अभिप्रेत-

=उदाहरण तथा समर्थन वा पुष्टकरने के विना[=अन्तरेण]अभिभूत[=अभिप्रेत]

अर्थ-साधनाय [४।१]।। न*अलम्*

=पदार्थके साधनेके लिए पूरा नहीं है,साध्य पदार्थके सिद्धकरनेके लिए पर्याप्त नहीं है

इति*अत्र*उच्यते—

=ऐसा[प्रश्न होने पर] यहां[दृष्टान्तरूपमें अग्रिम सूत्रमें]कहा जाता है कि

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

मैंने सूत्रका अर्थ करने में यही भाव लिया है परन्तु संस्कृत वृत्तिका अनुवाद पूज्यपाद स्वामीके शब्दार्थके अनुकूल करना पड़ा है। स्मरण रहैकि सब कर्मोंके नाश होनेपर देह वियोग-सिध्यमानगति और लोकान्तप्राप्ति येसब मुक्त जीवको एक साथ एक समय करि होतेहैं(सभाष्य०पृष्ठ२२८)

(१) हमारी सम्प्रदायमें इस सूत्रे का पाठ सर्वत्र एक है कहीं कहीं पर "बन्ध" शब्द है कहीं कहीं पर "बंध" शब्द है दोनों ठीक हैं ॥ इस सूत्र में "ऊर्ध्वंगच्छति" वाक्य की अनुवृत्ति इस अध्यायके पांचवें सूत्र से आती है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में "तद्गतिः" इतना वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्र का वही है जो हमारे यहां है। तद्गतिः=तद्-गति (ऊर्ध्वं) भवति=उस (मुक्त जीव) का (ऊपरिको) गमन होता है। हमारे यहां "तद्गतिः" के स्थान में "ऊर्ध्वंगच्छति" वाक्य की अनुवृत्ति है ॥ 'तद्गतिः' और 'ऊर्ध्वंगच्छति' का एकसा आशय है ॥

(क)आविद्धकुलालचक्रवत् * (१), =कुम्भकार (=कुलाल) के घुमाये हुये(=आविद्ध)चाकके समान ऊपर जाताहै अर्थात् जैसे कुम्हारका हाथ, डंडा, चाक द्वारा घुमाउ (चाकमें) उत्पन्न करता है और हाथ, डंडा हटा लेनेपर घुमाउ कुछ समय तक बना रहता है तैसे मोक्ष जीव गमनके लिये जतन तथा अभ्यास करता रहाथा सो जतन तथा अभ्यास के छूटनेपर भी पूर्व संस्कारसे गमन करता रहता है ।

(ख) व्यपगतलेप--अलाबुवत्* (२),=पृथक् हो गया है (=व्यपगत) (मिट्टी का) लेप जिस से ऐसे तुम्बेके फलके सदृश ऊपरको जाता है अर्थात् जैसे मिट्टी के लेपसे लिप्त तितलौकी वा लौआ पानीमें डूब जाता है और लेपके न्यारे होनेपर पानीके नीचे तथा इधर उधर न जाकर ऊर्ध्वगमन करके पानीके ठीक उपरले भागपर ठहर जाता है तैसे आत्मा कर्मरूपी कीचड़ वा मिट्टीके लेपसे छुटकारा पाकर ऊर्ध्वगमन करता है ।

(ग) एरण्ड–बीजवत्* =अण्डीके बीजके समान ऊपरको जाता है अर्थात् जैसे अण्डीका बीज टोंटेके फटने पर वा टूटने पर ऊपरको उछलता है तैसे आठ कर्मरूपी डोढ़ाके फटजाने वा टूट जानेसे (मुक्त जीव)ऊपरको जाता है।

(घ) अग्नि–शिखावत्*च*, =और(=च)(वायुके आवेशसे रहित)आगकी शिखा वा चोटीके समान (मुक्तजीव)ऊपरको जाता है अर्थात् जैसे इधर उधरसे टेढ़ी पवन न आवे तो दीपककी चोटी वा शिखा ऊपर को ही जाती है उसी प्रकार मनुष्य नारकादि गतियोंमें गमन करानेवाले कर्मोंका अभाव होनेसे आत्माका ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेके कारण मुक्त जीव नियमसे ऊपरको जाता है ।

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है । कहीं कहीं पर एरंड पाठ है कहीं २ पर एरण्ड पाठ है.दोनों ठीक हैं(अध्याय १ पृष्ठ ५४०,५४१) श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें यह सूत्र रूपमें नहीं है इसका तात्पर्य उनके यहां पूर्व प्रयोगात् इत्यादि सूत्रमें इस प्रकार दिया है॥ आविद्ध कुलालचक्रवत् 'पूर्वप्रयोगात्'के भाष्य करनेमें दिया है और''गतिपरिणामात्''के भाष्य करनेमें "व्यपगतलेपअलाबुवत्" इस वाक्यका तात्पर्य दिया है ॥ "बन्धच्छेदात्"के भाष्य करनेमें 'एरण्ड बीजवत्" का तात्पर्य दिया है, "अग्निशिखावत्" वाक्यका तात्पर्य असङ्गत्वात्के भाष्य करनेमें दिया है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २२८ तथा २२९)

(२) "पूर्वप्रयोगात्" छठे सूत्रके वाक्यका "आविद्धकुलालचक्रवत्" के साथ संबंध होता है--यह दृष्टान्त ऊर्ध्व गमनका नहीं है केवल पूर्व संस्कारसे गमन बना रहता है॥ इस बातका है । क्योंकि चाकका घुमाउ ऊपरको नहीं है वरन् अपनी ही परिधिमें स्वभावसे होता है । इसी प्रकार मुक्त जीवका भी स्वभावके अनुकूल पूर्व प्रयोगसे गमन रहता है । जीवका स्वभाव ऊर्ध्व गमनका है इस लिये पूर्व प्रयत्नसे मोक्षगामी जीवका ऊर्ध्व गमन होता है॥ शेष तीन उदाहरण ऊर्ध्व गमन के हैं॥ (२)अलाबु = अलाबू = अलाबु = अलाबूं = लौआफल. तुम्बीफल,तुंबेकाफल।

पूर्वसूत्रे विहितानां हेतूनामत्रोक्तानां दृष्टान्तानां च यथासंख्यमभिसम्बन्धो भवति । तद्यथा-कुलालप्रयोगापादितहस्तदण्डचक्रसंयोगपूर्वकं भ्रमणमुपरतेऽपि तस्मिन्पूर्वप्रयोगादासंस्कारक्षयाद् भ्रमति । एवं भवस्थेनात्मनाऽपवर्गप्राप्तये बहुशो यत्प्रणिधानं तदभावेऽपि तदावेशपूर्वकं मुक्तस्य गमनमवसीयते ॥ किं च-असङ्गत्वाद्यथा मृत्तिकालेपजनितगौरवमलाबुद्रव्यं जलेऽधःपतितं

वृत्त्यनुवादः-पूर्व-सूत्रे॥ विहितानाम्॥ हेतूनाम्॥ अत्र*उक्तानाम्॥च* दृष्टान्तानाम्॥ यथासंख्यम्*

=पहले सूत्रमें बोधित (=विहित) वा जतलायेगये (=विहित) कारणोंका
=और [=च] यहां (अर्थात् इस स्थानमें वा इस सूत्रमें) कथित-
=उदाहरणोंका यथासंख्य वा अनुक्रमसे (अर्थात् पूर्व सूत्रके प्रथम हेतुका इस सूत्रके प्रथम उदाहरणके साथ-पूर्व सूत्रके दूसरे कारणका इस सूत्रके दूसरे दृष्टान्तके साथ, पहिले सूत्रके तीसरे निमित्तका इस सूत्रके तीसरे उदाहरणके साथ और पूर्वसूत्रके चौथे हेतुका इस सूत्रके चौथे उदाहरणके साथ)

अभिसंबन्धः॥ भवति T । तद्यथा*कुलाल-प्रयोग-आपादित-हस्त-दण्ड-चक्र-संयोगपूर्वकम्॥। भ्रमणम्॥। उपरते॥ अपि*तस्मिन्॥ पूर्व-प्रयोगात्॥ आ-संस्कार-क्षयात्॥ भ्रमति T। एवम्*(१)भवस्थेन॥ आत्मना॥ अपवर्ग-प्राप्तये॥। बहुशः*यत्॥। प्रणिधानम्॥।।तद्-अभावे॥ अपि*तद्-आवेश-पूर्वकम्॥।। मुक्तस्य॥ गमनम्॥।। अवसीयते T ।। किं*च* असङ्गत्वात्॥।। यथा*मृत्तिका-लेप-जनित-गौरवम्॥।।अलाबु-द्रव्यम्॥। जले॥।।अधः*पतितम्॥।।

=संयोग वा सम्बन्ध होता है, जैसे कुम्हारके (=कुलाल)
=प्रयत्नसे वा उद्योगसे जनित (=आपादित) (जो)हाथ, दंड, चाक, के संबंधसे
=घुमाव सो (कुम्भकार के प्रयोगके) हटने पर(=उपरते)भी तिस(=चाक) में
=पहले प्रयत्न(के हेतु) से (भ्रमणके) संस्कारके विनाश पर्य्यंत (=आ)
=घुमाव रहता है,इसी प्रकार संसारमें(=भव) तिष्ठते आत्मद्वारा मोक्षके प्राप्तिके लिए
=बहुत वार वा अनेकवार जो प्रयत्न था उस(प्रयत्न)के अभाव पर(वा न रहनेपर)
=भी उस (प्रणिधान वा प्रयत्न) के अभ्यास निमित्तक मुक्त जीव का
(अर्थात् उस प्रणिधान वा जतनका है निमित्त जिस का ऐसे मुक्त जीवका)
=गमन निश्चय किया जाता है ।। कुछ (=किम्)और(=च) है कि
=बंधन के न रहनेसे[ऊर्ध्व गमन होताहै]। जैसे[=यथा]माटीके लेपसे उत्पन्न भई
=भारीतुम्बी वस्तु सो पानी में डूबजाती है (और)

(१)भव,(पु०)भू+भावे अप्। जन्म। उत्पत्ति।"आधारे अप्"संसार। और भी कई अर्थोंमें आताहै परंतु यहां संसार अर्थमेंहै(पद्मचन्द्रकोशपृष्ठ२७०)

जलक्लेदविश्लिष्टमृत्तिकाबन्धनं लघुसदूर्ध्वमेव गच्छति । तथा कर्मभाराक्रान्तिवशीकृत आत्मा तदावेशवशात्संसारे अनियमेन गच्छति। तत्सङ्गविप्रमुक्तौ तूपर्येवोपयाति॥किं च बन्धच्छेदात् यथा बीजकोशबन्धच्छेदादेरण्डबीजस्य गतिर्दृष्टा तथा मनुष्यादि भवप्रापकगतिजातिनामादि-

जल-क्लेद-विश्लिष्ट-मृत्तिका-बन्धनम्[१]॥	=पानीके गीलापनसेमाटीका बंधन[वा वेष्टन] विमुक्त वा पृथक् हो[=विश्लिष्ट] तो]
लघु-सत् ऊर्ध्वम्[२] एव*गच्छति। तथा*कर्म-भार-	=[तुम्बो]अल्पभार(=लघु)होकर[=सत्]ऊपरको ही जाती है तैसे कर्म्मके बोझकरि-
आक्रान्ति-वशीकृतः[१] आत्मा[१] तद्-आवेश-वशात्[२] संसारे[३]	=दबा परवश हुआ आत्मा उस [कर्म] के सम्बन्धके वशसे जगतमें
(१) अ-नियमेन[३] गच्छति T ।	=नियमकरि रहित(इधर,उधर,ऊपर नीचे आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप पंक्तिमें)जाताहै
तत्-सङ्ग-विप्रमुक्तौ[२] तु*उपरि*एव*उपयाति T ॥	=उस[कर्म]के संयोगका अत्यन्त नाशहोनेपर तौ ऊपर कोही जाता है[=उपयाति]
किं*च*बन्धच्छेदात्[५]	=कुछ और है-बन्धनके नष्ट होजाने[के हेतु] से अथवा वेष्टनके छूटजानेसे अर्थात् बंधनके विच्छेद हो जानेसे [ऊपर को ही जाता है]
यथा*बीज-कोश-बन्ध—	=जैसे गुच्छरूप बीजके कोश वा भंडार [=कोश] के बन्धनके
च्छेदात्[५] एरण्ड-बीजस्य[६] गतिः[१]।	=टूट जानेसे अथवा फट जानेसे अंडीके बीजका गमन
दृष्टा[१]॥	=(स्वाभाविक ऊपरि को) देखा जाता है अर्थात् जैसे अंडी के बीजोंके डोडा वा टोंटा के सूखजानेसे अंडीका बीज ऊपरको ही उछलता है
तथा*मनुष्य-आदि-भव-प्रापक-गतिजाति-नाम-आदि-	=तैसे मनुष्यादिक जन्मोंके प्राप्तकरानेवाले गति जाति नाम आदि

(१)अनियमेन--दोनों मुद्रित सर्वार्थसिद्धि प्रतियोंमें तथा तीन हस्तलिखित प्रतियोंके क्रमसे पत्र ६१,११०,१६६ पर यही पाठहै परन्तु पं० जयचन्द्रजी की मुद्रित और हस्त लिखित वचनिकाओं में "नियमकरि पड्या है" ऐसा अनुवाद है जिसका तात्पर्य्यहै निश्चयकरि पड़ा है अर्थात् कर्म के वशहुआ आत्मा संसार में निश्चयरूपसे वा अवश्यकरि भ्रमण करता है॥ इसके दो कारण हो सके हैं संभव है जिस सर्वार्थसिद्धिकी पुस्तकसे उनने अनुवाद किया है उसमें 'अनियमेन' के स्थान में 'नियमेन' पाठ हो अथवा उनने तत्त्वार्थराजवार्तिककी तीसरी वार्तिक की वृत्ति (=भाष्य) का अनुवाद कर दिया हो॥ उक्तवृत्ति और सर्वार्थसिद्धिका पाठ लगभग एक है जैसा कि निम्न पाठ से प्रगट है" यथा मृत्तिका लेपजनित गौरव-मलावृद्ध्यं जलेअधः पतंतितदेवक्लेदविश्लिष्टमृत्तिकाबन्धनंलघुसदूर्ध्वमेव गच्छति तथा कर्मभाराक्रांतिवशीकृतआत्मा तदावेशवशसंसारे नियमेन गच्छति तत्संगविमुक्तौ तूपर्यव याति" पदच्छेद और अनुवाद इसका वही है जो हमने ऊपर सर्वार्थसिद्धिमें इस वाक्य का किया है'नियमेन' का अनुवाद निश्चयकरि'अनियमेन' के स्थान में भिन्न समझलो॥ पं० पन्नालालन्यायदिवाकर जीने निम्न अनुवाद किया है "बहुरि जैसे मृत्तिका

सकलकर्मबन्धच्छेदान्मुक्तस्योर्ध्वं गतिरवसीयते ॥ किं च तथागतिपरिणामात्-यथा तिर्यक्ष्ठवनस्वभावसमीरणसम्बन्धनिरुत्सुका प्रदीपशिखा स्वभावादुत्पतति तथा मुक्तात्माऽपि नानागतिविकारकारणकर्मनिरावरणे सत्यूर्ध्वगतिस्वभावत्वादूर्ध्वमेवारोहति ॥ आह यदि मुक्त ऊर्ध्वगतिस्वभावो लोकान्तादूर्ध्वमपि कस्मान्नोत्पततीत्यत्रोच्यते—

सकल-कर्म-बन्धच्छेदात् ५।१ =समस्त (आठ) कर्मोंके बन्ध रूपी बेड़ीके फटजानेसे-
मुक्तस्य ६।१ ऊर्ध्वम् २।१ गतिः १।१ अवसीयते I किम्*च* =मुक्त (जीव) का ऊपरको गमन निश्चय किया जाता है। कुछ और-
तथा*गति-परिणामात् ५।१ =वैसे ही (=तथा) गमन के स्वभाव (के हेतु) से (ऊपर को जाता है) अथवा उसी (पूर्व प्रयोगात्-असंगत्वात्-बन्धच्छेदात् की) गति गमनका स्वाभाविक गुण होने (के हेतु) से (ऊपर को जाता है)
यथा*तिर्यक* =जैसे तिर्छी और अर्थात् इधर उधर दायें बायें और—
ज्वलन-स्वभाव-समीरण-सम्बन्ध-निरुत्सुका १।१ प्रदीप-=चलनेके स्वभाव वाली वायुकेसंयोग से रहित दीपक की
शिखा १।१ स्वभावात् ५।१ उत्पतति I तथा- =चोटी वा (दियाकी) लौ स्वभावसे ऊपर को जाती है उसी भांति
मुक्त-आत्मा १।१ अपि*नाना-गति-विकार-कारण- =मुक्त जीव भी अनेक गति के विकार के कारण—
कर्म-निरावरणे ७।१ सति ७।१ =कर्मके आवरणके पृथक् होनेपर (=निरावरणे सति)
ऊर्ध्व-गति-स्वभावत्वात् ५।१ ऊर्ध्वम् २।१ *एव*आरोहति I =ऊर्ध्व गमनके स्वभावपनसे ऊपरको ही चढ़ता है ॥
आह I यदि*मुक्तः १।१ ऊर्ध्वगति-स्वभावः १।१ =पूछता है कि मुक्त जीवका ऊपर गमनका स्वभाव है तो
लोकान्तात् ५।१ ऊर्ध्वम् २।१ अपि *कस्मात् ५।१ न* =लोकके अन्तसे ऊपर भी को किस कारणसे नहीं
उत्पतति I इति*अत्र*उच्यते I =चढ़ता है। ऐसे (प्रश्न होने पर) (अग्रिम सूत्रमें) यहां कहा जाता है कि

के लेप जनित भारा होय, आलबू कहिये तूंबा सो जल विषै पड़ा अधोगमन करै है पीछे जलके संयोगतैं मृत्तिका का सम्बन्ध छूटि जाय तब हलका होय जल के ऊपर ही आवै है तैसे कर्म के भारकरि दबा परवशमया आत्मा तिस कर्म के सम्बन्ध तैं संसार विषै नियमकरि पड़ै है प्राप्त होय है अब कर्मका मिलाप दूर होय तब ऊर्द्धही गमन होय है,ऐसा जानना ॥ दूनी जीके अनुवादका भी आशय एकसा है ॥"नियमतैं पड़ा है"अ०प्र०

॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

गत्युपग्रहकारणभूतो धर्मास्तिकायो नोपर्यस्तीत्यलोके गमनाभावः । तदभावे च लोकालोक-विभागाभावः प्रसज्यते ॥

धर्मास्तिकायाभावात् (१) ॥८॥ =(मुक्तजीवः)धर्मास्तिकायाभावाद्ऊर्ध्वङ्गच्छतिआलोकान्तात्

=मुक्तजीवः धर्मास्तिकाय-अभावात्- ऊर्ध्वम्-गच्छति-आ-लोकान्तात् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—धर्म-अस्तिकाय-अभावात्[५] =धर्मास्तिकाय द्रव्यके न होने (के कारण) से वा धर्मास्तिकायके निषेधसे

मुक्तजीवः[१] ऊर्ध्वम्[२]गच्छति[1]आ-लोक-अन्तात्[३] =(मुक्तजीव)लोकके अन्ततक ऊपरको चला जाता है, भावार्थ इसका इसप्रकार है कि लोकान्त वा लोकाकाशके ऊपर धर्मास्तिकाय पदार्थका अभाव है और वह धर्मास्ति-काय जीव और पुद्गलोंकी गतिमें सहकारी (=उपग्रह) कारण है । धर्मास्तिकाय के सहारे विना मुक्तजीव ऊर्ध्वगमन करि लोकाकाशके बाहर अलोकाकाशमें गमन नहीं कर सकता है किन्तु माटीके लेपसे रहित तुंबी के समान लोकान्तमें अनुश्रेणि गतिसे निष्क्रिय कर्म रहित होकर स्थिर रहता है ॥

वृत्यनुवादः-गति-उपग्रह-कारणभूतः[१]धर्मास्तिकायः[१] =गमनको सहकारी (=उपग्रह) कारणभूत धर्मास्तिकाय द्रव्य

न*उपरि*अस्ति[1] अलोके[१] गमन-अभावः[१] =(लोकान्त से) ऊपरि नहीं है (ऐसे) अलोकमें गतिका अभाव है

तद्-अभावे[१] च*लोक-अलोक-विभाग-अभावः[१] प्रसज्यते[1] ॥ =और (=च)उस (धर्मास्तिकाय) के अभाव (मानने) में लोक तथा आलोकके =बंटवारे में निषेध संबंध्या जाताहै अर्थात् लोक अलोकके विभागमें निषेध आता है

(१) इस सूत्रका हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में इसको सूत्ररूप में नहीं लिखा है और न सूत्र माना है वरन् "पूर्व प्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च" सूत्रके भाष्यके अंतमें "लोकान्तादप्यूर्ध्वमुक्तस्य गतिः किमर्थं न भवतीति अत्रोच्यते= लोकके अन्तसे भी ऊपरको मुक्त (जीव) का गमन किस लिए नहीं होताहै ऐसा प्रश्न करके "धर्मास्तिकाय भावात्"यह उत्तर दे दियाहै अर्थात् धर्मास्तिकायके न होने (केहेतु) से मुक्तजीवका लोकान्त से ऊर्ध्व गमन नहीं होता है लोकके अंततक धर्म द्रव्य है वहां तक मुक्तजीव जाताहै ॥

आहअमीपरिनिर्वृता गतिजात्यादिभेदकारणाभावादनीतभेदव्यवहारा एवेत्यस्ति कथञ्चिद्भेदोऽपि

कुतः-- क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

आह[1]अमी[1]परिनिर्वृताः[1]गति-जाति-आदि-भेद-कारण-अभावात्[1] अतीत-भेद-व्यवहाराः[1] एव* इति*अस्ति[1] कथञ्चित्*भेदः[1] अपि*कुतः* ?

=पूछता है कि ये निर्वाण प्राप्त जीव (=परिनिर्वृताः) गति-जाति =आदिक भेद करनेवाले कारणोंके न होनेसे =भेदरूप व्यवहार ही (इन मुक्त जीवोंमें) नहीं (=अतीत) हैं कि =किसी न किसी प्रकारसे (=कथञ्चित्) भेद भी है और क्योंकर ? (ऐसा प्रश्न होनेपर यहां अग्रिमसूत्रमें कहा जाता है कि)

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः॥९॥

पदच्छेदः--क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येक बुद्ध-बोधित-ज्ञान-अवगाहन-अन्तर-संख्या-अल्प-बहुत्वतः सिद्धाः साध्याः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः—क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र- =क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र,

प्रत्येकबुद्धबोधित-ज्ञान-अवगाहन-अन्तर-संख्या-=प्रत्येकबोधित सिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, ज्ञान, अवगाहन, अंतर, संख्या,

अल्पबहुत्वतः[5]''[1]सिद्धाः[1]साध्याः[1]भवन्ति[1]॥९॥=न्यूनत्वअधिकत्व[इन बारह विवरणों वा व्याख्यानों]से सिद्धजीव साधने योग्य हैं अर्थात् (क) अनेक भरत क्षेत्रसे सिद्ध हुये हैं अनेक विदेह क्षेत्रसे सिद्ध हुये हैं।

(१) इस सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक पाठ है। हमारे यहां कहीं कहीं पर "लिंग संख्या" पाठहै कहीं कहीं पर "लिङ्ग-सङ्ख्या" पाठ है कहीं २पर अंतरपाठ है कहींर अन्तर पाठ है छहो पाठ ठीक है देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४०,५४१.इन बारह अनुयोगोंमेंसे दोनों संप्रदायके किसीकिसीमें अर्थ भेद है सो जिस अनुयोगकी वृत्तिका अनुवाद किया है उसके नीचे की टिप्पणीमें [अन्तर] दिया गया है परन्तुसबसे प्रथम इस बातका प्रगट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि दिगम्बर आम्नायमें भाव स्त्री-भाव पुरुष-भाव नपुंसक-तीनों ही क्षपक श्रेणी चढ़कर मोक्ष पाते हैं परन्तु द्रव्य पुरुष ही मोक्ष पाता है द्रव्य स्त्री तथा द्रव्य नपुंसक मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकता है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायके अनुकूल तीनों भाव स्त्री-भावपुरुष-भावनपुंसक तथा तीनों ही द्रव्य स्त्री, द्रव्यपुरुष तथा द्रव्यनपुंसक भी सिद्ध होते हैं (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३३, २३७)

(ख) कोई अवसर्पिणी और कोई उत्सर्पिणी कालमें सिद्ध हुए हैं।

(ग) कोई सिद्धगति वा मनुष्यगतिसे सिद्ध हुए हैं।

(घ) वास्तव में तो अलिङ्ग से ही सिद्ध होते हैं अथवा द्रव्य पुलिंङ्ग से ही सिद्ध होते हैं किंतु भाव लिङ्ग की अपेक्षासे तीनों भावलिङ्गके धारक क्षपक श्रेणी चढ़कर सिद्ध होते हैं।

(ङ) कोई तीर्थंकर सिद्ध होते हैं और कोई विना ही तीर्थंकर हुए सिद्ध होते हैं।

(च) चारित्रके अभावसे मोक्ष है, वा एक यथाख्यात चारित्रसे मोक्ष है। चार-सामायिक, च्छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात चारित्रोंसे मोक्ष है। पांच सामायिक, च्छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात चारित्रोंसे मोक्ष है।

(छ) कोई विनाउपदेशके ज्ञानप्राप्तकरके मोक्ष हुएहैं, कोई उपदेशसे वा कोई प्रत्येकबुद्ध सिद्धहैं, कोईबोधितबुद्धसिद्धहैं॥

(ज) कोई एक केवलज्ञानसे सिद्ध हुए हैं, कोई मतिज्ञान श्रुत ज्ञान से केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पाते हैं, कोई मति- श्रुत-अवधि ज्ञानोंसे केवल ज्ञान उपजाय मोक्ष पाते हैं, वा मति-श्रुत-मनःपर्यय ज्ञानोंसे केवल-ज्ञान प्राप्तकरके सिद्ध हुएहैं। कोई मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय ज्ञानोंसे केवलज्ञान उपजाय सिद्ध हुयेहैं॥

(झ) कोई उत्कृष्ट अवगाहना पांचसौ पचीस धनुष कुछ न्यूनसे सिद्ध हुए हैं, कोई मध्यम अवगाहना, अपने अपने शरीर से कुछ न्यून से सिद्ध हुये हैं कोई जघन्य कुछ न्यून साढ़े तीन हाथ अवगाहनासे सिद्धहुए हैं।

(ञ) एक सिद्धसे दूसरे सिद्ध होनेका अन्तर जघन्य दो समयका है उत्कृष्ट छह मासका है।

(ट) संख्याः- जघन्य एक समय में एक ही सिद्ध होगा उत्कृष्ट एकसौ आठ(१०८) सिद्ध हो सकते हैं।

(ठ) अल्प बहुत्वतः- समुद्रादि जल भागसे थोड़े सिद्ध होते हैं और विदेह आदि स्थूल भागों से अधिक सिद्ध होते हैं (इनका विशेष वर्णन आगे संस्कृतवृत्तिके अनुवाद में किया है वहां देखना चाहिये)

वृत्त्यनुवादः-क्षेत्र-आदिभिः[३]=क्षेत्र,काल,गति, लिङ्ग,तीर्थ,चारित्र,प्रत्येक बुद्ध बोधित,ज्ञान,अवगाहना, अंतर,गणना न्यून-अधिकत्व द्वादशभिः[३] अनुयोगैः[३]सिद्धाः[१] =बारह व्याख्या करि =अनुयोगैः) सिद्ध जीव साध्याः[१]विकल्पाः[१]इति*अर्थः[१] =भेद रूप(=विकल्पाः)साधने योग्य है वा साधनीय है। ऐसा तात्पर्य है

प्रत्युत्पन्नभूतानुग्रहतन्त्रनयद्वयविवक्षावशात् । तद्यथा—क्षेत्रेण तावत्कस्मिन्क्षेत्रे

(१)प्रत्युत्पन्न-अनुग्रह-तन्त्रनयविवक्षावशात्[१], =प्रत्युत्पन्नअनुग्रहतन्त्रनयकी अपेक्षावशसे अर्थात् वर्तमानकालके उत्पन्नविषय वा सिद्धान्त (=तन्त्र) ग्राही नयकी अपेक्षा से और

(२)भूत-अनुग्रह तन्त्रनयद्वय विवक्षावशात्[२], =भूत-अनुग्रहतन्त्रनयद्वयविवक्षावशात् अर्थात् अतीत कालके (=भूत) सिद्धान्त वा विषय (=तंत्र) को ग्रहण करने वाली(इन) दो नयके अपेक्षावशसे(भेद साधने योग्य हैं)

तद्यथा*—क्षेत्रेण[१] तावत्*कस्मिन्[२]*क्षेत्रे[३]*। =जैसे(प्रश्न)प्रथम(=तावत्)क्षेत्र करि वा क्षेत्रकी अपेक्षासे किस क्षेत्रमें वा किस स्थानमें

---

(१)(क)प्रत्युत्पन्न-अनुग्रह-तन्त्रनय-विवक्षा-वशात्, =वर्तमान समयके उत्पन्न विषय वा सिद्धान्त(=तन्त्र)ग्राही नयकी अपेक्षासे(वृत्ति पृष्ठ ४७३)
(ख) प्रत्युत्पन्नग्राहिनय-अपेक्षया =वर्तमान कालके उत्पन्न (पदार्थ) को ग्रहण करनेवाली नयकी विवक्षासे(वृत्ति पृष्ठ ४७४)
(ग) प्रत्युत्पन्नय-अपेक्षया =वर्तमानकालके उत्पन्न (विषय) की नयकी अपेक्षासे(वृत्ति पृष्ठ ४७३ राजवार्तिक पृष्ठ३६५) प्रत्युत्पन्नय की अपेक्षातैं (सदासुखजी लघुटीका पृष्ठ ६५)।
(घ) प्रत्युत्पन्न-अनुग्रह-तन्त्रनयअपेक्षया =वर्तमान कालके उत्पन्न विषय वा सिद्धान्तग्राहीनयकी अपेक्षासे(राजवार्तिक पृष्ठ ३६५)
(ङ) प्रत्युत्पन्नविषयग्राही नयार्पणेन =वर्तमान कालके उत्पन्न विषय को ग्रहण करनेवाली नयके समर्पणसे
(च) प्रत्युत्पन्नय-आश्रयेण =वर्तमान समयके उत्पन्न (भाव) के नयके आसरेकरि (राजवार्तिक पृष्ठ३६६)
(छ) वर्तमान विषय--विवक्षायाम् =विद्यमान कालके विषयकी विवक्षामें वा अपेक्षाविषै
(ज) प्रत्युत्पन्नयवशात् =वर्तमान कालके उत्पन्न (भाव) के नयके वशसे।
(झ) प्रत्युत्पन्नग्राहिनयनिरूपणया =वर्तमान समयके उत्पन्न(भाव)को ग्रहणकरनेवाली नयके निरूपणसे वा निर्णयसे(राज०पृष्ठ३६६)
(ञ) प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनेन =वर्तमान कालके उत्पन्नभावको जतलानेकरि
(ट) प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापननयस्य =वर्तमान समयके उत्पन्नभावको जतलानेवाली नयके
(ठ) प्रत्युत्पन्नग्राहकनय =वर्तमान कालके उत्पन्न(भाव)को ग्रहण करनेहारी(=ग्राहक)नय(जयचंद्रजी वचनिका पृष्ठ७८६)
(ड)प्रत्युत्पन्ननयकरि =प्रत्युत्पन्न नयकरि(जय० वचनिका पृष्ठ ७९०) प्रत्युत्पन्न नयसे(सदासुखजी लघु टीका पृष्ठ ६५)
(ढ) { प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयनय, प्रत्युत्पन्नभावज्ञापनीयनय } =वर्तमान समयमें उत्पन्नभाव जतानेयोग्यनय (समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३१, २३२) ये सब वाक्य एकार्थवाची हैं।"इहां प्रत्युत्पन्न ग्राहीनय वर्तमान मात्र पदार्थ कूं ग्रहण करै है सो ऐसानय ऋजुसूत्रहै तथा शब्द,समभि रूढ, एवंभूत भी याही नयका परिवार है बहुरि भूतनय नैगम है। (पंडितजयचन्द्रजी कृतावचनिका मुद्रित पृष्ठ ७८६)

(२, (क) भूतानुग्रहतन्त्रनयविवक्षावशात् =भूत वा अतीत कालके सिद्धान्त(=तन्त्र)वा विषयको ग्रहण करनेवालीनयके अपेक्षाके वशसे
(ख) भूत-ग्राहि-नय-अपेक्षया =व्यतीत काल के(=विषय को) ग्राहक वा गृहणकरने हारी नयकी विवक्षासे
(ग) भूत-प्रज्ञापन-नय-अपेक्षया =बीते हुए समयके जतानेवाली वा बोधकराने वाली नयकी विवक्षासे (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ४७४)

सिध्यन्ति ? प्रत्युत्पन्नग्राहिनयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे स्वप्रदेशे आकाशप्रदेशे वा सिद्धिर्भवति । भूतग्राहिनयापेक्षया जन्मप्रति पञ्चदश—

सिध्यन्ति च ? । प्रत्युत्पन्नग्राहिनय-अपेक्षया[३] (१)सिद्धिक्षेत्रे[२] स्वप्रदेशे[२] आकाशप्रदेशे[२] वा (२)सिद्धि:[१] भवति । भूत-ग्राहिनय-अपेक्षया[३] जन्म[३] प्रति[४] पञ्चदश—

=सिद्ध होते हैं॥ वर्तमानकालके उत्पन्न (भाव वा विषय)के ग्रहण करनेवाली नयकी =अपेक्षासे सिद्धि क्षेत्रमें अपने आत्माके प्रदेशमें अथवा(=वा) =आकाशके प्रदेशमें मोक्ष होती है । अतीतकालके (=भूतपदार्थको)ग्राहकनयकी =विवक्षासे जन्मकी अपेक्षासे पन्द्रह (जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र संबन्धी एक,जम्बूद्वीपके ऐरावतक्षेत्र संबन्धी एक, जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्र संबन्धी एक, धातुकीखंडकेदो भरत क्षेत्र संबंधी दो, धातुकी खंडके दो ऐरावतक्षेत्र संबंधी दो, धातुकी खंडके दो विदेह क्षेत्र संबंधी दो,

(घ) भूत-पूर्व-नय-अपेक्षया, =अतीतकाल (=भूतपूर्व) के (विषय) नयकी अपेक्षासे (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ४७३-४७४)
(ङ) भूत-अनुग्रह-तत्त्व-नय-अपेक्षया, =अतीतकालके सिद्धान्त (=तत्त्व) को ग्राहक नयकी अपेक्षा करि (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३६५)
(च) भूत-अनुग्रह-तत्त्व नय-विवक्षायां, =पूर्व वा भूतकालके सिद्धान्त वा विषयको ग्रहण करनेहारी नयके विवक्षामें
(छ) भूत-भाव-प्रज्ञापन नय- अर्पणया, =पूर्व वा अतीतकालके भावोंको जतलाने वाली नयके समर्पणकरि (राजवार्तिक पृष्ठ ३६६)
(ज) भूत-विषय-नय-अपेक्षया, =व्यतीतकालके विषयकी (ग्रहण करने वाली) नयकी अपेक्षाकरि तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३६६)
(झ) अतीत-गोचर-नय-अपेक्षया, =भूतकालके (पदार्थ वा विषय वा भाव) को समझाने वाली (=गोचर) नयकी अपेक्षा करि
(ञ) भूत-विषय-नय-आदेशेन, =अतीत समयके विषयको (=द्योतक) नयके वशकरि वा उपदेश करि, आज्ञाकरि (राज० ३६६)
(ट) पूर्व-भाव-प्रज्ञापन-नय-अपेक्षया, =पहले वा बीते हुए कालके भावोंको जतानेवाली नय की विवक्षाकरि
(ठ) भूत-विषय नय-आश्रयणे, =अतीत समयके विषयको (द्योतक) नयके आश्रय वा आसरेमें (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३६७)
(ड) पूर्वभावप्रज्ञापनस्य (नय), =अतीत कालके विषयको जतानेहारी नयके
(ढ) भूत-प्रज्ञापनात्, =अतीतकालके [विषयको] जताने से (श्लोकवार्तिक पृष्ठ ५५१)
(ण) पूर्व-भाव-प्रज्ञापनीय-नय, =पूर्वकालके भाव जतानेके योग्य नय [सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३१]
(त) भूतनय-अपेक्षया, =भूतनय अपेक्षाकरि [पं० जयचन्दजी कृत भावचनिकासूद्रित पृष्ठ ७७८]

ये सबवाक्य (क)से [त]तकसमानार्थक हैं —(२) —दोनों आम्नायोंमें क्षेत्रकी अपेक्षासे सामान्यतासे एकसा अर्थ है (सभाष्य० पृष्ठ २३१)
(१)सिध्यन्ति-सिध्यति-सिध्[षिधु-अनिट्]दिवादि चौथे गणका परस्मैपद धातु है इसमें क्रियाके प्रत्ययके पहले य विकरण जोड़ा जाता है तबसिध् + य ऐसा शब्द बना पश्चात् "ति"एक वचन और"अन्ति" बहु वचन अनुसार [=नियम ७७९] परस्मैपद वर्तमान कालकी द्योतक क्रियाके चिन्ह जोड़े जाते हैं तब 'सिध्यन्ति' 'सिध्यति'बने क्योंकि"अन्ति" प्रत्यय "अ" से आरम्भित है सिध्यका अकार गिर जाता है सिध्यन्ति शब्द बना ॥ सिध्यति =सिद्ध होता है, निष्पन्न होता है, पूर्ण होता है मुक्त होता है, और सिध्यन्ति सिद्ध होते हैं-मुक्त होते हैं अथवा निष्पन्न होते हैं॥

कर्मभूमिषु संहरणं प्रति मानुषक्षेत्रे सिद्धिः ॥ कालेन कस्मिन्काले सिद्धिः ? प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया एकसमये सिध्यन् सिद्धो भवति ॥ भूतप्रज्ञापननयापेक्षया जन्मतोऽविशेषेणोत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्जातः सिध्यति ॥ विशेषेणावसर्पिण्यां सुषमदुःषमाया अन्त्ये भागे दुःषमसुषमायां च जातः सिध्यति ॥ न तु दुःषमायां जातो दुःषमायां सिध्यति ॥ अन्यदा नैव सिध्यति ॥

पुष्करार्धद्वीपके दो भरतक्षेत्र सम्बन्धी दो, पुष्करार्धद्वीपके दो, ऐरावतक्षेत्रके दो, और पुष्करार्धद्वीपके दो विदेह क्षेत्र सम्बन्धी दो)

कर्मभूमिषु[३]॥संहरणम्[२]प्रति•मानुष-क्षेत्रे[३]॥ =कर्मभूमियोंमें (देवादिक द्वारा) हरणकी अपेक्षा मानुषक्षेत्रमें अर्थात् जंबूद्वीप, धातकीखंड तथा पुष्करार्द्ध ऐसे ढाई द्वीपमें

सिद्धिः[१]॥; (ख)कालेन[३]कस्मिन्[३]काले[३]सिद्धिः[१]॥ ?=मोक्ष होती है ; कालकरि किस समयमें मोक्ष (=सिद्धि) होती है ॥

प्रत्युत्पन्न-नय-अपेक्षया[३]॥ =वर्तमानकालके उत्पन्न (भाव) की (ग्रहणकरनेहारी) नय अपेक्षासे

एकसमये[३](१) सिध्यन् सिद्धः[१]भवति T ॥ =एक समयमें सिद्ध होकर वा निष्पत्ति होकर सिद्ध होता है

भूतप्रज्ञापननय-अपेक्षया[३]॥जन्मतः•अविशेषेण[३]। =अतीतकालके जतानेवाली नयकी विवक्षासे ("दोय प्रकार है कि एक जन्मतैं है एक संहारतैं हैं तिनमें") जन्म से (ऐसे है कि) सामान्यतासे वा संक्षेपतासे

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः[३]॥ जातः[१] सिध्यति T ॥ =उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (कालों) में उत्पन्न हुआ (जीव) सिद्ध होता है

विशेषेण[३]अवसर्पिण्याम्[३]॥सुषमदुःषमायाः[६]॥अन्त्ये[७] =विशेषकरि अवसर्पिणीमें सुषम दुःषमा (तीसरा काल) के अन्तके (=अन्त्य)

भागे[७]दुःषमसुषमायाम्[३]॥ च•जातः[१] =भागमें और (=च) दुःषमसुषमा (चौथे काल) में उत्पन्न भया (जीव)

सिध्यति T । =सिद्ध होता है भावार्थ अवसर्पिणीके तीसरे कालके अन्त भागमें जन्मा जीव और दुःषमसुषमा चौथे काल में सिद्ध होता है और चौथे सबकालका जन्मा जीव चौथे कालमें सिद्धहोताहै और दुःषमा पांचवेकालमें भी सिद्धहोता है वा मोक्षहोता है

न•तु•दुःषमायाम्[३]॥जातः[१] दुःषमायाम्[३]॥ =परन्तु दुःषमा(पांचवा काल) में उत्पन्न भया(जीव)दुःषमा(पांचवें काल)में नहीं(=न)

सिध्यतिT । अन्यदा•न•एव•सिध्यति T =सिद्ध होता है । और समय में(=अन्यदा)न(=न) हीं (=एव) सिद्ध होता है ।

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें कालकी अपेक्षासे सिद्धगतिका होना लगभग एकसा है । हमारे यहां "प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया एक समये सिध्यन् सिद्धो भवति" ॥

संहरणतः सर्वस्मिन्काले उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च सिध्यति ॥ गत्या कस्यां गतौ सिद्धिः? सिद्धगतौ मनुष्यगतौ वा ॥

भावार्थ दुःषमा,पांचवा कालमें उपजा जीव छठवां दुःषम दुःषमा कालमें सिद्ध नहीं होता है और दुःषम दुःषमा,छठवां कालमें उत्पन्नभया जीव छठवां कालमें भी सिद्ध नहींहोता है।

संहरणतः॰ सर्वस्मिन्॰ कालेऽ॰ उत्सर्पिण्याम्॰ अवसर्पिण्यां॰ च=सबकाल उत्सर्पिणीमें और (=च) अवसर्पिणीमें सिध्यति ।।(प्र)गत्या॰ कस्याम्॰ गतौ॰ सिद्धिः॰ ?=सिद्ध होता है ॥ (प्रश्न)गति(की अपेक्षा)करि किस गतिमें निष्पत्ति वा मोक्ष है। सिद्धगतौ॰ मनुष्यगतौ॰ वा॰ ।

=संहरण(अपेक्षा)से भावार्थ विदेह क्षेत्रके उपजे जीवको देवादि लेगयाहो तिसकी अपेक्षासे

=(उत्तर)सिद्धगतिमें अथवा (=वा) मनुष्य गतिमें (सिद्ध पदकी सिद्धि होती है) अर्थात् मत्युत्पन्न ग्राही नयकी अपेक्षासे सिद्धगतिमें सिद्ध होता है और भूतग्राहीनयके आश्रयसे मनुष्य गतिसे सिद्ध गति होती है ॥

=वर्तमानकालके उत्पन्न (भाव) को(ग्रहण करनेवाली) नयकी अपेक्षासे एक समयमें सिद्धहोकर वा निष्पत्ति होकर सिद्ध होता है"ऐसा वाक्य है श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २३२ में निम्न वाक्य है "प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयस्य अकाले सिध्यति (=प्रत्युत्पन्नभाव-ज्ञापनीय नयके विषयसे अकालमें सिद्धहोता है") उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ७६२ में इसका विवरण इस प्रकार किया है कि "कस्मिन्काले सिध्यतीति तत्र प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीयस्य अकाले, अविद्यमान काले सिध्यति" अर्थात् किसी समयमें सिद्ध हो सक्ता है ॥ (ग) दोनों सम्प्रदायोंमेंगति भेदसे जो सिद्ध होते हैं उनकी अपेक्षा यदि श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र का अर्थ हमारे यहां के तत्त्वार्थराजवार्तिक के अर्थसे मिलान कियाजाय तो कुछभी अर्थभेद नहीं है जैसा कि दोनो सम्प्रदायकेउक्त ग्रन्थोंके निम्न उद्धृत वाक्योंसे प्रगटहै

गत्यामुकस्याम् गतो सिद्धिः?सिद्धगतौ मनुष्यगतौवा =गति(केविषय)में किसगतिमें सिद्धि वा मोक्ष होतीहै-सिद्धगतिमें वा मनुष्यगति में(होतीहै)

प्रत्युत्पन्न-नय-आश्रयेण सिद्धगतौ सिद्ध्यति =वर्तमानकालके विषयको ग्रहणकरनेवाली नयके आश्रयकरि सिद्धगतिमें सिद्धि होती है।

भूतविषय-नय-अपेक्षया द्विधा कल्पनाअनन्तरगतौ- =भूतकालके पदार्थ की द्योतकनयकी अपेक्षाकरि दो प्रकार कल्पना है अनन्तर गतिमें

एकान्तरगतौ च,तत्र-अनन्तरगतौमनुष्यगतौसिध्यति =और(=च)एकान्तर गति में [सिद्ध] हैं-तहां अनन्तर गति विषे मनुष्यगति में सिद्ध होता है।

एकान्तरगतौ चतसृषु गतिषु जातःसिद्ध्यति ⊤ =एकान्तरगति विषे चारगतियोंमें उत्पन्न भया(जीव)सिद्धहोताहै (तत्त्वार्थराज० पृष्ठ ३६६से)

प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयस्यसिद्धगत्यामसिध्यतिशेषानुनयाः =प्रत्युत्पन्नभाव ज्ञापनीयनयकी अपेक्षा सिद्धगतिमें सिद्धहोता है।और (=तु) शेषनय

द्विविधाःअनन्तरपश्चात्-कृतगतिकः च एकान्तर पश्चात्- =दो प्रकारके हैं, अनन्तर पश्चात् जिसनेगति कियाहै वह और एक अंतर करकेजिसने

कृतगतिकःचअनंतरपश्चात्कृतगतिकस्यमनुष्यगत्यामसिध्यति =गति किया है वह, अनन्तर पश्चात् गति करने वाला मनुष्यगतिमें सिद्ध होता है ।

एकान्तरपश्चात् कृतगतिस्य अविशेषेणसर्वगतिभ्यःसिध्यति =और एकान्तर पश्चात् कृतगतिककी गतिमें तो अविशेषरूपसे सबगतिसे सिद्धि है।

लिङ्गेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुंल्लिङ्गेनैव। अथवा निर्ग्रन्थलिंगेन सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धिर्भूतपूर्वनयापेक्षया॥ तीर्थेन केन तीर्थेन सिद्धिः?

(ग)(१) लिंगेन[३] केन[३] सिद्धिः[१]॥ ?। अवेदत्वेन[३]॥ =(प्रश्न) किस लिंगकरि सिद्धि वा मोक्ष होती है (उत्तर) अवेदपनासे

त्रिभ्यो[३] वा वेदेभ्यः[३] सिद्धिः[१]॥ भावतः * न * द्रव्यतः *। =वा तीन भाववेदसे (=भावत * वेदेभ्यः) नकि द्रव्य (वेद) से सिद्धि-निष्पत्ति वा मोक्ष होती है

द्रव्यतः * पुल्लिङ्गेन[३] एव *। =द्रव्य (=लिंग) की अपेक्षासे पुरुष लिंग करि ही (मोक्ष वा सिद्धि होती है)

भावार्थ-प्रत्युत्पन्ननय की विवक्षासे अवेदपनासे अथवा वेद रहित सिद्ध गति है और भूत-विषयनयकी अपेक्षा से तीनों ही भाव वेद करि (क्षपकश्रेणीचढ) मोक्ष होती है। तीनों द्रव्यवेदसे सिद्धगति नहीं होती। द्रव्यवेदसे तो केवल पुरुषवेद द्वारा मोक्ष होती है।

अथवा * निर्ग्रन्थ-लिङ्गेन[३] सिद्धिः[१]। =दूसरे प्रकार (=अथवा) प्रत्युत्पन्ननय के आश्रयकरि निर्ग्रंथलिंगकरि सिद्धि वा मोक्ष होती है

सग्रन्थ-लिङ्गेन[३] वा * भूत-पूर्व-नय-अपेक्षया[३]॥ =वा अतीत काल के विषय की ज्ञापकनयकी विवक्षासे सग्रन्थ लिंगकरि (सिद्धि वा मोक्ष होती है) अर्थात् भूत पूर्वनय की अपेक्षासे जिसके पहिले सग्रन्थपना था तिस ही के मोक्ष होती है। सबका सारांश यह है कि लिङ्ग- स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद तीन प्रकार हैं और लिङ्ग सग्रंथ निर्ग्रंथ दो प्रकार भी हैं। प्रथम प्रकारमें वर्तमान विषय अपेक्षासे वेद रहित सिद्धि है। अतीत गोचरनयसे तीनो भाव वेदी क्षपक श्रेणीचढि मोक्ष पाते हैं, द्रव्यवेदकरि केवल पुरुषवेदसे ही सिद्ध होता है। दूसरे प्रकारमें प्रत्युत्पन्ननयसे निर्ग्रन्थ लिंगसे मोक्ष है। भूतकालके पदार्थको द्योतक नयसे पूर्व जिसके सग्रन्थ पनाथा तिस ही के मोक्ष वा सिद्धि होती है।

(ङ)(२):-तीर्थेन[३]॥ केन[३]॥ तीर्थेन[३]॥ सिद्धिः[१]॥ =तीर्थ (की अपेक्षा) करि किस तीर्थकरि सिद्धि वा मोक्ष है?

(सभाष्य० पृष्ठ २३२ स उद्धृत) भावार्थ अनन्तर पश्चात्कृतगतिकः = उसी (मनुष्य) गतसे मोक्ष होना, एकान्तर पश्चात्कृतिगतिकः = मनुष्यगति से पहिले की गति से मोक्ष होना। (१) श्वेताम्बर समाजमें द्रव्यस्त्री, द्रव्यनपुंसक भी सिद्ध होते हैं हमारे यहां केवल द्रव्यपुरुष की मोक्ष है। (२) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें द्रव्यस्त्रीकी मोक्ष है और तीर्थंकर भी होती है इसलिये इस प्रकारका अर्थ हमारे यहांके सिद्धान्तसे नहीं मिलता है। सन्ति तीर्थंकरसिद्धाः तीर्थंकरतीर्थे नोतीर्थंकरसिद्धाः = तीर्थंकरसिद्ध तीर्थंकर तीर्थमें है, नो तीर्थंकर सिद्ध वा ईषत् तीर्थंकर सिद्ध अर्थात् जिनके पांच कल्याणक न हों न्यून कल्याणक हुए हों।

तीर्थंकरतीर्थे अतीर्थंकरसिद्धाः तीर्थंकरतीर्थे। =तीर्थंकर तीर्थमेंहै, अतीर्थंकर सिद्धतीर्थंकर तीर्थ में होते हैं अर्थात् जिनका कोईकल्याणक न हो

एवम् * तीर्थंकरीतीर्थे सिद्धाः अपि * ॥ = इसी प्रकार तीर्थंकरी तीर्थमें भी (=अपि) सिद्ध होते है (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र २३३)

द्वेधा तीर्थङ्करेतरविकल्पात् । इतरे द्विविधाः सति तीर्थंकरे सिद्धाः असति चेति ॥ चारित्रेण केन सिध्यति ? अव्यपदेशेनैकचतुः पञ्चविकल्पचारित्रेण वा सिद्धिः ॥

द्वेधा*तीर्थङ्कर-इतर-विकल्पात् ५।१। =तीर्थंकर और दूसरे (अर्थात्विनातीर्थंकरहुये)भेदसे दोप्रकार(=द्वेधा) (सिद्धि) है भावार्थ कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होता है, कोई तीर्थंकर विना सामान्य कवली होकर सिद्ध होता है ।

इतरे १।३। द्विविधाः १।३॥ =इतर केवली वा सामान्य केवली दोप्रकार है अर्थात् तीर्थङ्कर केवलीसे भिन्न केवली दोप्रकार हैं

सति७।१तीर्थंकरे७।१सिद्धाः १।३।असति७।१च*इति*॥ =तीर्थङ्कर(=विद्यमान)होनेपर(=सति)सिद्ध होते हैं और(विद्यमान)न होने पर (सिद्ध होते हैं।)

(३) चारित्रेण३।१॥केन३।१॥सिध्यति ? =(प्रश्न) किस (=केन) चारित्रकरि सिद्ध होता है ?

अव्यपदेशेन ३।१। =(उत्तर) (चारित्र की)अविद्यमानता करि,अभाव करि(=अव्यपदेशेन) (सिद्धि, वा मोक्ष होती है

एक- चतुः- =एक(यथाख्यात चारित्रका भेद से)चार(सामायिक, छेदोपस्थापना,सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात)

पञ्च-वा* =अथवा (=वा) पांच (सामायिक,छेदोपस्थापना,परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात)

-विकल्प-चारित्रेण३।१॥सिद्धिः १।१॥ =चारित्रके भेदकरि सिद्धि-निष्पत्ति वा मोक्ष होती है-भावार्थ- चारित्र विषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे चारित्रके अभावमें मोक्ष होती है, तहां सिद्धगतिमें चारित्र का नाम ही नहीं ॥ अतीतकालके भाव द्योतक नयके आश्रयसे अनन्तर और अन्तर दो भेद हैं । अनन्तर की अपेक्षासे यथाख्यात चारित्र कर ही मोक्ष पावें हैं। और अन्तरकी अपेक्षासे सामायिक, छेदोपस्थापना सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, इन चार चारित्रकरि ही मोक्ष पाते हैं तथा केइक सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात, इन पांचों चारित्र द्वारा सिद्ध होते हैं ।

(३) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें द्रव्यस्त्री चारित्र वाली को मोक्ष कही है । हमारे यहां केवल द्रव्य पुरुष चारित्र सहित को मोक्ष है॥

अत्र अपि नयौ द्वौ प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयःच पूर्वभावप्रज्ञापनीयःच, =यहां भी दोनय प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीय तथा(=च)पूर्वभाव प्रज्ञापनीयआतीहैं

प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीयस्य नो चारित्री नो अचारित्री =प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीय की[अपेक्षासे]नो चारित्र[पुरुष]नो चारित्री(स्त्री)यानो अचारित्री सिध्यति । पूर्वभाव प्रज्ञापनीयः द्विविधः =सिद्ध होताहै[सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३३, २३७] पूर्वभाव प्रज्ञापनीय दो प्रकार है

अनन्तर पश्चात्कृतिकः च परम्परपश्चात्कृतिकः च । =बहुरि [=च]अनन्तरपश्चात्कृतिक तथा (=च)परम्पर पश्चात्कृतिक

अनन्तर पश्चात्कृतिकस्य यथाख्यातसंयतःसिध्यति =अनन्तरपश्चात्कृतिकके [अनुरोधसे] यथाख्यातसंयमवाला सिद्ध होता है

परम्पर पश्चात्कृतिकस्य व्यञ्जिते अव्यञ्जिते च । अव्यंजिते=परम्पर पश्चात्कृतिकः व्यञ्जित और (=च)अव्यञ्जित [दो भेद] में है। अव्यंजितमें हैं

त्रिचारित्रपश्चात्कृतःचतुश्चारित्रपश्चात्कृतःपंचचारित्र पश्चात्कृतः=त्रिचारित्रपश्चात्कृत, चतुश्चारित्रपश्चात्कृत पंचचारित्रपश्चात्कृत सिद्धहै

स्वशक्तिपरोपदेशनिमित्तज्ञानभेदात् प्रत्येकबुद्धबोधितविकल्पाः ॥ ज्ञानेन केन ? एकेन द्वित्रिचतुर्भिश्च ज्ञानविशेषैः सिद्धिः ॥

(छ) (प्रत्येकबुद्धबोधितः—)
स्वशक्ति-निमित्त-ज्ञान-भेदात्[३] प्रत्येक-बुद्ध-विकल्पाः [१/३] परोपदेश-निमित्त-ज्ञान-भेदात् [२/३] बोधित-बुद्ध-विकल्पाः[३]।

=(प्रत्येकबुद्धसिद्ध-बोधितबुद्धसिद्ध)
=अपनी सामर्थ्य पूर्वक वा अपनी शक्ति जनित ज्ञानके भेदसे (सिद्धोंके) प्रत्येक बुद्ध-विकल्प अथवा भेद हैं और दूसरोंके उपदेशसे उत्पन्न हुये ज्ञानके भेदसे
=बोधितबुद्ध (सिद्धोंके) भेद हैं अर्थात् जो अपनी शक्तिसे(विना किसी उपदेशके निमित्तसे) ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुये हैं वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध हैं और जो दूसरोंके उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्तकर सिद्ध हुये हैं वे "बोधितबुद्धसिद्ध "हैं ॥

(ज)ज्ञानेन[३]॥ केन[१]॥ एकेन[१]॥ द्वि-त्रि-चतुर्भिः च ज्ञान-विशेषैः[३] सिद्धिः[१]॥ ॥

=(प्रश्न) किस ज्ञानकरि (सिद्ध) होता है (उत्तर)एक(ज्ञान)करि और (=च) दो, तीन, चार =ज्ञानके भेदकरि सिद्धि वा मोक्ष होती है भावार्थ- प्रत्युत्पन्न नय अपेक्षासे एक केवल-ज्ञानकरि सिद्ध होता है,और भूत ग्राही नयकी अपेक्षासे मतिज्ञान श्रुतज्ञान करिकेवलज्ञान उपजाय सिद्ध होता है । केई मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान,अवधिज्ञानकरि केवल ज्ञानप्राप्तकर मोक्ष पातेहैं अथवा मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,मनःपर्य्यय ज्ञानकरि केवल ज्ञान उपजाय मोक्षपातेहैं । केई मतिज्ञान,श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्य्ययज्ञानकरि केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष पाते हैं

व्यञ्जिते, सामायिक-सूक्ष्मसांपरायिक-यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धाः, =व्यञ्जित(भेद)में सामायिक,सूक्ष्मसांपरायिक-यथाख्यात-पश्चात्कृतसिद्ध हैं
छेदोपस्थाप्य-सूक्ष्मसंपराय-यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धाः, =छेदोपस्थाप्य,सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातपश्चात्कृत सिद्ध होतेहैं
(व्यञ्जित भेदमें येसब त्रिचारित्र पश्चात्कृतसिद्धहुये)
सामायिक-च्छेदोपस्थाप्य-सूक्ष्मसम्पराय-यथाख्यात पश्चात्कृतसिद्धाः, = सामायिक, च्छेदोपस्थाप्य,सूक्ष्मसंपराय,यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्ध होते हैं
छेदोपस्थाप्य-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धाः, =छेदोपस्थाप्य,परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसांपरायययथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धहैं
(व्यञ्जित भेद में ये सब चतुश्चारित्र पश्चात्कृत सिद्ध हुये)
सामायिक-च्छेदोपस्थाप्य- परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसम्पराय-यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धाः = सामायिक,च्छेदोपस्थाप्य,परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय =यथाख्यातपश्चात्कृत सिद्ध होते हैं(ये व्यञ्जितभेदमेंपञ्चचारित्रपश्चात्कृतसिद्ध हुये)

(छ)सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें स्वयंबुद्ध सिद्ध और बुद्ध बोधित सिद्ध येदो भेद हैं ॥ वह हमारे यहां के प्रत्येक बुद्ध सिद्धसे तथा बोधितबुद्ध सिद्धसे मेल खाते हैं (ज) ज्ञानके विषय में दोनों आम्नायोंका एकसा तात्पर्य है इस पृष्ठकी समस्त टिप्पणीके लिये (देखो सभाष्य०पृष्ठ २३३) ॥

आत्मप्रदेशव्यापित्वमवगाहनम् । तत् द्विविधम् । उत्कृष्टजघन्यभेदात् । तत्रोत्कृष्टं पञ्चधनुःशतानि पञ्चविंशत्युत्तराणि । जघन्यमर्धचतुर्थारत्नयो देशोनाः । मध्ये विकल्पाः। एकस्मिन्नवगाहे सिध्यति ॥ किमन्तरं ? सिध्यतां सिद्धानामनन्तरं जघन्येन द्वौ समयौ उत्कर्षेणाष्टौ । अन्तरं जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेण षण्मासाः ॥ संख्या-जघन्येन एकसमये एकः सिध्यति। उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः ॥ क्षेत्रादिभेदभिन्नानां परस्परतः

(झ) आत्मन्–प्रदेश–व्यापित्वम्[1]॥अवगाहनम्[1]॥, =आत्माके प्रदेशोंका फैलाव (=व्यापित्व) है सो अवगाहन है ॥
तत् [1]॥द्विविधम्[1]॥उत्कृष्ट–जघन्य–भेदात् [1]। तत्र* =वह (अवगाहन) दो प्रकार उत्कृष्ट और जघन्य वा निकृष्टभेदसेहै। तहां
उत्कृष्ट[1]॥पञ्चधनुःशतानि[1]॥पंचविंशतिउत्तराणि[1]॥; =उत्कृष्ट पांचसौ धनुष पच्चीस अगले हैं (सभाष्य०मेंपृथक्त्व धनुष अधिक पांचसौ है।
जघन्य[1]॥अर्धचतुर्थ–अरत्नयः[1]देश-ऊनाः[1]; =न्यून से न्यून सादे तीन हाथ कुछ घाटि वा हीन है,
मध्ये[1] विकल्पाः[1],एकस्मिन्[1] अवगाहे[1]सिध्यति I॥ =मध्यमें[बहुत]भेदहैंइनमेंसे एक [=एकस्मिन्] अवगाहनामें सिद्धहोता है ॥
[अ][1]किम्*अन्तरं[1]॥सिध्यताम्[1]सिद्धानां[1] अनन्तरं[1]॥=[प्रश्न]अन्तर क्याहै?[उत्तर]सिद्धभये[जीव]को सिद्ध होने वाले[जीव] निका अनन्तर-
जघन्येन[1] [२]द्वौ[1] समयौ[1] उत्कर्षेण[1] अष्टौ [1]; =निकृष्टकरि दो क्षण वा समय है, उत्कृष्ट करि [=अनन्तर] आठ [समय] है-अर्थात् अन्तर रहित सिद्ध होतेहैं वे जघन्य तो दो समय पर्यंत सिद्ध होते जांय और उत्कृष्ट आठ समय निरंतर वा लगातार सिद्ध होते जांय ।
अन्तरम्[1]॥ जघन्येन[1] एकः[1] समयः [1] =अन्तर जघन्यकरि एक समयहैअर्थात् निकृष्टकरि एक समय तक कोई सिद्ध नहीं होगा
उत्कर्षेण [1] षण्मासाः [1] ॥ =उत्कृष्टकरि[अन्तर]छहमास हैअर्थात् उत्कृष्ट करि छह मास तक कोई सिद्ध न होगा ॥
[२]संख्या[1]॥जघन्येन[1]॥एक समये [1]एकः[1]सिध्यति I ।=गणना न्यूनता करि वा निकृष्ट करि एक समयमें एक सिद्ध होताहै,
[३] उत्कर्षेण[1] अष्टोत्तरशत–संख्याः [1]॥ =उत्कृष्टकरि [एक समय वा क्षण में] आठ अगले सौ संख्या में [सिद्ध] होते हैं ।
[ठ][4]क्षेत्र-आदि-भेद-भिन्नानाम्[1] परस्परतः * =क्षेत्रआदिक (एकादश) भेद भिन्नों की [अर्थात् भिन्न भिन्न भेदों की] आपस में

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा अर्थहै ।(२) श्लोक वार्तिक पृष्ट ५१२में"द्वौ क्षणौ"–"दो समय"के अर्थ में ग्रहण कियाहै इसलिये हमने भी अनुवाद समय के अर्थमें "क्षण" कियाहै । (३) "उत्कृष्टेनाष्टोत्तरं शतमिति" भाष्यानुसारिणी०पत्र ७६५, परंतु सभाष्य० पृष्ठ २३५ में इसवाक्यकेस्थानमें"उत्कृष्टेनाष्टशतम्"अशुद्ध छपगया है॥अतः यह विषय दोनों आम्नायोंमें एकसाहै (४) इस १२ वां अनुयोग का अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकहै (देखो सभाष्य०पृष्ठ२३६)

संख्याविशेषोऽल्पबहुत्वम्। तद्यथा-प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे सिध्यतां नास्त्यल्पबहुत्वं। भूतपूर्वनयापेक्षयोच्यते। क्षेत्रसिद्धा द्विविधाः जन्मतः संहरणतश्च। तत्राल्पे संहरणसिद्धाः। जन्मसिद्धाः संख्येयगुणाः ॥ क्षेत्राणां विभागः कर्मभूमिरकर्मभूमिःसमुद्रो द्वीप ऊर्ध्वमधस्तिर्यगस्ति। तत्र स्तोका ऊर्ध्वलोकसिद्धाः। अधोलोकसिद्धाः संख्येयगुणाः ॥ तिर्यग्लोकसिद्धाः संख्येयगुणाः। सर्वतःस्तोकाःसमुद्रसिद्धाःद्वीपसिद्धाःसंख्येयगुणाः॥एवंतावदविशेषेण सर्वतः स्तोका लवणोदसिद्धाः। कालोदसिद्धाःसंख्येयगुणाः। जम्बूद्वीपसिद्धाःसंख्येयगुणाः। धातकीखण्डसिद्धाः

संख्या-विशेषः। अल्पबहुत्वम्॥ । =गणनाका विशेष है सो अल्पबहुत्व अथवा न्यूनअधिकत्व है।

तद्यथा*प्रत्युत्पन्ननय-अपेक्षया॥सिद्धिक्षेत्रे॥सिध्यतां॥ =जैसे- प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे सिद्धक्षेत्रमें सिद्धभये (जीव) के

न*अस्ति[अल्प-बहुत्वं॥;भूतपूर्वनय-अपेक्षया॥उच्यते। =न्यून अधिकत्व नहीं है। भूतपूर्वनयकी अपेक्षासे कहाजाता है कि

क्षेत्र-सिद्धाः। द्वि-विधाः। =क्षेत्र सिद्ध(अर्थात् जिसक्षेत्रसे जीवोंने मोक्षपदकी प्राप्ति की है वे(मुक्तजीव)दोप्रकार,

जन्मतः*संहरणतः*च*; =जन्मसे और(=च) संहरण से हैं अर्थात् देवादिक द्वारा अन्यक्षेत्रमें लेजाये गये प्राणियोंने सिद्धगति उस अन्यक्षेत्रसे प्राप्तकी वे सिद्ध,

तत्र*अल्पे। संहरण-सिद्धाः। । जन्मसिद्धाः। =तहां अन्यक्षेत्रसे हरेगये जीव सिद्ध हुए थोड़े हैं।(संहरण सिद्धोंसे)जन्म सिद्ध

संख्येयगुणाः।क्षेत्राणाम्॥।विभागः।कर्मभूमिः। =संख्यातगुणे हैं। क्षेत्रोंके भाग कर्मभूमि

अकर्मभूमिः।समुद्रः।द्वीपः।ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यग्* =अकर्मभूमि,समुद्र द्वीप,ऊंचा(लोक)नीचा (लोक)दांये बांये(भाग)वा इधर उधर (भाग)

अस्ति।तत्रस्तोकाः।ऊर्ध्वलोक-सिद्धाः।,अधोलोकसिद्धाः।=है,तहां ऊर्ध्वलोकसे हुये सिद्ध थोड़े हैं। अधोलोक सिद्ध (इनसे)

संख्येयगुणाः।तिर्यग्लोकसिद्धाः।संख्येयगुणाः। =संख्यातगुणे हैं, तिर्यग्लोकसिद्ध (इनअधोलोक सिद्धों से) संख्यातगुणे हैं।

सर्वतः*स्तोकाः।समुद्रसिद्धाः।द्वीपसिद्धाः।संख्येयगुणाः।;=सबसे अल्प समुद्रसे हुएसिद्धहैं।द्वीपसेभये सिद्ध(इनसमुद्रसिद्धोंसे)संख्यातगुणे हैं

एवं*तावत्*अविशेषेण। सर्वतः*स्तोकाः।लवणोद- =ऐसे इतना(=तावत्)सामान्यकरि(कहा)है(विशेषकरि)सबसे थोड़े लवण समुद्रसेभये

सिद्धाः।कालोदसिद्धाः।संख्येयगुणाः। जम्बूद्वीप- =सिद्धहैं,कालोदधिसे हुएसिद्ध(लवण समुद्रसे हुये सिद्धोंसे)संख्यातगुणे हैं।जंबूद्वीपसेहुये

सिद्धाः। संख्येयगुणाः। धातकीखंड-सिद्धाः। =सिद्ध (इन कालोदधिसे हुए सिद्धों से) संख्यात गुणे हैं। धातकीखण्डसे भयेसिद्ध

संख्येयगुणाः । पुष्करद्वीपार्धसिद्धाः संख्येयगुणाः । एवं कालादिविभागेऽपि यथागममल्प-बहुत्वं वेदितव्यम् ॥ १० ॥

संख्येयगुणाः[३]; पुष्करद्वीपार्ध-सिद्धाः[३] संख्येयगुणाः[३] । एवम्*काल-(१) आदि-विभागे[३]अपि*यथाआगमम्*अल्पबहुत्वम्[३]॥=विभागमें भी शास्त्रके अनुकूल न्यूनत्व तथा अधिकत्व (=न्यूनअधिकत्व=अल्पबहुत्व) वेदितव्यम् ॥[३]॥ =जानना चाहिये-(इस वाक्यका विशेषताके साथ तात्पर्य निम्न लिखित प्रकार है ॥

=(इन जम्बूद्वीपसे हुये सिद्धोंसे) संख्यातगुणे हैं । पुष्करद्वीपके आधेमें भये सिद्ध =(इन धातकी खन्ड द्वीपमें भये सिद्धोंसे) संख्यातगुणे हैं-इसी प्रकार काल =गति,लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधित, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर,संख्या के

(आ) कालकी अपेक्षा से अल्पबहुत्व-उत्सर्पिणीकालमें सिद्धभये तिनसे अवसर्पिणीमें भये विशेष करि अधिक हैं,उत्सर्पिणी अवसर्पिणी विना सिद्ध भये ते अवसर्पिणीमें सिद्धहुए (तिनसे)संख्यात गुणे हैं-क्योंकि विदेह क्षेत्रमें उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊ काल नहीं प्रवर्तते हैं॥ प्रत्युत्पन्न नय अपेक्षासे एक समय सिद्ध भये इस अपेक्षामें अल्पबहुत्व नहीं है (दोनों आम्नायोंमें एकतात्पर्य है) अवसर्पिणी=नीचेकी ओर आनेवाली कालकीगति । उत्सर्पिणी=ऊपरकी ओर चढनेवाली कालकीगति ॥

(इ) गतिकी अपेक्षा अल्पबहुत्व-गतिविषैं प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे तौ अल्प बहुत्व नहीं है । बहुरि भूतनय अपेक्षासे अनंतर अपेक्षा तौ मनुष्य गतिसे सिद्ध गति है तहाँ अल्प बहुत्व नहीं है । बहुरि एकगति की अंतर अपेक्षा तिर्यंच गतिके आये मनुष्य होकर सिद्धि भये ते सर्वसे स्तोक हैं । तिनसे संख्यात गुणे मनुष्य गतिसे मनुष्य होकर सिद्ध हुए हैं ॥ तिनसे संख्यातगुणे नरक गतिसे मनुष्य होकर सिद्ध हुये हैं ॥ तिनसे संख्यातगुणे देवगतिसे मनुष्य होकर सिद्ध हुए हैं ॥इस अपेक्षामें दोनों सम्प्रदायोंमें एक तात्पर्य्य है ॥

(ई) लिङ्गकी अपेक्षा अल्प बहुत्व-वेदकरि प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षाकरि वेदरहित सिद्ध होते हैं तहां अल्पबहुत्व नहीं हैं, भूतनयकी विवक्षासे सबसे थोड़े नपुंसक वेदसे क्षपक श्रेणी चढ़कर सिद्ध हुए हैं,तिनसे संख्यात गुणे स्त्री वेदसे क्षपक श्रेणी चढ़ सिद्ध भये हैं, तिनसे संख्यातगुणे पुरुष वेदसे क्षपक श्रेणी चढ़कर सिद्ध हुये हैं ॥ (लिङ्ग की अपेक्षा दोनों आम्नायों में भेद नहीं है) ॥

(१) इन बारह अनुयोगोंकरि सिद्धों में भेद है परन्तु सिद्धों के स्वरूप में भेद नहीं है । साध्य = साधने योग्य,अनुगम्य = जानने योग्य, चिन्त्य = विचारने योग्य, व्याख्येय = व्याख्या करने योग्य, ये एकार्थ वाची शब्द हैं । (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३१)

(ठ)तीर्थकी अपेक्षा अल्पबहुत्वः—बहुरि तीर्थंकर जो तीर्थ कर होकर सिद्ध हुये हैं वेथोडे हैं तिनसे संख्यात गुणे सामान्य केवली सिद्ध हैं।
(यह श्वेताम्बर सम्प्रदायसे कुछ कुछ मिलता है देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३७)

(ऊ) चारित्रकी अपेक्षा अल्पबहुत्वः—प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षासे चारित्र बिना ही सिद्धहुये हैं। तहां अल्पबहुत्व नहीं है और भूतनय की विवक्षासे अनंतर चारित्र यथाख्यातसे सिद्ध होते हैं। यहां भी अल्पबहुत्व नहीं है. बहुरि अंतर सहित चारित्र की अपेक्षासे पांच सामायिक च्छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसांपराय,यथाख्यात चारित्रोंसे हुए सिद्ध अल्प हैं। इनसे संख्यात गुणे चार सामायिक,च्छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यातचारित्रोंसे भये सिद्धि होते हैं
(श्वेताम्बर सम्प्रदायसे यह प्रकरण कुछ मिलता है-विशेषरूपसे अंतर जाननेके लिये देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ २३७,२३८),

(ऋ) प्रत्येक बुद्ध बोधितकी अपेक्षासे अल्पबहुत्वः—प्रत्येक बुद्ध सिद्ध अल्प हैं,इनसे संख्यात गुणे बोधितबुद्ध सिद्ध हैं॥
(इसका विवरण दोनों सम्प्रदायों में लगभग सामान्यरूपसे मिलता है देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३८)

(ॠ) ज्ञानकी अपेक्षासे अल्पबहुत्वः—प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे केवल ज्ञानसे सिद्ध हुये हैं, तिनमें अल्पबहुत्व नहीं है और मतिज्ञान श्रुतज्ञानसे केवल ज्ञान प्राप्तिकर जो सिद्ध हुये हैं वे थोड़े हैं, तिनसे संख्यातगुणे चार (मति,श्रुत, अवधि, मनःपर्यय) ज्ञानसे केवल-ज्ञान उपजाय सिद्ध हुये हैं बहुरि तिन चार ज्ञान पूर्वक सिद्धोंसे संख्यात गुणे तीन (मति,श्रुत, अवधि अथवा मति, श्रुत,मनःपर्यय)ज्ञान से केवल ज्ञान उपजाय सिद्ध हुये हैं (श्वेताम्बर आम्नायसे इस प्रकरणका तात्पर्य्य मिलता है देखो सभाष्यतत्त्वार्था० पृष्ठ २३६)

(ऌ)अवगाहनाकी अपेक्षाकरि अल्पबहुत्वः—जघन्य अवगाहनासे हुये सिद्ध सबसे थोडे हैं " इनसे संख्यातगुणे सिद्ध उत्कृष्ट अवगाहनासे हुये हैं।इनसे संख्यातगुणा मध्य अवगाहनासे हुये सिद्ध हैं॥ इसका आशय दोनों श्वेता०तथादिग०आम्नायोंमें एक है॥

(ॡ) अन्तरकी अपेक्षा अल्पबहुत्वः—सबसे थोड़े छह मास अंतरवाले सिद्ध हैं-इनसे संख्यात गुणे एक समय अंतर सिद्ध हैं॥
[इसको अनुवादकने समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २३६से लिया है और हमारी आम्नायके अनुकूल जान पड़ता है॥]

(ए) संख्याका अपेक्षा अल्प बहुत्वः—संख्याविषै एक समयमें उत्कृष्टरूपसे एकसौ आठ सिद्ध होते हैं। ये तो सबसे स्तोक हैं। तिनसे अनंत गुणाविपरीतक्रमसे एकसोआठ सिद्धसे लेकर पचास पर्यन्तकी संख्यासे एकसमयमें भयेसिद्ध हैं। तिनसे असंख्यातगुणा उनचासतै लगाय पच्चीसकी संख्याताई एक समयमें हुये सिद्ध हैं। बहुरि तिनसे संख्यातगुणे चौबीससेलगाय एकताईकी संख्यातक एक समयमें हुये सिद्ध हैं [श्वेताम्बर सम्प्रदायसे यह विषय भी स्थूल रूपसे मिलता है[देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३६ और २४०)॥
समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २४० पर यह अधिक है कि "और विपरीतरूपसे हानि, जैसे सर्व स्तोक अनन्तगुण हानि सिद्ध होते हैं असंख्येय गुण हानि सिद्ध अनन्तगुण होते हैं, तथा संख्येयगुण हानि सिद्ध संख्येय गुण होते हैं"॥

स्वर्गापवर्गसुखमाप्तुमनोभिरार्यैः । जैनेन्द्रशासनवरामृतसारभूता ॥ सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भि-रुपात्तनामा । तत्त्वार्थवृत्तिरनिशं मनसा प्रधार्या ॥ १ ॥

तत्त्वार्थवृत्तिमुदितां विदितार्थतत्त्वाः । शृण्वन्ति ये परिपठन्ति च धर्मभक्त्या ॥ हस्ते कृतं परमसिद्धिसुखामृतं तै- । र्मर्त्यामरेश्वरसुखेषु किमस्ति वाच्यम् ॥ २ ॥

आगे सर्वार्थसिद्धिनामा संस्कृतवृत्तिके कर्ताकृत तीनों श्लोकोंका शब्दशः हिंदीअनुवाद लिखते हैं

(१) स्वर्ग-अपवर्ग-सुखम्$_{द्वि}$''आप्तु-मनोभिः$_{तृ}$'आर्यैः$_{तृ}$ =स्वर्गमोक्ष(=अपवर्ग)के सुखको प्राप्त करनेको मनवाले महंत पुरुषोंकरि[=आर्यैः],
जैनेन्द्र-शासन-वर-अमृत-सार-भूता$_{द}$'' =जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश(मत-आज्ञा वा मार्ग)रूपी श्रेष्ठ अमृतका है सारभूतजिसमें,
सर्वार्थ-सिद्धिः$_{प्र}$''इति*सद्भिः$_{तृ}$उपात्तनामा$_{प्र}$'' =और सत्पुरुषों द्वारा पाया है सर्वार्थसिद्धि नाम जिसने ऐसी (=इति)
तत्त्वार्थवृत्ति$_{प्र}$''अनिशम*मनसा$_{तृ}$''प्रधार्या$_{प्र}$'' ॥१॥ =तत्त्वार्थवृत्ति निरंतर (=अनिशम्) मनकरि धारने योग्य है अर्थात् स्वर्गमोक्षके सुखके लिये उद्यत महंत पुरुषोंद्वारा तत्त्वार्थवृत्ति जिसमें जिनेन्द्रके उपदेशरूपी अमृतका सार गर्भित है और जिसने सत्पुरुषोंसे सर्वार्थसिद्धि नाम पाया है निरन्तर मनकरि [मनन करने योग्य, विचारने योग्य और]धारणे योग्य है ॥

तत्त्वार्थ-वृत्तिम्$_{द्वि}$''उदितां$_{द्वि}$''ये$_{प्र}$''धर्म-भक्त्या$_{तृ}$''शृण्वन्ति T =कथित(=उदिता)तत्त्वार्थवृत्तिको जो धर्ममें भक्ति कर सुनते हैं
परिपठन्ति$_{व}$ च*विदित-अर्थ-तत्त्वाः$_{प्र}$ =और(=च)पढ़ते हैं॥ (और) जाना है तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जिनने
हस्ते$_{स}$'कृतम्$_{प्र}$'''परमसिद्धि-सुख-अमृतम्$_{प्र}$''तैः$_{तृ}$' =तिन करि(=तैः) जब मोक्षका(=परमसिद्धि)सुखरूपी अमृत हाथोंमें किया गया तो
मर्त्य-अमर-ईश्वर-सुखेषु$_{स}$''' =चक्रवर्ति(=मर्त्येश्वर)और इन्द्र(=अमरेश्वर)के सुखोंमें अर्थात् सुखोंको प्राप्तिकरनेमें
किम्$_{प्र}$'''अस्ति T वाच्यम्$_{प्र}$''' ॥ २ ॥ =क्या कहा जाता है(कुछ भी नहीं) अर्थात् चक्रवर्ती तथा इन्द्रके सुख उनके लिये सुगम है सारांशः-तत्त्वार्थ ज्ञाता जो भक्तिकर इस सर्वार्थसिद्धि तत्त्वार्थवृत्तिको सुनते हैं, मनन करते हैं, और पढ़ते हैं जब मोक्षको भी पा जाते हैं तो चक्रवर्ती और इन्द्रके सुखोंका(उनके लिये) पाना एक तुच्छ सरल वा सुलभ वस्तु है ॥

येनेदमप्रतिहतं सकलार्थतत्त्व- । मुद्योतितं विमलकेवललोचनेन भक्त्या तमद्भुतगुणं प्रणमामि वीर- । मारान्नरामरगणार्चितपादपीठम् ॥ ३ ॥

॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां दशमोऽध्यायः॥

अमरनरफणीन्द्रैर्वन्द्यपादाब्जयुग्मम्। कृतशिवपदसौख्यं भव्यसार्थाधिपानाम् ॥ जिनमवृजिनमीशं वीतरागस्पृहाणाम्। वृषभमुरुवृषाङ्कं नौमि कर्त्तारमाद्यम् ॥ ४ ॥ चन्द्रः क्षीणः,

---

येन[३] इदम्[१] "अप्रतिहतम्[१] "सकल-अर्थ-तत्त्वम्[१] "उद्योतितम्[३] "विमल-केवल-लोचनेन[३] " ॥
भक्त्या[३] "तम्[२] "अद्भुत-गुणम्[२] प्रणमामि T वीरम्[२] आरात्*नर-अमर-गण-अर्चित-पादपीठम्[२] ॥३॥

=जिसकरि यह निर्बाध (=अप्रतिहतं) समस्त पदार्थका यथार्थस्वरूप (=तत्त्वं)
=निर्मल केवल ज्ञानरूपी नेत्रद्वारा प्रगट किया गया है,
=भक्तिकर तिस आश्चर्य(कारी) गुणसंयुक्त महावीर स्वामीको नमता हूं, (कैसेहैं)
=नर और देवोंके निकट वर्ती (=आरात्) समूहकरि पूजित है सिंहासन जिसका

सारांशः-निर्बाध सर्व पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको केवल ज्ञान द्वारा प्रकाश करने वाले आश्चर्यकारी गुण संयुक्त और नर देवोंके निकट वर्ती समूहकरि पूजित ऐसे महावीर स्वामीको नमस्कार करता हूं, भावार्थ"सर्वदेवनिके देव हैं।" जय०व०

इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ[३] "सर्वार्थसिद्धि-संज्ञिकायां[३] "दशमः[१] "अध्यायः[१] "

=इस प्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें सर्वार्थसिद्धि =नामा(ग्रन्थमें) दशमा अध्याय समाप्त हुआ ॥

अमर-नर-फणीन्द्रैः[३] "वन्द्य-पाद-अब्ज-युग्मम्[३] "",
वीतराग-स्पृहाणाम्[६] "भव्य-सार्थ-अधिपानाम्[६] "कृतशिवपद-सौख्यम्[१] "" । जिनम्[२] "" अवृजिनम्[२] "
ईशम्[२] "", वृषभम्[२] "उरु-वृष-अङ्कम्[२] "
नौमि I कर्त्तार-आद्यम्[२] ""

=अमरेन्द्र,नरेन्द्र, नागेन्द्र वा भुवनेन्द्रकरि पूजनीक वा सेवनीय हैं चरणकमलजिनके,
=वीतरागकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठभव्य समूह(=भव्य-सार्थ)को दिया है मोक्ष पदका
=सुख जिस (भगवान्)ने, (कैसे है जिन भगवान्)कर्म कलंकसे रहित[=अवृजिनम्]
=ईश्वर है, बैलकरि चिन्हित(=अङ्कम्) है ऊरु वा घुटनेके ऊपरका भाग जिनका,
=आदिमें तीर्थके करने वाले (वृषभजिनेंद्र) को, मैं नमस्कार करता हूं ॥

प्रतापीतपतिदिनकरोदेवनाथोऽभिमानी।कामःकायेनहीनोवलयतिपवनोविश्वकर्मादरिद्री।भस्माङ्गो
नीलकंठःसभवतिगहनोव्याकुलोगोपनाथः।शक्राद्याद्युःखपूर्णाःसुखनिधिरहिताःपातुवः श्रीजिनेन्द्रः

श्री— =अनंत चतुष्टयके धारक (=श्री) अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अनन्तवीर्य सहित
जिनेन्द्रः¹पातु T वः² =जिनेश भगवान् तुम्हारी रक्षाकरैं क्योंकि निम्नदोषोंसे प्रसित अन्य देव रक्षाकरनेको असर्थ हैं
चन्द्रः¹क्षीणः²प्रतापी³तपति T दिनकरः⁴ =चन्द्रमा क्षीण अर्थात् प्रभाव रहित वा कलंकित है,सूर्य प्रतापी है पर प्राणियोंको संतप्त करता है
देवनाथः¹अभिमानी²कामः³कायेन⁴हीनः⁵ =इन्द्र देवोंका स्वामी अहंकारी है, कामदेव शरीर रहित है इसीसे इसको अनंग कहते हैं,
वलयति T पवनः¹विश्वकर्मा²दरिद्री³ =पवन थिर नहीं है,इधर उधर बंधलरूपसे फिरती है,विश्वकर्मा चिंताओंसे व्याकुल है,कङ्गाल है
(क्योंकि जानोजात दरिद्र बहुत तृष्णा है जिनकें, जिनकें तृष्णा नाहिं बहुत संपति है तिनकें)
भस्मांगः¹नीलकण्ठः² =महादेव अंगमें भस्म लगाये रहते हैं (खोपड़ी हाथमें लिये भिक्षा मंगानेके दुःखसे ग्रासत हैं)
सः¹भवतिT गहनः²व्याकुलः³गोपनाथः⁴ =कृष्णजी दुःखसे व्याकुल रहते हैं(क्योंकि प्रसिद्ध है कि वे गोपियों और कुब्जासे रमण करते हैं
शक्र-आद्याः¹दुःखपूर्णाः²सुखनिधिर-हिताः³ =इन्द्र आदिकोलेकर(समस्त देवी देवता) दुःखोंसे पूर्ण हैं, सुख रूपी भंडार से वर्जित हैं
(क्योंकि तप आदिकसे स्वर्ग गये तेहू डर मानत,इन्द्र आदि सब देव अवधि अपनीकों जानत।
ब्रह्मा और सुरेश सबनकों जन्म मरन डर,विष्णू दश अवतार गर्भमें संकट पायो इत्यादि ।।
[पातुवः श्रीजिनेन्द्रः] =उपर्युक्त कारणोंमेंसे अन्य देवी देवता रक्षा करनेमें असमर्थ हैं।। श्री जिनेन्द्र तुम्हारी रक्षा करें

"तेज सूरसम कहूं, तपत दुखदायक भानो । कांति चन्द सम कहं,कलंकित मूरतिमानी॥ वारिधिसम गुण कहं खारमें कौन भलप्पन । पारस सम जस कहं आप सम करै न परतन॥इन आदि पदारथ लोकमें,तुम समान को दीजिये,तुम महाराज अनुपम दशा मोहि अनोपम कीजिये"

(१)भाषाकारकीप्रार्थना—डम्बरसिहनृपराज तासु दीवान रायचंदतिनके पुत्र खुशाल एकक्षत्तरपतिगुणकन्द,पतिकें तोताराम,नवलचंदभयाश्रुतगामी।
तोताराम दु पुत्र ज्येष्ठ श्रीपाल सुनामी। तिनके जु पुत्र अठ एकमें अनुवादक भी जाईये । पुत्र महेश सु तासकी मात विठोला बाई है।।
(२) सरनऊ पन्नालाल जनक बाईजी चोनी । तिस संपादन ग्रन्थ सहायता घनी जु कीनी ॥ बरष चतुर्दशपूर्ण इमन अनुवाद जु कीना ।
संपादनमें चार सहित मुद्रणमें लीना ॥ कलकत्ता अधबरष रहि देहली तीन बखानिये । त्याग विकालत कार्यको,संपादन उर आनिये॥
(३) पद्मावति पुरवाल गोत्र अनुवादक जानो । तिसही में सर्वार्थसिद्धिके कर्ता मानो॥पूज्यपाद था नाम उनन जैनेन्द्र(व्याकरण) बनाया ।
तीन शतक अठ जैन्म विक्रमा संवत गाया॥ उनईस सतक पंचास पर पैंतिस और बढ़ाईये । यह संवत पूरक ग्रन्थको पढ़कर अघजु नशाईये ॥
(४) दोहा— 'यामें जो कुछ न्यूनता होवे मूल विरुद्ध । सो सुधारि पांढ़ये सुजन,करि निज भाव विशुद्ध'॥ ४ ॥शुभ भवतु सर्वेषाम् ॥ इति ।